काहे होत अधीर

अनुक्रम

1. पाती आई मोरे पीतम की...2
2. अमृत में प्रवेश...25
3. साजन-देश को जाना..45
4. मौलिक धर्म...68
5. बैराग कठिन है...89
6. क्रांति की आधारशिलाएं...108
7. साहिब से परदा न कीजै...127
8. प्रेम एकमात्र नाव है..149
9. चलहु सखि वहि देस..172 10...प्रेम तुम्हारा धर्म हो
.... 196
11..मन बनिया बान न छोड़ै
.... 220
12..खाओ, पीओ और आनंद से रहो
.... 240
13...ध्यान है मार्ग
.... 263
14...अपना है क्या--लुटाओ
.... 286
15...मूरख अबहूं चेत
.... 309
16...एस धम्मो सनंतनो
.... 329
17..कारज धीरे होत है
.... 351
18...कस्मै देवाय हविषा विधेम
.... 374
19...पलटू फूला फूल
.... 395

काहे होत अधीर
पहला प्रवचन

पाती आई मोरे पीतम की

पूरन ब्रह्म रहै घट में, सठ, तीरथ कानन खोजन जाई।
नैन दिए हरि-देखन को, पलटू सब में प्रभु देत दिखाई।।
कीट पतंग रहे परिपूरन, कहूं तिल एक न होत जुदा है।
ढूंढ़त अंध गरंथन में, लिखि कागद में कहूं राम लुका है।।
वृद्ध भए तन खासा, अब कब भजन करहुगे।।
बालापन बालक संग बीता, तरुन भए अभिमाना।
नखसिख सेती भई सफेदी, हरि का मरम न जाना।।
तिरिमिरि बहिर नासिका चूवै, साक गरे चढ़ि आई।
सुत दारा गरियावन लागे, यह बुढ़वा मरि जाई।।
तीरथ बर्त एकौ न कीन्हा, नहीं साधु की सेवा।
तीनिउ पन धोखे ही बीते, नहिं ऐसे मूरख देवा।।
पकरी आई काल ने चोटी, सिर धुनि-धुनि पछिताता।
पलटूदास कोऊ नहिं संगी, जम के हाथ बिकाता।।
पाती आई मोरे पीतम की, साईं तुरत बुलायो हो।।
इक अंधियारी कोठरी, दूजे दिया न बाती।
बांह पकरि जम ले चले, कोई संग न साथी।।
सावन की अंधियारिया, भादौं निज राती।
चौमुख पवन झकोरही, धरकै मोरी छाती।।
चलना तौ हमैं जरूर है, रहना यहं नाहीं।
का लैके मिलब हजूर से, गांठी कछु नाहीं।।
पलटूदास जग आइके, नैनन भरि रोया।
जीवन जनम गंवाय के, आपै से खोया।।
कै दिन का तोरा जियना रे, नर चेतु गंवार।।
काची माटि कै घैला हो, फूटत नाहिं देर।
पानी बीच बतासा हो, लागै गलत न देर।।
धूआं को धौरेहर हो, बारू के भीत।
पवन लगे झरि जैहे हो, तृन ऊपर सीत।।
जस कागद कै कलई हो, पाका फल डार।
सपने कै सुख संपत्ति हो, ऐसो संसार।।
घने बांस का पिंजरा हो, तेहि बिच दस हो द्वार।
पंछी पवन बसेरू हो, लावै उड़त न बार।।
आतसबाजी यह तन हो, हाथे काल के आग।
पलटूदास उड़ि जैवहु हो, जब देइहि दाग।।

भई, सूरज!
जरा इस आदमी को जगाओ!
भई, पवन!
जरा इस आदमी को हिलाओ!
यह आदमी जो सोया पड़ा है,
जो सच से बेखबर
सपनों में खोया पड़ा है।
भई, पंछी!
इसके कानों पर चिल्लाओ!

भई, सूरज!
जरा इस आदमी को जगाओ!
वक्त पर जगाओ,
नहीं तो जब बेवक्त जागेगा यह तो जो आगे निकल गए हैं

उन्हें पाने
घबरा के भागेगा यह!

घबरा के भागना अलग है
क्षिप्र गति अलग है
क्षप्र तो वह है
जो सही क्षण में सजग है।
सूरज, इसे जगाओ!
पवन, इसे हिलाओ!
पंछी, इसके कानों पर चिल्लाओ!
संतों का सारा जीवन बस इन तीन बातों में समाया हुआ हैः सूरज, इसे जगाओ! संत सूरज हैं--जो सोए हैं उनके लिए। पवन, इसे हिलाओ! संत पवन हैं--जो सोए हैं उन्हें हिलाने के लिए, जगाने के लिए। पंछी, इसके कानों पर चिल्लाओ! और संत पंछी हैं--परलोक के। पृथ्वी पर बसते, पृथ्वी के नहीं। कहीं दूर उनका घर है और घर का उन्हें स्मरण आ गया है। जो विस्मरण में पड़े हैं उनके कानों पर गीत गाते हैं; याद दिलाते हैं, सुरति दिलाते हैं--असली घर की!
यहां तो दो क्षण का विराम है। जैसे राही रुक जाए वृक्ष के तले, धूप से थका-मांदा। फिर चल पड़ना है। यहां घर नहीं है, यहां तो बस सराय है।
संतों का सारा संदेश इस एक छोटी सी बात में समा जाता है कि संसार सराय है। और जिसे यह बात समझ में आ गई कि संसार सराय है, फिर इस सराय को सजाने में, संवारने में, झगड़ने में, विवाद में, प्रतिस्पर्धा में, जलन में, ईर्ष्या में, प्रतियोगिता में--नहीं उसका समय व्यय होगा। फिर सारी शक्ति तो पंख खोल कर उस अनंत यात्रा पर निकलने लगेगी, जहां शाश्वत घर है। पलटूदास के ये गीत तुम्हारे कानों पर पवन बन जाएं, तुम्हारी आंखों पर सूरज, तुम्हारे कानों पर पंछी के गीत--इस आशा में इन पर चर्चा होगी। यह चर्चा कोई पांडित्य की चर्चा नहीं है। यह चर्चा पलटूदास के काव्य की चर्चा नहीं है, न उनकी भाषा की। यह चर्चा तो पलटूदास के उस संदेश की चर्चा है जो सभी संतों का है; नाम ही उनके अलग हैं। फिर वे नानक हों कि कबीर, कि पलटू हों कि रैदास, कि रैदास हों कि तुलसी, भेद नहीं पड़ता। नाम ही अलग-अलग हैं। एक ही सूरज के गीत हैं। एक ही सुबह की पुकार है। सभी पंछियों का एक ही उपक्रम है--याद दिला दें तुम्हें, स्मृति दिला दें तुम्हें। क्योंकि तुम जो हो वही भूल गए हो और वह हो गए हो जो तुम नहीं हो। मान लिया है वह अपने को जो तुम नहीं हो और पीठ कर ली है उससे जो तुम हो। इस विस्मृति में दुख है। इस विस्मृति में नरक है। लौटो अपनी ओर!
अपने को जिसने पहचान लिया उसने परमात्मा को पहचान लिया। जो अपने को बिना पहचाने परमात्मा को पहचानने चलता है, परमात्मा को तो पहचान ही नहीं पाएगा, अपने को भी नहीं पहचान पाएगा। क ख ग से शुरू करना होगा। और क ख ग तुम हो। तुम्हारे भीतर जलना चाहिए दीया। तुम्हें ही बनना होगा दीया, तुम्हें ही तेल, तुम्हें ही बाती। हां, जरूर रोशनी उतरेगी ऊपर से, मगर इतनी तैयारी तुम्हें करनी होगी--दीया बनो, तेल बनो, बाती बनो। आएगा प्रकाश, सदा आया है। उतरेगी किरण। तुम्हारी बाती जलेगी। रोशन तुम होओगे। वह तुम्हारी जन्मजात क्षमता है। पर इतनी तैयारी तुम्हें करनी होगी। और उस तैयारी का पहला चरण है तुम्हें यह याद दिलाना कि तुम जैसे हो, जहां हो, यह सचाई नहीं है।
आज के सूत्र इसी बात की स्मृति को दिलाने के लिए हैं। चुभेंगे तीर की तरह छाती में, क्योंकि पीड़ा होती है यह बात जान कर कि मैं व्यर्थ जी रहा हूं। इसलिए तो मूढ़जन संतों को कभी क्षमा नहीं कर पाते। ज्ञानी तो उनके पीछे चल पड़ते हैं, मूढ़ उन्हें क्षमा नहीं कर पाते। ज्ञानी तो उनकी बात सुन कर अपने को बना लेते हैं, मूढ़ संतों को मिटाने में लग जाते हैं, क्योंकि चोट लगती है। और चोट को भी सीढ़ी बना लेना बड़ी कला है।
और संत भी क्या करें? कितना ही सोच-समझ कर वार करें, कितना ही बारीक वार करें, चोट तो लगेगी ही लगेगी। सोते आदमी को जगाओगे तो हिलाओगे तो ही; हिलाओगे तो उसके सपने भी चरमरा कर टूट जाएंगे। और कौन जाने सपने बड़े सुंदर हों! स्वर्ण के महलों के हों! कौन जाने सपने में वह आदमी सम्राट हो! तुम पर नाराज होगा, तुमने उसका सपना तोड़ दिया। और जब सपने में कोई होता है तो सपना

सच मालूम होता है, एकदम सच मालूम होता है। जो जागा है उसे लगता है कि झूठ होगा। झूठ है ही। जागे को तो निश्चित ही झूठ है। सपने में जो बड़बड़ा रहा है, जागा हुआ जानता है--विक्षिप्तता में है, जगा दूं इसे। उसके भीतर अनुकंपा जगती है। लेकिन जो सोया है और सुंदर सपना देख रहा है, जगाने वाला उसे दुश्मन मालूम होता है।
संतों के या तो तुम मित्र हो जाते हो या शत्रु। धन्यभागी हैं वे जो मित्र हो जाते हैं, क्योंकि वे अपने अंतिम घर को खोज लेंगे। अभागे हैं वे जो शत्रु हो जाते हैं। संतों का तो कुछ बिगड़ेगा नहीं उनके शत्रु हो जाने से। संत तो उस जगह पहुंच गए जहां कुछ बिगड़ नहीं सकता। शाश्वत उनकी संपदा है, जो न छीनी जा सकती, न जलाई जा सकती, न मिटाई जा सकती। मृत्यु भी उसे नहीं छीन सकती है, तो तुम क्या छीनोगे? मृत्यु भी उनके लिए शत्रु न रही, तो तुम कैसे शत्रु बन पाओगे? लेकिन हां, उनके शत्रु बन कर तुम आत्मघाती जरूर हो जाओगे, तुम अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मार लोगे।
तुमने कालिदास की कहानी तो सुनी? नगर का राजा परेशान हो गया था। अपनी बेटी का विवाह करना चाहता था। लेकिन बेटी बड़ी विदुषी थी और किसी तरह ढूंढ़-ढांढ़ कर राजा सुंदर से सुंदर व्यक्तियों को लाता और वह ऐसे प्रश्न पूछती कि वे उत्तर न दे पाते। और उसने कसम खा रखी थी, कि जब तक मेरे प्रश्नों का कोई उत्तर न दे दे, तब तक मैं विवाह करने को राजी नहीं हूं। मैं अपने से श्रेष्ठतर से ही वरी जाऊंगी। बहुत कठिनाई हो रही थी। लड़की की उम्र बढ़ती जाती थी, बाप चिंतित था, बाप बूढ़ा हो रहा था। क्रोध में बाप ने अपने वजीरों को कहा कि अब पंडित तो हार गए, किसी महामूढ़ को पकड़ लाओ। महामूढ़ की तलाश में चले तो कालिदास को पाया। कालिदास एक वृक्ष पर बैठ कर वृक्ष की शाखा काट रहे थे; जिस शाखा पर बैठे थे उसी को काट रहे थे! शाखा कटेगी तो शाखा ही नहीं गिरेगी, कालिदास भी उसके साथ जमीन पर गिरेंगे। इससे ज्यादा मूढ़ और आदमी कौन होगा! पकड़ लाए कालिदास को।
यह कहानी सच हो या न हो, लेकिन मैं हर आदमी को इसी हालत में देखता हूं। जिस शाखा पर तुम बैठे हो उसी को काट रहे हो।
जीसस को जिन्होंने सूली दी उन्होंने उसी शाखा को नहीं काट लिया जिस
पर बैठते थे! जिस पर बैठ कर पंख फैला सकते थे और आकाश तक उड़ सकते थे! जो परमात्मा तक पहुंचने के लिए मार्ग बन सकता था! द्वार में ही आग लगा दी--जो मंदिर का द्वार था! जिन्होंने सुकरात को जहर पिलाया, वे कालिदास से कहीं ज्यादा मूढ़ रहे होंगे। जिन्होंने बुद्ध पर, महावीर पर पत्थर फेंके, जिन्होंने कबीर, पलटू को सताया, वे कौन लोग थे? वे कैसे लोग थे? ऐसे ही लोग थे जैसे तुम हो। इस दुनिया में बस दो ही तरह के लोग हैंः संतों की चोट को जो प्रीति से सह जाएं, आभारपूर्वक; और संतों की चोट से जो तिलमिला जाएं और क्रोध से भर जाएं। जो क्रोध से भर गया वह कालिदास है। वह अपने ही हाथ से उस परम इशारे को मिटाए दे रहा है; मील के पत्थर को तोड़े दे रहा है, जिस पर चिह्न थे आगे की यात्रा के; नक्शे को जलाए दे रहा है, जो कि परमात्मा तक पहुंचाने का आधार बन सकता था!
इन सूत्रों को बहुत प्रेम, बहुत प्रीति, बहुत भाव से लेना। चोट तो होगी। मजबूरी है। संत तुम्हें चोट करना नहीं चाहते, चोट देना नहीं चाहते। करुणा से बोलते हैं। मगर कुछ बातें हैं जो कही जाएं तो चोट होती ही है, उससे बचा नहीं जा सकता।
पूरन ब्रह्म रहै घट में, सठ, तीरथ कानन खोजन जाई।
कहां खोजने जा रहे हो परमात्मा को? तीर्थों में! काबा, काशी, कैलाश! कहां खोजने जा रहे हो? जंगलों में, पर्वतों पर, हिमालय में! मूढ़ हो तुम। क्योंकि जिसे तुम खोजने चले हो वह तुम्हारे भीतर छिपा बैठा है। खोजने वाले में ही छिपा बैठा है जिसे तुम खोजने चले हो!
और लोग खोज रहे हैं। लोग परिव्राजक हो जाते हैं। एक गांव से दूसरे गांव। एक तीर्थ-स्थल से दूसरे तीर्थ-स्थल। गंगा की यात्रा कर रहे हैं, परिभ्रमण कर रहे हैं। जा रहे हैं दूर-दूर उत्तुंग शिखरों पर। जैसे परमात्मा तुम्हारे डर से कहीं हिमालय की गुफाओं में छिपा हो! जैसे परमात्मा को जंगल में ही पाया जा सकता हो! और अगर तुम्हें यहां नहीं दिखाई पड़ता तो जंगल में कैसे दिखाई पड़ेगा?

मैंने सुना है, एक अंधे आदमी की आंख का ऑपरेशन हो रहा था। उसने डाक्टर
से पूछा कि क्या आंख के ऑपरेशन के बाद मैं पढ़ना-लिखना कर सकूंगा? डाक्टर ने कहा, निश्चित। जाली है तुम्हारी आंख पर, कट जाएगी जाली, निकल जाएगी जाली, जरूर पढ़-लिख सकोगे। वह आदमी बड़ी खुशी से बोला कि हे प्रभु, तेरा बड़ा धन्यवाद है! डाक्टर ने कहा, इसमें धन्यवाद प्रभु को देने की कोई जरूरत नहीं, यह तो स्वाभाविक है, आंख से जाली कट गई कि पढ़ना-लिखना आसान हो जाएगा। उस अंधे ने कहा, लेकिन बात यह है कि पढ़ना-लिखना मैं जानता नहीं। जब मेरी आंख ठीक थी तब भी मैं पढ़-लिख नहीं सकता था। तो यह चमत्कार ही है कि अब तुम जाली काट दोगे और मुझे पढ़ना-लिखना आ जाएगा। इससे बड़ा और चमत्कार क्या हो सकता है!
अगर पढ़ना-लिखना नहीं आता तो आंख की जाली कटने से भी नहीं आ जाएगा।
यहां तुम्हें परमात्मा नहीं दिखाई पड़ता; जंगल में भी आंख तो यही होगी, तुम तो यही होओगे--ठीक यही, जरा सा भी तो भेद न होगा। परिस्थिति बदल जाएगी, मनःस्थिति तो न बदल जाएगी। तुम यहां नहीं देख पाते उसे, वहां कैसे देख पाओगे? इन वृक्षों में नहीं दिखाई पड़ता, जंगल के वृक्षों में कैसे दिखाई पड़ेगा? लोगों में नहीं दिखाई पड़ता, पत्थर-पहाड़ों में कैसे दिखाई पड़ेगा? लेकिन आदमी बेईमान है। तीर्थों में खोजने इसलिए नहीं जाता कि तीर्थों में परमात्मा मिलता है। तीर्थों में खोजने इसलिए जाता है कि यह भी परमात्मा से बचने की अंतिम व्यवस्था है, आखिरी चालाकी--कि खोज तो रहे हैं भाई, और क्या करें! इतना श्रम उठा रहे हैं, नहीं मिलता तो भाग्य में नहीं होगा; नहीं मिलता तो शायद होगा ही नहीं; नहीं मिलता तो शायद मिलना ही नहीं चाहता है। लेकिन अपनी तरफ से तो हमने सब दांव पर लगा दिया है, घर छोड़ दिया, द्वार छोड़ दिया, खोजने निकल पड़े हैं। यह आखिरी तरकीब है। कभी तुम धन खोजते थे, उस कारण परमात्मा को न पा सके। कभी पद खोजते थे, उस कारण परमात्मा को न पा सके। अब तुम परमात्मा को ही खोज रहे हो और उस कारण परमात्मा को न पा सकोगे, क्योंकि खोजने वाला चित्त वासनाग्रस्त है। और जहां वासना है वहां प्रार्थना नहीं है। और जब तक तुम्हारे मन में तनाव है कुछ पाने का, तब तक तुम पा न सकोगे। जब तक दौड़ोगे, चूकोगे। रुको और पा लो।
लगेगी तो बात चोट जैसी। कोई संन्यासी हो गया है घर-द्वार छोड़ कर, कोई मुनि हो गया है, कोई भिक्षु हो गया है। लगेगी तो चोट पलटू की इस बात से-- पूरन ब्रह्म रहै घट में, सठ, तीरथ कानन खोजन जाई।
और तू बेईमान, खोजने जा रहा है तीरथ, जंगल, पर्वत! आंख भीतर मोड़!
जाना है कहीं तो अपने भीतर जाना है। और अपने भीतर जाना है, यह कहना सिर्फ भाषा के कारण। भीतर जाने का एक ही अर्थ होता है--बाहर जाना रुक जाए, बस। भीतर जाने को न कोई स्थान है कि जहां पैर उठा सको, कदम उठा सको। भीतर तो तुम हो ही, वहां जाना क्यों है? वहां से तो तुम कभी इंच भर हटे नहीं हो। इसलिए बाहर जाना बंद हो जाए कि आदमी भीतर पहुंच गया। भीतर जाने का अर्थ इतना ही है--बाहर जाने की दौड़ बंद हो गई, बस तुम अपने को भीतर पाओगे। तुम विराजमान पाओगे अपने को परम प्रभु की गोद में।
नैन दिए हरि-देखन को, पलटू सब में प्रभु देत दिखाई।
आंखें तो दी थीं प्रभु को देखने को। और जिन्होंने आंखों का ठीक उपयोग किया उन्हें अपने भीतर ही नहीं दिखाई पड़ा, सबके भीतर दिखाई पड़ा। लेकिन तुम्हारी आंखों में क्या दिखाई पड़ता है? पत्थर दिखाई पड़ते हैं, पहाड़ दिखाई पड़ते हैं, रुपया-पैसा दिखाई पड़ता है, हीरे-जवाहरात दिखाई पड़ते हैं, लोग दिखाई पड़ते हैं; परमात्मा भर नहीं दिखाई पड़ता! आंखों का तुमने ठीक उपयोग ही नहीं किया। तुमने आंखों को बाहर पर अटका दिया है। तुमने आंखों को बहिर्गामी बना दिया है।
आंखों को बंद करो और देखो! आंख खोल-खोल कर तो बहुत देखा, अब आंख बंद करो
और देखो। आंख बंद करके देखने का नाम ध्यान है। और आंख बंद करके जिसको दिख जाए, उसको समाधि। आंख खोल कर फिर दिखाई पड़ेगा, पहले आंख बंद करके दिखाई पड़ जाए। अपने में जिसने उसको पहचान लिया, उसे फिर सब में उसकी पहचान हो जाती है। बस पहली पहचान कठिन है, बाकी तो सब पहचान बड़ी सरल है, बड़ी सुगम है।
नैन दिए हरि-देखन को, पलटू सब में प्रभु देत दिखाई।
लेकिन बहिर्यात्रा छोड़नी होगी, अंतर्यात्रा करनी होगी।

कुछ लिख के सो, कुछ पढ़ के सो
तू जिस जगह जागा सबेरे, उस जगह से बढ़ के सो जैसा उठा वैसा गिरा जाकर बिछौने पर
तिफ्ल जैसा प्यार यह जीवन खिलौने पर
बिना समझे बिना बूझे खेलते जाना
एक जिद को जकड़ लेकर ठेलते जाना
गलत है, बेसूद है, कुछ रच के सो, कुछ गढ़ के सो तू जिस जगह जागा सबेरे, उस जगह से बढ़ के सो दिन भर इबारत पेड़-पत्ती और पानी की
बंद घर की, खुले-फैले खेतधानी की
हवा की बरसात की हर खुश्क की
तर की गुजरती दिन भर रही जो आप की पर की
उस इबारत के सुनहरे वर्क से मन मढ़ के सो तू जिस जगह जागा सबेरे, उस जगह से बढ़ के सो लिखा सूरज ने किरन की कलम लेकर जो
नाम लेकर जिसे पंछी ने पुकारा जो
हवा जो कुछ गा गई, बरसात जो बरसी
जो इबारत लहर बन कर नदी पर दरसी
उस इबारत की अगरचे सीढ़ियां हैं, चढ़ के सो
तू जिस जगह जागा सबेरे, उस जगह से बढ़ के सो
जिंदगी को एक व्यर्थ वर्तुल न बनाओ। लोग घूम रहे हैं कोल्हू के बैल की तरह--वहीं जागते, वहीं सोते; वही कल किया था, वही परसों भी किया था, वही आज भी करेंगे, वही कल भी, वही परसों भी--अगर कोई कल हुआ, अगर कोई परसों हुआ, तो वही-वही करते रहेंगे। वही क्रोध, वही लोभ, वही काम, वही मोह। जागोगे कब? बदलोगे कब? तुम आदमी हो, कोल्हू के बैल नहीं। यह किसने तुम्हारी आंखों पर पट्टियां चढ़ा दी हैं? यह किसने तुम्हें कोल्हू में जोत दिया है? यह कौन है जो तुम्हें हांके जा रहा है?
बड़ा मजा है! यह तुम्हारी अपनी करतूत है। ये आंख पर पट्टियां तुमने खुद चढ़ा ली हैं। यह कंधे पर तुमने कोल्हू अपने हाथ से ले लिया है। यह वर्तुलाकार चक्कर तुमने जीवन का खुद निर्मित किया है। किसी दूसरे ने भी किया होता तो कम से कम एक आशा रहती कि कभी दूसरा उतार देगा, कभी दया आएगी उसे। मगर यह तुम्हारा ही उपद्रव है। इसलिए जब तक तुम जागो और चेतो न, तब तक कोई इस परतंत्रता को छीन नहीं सकता है। इस संसार को कोई तुम्हारे मिटा नहीं सकता। इस स्वप्न को कोई नष्ट नहीं कर सकता। यह तुम्हारा ही अपना निष्कर्ष बने।
लिखा सूरज ने किरन की कलम लेकर जो
देखते हो सुबह-सुबह सूरज कलम लेकर क्या लिख जाता है आकाश में! वेद लिख जाता है, उपनिषद लिख जाता है, कुरान लिख जाता है, बाइबिल लिख जाता है, धम्मपद लिख जाता है। सारे शास्त्रों का सार लिख जाता है। रोशनी का अर्थ लिख जाता है। रोशनी का रहस्य लिख जाता है। मगर कौन देखे? आंख कौन उठाता है सूरज की तरफ? तुम अपनी किताबों में डूबे हो।
लिखा सूरज ने किरन की कलम लेकर जो
नाम लेकर जिसे पंछी ने पुकारा जो
कौन को पुकार रहा है पंछी सुबह-सुबह? कोयल कूकने लगती है तो किसके लिए? और पपीहा कहता है पी-कहां, तो किसके लिए? पक्षी सुबह-सुबह गीत गाने लगते हैं, यह किसकी प्रार्थना हो रही है? यह किसका स्मरण है? यह उसी प्रभु का स्मरण चल रहा है! वृक्ष चुप खड़े हैं उसी के ध्यान में! पक्षी गीत गा रहे हैं उसी के स्मरण में! समुद्रों की लहरों में उसी की धुन है। पहाड़ों के सन्नाटे में उसी का शून्य है। लेकिन तुम्हारे पास आंख नहीं, तो सूरज लिखता रहता है, तुम पढ़ते नहीं; पक्षी गाते रहते हैं, तुम सुनते नहीं। आकाश में बादल गरजते हैं, समुद्र में लहरें उठती हैं, मगर तुम बज्र-बधिर हो। तुम व्यर्थ की बातें बहुत जल्दी सुन लेते हो। तुम व्यर्थ की बातें सुनने को खूब आतुर हो।

एक फकीर अपने एक साथी के साथ एक बाजार से गुजरता था। पास ही की पहाड़ी
पर खड़े चर्च की संध्या की प्रार्थना की घंटियां बजने लगीं। उस फकीर ने कहा, सुनते हो--उस युवक को--कितना मधुर रव है! कैसा प्यारा संगीत है! पहाड़ पर खड़े चर्च की घंटियों की आवाज सुनी? उस युवक ने कहा, इस बाजार के शोरगुल में कहां का पहाड़, कहां का चर्च, कहां की घंटियां! मुझे कुछ सुनाई नहीं पड़ता। यहां इतना शोरगुल मचा है, सांझ का वक्त है, लोग अपनी दुकानें उठा रहे हैं, ग्राहक आखिरी खरीद-फरोख्त कर रहे हैं, बेचने वाले भी कोशिश में हैं कि कुछ कम दाम में ही सही, जल्दी बिक जाए, जो भी बिक जाए बिक जाए। सूरज ढलने- ढलने को है। लोगों को अपना सामान बांधना है। लोगों को अपनी गाड़ियां तैयार करनी हैं। लोगों को भागना है अपने घरों की तरफ। यहां इतना शोरगुल मचा है! घोड़े हिनहिना रहे हैं, बैल आवाज कर रहे हैं, गाड़ियां जोती जा रही हैं। घुड़सवार हैं, आदमी हैं, भीड़-भाड़ है। कहां की घंटियां? इतनी भीड़-भाड़ में, इतने शोरगुल में मुझे कुछ सुनाई नहीं पड़ता।
उस फकीर ने अपनी जेब से एक रुपया निकाला। पुरानी कहानी है। नगद, चांदी
का रुपया! जोर से उसे पास के ही पत्थर पर पटक दिया। सड़क के किनारे लगा पत्थर, खननखन की आवाज! और एक भीड़ इकट्ठी हो गई। सौ दो सौ आदमी एकदम दौड़ पड़े। कहा कि किसी का रुपया गिरा। उस फकीर ने उस युवक को कहा, देखते हो! घोड़े हिनहिना रहे हैं, गाड़ियां सजाई जा रही हैं, खरीद-फरोख्त का आखिरी वक्त, सांझ हो रही है, बिसाती अपना फैलाव संवार रहे हैं; लेकिन रुपये की खननखन दो सौ आदमियों ने सुन ली! और चर्च की घंटियां गूंज रही हैं, किसी को सुनाई नहीं पड़ता!
रुपये पर जिसका मन अटका हो वह रुपये को सुन लेगा। हम वही सुनते हैं जहां हमारा मन लगा है। हम वही गुनते हैं जहां हमारा मन लगा है। हम वही देखते हैं... रास्ता तो वही होता है, लेकिन हर गुजरने वाला अलग-अलग चीजें देखता है। चमार रास्ते के किनारे बैठा हुआ तुम्हारे चेहरे नहीं देखता, तुम्हारे जूते देखता है। चेहरों से उसे क्या लेना-देना! उसका प्रयोजन जूतों से है। लोग वही देखते हैं जहां उनकी वासना है, जहां उनकी आकांक्षा है, अभीप्सा है।
इसलिए सूरज सुबह रोज उपनिषद लिखता है, मगर नहीं, तुम वंचित रह जाते हो
उन अदभुत ऋचाओं से जो रोशनी से लिखी जाती हैं आकाश के शून्य में। रोज सुबह कुरान दोहराता है, लेकिन तुम मस्जिद में जाकर कुरान दोहराते हो। तुम मुर्दा आयतें दोहराते हो और सुबह रोज सूरज नई आयतें लिखता है--नित-नूतन, जीवंत! परमात्मा हार नहीं गया है। मोहम्मद के साथ इलहाम समाप्त नहीं हो गया। परमात्मा रोज सुबह सूरज के साथ इलहाम लाता है। फिर पक्षियों में गुनगुनाता है। फिर पपीहे में पुकारता है। फिर वृक्षों में फूल बन कर खिलता है।
लिखा सूरज ने किरन की कलम लेकर जो
नाम लेकर जिसे पंछी ने पुकारा जो
हवा जो कुछ गा गई, बरसात जो बरसी
वृक्षों से गुजरती हवाओं के गीत सुने? ये गीत कृष्ण की बांसुरी को मात करें, ऐसे गीत! और बरसात में रिमझिम होती बरसात, तुम्हारे छप्पर पर होती बूंदाबांदी का नृत्य--ऐसा नृत्य कि राधा के घूंघर फीके पड़ें! मगर तुम कैसे हो? तुम्हें जीवन में चारों तरफ कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता! और मौलिक कारण हैः क्योंकि तुम्हें अपने भीतर ही नहीं दिखाई पड़ा। तुमने अभी देखने वाले को नहीं देखा, तो तुम और क्या देखोगे! द्रष्टा से पहली पहचान, फिर दृश्य से पहचान हो सकती है।
जो इबारत लहर बन कर नदी पर दरसी
उस इबारत की अगरचे सीढ़ियां हैं, चढ़ के सो
वे जो सूरज से गिरती हुई किरणें हैं, वे जो हवा की लहरें हैं, वह जो आकाश का प्रतिबिंब बन रहा है नदी की लहरों में--उन सब में सीढ़ियां छिपी हैं।
उस इबारत की अगरचे सीढ़ियां हैं, चढ़ के सो
तू जिस जगह जागा सबेरे, उस जगह से बढ़ के सो

जीवन को एक विकास बनाओ--एक ऊर्ध्वगमन, एक आरोहण! कोल्हू के बैल की तरह
मत घूमते रहो।
कीट पतंग रहे परिपूरन, कहूं तिल एक न होत जुदा है।
और पलटू कहते हैं कि ऐसा मत सोच लेना कि तुम में ही परमात्मा है; नहीं
तो अहंकार पैदा होता है। ब्राह्मण सोचता है कि ब्रह्म ब्राह्मण में, तभी तो मैं ब्राह्मण; शूद्र में तो हो ही नहीं सकता। आदमी सोचता है परमात्मा आदमी में, पशु-पक्षियों में हो ही नहीं सकता, क्योंकि पशु-पक्षी तो उसने हमारे काम के लिए बनाए हैं कि हम उन्हें खाएं, उनका भोजन करें। कोई जरा पशु-पक्षियों से भी पूछो कि उनके क्या इरादे हैं? कि वे आदमी के संबंध में क्या सोचते हैं? तो तुम चकित होओगे। तुम जैसा सोचते हो वैसा ही वे भी सोचते हैं। यह दूसरी बात है कि तुम जरा चालाक हो और तुमने व्यवस्था जुटा ली है और तुमने सारे पशुओं को मटियामेट कर दिया है। लेकिन इस भ्रांति में न पड़ जाना कि परमात्मा तुम्हारी बपौती है।
पलटू कहते हैंः कीट पतंग रहे परिपूरन।
आदमियों की तो बात छोड़ दो, कीट-पतंग में भी वही परिपूर्ण रूप से बस रहा है।
कहूं तिल एक न होत जुदा है।
तुम ऐसी जगह नहीं पा सकते, जहां एक तिल भर भी परमात्मा का अभाव हो। एक तिल रख सको, ऐसी कोई जगह नहीं पा सकते जहां परमात्मा न हो। वही है पत्थरों में, वही पृथ्वी में, वही आकाश में। मगर यह पहचान होगी तब, जब पहले तुम अपने में ढूंढ़ लो। मगर अपने में ढूंढ़ने लोग नहीं जाते।
ढूंढ़त अंध गरंथन में...
अंधे तो ग्रंथों में ढ.ूंढते हैं।
ढूंढ़त अंध गरंथन में, लिखि कागद में कहूं राम लुका है।
अरे पागलो, हाथ से लिखे गए कागजों में, कागजों पर फैलाई गई आदमी के हाथ
से जो स्याहियां हैं, उनमें कहीं राम छिपा है?
ढूंढ़त अंध गरंथन में...
अंधे ग्रंथों में ढ.ूंढ रहे हैं!
इसलिए पंडितों से बड़े अंधे खोजने कठिन हैं। महापंडित यानी महाअंधा। जिसकी बाहर-भीतर की बिल्कुल फूट गईं वह महापंडित। पंडित वह जिसकी बाहर-बाहर की फूटी हैं।
कागज में खोज रहे हो! स्मरण करो कबीर का।
कबीर कहते हैंः लिखालिखी की है नहीं, देखादेखी बात।
यह कुछ लिखने में आती नहीं। लिखी कभी गई नहीं। लिखी जा सकती तो बड़ी आसान हो जाती बात। फिर विज्ञान और धर्म में कुछ भेद न रह जाता। विज्ञान लिखा जा सकता है, धर्म लिखा नहीं जा सकता। देखादेखी बात! दूसरे की मान कर चलने से भी नहीं होगा। मैं कहूं कि ईश्वर है, इससे क्या होगा? तुम्हारे लिए होना चाहिए, तुम्हारा अनुभव होना चाहिए, तभी कुछ होगा। देखादेखी बात! ग्रंथ तो बहुत हैं आदमी के पास, अंबार लगे हैं। तरह-तरह के ग्रंथ हैं। तुम्हें जैसे ग्रंथ चाहिए वैसे ग्रंथ उपलब्ध हैं। इतने ग्रंथ हैं कि अगर हम पृथ्वी पर फैलाएं, तो किसी ने हिसाब लगाया है कि अगर सारी किताबें एक कतार बना कर पृथ्वी पर लगाई जाएं तो सात चक्कर पृथ्वी के हो जाएंगे। इतनी किताबें हैं आदमी के पास! करोड़ों-करोड़ों किताबें! और इन किताबों में कीड़ों की तरह लोग खोज रहे हैं। शायद दीमक को तो कुछ भोजन मिल भी जाता होगा, पंडित को उतना भी नहीं मिलता। और तुम्हें जैसी जरूरत है, किताबें रचने वाले लोग मौजूद हैं, तुम्हारी आकांक्षा के अनुकूल रच देते हैं, तुम्हें जो प्रीतिकर लगे। बाजार का तो नियम ही यही हैः जिस बात की मांग हो उसकी पूर्ति।

जी हां हुजूर, मैं गीत बेचता हूं,
मैं तरह-तरह के गीत बेचता हूं,
मैं किसिम-किसिम के गीत बेचता हूं!

जी, माल देखिए, दाम बताऊंगा,

जी, रूठ-रूठ कर मन जाते हैं गीत! जी, बहुत ढेर लग गया, हटाता हूं, गाहक की मर्जी, अच्छा जाता हूं; या भीतर जाकर पूछ आइए आप,
है गीत बेचना वैसे बिल्कुल पाप,
क्या करूं मगर लाचार
हार कर गीत बेचता हूं!
जी हां हुजूर, मैं गीत बेचता हूं,
मैं किसिम-किसिम के गीत बेचता हूं!

सब तरह के गीत उपलब्ध हैं। सब तरह के शास्त्र उपलब्ध हैं। तरह-तरह की दुकानें हैं। नाम उन दुकानों के चाहे मंदिर हों, मस्जिदें हों, गुरुद्वारे हों, गिरजे हों। धर्म के नाम पर हैं, ईश्वर के नाम पर हैं, मोक्ष के नाम पर हैं--लेकिन तुम्हें जैसा गीत चाहिए मिल जाएगा। पर ये गीत परमात्मा के नहीं हैं। ये गीत बाजारू हैं। ये सब चलते गीत हैं। ये सब फिल्मी गीत हैं।
परमात्मा का गीत तो परमात्मा ही गाता है। सुबह ऊगते सूरज में पढ़ो, पक्षियों की गुनगुनाहट में सुनो। हवा जब वृक्षों को हिलाने लगे, उस नाच में देखो। या कभी अगर तुम्हारा सौभाग्य हो और किसी बुद्धपुरुष से मिलना हो जाए तो उसके पास बैठो--उसके सन्नाटे में, उसके मौन में, उसके बोलने में, उसके उठने-बैठने में। कबीर ने कहा है कि मैं उठता हूं, बैठता हूं, तो उसी की सेवा चल रही है; चलता-फिरता हूं, उसी की परिक्रमा हो रही है; खाता-पीता हूं, उसी को भोग लग रहा है।
ऐसा कोई व्यक्ति मिल जाए--जिसका जीवन अपना जीवन न हो! जिसके पास अपना कुछ भी न हो! जिसका जीवन केवल प्रभु के लिए समग्रतया समर्पित हो! जिसके जीवन से केवल उसी के राग बहते हों! जिसने अपने जीवन को बांसुरी की तरह उसके ओंठों पर समर्पित कर दिया हो!
मगर यह सब तभी होगा, यह सब तभी हो सकता है, जब तुम पहला क ख ग सीखो। और
वह है आंख बंद करके स्वयं को देखने की बात। और देर न करो, क्योंकि जो समय गया गया, फिर लौट कर नहीं आता। और कल का कोई भरोसा नहीं है।
वृद्ध भए तन खासा, अब कब भजन करहुगे।
जवान हैं, सोचते हैं कि वृद्ध हो जाएंगे, फिर कर लेंगे भजन। वृद्ध हैं, उनको भी यह कुछ पक्का नहीं है कि जाने का वक्त करीब आ गया। वे भी बड़ी आशा में लगे हैं कि अभी और जी लेंगे, कि अभी कोई मरे थोड़े ही जाते हैं। लोगों ने ऐसी-ऐसी आशाएं बांध रखी हैं कि आखिरी वक्त में राम का नाम ले लेंगे, एक बार नाम ले लेंगे; मरते-मरते नाम ले लिया, मोक्ष हो जाएगा। काश, बात इतनी आसान होती! काश, बात इतनी उधार होती! काश, बात इतनी सस्ती होती! जीवन भर गुनगुनाओ तो अंतिम क्षण में तुम्हारी गुनगुनाहट उस तक पहुंच सकेगी। कल पर मत टालो।
वृद्ध भए तन खासा...
देर नहीं लगेगी, बुढ़ापा आते देर क्या लगती है! यूं दिन जाते हैं, पल-छिन में जाते हैं!
बालापन बालक संग बीता...
बच्चों के साथ खेलने में बीत गया। मगर बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि बच्चे ही बच्चे होते तो क्षम्य थे, यहां बूढ़े भी बच्चे हैं! खेल वही है, गुड्डियां थोड़ी बड़ी हो गई हैं। छोटे बच्चे छोटी गुड्डियों से खेलते हैं, बड़े बच्चे बड़ी गुड्डियों से खेलते हैं। छोटे बच्चों के खिलौने छोटे और सस्ते हैं, बड़े बच्चों के खिलौने बड़े और महंगे हैं। मगर बात वही है, क्योंकि चित्त नहीं बदलता। इस जगत में प्रौढ़ होना बड़ी मुश्किल बात है। बूढ़ा हो जाना बहुत आसान है, परिपक्व होना बहुत कठिन है। अधिकतर लोग यहां धूप में ही बाल पकाते हैं।
बालापन बालक संग बीता, तरुन भए अभिमाना।
और एक से एक तरकीबें खोज ली जाती हैं। बचपन तो बचपन है, वह तो बीतेगा
ही खेलकूद में, उछलकूद में। फिर जब जवान होओगे तो बड़े अभिमान उठते हैं, बड़ी

आकांक्षाएं, बड़ी अभीप्साएं--यह हो लूं, वह हो लूं; यह पा लूं, वह पा लूं! कौन है जो सिकंदर नहीं होना चाहता! हरेक अपने भीतर सिकंदर की अभीप्सा लेकर आता है। कहो या न कहो, बताओ या न बताओ, शर्म के कारण न बताओ, संकोच के कारण न कहो, मगर भीतर यही ख्याल है कि कुछ करके दिखला दूं। और आस-पास लोग भी तुमसे यही कह रहे हैंः छोड़ जाओ नाम। अरे नाम रह जाएगा, कुछ कर जाओ! कुछ करके दिखा जाओ! तो बड़ा अभिमान जगता है। जवानी अभिमान में खो जाती है।
नखसिख सेती भई सफेदी...
फिर आज नहीं कल नीचे से ऊपर तक सब सूखने लगता है, जीर्ण-जर्जर होने लगता है। सब सफेद होने लगता है।
हरि का मरम न जाना।
तब बहुत पछताओगे। तब जार-जार रोओगे। तब खून के आंसू टपकेंगे। क्योंकि हरि का मरम न जाना और मौत करीब आने लगी। और तुम व्यर्थ की रामलीला में लगे रहे। छोटे बच्चे गुड्डा-गुड्डियों के विवाह करवाते हैं, तुम रामलीला करवाते रहे। रामचंद्र जी की बारात निकलती है।

मंगतू
बीड़ी के पैसों के लिए
राम बना हुआ है

प्रभातू
चाय के पैसों के लिए सीता

लक्ष्मण
परशुराम के क्रोध के नीचे से मातादीन की रेखा को लांघ रहा है

भरत को
कोई भरोसा नहीं
कि चप्पल की जुगाड़ भिड़ जाए

कहां है ज्यादा कष्ट!
कहां है ज्यादा निर्वासन!
रामायण में या जीवन में?
कहां लड़ा जा रहा है युद्ध?
कौन है शत्रु और कौन है शत्रुघ्न?

वह जो राम बना है, पूछते हो किसलिए? वह जो सीता बन गया है, पूछते हो किसलिए? कोई बीड़ी के पैसों के लिए इंतजाम कर रहा है, कोई चाय के पैसों के लिए पैसे जुटा रहा है, भरत को कोई भरोसा नहीं कि चप्पल की जुगाड़ भिड़ जाए। और लोग उनके चरण छू रहे हैं। लोग उनकी पूजा कर रहे हैं। बारात निकली है राम की!
यह खेल हम खेलते ही चले जाते हैं। और तरह-तरह के खेल हैं--जैनों के खेल हैं, हिंदुओं के खेल हैं, मुसलमानों के खेल हैं, तरह-तरह के खेल हैं! कोई ताजिए बनाए हुए है, कोई गणेश जी को सजाए हुए है, कोई राम का जुलूस निकाल रहा है, कोई महावीर की पत्थर की मूर्तियों पर दूध ढाल रहा है, स्नान करवा रहा है। और बड़ी गंभीरता से ये कृत्य किए जा रहे हैं। जीवन भर लोग पैसे जुटा रहे हैं--हज कर आएं, कि एक बार गंगा-स्नान कर आएं, कि एक बार कुंभ के मेले हो आएं। और वहां जिनको तुम साधु समझते हो, लुच्चे-लफंगों की जमात है।
अभी नासिक में, तुमने दो-चार दिन पहले ही खबर पढ़ी होगी, छुरेबाजी हो गई--साधुओं में! सिर खुल गए। हवालात में बंद हैं। भाले भोंक दिए! ये तुम्हारे साधु हैं! लेकिन तुम अंधों की तरह चले जा रहे हो। पचास लाख हिंदू साधु हैं भारत में। इनमें एकाध भी नहीं मालूम होता कि साधु है। सब थोथा आडंबर है।

इस सबसे सावधान होओ। समय को गंवाओ मत। जल्दी ही मौत द्वार पर दस्तक देगी, उसके पहले परमात्मा को स्मरण कर लो।

पिछले साल उसने कहा
कि पिछले साल
मैं नाबालिग था

इस साल भी वह कह रहा है
कि पिछले साल
मैं नाबालिग था

हर नये वर्ष में नाबालिग
हर नये वर्ष में नासमझ
हर मरने वाले के लिए उसने कहा--
बालिग हुआ कि मर गया

कितना बालिग होने के लिए
कितना मरने की जरूरत है?

रोज-रोज मरने की जरूरत है। प्रतिपल मरने की जरूरत है। अतीत के प्रति जिसे मरने की कला आ गई, जो अतीत को लौट कर नहीं देखता और जो भविष्य की आकांक्षा नहीं करता और जो शुद्ध वर्तमान में जीने लगता है, वह बालिग है। उम्र से कोई बालिग नहीं होता कि अठारह साल के हो गए, कि इक्कीस साल के हो गए। ये तो कृत्रिम सीमाएं हैं। किस हिसाब से इक्कीस साल का आदमी बालिग हो जाता है और बीस साल का नहीं होता? और इक्कीस साल में एक दिन कम है तो बालिग नहीं और एक दिन ज्यादा हो गया तो बालिग है! एक दिन पहले नाबालिग था, एक दिन बाद बालिग हो गया! रात भर सोया और सुबह बालिग हो गया!
बालिग होने का अर्थ होता है प्रौढ़। प्रौढ़ता का कोई संबंध उम्र से नहीं है। प्रौढ़ता का संबंध भीतर जागरण से है, होश से है। और होश की कला और कीमिया एक ही है--अतीत से अपना छुटकारा कर लो। जो गया, गया; और जो नहीं आया, नहीं आया। अभी जो है, इस क्षण... इस क्षण को पूरा का पूरा आत्मसात कर लो। इस क्षण में पूरे के पूरे डूब जाओ। अतीत नहीं है तो कोई स्मृति नहीं होगी, और भविष्य नहीं है तो कोई वासना नहीं होगी। और जहां स्मृति नहीं, वासना नहीं, वहां प्रभु से मिलन है, वहां प्रार्थना है। मर जाओ अतीत के प्रति और मर जाओ भविष्य के प्रति। और वर्तमान में तुम जी उठोगे--ऐसे जी उठोगे भभक कर! ऐसे भभक कर जी उठने का नाम ही बुद्धत्व है, समाधि है। जैसे कोई मशाल को दोनों तरफ से जला दे!
तिरिमिरि बहिर नासिका चूवै, साक गरे चढ़ि आई।
देर नहीं लगेगी, जल्दी ही आंखें जरा सी चकाचौंध से ही थक जाएंगी, ठीक
से देख न पाओगे। देर नहीं है कि नासिका बहने लगेगी। देर नहीं है कि श्वास चढ़ने लगेगी।
सुत दारा गरियावन लागे, यह बुढ़वा मरि जाई।
देर नहीं है कि जिनको तुमने अपना समझा था, वे भी कहने लगेंगे कि अब छुटकारा हो तो अच्छा।
मैंने सुना है, एक घर में बूढ़ा बाप, बहुत बूढ़ा, किसी मूल्य का तो रहा नहीं, एक बोझ! उसके बेटे ने, उसको घर के पीछे जहां घुड़साल थी, उसके पास के ही एक गंदे से कमरे में डाल रखा। वहीं उसको खाने-पीने के लिए भिजवा दिया जाता। अब बरतन कौन उसके मले, कौन रोज-रोज बरतन साफ करे, तो लकड़ी के बरतन बनवा दिए थे कि साफ-वाफ करने की जरूरत नहीं। फिर वह बूढ़ा मरा। उसके मरने के वक्त उसके बेटे ने देखा कि उसका छोटा लड़का, वे लकड़ी के बरतन जो बूढ़े के लिए बनवाए थे, वह साफ करके सम्हाल कर एक पेटी में रख रहा है। उसने उससे पूछा, तू यह किसलिए रख रहा है? उसने कहा, आपके बुढ़ापे के लिए। जो उसने देखा था... सोचा कि आप भी बूढ़े होंगे, फिर से बनवाना पड़ेंगे, तो मैं सम्हाल कर रखे देता हूं। जरूरत तो पड़ेगी। यही रहा आपका कमरा।

तुम्हारा उपयोग आर्थिक है, हम कहें कुछ। प्रेम के संबंध तो कभी-कभार होते हैं, बड़ी मुश्किल से होते हैं। नाते तो सब झूठे हैं; प्रेम के नहीं हैं, अर्थ के हैं।
स्वभाव ने कल मुझे एक पत्र लिखा। स्वभाव को मैंने काम दिया था। मेरे पिता बीमार थे, पांच सप्ताह से अस्पताल में थे। तो स्वभाव को मैंने जिम्मेवारी दी थी कि उनकी सेवा करे। यह स्वभाव के लिए एक मौका था, एक अवसर था विकास का। और स्वभाव ने उसका पूरा लाभ लिया, जितना लिया जा सकता था। कल स्वभाव ने मुझे लिखा कि मैंने पहली बार, पिता का अनुभव कैसा होता है, यह अनुभव किया। पिता का प्रेम कैसा होता है, यह अनुभव किया। और मैंने पहली बार शैलेंद्र और अमित की श्रद्धा और सेवा अनुभव की। और मैंने पहली बार पति-पत्नी के बीच कैसी प्रगाढ़ता का नाता हो सकता है, यह अनुभव किया। स्वभाव को रखा ही मैंने इसलिए था कि कुछ स्वभाव को बचपन में मां-बाप
का प्रेम नहीं मिल सका; एक कमी थी जो अटकी थी। वह अटक गई। स्वभाव की आखिरी अटक टूट गई। स्वभाव, दूसरा ही व्यक्ति जैसे जन्मा। एक नया जन्म हो गया। पर प्रेम के नाते तो इस दुनिया में बहुत कम हैं। इस दुनिया में नाते
तो अर्थ के हैं, पैसे के हैं। बाप से भी उतनी देर तक नाता है जितनी देर तक पैसे का नाता है, जितनी देर तक उससे कुछ मिलता है। जैसे ही मिलना बंद होता है, नाते शिथिल हो जाने लगते हैं। पर कभी-कभार इस पृथ्वी पर भी प्रेम उतरता है। ऐसे ही एक प्रेम का अनुभव स्वभाव को हुआ। और प्रेम का अनुभव परमात्मा का प्रमाण है। कहीं भी प्रेम की झलक मिल जाए तो निश्चित हो जाता है कि परमात्मा है। परमात्मा के लिए और कोई तर्क काम नहीं देते, सिर्फ प्रेम ही काम देता है।
स्वभाव--मौलिक रूप से नास्तिक। जब पहली-पहली बार स्वभाव मेरे पास आया था, वर्षों पहले, तो शुद्ध नास्तिक। जो पहला प्रश्न स्वभाव ने मुझसे पूछा था, वह यही था--कि ईश्वर है, इसका आप कोई प्रमाण दे सकते हैं? स्वभाव शायद अब भूल भी गया होगा कि उसने यह पहला प्रश्न मुझसे पूछा था। इसके लिए मैं बहुत प्रमाण स्वभाव को देता रहा हूं। यह आखिरी प्रमाण था। अब स्वभाव नहीं पूछ सकता--कि ईश्वर है? क्योंकि स्वभाव ने मेरे पिता के पास रह कर प्रेम को पहचाना। और स्वभाव ने मेरे पिता को अंधेरे से रोशनी की तरफ उठते हुए देखा। बुद्धत्व का कैसे आविर्भाव होता है, इसका साक्षात्कार किया। यह साक्षात्कार उसके लिए सीढ़ी बन जाएगा। यह उसके बुद्धत्व के लिए अनिवार्य था, यह जरूरी था। और मैं खुश हूं कि स्वभाव ने समग्रता से, सौ प्रतिशत, रत्ती भर भी कमी नहीं की।
जहां कहीं भी प्रेम का प्रमाण मिल जाएगा वहीं परमात्मा का प्रमाण मिल जाता है। मगर प्रेम के प्रमाण इस दुनिया से उजड़ गए हैं। इस दुनिया के सब नाते-रिश्ते बस कामचलाऊ हैं।
सुत दारा गरियावन लागे, यह बुढ़वा मरि जाई।
तीरथ बर्त एकौ न कीन्हा, नहीं साधु की सेवा।
अब ये किस तीर्थ-व्रत की बात कर रहे हैं पलटू? क्योंकि शुरू में तो उन्होंने कहाः
पूरन ब्रह्म रहै घट में, सठ, तीरथ कानन खोजन जाई।
पहले सूत्र में कहा कि तू कहां जा रहा है? वह तो भीतर है और तू तीर्थ में खोजने जा रहा है? और अब इस सूत्र में कहते हैं, तो तुम्हें विरोधाभास लगेगा।
इस सूत्र में कहते हैंः तीरथ बर्त एकौ न कीन्हा, नहीं साधु की सेवा।
अब यह दूसरी बात है। यह उसी तीर्थ की बात नहीं है। उस साधारण तीर्थ का
तो खंडन उन्होंने पहले सूत्र में कर दिया। अब इस दूसरे तीर्थ का संबंध काशी, कैलाश और काबा से नहीं है। इस दूसरे तीर्थ का संबंध है--किसी ऐसे व्यक्ति के पास होना जहां बुद्धत्व घटा हो, जहां दीया जला हो।
मैंने सुना है, बायजीद हज की यात्रा को गया। फकीर था, गरीब आदमी, बामुश्किल पैसे इकट्ठे कर पाया। और गांव के बाहर ही निकला था, गांव के लोग विदा करके गए थे। हज का यात्री, उसको गांव के लोगों ने बड़े सम्मान से विदा दी थी। और पुराने दिनों की यात्रा; तीर्थयात्रा से कोई लौट भी पाएगा या नहीं, यह भी संदिग्ध था। जंगल, जंगली जानवर, चोर, लुटेरे, हत्यारे--और इनसे

किसी तरह बच जाओ तो फिर पंडित-पुरोहित, बच कर लौटने की कोई बहुत उम्मीद नहीं थी। इसलिए लोग अंतिम विदा दे देते थे। आ गए तो सौभाग्य, नहीं आए तो मान ही लिया था कि आखिरी विदा हो गई। गांव के बाहर निकला ही था, लोग विदा करके गए ही थे कि एक वृक्ष के नीचे एक बड़े अलमस्त फकीर को बैठे देखा, तो झुक कर प्रणाम किया।
उस फकीर ने कहा, कहां जाते हो?
कहा, हज यात्रा को जा रहा हूं।
कितने पैसे हैं तुम्हारे पास?
तीस दीनार।
उन दिनों तीस सोने के सिक्के बहुत थे। उस फकीर ने कहा, निकाल पैसे! मैं हूं हज, मैं हूं काबा! पैसे निकाल!
उस व्यक्ति का बल ऐसा था! उसकी रोशनी ऐसी थी! उसके व्यक्तित्व की आभा ऐसी थी! उसका आभामंडल ऐसा था कि बायजीद ने जल्दी से जिंदगी भर की कमाई निकाल कर उस फकीर को दे दी। और उस फकीर ने कहा कि मेरे तीन चक्कर लगा और अपने घर वापस जा। काबा हो गया। तू हाजी हो गया।
और बायजीद ने तीन चक्कर लगाए, नमस्कार किया और वापस लौट गया। गांव के लोगों ने कहा, बड़े जल्दी आ गए? उसने कहा, मैं क्या करूं, काबा खुद गांव के बाहर मेरी प्रतीक्षा करता मिला! और बायजीद के जीवन में क्रांति हो गई--इस आदमी के इतने से संस्पर्श से! ये तीन चक्कर, जैसे सब चक्करों से मुक्त हो गया बायजीद!
बायजीद सूफियों में परम फकीर हो गया। और उसने कुल इतना धर्म किया था--
एक फकीर के तीन चक्कर लगाए थे। मगर बड़ी श्रद्धा से लगाए होंगे। जब उसने कहा--निकाल तीस दीनार! तो एक क्षण भी झिझका नहीं। झिझक जाता तो चूक जाता। जल्दी से निकाल कर दे दिए। जब उसने कहा कि मैं हूं काबा, लगा तीन चक्कर! तो सवाल नहीं उठाया कि तुम और काबा? तुम आदमी हो, काबा पत्थर है! जब उस आदमी ने कहा कि बस मेरे तीन चक्कर लगा लिए, काम पूरा हो गया। तो बायजीद घर लौट गया। ऐसी श्रद्धा, ऐसी आस्था नहीं क्रांति लाएगी तो क्या होगा? क्रांति घट गई। बायजीद और होकर लौटा। फिर तो जिंदगी में बहुत बार और लोगों को बायजीद ने सहायता दी। जब भी कोई हज जाता होता, कहता, कहां जाते हो? मैं तो मौजूद हूं, मेरे चक्कर लगा लो!
यह जो अब पलटू कह रहे हैं, "तीरथ बर्त एकौ न कीन्हा", इसका अर्थ है कि नहीं किसी बुद्ध की सत्संगति की। "नहीं साधु की सेवा।" नहीं किसी जले हुए दीये के चरणों में झुके।
तीनिउ पन धोखे ही बीते, नहिं ऐसे मूरख देवा।
बचपन, जवानी, बुढ़ापा, सब व्यर्थ चले गए धोखे में। ऐसे कहीं दिव्यता मिली है? ऐसे कहीं भगवत्ता मिली है?
पकरी आई काल ने चोटी, सिर धुनि-धुनि पछिताता।
पलटूदास कोऊ नहिं संगी, जम के हाथ बिकाता।।
और अब क्या हो? अब पछताए होत का, जब चिड़िया चुग गई खेत!
पकरी आई काल ने चोटी, सिर धुनि-धुनि पछिताता।
अब पछताओ सिर धुन-धुन कर, लेकिन अब मौत ने चोटी पकड़ ली है।
पलटूदास कोऊ नहिं संगी, जम के हाथ बिकाता।।
अब कोई न संगी है, न कोई साथी है। अब ले चली मौत। कहां हैं मित्र अब? कहां हैं प्रियजन? सब छूट गए पीछे।
मृत्यु के पहले आत्म-साक्षात्कार न हो जाए तो जीवन व्यर्थ गया।
मैं चिंतित था अपने पिता के लिए, वैसे ही जैसे तुम्हारे लिए चिंतित हूं। इसलिए नहीं कि वे मेरे पिता थे। इसलिए कि कोई भी सोता हुआ पाता हूं तो चिंतित होता हूं। चिंतित था कि हो पाएगा यह कि नहीं हो पाएगा? वे जग पाएंगे मृत्यु के पहले या नहीं जग पाएंगे?
चेष्टा वे कर रहे थे, अथक चेष्टा कर रहे थे! पिछले दस वर्षों से सुबह तीन बजे उठ आते थे--नियमित। बीमार हों, स्वस्थ हों, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता था। घर के लोग डर जाते थे, मेरी मां डर जाती थी। क्योंकि वे तीन बजे से ध्यान करने बैठ जाते, और कभी छह बज जाते, कभी सात बज जाते, कभी आठ, और उठते ही नहीं ध्यान से! तो स्वभावतः मेरी मां को डर लगता, वह जाकर देख भी आती कि

सांस चल रही है कि नहीं! क्योंकि पांच घंटे एक ही आसन में बैठे हैं, न हिलते, न डुलते। कभी-कभी तो यहां वे सुबह का प्रवचन चूक जाते थे, क्योंकि वे तीन बजे जो बैठे तो आठ बज गए, नौ बज गए। मेरी मां उनको हिलाकर-डुलाकर ध्यान से वापस लाती कि अब प्रवचन का समय हुआ। तो उन्होंने मुझसे शिकायत भी की कि समझाओ अपनी मां को, कि मुझे बीच ध्यान में न उठाया जाए। बहुत धक्का लग जाता है, बहुत गहराई से उतरना पड़ता है।
अथक चेष्टा कर रहे थे!
डरता था मैं, क्योंकि उनकी देह क्षीण होती जा रही थी; हो पाएगी यह अपूर्व घटना मृत्यु के पहले या नहीं? बीमारी ऐसी थी कि कठिन थी। खून के थक्के शरीर में जमने शुरू हो गए थे। तो जहां भी खून का थक्का जम जाए वहीं खून की गति बंद हो जाए। मस्तिष्क में जम गया एक थक्का, तो एक मस्तिष्क का अंग काम करना बंद कर दिया। एक हाथ उससे जो जुड़ा था वह हाथ बेकाम हो गया। उससे जो पैर जुड़ा था वह पैर बेकाम हो गया। उस पैर में भी खून का थक्का जम गया। सर्जनों ने सलाह दी कि पैर काट दिया जाए, और कोई उपाय नहीं है; क्योंकि यह पैर सड़ जाएगा तो इसकी सड़ान पूरे शरीर में पहुंच जाएगी, फिर बचाना मुश्किल है। मैंने उनसे पूछा कि पैर तो तुम काटोगे, लेकिन बचने की उम्मीद कितनी है? नहीं कि मेरी कोई बहुत इच्छा है कि वे लंबे जीएं। लंबे जीने से क्या होता है?
उन्होंने कहा, बचने की उम्मीद तो केवल पांच प्रतिशत है, पंचानबे प्रतिशत तो पैर के काटने में ही समाप्त हो जाने का डर है। क्योंकि क्लोरोफार्म को वे सह सकेंगे, इतनी सबल उनकी देह नहीं है। और इतना बड़ा ऑपरेशन, तो क्लोरोफार्म तो देना ही पड़ेगा। क्लोरोफार्म देने में ही संभावना है कि उनकी हृदय की गति बंद हो जाएगी।
तो मैंने कहा, फिर रुको। ऑपरेशन की कोई फिक्र न करो। लंबा जिंदाने की मुझे कोई इच्छा नहीं है। मेरी इच्छा कुछ और है। दस-बीस दिन, जितने दिन भी वे जिंदा रह जाएं, आखिरी चेष्टा उन्हें कर लेने दो--अपने भीतर पहुंचने की। और मैं अत्यंत आनंदित हूं कि मरने के कुछ ही घंटे पहले उन्होंने यात्रा पूरी कर ली। आठ तारीख की संध्या शरीर छूटा, लेकिन आठ तारीख की सुबह तीन और पांच के बीच, चार बजे के करीब उनका बुझा दीया जल गया। उस सांझ मैं उन्हें देखने गया था, देख कर मैं निश्चिंत हुआ। नहीं कि वे जीएंगे; जीने का तो कोई बहुत अर्थ भी नहीं है। लेकिन आनंदित मैं लौटा, क्योंकि जो होना था वह हो गया; अब उन्हें दोबारा न आना पड़ेगा। वे जान कर गए, पहचान कर गए, आनंदित गए। अब उनका कोई पुनरागमन नहीं है। और आवागमन से छूट जाना ही इस जीवन की शिक्षा है। इस जीवन में वही सफल है जो आवागमन से छूट गया है।
वे अकेले नहीं गए। अब परमात्मा उनके साथ है। मौत उनके लिए मौत नहीं बनी, परमात्मा का द्वार बनी। मौत उनके लिए समाधि बनी। इसलिए मैंने अपने संन्यासियों को कहाः नाचो, गाओ, उत्सव मनाओ! और इस संकल्प से भरो कि तुम भी जाने के पहले जाग कर ही जाओगे, सोए-सोए नहीं। जाग कर जो मरता है, मरता ही नहीं। क्योंकि जाग कर वह देखता रहता है--शरीर छूट रहा है।
उन्होंने मुझसे यही कहा! पहली दफा उन्होंने मुझे बुलाया, सिर्फ यह कहने कि क्या हुआ है! क्योंकि जो हुआ था वह इतना अपरिचित था, अनजाना था। क्या हुआ है! आज सुबह--उन्होंने कहा--इतनी दूर चला गया मैं शरीर से कि मुझे लगा कि शरीर तो है ही नहीं। मैं कहीं और, और शरीर इतने दूर छूट गया है कि मुझे उसका पता भी नहीं चलता। और दर्द था शरीर में, बहुत जगह तकलीफ थी, इसलिए शरीर का पता न चले, बहुत मुश्किल बात थी। मगर यह साक्षी-भाव के जन्म में स्वाभाविक है।
ऐसे विदा होना कि जागे हुए जाओ। मृत्यु छीने शरीर, उसके पहले तुम्हारा जागरण इतना सघन हो कि तुम खुद ही शरीर से दूर हो जाओ।
उन्होंने मुझे दो बजे खबर भेजी कि मैं आ जाऊं, शायद यह मेरा आखिरी दिन है।
ध्यान की गहराई में यह उन्हें साफ हो गया होगा, समाधि की अवस्था में
यह प्रत्यक्ष हो गया होगा कि अब इस शरीर में टिके रहना असंभव है; इससे संबंध टूट गए, इससे नाते अलग हो गए।

और तीन बजे फिर मुझे खबर भेजी कि नाहक आने का कष्ट मत उठाना, कोई आने
की जरूरत नहीं है।
इससे मैं और भी खुश हुआ। तुम हैरान होओगे--क्यों? क्योंकि मेरे प्रति उनका जो आखिरी लगाव था वह भी छूट गया। उतनी सी बाधा अटकन बन सकती थी। उनका बहुत लगाव था। लगाव उनका ऐसा था जिसको तौला नहीं जा सकता। क्योंकि कभी ऐसा हुआ है कि कोई पिता अपने बेटे का शिष्य हुआ हो। लगाव उनका ऐसा था, ऐसा परिपूर्ण था!
मैं गया देखने, क्योंकि यह अपूर्व घटना थी, कि मुझे भी लग रहा था कि जाने की घड़ी है करीब अब और अब उनकी खबर आना कि आने की कोई जरूरत नहीं, नाहक कष्ट मत करना, मैं बिल्कुल ठीक हूं--सिर्फ इस बात की सूचना थी कि वह जो आखिरी संबंध, वह जो आखिरी लगाव का पतला सा धागा होगा, वह भी समाप्त हो गया। गया मैं और देख कर प्रसन्न लौटा कि वे बिल्कुल और अवस्था में थे। वे वही नहीं थे जैसे चार-पांच सप्ताह पहले अस्पताल गए थे, तब थे।
ऐसा अक्सर हो जाता है कि अगर शरीर बहुत कमजोर हो तो समाधि की घटना को झेल नहीं पाता। क्योंकि समाधि की घटना बड़ी घटना है! जैसे बूंद में सागर उतर आए, कि जैसे छोटे से दीये में खुद सूरज उतर आए! यह घटना इतनी बड़ी है और देह उनकी इतनी जराजीर्ण हो गई थी कि इस घटना को वे सह नहीं सके। यह आनंद इतना बड़ा था कि सम्हाल न सके।
स्वभाव बहुत चिंतित है--कि कहीं हमसे कोई भूल तो नहीं हो गई? स्वभाव
ने ठीक उनके विदा होने के थोड़े ही क्षण पहले उन्हें कुछ पीने को दिया होगा। अब उसका प्राण जल रहा है कि कहीं मैंने जो पीने को उन्हें दिया उसमें तो कुछ भूल नहीं हो गई? देना था, नहीं देना था?
नहीं स्वभाव, चिंता नहीं लेना। तुम्हारे पीने-पिलाने, कुछ लेने-देने
से कुछ फर्क नहीं पड़ने वाला था। वह जो सुबह घटना घटी थी, इतनी बड़ी थी, इतनी जीर्ण-जर्जर देह में वह नहीं सम्हाली जा सकती। उसे तो पिंजड़ा छोटा पड़ गया, पक्षी बड़ा हो गया। पक्षी को उड़ना ही होगा, पिंजड़े को छोड़ना ही होगा। अंडा एक दिन टूट जाता है जब पक्षी बड़ा हो जाता है। जब मां के गर्भ में बच्चा परिपक्व हो जाता है तो गर्भ से बाहर हो जाता है। यह मृत्यु नहीं, यह महाजीवन का प्रारंभ था। इसलिए स्वभाव, मन में कोई पीड़ा न लेना। किसी भूल-चूक के कारण जरा भी कुछ नहीं हुआ है।
पाती आई मोरे पीतम की, साईं तुरत बुलायो हो।
इक अंधियारी कोठरी, दूजे दिया न बाती।
पलटू कहते हैं कि ऐसे मत मरना कि परमात्मा की तो पाती आए, तुरत बुलावा
आए और तुम्हारे घर में अंधियारी कोठरी हो, न दीया हो, न बाती हो; न ध्यान, न समाधि--और उस प्यारे की पुकार आ जाए!
बांह पकरि जम ले चले, कोई संग न साथी।
जो साक्षी है उसको मृत्यु को पकड़ कर ले जाना नहीं पड़ता। जो साक्षी है उसके तो अपने पंख होते हैं; वह तो अपने पंखों से उड़ कर जाता है। जो साक्षी नहीं है उसे मृत्यु के दूत पकड़ कर ले जाते हैं। ये तो प्रतीक हैं। उसे खींचा जाता है जबरदस्ती, क्योंकि वह शरीर को पकड़ता है। जो साक्षी नहीं है वह शरीर को जोर से पकड़ता है, छोड़ना नहीं चाहता। इसलिए मौत उसे छीनती है, जबरदस्ती छीनती है। जो साक्षी है वह तो तत्पर खड़ा हो जाता है। मौत आए, इसके पहले उड़ने के लिए पंख फैला देता है। लेकिन ध्यान रखना, ऐसा न हो कि तुम्हें कहना पड़े--
इक अंधियारी कोठरी, दूजे दिया न बाती।
सावन की अंधियारिया, भादौं निज राती।
भादों की रात, सावन की अंधियारी!
चौमुख पवन झकोरही, धरकै मोरी छाती।
और मैं डरता हूं। मैं इस अनंत यात्रा पर जाने से डरता हूं--सावन की अंधेरी, भादों की रात! न दीया है, न बाती। बोध नहीं, होश नहीं। कहां चला जा रहा हूं, किस यात्रा पर निकला हूं, सब प्रियजन पीछे छूट गए, अपना कोई नहीं, सगा नहीं, संगी नहीं।
चौमुख पवन झकोरही, धरकै मोरी छाती।
और मेरे प्राण कंप रहे हैं, चारों तरफ भयंकर पवन है!

चलना तौ हमैं जरूर है, रहना यहं नाहीं।
यह तो हमें मालूम था। यह तो हमें मालूम है कि चलना तो है, रहना यहां नहीं है।
चलना तौ हमैं जरूर है, रहना यहं नाहीं।
का लैके मिलब हजूर से, गांठी कछु नाहीं।।
लेकिन आज पीड़ा हो रही है कि अब प्रभु के सामने खड़े होना होगा, कुछ भेंट करने को भी पास नहीं, गांठ में कुछ भी नहीं। न दीया, न बाती। खाली हाथ उसके सामने झुकना होगा! एक फूल भी न ला सके चेतना का! एक कमल भी न खिला सके चेतना का! साक्षी-भाव भी न ला सके कि चढ़ा देते उसको चरणों में कि जीवन में तूने भेजा था तो यह हम सिखावन ले आए।
का लैके मिलब हजूर से, गांठी कछु नाहीं।
पलटूदास जग आइके, नैनन भरि रोया।
जीवन जनम गंवाय के, आपै से खोया।।
अब तो सिर्फ रोना ही रोना मालूम होगा, आंखों में आंसू ही आंसू। जीवन व्यर्थ गया, जन्म व्यर्थ गया। और अपने से खोया! पीड़ा और भी सघन। किसी ने लूटा नहीं, किसी ने चुराया नहीं--अपने से खोया!
कै दिन का तोरा जियना रे, नर चेतु गंवार।
पागलो, नासमझो, जागो! कितने दिन का जीना है?
काची माटि कै घैला हो, फूटत नाहिं देर।
कच्ची मिट्टी के घड़े हो, फूटते देर न लगेगी। पके भी नहीं हो। पकता तो वही है जिसके भीतर समाधि की अग्नि पैदा होती है।
काची माटि कै घैला हो, फूटत नाहिं देर।
जरा सा पानी पड़ेगा और बह जाओगे, टुकड़े-टुकड़े हो जाओगे।
पानी बीच बतासा हो, लागै गलत न देर।
पानी में बताशा डाल दो, क्षण भर लगता है--है, यह रहा, यह रहा, यह गया! आने और जाने में देर नहीं लगती।
धूआं को धौरेहर हो, बारू के भीत।
जैसे धुएं का शुभ्र बादल या जैसे रेत की बनाई गई दीवार।
पवन लगे झरि जैहे हो, तृन ऊपर सीत।
और जैसे सुबह घास की पत्तियों पर जमी हुई ओस की बूंद; जरा सा पवन का झोंका आएगा और झर जाओगे। प्यारे प्रतीक! सीधे-साफ प्रतीक!
जस कागद कै कलई हो, पाका फल डार।
जैसे कागज पर कलई कर दी हो और लगे कि सोना है, या चांदी है। मगर कागज कागज है। या जैसे कोई कागज की नाव में बैठ कर और सागर पार करने चले। या जैसे पका हुआ फल वृक्ष की डाल पर--अभी है, अभी झर गया। ऐसा जीवन है।
सपने कै सुख संपत्ति हो, ऐसो संसार।
यह सारा स्वप्नवत है संसार। नाते-रिश्ते, सुख-समृद्धि, यश-प्रतिष्ठा, सत्कार-सम्मान, सब सपना है। मौत आती है, सब टूट जाता है।
सपने की परिभाषा समझ लेना और सत्य की भी। ज्ञानियों ने सपना उसे कहा है, जो अभी है और अभी न हो--जो क्षण भर हो वह सपना। और सत्य उसे कहा है जो शाश्वत है--जो अभी है, पहले भी था, पीछे भी होगा। जो तुम्हारे जन्म के पहले भी था और तुम्हारी मौत के बाद भी होगा, उसे पहचान लो तो तुम्हारा सत्य से संबंध जुड़ा। और जो जन्म में हुआ और मृत्यु में खो जाएगा, बस तुमने बताशे से पहचान की। तुमने फिर कागज की नाव बनाई। फिर तुमने यह भरोसा कर लिया कि सुबह की रोशनी में सूरज की किरणों में चमकती हुई ओस की बूंद सदा रहने वाली है। और फिर जरा सा हवा का झोंका आया, कि एक तितली उड़ गई, कि हिल गई पत्ती, और ओस की बूंद सरक गई।
घने बांस का पिंजरा हो, तेहि बिच दस हो द्वार।
जैसे बांस का पिंजरा बनाया हो, ऐसी यह देह है। इसलिए हम अपने देश में
जब अरथी ले जाते हैं तो बांस पर ले जाते हैं, बांस की अरथी बनाते हैं।
सिर्फ सूचक। ऊपर भी बांस, नीचे भी बांस। है भी क्या हड्डी-मांस-मज्जा में? प्राण का पखेरू उड़ गया कि बांस ही बांस है!
घने बांस का पिंजरा हो, तेहि बिच दस हो द्वार।
इंद्रियों के दस द्वार हैं और घने बांस का पिंजरा है। ऐसी यह देह है।

पंछी पवन बसेरू हो, लावै उड़त न बार।
और जो पंछी तुम्हारे भीतर बसा है वह तुम्हारी श्वास का पंछी है, पवन का। कब उड़ जाए, किस क्षण उड़ जाए! लावै उड़त न बार!
आतसबाजी यह तन हो, हाथे काल के आग।
आज नहीं कल यह तुम्हारा शरीर आतिशबाजी की तरह चिता पर चढ़ा दिया जाएगा।
एक झेन फकीर मरा। मरने के पहले उसने अपने शिष्यों से कहा, एक काम करो,
एक वायदा करो। जब मैं मर जाऊं तो मेरे कपड़े मत उतारना। मैं जैसा मरूं वैसा ही मुझे चिता पर चढ़ा देना।
नियम था परंपरागत कि कपड़े उतारे जाएं, स्नान कराया जाए, फिर नये कपड़े पहनाए जाएं, फिर चिता पर ले जाया जाए। लेकिन उस फकीर ने कहा कि मत फिक्र करना नये कपड़े पहनाने की और मत फिक्र करना स्नान की। मेरे ऊपर धूल है ही नहीं, इसलिए धोने को कुछ भी नहीं है। और कपड़े तो कपड़े हैं, सब राख हो जाएंगे क्षण भर में। नये-पुराने की चिंता मत करना। और मैं परमात्मा में नहा लिया हूं, इसलिए अब और कोई नहलाने की फिक्र मत करना। और फिर जब पंछी उड़ ही गया तो किसको नहला रहे हो! इसलिए वायदा करो कि मुझे, जैसा मैं मरूं वैसा ही मुझे चिता पर चढ़ा दोगे।
गुरु ने कहा तो शिष्यों ने वायदा किया। रोते-रोते वायदा किया। फिर जब वायदा किया था तो पूरा भी करना पड़ा। और जब गुरु की लाश चिता पर चढ़ाई गई, तब उन्हें पता चला कि गुरु का राज क्या था। उसने अपने कपड़ों के भीतर फुलझड़ियां-फटाके छिपा रखे थे। जैसे ही चिता पर उसकी लाश चढ़ी, फुलझड़ियां फूटने लगीं, फटाके फूटने लगे। आतिशबाजी शुरू हो गई। यही वह जिंदगी भर लोगों को समझा रहा था कि यह शरीर कुछ है नहीं, बस एक आतिशबाजी है। इसे वह अंततः भी कह गया, मर कर भी कह गया, मरने के बाद भी कह गया। मरते-मरते भी अपनी बात दोहरा गया, आखिरी छाप छोड़ गया।
आतसबाजी यह तन हो, हाथे काल के आग।
पलटूदास उड़ि जैवहु हो, जब देइहि दाग।।
उड़ना तो पड़ेगा ही। यह देह तो दाग दी जाएगी। उड़ने के पहले क्यों नहीं उड़ते? उड़ने के पहले क्यों नहीं पंख फैलाते? उड़ने के पहले क्यों पहचान नहीं करते पंछी की? क्यों इस पिंजड़े से अपने को एक मान कर बैठे हो? तोड़ो यह तादात्म्य। छोड़ो यह नाता। देह में रहो, मगर जानो कि देह नहीं हो। मन में रहो, मगर पहचानो कि मन नहीं हो। जिस दिन तुम जान लोगे, न मैं देह हूं न मन, उसी दिन तुम जान लोगे कि कौन हो। अभी तो तुमसे कोई पूछे कौन हो, तो क्या कहोगे? नाम बता देते हो--राम, हरि। नाम तुम हो? नाम लेकर आए थे? अनाम आए थे, अनाम जाओगे। और कोई अगर ज्यादा जिद करे तो मुश्किल हो जाती है।

मुझे काम है
सरल भाषा बोलना

सरल भाषा बोलना
बहुत कठिन काम है

जैसे कोई पूछे
ठीक-ठीक बोलो
तुम्हारा क्या नाम है

और वह बिना डरे बोल जाए
तो इनाम है।

कोई पूछे तुमसे एकदम से, पकड़ ले गर्दन कि ठीक-ठीक बोलो, तुम्हारा क्या नाम है? तुम कहे जा रहे हो कि मेरा यह नाम, मेरा वह नाम। और वह कहे, ठीक-ठीक बोलो, तुम्हारा क्या नाम है?
और वह बिना डरे बोल जाए
तो इनाम है।

डर तो जाएगा, क्षण भर को झिझक तो जाएगा, क्योंकि नाम तो कोई भी तुम्हारा नहीं है। और पहचान तो तुम्हें है ही नहीं अपनी; दूसरों ने जो जता दिया, जो लेबल लगा दिया, वही पहचान लिया कि हिंदू हूं, कि ब्राह्मण हूं, कि मुसलमान हूं; कि यह मेरा नाम, कि अब्दुल्ला, कि राम, कि इमरसन; कि यह मेरी जाति, यह मेरा गोत्र, यह मेरा परिवार, यह मेरा देश। सब सिखावन बाहर से आई हुई है। अपना साक्षात्कार कब करोगे?
टालो मत! यही क्षण हो सकता है, अभी हो सकता है। नेति-नेति की कला सीखो।
न मैं मन हूं--नेति; न मैं तन हूं--नेति। न यह, न वह। फिर मैं कौन हूं? फिर एक गहन बवंडर की तरह प्रश्न उठेगा--मैं कौन हूं? सारे तादात्म्यों को तोड़ते जाना। जो-जो उत्तर मन दे, इनकार करते जाना कि यह मैं नहीं हूं। और तब अंततः बच रह जाता है साक्षी-भाव--एक दर्पण की तरह निर्मल, साक्षी--जिसमें सब झलकता है। लेकिन जो भी उसमें झलकता है, दर्पण वही नहीं है। दर्पण तो झलकाने वाला है। दर्पण झलक नहीं है; झलकाता सब है और झलक के साथ उसका कोई तादात्म्य नहीं है। ऐसा तुम्हारा साक्षी-भाव है।
और साक्षी ही तुम्हारे भीतर पंछी है। उसे पहचान लिया तो फिर देह में रहो, संसार में रहो, तो भी तुम संसार के बाहर हो। फिर देह में रह कर भी देह के बाहर हो। तब तुम्हारे जीवन में एक प्रकाश होगा और तुम्हारे जीवन में एक उल्लास होगा, क्योंकि तुम्हें अमृत का अनुभव होगा। फिर भय कहां! फिर दुख कहां! फिर पीड़ा कहां, संताप कहां!
जिसने स्वयं को जाना उसने सब जाना। जो स्वयं से चूका वह सबसे चूका। और जिसने स्वयं को जाना उसने परमात्मा को जाना। क्योंकि स्वयं की ही गहराइयों में उतरते-उतरते तुम परमात्मा का अनुभव कर लोगे। और एक बार अपने भीतर परमात्मा दिख जाए तो फिर सब तरफ उसी का विस्तार है। फिर तिल भर जगह नहीं है जो उससे खाली है।
आज इतना ही।

काहे होत अधीर
दूसरा प्रवचन

अमृत में प्रवेश

पहला प्रश्नः ओशो! कोई तीस वर्ष पूर्व, जबलपुर में, किसी पंडित के मोक्ष आदि विषयों पर विवाद करने पर दद्दाजी ने कहा था कि शास्त्र और सिद्धांत की आप जानें, मैं तो अपनी जानता हूं कि यह मेरा अंतिम जन्म है। एक और अवसर पर कार्यवश वे काशी गए थे। किसी मुनि के सत्संग में पहुंचे। दद्दाजी को अजनबी पा प्रवचन के बाद मुनि ने पूछा, आज से पूर्व आपको यहां नहीं देखा! कहा, हां, मैं यहां का नहीं हूं। पूछा, आप कहां से आए हैं और यहां से कहां जाएंगे? कहा, निगोद से आया हूं और मोक्ष जाऊंगा। पांच वर्ष पूर्व हृदय का दौरा पड़ने पर, मां को चिंतित पाकर उन्होंने कहा था, चिंता न लो। अभी पांच वर्ष मेरा जीवन शेष है।
ओशो, उनकी इन उद्घोषणाओं के रहस्य पर प्रकाश डालने की अनुकंपा करें।

योग भक्ति! हम सभी यहां अजनबी हैं। यहां घर किसी का भी नहीं है। सराय में टिके हैं। लेकिन काफी देर से टिके हैं, इससे भ्रांति होती है कि जैसे सराय हमारा घर है।
संसार सराय है, घर नहीं। हमारा आना किसी और लोक से है। और हमें जाना भी किसी और लोक है। जो इतना स्मरण रख सके, वह सराय में भी रहे तो भी सराय उसे छूती नहीं है। वह जल में कमलवत हो जाता है। और जल में कमलवत हो जाना ही संन्यास है। संसार छोड़ कर भागते हैं नासमझ; संसार के साथ तादात्म्य कर लेते हैं नासमझ। समझदार न तो तादात्म्य करता है, न भागता है। जाग कर इतना ही जानता है कि यह हमारा घर नहीं है। रात भर का बसेरा है, रैन-बसेरा; सुबह हुई, उड़ जाएंगे। ऐसी प्रतीति सतत बनी रहे, ऐसा भाव सघन होता रहे, तो समाधि दूर नहीं है, तो मोक्ष दूर नहीं है, तो परमात्मा दूर नहीं है।
उन्होंने ठीक ही कहा था पूछे जाने पर मुनि के द्वारा कि मैं यहां का नहीं हूं। सीधे-सादे शब्द हैं। दोहरा अर्थ हो सकता है। पहला अर्थ ही मुनि ने पकड़ा होगा, क्योंकि दूसरा अर्थ पकड़ सकते तो मुनि ही न होते। दूसरा अर्थ पकड़ सकते तो मुनि होने की कोई जरूरत न थी। सोचा होगा इस गांव के नहीं हैं। इसलिए पुनः पूछा कि कहां से आए हैं और कहां जाएंगे? अन्यथा पूछने की जरूरत न थी। पहले उत्तर में बात हो गई थी।
जैन दर्शन की भाषा में निगोद है वह अंधकारपूर्ण रात्रि जिससे हम आ रहे हैं और मोक्ष है वह प्रकाशोज्ज्वल प्रभात जिसकी ओर हम जा रहे हैं। जैसे उपनिषद के ऋषियों ने प्रार्थना की हैः तमसो मा ज्योतिर्गमय! जिसे उन्होंने तमस कहा है उसे ही महावीर ने निगोद कहा है। और जिसे उन्होंने ज्योति कहा है, ज्योतिर्मय कहा है, उसे ही महावीर ने मोक्ष कहा है, परम मुक्ति कहा है।
प्रकाश मोक्ष है, अंधकार बंधन है। अंधकार इसलिए बंधन है कि अंधकार में अहंकार निर्मित होता है। अंधकार बंधन है, क्योंकि अंधकार में हम जो भी करते हैं गलत होता है। चाहते हैं दरवाजा मिले, दीवाल मिलती है। राह खोजते हैं, टकराते हैं। जिनको प्रेम भी देना चाहते हैं उनसे भी कलह ही होती है, प्रेम कहां! पुण्य करने जाते हैं, पाप होता है।
देखते हो, कोई पुण्य के लिए मंदिर बनाता है तो भी मंदिर पर तख्ती लगा देता है अपने नाम की! वह मंदिर परमात्मा का नहीं रह जाता। वह मंदिर उसके ही अहंकार का आभूषण हो जाता है। तुम्हें देश के कोने-कोने में बिरला मंदिर मिलेंगे। वे कृष्ण के मंदिर नहीं, राम के मंदिर नहीं--बिरला के मंदिर हैं। बिरला मंदिर का क्या अर्थ होता है? मंदिर राम का हो, कृष्ण का हो, अल्लाह का हो, ठीक है। लेकिन मंदिर उसका नहीं है जो भीतर विराजमान है; मंदिर उसका है जिसके नाम का पत्थर लगा है! करने गए थे पुण्य, हो गया पाप; क्योंकि अंधकार में हम जो भी करेंगे उसमें भ्रांति सुनिश्चित है।
महावीर से किसी ने पूछा है, मुनि कौन है? तो महावीर ने कहा, असुत्ता मुनि। जिसकी नींद टूट गई है, जो अब सो नहीं रहा है, जो होश में आ गया है वह

मुनि। असुत्ता मुनि! इससे प्यारा सूत्र खोजना कठिन है। एक सूत्र में सारे शास्त्रों का सार आ गया, सारे ध्यानियों का उपदेश आ गया, सारे ज्ञानियों की सुगंध आ गई। असुत्ता मुनि! सीधा साफ है; व्याख्या की भी कोई बात नहीं है। जो नहीं सोया है वह मुनि।
फिर पूछने वाले ने पूछा, फिर अमुनि कौन है? तो महावीर ने कहा, तुम खुद
ही गणित बिठा लो। सुत्ता अमुनि। जो सोया है वह अमुनि है।
महावीर ने नहीं कहा कि जो नग्न होकर, घर-द्वार छोड़ कर जंगल चला गया है
वह मुनि है। महावीर ने कहा, जिसने नींद छोड़ दी। यह ठीक-ठीक व्याख्या हुई, ठीक-ठीक परिभाषा हुई। महावीर ने यह भी नहीं कहा कि जो जैन धर्म का पालन करे वह मुनि है। जो भी जाग जाए, फिर वह मुसलमान हो, कि ईसाई हो, कि हिंदू हो, कि ब्राह्मण हो, कि शूद्र हो; कोई भेद नहीं पड़ता। फिर स्त्री हो कि पुरुष हो, कोई भेद नहीं पड़ता। जागने की बात है। सोए हुए सब अमुनि हैं। कोई सोए-सोए भाग भी सकता है।
तुमने कई बार सोने में भी अपने को भागते देखा होगा--नींद में भी! अक्सर देखा होगा। लेकिन नींद में भागा हुआ आदमी कहीं भाग पाता है? जाएगा कहां? जिस खाट पर पड़ा है उसी खाट पर सुबह अपने को पाएगा। रात भर भागते रहो, ट्रेनों में सवार होओ, हवाई जहाजों में यात्राएं करो; सुबह जब आंख खुलेगी तो पाओगे जहां थे वहीं हो। नींद में भागने से भी कोई कहीं पहुंचता नहीं। और मजा ऐसा है कि जागने वाले को इंच भर भी चलना नहीं होता--और पहुंच जाता है! क्योंकि जो जागा उसने जाना कि जागने में ही परमात्मा है। जागते ही मैं परमात्मा हूं। सोते ही मैं अहंकार हूं। जागते ही मैं आत्मा हूं। मुनि समझे नहीं होंगे। मुनियों की बहुत समझ होती नहीं। मैंने बहुत मुनियों को देखा है। मुनि और समझदार, ये दोनों बातें एक साथ मिलती नहीं। मुल्ला नसरुद्दीन एक कब्रिस्तान से निकलता था और एक कब्र पर उसने एक तख्ती लगी देखी। चौंक कर खड़ा हो गया, अपने साथी से कहा कि नहीं-नहीं, यह नहीं हो सकता। साथी ने पूछा, क्या नहीं हो सकता? उसने कहा, यह जो तख्ती लगी है कब्र पर कि यहां एक वकील और ईमानदार आदमी सोते हैं। इतनी छोटी कब्र में दो बन ही नहीं सकते, उसने कहा। वक्तव्य तो एक ही वकील के संबंध में था कि एक वकील और ईमानदार व्यक्ति यहां विश्राम करता है। लेकिन मुल्ला ने कहा, यहां दो आदमी नहीं हो सकते। वकील और ईमानदार एक हो, यह तो असंभव है। दो ही होने चाहिए। और दो इतनी छोटी कब्र में! बन नहीं सकते।
मुनि और समझदार, दो व्यक्ति एक में! आमतौर से नहीं होता। मुनि तो वे ही हैं जो नींद में ही संसार में थे और नींद में ही बहुत टकराहट खाने के कारण भाग खड़े हुए। लेकिन भागोगे कहां? जागो! भागने से कुछ भी न होगा। कितने ही भागो, तुम्हारे भीतर का अंधकार तुम्हारे साथ ही रहेगा। तुम्हारी मूर्च्छा कैसे छूट जाएगी? दुकान छोड़ सकते हो, बाजार छोड़ सकते हो, घर छोड़ सकते हो, बच्चे-पत्नी छोड़ सकते हो, क्योंकि वे पर हैं; लेकिन मूर्च्छा तो तुम्हारी अपनी है, अंधकार तो तुम्हारा अपना है। अंधकार से कोई विवाह थोड़े ही रचाया है। अंधकार तो तुम्हारे भीतर छाया है। तुम जहां जाओगे, तुम्हारा अंधकार तुम्हारे साथ जाएगा।
एक कौआ भागा जा रहा था और एक कोयल ने पूछा कि चाचा जी, कहां जा रहे हैं? बड़ी सुबह-सुबह, बड़ी तेजी से!
उसने कहा, मैं इस देश को छोड़ कर किसी दूसरे देश जा रहा हूं। पूरब को छोड़ कर पश्चिम जा रहा हूं, विलायत जा रहा हूं।
क्यों? कोयल ने पूछा।
तो कौए ने कहा, यहां लोग मेरे संगीत को समझते नहीं।
कोयल ने कहा, बेहतर हो कि आप अपना संगीत बदलो। पश्चिम में भी कोई नहीं समझेगा। कहीं भी कोई नहीं समझेगा।
कौआ शायद एक ही नाम है जिसे दुनिया की बहुत सी भाषाओं में उसकी कांव-कांव के आधार पर ही नाम मिला है। हिंदी में कहते हैं कौआ, क्योंकि वह कांव-कांव; अंग्रेजी में कहते हैं क्रो, वही कांव-कांव।
कोयल ने कहा कि अच्छा हो संगीत बदलो, स्वयं को बदलो। देश बदलने से कुछ
भी नहीं होगा। भगोड़े देश बदल लेते हैं। और भीतर? जैसे थे वैसे के वैसे।

अक्सर तो हालत भीतर और बुरी हो जाती है, क्योंकि यह देश के बदलने से अहंकार और सघन हो जाता है, अकड़ और मजबूत हो जाती है, दंभ और धार पा जाता है।
इसलिए तुम्हारे तथाकथित मुनि, साधु, महात्मा जितने अहंकारी होते हैं उतने कोई और दूसरे लोग अहंकारी नहीं होते। उनके अहंकार की बात ही और! उनका अहंकार शिखर छूता है। उनका अहंकार कोई साधारण मकान नहीं है, ताजमहल है! मुनि नहीं समझे होंगे। इसलिए फिर उन्होंने पूछा, कहां से आए और कहां जाएंगे?
मेरे पिता तो सीधे-सादे आदमी थे। उसी सीधे-सादेपन में ही साधुता छिपी है। उन्होंने फिर निवेदन किया, निगोद से आया हूं और मोक्ष जाऊंगा।
निगोद है अंधकार-लोक, मूर्च्छा का लोक, निद्रा का लोक--जहां हमें अपनी
भी खबर नहीं; जहां अंधेरा ऐसा घना है कि हाथ को हाथ न सूझे; अमावस की रात जहां आत्मा पर छायी है। चांद-तारे तो दूर, सूरज तो दूर, एक टिमटिमाती बत्ती भी नहीं जलती। एक टिमटिमाती मोमबत्ती भी उपलब्ध नहीं है। उस अवस्था का नाम पारिभाषिक जैन दर्शन में निगोद है।
और मोक्ष का अर्थ है, जहां सब प्रकाशित हो गया, सुबह हो गई, सूरज निकल आया। भीतर का सूरज, भीतर की सुबह! और जैसे ही भीतर का प्रकाश प्रकट होना शुरू होता है, अहंकार ऐसे गल जाता है जैसे बरफ का टुकड़ा सुबह के सूरज को देख कर गल जाए। अहंकार ऐसे वाष्पीभूत हो जाता है जैसे सुबह के सूरज में वृक्षों के पत्तों पर चमकती हुई ओस की बूंदें तिरोहित हो जाती हैं। स्वयं का होना समाप्त हो जाता है और तभी स्वयं की वास्तविक सत्ता का आविर्भाव होता है। अहंकार मिटता है, आत्मा का जन्म होता है। वह अवस्था परम स्वातंष्य की है।
दुनिया में दो तरह के धर्म हैं। तीन धर्म तो भारत में पैदा हुए, तीन धर्म भारत के बाहर पैदा हुए। जो भारत के बाहर धर्म पैदा हुए--यहूदी, मुसलमान, ईसाई--वे थोड़े स्थूल हैं। वे इतनी ऊंचाई नहीं ले सके। कई कारण हैं। एक तो उन्हें समय भी नहीं मिला इतना ऊंचाई लेने का। एक समय चाहिए एक ऊंचाई लेने के लिए। भारत का धर्म कम से कम दस हजार वर्ष पुराना है। ईसाइयत तो केवल उन्नीस सौ वर्ष पुरानी है। यहूदी तीन हजार वर्ष पुराने हैं। मुसलमान तो केवल चौदह सौ वर्ष पुराने हैं। समय की जो लंबाई चाहिए वह उन्हें मिली नहीं। इसलिए वे बहुत ऊंचाई नहीं ले सके। उन्होंने जो अंतिम ऊंचाई ली है वह स्वर्ग और नरक पर जाकर अटक जाती है। इसलिए पश्चिम के इन तीनों धर्मों में स्वर्ग और नरक के पार कुछ भी नहीं है। जो पुण्य करेगा वह स्वर्ग पाएगा, जो पाप करेगा वह नरक पाएगा। यह व्याख्या इन तीनों धर्मों को नैतिक तो बनाती है, लेकिन धार्मिक नहीं बना पाती।
इसलिए एक अनूठी बात तुम देखोगे, पश्चिम का आदमी ज्यादा नैतिक है, तुमसे ज्यादा नैतिक है। अगर वचन देगा तो पूरा करेगा। बात का पक्का है। जान भी देनी पड़े तो दे देगा। तुम्हें वचन देने में कुछ लगता ही नहीं। तुम कहो कि पांच बजे आ जाऊंगा, तो तुम चार बजे भी आ सकते हो, छह बजे भी आ सकते हो, आठ बजे भी, दूसरे दिन भी, तीसरे दिन भी। तुम्हारे पांच बजे का कोई अर्थ पांच बजे का नहीं होता। तुम्हें जैसे बोध ही नहीं है इस बात का कि वचन भंग करना एक अप्रामाणिकता है। तुम हर चीज में मिलावट किए चले जाते हो। पश्चिम में कोई सवाल ही नहीं उठता।
मेरे एक मित्र स्विटजरलैंड गए। तो उन्होंने होटल में कहा कि मुझे शुद्ध दूध चाहिए। होटल का बैरा थोड़ा हैरान हुआ--शुद्ध दूध! उसने कभी सुना ही नहीं था। दूध यानी दूध। उसने कहा कि रुकिए, मैं अपने मैनेजर को बुला लाऊं। वह मैनेजर को बुला लाया। मैनेजर ने कहा, शुद्ध दूध! साधारण दूध मिलता है; पैश्चाराइज्ड दूध मिलता है; पाउडर दूध चाहिए वह भी मिल जाए; मगर शुद्ध दूध हमने कभी सुना नहीं। आपका प्रयोजन क्या है शुद्ध दूध से?
तो उन्होंने कहा, जिसमें पानी न मिला हो। तो मैनेजर ने कहा, हम कोई पागल हैं जो दूध में पानी मिलाएंगे! आपके देश में क्या दूध में पानी मिलाते हैं?
यह देश और भी आगे बढ़ चुका है!
मैं विश्वविद्यालय में विद्यार्थी था, तो जो आदमी दूध देने आता था विद्यार्थियों को, उसका एक ही बेटा था, और वह बेटे की कसम खा लेता था, कोई

भी उससे पूछे। और उसके दूध में निश्चित पानी था, इसमें कोई शक-शुबहा ही नहीं था। उसमें दूध जैसा कुछ मालूम ही नहीं होता था। बस दूध का रंग भर था। जो भी उससे कहे कि क्या दूध में पानी मिलाया है? वह कहता, बेटे की कसम खाकर कहता हूं--बेटा भी साथ लिए रहता था दूध का बर्तन--कि यह रहा मेरा बेटा, इसके सिर पर हाथ रख कर कसम खाता हूं कि नहीं, दूध में पानी नहीं मिलाया है।
एक दिन मैंने उससे पूछा कि तू मुझसे तो सच कह दे, मैं किसी को कहूंगा नहीं। तू कसम खा लेता है बेटे के सिर पर हाथ रख कर, तेरा एक ही बेटा है! और पक्का है कि दूध में पानी है।
उसने कहा, अब आपसे क्या छिपाना, मगर किसी को आप बताना मत। कसम खा लेता हूं क्योंकि उसमें राज है। मैं दूध में कभी भी पानी नहीं मिलाता, जब भी मिलाता हूं पानी में दूध मिलाता हूं। इसलिए कसम खाने में मुझे कुछ हर्ज नहीं है। मेरे बेटे का बाल बांका नहीं हुआ आज तक। दस साल से कसम खा रहा हूं। कोई बाल बांका तो कर दे मेरे बेटे का!
वे जमाने गए जब यहां हम दूध में पानी मिलाते थे, अब तो पानी में दूध मिलाते हैं!
पश्चिम ज्यादा नैतिक है। और उसका कारण है कि धर्म पश्चिम में नीति का पर्यायवाची है। लेकिन ऊंचाई नहीं ले सका।
भारत अकेला देश है जिसके तीनों धर्म--हिंदू, जैन, बौद्ध--मोक्ष की बात करते हैं। यह स्वर्ग और नरक से ऊपर की बात है। स्वर्ग और नरक में तो द्वंद्व शेष है, अभी द्वैत समाप्त नहीं हुआ। अभी पाप-पुण्य, अभी कृत्य की दुनिया चल रही है। अभी साक्षी का भाव नहीं जगा। अभी मैं करने वाला हूं, यह भ्रांति बनी है। पापी को भ्रांति होती है कि मैंने पाप किया, पुण्यात्मा को भ्रांति होती है कि मैंने पुण्य किया। असाधु समझता है मैं असाधु हूं, साधु समझता है मैं साधु हूं; लेकिन दोनों समझते हैं कि मैं कुछ हूं। अभी नेति-नेति का जन्म नहीं हुआ। न यह, न वह। न मैं शुभ हूं, न अशुभ। न देह, न मन। न नीति, न अनीति। न पाप, न पुण्य। न स्वर्ग, न नरक। मैं इन दोनों का साक्षी हूं, सिर्फ द्रष्टा मात्र। जैसे दर्पण में प्रतिबिंब बने, ऐसा कोरा दर्पण हूं! इस कोरे दर्पण की अवस्था तक पश्चिम के धर्मों को उठना है। पूरब के धर्म इस कोरी अवस्था तक उठे हैं। इसका लाभ भी था, इसकी हानि भी थी।
इस दुनिया में एक बात ख्याल रखनी जरूरी है कि कोई भी चीज अगर लाभ लाती
हो तो अपने साथ ही हानियां भी लाती है। यह हम पर निर्भर होता है कि हम हानियों को न चुनें, लाभ को चुन लें। और कोई भी चीज जो हानि लाती है, अपने साथ लाभ भी लाती है। यह हम पर निर्भर होता है कि हम लाभ को चुन लें, हानियों को न चुनें। यहां जहर को समझदार औषधि बना लेते हैं और यहां नासमझ औषधि को भी जहर बना लेते हैं।
तुमने देखा होगा, शराबबंदी हो जाती है तो लोग कमला टानिक पीने लगते हैं! औषधि को भी जहर बनाने की होशियारियां हैं। लेकिन ठीक चिकित्सक के हाथ में जहर भी लोगों को जीवनदायी हो जाता है।
पश्चिम में धर्म ने नीति से ऊपर उड़ान नहीं ली। लेकिन पश्चिम के लोग चीजों से लाभ लेना जानते हैं। इसलिए जितना लाभ ले सकते थे धर्म की नैतिकता से, उन्होंने लिया। पूरब ने बड़ी ऊंचाई ली, धर्म से बहुत ऊपर हम गए। साधारण तथाकथित नरक और स्वर्ग का धर्म हमने बहुत पीछे छोड़ दिया। हमने मोक्ष पर उड़ान भरी। हमने साक्षी-भाव का अनुभव किया। लेकिन बजाय इसके कि हम लाभ लेते, हम हानि से भर गए। क्यों? हमारी बेईमानी को एक तरकीब मिल गई।
मोक्ष का अर्थ होता हैः न पाप सही है, न पुण्य सही है; दोनों माया। और
जब दोनों ही माया तो हमने सोचा, फिर दिल भर कर पाप ही कर लो! है तो है ही नहीं, सब माया ही है, तो फिर डर क्या? हमने जाना कि स्वर्ग और नरक दोनों मानसिक अवस्थाएं हैं, हम दोनों के पार हैं। जब हम दोनों के पार हैं, तो फिर क्या चिंता? फिर जी भर कर जो करना हो करो, जैसा करना हो वैसा करो। यह तो सब स्वप्नवत है। चोरी करो तो स्वप्न है, दान करो तो स्वप्न है; जब दोनों ही स्वप्न हैं तो चोरी ही क्यों न करो, हमने सोचा। फिर दान की झंझट में क्यों पड़ो? जो गलत था... ।
हम ऊंचे उड़े। हमारे महावीर, हमारे बुद्ध, हमारे कृष्ण अपने पंख आकाश
की आखिरी ऊंचाइयों तक फैलाए। लेकिन हम बहुत नीचे गिरे। यह एक साथ घटना

घटी। सबसे ऊंचे पुरुष हमने पैदा किए और सबसे नीचा समाज हमने पैदा किया। और कारण था हमारी चालबाजी।
यह भी सोच लेने जैसा है। दस हजार साल पुराना धर्म था, इसलिए इतनी ऊंचाई ले सका। लेकिन दस हजार साल में लोग बेईमान भी हो जाते हैं। जितना बूढ़ा आदमी होता है उतना बेईमान हो जाता है। छोटे बच्चे को धोखा देना आसान है; बेईमान बूढ़े को धोखा देना बहुत कठिन है--अनुभवी हो जाता है। वह खुद ही काफी धोखे खा चुका और दे चुका, तुम उसे क्या धोखा दोगे? बूढ़े व्यक्ति धीरे- धीरे ज्यादा बेईमान हो जाते हैं। बच्चे सरल होते हैं।
इसलिए नई सभ्यताओं में एक तरह की सरलता होती है; पुरानी सभ्यताओं में
एक तरह की चालबाजी आ जाती है, पाखंड आ जाता है। ये प्रत्येक वस्तु के दो पहलू हैं। यह हम पर निर्भर होता है हम क्या चुनें। दस हजार साल में हमने ऊंचाइयां से ऊंचाइयां छुईं। चाहें तो हम वे गौरीशंकर छुएं। और दस हजार साल में हमने जीवन के सब कड़वे-मीठे अनुभव भी लिए, हमने बेईमानी की गर्त भी छुई। हम चाहें तो वहां जीएं।
मोक्ष का अर्थ होता है, जहां सारे कर्मों के पार चेतना अपने को अनुभव करती है। जब तक कर्म है तब तक बंधन है। पाप करोगे, दुख पाओगे; पुण्य करोगे, सुख पाओगे। जैसे कोई नीम के बीज बोएगा तो नीम के फल काटेगा और कोई आम बोएगा तो आम की मिठास का अनुभव करेगा। बस ऐसे ही, सीधा-साफ गणित है। लेकिन हमारे भीतर कोई है जो न तो कड़वापन अनुभव करता है और न मिठास--जो दोनों के पार है; जो दोनों को देखता है। जो देखता है कि जीभ पर कड़वाहट का अनुभव हो रहा है, जीभ पर मिठास का अनुभव हो रहा है; लेकिन मैं तो अलग हूं, मैं तो साक्षी हूं। इस साक्षी में थिर हो जाना समाधि; इस साक्षी के परिपूर्ण अनुभव को उपलब्ध हो जाना मोक्ष।
निगोद है अंधकार, मोक्ष है प्रकाश। निगोद है तादात्म्य, मोक्ष है साक्षी-भाव।
उत्तर उन्होंने ठीक दिया था कि निगोद से आया हूं और मोक्ष जाऊंगा। और
यह भी उन्होंने ठीक कहा था किसी पंडित को कि मैं तो अपनी जानता हूं कि मेरा अंतिम जन्म है।
ध्यान की कुछ सीढ़ियां चढ़ो और तुम भी जान सकोगे कि यह तुम्हारा अंतिम जन्म है। इसमें कुछ बहुत अड़चन नहीं है। बस ध्यान का थोड़ा सा स्वाद लगे। और ध्यान की तरफ उनकी यात्रा चल रही थी। सतत, सब करते हुए भी ध्यान उनके जीवन का केंद्र था। ध्यान के लिए समय वे वर्षों से निकाल रहे थे। सारा काम भी चलता रहा, घर-द्वार भी छोड़ा नहीं और धीरे-धीरे भीतर, एक शांति, एक गहराई, एक आनंद भी उमगने लगा, भीतर फूल भी खिलने लगे।
ध्यान की अगर तुम्हें थोड़ी भी प्रतीति होगी तो तुम भी कह सकोगे, यह मेरा अंतिम जन्म है। क्यों? क्योंकि जन्म होता है कर्ता का और ध्यान तुम्हें अनुभव करवाता है साक्षी का। साक्षी का न कभी जन्म हुआ है, न होता है।
उपनिषद कहते हैंः एक ही वृक्ष पर दो पक्षी बैठे हैं। एक पक्षी नीचे की शाखा पर, बड़ी चें-चें करता है, इस डाल से उस डाल पर कूदता है, इस फल को चखता है, उस फल को चखता है। बड़ी बिगूचन में पड़ा है। और एक दूसरा पक्षी, ऊपर के शिखर पर बैठा है--सिर्फ बैठा है! वह नीचे के पक्षी की चहल-पहल, भाग-दौड़, आपाधापी देखता है, बस सिर्फ देखता है।
यह बड़ी प्यारी प्रतीक-व्यवस्था है। ऐसे उपनिषद कह रहे हैं कि तुम्हारे भीतर भी दो पक्षी हैं--एक साक्षी और एक कर्ता। कर्ता नीचे की शाखाओं पर आपाधापी में लगा रहता हैः और धन कमा लूं, और पद कमा लूं, और प्रतिष्ठा कमा लूं। उसका मन भरता ही नहीं। उसे तृप्ति मिलती ही नहीं। जितने तृप्ति के उपाय करता है उतनी अतृप्ति बढ़ती चली जाती है। लेकिन ऊपर एक साक्षी है जो सिर्फ देखता है--इस नीचे के पक्षी की उधेड़बुन देखता है, व्यर्थ की परेशानी देखता है। सिर्फ देखता है! दर्पण की भांति है। कुछ बोलता नहीं।
अब धर्म के दो रूप हो सकते हैं। धर्म का जो नैतिक रूप होगा, वह नीचे के पक्षी को बदलने की कोशिश करता है। और धर्म का जो परम रूप होगा, आध्यात्मिक रूप होगा, वह ऊपर के पक्षी की याद दिलाता है। धर्म का जो अध्यात्म है वह तो

कहता हैः इतनी भर याद तुम्हें आ जाए कि तुम्हारे भीतर एक साक्षी है, बस काफी है, क्योंकि साक्षी का कोई जन्म नहीं होता। यह तो कर्ता है जो जन्म में भटकता है। क्योंकि मरते वक्त तुम्हारी वासना तृप्त नहीं हुई होती। वासना की डोर तुम्हें नये जन्म में ले जाती है।
हमारे पास एक बड़ा प्यारा शब्द हैः पशु। पशु शब्द को तुम सिर्फ इतना ही समझते हो कि इसका अर्थ जानवर होता है। नहीं, इतना नहीं होता। जानवर का तो अर्थ होता है, जिसके पास जान है। तो जानवर तो तुम भी हो। जिसके पास जान है वह जानवर। अंग्रेजी में शब्द है एनिमल; उसका भी मतलब वही होता है। एनिमा का अर्थ होता है प्राण। जिसके पास प्राण है वह एनिमल। लेकिन हमारा शब्द बड़ा अदभुत है; वह जानवर और एनिमल से उसका अनुवाद नहीं होना चाहिए। पशु का अर्थ होता है, जो पाश में बंधा, जो जंजीर में बंधा, जिसके पैरों में बेड़ी पड़ी, जिसके हाथों में जंजीर है। जो पाश में बंधा वह पशु। यह बड़ा अनूठा शब्द है। ऐसे शब्द दुनिया की दूसरी भाषाओं में नहीं हैं; उसके कारण हैं। क्योंकि ऐसे लोग कम हुए दुनिया में जो ऐसे शब्दों को गढ़ सकते। जिन्होंने ये शब्द गढ़े उन्होंने इन छोटे-छोटे शब्दों में न मालूम कितनी कुंजियां छिपा दीं।
यह जो तुम्हारा पशु है, यह किन जंजीरों में बंधा है? कोई दिखाई पड़ने वाली जंजीरें तो नहीं हैं; अदृश्य जंजीरें हैं--वासना की, आकांक्षा की। यह मिल जाए, वह मिल जाए... चौबीस घंटे, कुछ मिल जाए! मरते वक्त भी तुम मिलने की आकांक्षा से ही भरे हुए मरते हो। और जो तुम्हारी मिलने की आकांक्षा, पाने की आकांक्षा है, वही तुम्हारे नये जन्म का कारण बन जाती है। वही पाश तुम्हें नये गर्भ में खींच ले जाता है। नहीं तो नये गर्भ की कोई संभावना नहीं है। द्वार ही टूट गया। राह ही मिट गई।
जिसने ध्यान का अनुभव किया, वह कह सकता है, यह मेरा अंतिम जन्म है। इसमें कोई अहंकार नहीं है। इसमें सिर्फ तथ्य का निवेदन है कि मैंने अपने साक्षी-रूप को देखना शुरू कर दिया है। साक्षी तो पशु नहीं है। साक्षी परमात्मा है। साक्षी पर तो कोई वासना नहीं है। साक्षी तो परम तृप्त है; जैसा है वैसा ही तृप्त है; जहां है वहीं तृप्त है। कहीं और नहीं होना है, कहीं और नहीं जाना है, कुछ और नहीं पाना है। साक्षी तो परितोष का नाम है, परम संतोष का नाम है; आत्यंतिक तुष्टि का नाम है। जिसको ऐसी झलक मिलने लगी वह कह सकता है, यह मेरा अंतिम जन्म है।
लेकिन पंडित विवादों में पड़े रहते हैं। वे इसी फिक्र में लगे रहते हैं कि अगला जन्म होगा? क्यों होगा? कैसे होगा? होता भी है कि नहीं होता? किस नियम से होता है? क्या गणित है उसका? क्या नक्शे हैं उसके? वे इसी नक्शे खींचने में, गणित बिठालने में लगे रहते हैं। पंडित से ज्यादा व्यर्थ का काम कोई दूसरा नहीं करता। उसकी सारी चेष्टा शाब्दिक होती है, अनुभवगत नहीं होती।
इसलिए अगर उन्होंने किसी पंडित को कहा था कि शास्त्र और सिद्धांत की
आप जानें; मुझे शास्त्र का पता नहीं, सिद्धांत का पता नहीं; पर एक बात सुनिश्चित होने लगी है कि यह मेरा अंतिम जन्म है--ठीक कहा था।
जो शास्त्र और सिद्धांत में उलझे हैं, उन्हें ध्यान का तो समय ही नहीं मिलता। जो शास्त्र और सिद्धांत में उलझे हैं, वे ध्यान तक तो पहुंच ही नहीं पाते। क्योंकि ध्यान तक पहुंचने की अनिवार्य शर्त हैः शास्त्र और सिद्धांत को छोड़ो। शब्द को छोड़ो तो ध्यान में पहुंचोगे। निःशब्द यानी ध्यान। विचारों को छोड़ो तो निर्विचार में पहुंचोगे। निर्विचार यानी ध्यान। विकल्पों को छोड़ो कि क्या ठीक क्या गलत, निर्विकल्प हो जाओ। निर्विकल्प यानी ध्यान।
पंडित ध्यान नहीं कर पाता। हां, पंडित ध्यान के संबंध में सोचता है। इसे थोड़ा ख्याल रखना। तुम जल के संबंध में कितना ही सोचो, इससे प्यास न बुझेगी। तुम चाहे जल के संबंध में बड़ी सुंदर-सुंदर तस्वीरें बना लो, सागरों की तस्वीरें, अपने कमरों को जल की तस्वीरों से भर दो--सागर, सरोवर, निर्झर, जलप्रपात--लेकिन इससे तृप्ति नहीं मिल सकेगी। प्यास लगेगी तो ये तस्वीरें काम न आएंगी। और तुम भलीभांति जानते हो कि भूख लगती हो तो पाकशास्त्र को पढ़ने से नहीं मिटती। लेकिन अजीब है आदमी! जब उसे परमात्मा

की भूख लगती है तो वह गीता पढ़ता है, कुरान पढ़ता है, बाइबिल पढ़ता है। भूख झूठी होगी। अगर भूख सच्ची होती तो तुम किसी सदगुरु के चरण में होते, किसी प्रबुद्ध व्यक्ति का हाथ पकड़ते, न कि पाकशास्त्र लिए बैठे रहते। और बड़े मजेदार लोग हैं! पाकशास्त्र को भी पढ़ कर अगर कुछ पकाओ तो भी ठीक। लोग रोज पाकशास्त्र का पाठ करते हैं! सुबह से रोज गीता का पाठ करते हैं। कृष्ण होना तो दूर, अर्जुन भी नहीं होते। मगर गीता कंठस्थ हो जाती है। पाकशास्त्र कंठस्थ हो जाता है। तो वे एक-एक बात बता सकते हैं कि रोटी कैसे पकाई जाती है, मिष्ठान्न कैसे बनाए जाते हैं; मगर उनका खुद का जीवन सूखा जा रहा है, कोई रसधार नहीं है। क्योंकि जीवन को जो पोषण मिलना चाहिए, नहीं मिल रहा है। पाकशास्त्र पोषण नहीं देते। पाकशास्त्र को घोंट कर पी जाओ तो भी पेट नहीं भरेगा। बीमार भला हो जाओ, मगर पेट नहीं भरेगा। धर्मशास्त्र से भी पेट नहीं भरता, आत्मा नहीं भरती।
और ज्ञान और ध्यान का यही भेद है। ज्ञान है ईश्वर के संबंध में विचार
और ध्यान है ईश्वर में छलांग। ज्ञान है पाकशास्त्र और ऊहापोह। और ध्यान है सब शब्दों से मुक्ति, ऊहापोह से छुटकारा, मौन में प्रवेश। इसलिए महावीर ने अपने संन्यासी को मुनि कहा। ये सारे शब्द प्यारे हैं। मुनि का अर्थ है, जो मौन में प्रविष्ट हो गया। लेकिन कितने जैन मुनि मौन में प्रविष्ट मालूम होते हैं? बैठे शास्त्रों को पढ़ रहे हैं और उन्हीं शास्त्रों को लोगों को समझा रहे हैं। मौन कहां है? और मुनि हो गए!
आचार्य तुलसी ने मुझसे पूछा--एक प्रसिद्ध जैन मुनि ने--कि ध्यान कैसे करें?
मैंने कहा, आप मुनि होकर और पूछते हैं कि ध्यान कैसे करें! तो मुनि कैसे हुए? और न केवल मुनि हैं आप, सात सौ मुनियों के गुरु हैं, आचार्य हैं सात सौ मुनियों के! साधारण मुनि नहीं हैं, महामुनि हैं और पूछते हैं ध्यान कैसे करें! ध्यान नहीं किया तो मुनि कैसे हुए?
लेकिन हम शब्द का अर्थ भी भूल गए। सीधा-सादा अर्थ हैः मौन। मौन को जो उपलब्ध हो जाए, वह मुनि।
बुद्ध ने अपने संन्यासियों के लिए नाम चुना थाः भिक्षु। जो ऐसा जान
ले कि मेरा कुछ भी नहीं है इस संसार में, वह भिक्षु। वह सम्राट भी हो सकता है तो भी भिक्षु, क्योंकि वह जानता है मेरा कुछ भी नहीं है। जिसने मालकियत की भ्रांति छोड़ दी, वह भिक्षु।
और संन्यास का क्या अर्थ होता है? सम्यक न्यास। जिसे जीने की ठीक-ठीक कला आ गई। और जीने की कला में मरने की कला समाहित है। जीने की ठीक कला, मरने की ठीक कला जिसे आ गई वह संन्यासी है। और जीने की ठीक कला के लिए मुनि होना पड़े। और मरने की ठीक कला के लिए भिक्षु होना पड़े।
इसलिए मैंने संन्यास शब्द चुना, क्योंकि संन्यास मुनि और भिक्षु दोनों को अपने में आत्मसात कर लेता है। यह दोनों शब्दों से बड़ा है। मुनि जीवन की कला है और भिक्षु मृत्यु की कला है। बुद्ध ने अपने भिक्षु के लिए पीत वस्त्र चुने थे, क्योंकि पीला रंग मौत का रंग है। जब पत्ते मरने के करीब होते हैं तो पीले पड़ जाते हैं। जब व्यक्ति मरने के करीब होता है तो चेहरा पीला पड़ जाता है। पीला रंग मृत्यु का प्रतीक है। इसलिए बुद्ध ने भिक्षु के लिए पीत वस्त्र चुने हैं। क्योंकि भिक्षु की कला ही एक बात में निर्भर हैः कैसे मरूं? ऐसे मरूं कि फिर दुबारा जन्म न हो।
मगर तुम ठीक से तभी मर सकते हो जब तुम ठीक से जीए होओ। मरना कोई ऐसी चीज नहीं है कि बस एक क्षण में तुम साध लोगे। तुमने जीवन भर साधा हो ठीक से जीना... और ठीक से जीने के लिए मौन कला है। तुम जीए होओ शांत भाव से। जगत में उठते रहें तूफान, और कोई तूफान तुम्हें कंपाए न। अंधड़ चलें, और कोई अंधड़ तुम्हें हिलाए न। चीजें बनें और मिटें, और तुम अप्रभावित रह जाओ, अस्पर्शित। ऐसा तुम्हारा मौन हो तो तुमने जीवन की कला जानी। और जो जीवन की कला जानेगा वही एक दिन मृत्यु के परम रहस्य को समझ सकेगा।
मैंने संन्यास शब्द चुना, क्योंकि उसमें दोनों समाहित हैं--जीने की, मृत्यु की कला। जिसे भी समझ में आ गया मौन का थोड़ा सा स्वाद, वह कह सकता है कि अब मेरा दुबारा जन्म नहीं होगा। सच तो यह है, वह कह सकता हैः मेरा कभी जन्म हुआ ही नहीं।

झेन फकीर जापान में कहते हैं कि बुद्ध का न तो कभी जन्म हुआ और न वे कभी मरे।
फकीरों की बातें फकीरों के ढंग से समझनी चाहिए। पंडित हंसेंगे, इतिहासज्ञ हंसेंगे। वे कहेंगे, यह कोई बात हुई! हम भलीभांति जानते हैं कि बुद्ध का जन्म हुआ और बुद्ध की मृत्यु हुई। कहां जन्म हुआ, वह भी हमें पता है; कहां मृत्यु हुई, वह भी पता है; ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध हैं।
चूक गए! फकीर की बात समझे नहीं। फकीर भी नहीं कह रहा है कि बुद्ध का जन्म नहीं हुआ और बुद्ध की मृत्यु नहीं हुई। वह यह कह रहा है कि गौतम बुद्ध और सिद्धार्थ गौतम, ये दो अलग व्यक्ति हैं। सिद्धार्थ गौतम है सोया हुआ आदमी। उसका जन्म हुआ और मृत्यु भी हुई। और गौतम बुद्ध, वह है जाग्रत चैतन्य। उसकी कहां मृत्यु! कैसा जन्म! वह शाश्वत है। फकीर किसी और बात की तरफ इशारा कर रहे हैं। वे ठीक कह रहे हैं। वे साक्षी की बात कर रहे हैं। और इतिहासज्ञ कर्ता की बात कर रहा है, क्योंकि इतिहासज्ञ कर्ता के ऊपर जा भी नहीं सकता।
इसीलिए तो इतिहास में एक कमी रह जाती है। इतिहास में, जो हमारे जगत के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति हैं, वे सम्मिलित ही नहीं हो पाते, क्योंकि उनके जीवन में कृत्य बहुत नहीं होता। चंगीज खां के जीवन में ज्यादा कृत्य है। नादिर शाह और तैमूर लंग, हालांकि तैमूर लंगड़ा है, मगर काम उसने खूब किए। लंगड़े ने भी बहुत उपद्रव किए। इतने उपद्रव किए कि इतिहास में लिखने योग्य काफी है। लेकिन बुद्ध के जीवन को लिखोगे तो क्या लिखोगे? एक झाड़ के नीचे छह सालों बैठे रहे! ज्यादा लिखने को कुछ है नहीं। और जो घटा वह भीतर घटा; उसका बाहर कोई प्रमाण नहीं है। बुद्धत्व को उपलब्ध हुए, लेकिन इसका कोई बाहरी साक्ष्य तो है नहीं, नापने की कोई कसौटी नहीं, मापने का कोई तराजू नहीं। जो घटा भीतर घटा।
बुद्ध कहते हैंः जिनको श्रद्धा है वे स्वीकार कर लें; जिनके पास आंखें हैं वे देख लें; जिनके पास आंखें नहीं हैं उन्हें दिखाई नहीं पड़ेगा। और अधिक के पास आंखें नहीं हैं। या हैं भी तो उन्होंने उन पर पट्टियां बांध रखी हैं। अधिक के पास कान नहीं हैं। और हैं भी तो उन्होंने उनको बिल्कुल बंद कर रखा है। और अधिक के पास हृदय नहीं है। और अगर है भी तो हृदय से वे सुनते नहीं, हृदय से गुनते नहीं। खोपड़ी में ही उनका सारा जीवन नियोजित हो गया है।
तो बुद्ध के जीवन में क्या लिखो? महावीर के जीवन की कथा लिखनी हो तो क्या लिखो? बड़ी कठिनाई है। उपन्यासकार कहते हैं कि अच्छे आदमी की जिंदगी पर उपन्यास नहीं लिखा जा सकता। कुछ होता ही नहीं लिखने योग्य। चोरी हो, डकैती हो, शराबी हो, हत्यारा हो, वेश्यागामी हो, तो कुछ उपन्यास बनता है, कुछ कहानी बनती है।
अब अगर बुद्ध की कहानी लिखो तो क्या लिखोगे? बुद्ध पैदा हुए--यह एक क्षण में हो जाएगी बात; फिर बड़े हुए, फिर एक दिन घर छोड़ा--तो घर छोड़ने की बात लिख सकते हो। अगर बुद्ध पर कोई फिल्म बनाई जाए तो पांच मिनट से ज्यादा की नहीं हो सकती। जन्म। फिर उनतीस साल तक कुछ नहीं। फिर उनतीस साल तक फिल्म में सिर्फ कैलेंडर एकदम तेजी से सरकता रहेगा। उनतीस साल के बाद एक रात घर छोड़ दिया। फिर छह साल तक सन्नाटा। फिर कैलेंडर सरकता रहेगा। फिर छह साल के बाद एक दिन बुद्धत्व का अनुभव। इसको भी कैसे कहोगे? बस बुद्ध बैठे हैं वृक्ष के नीचे और परदा एकदम झक्क सफेद हो जाएगा। बुद्धत्व उपलब्ध हो गया! अब कुछ कहने को बचता नहीं। जो दर्शक आए हैं, परदा भी फाड़ देंगे, कुर्सियां तोड़ देंगे, मैनेजर की पिटाई करेंगे कि यह कोई फिल्म हुई! पैसे वापस करो। ऐसा हुआ है। कुछ इस तरह के प्रयोग किए गए हैं। पश्चिम में एक फिल्म बनाई गईः वेटिंग फॉर गोडोट। एक बहुत अदभुत विचारक, सेमुअल बैकेट की कहानी पर निर्भर है वेटिंग फॉर गोडोट। गोडोट सिर्फ याद दिलाने को है गॉड शब्द की। लेकिन गॉड शब्द का उपयोग नहीं किया बैकेट ने, "गोडोट" अपनी तरफ से बना लिया एक शब्द, जिससे तुम्हें सिर्फ ख्याल आ जाए कि हां कुछ इशारा है ईश्वर की तरफ। ईश्वर की प्रतीक्षा। ईश्वर यानी वह, जो न कभी आता, न कभी दिखाई पड़ता।

तो दो आदमी एक झाड़ के नीचे बैठे हैं और प्रतीक्षा करते हैं। एक बोलता
है, अभी तक गोडोट आया नहीं। दूसरा कहता है, आता ही होगा, जब उसने कहा है तो आएगा। फिर थोड़ी देर सन्नाटा रहता है, फिर पहला पूछता है कि भई, अभी तक आया नहीं, समय भी निकला जा रहा है! दूसरा कहता है, मेरा सिर न खाओ, मुझे भी दिखाई पड़ रहा है कि अभी तक नहीं आया; लेकिन अब हम करें भी क्या, जब आएगा तब आएगा! प्रतीक्षा के सिवाय करने को है भी क्या!
प्रतीक्षा चलती रहती है, सन्नाटा गुजरता रहता है। दोनों बैठे हैं झाड़
के नीचे, न कोई आता, न कोई जाता। फिर दूसरा कहता है कि मेरा तो मन ऊबने लगा। मैं तो सोचता हूं कि यहां से चला ही जाऊं। तो पहला उससे कहता है, तो चले भी जाओ। मेरा सिर तो मत खाओ। एक तो यह परेशानी है कि जिसकी प्रतीक्षा है वह नहीं आता; एक तुम हांक लगाए रहते हो! जहां जाना हो जाओ।
मगर दूसरा जाता नहीं। थोड़ी देर बाद पहला पूछता है, जाते क्यों नहीं?
वह कहता है, जाऊं भी तो कहां जाऊं, यही वहां भी होगा। फिर बैठ कर प्रतीक्षा करो। यहां कम से कम एक से दो भले। थोड़ी बातचीत तो हो लेती है। बस ऐसी ही कहानी चलती रहती है। न कभी कोई आता, न कभी प्रतीक्षा का कोई फल मिलता। इस पर फिल्म बनाई गई। अब फिल्म कितनी बड़ी होगी--सात मिनट में खत्म हो जाती है! जहां-जहां फिल्म दिखाई गई वहीं-वहीं दंगा हुआ। परदे फाड़ दिए गए, कुर्सियां तोड़ दी गईं, लोगों ने थियेटर जला दिए और कहा कि पैसे वापस चाहिए! यह कोई मजाक है, यह कोई फिल्म है!
मगर बैकेट कहता था, यही जिंदगी है। जिंदगी भर तुम करते क्या हो--बस प्रतीक्षा! न कोई कभी आता, न कभी कुछ होता। न कभी कोई द्वार खटखटाता। कभी- कभी द्वार खोल कर देखते हो, पाते हो हवा थी, झोंका दे गई। कभी द्वार खोल कर देखते हो, पता चलता है मेघ गरज रहे हैं। कभी द्वार खोल कर देखते हो, पत्ता सूखा खड़खड़ा रहा है द्वार पर। न कोई कभी आता, न कभी कोई जाता। बस जिंदगी ऐसे ही खाली। मगर कम से कम यह बातचीत तो है कि दो एक-दूसरे से पूछ रहे हैं, कम से कम एक से दो तो हैं।
बुद्ध को जब ज्ञान फलित होता है छह वर्षों के बाद, तब वे बिल्कुल नितांत अकेले हैं, वहां दो भी नहीं, न कोई पूछने को, न कोई उत्तर देने को। यह घटना अलिखित रह जाएगी। इस घटना को कोई इतिहास अपने में समाविष्ट नहीं कर सकेगा। कोई उपाय नहीं है। इसलिए जितना बड़ा बुद्धत्व उतना ही इतिहास के बाहर।
कृत्य का इतिहास होता है, साक्षी का कोई इतिहास नहीं। इसलिए इस दुनिया में जो परम बुद्ध हुए हैं वे इतिहास के बाहर ही जीए हैं और समाप्त हो गए हैं। इतिहास तो उलटे-सीधे लोगों का होता है, जिनकी खोपड़ियां खराब हैं। वे काफी शोरगुल मचाते हैं, काफी उपद्रव खड़े करते हैं। वे इतने उपद्रव खड़े करते हैं कि तुम्हें उनका इतिहास लिखना ही पड़ेगा। अखबारों में भी तुम बुद्धों की खबर नहीं पढ़ पाते, उपद्रवियों की खबर पढ़ते हो। क्योंकि जो उपद्रव करता है वह कुछ घटना घटवाता है। घेरा डलवा दे, हड़ताल करवा दे, घिराव करवा दे, चीजें तुड़वा दे फुड़वा दे, दंगा-फसाद करवा दे, हिंदू-मुस्लिम दंगा हो जाए, कुछ उपद्रव करवा दे, तो इतिहास में रेखाएं खिंचती हैं। जो साक्षी हो जाता है, कृत्य के बाहर हो जाता है। लेकिन एक बात उसे साफ हो जाती है कि अब कोई जन्म नहीं। क्योंकि जन्म तो कृत्य की भूमिका के लिए है। करने की जब तक कुछ आकांक्षा है तब तक जन्म। करने की जब कोई भी आकांक्षा नहीं है तो जन्म समाप्त हुआ।
इसलिए जो व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाता है, फिर दुबारा जन्म नहीं ले पाता। उसका दुबारा जन्म नहीं होता। और बुद्ध जो भी करते हैं वह कृत्य नहीं है। बुद्ध चालीस-बयालीस साल जिंदा रहे बुद्धत्व के बाद, लेकिन अब उन्होंने जो किया वह कृत्य नहीं है; अब तो सहज प्रवाह है।
जैसे गंगा बहती है सागर की तरफ तो तुम यह थोड़े ही कहते हो कि सागर की तरफ जा रही है, कि हर मोड़ पर देखती है नक्शे को, फिर मुड़ी कि अब बाएं जाऊं कि दाएं, हर जगह पूछती है पुलिस के सिपाही से कि सागर किस तरफ है! सहज बहती है। यह कोई कृत्य नहीं है, निसर्ग है।
बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति निसर्ग से जीता है--जो होता है; जो होना प्रकृति उसके भीतर से चाहती है या परमात्मा। बांसुरी हो जाता है;

परमात्मा जो गीत गाता है गा लेता है। नहीं गाना, तो कोई आग्रह उसका नहीं कि गीत गाया ही जाए।
साक्षी-भाव धीरे-धीरे तुम्हें यह बात स्पष्ट कर देता है कि यह तुम्हारा अंतिम जन्म है। और जैसे-जैसे ध्यान गहरा होगा, बहुत सी बातें स्पष्ट हो जाएंगी। ध्यान गहरा होगा तो तुम्हें यह साफ दिखाई पड़ने लगेगाः यह शरीर कितने दिन टिक सकता है। क्योंकि तुम्हें शरीर से संबंध दिखाई पड़ने लगेंगे टूटते। तुम रोज-रोज देखोगे कि संबंध टूटते जा रहे हैं। तुम हिसाब लगा सकते हो कि पूरे संबंध टूटने में कितनी देर लगेगी।
इसलिए अगर उन्होंने कहा था पांच वर्ष पूर्व हृदय का दौरा पड़ने पर कि अभी मैं पांच वर्ष और रहूंगा, तो इसमें कोई अड़चन नहीं है, कठिनाई नहीं है। दिख रहा होगा कि कितने मोह शेष रह गए हैं, उनको टूटने में कितनी देर लगेगी। यह सीधा गणित है। जैसे अगर तुम देखो कि एक मकान गिर रहा है, हर रोज उसका एक खंभा गिरता है, और अब दस खंभे बाकी हैं, तो तुम हिसाब लगा सकते हो कि दस दिन में यह पूरा का पूरा भवन खंडहर हो जाएगा। बस ऐसे ही। ध्यान में दिखाई पड़ने लगता है, कितने संबंध रोज-रोज क्षीण होते जा रहे हैं। पांच वर्ष में सारे संबंध क्षीण हो जाएंगे तो शरीर छूट जाएगा।
योग भक्ति, ये सारे वक्तव्य महत्वपूर्ण हैं। और मैं इन पर चर्चा इसलिए कर रहा हूं कि ये सारे वक्तव्य आज नहीं कल तुम सबको भी घटित होने वाले हैं, तुम्हारे लिए उपयोगी होंगे।

दूसरा प्रश्नः ओशो! संत रज्जब, सुंदरो और दादू की मृत्यु की कहानी मेरे लिए बड़ी ही रोमांचक रही। परंतु मेरे गुरु और हमारे प्यारे दादा, जो मेरे मित्र भी थे, उनकी मृत्यु के समय की आंखों देखी घटना का अनुभव मेरे लिए उससे भी कहीं अधिक रोमांचकारी हुआ। इससे मेरी आंखें मधुर आंसुओं से भर जाती हैं।

शीला! रज्जब, सुंदरो और दादू की कहानी तो बस तुम्हारे लिए कहानी है। मैं उसे तुमसे कहता हूं, चूंकि तुम्हें मुझसे प्रेम है, इसलिए तुम्हारे लिए उस कहानी में भी एक सत्य प्रविष्ट हो जाता है। चूंकि मैं अपने प्रेम से उस कहानी को लबालब भरता हूं, चूंकि मैं उस कहानी को फिर तुम्हारे सामने पुनरुज्जीवित करता हूं, इसलिए तुम रोमांचित हो उठती हो। लेकिन उस कहानी से तुम्हारा संबंध परोक्ष है, मेरे द्वारा है। दद्दा जी की मृत्यु तुमने सीधी-सीधी देखी, मेरे माध्यम से नहीं; वह तुम्हारा सीधा अनुभव है। निश्चित ही उसका रोमांच बहुत अलग होगा।
मैं कितने ही प्यारे ढंग से तुम्हें कुछ कहूं और तुम कितने ही अनुग्रह और समादर से उसे अपने हृदय में प्रतिष्ठा दो, फिर भी वह बात मेरी है। जैसे कोई हिमालय देख कर आया हो, और हिमालय के सौंदर्य का वर्णन करे और हिमालय की शीतलता का और हिमालय पर जमी हुई क्वांरी बर्फ का और हिमालय के उत्तुंग शिखरों का--बादलों से ऊपर उठे शिखर, आकाश से गुफ्तगू करते शिखर, चांद-तारों को छूने की अभीप्सा लिए हुए शिखर--इनकी बहुत प्यारी चर्चा करे, और किसी के पास काव्य का गुण हो और सौंदर्य का बोध हो और हिमालय को अपनी छाती में भर कर आया हो और तुम्हारे सामने उंड़ेल दे, तो रोमांच होगा। मगर फिर भी बात तो उधार है। हिमालय तुम्हारे सामने तो नहीं है। इस आदमी की आंख से देखना होगा। इसका सौंदर्य तुम्हारे भीतर पुलक लाएगा। वह भी तभी जब तुम अपने हृदय को इसके सामने खोल कर रखो, विवाद न करो, व्यर्थ के तर्क-जाल में न उलझो, आत्मसात कर लो इसके अनुभव को, तो रोमांच होगा, अनुभव होगा। मगर जिस दिन तुम स्वयं हिमालय को जाकर देखोगी, वे उत्तुंग शिखर तुम्हारी आंखों में उठेंगे--वह अपूर्व महिमा, वह शाश्वत सौंदर्य--तब तुम्हें वे जो बातें तुमने सुनी थीं, बहुत दूर की आवाज मालूम पड़ेंगी, प्रतिध्वनि। बांसुरी को कोई सुने और फिर बांसुरी की गूंज घाटियों में होती हो उस गूंज को कोई सुने, इतना फर्क पड़ जाएगा। और फर्क बड़ा है। मुझे तुम देखो और मेरी तस्वीर को देखो, इतना फर्क है।
पिकासो से किसी ने कहा--एक बहुत सुंदरी महिला ने--कि कल मैंने तुम्हारे ही हाथों बनाई हुई तुम्हारी तस्वीर देखी, सेल्फ पोर्ट्रेट

देखा। इतना प्यारा था कि मैं अपने को रोक न सकी और मैंने उस तस्वीर का चुंबन ले लिया।
पिकासो ने कहा, फिर क्या हुआ? तस्वीर ने चुंबन का जवाब दिया या नहीं?
उस युवती ने कहा, आप भी क्या बात करते हैं! तस्वीर चुंबन का जवाब कैसे देगी?
तो पिकासो ने कहा, फिर वह कोई और होगा, मैं नहीं। मुझे तो कोई चुंबन करे तो मैं जवाब देता हूं। तो वह तस्वीर किसी और की होगी।
ऐसा ही एक बार हुआ, एक बहुत बड़ा यथार्थवादी दार्शनिक...
यथार्थवाद और आदर्शवाद, दो दर्शन की परंपराएं हैं पश्चिम में। आदर्शवादी प्रत्येक चीज में से आदर्श को खोजता है। यथार्थवादी नंगे यथार्थ को स्थापित करता है। आदर्शवादी जगत को महिमामंडित करता है। वह गुलाब की चर्चा करता है, गुलाब के फूल की चर्चा करता है। यथार्थवादी कैक्टस की चर्चा करता है, गुलाब के फूल की नहीं। क्योंकि दुनिया कैक्टस से भरी है, गुलाब के फूल कहां? यहां हर आदमी कैक्टस है, कांटे ही कांटों से भरा है। जरा किसी के पास आओ कि कांटे चुभे। जरा किसी के पास आओ कि दामन ऐसा उलझता है कि छुड़ाना मुश्किल हो जाता है। हर जगह कांटे हैं, गुलाब कहां? गुलाब तो सिर्फ सपनों में हैं--कवियों के सपनों में।
तो वह यथार्थवादी पिकासो के पास आया था और कहने लगा कि तुम्हारे चित्र यथार्थवादी नहीं हैं। तुम न मालूम कैसे चित्र बनाते हो!
पिकासो निश्चित ही जो चित्र बनाता था, वे कोई फोटोग्रैफ नहीं थे कैमरा से लिए गए। कैमरा में और चित्रकार में यही तो फर्क है, नहीं तो फर्क क्या? जब पहली दफा कैमरे का आविष्कार हुआ तो दुनिया के चित्रकार बहुत डर गए थे कि हमारी तो मौत हो गई, हमारा धंधा गया। कैमरा तो हमसे अच्छे ढंग से चित्र बना देगा। लेकिन धंधा मरा नहीं, बल्कि धंधे ने नई गरिमा ले ली, नया आयाम ले लिया। चित्रकार चित्र को बनाता है तो तुम्हारे भावों को भी पकड़ता है, तुम्हारी संभावनाओं को भी पकड़ता है, तुम्हारे छिपे हुए रहस्यों को भी पकड़ता है; सिर्फ तुम्हारे ऊपर की बाह्य रूप-रेखा को नहीं, जैसा कि कैमरा पकड़ता है। कैमरा तो बाह्य रूप-रेखा पकड़ता है। बस उतना ही उसका काम है। पिकासो ने कहा कि मैं लोगों की सिर्फ रूप-रेखा नहीं पकड़ता; यह तो कैमरा ही कर देगा। मैं तो बहुत कुछ और पकड़ता हूं जो कैमरा नहीं पकड़ सकता। वही तो चित्रकार की खूबी है। लेकिन फिर भी तुम्हारा क्या मतलब है यथार्थवाद से?
तो उस यथार्थवादी दार्शनिक ने अपनी डायरी निकाली, डायरी में रखा हुआ अपनी पत्नी का चित्र निकाला और कहा, यह देखो! तुमने मेरी पत्नी का चित्र बनाया है वह मेरी पत्नी जैसा लगता ही नहीं। आंखें तुमने ऐसी बनाई हैं जैसे मेरी पत्नी अंधी हो। और नाक तुमने इतनी बड़ी बना दी है कि उसका सारा सौंदर्य नष्ट हो गया।
पिकासो ने कहा, जैसा मैंने देखा वैसा मैंने बनाया। मुझे तुम्हारी पत्नी अंधी मालूम होती है। उसे कुछ दिखाई नहीं पड़ता। मैं उसमें आंखें नहीं बना सकता। और मुझे तुम्हारी पत्नी बड़ी अहंकारी मालूम पड़ती है, इसलिए मैंने नाक बहुत बड़ी बनाई है। अहंकार नाक पर चढ़ता है, नाक की नोक पर रहता है। इसलिए बहुत नुकीली नाक बनाई, तुम गौर से देखना। मैंने तुम्हारी पत्नी के अहंकार को और अंधेपन को समाविष्ट किया। कैमरा यह नहीं कर सकता। कैमरे की क्या बिसात? फिर भी देखूं, तुम पत्नी के किस चित्र को ठीक चित्र कहते हो।
वह कैमरे से उतारी गई तस्वीर थी, सुंदर तस्वीर थी, ठीक-ठीक उतारी गई थी। पिकासो ने तस्वीर देखी। पास में ही पड़ी हुई स्केल को उठा कर नापा। छह इंच लंबी, चार इंच चौड़ी। पिकासो ने कहा, तुम्हारी पत्नी लेकिन बहुत छोटी मालूम पड़ती है। छह इंच लंबी, चार इंच चौड़ी! इतनी सी तस्वीर में तुम्हारी असली पत्नी! यह यथार्थवादी चित्र है? और तुम्हारी पत्नी बिल्कुल चपटी मालूम पड़ती है, मैंने हाथ फेर कर देखा। यह कैसा यथार्थ? यही तुम्हारी पत्नी है?
उस आदमी ने कहा, यह मेरी पत्नी नहीं, मेरी पत्नी की तस्वीर है।

पिकासो ने कहा, फिर तस्वीर कहो। तस्वीर पत्नी नहीं है। तस्वीरें तस्वीरें हैं, फिर कोई कितनी ही प्यारी तस्वीर क्यों न खींचे!
शीला! रज्जब, सुंदरो और दादू की कहानी जो मैंने कही, वह तो मेरी आंखों
से देखी गई एक प्यारी तस्वीर है। खूब रंग मैं भरता हूं। शायद इतिहासज्ञ उससे राजी हों भी, न भी हों; मुझे उनकी चिंता भी नहीं। किताबें वैसा कहती हों, न कहती हों; मुझे उसकी फिक्र भी नहीं। मैं यहां किन्हीं किताबों को सही सिद्ध करने नहीं बैठा हूं, बल्कि किसी दूर यात्रा पर ले जाने के लिए आवाहन दे रहा हूं।
तुममें से बहुतों को रज्जब, सुंदरो और दादू की कहानी का पता न होगा, जिसके संबंध में शीला ने इशारा किया है। पहले तुम्हें मैं वह कहानी कह दूं। प्यारी कहानी है। अंबुजी भाई दीवान ने प्रश्न पूछा था, इसलिए वह कहानी कहनी पड़ी। उन्होंने प्रश्न पूछा था कि भोजन करते वक्त चर्चा चल पड़ी और किसी ने मुझसे कहा कि जब दादू की मृत्यु हुई तो उनके दो शिष्य--रज्जब और सुंदरो--बड़ा अनूठा व्यवहार किए। रज्जब ने तो आंखें बंद कर लीं और फिर कभी आंखें नहीं खोलीं। और सुंदरो, दादू की जब लाश उठाई गई, तो उनके बिस्तर पर उनका कंबल ओढ़ कर सो गया, फिर उसने कभी बिस्तर नहीं छोड़ा। दीवान जी ने पूछा था कि मुझे यह बात कुछ जंचती नहीं। ये कहीं जाग्रत पुरुषों के ढंग हैं कि एक ने आंख बंद कर लीं और जिंदगी भर आंख न खोलीं! और एक बिस्तर पर लेट गया सो उठा ही नहीं फिर, जब तक मर न गया! ये कहीं जाग्रत पुरुषों के लक्षण हैं, प्रबुद्ध पुरुषों के लक्षण हैं? ये समाधिस्थ पुरुषों के लक्षण हैं? यह तो बड़ी आसक्ति, बड़े मोह से ही संभव हो सकता है। जो अनासक्त हो गए हैं, जो वीतमोह हो गए हैं, जो वीतराग हो गए हैं, उनके लिए ऐसा करना! आप इस संबंध में क्या कहते हैं?
मेरा रज्जब और सुंदरो से लगाव है। दादू के बहुत शिष्य थे। दादू उन धन्यभागी गुरुओं में से एक हैं जिनके बहुत शिष्य थे और अनूठे शिष्य थे। नानक, कबीर, रैदास, फरीद, किसी के पास शिष्यों की ऐसी अदभुत जमात न थी, जैसी दादू के पास थी। दादू ने बड़े बेजोड़ और अद्वितीय हीरे इकट्ठे किए थे। कबीर भी इस संबंध में पीछे पड़ गए। दादू में कुछ कला थी शिष्यों को पुकार लेने की। दादू में कुछ कला थी शिष्यों को अपने से जोड़ लेने की। उनकी जमात बड़ी थी, उनका संघ बड़ा था। लेकिन उन सब हीरों में रज्जब और सुंदरो तो कोहिनूर थे। रज्जब ने क्यों आंखें बंद कर लीं?
रज्जब ने इसलिए आंखें बंद नहीं कर लीं कि दादू से आसक्ति थी। रज्जब ने इसलिए आंखें बंद कर लीं कि रज्जब ने कहा, जिसने दादू को देख लिया अब उसे देखने को क्या बचा! इस परम सौंदर्य को देख लेने के बाद अब आंखों को खोल कर नाहक कष्ट क्यों देना! अब इससे ऊंचा कोई शिखर तो दिखाई पड़ेगा नहीं। जो गौरीशंकर पर चढ़ गया हो उसे तुम पूना के टीलों पर चढ़ कर झंडा गड़ाने को कहो, तो वह कहेगा, छोड़ो यह काम तुम्हीं कर लो। तुम एडमंड हिलेरी को और तेनजिंग को राजी न कर सकोगे कि पूना की पहाड़ी पर चढ़ जाओ। वे कहेंगे, क्या मजाक करते हो!
दादू को जिसने देखा, भर गया मन। इससे न परम सौंदर्य हो सकता है, न परम प्रसाद हो सकता है। रज्जब ने आंखें इसलिए बंद नहीं कीं कि आसक्ति थी। नहीं, रज्जब ने आंखें बंद कीं कि अब आंखों पर व्यर्थ की धूल क्यों जमानी! कौन देखने को बचा? दादू में सब देख लिया देखने योग्य। दादू में परमात्मा को भी देख लिया। अब और क्या देखना है!
सूरदास की कहानी है कि उन्होंने आंखें फोड़ ली थीं; वह डर के कारण, भय
के कारण। अगर सच है कहानी तो। मैं नहीं मानता कि सच है। नहीं होनी चाहिए! क्योंकि सूरदास के प्रति मेरा आदर इतना है कि मैं कहानी को झूठ कहूंगा। मेरे अपने मापदंड हैं। सूरदास के प्रति मेरा सम्मान इतना है कि मैं सारे इतिहास को झुठला सकता हूं। नहीं, यह कहानी सच नहीं हो सकती। क्योंकि अगर यह कहानी सच हो तो सूरदास की सारी गरिमा मिट्टी में मिल जाती है। यह कहानी झूठ होनी ही चाहिए। एक सुंदर स्त्री को देख कर डर के कारण सूरदास आंखें फोड़ लें कि ये आंखें रहेंगी तो आसक्ति रहेगी, वासना जगेगी।
क्या तुम सोचते हो अंधे आदमी में वासना नहीं होती? तब तो अंधे फिर धन्यभागी हैं! फिर उन पर दया मत करो, दया खुद पर करो कि भगवान ने तुम्हें

अंधा नहीं बनाया। फिर तो अंधों की पूजा करो। उनकी आंखों का इलाज मत करवाओ। फिर डाक्टर मोदी से प्रार्थना करो कि यह जो तुम करते हो नेत्र-चिकित्सा यज्ञ, बंद करो! कहां बेचारे धन्यभागी पुण्यात्माओं को तुम वापस संसार में घसीट रहे हो!
अंधे कोई ज्ञान को उपलब्ध नहीं हो जाते, न वासना से मुक्त हो जाते हैं। अंधे तो और भी तड़फड़ाते हैं वासना से। तुम्हारे पास तो कम से कम आंख तो है। आंख भी तृप्ति देती है, क्योंकि आंख भी तो अनुभव का एक ढंग है। आंख भी तो छूने का एक उपाय है। और आंख बंद कर लोगे, इससे क्या होगा? तुम ही खुद आंख बंद करके देखो। जिन तस्वीरों के डर के कारण तुमने आंख बंद कर ली है, वे ही तस्वीरें और-और सुंदर होकर प्रकट होंगी। होने ही वाली हैं।
कल ही लक्ष्मी एक लेख लेकर आई थी। किसी मित्र ने सूरत से भेजा है। मुक्तानंद के संबंध में है--कि जब वे साधना कर रहे थे और ध्यान करते थे एक कोठरी में बंद होकर, तो दरवाजा बंद, ताला लगा और एक सुंदर स्त्री एकदम प्रकट हो जाए। बहुत सुंदर स्त्री! वे इतने घबड़ा जाएं कि दरवाजा खोल कर बाहर आ जाएं। बाहर एक झूला था, उस झूले पर बैठ जाएं। मगर वह स्त्री उनका पीछा करे, वह उनका पीछा न छोड़े। तो जिन मित्र ने भेजी है वह अखबार की कटिंग, उन्होंने पूछा है कि इसका क्या रहस्य है?
इसमें कुछ रहस्य है? यह तो सीधी-सादी बात है। दबाई हुई वासना न तालों
से रोकी जा सकती है, न दीवालों से रोकी जा सकती है। कोई स्त्री वगैरह नहीं आ रही है। जरा मुक्तानंद अपनी तस्वीर तो आईने में देखें! कौन सुंदर स्त्री दीवाल-दरवाजे पार करके आएगी? किसी सुंदर स्त्री के पीछे खुद तो जाकर देखें। भागेगी! पुलिस में खबर कर देगी! नहीं, अपनी ही दबाई हुई वासना... मगर उन्होंने कहानी इसलिए लिखी है कि इस तरह से ऋषि-मुनियों के जीवन में सदा होता रहा, सो वे भी ऋषि-मुनि हो गए। वे ऋषि-मुनि भी इन्हीं जैसे थे। इससे मुक्तानंद की ऊंचाई नहीं बढ़ती, इससे केवल ऋषि-मुनियों की ऊंचाई गिरती है, और कुछ नहीं होता। इससे सिद्ध होता है कि तुम्हारे तथाकथित ऋषि- मुनियों में भी अधिकतर वासनाग्रस्त, अपनी वासना को दबाए हुए लोग थे। अप्सराएं आ रही हैं उनको सताने के लिए। जैसे अप्सराओं को और कहीं कोई सुंदर व्यक्ति मिल नहीं सकते! और ऋषि-मुनियों की हालत तो देखो। सूख कर कांटा हो रहे हैं, काले पड़ गए हैं, धूप-धाप में खड़े रहे हैं, शरीर हड्डी- हड्डी हो गया है। इन जीर्ण-जरा कंकालों के लिए अप्सराएं आती हैं स्वर्ग से! इंद्र से मन नहीं भरता, इंद्राणी इनकी तलाश करती आती है! सिर्फ दबी हुई वासना है, और कुछ भी नहीं।
सूरदास ने आंखें नहीं फोड़ लीं डर के कारण। हां, यह मैं मानता हूं कि हो सकता है आंखें बंद कर ली हों जिस दिन परमात्मा देखा हो उस दिन। फिर देखने को कुछ न रहा हो। जैसे रज्जब को हुआ। रज्जब ने तो साक्षात दादू में परमात्मा को उठते-बैठते, चलते-बोलते, सब तरह से देखा था। अब देखने को कुछ नहीं बचा तो आंख बंद कर लीं। नहीं किसी आसक्ति के कारण, वरन किसी परम अनुभव के कारण। अपमान होगा दादू का, अब क्या देखना है! असंभव था यह रज्जब के लिए। जिस दादू से सब कुछ मिल गया, अब उसको छोड़ कर और क्या देखना है!
और सुंदरो, इधर उठी लाश उधर वह बिस्तर में समा गया! उसने ओढ़ लिया कंबल दादू का। सुंदरो का इतना तादात्म्य हो गया था दादू से कि बहुत बार ऐसा हो जाता था कि सुंदरो बाहर बैठा है और कोई आया और उसने पूछा कि दादू कहां हैं, मुझे दर्शन करने हैं--तो वह अपनी तरफ बता देता। इतना तादात्म्य था उसका। उसने अपने को ऐसा लीन किया था दादू में!
जब शिष्य अपने को गुरु में डुबोता है, तो गुरु को भी अपने में डूबा हुआ पाता है। जब शिष्य अपने भेद छोड़ देता है, तो गुरु के तो भेद पहले से ही न थे, अभेद हो जाता है। कई बार तो लोग बड़े नाराज हो जाते जब उनको बाद में पता चलता कि वे सुंदरो के ही पैर छूकर लौट आए। और लोग आकर कहते सुंदरो को कि यह बात ठीक नहीं, यह कैसी मजाक! हम मीलों चल कर आए दादू को नमस्कार करने! पर सुंदरो कहता कि तुम नमस्कार करके गए, तुम्हारा नमस्कार पहुंच गया। अब वैसे तुम्हारी जिद शरीर की ही हो, तो भीतर चले जाओ, दादू वहां हैं। अगर आत्मा का सवाल हो, तो मेरी आंखों में झांक लो और तुमने दादू की आंखों में झांक लिया।

इसलिए दादू की तो लोग अरथी ले चले, सुंदरो उनकी अरथी में भी नहीं गया।
वह बिस्तर पर लेट रहा। जैसे रास्ता ही देखता हो इतने दिन से कि हटो भी अब! यानी अब हम कब तक बिस्तर के बाहर ही रहें! न रोया, न परेशान हुआ। दादू के कपड़े पहन लिए। जब लोग लौट कर आए तो देखा कि वह बिल्कुल ही दादू बना बैठा है। दादू के कपड़े, दादू का कंबल, वही रंग-ढंग। और उस दिन से लोगों ने देखा कि उसकी वाणी में भी वही बात आ गई जो दादू की वाणी में थी। उसके आस-पास भी वही प्रसाद, वही सुगंध बिखरने लगी जो दादू में थी। और उसने अपना नाम ही नहीं बचाया। सुंदरो तो छोड़ ही दिया उसने। उसके बाद उसने जो पद लिखे हैं, उसमें वह दादू का ही उल्लेख करता है--कहे दादू! लिखता है सुंदरो, लेकिन पद में जोड़ता है--कहे दादू! लोगों ने उससे कहा भी कि इससे बड़ी मुश्किल होगी, पीछे लोग तय न कर पाएंगे कि कौन से वचन दादू के, कौन से सुंदरो के!
उसने कहा, तय करने की जरूरत ही क्या है? सभी वचन उनके हैं! सुंदरो है कहां? सुंदरो कब का गया! सुंदरो, पहले दिन ही मैं उनके पैरों में गिरा था, उसी दिन चला गया। तुमको देखने में देर लगी, बात और; मैं तो उसी दिन समझ गया कि अब इस आदमी के सामने क्या टिकना! इस आदमी के साथ क्या बचना! इससे क्या अलग-थलग रहना! इसके साथ तो एक हो जाने में मजा है। बूंद मेरी उसी दिन सागर हो गई। तुम मानो या न मानो, लेकिन जब बूंद सागर में गिरती है तो सागर हो जाती है। सुंदरो नहीं बचा है।
यही उसका सौंदर्य था। दादू ने उसे सुंदरो का नाम दिया था--यही उसका सौंदर्य था कि उसका समर्पण समग्र था।
रज्जब के लिए दादू कहते थेः रज्जब, तू गज्जब कियो! उसने भी गजब का काम किया था।
दो कहानियां प्रचलित हैं रज्जब के संबंध में। एक तो यह कि बचपन में उसके मां-बाप, जब वह केवल सात वर्ष का था, दादू को नमस्कार करने आए थे और रज्जब को साथ ले आए थे। रज्जब फिर लौटा नहीं। मां-बाप तो लौट गए। बहुत समझाया, लेकिन रज्जब ने कहा कि जिसकी तलाश थी वह मिल गया; जिस घर की तलाश थी वह मिल गया। मुझे मेरा असली घर मिल गया। आपके घर अब तक टिका था, क्योंकि असली घर का मुझे पता नहीं था। आप मेरे मां-बाप थे, क्योंकि मुझे असली मां- बाप का पता नहीं था। अब नहीं जाऊंगा।
इसलिए दादू कहते हैंः रज्जब, तू गज्जब कियो! सात साल का बच्चा!
दूसरी कहानी है कि रज्जब की बारात निकली है। वह दूल्हा बन कर विवाह करने जा रहा है। ठीक बारात पहुंच गई गांव में। दुल्हन के घर शहनाई बज रही है, मेहमान इकट्ठे हो गए हैं, स्वागत की तैयारियां हो रही हैं, बैंड-बाजे बज रहे हैं। फूलों से लदा हुआ रज्जब का घोड़ा, रज्जब शान से घोड़े पर बैठा है! और बीच रास्ते पर दादू आकर खड़े हो गए, घोड़े की लगाम पकड़ ली। रज्जब ने एक क्षण उनकी आंखों में देखा, घोड़े से उतर कर उनके पैरों पर गिर पड़ा। और बारातियों से कहा, वापस जाओ। जिससे विवाह होना था वह यहीं आ गया।
रज्जब, तू गज्जब कियो!
ये दो कहानियां प्रचलित हैं। कौन ठीक है, कौन ठीक नहीं, इस सब में मैं नहीं पड़ता। क्योंकि दोनों तो ठीक नहीं हो सकतीं। या पहली ठीक होगी तो दूसरी नहीं हो सकती ठीक या दूसरी होगी तो पहली ठीक नहीं हो सकती। मगर यह व्यर्थ की बकवास पंडितों के लिए। वे इसकी खोजबीन करें। मुझे कुछ अड़चन नहीं मालूम पड़ती; मुझे तो लगता है दोनों एक साथ ठीक हो सकती हैं। क्योंकि उन दिनों छोटे बच्चों के विवाह होते थे, सात साल का बच्चा ही... बारात निकली... और बारात कोई उन दिनों पच्चीस साल की नहीं निकलती थी। जमाने बदल गए।
मेरी मां मुझसे कहती है कि उनका जब विवाह हुआ तो नौ साल की कुल उनकी उम्र थी। पता ही नहीं था, क्या हो रहा है! और सारा गांव इकट्ठा है, सारे लोग बाहर हैं, सिर्फ मेरी मां को ही लोग बाहर नहीं जाने दे रहे हैं! और उसकी बेचैनी, क्योंकि घोड़े पर सवार होकर दूल्हा आया है, उसको भी देखना है। और बैंड-बाजे बज रहे हैं, जैसे कभी नहीं बजे घर पर। और सारे घर में रोशनी की गई है और दीवाली मनाई जा रही है और पटाखे-फुलझड़ी छूट रहे हैं और यह मौका और नौ साल की बच्ची को घर के भीतर बंद रखो! आखिर वह पहुंच ही गई। देखना ही पड़ेगा।

उन दिनों शायद रज्जब सात साल का ही रहा हो और ये दोनों बातें एक साथ घट
गई हों। पर बातों का कोई बहुत मूल्य नहीं है संतों के जीवन में। घटनाएं तो प्रतीकात्मक हैं; हुई भी हों, न भी हुई हों; मगर उनका सार पी लेने जैसा है, आत्मसात कर लेने जैसा है।
शीला कह रही है कि संत रज्जब, सुंदरो और दादू की मृत्यु की कहानी मेरे लिए बड़ी ही रोमांचक रही। परंतु मेरे गुरु और हमारे प्यारे दादा, जो मेरे मित्र भी थे, उनकी मृत्यु के समय की आंखों देखी घटना का अनुभव मेरे लिए उससे भी कहीं अधिक रोमांचकारी हुआ।
स्वाभाविक। मैंने कहा, तुमने माना, प्रीति उमगी। लेकिन फिर भी जब तुम खुद देखोगी, तो बात और हो जाएगी। मगर ख्याल रखना, अगर मैंने रज्जब, सुंदरो और दादू की कहानी तुमसे न कही होती, और-और न मालूम कितने रज्जब और सुंदरो और दादुओं की कहानियां तुमसे न कही होतीं, तो शीला, तुम मेरे पिता की मृत्यु में भी चूक जातीं, देख नहीं पातीं। उन सारी कहानियों ने रास्ता बना दिया। उन सारी कहानियों ने तुम्हारे भीतर संवेदनशीलता जगा दी, होश जगा दिया।
अब यहां मेरे बहुत से रिश्तेदार इकट्ठे हुए हैं। उनकी समझ के बाहर है। मेरी एक बहन के पति कैलाश ने लिखा है कि आप कितना ही कहें कि यह उत्सव मनाने का क्षण है, मैं नहीं मान सकता।
कैसे मानोगे? संन्यासी नहीं हो। मेरे रंग का तुम्हें कोई अनुभव नहीं है। मुझमें डूबे नहीं हो। मेरे संन्यासियों को समझ में आता है कि उत्सव की घड़ी है। तुम्हें समझ में नहीं आ सकता। स्वाभाविक है।
दूसरे एक रिश्तेदार ने लिखा है कि यद्यपि मैं संदेह नहीं करना चाहता; लेकिन बुद्धत्व हो सकता है, इसमें मुझे संदेह उठता है।
स्वाभाविक। तुम्हें ध्यान का कोई अनुभव न होगा, संन्यास का कोई अनुभव
न होगा। बुद्धत्व तो बहुत दूर की बात हो गई फिर। कंकड़-पत्थरों का अनुभव नहीं है, हीरे-जवाहरातों की बात ही क्या करनी है! साधारण अनुभव ध्यान का न हो तो असाधारण आत्यंतिक अनुभव की तो तुम कल्पना भी नहीं कर सकते, अनुमान भी नहीं कर सकते। तुम यहां आ गए हो, औपचारिक है तुम्हारा आना। तुम्हारा संबंध पारिवारिक है, सामाजिक है। तुम्हारा संबंध आत्मिक नहीं है। जो मेरे रंग में नहीं डूबे हैं, वे सोचते भला हों कितने ही कि मेरे परिवार के हैं, मेरे परिवार के नहीं हैं। मेरा परिवार तो उन दीवानों का है जो गैरिक हैं। इसलिए कल एक दूसरे मेरे बहन के पति ने कहा कि हम सब की इच्छा है कि परिवार के सब लोग इकट्ठे हुए हैं, तो आप के साथ बैठ कर हम परिवार के सारे लोग तस्वीर उतरवाएं।
मैंने कहा कि मत करो ऐसी झंझट। ज्यादा उनसे नहीं कहा, क्योंकि अकारण दुख मैं कभी किसी को देना नहीं चाहता। देने योग्य कोई हो उसी को दुख देता हूं। उसको भी अर्जित करना होता है। मेरी चोट खानी हो तो उसकी पात्रता चाहिए। उनको क्या दुख देना! नये-नये हैं, नया-नया मेरी बहन से विवाह हुआ है। मुझसे कुछ ज्यादा लेना-देना नहीं है। दो दिन के लिए पहले आए थे, दो दिन के लिए अभी आए हैं, बस इतना ही संबंध है। लेकिन मैं यह कह देना चाहता हूं कि मेरा परिवार तो मेरे संन्यासियों का है, और मेरा कोई परिवार नहीं है। मेरे परिवार में संयुक्त होने का तो एक ही उपाय है--और वह हैः मैं जिस यात्रा पर ले चल रहा हूं लोगों को, उस यात्रा में सम्मिलित हो जाओ।
शीला, इसलिए तुझे अनुभव हो सका, संवेदनशीलता निर्मित हुई है।
शीला भी मेरे पास ऐसे आकर डूब गई जैसे रज्जब डूब गया था दादू के पास आकर। शीला, तू गज्जब कियो! अमेरिका में थी। सब सुख-सुविधा में थी। खूब कमा रही थी। और मुझसे मिलने तो आकस्मिक रूप से आई थी। और वैसे ही जैसे रज्जब मां-बाप के साथ मिलने चला गया था। चूंकि शीला के पिता मेरे विचारों में उत्सुक रहे हैं, उन्होंने शीला को कहा कि जाने के पहले, अमेरिका जाने के पहले, एक दफा मुझे मिल आए। चूंकि पिता ने कहा था, इसलिए मिलने आ गई थी। मगर आई सो आई, फिर गई नहीं। झुकी सो झुकी, फिर उठी नहीं। डूबी सो डूबी। फिर भूल ही गई अमेरिका और अमेरिका की सारी सुख-सुविधा। फिर मैं ही उसका सब कुछ हो गया। उससे हृदय तैयार हुआ है, एक पात्रता निर्मित हुई है, आंखें खुली हैं।

इसलिए यह अपूर्व घटना से तू चूक नहीं सकी। यह तुझे दिखाई पड़ सका कि कुछ अभूतपूर्व घटित हुआ है।
जो भी वहां मुझमें डूबे हुए लोग थे, उन सबको लगा। निकलंक वहां था, शैलेंद्र वहां था, अमित वहां था, स्वभाव वहां था, सोहन वहां थी, ऊषा वहां थी। शीला रोज चक्कर मारती थी। लक्ष्मी वहां रोज जाती थी। मेरी मां वहां थी। उन सबको अनुभव हुआ कि कुछ अपूर्व घटित हुआ है, जिसको भाषा में बांधने की कोई सुविधा नहीं है, जिसे समझना मुश्किल है। लेकिन कुछ हुआ है, कुछ पार का उतरा है! यह सब उन्हीं को अनुभव हो सका जो मेरे निकट थे। वहां नर्सें भी थीं, वहां डाक्टर भी थे, वहां अस्पताल का स्टाफ भी था; उनको कुछ अनुभव नहीं हो सका।
जब मैं दूसरे दिन यहां बोला तो डाक्टर सरदेसाई ने सारे स्टाफ और डाक्टरों को इकट्ठा करके मेरा टेप सुनवाया। सरदेसाई का धीरे-धीरे मुझसे लगाव बनना शुरू हुआ है। डरते-डरते, झिझकते-झिझकते। स्वाभाविक है, मेरे जैसे आदमी के पास आकर घबड़ाहट तो लगती है। घबड़ाहट यह लगती है--पत्नी है, बच्चे हैं, उनकी फिक्र करनी है। और यहां देखते हैं, जो लोग आते हैं वे ऐसे दीवाने हो जाते हैं, डूब जाते हैं। अब उनके मित्र अजित सरस्वती को उन्होंने डूबते देखा है। अजित सरस्वती ही उन्हें मेरे पास ले आए। वे मेरे डाक्टर हैं। मेरे शरीर में कुछ गड़बड़ होती है तो वे आते हैं। मगर वे आए और भागे। एक सेकेंड ज्यादा वे कमरे में नहीं रुकते हैं। और मैं जानता हूं कारण, वे भी जानते हैं और उन्होंने लोगों को कहा भी है कि कारण है। अभी मेरी तैयारी नहीं है। और खतरा वहां यह है कि मैं तो जाऊं उनका शरीर देखने, मैं तो पकडूं उनकी नब्ज, वे पकड़ लें मेरी नब्ज! फिर मेरे बच्चे, फिर मेरी पत्नी... ।
उनको थोड़ा-थोड़ा कुछ भान था, कुछ हुआ, धुंधला-धुंधला, बहुत दूर की आती ध्वनि, लेकिन साफ नहीं। चिंतित जरूर थे कि जब तबीयत बिल्कुल ठीक हो गई थी, जब खतरे के बिल्कुल बाहर हो गए थे... । दिन में तीन बार मुझे खबर करते थे कि अब कैसी स्थिति है, कैसी स्थिति है। अड़तालीस घंटे तक कहा था कि खतरा है, फिर कहा कि अब कोई खतरा नहीं है। और अब तो काफी दिन, पांच सप्ताह बीत चुके थे। अब तो खतरे का सवाल ही नहीं था। जब खतरा था तब खतरा न हुआ और जब सारा खतरा बीत चुका था तब अचानक एक क्षण में शरीर छूट गया। धक्का तो उन्हें भी बहुत लगा। लगता था सफल हुए जा रहे हैं। और एक चमत्कारपूर्ण सफलता थी। साधारणतः उस तरह की बीमारी ठीक नहीं होती। पैर पुनरुज्जीवित होने लगा था, उसमें फिर गरमी आने लगी थी, खून फिर दौड़ने लगा था, वे फिर चलने लगे थे। ऐसी हालत में तो पैर को काटना ही होता है, और कोई उपाय नहीं होता। मस्तिष्क में खून जम गया था, वह फिर पिघल गया था। वे ठीक से बोलने लगे थे। सब स्वस्थ हो गया था। और उस दिन तो परिपूर्ण स्वस्थ थे। और अचानक भोजन करने के बाद एक क्षण में सारी बात समाप्त हो गई, हिचकी भी न आई!
आमतौर से मरते वक्त हिचकी आती है। लेकिन जिनका जीवन सातवें चक्र से निकलता है, सहस्रार से, उनको हिचकी नहीं आती। जिनका जीवन, जिनका प्राण सहस्रार से, सातवें चक्र से विदा होता है, वे दुबारा जगत में वापस नहीं लौटते और उनकी विदाई का क्षण अपूर्व होता है। इसलिए बहुत से मित्रों ने लिखा है... वैराग्य वहां मौजूद था और उसने लिखा है कि मैं और भी मृत्युओं में मौजूद रहा हूं, लेकिन जब भी मैंने मृत्यु कहीं देखी है तो बहुत भारीपन छाती पर उतर आया, बड़ी उदासी, बड़ी बेचैनी। लेकिन यहां तो उलटा ही हुआ। मृत्यु घटी तो मेरा सारा भार समाप्त हो गया! मैं इतना हलका-फुलका हो गया जैसा मैं कभी भी न था! और वहां एक ताजगी थी और एक हवा थी। एक और ही लोक की हवा! जैसे मृत्यु घटी ही नहीं है! जैसे महाजीवन घटा है!
जो मुझसे जुड़े हैं, जिन्होंने ध्यान अनुभव किया है, मैं जो तुमसे निरंतर कह रहा हूं जिन्होंने उसे जाना है, जो मेरे साथ तादात्म्य कर लिए हैं, जो या तो रज्जब हो गए हैं या सुंदरो हो गए हैं--वे ही मेरे परिवार के हैं। और जिनको भी मेरे परिवार का होना हो उनके लिए द्वार खुले हैं, निमंत्रण है। लेकिन औपचारिकता से मेरे परिवार का कोई संबंध नहीं है। शीला, तू कहती हैः "इससे मेरी आंखें मधुर आंसुओं से भर जाती हैं।"

निश्चित ही। आंसू तो आएंगे, क्योंकि फिर दुबारा तू उन्हें न देख पाएगी। आंसू तो आएंगे, क्योंकि दुबारा अब वैसा सौम्य और सरल और वैसा स्वाभाविक और नैसर्गिक व्यक्ति खोजना मुश्किल होगा। एक व्यक्ति जैसा दूसरा व्यक्ति होता भी नहीं। इसलिए जो बात विदा हो गई, आकाश में सुगंध होकर उड़ गई, उसे अब दोबारा मुट्ठी में पकड़ने का उपाय नहीं है। इसलिए आंसू तो आएंगे। लेकिन चूंकि तू समझती है, तुझे बोध है, इसलिए आंसू भी मधुर होंगे, मीठे होंगे। उनमें आनंद का स्वर होगा। उनमें आनंद के घूंघर बजते होंगे।
रोओ भी तो आनंद से रोओ। रोओ भी तो नाचते हुए रोओ। तुम्हारे आंसू भी फूल हों। तुम्हारे आंसुओं में भी वीणा के स्वर हों। मैं तुम्हें जीवन ही नहीं सिखाना चाहता, मैं तुम्हें मृत्यु भी सिखाना चाहता हूं। ये सारे अवसर हैं। ऐसे और अवसर आएंगे। एक लाख संन्यासी हैं। बहुत से मित्र विदा होंगे, तो तुम्हें विदाई देने की कला भी सीखनी होगी--नाचते, गाते, रोते-- लेकिन रोना दुख का नहीं, पीड़ा का नहीं, संताप का नहीं--आनंद का, उत्सव का, महोत्सव का!
आज इतना ही।

काहे होत अधीर
तीसरा प्रवचन

साजन-देश को जाना

जेकरे अंगने नौरंगिया, सो कैसे सोवै हो।
लहर-लहर बहु होय, सबद सुनि रोवै हो।।
जेकर पिय परदेस, नींद नहिं आवै हो।
चौंकि-चौंकि उठै जागि, सेज नहिं भावै हो।।
रैन-दिवस मारै बान, पपीहा बोलै हो।
पिय-पिय लावै सोर, सवति होई डोलै हो।।
बिरहिन रहै अकेल, सो कैसे कै जीवै हो।
जेकरे अमी कै चाह, जहर कस पीवै हो।।
अभरन देहु बहाय, बसन धै फारौ हो।
पिय बिन कौन सिंगार, सीस दै मारौ हो।।
भूख न लागै नींद, बिरह हिये करकै हो।
मांग सेंदुर मसि पोछ, नैन जल ढरकै हो।।
केकहैं करै सिंगार, सो काहि दिखावै हो।
जेकर पिय परदेस, सो काहि रिझावै हो।।
रहै चरन चित लाई, सोई धन आगर हो।
पलटूदास कै सबद, बिरह कै सागर हो।।

प्रेमबान जोगी मारल हो, कसकै हिया मोर।।
जोगिया कै लालि-लालि अंखियां हो, जस कंवल कै फूल।
हमरी सुरुख चुनरिया हो, दूनों भये तूल।।
जोगिया कै लेउं मिर्गछलवा हो, आपन पट चीर।
दूनों कै सियब गुदरिया हो, होई जाब फकीर।।
गगना में सिंगिया बजाइन्हि हो, ताकिन्हि मोरी ओर।
चितवन में मन हर लियो हो, जोगिया बड़ चोर।।
गंग-जमुन के बिचवां हो, बहै झिरहिर नीर।
तेहिं ठैयां जोरल सनेहिया हो, हरि ले गयो पीर।।
जोगिया अमर मरै नहिं हो, पुजवल मोरी आस।
करम लिखा बर पावल हो, गावै पलटूदास।।

सावन बीता जाए, ऐसे में तुम कहां छिपे हो

कोयल कूके, मैना चहके
कलियां चटकें, सब्जा लहके
पात-पात खुशबू से महके
मदिरालय सा गुलशन बहके
बहके, रंग उड़ाए, ऐसे में तुम कहां छिपे हो सावन बीता जाए, ऐसे में तुम कहां छिपे हो बिखरीं अलकें, सरके घूंघट
झूमीं सखियां, नाचा पनघट
मन में उमंगें लेती करवट
दूर कोई सांवरिया नटखट
मद्धम स्वर में गाए, ऐसे में तुम कहां छिपे हो सावन बीता जाए, ऐसे में तुम कहां छिपे हो बिजली कौंधे, गरजे बादल
तेज हवा खड़काए सांकल
मेरा रोम-रोम है बेकल
तुम्हें निहारे बहता काजल
नेह की जोत जगाए, ऐसे में तुम कहां छिपे हो सावन बीता जाए, ऐसे में तुम कहां छिपे हो

तांडव नृत्य करे तनहाई
तृष्णा सांपिन सी लहराई
गम ने अलग इक रास रचाई
सांस अजानी सी अकुलाई
धीरज हांक लगाए, ऐसे में तुम कहां छिपे हो
सावन बीता जाए, ऐसे में तुम कहां छिपे हो
परमात्मा की खोज में दो मार्ग हैंः एक तो उनका, जो परमात्मा को सत्य
की भांति देखते हैं। और एक उनका, जो उसे प्रीतम की भांति देखते हैं। दोनों ही मार्ग सही हैं। दोनों ही मार्ग एक ही मंजिल पर पहुंचाते हैं। लेकिन दोनों मार्गों के ढंग अलग, रंग अलग।
जो परमात्मा की खोज में सत्य की भाषा से सोचता है, उसकी खोज रूखी-सूखी होगी; वहां कोयल नहीं बोलेगी, मैना नहीं चहकेगी, वहां सावन नहीं आएगा, वहां फूल नहीं नाचेंगे, वहां मोर पंख नहीं फैलाएंगे, वहां इंद्रधनुष नहीं होंगे। वहां गीत नहीं होगा, क्योंकि वहां प्रीति नहीं होगी। सूखा-सूखा मरुस्थल जैसा होगा वह मार्ग। मरुस्थल का सन्नाटा होगा वहां। मरुस्थल का अपना सौंदर्य है, अपनी शांति, अपना मौन। लेकिन इस बगिया की चहचहाहट, ये पक्षियों के गीत, इन सबकी वहां भनक भी सुनाई नहीं पड़ेगी--न गुलाब खिलेंगे, न चंपा, न चमेली, न बेला, न कमल। वहां रंग नहीं होंगे। वहां रास नहीं होगा। वहां बांसुरी नहीं बजेगी। वहां सन्नाटा होगा।
जो परमात्मा को सत्य की भांति देखते हैं, उनका मार्ग ज्ञान का मार्ग है। जो परमात्मा को प्यारे की भांति देखते हैं, उनका मार्ग भक्ति का मार्ग है।
पलटू भक्ति के मार्गी हैं, इसलिए उनकी भाषा को समझने के लिए तुम्हें ध्यान रखना होगा। कहीं तुम उनके प्रेम को अपना प्रेम मत समझ लेना! तुम्हारा प्रेम तो क्षणभंगुर है, पानी का बबूला है! जैसा पलटू ने कहाः तुम्हारा प्रेम तो ऐसे है, जैसे बताशा कोई पानी में डाल दे। अभी है, अभी गया। हवा की एक लहर है, आयी और गई हो गई। तुम्हारा प्रेम टिकता नहीं है। तुम्हारा प्रेम सपने जैसा है।
पलटू जब प्रेम की बात करें तो याद रखना, वे किसी और प्रेम की बात कर रहे हैं। भाषा तो तुम्हारी ही बोलनी पड़ेगी, लेकिन उस भाषा में अर्थ तुम अपने मत डालना। वैसा करने से ही संतों से लोग चूक जाते हैं, कुछ का कुछ समझ लेते हैं।
जिस सावन की बात पलटू कर रहे हैं, वह तुम्हारा सावन नहीं है। वह सावन
तो तब घटित होता है जब भीतर समाधि के मेघ घिरते हैं। जिस पपीहे की बात पलटू कर रहे हैं, वह तुम्हारा पपीहा नहीं है। जब तुम्हारे प्राण पी-कहां पी- कहां की पुकार से भर जाते हैं, उस पपीहे की बात पलटू कर रहे हैं।
पलटू का मार्ग हृदय का मार्ग है--प्रीति का, भक्ति का। स्वभावतः रससिक्त, आनंद-पगा! चल सको तो तुम्हारे पैरों में भी घूंघर बंध जाएं। समझ सको तो तुम्हारे ओंठों पर भी बांसुरी आ जाए। आंखें खोल कर हृदय को जगा कर पी सको पलटू को तो पहुंच गए मदिरालय में। फिर ऐसी छने, ऐसी छने, ऐसी बेहोशी आए कि होश भी न मिटे, होश भी प्रज्वलित हो उठे--और बेहोशी भी हो! ऐसी उलटबांसी हो। बेहोशी में सारा संसार डूब जाए और होश में भीतर परमात्मा जागे। बेहोशी में सब व्यर्थ बह जाए और होश में जो सार्थक है निखर आए।
इस बात को ख्याल में रख कर पलटू के एक-एक शब्द को लेना। पलटू के लिए परमात्मा प्रीतम है। पलटू विरहिनी की भाषा बोलते हैं।
जेकरे अंगने नौरंगिया, सो कैसे सोवै हो।
जिसके आंगन में विरह-आसक्ति भर गई हो! आंगन यानी जिसके प्राणों में।
हमारे प्राण छोटे-छोटे आंगन हैं। छोटे-छोटे आंगन में भी तो आकाश समाया होता है। वही आकाश, जो विराट है, आंगन के भीतर भी होता है, दीवाल के भीतर भी होता है। देह हमारी दीवाल है; देह के भीतर जो भरा आकाश है, वह हमारा आंगन है।
जेकरे अंगने नौरंगिया...

और जिसके भीतर परम प्यारे की याद भर गई हो; वह जो सभी रंगों का मालिक है, उसकी याद भर गई हो; जो सारे सौंदर्य का मालिक है, उसकी आसक्ति, उसकी चाहत पैदा हो गई हो--
सो कैसे सोवै हो।
वह सोना भी चाहे तो सो नहीं सकता।
यहां तुम भेद देखना। ज्ञानी को अपने को जगाने की कोशिश करनी पड़ती है। इसलिए ज्ञानियों की भाषा जागरण की भाषा है--जागो! ध्यान, स्मृति, जागरण--ये उनके शब्द हैं। सजग करो अपने को! सावधान होओ! सावचेत बनो! चैतन्य को उभारो! बुद्ध कहते हैंः सम्मासति! सम्यक स्मृति को जगाओ! महावीर कहते हैंः विवेक को उकसाओ! कृष्णमूर्ति जागरण की बात करते हैं; गुरजिएफ आत्म-स्मृति की। सबका अर्थ एक है कि झकझोरो अपने को, झाड़ दो सारी धूल निद्रा की, सचेत हो जाओ!
भक्त की हालत बड़ी और है। भक्त सोना चाहे तो नहीं सो सकता। ज्ञानी जगा- जगा कर भी मुश्किल से जगा पाता है और भक्त तो जागा ही रहता है, नींद आती नहीं। क्योंकि विरह की अग्नि जलती है, तो नींद कैसे आए! उसकी याद छाती में चुभी है भाले की तरह, तो नींद कैसे आए! इसलिए भक्तों ने नहीं कहा है जागो। भक्तों ने तो कहा है कि थोड़ी देर तो विश्राम ले लेने दो! कभी तो आंख लग जाने दो! कभी तो क्षण भर सो लेने दो! भक्तों ने प्रार्थना उलटी की है।
ये मार्ग बड़े भिन्न हैं। ज्ञानी को सजग करना पड़ता है अपने को, क्योंकि ज्ञानी अकेला है। और भक्त सजग है, क्योंकि परमात्मा की याद उसे झकझोरे दे रही है। परमात्मा की याद उसमें एक तूफान की तरह उठती है। नींद कहां! नींद बचेगी कहां!
लहर-लहर बहु होय...
वह याद आती ही चली जाती है, लहरों पर लहरें! जैसे सागर की लहरें आती हैं और तटों से टकराती हैं और चट्टानों पर बिखर जाती हैं। और लहरों पर लहरें! सागर थकता नहीं। न मालूम कितनी सदियों से लहरें आती रहीं, आती रहीं, चट्टानें उन्हें बिखेरती रहीं और लहरें आती रहीं। सागर अधीर नहीं होता। काहे होत अधीर--पलटू कहते हैं। ऐसी ही लहरें--प्रीति की, रोमांच से भर जाने वाली लहरें, रोएं-रोएं को कंपा जाने वाली लहरें--भक्त के प्राणों में उठती रहती हैं; सोए तो कैसे सोए!
लहर-लहर बहु होय, सबद सुनि रोवै हो।
और जब कभी सत्संग मिल जाता है और जब कभी सदगुरु मिल जाता है, जब कभी ऐसे व्यक्ति के साथ बैठने का अवसर आ जाता है जिसने पिया है उस परमात्मा के घाट से, तो उसका शब्द सुन कर और क्या करोगे सिवाय रोने के! आंसू झर-झर झरते हैं, आंखें झपकें तो कैसे झपकें! आंखें रोती हैं। रोने में सब नींद बह जाती है। आंसुओं की बाढ़ आती है, सब नींद का कूड़ा-कबाड़ ले जाती है।
ज्ञानी को बड़ी चेष्टा करनी पड़ती है ध्यान साधने की; भक्त को सहज सध जाता है। इसलिए भक्ति सहज-योग है। बस प्रीति उमग आए, प्रीति का बीज तुम्हारे हृदय में पड़ जाए, शेष सब अपने से हो जाता है। न सिर के बल खड़े होना है, न उपवास करके शरीर को गलाना है, न कांटों की सेज पर लेट जाना है। भक्त को तो तुम मखमल की सेज पर भी लिटा दो तो भी वह कांटों पर ही सोया है। वे जो लहरें चली आ रही हैं, वह जो याद टकराती है, वह जो सुरति उठ-उठ कर उठ आती है-- कहां मखमल की सेज! कहां महल! उसे तो एक ही धुन लगी है। वह तो अपनी धुन में डूबा है। उसकी तो श्वास-श्वास परमात्मा के लिए पुकार रही है।
लहर-लहर बहु होय, सबद सुनि रोवै हो।
और जब भी कभी शब्द सुनने मिल जाता है... भक्त कहते हैं शब्द उस स्रोत से उठी हुई ध्वनि को, जिसने अनाहत को जाना हो। तुम जिस दिन जानोगे अनाहत को, तुम्हारे भीतर शब्द उठेगा। या जिन्होंने अनाहत को जाना है उनके पास बैठोगे तो उनके शब्द को सुन कर तुम्हारे भीतर प्रीति की लहरें, उमंगें उठेंगी।
जेकर पिय परदेस, नींद नहिं आवै हो।
और जिसका पिया परदेस में हो, बहुत दूर, जिसका पता-ठिकाना भी न मिलता हो, जिसे पाती भी लिखनी हो तो लिखने का उपाय न हो, जिसकी दिशा का पता नहीं,

जिस तक पहुंचने वाले रास्ते का कुछ पता नहीं--जिसका पिया ऐसे परदेस में बसा हो!
जेकर पिय परदेस, नींद नहिं आवै हो।
वह चाहे भी तो कैसे नींद आए! नींद ला-ला कर नहीं आती। ज्ञानी को नींद तोड़नी पड़ती है, तोड़-तोड़ कर नहीं टूटती है। भक्त ला-ला कर भी नींद नहीं ला पाता है।
इस रहस्य को ठीक से ख्याल रखना। ज्ञानी को व्यर्थ ही लंबे मार्ग से यात्रा करनी पड़ती है। भक्त का मार्ग सुगम है, सरल है, नैसर्गिक है। प्रीति नैसर्गिक है। हम प्रेम को जानते तो हैं। माना हमारा प्रेम बड़ा कीचड़ भरा है; माना हमारा प्रेम फूल कम कांटे ज्यादा है; माना हमारा प्रेम सुबह कम रात का अंधेरा है। लेकिन रात के अंधेरे में सुबह छिपी है। और फूलों के बीच चाहे कितने ही कांटे हों, तो भी कांटों की सत्ता फूलों को नकार नहीं कर सकती। हजार कांटों में भी एक फूल खिला हो तो भी पर्याप्त है घोषणा के लिए कि परमात्मा है। और अंधेरी रात कितनी ही हो, अगर एक तारा भी उगा है तो पर्याप्त है, रोशनी का प्रमाण है। और अंधेरी रात जितनी अंधेरी होती है, सुबह उतने करीब आने लगती है।
हम प्रेम को जानते हैं--क्षणभंगुर प्रेम को जानते हैं। मगर जो क्षणभंगुर है वह भी तो शाश्वत का अंग है। क्षण भी तो शाश्वत का ही भाग है। हमने अंग को ही पूर्ण समझ लिया, यह हमारी भूल है। पर क्षण भी शाश्वत का ही कण है। भूल मिट जाएगी तो क्षण में भी शाश्वत का दर्शन होगा। बूंद में भी सागर दिखेगा। और एक फूल पर्याप्त है प्रमाण देने को कि परमात्मा है। और एक तारा काफी है ज्योति के होने के सबूत के लिए।
जेकर पिय परदेस, नींद नहिं आवै हो।
बस परदेस में बसे हुए प्यारे की स्मृति तुम्हें पकड़ ले। ज्ञानी कहता हैः आत्म-स्मृति को जगाओ! भक्त कहता हैः प्यारे की स्मृति को जगाओ! अपनी ही याद करनी बहुत कठिन है। परमात्मा की याद करनी सुगम है। क्योंकि पर की हमने सदा याद की है। पत्नी ने पति की याद की है, पति ने पत्नी की याद की है; मां ने बेटे की याद की है, बेटे ने मां की याद की है; मित्र ने मित्र की याद की है। हमने पर की याद की है। पर की याद के थोड़े से पाठ हमें मालूम हैं। माना कि हमारे पाठ वेद नहीं हैं, छोटे बच्चों की बारहखड़ी है, क ख ग है; मगर क ख ग से ही तो सारे वेद बन जाते हैं। इन्हीं वर्णाक्षरों से तो सारे वेद, सारे उपनिषद, सारे कुरान का जन्म हो जाता है। जिसे बारहखड़ी आ गई उसे सारे वेदों की कुंजी हाथ आ गई। माना कि हमारा प्रेम बड़ा छोटा है--छोटे आंगन जैसा। मगर छोटे आंगन से आकाश की तरफ द्वार खुलता है। इस छोटे प्रेम को बड़ा बनाया जा सकता है।
ध्यान का तो तुम्हें पता ही नहीं है, इसलिए ध्यान को जगाना दुस्तर है, दुरूह है, दुर्लभ है। प्रीति का, चलो ठीक-ठीक प्रीति का पता नहीं है, लेकिन प्रीति का पता तो है--गलत का ही सही। झूठा सिक्का ही हाथ में सही, मगर असली सिक्के की कुछ झलक तो उसमें होगी, तब तो वह झूठे सिक्के की तरह चलता है, नहीं तो चलेगा कैसे? उस पर छाप तो होगी, मुहर तो होगी। गलत ही सही, झूठा ही सही, मगर झूठ में भी सच की थोड़ी झलक होती है, नहीं तो झूठ चल ही नहीं सकता। झूठ को भी सच के पैर उधार लेने पड़ते हैं। झूठ को भी सच की बैसाखी पर चलना पड़ता है।
एक छोटे बच्चे से स्कूल में शिक्षक ने पूछा, तू इतनी देर से क्यों आया है?
तो उसने कहा, मैं गिर पड़ा और लग गई।
उसके शिक्षक ने कहा, अरे-अरे, मुझे माफ कर! मुझे क्या पता कि तू गिर पड़ा
और लग गई। कहां लग गई? कहां गिर पड़ा?
उसने कहा, अब आप यह न पूछें तो अच्छा। बिस्तर पर गिर पड़ा और नींद लग गई!
तो शिक्षक ने उसे पास बुला कर एक चांटा रसीद किया। उसने कहा, क्यों मारते हैं आप?
उसने कहा कि बिना चांटा मारे तुझे होश न आएगा, तेरी नींद न टूटेगी। गिर पड़ा और लग गई, तो अब चांटा पड़ेगा तो खुलेगी।

ध्यान के लिए तो बहुत झकझोरना पड़ता है गुरु को, बहुत चोटें मारनी पड़ती हैं।
एक शराबी पच्चीस पैसे का टिकट अपने सिर पर लगाए है, माथे पर लगाए है और लेटर बॉक्स में सिर डालने की कोशिश कर रहा है। एक सिपाही खड़ा उसे थोड़ी देर से देख रहा था, फिर पास आया और कहा कि बड़े मियां, यह क्या कर रहे हो?
उसने कहा कि पत्नी मायके गई है और मैं भी उसे लेने जा रहा हूं। देखते नहीं, पता लिख दिया है पत्नी के मायके का और टिकट भी लगा दी है!
हवलदार ने एक डंडा उसकी खोपड़ी पर मारा। थोड़ा होश लौटा। उस आदमी ने कहा
कि डंडा क्यों मारते हो?
उसने कहा, यह सील-मोहर लगा रहा हूं। बिना सील के लेटर-बॉक्स में कहीं जाएगा तो पहुंचेगा?
ध्यान के लिए तो बहुत डंडे खाने पड़ें, तो भी जग जाओ तो बहुत। क्योंकि ध्यान एक अर्थ में तुम्हारा बिल्कुल भी परिचित नहीं है। गलत ध्यान से भी परिचय नहीं है, ठीक की तो बात दूर। ध्यान शब्द कोरा है। ध्यान शब्द से तुम्हें कुछ नहीं उठता। लेकिन कोई कहे प्रेम, प्रीति, तो तुम्हारे भीतर थोड़ी उमंग आती है, थोड़ी लहर आती है, थोड़ी सुगंध आती है। इसलिए भक्तों ने सुगम और सहज को चुना है।
जेकर पिय परदेस, नींद नहिं आवै हो।
आओ प्राणाधार
फूल खिले करने के प्रियतम कारी बदरी छाई
गुलशन में, आंगन में, बन में फैल गई कजराई
झूम-झूम कर डाली-डाली गाती है मल्हार आओ प्राणाधार हरे-हरे पेड़ों पर बैठे कव्वे करत कुलेलें
बादल सूरज की किरणों से मिल कर होली खेलें
ईश्वर जाने तुम क्यूं याद आते हो बारंबार आओ प्राणाधार थम गई बूंदा-बांदी, डाले इंद्रधनुष ने झूले
पात हुए आपे से बाहर फूल खुशी से फूले
साजन अपने मन पर मेरा रहा नहीं अधिकार आओ प्राणाधार
नाच रही हैं मिल कर सखियां, गूंज उठा है बन
छूम छना न ना छूम छना न ना छूम छना न ना छन
माधुर और गंभीर है कितनी पायल की झंकार आओ प्राणाधार
पुकारा है हम सबने--पर को। अलग-अलग रूपों में पुकारा है। मगर पुकारा है! दूसरे पर हमारी नजर सहज ही लगी है। इसलिए प्रार्थना आसान है, ध्यान कठिन है; क्योंकि प्रार्थना में पर का अंगीकार है। देखते हो तुम, पतंजलि ने ईश्वर को भी कहा कि आवश्यक नहीं है योगी के लिए मानना; सिर्फ एक आलंबन है और बहुत आलंबनों में! एक उपाय है। ईश्वर कोई लक्ष्य नहीं है। परम समाधि को पाने में जैसे और बहुत उपाय हैं, वैसा ही ईश्वर भी एक उपाय है। पतंजलि ईश्वरवादी नहीं हैं। योगी ईश्वरवादी हो ही नहीं सकता। लेकिन तरकीब से इनकार किया पतंजलि ने। सीधा-सीधा इनकार नहीं किया कि ईश्वर नहीं है। कह दिया कि ईश्वर भी एक आलंबन है, एक आधार है। इस आधार से भी कुछ लोगों ने समाधि पाई है। मगर लक्ष्य समाधि है। साधन मात्र ईश्वर। यह तो इनकार करने से भी बड़ा इनकार हो गया--ईश्वर को साधन बना देना!
महावीर ने तो साफ ही कह दिया कि कोई ईश्वर नहीं है। महावीर महायोगी हैं। ईश्वर को स्वीकार करने की कोई गुंजाइश नहीं है वहां। ध्यान पर्याप्त है। वस्तुतः ईश्वर को मानना, महावीर की दृष्टि में, ध्यान के लिए बाधा है। क्योंकि पर की मौजूदगी से मुक्त होना है। पर से मुक्त होना है तो परमात्मा से भी मुक्त होना होगा; परमात्मा भी पर है।
बुद्ध ने भी इनकार कर दिया ईश्वर से।
ये तीन ध्यान की परंपराएं भारत में पैदा हुईं--परम ध्यान की परंपराएं! तीनों ने ईश्वर को इनकार कर दिया। यह इनकार अकारण नहीं है। यह इनकार दार्शनिक भी नहीं है। यह इनकार मौलिक रूप से ध्यान की व्यवस्था का अनिवार्य अंग है। ध्यानी को अकेला होना है--इतना अकेला होना है कि वहां कोई परमात्मा भी न रह जाए; इतना अकेला होना है कि वहां प्रार्थना करने का

भी उपाय न रह जाए। दूसरा ही न होगा तो प्रार्थना कैसे होगी! ध्यानी को शून्य होना है।
भक्त को शून्य नहीं होना है। भक्त को पूर्ण होना है। भक्त को अपने को परमात्मा से भर लेना है। भक्त को अपने द्वार-दरवाजे खोल देने हैं और निमंत्रण देना है--नेह निमंत्रण--कि तू आ! हे प्राणाधार, आ और मुझमें समा! चौंकि-चौंकि उठै जागि, सेज नहिं भावै हो।
भक्त तो चौंक-चौंक कर उठ आता है। जैसे तुम किसी की प्रतीक्षा करते हो, प्रेयसी की, प्रेमी की, तो चौंक-चौंक पड़ते हो। दरवाजे पर हवा का झोंका आता है, खड़खड़ होती है--भागे, दरवाजा खोल कर देखते हो। रास्ते पर सूखे पत्ते खड़खड़ करते हवा में उड़ते हैं--भागे, दरवाजा खोलते हो। कोई रास्ते से गुजरता है--पोस्टमैन गुजरे, कि हवलदार गुजरे, कि दूधवाला गुजरे--कि तुमने दरवाजा खोला कि पता नहीं वही आ गया हो! कहीं ऐसा न हो कि दरवाजा बंद देख लौट जाए! जीसस ने कहा हैः अपना दरवाजा बंद ही मत करना, क्योंकि कौन जाने वह कब आए--किस घड़ी, किस महूरत! दरवाजा खुला ही रखना। द्वार पर बंदनवार सजाए ही रखना। पलक-पांवड़े बिछाए ही रखना। कब आ जाए, किस घड़ी में, कोई नहीं जानता। उसकी कोई भविष्यवाणी भी नहीं हो सकती।
तो कैसे सोए! भक्त नहीं सो पाता।
चौंकि-चौंकि उठै जागि, सेज नहिं भावै हो।
और बिना प्यारे को पाए सेज भाए तो कैसे भाए! सेज काटती है। उसके साथ तो सूली भी भली, उसके बिना सेज भी प्यारी नहीं लगती। और मीरा ने कहा हैः सूली ऊपर सेज पिया की! सूली पर ही उसकी सेज है। मगर भक्त मिटने को राजी है। भक्त कहता हैः मुझे मिटा दो, तुम ही रहो। ज्ञानी कहता हैः सब मिट जाए, बस आत्मा बचे। भक्त कहता हैः मैं मिट जाऊं, बस तुम बचो। दोनों पहुंच जाते हैं एक ही जगह। कारण समझ लेना।
ज्ञानी कहता हैः मैं बचूं, तू छूट जाए। लेकिन जब सब तू से छुटकारा हो जाता है तो मैं अपने आप छूट जाता है, क्योंकि मैं बिना तू के नहीं बच सकता। मैं के लिए तू की रेखा चाहिए ही चाहिए। मैं में कोई अर्थ ही नहीं होता तू के बिना।
इसलिए बुद्ध की बात में बड़ा अर्थ है। उन्होंने परमात्मा को इनकार किया और फिर आत्मा को भी इनकार कर दिया। इस अर्थ में बुद्ध महावीर से ज्यादा तर्कयुक्त हैं, ज्यादा संगत हैं। क्योंकि महावीर ने परमात्मा को तो इनकार किया, आत्मा को इनकार नहीं किया। महावीर आधे गए, आधे रास्ते गए। कह दिया कि परमात्मा तो नहीं है, तू तो नहीं है; लेकिन यह न कह सके कि मैं नहीं हूं। बुद्ध ने तर्क को उसकी पूरी संगति तक पहुंचाया। जब परमात्मा ही नहीं तो आत्मा कैसे? शून्य बचा।
और यही घटना भक्त को भी घटती है। भक्त मैं को मिटाता है। जिस दिन मैं बिल्कुल मिट जाता है उस दिन तू कहां? मैं के बिना कौन कहेगा तू? मैं का संदर्भ चाहिए ही चाहिए तू के अस्तित्व के लिए। मैं की पृष्ठभूमि में ही तू उभर कर प्रकट हो सकता है; नहीं तो तू भी नहीं बचेगा।
जैसे ही ज्ञानी तू को मिटा देता है, मैं मिट जाता है। भक्त मैं को मिटा देता है, तू मिट जाता है। और यह वह घड़ी है जहां दोनों का मिलन हो जाता हैः जहां भक्त भक्त नहीं है, ज्ञानी ज्ञानी नहीं है। जहां केवल सत्य ही शेष रह गया। सत्य न तो मैं में है, न तू में। लेकिन सत्य तक पहुंचने के दो उपाय हैंः या तो मैं को मिटाओ, या तू को मिटाओ।
मैं को मिटाना सुगम भी है, खतरे से खाली भी है। तू को मिटाना कठिन भी
है और खतरे से भरा हुआ भी है। एक तो पहले मिटाना बहुत मुश्किल तू को, क्योंकि हमारी पूरी जीवन-धारा तू की तरफ प्रवाहित होती है। बच्चा पैदा हुआ कि मां के स्तन खोजने लगता है--जीवन-धारा तू की तरफ बहने लगी। बच्चा पैदा हुआ कि मां से चिपटा; मां को छोड़ता ही नहीं, उसका दामन पकड़े रखता है। रात सोता भी है तो उसकी साड़ी हाथ में रखता है कि कहीं वह रात नींद में उसे छोड़ कर कहीं चली न जाए।
जीवन-धारा तू की तरफ उन्मुख है। यह सहज स्वाभाविक है। इसलिए तू को छोड़ना कठिन है। और अगर छोड़ भी पाओ तो एक बड़ा खतरा हैः तू तो छूट जाए और मैं

न मिटे। तो तू छूटा नहीं, सिर्फ दब गया, अचेतन में समा गया। और तब मैं बड़ा अहंकार की तरह प्रकट होगा।
इसलिए जो लोग तू को मिटाने चलते हैं वे अहंकार का खतरा मोल लेते हैं।
उसका अंतिम परिणाम भयंकर भी हो सकता है। अहंकार इतना प्रगाढ़ हो सकता है कि सत्य के मार्ग में बाधा बन जाए, हिमालय की तरह खड़ा हो जाए।
भक्त का मार्ग सुगम भी है और खतरे से भी खाली है, क्योंकि मैं से ही मिटाना है। तो अहंकार का खतरा तो है ही नहीं।
इसलिए तुम जैन मुनि में जैसा अहंकार देखोगे वैसा सूफी फकीर में नहीं देखोगे। जैन मुनि तू को मिटाता है और तू के मिटाने में मैं मजबूत होने लगता है। डर यही है। अगर बहुत सावधानी न रही... अति सावधानी चाहिए, खड्ग की धार पर चलना है, जरा चूके कि खतरा है। इधर गिरे तो कुआं, उधर गिरे तो खाई। जैन मुनि का अहंकार बहुत भयंकर हो जाता है। तुम जैन मुनि से नमस्कार करो तो वह हाथ जोड़ कर नमस्कार भी नहीं करता। नहीं कर सकता! वह सिर्फ आशीर्वाद ही दे सकता है। दोनों हाथ जोड़ कर नमस्कार करे--तुम्हें, श्रावक को, पापियों को? असंभव! उसे तुममें परमात्मा नहीं दिखाई पड़ता, सिर्फ पापी दिखाई पड़ता है।
सूफी फकीर किसी के भी पैर छू लेता है। अरे पैर छूने में भी क्या कोई पात्रता और अपात्रता का हिसाब रखना होगा? किसी के भी पैर छू लेता है। राह चलते लोगों के पैर छू लेता है! सूफी फकीर भक्त है; वह मैं को मिटा रहा है। जलालुद्दीन की प्रसिद्ध कहानी है। प्रेमी ने अपनी प्रेयसी के द्वार
पर दस्तक दी। भीतर से आवाज आई, कौन? उसने कहा, क्या तू पहचानी नहीं--मेरी आवाज, मेरे पैरों की आवाज? मैं हूं तेरा प्रेमी! और भीतर से उत्तर मिला, यह घर प्रेम का बड़ा छोटा है। इसमें दो न समा सकेंगे। अभी जाओ, और पको, और तैयार होओ, फिर लौटना।
कबीर कहते हैं नः प्रेमगली अति सांकरी, तामें दो न समाय!
वैसे ही जलालुद्दीन की उस कहानी में उस कविता में प्रेयसी कहती है, यह प्रेम का घर बहुत छोटा है, इसमें दो नहीं समा सकते। अभी जाओ!
फिर वर्षों बाद प्रेमी लौटा, फिर द्वार पर दस्तक दी। वही सवाल--कौन? उसने कहा, अब मैं नहीं हूं। अब क्या उत्तर दूं? अब तो तू ही है! और द्वार खुल गए।
भक्त मैं को मिटाता है, द्वार खुल जाते हैं। क्योंकि मैं से बड़ी और कोई बाधा नहीं है। सच्चा ध्यानी भी तू को मिटाने के बाद मैं को मिटाने में लगता है। अगर मैं न मिटे तो चूक हो जाती है। लेकिन सच्चे ध्यानी बहुत कम-- क्योंकि मार्ग कठिन, खतरों से भरा हुआ। ज्ञानियों की बजाय भक्तों ने ज्यादा निर्वाण को उपलब्ध किया है। ध्यान से कम, भजन से ज्यादा पहुंचे हैं लोग। ज्ञान से कम, प्रेम से ज्यादा पहुंचे हैं लोग।
रैन-दिवस मारै बान, पपीहा बोलै हो।
इधर पपीहा पुकारने लगता हैः पी-कहां! और उधर भक्त के प्राणों में गूंज उठने लगती हैः पी-कहां! भक्त को तो प्रत्येक चीज परमात्मा की याद दिलाती है।

पपीहा पिया बिना तड़पाए
रात कटे है रोते जागे
मुझ बिरहन की आंख न लागे
सपने नैनन से हैं भागे
कौन मुझे समझाए
पपीहा पिया बिना तड़पाए
बिजली चमके, रैन अंधेरी
मन की दुनिया दुख ने घेरी मेरा गीत है, लय भी मेरी
दूर से कोई गाए
पपीहा पिया बिना तड़पाए
पिछले शिकवे धो देती हूं प्रेम में होश भी खो देती हूं

हर इक बात पे रो देती हूं
आशा डूबी जाए
पपीहा पिया बिना तड़पाए
मेरा गीत है, लय भी मेरी
दूर से कोई गाए
पपीहा गाता है, लेकिन भक्त को लगता है--मेरी लय है, गीत भी मेरा है; दूर
से यह कौन गाने लगा है? यह उसके प्राणों की पुकार है--पी-कहां!
परमात्मा कहां है? कहां खोजूं? किस दिशा में जाऊं? किन आकाशों में तलाशूं? किन पातालों में खोदूं? कहां है परमात्मा? वह कहां है जो मेरे प्राणों को तृप्ति दे, जो मेरे सूखे कंठ को गीला करे, जो मेरी भटकती हुई जीवन-धारा को सागर तक पहुंचा दे?
पिय-पिय लावै सोर, सवति होई डोलै हो।
बिरहिन रहै अकेल, सो कैसे कै जीवै हो।
ज्ञानी चेष्टा करता है--अकेला रहूं, कैसे अकेला रहूं? ज्ञानी एकांत खोजता है। और भक्त हैरान होता है कि भीड़ में भी अकेला है!
ये मजे की बातें ख्याल में रखना। ये भेद तुम्हें साफ होने चाहिए। इससे चुनाव में आसानी होगी। ज्ञानी जंगल जाता है कि अकेले में जाना है। और भक्त कहता है, भीड़ में भी खड़ा हूं, बाजार में, तो भी अकेला हूं। क्योंकि परमात्मा जब तक नहीं मिला तब तक कैसे दुकेला? तब तक तो अकेला ही हूं! हां, भीड़-भाड़ है, ठीक है, बाजार चलता है, राह चलती है, सब ठीक है; मगर मैं तो अकेला हूं। उसके प्राण तो अटके हैं सदा परमात्मा में।

उड़ जा पी के देस रे पंछी, उड़ जा पी के देस
भूल गई हैं प्रेम की घातें
मीठे सपने मदभरी रातें
मन में डूबने वाली बातें
जग ने बदला भेस रे पंछी
उड़ जा पी के देस रे पंछी, उड़ जा पी के देस मन मंदिर को छोड़ गए हैं
प्रेम के नाते तोड़ गए हैं
दुख से रिश्ते जोड़ गए हैं
जाय बसे परदेस रे पंछी
उड़ जा पी के देस रे पंछी, उड़ जा पी के देस राग नहीं बरसात नहीं है
दिन वो नहीं वो रात नहीं है
पहली सी वो बात नहीं है
देस भी है परदेस रे पंछी
उड़ जा पी के देस रे पंछी, उड़ जा पी के देस
तुझ बिन प्रीतम चैन न आए
प्रेम का दीपक बुझता जाए
याद पिया की मन कलपाए
ले जा ये संदेस रे पंछी
उड़ जा पी के देस रे पंछी, उड़ जा पी के देस
प्रतिपल एक ही तड़फ--कि कैसे पंख फैलाऊं! कैसे पिया के देश उड़ जाऊं! और
हर चीज याद दिलाती है। जगत की हर चीज उसी की तरफ इंगित करती है, इशारा करती है।
बिरहिन रहै अकेल, सो कैसे कै जीवै हो।
जिसने विरह को जाना है परमात्मा के, जिसने उसे प्रेम से पुकारा है, वह
तो अकेला ही है--भरे बाजार में अकेला है। उसे अकेलापन नहीं खोजना पड़ता। जेकरे अमी कै चाह, जहर कस पीवै हो।
और जिसने परमात्मा को चाहा है, जिसने अमृत की चाह की है, संसार उससे अपने आप छूटने लगता है, उसे छोड़ना नहीं पड़ता। ज्ञानी को छोड़ना पड़ता है संसार, त्यागना पड़ता है संसार, चेष्टा करनी पड़ती है; भक्त से छूट जाता है, छोड़ना नहीं पड़ता। क्योंकि जिसे उस प्यारे की याद उठने लगी, इस संसार में

कुछ भी उसे सार्थक नहीं मालूम होता। अमृत की जिसे याद आने लगी वह जहर पीएगा? जिस हंस को मानसरोवर की याद आ गई, फिर वह तुम्हारे गांव की तलैया में कीचड़ में बैठेगा? फैला देगा पंख, उड़ चलेगा मानसरोवर को! मोती चुगने वाला हंस कंकड़-पत्थर चुगेगा? हंसा तो मोती चुगै!
भक्त को परमात्मा की प्रीति जैसे-जैसे सघन होने लगती है, वैसे-वैसे स्वाद आने लगता है अमृत का। यह स्वाद कुछ ऐसा नहीं है जो बाहर से आता है। यह तुम्हारे ही प्राणों में ढलती है शराब। यह नशा तुम्हारे भीतर ही उमगता है। भक्त डोलने लगता है--मस्त हो डोलने लगता है। उसके आंसू बहुत जल्दी ही गीत बन जाते हैं। उसकी उदासी बहुत जल्दी संगीत बन जाती है। उसका विरह बहुत जल्दी मिलन के करीब आने लगता है। विरह की जितनी सघनता होती है, मिलन उतने शीघ्र घटित होता है। जिस क्षण विरह परिपूर्ण होता है, पूर्ण होता है, उसी क्षण मिलन घट जाता है।
जेकरे अमी कै चाह, जहर कस पीवै हो।
अभरन देहु बहाय, बसन धै फारौ हो।
त्यागी, ज्ञानी छोड़ता है, मगर छोड़ने में उसका अहंकार प्रबल होता है।
वह हिसाब रखता है भीतर--कितने उपवास किए, कितना धन छोड़ा, कितना पद छोड़ा। वह उसकी बार-बार चर्चा करता है। वह उसे भूलता नहीं। वह धीरे-धीरे उसे बढ़ाने भी लगता है। वह धीरे-धीरे बहुत बड़ी-बड़ी बातें करने लगता है--मैंने इतना त्याग किया, महात्यागी हूं! लेकिन भक्त का त्याग बड़े और ढंग से घटता है; जैसा घटना चाहिए वैसा घटता है। उसके आभरण उतर जाते हैं, उसके आभूषण उतर जाते हैं, उसकाशृंगार उतर जाता है। क्योंकि जब प्यारा परदेस में हो तो कैसाशृंगार! कैसे आभूषण!
अभरन देहु बहाय...
वह अपने आभूषण बहा देता है।
बसन धै फारौ हो।
अपने वस्त्रों को फाड़ डालता है। किसके लिए? हम वस्त्र अपने लिए तो नहीं पहनते, औरों के लिए पहनते हैं। और हम आभूषण भी अपने लिए तो नहीं पहनते, औरों के लिए पहनते हैं। प्यारा आता हो तो हम दुल्हन जैसे सजते हैं। लेकिन प्यारा दूर हो, उसकी खोज-खबर न मिलती हो, तो बिरहिन सज कर नहीं बैठती; उसके बाल बिखर जाते हैं, उसके बाल सूख जाते हैं। उसके आभरण कब छूट जाते हैं हाथ से, कब गिर जाते हैं, पता नहीं चलता। उसके वस्त्र कब फट गए, इसकी उसे याद भी नहीं रहती। यह सब सहज घटता है।
यही भक्ति का अदभुत रूप है कि ज्ञानी को जो चेष्टा कर-कर के करना पड़ता है, भक्त को अनायास हो जाता है। भक्त पर परमात्मा की अनुकंपा अपार है। ज्ञानी को अकेले करना पड़ता है; भक्त की सहायता परमात्मा करता है।

तोड़ दो मेरा जाम
कि अब मैं पी न सकूंगा
प्यास बुझी तो जी न सकूंगा
तोड़ दो मेरा जाम

प्यास मधुर सपनों का सागर
प्यास छलकते नयन की गागर सपनों का अंजाम
कि अब मैं पी न सकूंगा
प्यास बुझी तो जी न सकूंगा तोड़ दो मेरा जाम

प्यास मनोहर प्यार की रजनी प्यास नशीले रूप की सजनी लहराए हर गाम
कि अब मैं पी न सकूंगा
प्यास बुझी तो जी न सकूंगा तोड़ दो मेरा जाम

दीपक, शीशे, फूल, सितारे
छोड़ के बढ़ चल कोई पुकारे
जीवन है संग्राम
कि अब मैं पी न सकूंगा
प्यास बुझी तो जी न सकूंगा तोड़ दो मेरा जाम

प्यास रसीला स्वप्न मिलन का मीत हमारे बालेपन का
पीत हुई बदनाम
कि अब मैं पी न सकूंगा
प्यास बुझी तो जी न सकूंगा तोड़ दो मेरा जाम

प्यास जगत की रीत पुरानी आशाओं की छांव सुहानी
कर लूं कुछ बिसराम
कि अब मैं पी न सकूंगा
प्यास बुझी तो जी न सकूंगा तोड़ दो मेरा जाम

प्यास मेरी जानी-पहचानी
प्यास मेरे हृदय की रानी
प्यास मेरा इनआम
कि अब मैं पी न सकूंगा
प्यास बुझी तो जी न सकूंगा
तोड़ दो मेरा जाम

भक्त तो अपने जाम को तोड़ देता है। इस जगत का सब पीकर देख लिया और व्यर्थ पाया। सब पीया और प्यास बुझी नहीं। सब पीया और प्यास बढ़ती ही चली गई।
प्यास मेरी जानी-पहचानी
प्यास मेरे हृदय की रानी
अब तो वह परमात्मा की प्यास से भरा है। अब वह कहता है, इस जानी-पहचानी प्यास को परमात्मा की तरफ दौड़ाता हूं।
प्यास मेरी जानी-पहचानी
प्यास मेरे हृदय की रानी
प्यास मेरा इनआम
कि अब मैं पी न सकूंगा
प्यास बुझी तो जी न सकूंगा
तोड़ दो मेरा जाम
अब इस जगत में पीने योग्य कुछ भी नहीं है। इस जगत में वह अपने जाम को तोड़ देता है। इसलिए नहीं कि जगत पाप है। इसलिए नहीं कि जगत में जीना घृणित है, गर्हित है। वह जहर को इसलिए नहीं छोड़ता कि जहर है; वह जहर को इसलिए छोड़ता है कि अब उसके भीतर अमृत की चाहत जगी है। वह कांटों को इसलिए छोड़ देता है कि फूलों की आशा... फूल पास ही दिखाई पड़ने लगे, उसके हाथ फूलों की तरफ बढ़ने लगे, इसलिए कांटों से अपने आप छूट जाता है।
ज्ञानी कहता हैः पहले त्याग, फिर परमात्मा मिलेगा, या ज्ञान मिलेगा,
या सत्य मिलेगा, या जो भी नाम तुम पसंद करो, मोक्ष मिलेगा, निर्वाण मिलेगा। लेकिन पहले त्याग! त्याग से मिलेगा ज्ञान, त्याग से मिलेगा निर्वाण! और भक्त कहता हैः निर्वाण का स्वाद आ जाए तो त्याग घटित हो जाता है। त्याग पहले नहीं। अमृत का स्वाद आ जाए तो जाम हाथ से गिर जाता है जहर का और टूट जाता है।

पिय बिन कौन सिंगार, सीस दै मारौ हो।
उस प्यारे के बिना क्याशृंगार करें! दीवालों से सिर फोड़ लेने का मन होता है।
भूख न लागै नींद, बिरह हिये करकै हो।
कैसी भूख! कैसी नींद! हृदय में एक कसक है, एक कड़क है। एक बिजली कौंध-कौंध जाती है। बिरह हिये करकै हो।
मांग सेंदुर मसि पोछ...
अब पोंछ डालो मांग का सिंदूर, पोंछ डालो आंखों का अंजन, काजल।
नैन जल ढरकै हो।
न पोंछोगे तो भी बह जाएगा। क्योंकि आंखों से जो वर्षा शुरू हुई है, वह
जो परमात्मा के लिए आंसू झरने शुरू हुए हैं, यह जो सावन की झड़ी लगी है आंखों से--ऐसे भी काजल बह जाएगा, पोंछ ही डालो।
केकहैं करै सिंगार, सो काहि दिखावै हो।
अब किसके लिएशृंगार करना है? किसको दिखलाना है? देखने वाला दिखाई नहीं पड़ रहा है। जब तक वह द्रष्टा मौजूद न हो जाए, जब तक परमात्मा की आंख न पड़े, तब तक न कोईशृंगार है, न कोई भूख है, न कोई प्यास है।
जेकर पिय परदेस, सो काहि रिझावै हो।
रहै चरन चित लाई, सोई धन आगर हो।
व्यर्थ समय न गंवाओशृंगार में। व्यर्थ समय न गंवाओ संसार को रिझाने में। सारे समय और सारी ऊर्जा को--जो समझदार है, जो चतुर है, बुद्धिमान है-- वह एक काम में लगा देता है।
रहै चरन चित लाई, सोई धन आगर हो।
वही है धन्यभागी, वही है बुद्धिमान, जो परमात्मा के चरणों में सारे चित्त को लगा देता है; सब तरफ से बटोर लेता है अपनी ऊर्जा को और उस एक पर समर्पित कर देता है।
पलटूदास कै सबद, बिरह कै सागर हो।
पलटूदास कहते हैं, बुरा मत मानना। मेरे शब्द तुम्हारे भीतर आंसुओं को पैदा करेंगे। विरह का सागर उमगाएंगे। तुम्हारी छोटी सी गागर में विरह का सागर पैदा हो सकता है।
पलटूदास कहते हैं, मेरी बात का बुरा मत मानना। क्योंकि जो विरह में नहीं जला उसे मिलन का आनंद कभी उपलब्ध नहीं होगा। जिसने विरह का जहर नहीं पिया उसे मिलन का अमृत नहीं मिला।
विरह तैयारी है। विरह पात्रता है। और जब पात्र तैयार होगा, तो ही परमात्मा तुम में प्रवेश कर सकता है।
तुमने क्यों वह गीत सुनाया
जिसकी लय में सोए हुए थे मेरे मन के राग
तूफान उठे जीवन-सागर में, फैला दुख का झाग
दुख की लहरों ने उठ-उठ कर सुख और चैन बहाया
तुमने क्यों वह गीत सुनाया

सपने छोड़ गए नैनों को, छाया एक अंधेरा
एक भयानक चिंता ने है मेरे मन को घेरा फूटे ऐसे भाग कि जिसने ऐसा दिन दिखलाया तुमने क्यों वह गीत सुनाया

बादल के कोहरे से निकली चंदरमा की नैया धीरे-धीरे चलती जाए कोई नहीं है खिवैया तारों ने चमकीला सा आकाश पै जाल बिछाय
ा क्यों वह गीत सुनाया

तैर रही है शांति की लहरों पर जीवन की नैया तुम ही थे पतवार पति और तुम ही नाव खिवैया दुख की ऐसी चली हवाएं भंवर में आन फंसाया तुमने क्यों वह गीत सुनाया

सुबह सवेरे पवन ने फूलों के तलवे सहलाए जागे नींद के माते जब शबनम ने मुंह धुलाए कली-कली को देकर छींटे ओस ने आन जगाया तुमने क्यों वह गीत सुनाया

फूल खिले थे डाली-डाली सुंदर रंग-रंगीले धानी, सुर्ख, गुलाबी, कारे, ऊदे, नीले, पीले एक कंवल था आशा का, सो वो भी अब कुम्हलाया
तुमने क्यों वह गीत सुनाया

सुबह का तारा खुश्क सी टहनी के पीछे मुसकाए
करवट लेकर याद पिया की रह-रह कर तड़पाए
मन में दुख की बदली उट्ठी, नैनन मेंह बरसाया
तुमने क्यों वह गीत सुनाया
भक्तों को सुनोगे, उनके गीत को सुनोगे, तो पीड़ा जगेगी, विरह की अग्नि भभकेगी। भक्त तो अपने शब्द तुम्हारे भीतर ईंधन की तरह डालते हैं कि तुम्हारे भीतर एक आग भभक उठे--ऐसी आग, जो परमात्मा के सिवाय फिर कोई और न बुझा सकेगा।
गुरु जिस आग को लगाता है, परमात्मा उस आग को बुझाता है। सदगुरु वही है
जो तुम्हारे भीतर आग लगा दे।
लेकिन तुम तो गुरुओं के नाम पर उनके पास जाते हो जो तुम्हें सांत्वना देते हैं, आग नहीं; संतोष देते हैं, सत्य नहीं; थपकियां देते हैं, लोरी सुनाते हैं। परदेस बसे पिया की याद नहीं दिलाते। संतों से तुम्हारी आशा यही होती है कि वहां जाएंगे तो थोड़ा संतोष, थोड़ी सांत्वना...
एक मित्र का बेटा गुजर गया। वे मेरे पास आए। और कहा कि संतोष के लिए आया हूं, सांत्वना के लिए आया हूं; बड़ा पीड़ित हूं, जवान बेटा चल बसा! मैंने कहा, फिर तुम गलत जगह आ गए। फिर तुम्हें कहीं और जाना था। बहुत साधु-संत हैं इस देश में, कोई कमी है! और मैं तो उन साधु-संतों की भीड़ से बिल्कुल अलग खड़ा हूं।
कुंभ का मेला करीब था। मैंने कहा, तुम कुंभ के मेले चले जाओ। वहां जितनी सांत्वना, जितना संतोष चाहिए, देने वाले मिल जाएंगे--साधु-संत, पंडित-पुरोहित। मेरे पास आए हो तो मैं तो तुम्हें और आग दूंगा। मैं तो तुमसे यह कहूंगा कि बेटा तो चल बसा, जरा सोचो कि जब बेटा तक चल बसा तो बाप होकर तुम कितनी देर बचोगे?
वे तो एकदम नाराज हो गए, कि आप भी क्या बात करते हैं! मैं परिपूर्ण स्वस्थ हूं, सब तरह ठीक हूं। और ऐसी अपशगुन की बात करते हैं!
लोग यह सुनना नहीं चाहते कि तुम भी नहीं बचोगे। मैंने उनसे कहा, अब तुम चाहे सुनो चाहे न सुनो, मैंने तो कह दिया, कान में तुम्हारे पड़ भी गया, याद भी तुम्हें रहेगा, भूल भी न सकोगे। तुम बचोगे नहीं। कोई नहीं बचता! बेटा याद दिला गया है। इस अवसर पर तुम क्यों सांत्वना खोज रहे हो? परमात्मा को खोजो, सांत्वना को नहीं। उसको खोजो जो कभी नहीं मरता। अमृत को खोजो, मृत्यु याद दिला गई। बेटा मर गया। बेटा तुमसे ज्यादा स्वस्थ था या नहीं?
उन्होंने कहा, यह बात तो ठीक है।
कौन सी बीमारी थी बेटे को?
कोई बीमारी न थी; अचानक हृदय गति बंद हो जाने से मृत्यु हुई।
मैंने कहा, बेटा मर गया, केवल पैंतालीस साल का था; तुम पचहत्तर साल के हो, तुम अभी यह आशा बांधे बैठे हो कि जीओगे?
मगर लोग सांत्वनाएं चाहते हैं। वे एम पी थे, संसद के सदस्य थे--सबसे पुराने सदस्य थे। संसद के पिता कहे जाते थे, क्योंकि अंग्रेजों के जमाने से वे पार्लियामेंट के सदस्य थे। वे कोई पचास साल से पार्लियामेंट के सदस्य थे। पहले अंग्रेजों की पार्लियामेंट के सदस्य रहे, फिर कांग्रेस के

सदस्य रहे; मगर सदस्य थे। इस पचास साल में एक बार भी वे हारे नहीं। बड़े धनी थे, सुविधा थी, सब व्यवस्था थी।
दिल्ली गए, वहां आचार्य तुलसी को मिले। आचार्य तुलसी ने आंख बंद की और कहा कि चिंता करने की कोई जरूरत नहीं, तुम्हारा बेटा सातवें स्वर्ग में देवता होकर पैदा हुआ है।
चित्त उनका बाग-बाग हो गया। इसको कहते हैं सांत्वना! इसको कहते हैं संतों का मिलना! मेरी उन्हें याद आई होगी कि एक मैं, कि बोला कि तुम भी न बचोगे। और यह है संत एक, कि जिसने फौरन आंख बंद की, सूक्ष्म लोक की यात्रा की, फौरन खबर लाया कि सातवें लोक... । वापस लौट कर जब आए तो मुझसे कहा कि इसको कहते हैं संतत्व! आचार्य तुलसी में मेरी बड़ी श्रद्धा जग गई है। मैंने कहा, क्या हुआ?
उन्होंने कहा कि उन्होंने जल्दी से आंख बंद की, बड़ी अदभुत उनकी क्षमता है, एक क्षण नहीं लगा, एकदम सातवें स्वर्ग! लौट कर आए और बोले कि तुम्हें चिंता की कोई बात ही नहीं, तुम्हारा बेटा सातवें स्वर्ग में देवता हुआ है।
मैंने कहा कि अब मैं आपको एक और संत का नाम सुझाता हूं। मेरे एक परिचित फकीर थे, राम उनका नाम। मैंने कहा, आप इलाहाबाद कभी जाएं तो राम से मिल लेना। वे बहुत पहुंचे हुए फकीर हैं, तुलसी उनके मुकाबले कुछ भी नहीं। तुलसी तो केवल सातवें तक जाते हैं, वे सात सौ तक यात्रा करते हैं। तुलसी जी की यात्रा कोई बड़ी यात्रा नहीं है। सातवें स्वर्ग तक तो कोई भी चला जाता है; यह तो छोटे-मोटे संतों का काम है।
उन्होंने कहा, क्या सात सौ स्वर्ग होते हैं?
मैंने कहा, सात सौ स्वर्ग और सात सौ नरक। वे राम उस धंधे में बहुत कुशल हैं।
इस बीच राम मुझे मिल कर गए थे तो मैंने उन्हें समझा दिया था कि तुम क्या-क्या कहना। वे गए, राम से भी मिले। राम ने आंखें बंद कीं, डोले, हाथ-पैर हिलाए, उठ कर खड़े हो गए। प्रभावित हुए इससे कि तुलसी तो बस सिर्फ बैठ कर एक मिनट में आंख खोल दिए थे और यह आदमी जरूर कहीं जा रहा है! चक्कर मारा, खड़े हुए, आंख बंद की, खोली, ऊपर देखा, आकाश की तरफ देखा, पाताल की तरफ देखा। सब उनको मैंने कहा था कि यह-यह करना तुम। फिर उन्होंने कहा कि क्षमा करिए, सत्य कहूं कि सांत्वना दूं?
अब जब कोई ऐसा पूछे कि सत्य कहूं कि सांत्वना दूं, तो किसकी हिम्मत जो कहे कि सांत्वना दो, सत्य न कहो! तो उन्होंने कहा, सत्य ही कहिए।
तो उन्होंने कहा कि तुम्हारा लड़का प्रेत हो गया है और तुम्हारे गांव
से सात मील दूर फलां-फलां नाम के गांव में एक बगीचा है, उसमें पीपल के एक वृक्ष पर निवास कर रहा है।
वह उन्हीं का बगीचा था। मैंने सब उनको पता दे दिया था कि गांव का नाम, पीपल का वृक्ष... । वे तो बहुत घबड़ा गए।
लौट कर आए और मुझसे कहा, कहां भिजवा दिया! इस आदमी ने सब खराब कर दिया।
और यह आदमी सच्चा भी मालूम पड़ता है, क्योंकि ठीक-ठीक सात मील ही दूर गांव है। और गांव का नाम और बगीचा और पीपल का झाड़! है वहां पीपल का झाड़--बड़ा पीपल का झाड़, बहुत प्राचीन! और उसी पर वह कहता है कि तुम्हारा लड़का भूत हो गया है। अब मैं कभी अपने उस गांव भी न जा सकूंगा डर के मारे। वह बगीचा बेचना है हमें। उसे निकाल ही देना ठीक है।
और वे इतने डरने लगे कि बेटा भूत हो गया। और सात मील कोई लंबा फासला है! भूतों के लिए क्या, एक सेकेंड में आ जाएं! मैंने उनसे कहा, आप जाओ या न जाओ, बेटा आ सकता है। आप रात ताला-कुंजी लगा कर ठीक से सोया करें, किसी दिन आकर ऊधम मचा दे, झंझट खड़ी कर दे!
पर उन्होंने कहा कि आपने भेजा क्यों इस आदमी के पास? मैं तो तुलसी जी
से बिल्कुल सहमत हो गया था।
मैंने उनसे कहा कि न तुलसी जी सही हैं, न वे राम सही हैं। राम ने जो भी कहा, वह मेरा सिखाया हुआ है। और तुलसी जी ने वही कहा जो आप सुनना चाहते थे; वह आपका सिखाया हुआ है। सीधी सी बात इतनी है कि मृत्यु अनिवार्य है। तुम्हें भी मरना होगा। तैयारी करो! बेटा तो गया, तुम तैयारी करो!

नहीं सुना। मेरे पास आना-जाना कम कर दिया। ऐसे आदमी के पास कोई जाता
है जो बार-बार... ! क्योंकि जब भी वे आते, मैं उनको याद दिलाता--तैयारी शुरू की या नहीं? क्या इरादे हैं, सदा रहोगे?
आखिर मर गए। मरते वक्त जो उनके पास थे, उन्होंने मुझे कहा कि आपकी मरते वक्त याद की और कहा, काश मैंने उनकी सुनी होती! लेकिन सुनना तो दूर, मैंने उनके पास भी जाना बंद कर दिया। काश मैंने उनकी सुनी होती तो आज शायद कुछ लेकर जाता! खाली हाथ जा रहा हूं।
लेकिन लोग सांत्वना चाहते हैं। इसलिए पलटूदास कहते हैंः
पलटूदास कै सबद, बिरह कै सागर हो।
याद रखना, नाराज न हो जाना। ये तो विरह के सागर हैं। लेकिन जो विरह के सागर में डुबकी लगाएगा, वह मिलन के सागर को उपलब्ध हो जाता है।
प्रेमबान जोगी मारल हो, कसकै हिया मोर।
पलटूदास कहते हैं, मैं भी तुम्हारे साथ वही करूंगा जो मेरे गुरु ने मेरे साथ किया।
प्रेमबान जोगी मारल हो, कसकै हिया मोर।
ऐसा कस कर तीर मारा है मेरे हृदय में मेरे गुरु ने कि आर-पार हो गया।
वही मैं तुम्हारे साथ करूंगा।
प्रेमबान जोगी मारल हो, कसकै हिया मोर।
जोगिया कै लालि-लालि अंखियां हो, जस कंवल कै फूल।
जब मैंने अपने गुरु को देखा था और उनकी मदमस्त आंखें देखी थीं--लाल-लाल आंखें, जैसे कमल के फूल खिले हों--तभी से मैं उनका दीवाना हो गया। वह मस्ती! वह आंखों में छाई हुई शराब! वह किसी परलोक का नशा! वह खुमार! वह उनकी चाल! वह उनका उठना, वह उनका बैठना!
जोगिया कै लालि-लालि अंखियां हो...
उनकी आंखें लाल थीं। किसी रंग में डूबी थीं। जैसे सुबह का सूरज आंखों
से निकल रहा हो, कि जैसे प्रभात प्राची पर फैली हो।
जस कंवल कै फूल।
जैसे कमल के लाल-लाल फूल, ऐसी उनकी आंखें!
गैरिक रंग चुना है संन्यास का इसीलिए। यह मस्ती का रंग है। यह वसंत का रंग है। यह मदमाते लोगों का रंग है। यह पियक्कड़ों का रंग है। यह शराब का भी रंग है। जिन्होंने पीया है, जिन्होंने परमात्मा को थोड़ा सा भी पीया है, वे कहीं पैर रखते हैं और कहीं उनके पैर पड़ते हैं!
प्रेमबान जोगी मारल हो, कसकै हिया मोर।
जोगिया कै लालि-लालि अंखियां हो, जस कंवल कै फूल।
हमरी सुरुख चुनरिया हो, दूनों भये तूल।।
और जो प्रेम-बाण मार दिया तो हमारी चुनरिया भी सुर्ख हो गई, खून से रंग
गई, फव्वारा छूट उठा।
हमरी सुरुख चुनरिया हो, दूनों भये तूल।।
और जब गुरु की लाल आंखें, जैसे कमल के फूल खिले हों और हमारी लाल
चुनरिया, दोनों मिल कर एक हो गए!
लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।
जोगिया कै लेउं मिर्गछलवा हो, आपन पट चीर।
दूनों कै सियब गुदरिया हो, होई जाब फकीर।।
और तब हम दोनों मिल कर एक हो गए, उनकी मृगछाला और अपने फटे हुए वस्त्र, दोनों को मिला कर हमने गुदड़िया बना ली। गुरु के साथ एकमएक हो गए। उनकी मृगछाला और अपने वस्त्र, दोनों को सीकर एक ही गुदड़िया बना ली।
जब तक शिष्य और गुरु एक ही न हो जाएं, फासला ही न बचे, दूरी ही न बचे, भेद ही न बचे, संदेह-शंकाएं, तर्क-वितर्क, विवाद बहुत पीछे छूट जाएं--तभी वह परम अनुभूति घटित होती है, तभी वे द्वार रहस्यों के खुलते हैं!
गगना में सिंगिया बजाइन्हि हो, ताकिन्हि मोरी ओर।
और जब ऐसी एकता घटी, तब गुरु ने गगन में चढ़ कर नाद किया।
गगना में सिंगिया बजाइन्हि हो, ताकिन्हि मोरी ओर।

और आकाश से मेरी तरफ देखा! सारा आकाश जैसे मुझे देखने लगा! जैसे सारा आकाश मेरा गुरु हो गया! जैसे सारे आकाश के तारे मेरे गुरु की आंखें हो गए! और आकाश में जो अनाहत का नाद है, वह मुझ पर बरसने लगा।
गगना में सिंगिया बजाइन्हि हो, ताकिन्हि मोरी ओर।
और तब पहली दफे मैंने देखा कि जिसमें मैं डूब गया हूं वह मेरा गुरु ही नहीं है, वह परमात्मा भी है।
अकारण नहीं है कि शिष्यों ने अपने गुरु को परमात्मा कहा है। अकारण नहीं है कि कबीर ने कहाः गुरु गोविंद दोई खड़े, काके लागूं पांव; बलिहारी गुरु आपनी, गोविंद दियो बताय। गुरु इशारा है सिर्फ, एक द्वार, जिससे पार होकर परमात्मा मिलता है।

चंचल बादल झूम के छाए, गाए मन मतवाला
पल-पल आंचल उड़े हवा में, छलके रूप का प्याला
मीठे-मीठे गीत सुनाए ये नदिया का शोर
उड़ता बादल देख-देख के नाच उठा मन मोर
सावन की अलबेली रुत ने कैसा रंग निकाला
चंचल बादल झूम के छाए, गाए मन मतवाला
यूं मेरी मखमूर जवानी हवा में तीर चलाए जैसे इक अनदेखा सपना आंखों में लहराए
बिना मीत के प्रीत निभाऊं, मेरा प्यार निराला
चंचल बादल झूम के छाए, गाए मन मतवाला
इक अनदेखे प्यार को मेरा प्यार भरा दिल तरसे
छाई है घनघोर घटा पर क्या जाने कब बरसे
सोच रही हूं किसे बनाऊं जीवन का रखवाला
चंचल बादल झूम के छाए, गाए मन मतवाला
जल्दी ही रोना गाने में बदल जाता है। जल्दी ही विरह की अग्नि से ही मिलन के कमल खिल उठते हैं। लेकिन तैयारी चाहिए--डूबने की तैयारी! गुरु की मस्ती में मस्त हो जाने की तैयारी!
गगना में सिंगिया बजाइन्हि हो, ताकिन्हि मोरी ओर।
चितवन में मन हर लियो हो, जोगिया बड़ चोर।।
और वे जो आंखें आकाश से मेरी तरफ झांकीं, मेरा हर लिया मन। जोगिया बड़ चोर! गुरु बड़ा चोर निकला।
हम तो भगवान को भी चोर कहते हैं। हरि का अर्थ होता हैः चोर, हर लेने वाला। दुनिया की किसी भाषा में भगवान के लिए ऐसा प्यारा शब्द नहीं है, जैसा हमारी भाषा में--हरि। हरि का कोई मुकाबला ही नहीं है। अच्छे-अच्छे शब्द हैं। मुसलमानों के पास सौ शब्द हैं, अच्छे-अच्छे शब्द हैं--करुणावान, दयावान, रहीम, रहमान, न्यायकर्ता। बड़े अच्छे-अच्छे शब्द हैं। मगर हरि के मुकाबले एक भी नहीं, सौ ही शब्द फीके पड़ जाते हैं। चोर!
यह प्रेम की भाषा हुई। वह ज्ञान की भाषा है--न्यायकर्ता, करुणावान, दयावान इत्यादि, इत्यादि। वह भाषा बुद्धि की। जितनी अच्छी-अच्छी बातें हैं सब परमात्मा को बता दीं। लेकिन प्रेमी एक बात जानता है कि वह हमारे हृदय को चुरा लेता है। इससे बड़ा उसका और कोई गुण नहीं है। और सब गुण पीछे आते हैं। पहले तो यह घटना घटती है कि वह हमारे हृदय को चुरा लेता है। पूछता भी नहीं और चुरा लेता है। आज्ञा भी नहीं लेता और चुरा लेता है। हमें पता ही नहीं चलता कि कब चोरी हो गई! जेब कट जाती है, तब पता चलता है। बड़ा कुशल चोर है!
और गुरु तो केवल उसका प्रतिनिधि है। तो गुरु की भी कला चुराना है, चोरी है।
गंग-जमुन के बिचवां हो, बहै झिरहिर नीर।
तेहिं ठैयां जोरल सनेहिया हो, हरि ले गयो पीर।।
"गंग-जमुन के बिचवां हो, बहै झिरहिर नीर।" इस प्रतीक को समझना। प्रयाग
को हम महातीर्थ कहते हैं। यह भौतिक प्रयाग से प्रयोजन नहीं है। भौतिक प्रयाग तो केवल प्रतीक है--एक आध्यात्मिक बात को प्रकट करने का उपाय है।
कहते हैं प्रयाग में तीन नदियों का मिलन हो रहा है--गंगा, यमुना और

सरस्वती। गंगा और यमुना दिखाई पड़ती हैं, सरस्वती दिखाई नहीं पड़ती। सरस्वती अदृश्य है। ऐसी ही दशा प्रत्येक व्यक्ति की है। प्रत्येक व्यक्ति प्रयागराज है, उसमें भी तीन धाराओं का मिलन हो रहा है। देह दिखाई पड़ती है, मन भी दिखाई पड़ता है--ये गंगा-यमुना। और इन दोनों के बीच में झर-झर नीर बह रहा है चैतन्य का, वह दिखाई नहीं पड़ता; उस चैतन्य का नाम ही सरस्वती है। इसलिए सरस्वती को हमने ज्ञान की देवी कहा है--प्रज्ञा की देवी।
गुरु ने पहचान करवा दी। गंगा-यमुना को अलग छांट कर बता दिया और दोनों
के बीच में छिपी हुई अदृश्य चेतना की धार--साक्षी से मिलन करवा दिया। गंग-जमुन के बिचवां हो, बहै झिरहिर नीर।
तेहिं ठैयां जोरल सनेहिया हो, हरि ले गयो पीर।।
गुरु ने उसी ठांव से हमें जुड़ा दिया, उसी मंजिल पर पहुंचा दिया--उस अदृश्य, अगोचर, अनिर्वचनीय! उसको ठैयां कहा है, ठांव कहा है। तेहिं ठैयां जोरल सनेहिया हो! और कला यह है गुरु की कि प्रेम के माध्यम से उस ठांव तक पहुंचा दिया; उस अदृश्य से, अनिर्वचनीय से मिलन करवा दिया। वह भी प्रीति से, प्रेम से!
तेहिं ठैयां जोरल सनेहिया हो, हरि ले गयो पीर।
और हमारे हृदय को ही नहीं चुरा कर ले गया, उसी चोरी के साथ एक चोरी और
भी हो गईः हमारी सारी पीर, हमारी सारी पीड़ा भी चुरा कर ले गया। पीछे रह गया सिर्फ आनंद का एक सागर।
जोगिया अमर मरै नहिं हो, पुजवल मोरी आस।
और जिसने भी इस योग को जान लिया, इस मिलन को जान लिया--योग का अर्थ होता हैः मिलन--जिसने भी स्वयं के और परमात्मा के मिलन को जान लिया, उसकी फिर कोई मृत्यु नहीं है; वह अमृत को उपलब्ध हो जाता है।
जोगिया अमर मरै नहिं हो, पुजवल मोरी आस।
करम लिखा बर पावल हो, गावै पलटूदास।।
पलटूदास कहते हैं, घबराना मत। रास्ता अंधेरा हो, चिंता न लेना; कंटकाकीर्ण हो, लौट मत जाना; विरह की अग्नि सताए, घबरा मत जाना। यह तुम्हारा जन्मसिद्ध अधिकार है परमात्मा से मिलना। यह तुम्हारा स्वरूपसिद्ध अधिकार है।
करम लिखा बर पावल हो...
वह प्यारा मिलेगा, यह तुम्हारी किस्मत में लिखा है। देर-अबेर तुम चाहे कितनी ही करो, वह प्यारा मिलेगा। यह तुम्हारा अधिकार है।
करम लिखा बर पावल हो...
यह विवाह होगा। हां, तुम चाहो तो स्थगित कर सकते हो--बहुत दिनों तक, जन्मों-जन्मों तक। वह तुम्हारी स्वतंत्रता है। लेकिन एक दिन यह विवाह होगा। फिर क्यों देरी करते हो? विवाह होने दो! यह रास रचने दो! यह प्रीति जगने दो! इस प्रीति के जगने के बाद, इस मिलन के होने के बाद, तुम पहली दफे जानोगे जीवन का अर्थ; पहली दफे जानोगे जीवन की महिमा; पहली दफे जानोगे जीवन का काव्य, संगीत, जीवन का महोत्सव!
ओ तंबूर बजाते राही, गाते राही
जाते राही
साजन-देश को जाना

मंडली-मंडली चौखट-चौखट
झा झिन झा झिन डिग तट डिग तट
मन की तान उड़ाना
लेकिन मेरे दुखों के साझी मेरे दर्द न गाना ओ तंबूर बजाते राही, गाते राही
जाते राही
साजन-देश को जाना

सोच भरे मुख जहर पिए मन
उनकी आस बंधाना
झनन झनन झन झनन झनन झन

गीत मिलन के गाना
गली-गली में सावन रुत की मस्त पवन बन जाना ओ तंबूर बजाते राही, गाते राही
जाते राही
साजन-देश को जाना

जीवन का एक ही लक्ष्य होः साजन-देश को जाना!
ओ तंबूर बजाते राही, गाते राही
जाते राही
साजन-देश को जाना
और कोई चीज इस परम लक्ष्य में बाधा न बने--धन, पद, प्रतिष्ठा। और कोई चीज इस परम लक्ष्य में बाधा न बने--परिवार, प्रियजन, मित्र। और कोई चीज इस परम लक्ष्य में बाधा न बने, इसका स्मरण रखना।
हजार बाधाएं हैं, हजार प्रलोभन हैं। तुम्हारी अवस्था ऐसी है जैसे छोटे से बच्चे की मेले में हो जाती है, जहां खिलौनों ही खिलौनों की दुकानें लगी हैं। इस दुकान की तरफ खिंचता है कि यह खिलौना खरीद लूं, उस दुकान की तरफ खिंचता है कि वह खिलौना खरीद लूं। सारे खिलौने खरीद लेना चाहता है। ऐसी तुम्हारी दशा है।
संसार मेला है, दुकानों पर खिलौने ही खिलौने टंगे हैं--तरह-तरह के, रंग-बिरंगे खिलौने हैं, मन-भावक खिलौने हैं। मगर सब खिलौने हैं। कितने ही खिलौने खरीद लो, सब टूट जाएंगे, सब यहीं पड़े रह जाएंगे। और तुम्हें खाली हाथ जाना होगा।
और खाली हाथ नहीं जाना है, कस्द करो! संकल्प लो, खाली हाथ नहीं जाना है!

ओ तंबूर बजाते राही, गाते राही
जाते राही
साजन-देश को जाना

मंडली-मंडली चौखट-चौखट
झा झिन झा झिन डिग तट डिग तट
मन की तान उड़ाना
लेकिन मेरे दुखों के साझी मेरे दर्द न गाना ओ तंबूर बजाते राही, गाते राही
जाते राही
साजन-देश को जाना

सोच भरे मुख जहर पिए मन
उनकी आस बंधाना
झनन झनन झन झनन झनन झन
गीत मिलन के गाना
गली-गली में सावन रुत की मस्त पवन बन जाना ओ तंबूर बजाते राही, गाते राही
जाते राही
साजन-देश को जाना
आज इतना ही।

काहे होत अधीर
चौथा प्रवचन

मौलिक धर्म

पहला प्रश्नः ओशो! बुनियादी रूप से आप धर्म के प्रस्तोता हैं--वह भी मौलिक धर्म के। आप स्वयं धर्म ही मालूम पड़ते हैं। लेकिन आश्चर्य की बात है कि अभी आपका सबसे ज्यादा विरोध धर्म-समाज ही कर रहा है! दो शंकराचार्यों के वक्तव्य उसके ताजा उदाहरण हैं। क्या इस पर कुछ प्रकाश डालने की कृपा करेंगे?

आनंद मैत्रेय! धर्म जब भी होता है मौलिक ही होता है। मूल का न हो, तो धर्म ही नहीं। नितनूतन न हो, तो धर्म ही नहीं। स्वयं का अनुभव न हो, तो धर्म ही नहीं। फिर चाहे वह अनुभव जीसस का हो, चाहे जरथुस्त्र का; चाहे महावीर का, चाहे मोहम्मद का--धर्म की ज्योति तो स्वयं के अंतस्तल में जलती है। वह उधार नहीं होता। वह उधार हो ही नहीं सकता। और जब भी उधार होता है तो नाम ही धर्म का रह जाता है, भीतर अधर्म होता है; और वहीं से अड़चन शुरू होती है। हिंदू हैं, मुसलमान हैं, ईसाई हैं, जैन हैं, बौद्ध हैं--ये सब उधार हैं। महावीर उधार नहीं हैं, लेकिन जैन उधार हैं। आद्य शंकराचार्य उधार नहीं थे, लेकिन उनकी परंपरा में, उनकी गद्दियों पर बैठे हुए लोग सब उधार हैं। कोई बुद्ध किसी दूसरे की गद्दी पर कभी बैठता नहीं। जो अपना सिंहासन खुद निर्मित कर सकता हो, वह उधार और बासी गद्दियों पर बैठेगा? बुद्धू ही बैठते हैं उधार गद्दियों पर, बुद्ध नहीं। पंडित-पुरोहित बैठते हैं; ज्ञानी नहीं, ध्यानी नहीं।
और तब दो धाराएं धर्म की प्रचलित हो जाती हैंः एक तो जीता-जागता धर्म, नगद; और एक उधार, मुर्दा धर्म। मुर्दा धर्म सदियों तक चलता है। जीवित धर्म तो बिजली की एक कड़क है; यह चमका, वह गया! बहुत सजग जो हैं, वे ही उसे देख पाते हैं। जो सोए-सोए हैं, वे तो चूक जाते हैं।
जीवित धर्म तो गुलाब का फूल है; अभी खिला, सांझ पंखुड़ियां झर जाएंगी, सुवास आकाश में उड़ जाएगी। मुर्दा धर्म प्लास्टिक का फूल है; सदियों तक टिकेगा; न पानी देने की जरूरत है, न खाद की, न सूरज की, न हवाओं की। प्लास्टिक के फूल की कोई जरूरत ही नहीं। धूल जम जाए, झाड़ देना, फिर ताजा मालूम होने लगेगा। लेकिन ताजा कभी था ही नहीं; मालूम ही होता है, प्रतीत ही होता है।
जब किसी के हृदय में परमात्मा की ज्योति उतरती है, जब कोई बुद्ध पृथ्वी पर चलता है, तो आकाश पृथ्वी पर चलता है। उसके पास तो केवल हिम्मतवर लोग इकट्ठे होते हैं--हिम्मतवर, ऐसे हिम्मतवर जैसे परवाने--जो ज्योति में डूब कर, जल कर तिरोहित हो जाने को तैयार हैं!
सच्चा धार्मिक व्यक्ति तो दीवाना होता है, परवाना होता है; क्योंकि इससे बड़ी और दीवानगी क्या होगी--अपने को मिटाना, अपने अहंकार को गलाना! परवाना तो पागल होगा ही, तभी तो ज्योति पर निछावर हो सकेगा।
जब कोई बुद्ध होता है पृथ्वी पर, फिर वह किस रूप में है इससे फर्क नहीं पड़ता--नानक है, कि कबीर है, कि पलटू है, कि रैदास है, कि फरीद है--ये केवल देह के भेद हैं। दीये बहुत ढंग के बन सकते हैं। दीये तो मिट्टी से बनते हैं, जैसे चाहो वैसे बनाओ; बड़े बनाओ, छोटे बनाओ; काले बनाओ, गोरे बनाओ; नई-नई आकृतियां दो। लेकिन जब ज्योति जलती है तो ज्योति एक ही है। दीये का आकार, रंग-ढंग कितना ही भिन्न हो; ज्योति का तो एक ही स्वभाव है--अंधेरे को दूर करना।
तमसो मा ज्योतिर्गमय! उपनिषद के ऋषि प्रार्थना करते हैंः हे प्रभु,
इस तमस को ज्योति से दूर करो! इस तमस से मुझे ज्योति की तरफ उठाओ!
बुद्धों के पास तो वही आ सकता है जिसके प्राणों में ऐसी प्रार्थना उठी हो और जो तैयार हो कीमत चुकाने को! कीमत बड़ी चुकानी पड़ती है। तुम्हारे पास जो भी है, तुम जो भी हो, वह सभी निछावर कर देना होता है।

असली धर्म सस्ता नहीं होता; हो नहीं सकता सस्ता। असली धर्म तो आग से गुजरना है। लेकिन आग ही निखारती है। गंदा सोना कंचन होकर बाहर आता है। कचरा जलता है, सोना नहीं जलता।
तुम में जो-जो कचरा है वह सदगुरु के पास जलेगा और तुम में जो-जो शाश्वत है, निखरेगा, उसमें और धार आएगी। तुम्हारी प्रतिभा तो प्रज्वलित होगी, लेकिन तुम्हारी मूढ़ता जल जाएगी। पर तुमने तो मूढ़ता को अपना स्वभाव समझ रखा है। तुमने तो गलत के साथ तादात्म्य कर लिया है। इसलिए तुम बुद्धों से डरोगे, भागोगे।
फिर भी तुम्हारे भीतर भी धर्म की आकांक्षा तो है।
धर्म की आकांक्षा मनुष्य की स्वाभाविक आकांक्षा है। लाख उपाय करो, इस आकांक्षा को नष्ट नहीं किया जा सकता। छिपा सकते हो, गलत ढंग दे सकते हो, गलत दिशाओं में लगा सकते हो; मिटा नहीं सकते। धर्म कुछ मनुष्य के अंतःकरण का अनिवार्य अंग है। स्मरण रखना--अनिवार्य! उससे निवारण नहीं हो सकता। इसलिए नास्तिक भी अपना धर्म बना लेता है; नास्तिकता उसकी धर्म बन जाती है। कम्युनिस्ट हैं, उन्होंने भी अपना धर्म बना लिया। काबा नहीं जाते, क्रेमलिन जाते हैं। मक्का नहीं जाते, मास्को जाते हैं। निश्चित ही गौतम बुद्ध, महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट, मोहम्मद, इनके चरणों में नहीं झुकते; लेकिन कार्ल मार्क्स, एंजिल्स, लेनिन, इनके चरणों में झुकते हैं। मंदिर नहीं जाते, मस्जिद नहीं जाते; लेकिन मास्को के रेड स्क्वॉयर में लेनिन की लाश को अब भी बचा कर रखा है, उस पर फूल चढ़ाते हैं, वहां सिर झुकाते हैं। दूसरों पर हंसते हैं कि क्या पत्थर की मूर्तियों को पूज रहे हो! और लेनिन की सड़ी-गली लाश, उसको पूज रहे हो--और ख्याल भी नहीं आता कि तुम जो कर रहे हो वह भी वही है!
फिर जो महावीर को पूजता हो, बुद्ध को पूजता हो, कृष्ण को पूजता हो-- माना कि अतीत को पूज रहा है, लेकिन फिर भी किसी जाग्रत व्यक्ति का स्मरण शायद तुम्हारे भीतर भी जागरण की लहर ले आए। लेकिन लेनिन को पूजो, कि मार्क्स को, कि एंजिल्स को, वे उतने ही अंधे थे जितने अंधे तुम हो। अंधा अंधा ठेलिया, दोई कूप पड़ंत! अंधे अंधों का नेतृत्व कर रहे हैं!
ईसाई ट्रिनिटी को पूजते हैंः ईश्वर--पिता; और फिर जीसस--पुत्र; और पवित्र आत्मा। ये तीन। और हिंदू त्रिमूर्ति को पूजते हैंः ब्रह्मा, विष्णु, महेश। और कम्युनिस्ट, वे भी त्रिमूर्ति और ट्रिनिटी के बाहर नहीं जाते--मार्क्स, एंजिल्स, लेनिन। स्टैलिन ने घुसने की कोशिश की कि त्रिमूर्ति में घुस जाए, चतुर्मूर्ति कर दे इसको; नहीं घुसने दिया। माओ ने भी बहुत कोशिश की, मगर त्रिमूर्ति को खंडित नहीं होने देते।
नास्तिक भी अपना धर्म बना लेता है। नास्तिक भी अपनी नास्तिकता के लिए मरने-मारने को तत्पर होता है। नास्तिक के भी पूजागृह हैं, धर्मशास्त्र हैं। दास कैपिटल, कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो--ये उसके गीता हैं, कुरान हैं, बाइबिल हैं। इतना पर्याप्त है किसी कम्युनिस्ट को बता देना कि यह दास कैपिटल में लिखा है, बस काफी है; जैसे दास कैपिटल में लिखे होने से कोई बात अनिवार्य रूप से सत्य हो जाती है! वैसे ही जैसे हिंदू के लिए बता देना काफी है कि गीता में लिखा है; बस प्रमाण हो गया, बात खतम हो गई। अब न कोई विवाद की जरूरत है, न कोई तर्क की जरूरत है, न सोच की, न खोज की। मुसलमान को कुरान की आयत दोहरा दो, बस पर्याप्त है। अगर कुरान में है तो ठीक ही होगा। कुरान में कहीं कुछ गलत होता है? वही स्थिति कम्युनिस्ट की है। कम्युनिस्ट, जो अपने को नास्तिक मानते हैं, वे भी धर्म से नहीं बच पाते।
मनुष्य के भीतर धर्म अनिवार्य है। जैसे प्यास प्रत्येक आदमी को लगती है, फिर तुम पानी पीओ, कि कोकाकोला पीओ, कि फेंटा पीओ--इससे कुछ बहुत फर्क नहीं पड़ता। जर्मन हो तो बियर पीओ, जैन हो तो पानी छान कर पीओ--मगर प्यास! प्यास सभी को लगती है; न जैन बच सकता है, न हिंदू बच सकता है, न मुसलमान बच सकता है। जैसे प्यास शरीर का अनिवार्य धर्म है! क्योंकि शरीर को पानी की जरूरत है।
जानते हो, शरीर में अस्सी प्रतिशत पानी है। तुम अस्सी प्रतिशत जल हो; इसमें जरा भी कमी होती है, फौरन प्यास लगती है। अस्सी प्रतिशत बड़ी बात है। इसीलिए तो चांद की जब रात होती है--पूरे चांद की रात होती है--तो तुम्हें

बहुत प्रभावित करती है। वैज्ञानिक कहते हैं, वह प्रभाव वैसा ही है जैसा सागर प्रभावित होता है। क्योंकि सागर जल है। तुम भी अस्सी प्रतिशत जल हो। जैसे सागर में तरंगें उठती हैं, ऐसे ही पूर्णिमा की रात्रि तुम्हारे भीतर भी तरंगें उठने लगती हैं। और जैसा जल सागर में है और जिस अनुपात में सागर के जल में नमक और क्षार हैं, ठीक उसी अनुपात में तुम्हारे भीतर नमक और क्षार हैं--वही अनुपात। इसीलिए तो नमक की जरूरत है। गरीब से गरीब आदमी हो, और कुछ न हो, तो कम से कम नमक और रोटी तो चाहिए ही चाहिए। नमक के बिना कोई भी नहीं जी सकता। नमक के बिना जीओगे, निस्तेज हो जाओगे, सुस्त पड़ जाओगे। तुम्हारे भीतर नमक का एक अनुपात है, जो वही है जो सागर में है--उतना ही अनुपात है।
मां के पेट में जब बच्चा होता है तो वह पानी में तैरता है। वह जो मां
के पेट में पानी होता है, उसमें बच्चा तैरता है। वह पानी भी ठीक सागर का पानी होता है। इसलिए जब मां गर्भवती होती है तो ज्यादा नमक खाने लगती है। उसे नमकीन चीजें रुचने लगती हैं, क्योंकि अधिक नमक तो बच्चे के लिए जा रहा है। बच्चा मछली की तरह तैरता है। और उसे नमक की जरूरत है, बहुत नमक की जरूरत है। अभी हड्डी-मांस-मज्जा उसका निर्मित होना है। शरीर में तो अस्सी प्रतिशत पानी की जरूरत है। इसलिए कोई भी प्यास से नहीं बच सकता।
सिकंदर भारत आया। एक फकीर से मिला। फकीर नग्न था। सिकंदर ने कहा, तुम्हारे पास कुछ भी नहीं!
फकीर ने कहा, यह सारा जगत मेरा है! मैंने इसे बिना जीते जीत लिया है। सिकंदर ने पूछा, बिना जीते कोई कैसे जगत को जीत सकता है?
उस फकीर ने कहा, मैंने इस जगत के मालिक को जीत लिया है। और जब मालिक अपने हाथ में है तो कौन फिक्र करे छोटी-मोटी चीजों को जीतने की! जब मालिक अपना है तो उसकी मालकियत अपनी है। और जीतने का ढंग यहां और है, तलवार उठाना नहीं--सिर झुकाना। हम झुक गए मालिक के चरणों में, झुक कर हम मालिक के अंग हो गए। यह सारी मालकियत अपनी है।
सिकंदर खुश हुआ था, ये बातें प्यारी थीं! सिकंदर ने कहा, लेकिन मैंने
भी जगत जीता है, अपने ढंग से जीता है।
फकीर ने कहा कि ऐसा समझो कि रेगिस्तान में तुम खो जाओ और गहन प्यास लगे और मैं एक लोटे में जल लेकर उपस्थित हो जाऊं, तो एक लोटा जल के लिए तुम अपना कितना राज्य मुझे देने को राजी नहीं हो जाओगे, अगर तुम मर रहे हो, तड़फ रहे हो?
सिकंदर ने कहा, अगर ऐसी स्थिति हो तो मैं आधा राज्य दे दूंगा; मगर लोटा
जल ले लूंगा। क्योंकि प्राण थोड़े ही गंवाऊंगा!
फकीर ने कहा, लेकिन मैं बेचूं तब न! आधे राज्य में मैं बेचूंगा? कीमत
और बढ़ाओ। ज्यादा से ज्यादा कितना दे सकते हो?
सिकंदर ने कहा, अगर ऐसी ही जिद तुम्हारी हो और मुझे प्यास लगी हो और मैं मर रहा होऊं, तड़फ रहा होऊं, तो पूरा राज्य दे दूंगा।
तो फकीर ने कहा, कितना तुम्हारे राज्य का मूल्य है--एक लोटा भर पानी! इसमें तुमने जीवन गंवाया!
प्यास इतनी अनिवार्य है कि पूरा राज्य भी कोई दे सकता है। जैसे प्यास शरीर के लिए अनिवार्य है... शरीर में तो कम से कम बीस प्रतिशत और कुछ भी है, लेकिन आत्मा में तो सौ प्रतिशत धर्म है। धर्म का अर्थ स्वभाव है।
धर्म का अर्थ ही क्या है? महावीर ने कहा हैः बत्थु सहाव... । वस्तु का
जो स्वभाव है वही धर्म है। जैसे आग जलाती है, यह उसका धर्म है। जैसे पानी नीचे की तरफ बहता है, यह उसका धर्म है। जैसे आग की लपटें ऊपर की तरफ उठती हैं, यह उसका धर्म है। ऐसे ही मनुष्य की आत्मा का जो स्वभाव है, उसका नाम ही धर्म है। सौ प्रतिशत आत्मा धर्म से निर्मित है।
धर्म से कोई बच तो नहीं सकता। लेकिन बुद्धों के पास जाने की हिम्मत नहीं होती। तो फिर आदमी होशियार है, चालाक है, चालबाज है। उसने फिर झूठे धर्म निर्मित कर लिए, उधार धर्म निर्मित कर लिए। उसने मंदिर बना लिए, मस्जिद बना ली, गुरुद्वारे बना लिए। नानक के पास जाने की तो हिम्मत नहीं है, लेकिन गुरुद्वारे में जाने में क्या डर है?

ऐसा ही समझो कि कोई पतंगा प्राइमरी स्कूल, कालेज, यूनिवर्सिटी में पढ़
कर शिक्षित हो जाए; कोई पतंगा पीएचड़ी. होकर लौटे विश्वविद्यालय से, होशियार हो जाए बहुत। दीये को देख कर तो उसके भीतर भी आकांक्षा जगेगी। पीएचड़ी. क्या करेगी? दीये को देखेगा तो आकांक्षा जगेगी कि लपट पडूं। दीये में एक अदम्य आकर्षण है उसके लिए, उसके प्राणों का कुछ जुड़ा है! दीये में एक चुंबक है जो उसे खींचता है। मगर पीएचड़ी. पतंगा है, कोई साधारण पतंगा नहीं! और दीये की ज्योति खींचती है तो पीएचड़ी. पतंगा क्या करे? वह दीये की एक तस्वीर अपने कमरे में टांग लेगा। जब दिल होगा, तस्वीर पर जाकर तड़फड़ा लेगा। जलेगा भी नहीं और एक तरह की राहत भी मिल जाएगी।
जैसे छोटे बच्चों को मां स्तन नहीं देना चाहती, तो चुसनी पकड़ा देती है। रबर की चुसनी स्तन जैसी मालूम पड़ती है बच्चे को, उसको चूसता रहता है, सो जाता है। सोचता है कि तृप्ति हो रही है।
कुत्तों के संबंध में तो कहा जाता है कि वे सूखी हड्डी चूसते हैं। अब सूखी हड्डी में चूसने को कुछ भी नहीं है। लेकिन जब कुत्ता सूखी हड्डी को चूसने लगता है तो उसके मसूढ़ों में सूखी हड्डी की चोट लगती है और खुद का खून बहने लगता है। वह खुद के खून को ही पीता है और सोचता है कि हड्डी में से रस आ रहा है।
ऐसा ही आदमी होशियार हो गया है। आदमी ने अपनी होशियारी में सूखी हड्डियां चूसी हैं, जिनमें से कोई रस नहीं निकलता। गुरुद्वारे, मंदिर-मस्जिद सूखी हड्डियां हैं।
जिन शंकराचार्यों की, आनंद मैत्रेय, तुमने चर्चा की, ये शंकराचार्य
भी सूखी हड्डियों के पंडित-पुरोहित हैं; ये सूखी हड्डियों को सजा कर बैठे हैं। इनके पास अपना कोई अनुभव नहीं है, कोई स्वानुभव नहीं है। ये तो, शंकराचार्य ने जो कहा है, उसको तोतों की तरह दोहराते रहते हैं। लेकिन करोड़-करोड़ लोग भी इनकी बात सुनते हैं, क्योंकि उनको भी इनकी बात में राहत है, सुविधा है, सांत्वना है। ये तस्वीरें हैं दीये की; इनसे टकराओ, मौत नहीं होती। कुछ खोया नहीं जाता। मन भी भर जाता है कि ज्योति पर टूट भी पड़े-- देखी दीवानगी! देखा हमारा परवानापन! ज्योति पर कैसे लपके! और ज्योति थी केवल तस्वीर।
ऐसे ही तुम शास्त्रों में खोज रहे हो परमात्मा को, तो तस्वीर में खोज रहे हो ज्योति को। पंडित-पुजारियों से सुन रहे हो परमात्मा की खबर, तो उनसे सुन रहे हो जिन्हें खुद भी खबर नहीं!
लेकिन भीड़ कायरों की है। भीड़ साहसहीनों की है। भीड़ चालाकों की है। कायर सब चालाक होते हैं, क्योंकि अपनी कायरता को छिपाने के लिए उन्हें चालाकी ईजाद करनी पड़ती है। इनसे ही तथाकथित परंपराएं बनती हैं--हिंदू, मुसलमान, जैन, बौद्ध, ईसाई, सिक्ख।
निश्चित ही जब पुनः कोई बुद्धपुरुष होगा, जब पुनः कोई ज्योति जलेगी,
तो जिन्होंने तस्वीरों के ऊपर धंधा बना रखा है वे नाराज होंगे। उनका धंधा टूटता है। वे विरोध भी करेंगे।
मुझ जैसे व्यक्ति का विरोध अधार्मिक लोग नहीं करते। अधार्मिकों को क्या पड़ी है! धार्मिक ही करते हैं, क्योंकि धार्मिक को ही अड़चन है। असली सिक्के का विरोध, नकली सिक्के जिनके पास हैं वे ही करेंगे। जिनके पास सिक्के ही नहीं हैं उनको क्या लेना-देना! असली हों तुम्हारे पास कि नकली हों, उन्हें प्रयोजन ही नहीं है। लेकिन जिनके पास नकली सिक्के हैं, अगर असली सिक्के बाजार में आ जाएं, तो नकली सिक्कों का क्या होगा?
जीसस को जिन्होंने सूली दी थी, क्या तुम सोचते हो वे अधार्मिक लोग थे? नहीं-नहीं, भूल कर भी ऐसा मत सोचना। पंडित-पुरोहित, यहूदियों के शंकराचार्य, रबाई, यहूदियों के मंदिर का सबसे बड़ा पुरोहित--इन लोगों ने मिल कर जीसस को सूली दी। जीसस को सूली कोई चोरों ने, बदमाशों ने, हत्यारों ने नहीं दी, कोई गुंडों ने नहीं दी। जीसस को सूली दी--सम्मानित, सुशिक्षित, शास्त्रज्ञ, परंपरा की धरोहर जिनके पास है, परंपरा के जो वसीयतदार हैं-- उन्होंने दी। समाज के श्रेष्ठतम वर्ग ने दी, क्योंकि उसको ही खतरा पैदा हुआ। जीसस की मौजूदगी खतरनाक थी पुरोहित के लिए, क्योंकि लोग जीसस की तरफ

जाने लगे। और जिन लोगों ने जीसस को देखा, उनके लिए पंडित का झूठापन साफ हो गया।
जिसने असली दीये को देख लिया, क्या तुम सोचते हो अब वह तस्वीर से धोखा
खा सकेगा? जिसने सूरज को ऊगते देख लिया, अब क्या तुम सोचते हो कि सूर्योदय की तस्वीर को रखे बैठा रहेगा, उसकी पूजा करता रहेगा? जिसने असली को देखा वह नकली से मुक्त हुआ--असली को देखने में ही मुक्त हो जाता है। इसलिए खतरा नकली को पैदा होता है। सारे नकली इकट्ठे हो जाएंगे।
एक मजे की बात देखो! हिंदू, ईसाई, मुसलमान, जैन और किसी बात पर राजी नहीं हैं, लेकिन मेरे विरोध में राजी हैं। जैन मुनि मेरा विरोध करते हैं, हिंदू शंकराचार्य मेरा विरोध करते हैं, ईसाई पादरी मेरा विरोध करते हैं। और तो और कम्युनिस्ट पार्टी ने एक प्रस्ताव किया है कि मुझे इस देश से बाहर निकाल देना चाहिए। धार्मिक ही नहीं, तथाकथित अधार्मिक धर्मगुरु भी, नास्तिकों के धर्मगुरु भी विरोध में हैं। तो कुछ सोचना होगाः क्यों ये सारे लोग एक बात पर राजी हैं?
इन सब की दुकानों को नुकसान पहुंच सकता है, पहुंच रहा है, पहुंचेगा। इनके विरोध से रुकने वाला भी नहीं है।
तुमने पूछा, आनंद मैत्रेयः "क्या कारण है कि आपका सबसे ज्यादा विरोध धर्म-समाज ही कर रहा है?"
उसको ही खतरा है। नाममात्र को धर्म-समाज है। हिंदू हिंदू है? क्या है उसमें हिंदू जैसा? कृष्ण जैसा क्या है उसमें? न वह बांसुरी है, न वे स्वर हैं। क्या गरिमा है उसकी? क्या महिमा है उसकी? वेदों और उपनिषदों जैसा उसमें क्या है? कहां है वह सुगंध जो उपनिषदों की है?
जैन जैन है? कहां है महावीर की मस्ती? कहां है महावीर की नग्न निर्दोषता? चालबाज है, बेईमान है, दुकानदार है, हिसाब-किताब में होशियार है। अगर महावीर को भी अकेले में पा जाए, तो यद्यपि उनकी कोई जेब नहीं, क्योंकि नंग-धड़ंग, तो भी जेब काट ले।
अभी चार-छह दिन पहले ही एक शंकराचार्य की ही सोने की चोरी हो गई। सब चोर-चोर मौसेरे भाई-बहन। चोर ने भी सोचा होगा कि तुमने भी खूब चुराया, थोड़ा हम भी हाथ मारें। कौन सी चीज चोरी चली गई शंकराचार्य की? सोने की मूर्ति, सोने के पूजा के उपकरण। यह मूर्ति अपनी भी रक्षा नहीं कर सकती, चोर से भी रक्षा नहीं कर सकती, यह शंकराचार्य की क्या खाक रक्षा करेगी! यह संसार की क्या खाक रक्षा करेगी! इसी मूर्ति के सामने बैठ कर वे प्रार्थना करते रहे कि जब जल न गिरे तो जल गिराओ और जब बाढ़ आ जाए तो बाढ़ न आए। और एक चोर ले गया चुरा कर मूर्ति को और पुलिस की सहायता लेनी पड़ी चोर को खोजने के लिए। मूर्तियां झूठी, पूजाएं झूठी; पूजक झूठे, पुजारी झूठे। स्वभावतः वे नाराज होंगे। मेरी बातें उन्हें बहुत कठिनाई में डाल रही हैं।
पहली तो बात यह कि मैं जो कहता हूं उसे वे समझ नहीं सकते। उनके मस्तिष्क जड़ विचारों से भरे हैं, पक्षपातों से भरे हैं। उनके मस्तिष्क बहुत सी पूर्व-धारणाओं से भरे हैं। समझने के लिए पक्षपात-रहित चित्त चाहिए। हिंदू नहीं समझ सकता, मुसलमान नहीं समझ सकता, ईसाई नहीं समझ सकता। समझने के लिए सारे पक्षपात एक तरफ रख देने जरूरी हैं। अगर तुमने पहले से ही तय कर लिया है कि क्या सत्य है तो फिर तुम समझोगे कैसे?
मुल्ला नसरुद्दीन बूढ़ा हो गया तो उसे गांव का काजी बना दिया गया, न्यायाधीश हो गया वह। बुजुर्ग था, अनुभवी था। पहला ही मुकदमा आया। उसने एक पक्ष की बात सुनी और फैसला देने को तत्पर हो गया। जो कोर्ट का क्लर्क था, उसने उसका हाथ खींचा और कहा कि रुको, आपको पता नहीं कि पहले दूसरे पक्ष की तो सुनो!
मुल्ला ने कहा कि मैं दो-दो पक्ष की सुन कर अपने मस्तिष्क को खराब नहीं करना चाहता। अगर मैं दूसरे पक्ष की भी सुनूंगा तो मतिभ्रम पैदा होगा। फिर तय करना मुश्किल होगा कि सच क्या है। अगर निर्णय चाहते हो तो अभी मुझे दे देने दो, अभी मुझे बिल्कुल सब साफ है। इसने जो-जो कहा है, सब मुझे याद है।
एक तरफ की सुन कर निर्णय देना आसान है।

और मुल्ला ने कहा, अगर तुम सच पूछो तो निर्णय तो मैं घर से लेकर ही चला हूं। सुनना इत्यादि तो केवल औपचारिक है। अब समय क्यों खराब करना?
मुझे जो सुनने आते हैं, अगर वे निर्णय घर से लेकर ही चले हैं, नहीं समझ पाएंगे, या कुछ का कुछ समझेंगे। मैं कहूंगा कुछ, वे समझेंगे कुछ।
दूसरा मुकदमा मुल्ला की अदालत में आया। एक आदमी चिल्लाता हुआ आया कि बचाओ-बचाओ, मैं लुट गया! इसी गांव की सीमा पर मुझे लूटा गया है, इसी गांव के लोग थे जिन्होंने मुझे लूटा है।
वह आदमी केवल चड्डी पहने हुए था। मुल्ला ने पूछा, क्या लूटा तेरा?
उसने कहा, सब लूट लिया। बड़े दुष्ट लोग थे। मेरी कमीज... मेरा पायजामा
तक निकाल लिया, सिर्फ चड्डी छोड़ी। सब पैसे ले गए, बसनी ले गए, मेरा घोड़ा ले गए। इसी गांव के लोग थे, इसी गांव के बाहर मैं लूटा गया हूं।
मुल्ला ने कहा, चुप! वे लोग इस गांव के लोग नहीं हो सकते। इस गांव के लोगों को मैं जानता हूं। वे चड्डी भी नहीं छोड़ते। वे किसी और गांव के रहे होंगे। तू किसी और गांव की अदालत में जाकर शोरगुल मचा। यहां बेकार सिर मत फोड़। इस गांव के लोगों से मैं बचपन से परिचित हूं। वे जब भी करते हैं कोई काम, पूरा-पूरा करते हैं। चड्डी छोड़ी है, यह प्रमाण है इस बात का कि यह घटना इस गांव के लोगों के द्वारा नहीं की गई है।
लोग निर्णय लिए बैठे हैं। तय ही कर लिया है कि इस गांव के कैसे लोग हैं। और एक के बाबत नहीं, सबके बाबत निर्णय कर लिया है। तुम जरा अपने मन में तलाशना। तुम भी पाओगे कि तुम पूर्व-निर्णयों पर जीते हो। एक मुसलमान ने तुम्हें धोखा दे दिया, सारे मुसलमान बुरे हो गए! एक हिंदू बेईमानी कर गया, सारे हिंदू बुरे हो गए! इतनी जल्दी निर्णय लेते हो? ऐसे निर्णय लिए जाते हैं?
अगर व्यक्ति सम्यक बोध से भरा हो तो निर्णय लेगा ही नहीं, जब तक कि सारे तथ्य ज्ञात न हो जाएं। तुम कैसे हिंदू हो गए? तुमने कुरान पढ़ी है? तुमने बाइबिल पढ़ी है? कुरान-बाइबिल छोड़ो, तुमने गीता-उपनिषद भी नहीं देखे, तुमने वेद भी नहीं पढ़ा। या पढ़ा भी होगा तो तोतों की तरह पढ़ लिया होगा। दोहरा गए होओगे--यंत्रवत, बिना समझे। लेकिन जब तक तुम नहीं जानते कि मुसलमान की क्या धारणा है, जैन की क्या धारणा है, बौद्ध की क्या धारणा है, तब तक तुमने कैसे निर्णय लिया कि तुम हिंदू हो? इस दुनिया में इतने विचार हैं, इनमें से तुमने कैसे चुन लिया कि तुम हिंदू हो?
इस दुनिया में इतने विचार हैं, इनमें से तुमने कैसे चुन लिया कि यह विचार तुम्हारा है? तुमने चुना ही नहीं, तुम्हारे मां-बाप ने पकड़ा दिया, तुम्हारे पंडित-पुजारियों ने पकड़ा दिया। तुम पैदा हुए नहीं कि पंडित-पुजारी तुम पर कब्जा करना शुरू कर देते हैं। पैदा हुआ बच्चा यहूदी घर में कि खतना उसका उसी वक्त किया जाता है, देर नहीं लगाई जाती। उसको यहूदी बना लिया गया। उससे कोई पूछता ही नहीं कि तेरे क्या इरादे हैं? हिंदू बच्चे का सिर घोंट कर यज्ञोपवीत कर दिया, जनेऊ पहना दिया। उससे कोई पूछता नहीं कि तेरे इरादे क्या हैं?
अच्छी दुनिया होगी थोड़ी, थोड़ी और समझपूर्ण दुनिया होगी, तो हम बच्चों
को मौका देंगे कि सारे धर्मों से परिचित होओ। हम उनके लिए मुहैया करेंगे सारे धर्म। हम उन्हें मस्जिद भी भेजेंगे, मंदिर भी, गुरुद्वारा भी, गिरजा भी। हम कहेंगे, सुनो, समझो। इक्कीस साल के पहले हम उन्हें वोट देने का अधिकार भी नहीं देते और धार्मिक होने का अधिकार दे देते हैं कि तुम हिंदू हो गए, तुम मुसलमान हो गए, तुम ईसाई हो गए। तो क्या तुम समझते हो, धर्म राजनीति से भी गई-बीती चीज है? किसी बुद्धू राजनीतिज्ञ को भी वोट देने के लिए इक्कीस वर्ष की उम्र चाहिए, परमात्मा को वोट देने के लिए किसी उम्र की कोई भी जरूरत नहीं?
छोड़ो, व्यक्तियों पर छोड़ो। मेरा तो अपना ख्याल यह है कि बयालीस साल की उम्र के पहले कोई निर्णय नहीं लेना चाहिए कि मैं किस धर्म को मान कर चलूं। जैसे चौदह साल की उम्र में व्यक्ति कामवासना की दृष्टि से परिपक्व होता है, वैसे ही मनोवैज्ञानिक खोज कर रहे हैं और पा रहे हैं कि बयालीस साल के करीब व्यक्ति चेतना के रूप से परिपक्व होता है। जैसे चौदह साल के बाद

विवाह की जरूरत होती है, वैसे बयालीस साल के बाद धर्म की आत्यंतिक जरूरत होती है।
तुमने देखा, लोगों को हृदय के दौरे, पागलपन, आत्महत्या इत्यादि चीजें बयालीस साल की उम्र के बाद सूझती हैं। बयालीस साल के बाद! क्यों? पश्चिम के बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक कार्ल गुस्ताव जुंग ने लिखा है कि मेरे जीवन भर का अनुभव यह है कि बयालीस साल के बाद ही लोग मानसिक रूप से रुग्ण होते हैं। और कारण मेरी दृष्टि में यह है कि बयालीस साल के बाद इन्हें धर्म की जरूरत है और धर्म नहीं मिलता, इसलिए ये विक्षिप्त हो जाते हैं। बयालीस साल के बाद इनके जीवन में प्रार्थना की आवश्यकता है और प्रार्थना नहीं मिलती, इसलिए इनको हृदय का दौरा पड़ता है, तनाव बढ़ जाता है, चिंता बढ़ जाती है। प्रार्थना मिल जाती, तनाव कट जाता, चिंता कट जाती। लेकिन प्रार्थना का फूल नहीं खिलता। और समय आ गया है कि प्रार्थना का फूल खिलना चाहिए।
बयालीस साल की उम्र के करीब पहुंचते-पहुंचते किसी व्यक्ति को इतनी समझ हो सकती है कि वह निर्णय करेः कौन सा मेरा मार्ग है? जो बहुत प्रतिभावान हैं, थोड़े जल्दी कर लेंगे। जो थोड़े कम प्रतिभावान हैं, थोड़ी देर से करेंगे। मैं औसत की बात कर रहा हूं; बयालीस का मतलब ठीक बयालीस मत समझ लेना। प्रतिभाशाली व्यक्ति हो, आद्य शंकराचार्य जैसा, तो नौ वर्ष की उम्र में भी निर्णय कर लेता है।
अपनी मां से शंकराचार्य ने कहा था कि अब मुझे संन्यस्त हो जाने दो। नौ साल की उम्र! नौ साल के बेटे को कौन मां जाने देगी? और पिता भी मर गए! यह बेटा ही सहारा है। इसी पर सारी आशाएं टिकी हैं। सारे सपने बस इसी बेटे के साथ जुड़े हैं। सारी महत्वाकांक्षा इसी बेटे के कंधों पर है। संन्यास? नौ साल का बेटा! मां ने कहा, तू पागल हुआ है? और तेरे पिता मर गए।
बेटे ने कहा, इसीलिए तो कि मेरे पिता मर गए। इसके पहले कि मैं मरूं, मैं जान लेना चाहता हूं कि सत्य क्या है। पिता की मौत ही तो मुझे याद दिला गई है।
एक तो ये लोग हैं। एक दूसरी तरफ ऐसे लोग हैंः मुल्ला नसरुद्दीन ने अस्सी साल की उम्र में फिर शादी का विचार किया, क्योंकि पत्नी मर गई। बेटे, पोते, नाती, सब परेशान हुए। नाती-पोतों ने भी आकर समझाया। कैसे समझाएं लेकिन इस बूढ़े को? जो सबसे ज्यादा कुशल बेटा था, उसने कहा कि सुनो, कल का भरोसा नहीं है। उम्र का क्या भरोसा! और अब विवाह करने चले हो!
नसरुद्दीन ने कहा, तू फिक्र मत कर, उसका मैंने पहले ही विचार कर लिया है। अगर यह लड़की मर गई कल विवाह करने के बाद, तो इसकी छोटी बहन भी है, जो इससे भी ज्यादा सुंदर है। तू कल की फिक्र ही मत कर।
ऐसे लोग भी हैं, जिनको अपने मरने की तो याद ही नहीं आती! जवान लड़की, चौदह साल की लड़की, उसके मरने की सोच रहे हैं--कि कल अगर मर जाए तो कोई फिक्र नहीं, ग्यारह साल की उसकी छोटी बहन है, तब तक वह चौदह की हो जाएगी। शंकराचार्य को पिता की मृत्यु ने ऐसा झकझोरा... । लेकिन मां तो वैसे ही दुखी थी, शंकराचार्य संन्यास लें तो और दुखी हो जाए, बिल्कुल अकेली छूट जाए। उसने कहा, मैं आज्ञा नहीं दूंगी। तो कहानी कहती हैः शंकराचार्य नदी पर नहाने गए हैं और एक मगर ने उनका पैर पकड़ लिया। भीड़ इकट्ठी हो गई है घाट पर। मां भी भागी आई। और शंकराचार्य ने कहा कि यह मगर मुझसे कहता है कि अगर तेरी मां तुझे संन्यास ले लेने दे तो मैं तेरा पैर छोड़ दूं। ऐसी हालत में मां भी क्या करे! आंख से आंसू टपकते हुए उसने कहा कि ठीक है, तो तू ले लेना संन्यास, किसी तरह बच तो जा, कम से कम बचेगा तो, संन्यासी ही रहेगा तो कभी देख तो लूंगी।
और कहानी कहती है कि मगर ने पैर छोड़ दिया। यह तो कहानी ही है। मगर इतने समझदार न पहले होते थे न अब हैं। आदमी नहीं है इतना समझदार, तो मगर की क्या कहना!
मुल्ला नसरुद्दीन की मैंने बात की न, उसने आखिर शादी कर ली। चौदह साल
की लड़की, अस्सी साल का बूढ़ा। दूसरे दिन मित्रों ने पूछा कि कहो सुहागरात कैसी गुजरी?

मुल्ला ने कहा कि कुछ मत पूछो, बड़ा आनंद रहा, सिर्फ झंझट एक आई। बिस्तर
पर चढ़ तो मैं गया, लेकिन उतारते वक्त मेरे चारों बेटों को ताकत लगानी पड़ी तब नीचे उतरा।
लोगों ने पूछा, क्यों? जब तुम चढ़ गए तो उतरे क्यों नहीं?
तो कहा, उतरने का मन ही नहीं होता था। वह तो चारों बेटों ने जबरदस्ती
की, मार-पीट हो गई! लेकिन बेटे मजबूत हैं, जवान हैं। उन्होंने चारों तरफ से पकड़ कर मुझे आखिर बिस्तर से उतार लिया।
एक तरफ ये लोग भी हैं!
नहीं, मगरमच्छ की कहानी तो कहानी है, लेकिन प्रतीक सुंदर है। कहानी यह
कह रही है कि शंकराचार्य ने अपनी मां को साफ-साफ दिखा दिया होगा कि मौत देख मेरा पैर पकड़े बैठी है। कल का भरोसा नहीं है। अगर तू मुझे संन्यासी न होने देगी तो मैं तड़फ-तड़फ कर मर जाऊंगा। संन्यास के बिना मेरे लिए कोई जीवन शेष नहीं रहा है। तो या तो संन्यासी होकर जी सकता हूं या मौत सुनिश्चित है। ऐसा समझाया होगा मां को। मां को भी यह बात दिखाई पड़ गई होगी कि शंकराचार्य जो कह रहे हैं वैसा ही करेंगे। मर जाएंगे, अगर नहीं संन्यस्त होने दिया। तो नौ वर्ष की उम्र में भी कोई संन्यस्त हो सकता है; उसके लिए महाप्रतिभा चाहिए। लेकिन साधारण, औसत मैं बात कर रहा हूं, तो बयालीस साल की उम्र कम से कम चाहिए व्यक्ति को निर्णय करने में, अपना मार्ग चुनने में। और हम बच्चों को मार्ग पकड़ा देते हैं, जबरदस्ती पकड़ा देते हैं।
सारे धर्मगुरु बड़े उत्सुक रहते हैं कि बच्चों को एकदम से धार्मिक शिक्षा दी जानी चाहिए। धार्मिक शिक्षा से उनका कोई मतलब नहीं है। धार्मिक शिक्षा से मतलब है उनके धर्म की शिक्षा। धर्म प्रत्येक के लिए उनका धर्म है, बाकी तो सब अधर्म हैं।
और उनकी समझ क्या है पंडित-पुरोहितों की? उनकी आंखों में तुम्हें दीये जलते दिखाई पड़ते हैं? उनके प्राणों में तुम्हें सुगंध मालूम पड़ती है? उनके पास बैठ कर सत्संग का प्रसाद बरसता है? उनमें और तुममें तुम्हें कुछ भेद दिखाई पड़ता है? रंचमात्र भी? तुम जैसे ही लोग; तुम सांसारिक धंधों में लगे हो, वे गैर-सांसारिक धंधों में लगे हैं।
मेरी पत्नी गर्भवती है, चंदूलाल ने खुशी में बताया।
अच्छा! तो तुम्हें किस पर शक है? ढब्बूजी ने संदेह-भाव से पूछा।
लोगों की अपनी समझ है। उस समझ के वे पार नहीं हो पाते। मैं जो कह रहा हूं, उसे केवल वे ही समझ सकते हैं जो सारी धारणाओं को एक तरफ हटा कर बैठे हैं।
नहीं, तुम्हारे तथाकथित शंकराचार्य मेरे वक्तव्यों को नहीं समझ सकेंगे, मेरे काम को भी नहीं समझ सकेंगे। यह जो महत रासायनिक प्रक्रिया चल रही है जीवन-रूपांतरण की, इसे नहीं समझ सकेंगे। उनकी रूढ़ धारणाएं हैं। उनके लिए धर्म एक उदासी है; धर्म का अर्थ है उदासीनता। और मेरे लिए धर्म का अर्थ है उत्सव। उनके लिए धर्म का अर्थ है उदासी। यद्यपि वे कृष्ण की पूजा किए जाते हैं, और देखते नहीं मोर-मुकुट बांधे हुए कृष्ण को! और देखते नहीं इसके ओंठों पर रखी बंसी को! और देखते नहीं इसके पैरों में बंधे हुए घूंघर को! और देखते नहीं इसके पास नाचती हुई गोपियों को! कृष्ण उत्सव हैं, और कृष्ण की पूजा करने वाला उदासीनता की बातें कर रहा है।
तुम्हारे तथाकथित शंकराचार्य, पोप, पुरोहित, सब जीवन-विरोधी हैं। मैं जीवन को परमात्मा कहता हूं। मेरे लिए जीवन के अतिरिक्त और कोई परमात्मा नहीं है। जीवन का ही दूसरा नाम है परमात्मा। जी भर कर जीना, समग्रता से जीना, परिपूर्णता से जीना--मेरे लिए धर्म का इससे भिन्न कुछ अर्थ नहीं है। उनके लिए संन्यास का अर्थ है--सब छोड़-छाड़ कर भाग जाना। और मेरे लिए संन्यास का अर्थ है--बीच बाजार में असंपृक्त खड़े हो जाना, भीड़-भाड़ में अकेले खड़े हो जाना। शोरगुल में शांत होना। उनके लिए अर्थ है--हिमालय की गुफा। और मेरे लिए है--बाजार; लेकिन बाजार में शांति होनी चाहिए।
हिमालय की गुफा में कौन शांत नहीं हो जाएगा! कोई भी शांत हो जाएगा। अशांति का कोई उपाय नहीं है। लेकिन वह शांति तुम्हारी नहीं है, हिमालय की शांति है। तुम्हारे भीतर तो वही रोग पलते रहेंगे; दबे पड़े रहेंगे, अवसर की तलाश करेंगे। जैसे बीज पत्थर पर पड़ा हो, अंकुरित नहीं हो सकता; लेकिन इससे

क्या तुम सोचते हो बीज रूपांतरित हो गया? वर्षों पड़ा रहे पत्थर पर, लेकिन जिस दिन इसको भूमि मिल जाएगी उसी दिन अंकुर निकल आएगा।
ये तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी बीज हैं पत्थरों पर रखे हुए। धोखा मत खाना, इनके भीतर वासना का अंकुर मर नहीं गया है, सिर्फ प्रतीक्षारत है--अनुकूल समय की; मेघ घिरें, वर्षा हो, वसंत आए, भूमि मिले-- आतुर है, भीतर तड़फा जा रहा है। भाग जाओगे संसार से तो निश्चित ही एक तरह की शांति मिलेगी--लेकिन झूठी, नकली। असली शांति तो वही है जो अशांति के बीच में निर्मित होती है। उसे फिर कोई दुनिया की शक्ति नहीं तोड़ सकती। उसे फिर दुनिया का कोई उपद्रव नष्ट नहीं कर सकता। फिर तूफान आएं तो आएं, आंधियां उठें तो उठें; तुम्हारे भीतर जो शून्य हो गया है, शांत हो गया है, वह अविच्छिन्न रहेगा, अविरत रहेगा, अछूता रहेगा, क्वांरा रहेगा। शंकराचार्यों की दृष्टि में संन्यास है--भगोड़ापन, पलायनवाद, वैराग्य। मेरी दृष्टि में संन्यास है--जीने और मरने की कला। मेरे लिए संन्यास का अर्थ है--समाधिस्थ होने का विज्ञान, और भगोड़ापन नहीं। मैं भगोड़ेपन के विरोध में हूं, क्योंकि भगोड़ापन भय से पैदा होता है। और जो बात भय से पैदा होती है, वह तुम्हें कभी भी भगवान के पास नहीं ले जा सकती। लेकिन तुम्हारा भगवान भय का भगवान है। तुम्हारे सब भगवान तुम्हारे भय
से निर्मित हैं। मैं तुम्हें उस भगवान की याद दिलाना चाहता हूं जो प्रेम में प्रकट होता है, भय में नहीं। जो प्रेम और प्रार्थना में प्रकट होता है! तुम्हारी तो प्रार्थना भी भय है। तुम्हारे पैर कंप रहे हैं। इसलिए तुम प्रार्थना तब करते हो जब दुख में होते हो। तुम्हें दुख में भगवान की याद आती है। और मैं चाहता हूं कि तुम्हें सुख में उसकी याद आए। दुख में तो किसी को भी आ जाती है, दो कौड़ी उसकी कीमत है; सुख में जिसे याद आए।
मैं तुम्हें तपश्चर्या नहीं सिखाना चाहता। क्योंकि शरीर को गलाना और सताना मानसिक रुग्णता है; नैसर्गिक नहीं है यह बात। मैं चाहता हूंः तुम सुख से जीओ, सुविधा से जीओ। मैं चाहता हूंः शरीर को तुम मंदिर समझो, क्योंकि उसमें परमात्मा का वास है। मंदिर को साफ रखो, स्वच्छ रखो। मंदिर को स्वस्थ रखो, पोषण दो। मंदिर का धन्यवाद मानो। देह मंदिर है, पावन है; पाप नहीं है देह। तुम्हारे शंकराचार्य समझाते हैं पाप है; मैं समझाता हूं देह का गरिमामय, महिमामय रूप। देह सुंदर है। देह का कोई पाप नहीं है। भूल-चूक है तो मन की है, देह की नहीं। मन को रूपांतरित करो।
देह तो सदा मन के पीछे जाती है। वेश्यागृह जाना है, तो देह वेश्यागृह चली जाती है। और प्रभु के मंदिर जाना है, तो देह प्रभु के मंदिर ले जाती है। चोरी करो तो साथ है, दान दो तो साथ है। देह तो तुम्हारी सेवा में रत है। मन को बदलो। और मन को बदलने की प्रक्रिया ध्यान है, त्याग नहीं। शरीर को सताना नहीं, गलाना नहीं; वरन सोई हुई चेतना को जगाना, साक्षी को जगाना। मेरे लिए संन्यास का मौलिक अर्थ है साक्षीभाव। और साक्षीभाव के लिए संसार सबसे सुविधापूर्ण अवसर है। इसीलिए तो परमात्मा ने तुम्हें संसार दिया। परमात्मा तुम्हें संसार देता है और तुम्हारे तथाकथित महात्मा कहते हैं संसार छोड़ो। मैं तुम्हारे महात्माओं के विरोध में हूं, क्योंकि मैं परमात्मा के पक्ष में हूं। मैं कहता हूंः संसार छोड़ो मत, संसार में जागो! संसार एक अपूर्व अवसर है जागने का--चुनौती है!
स्वभावतः तुम्हारे शंकराचार्यों को कठिनाई होगी, अड़चन होगी। उनकी समझ भी बहुत ज्यादा नहीं। उनकी समझ बहुत ज्यादा हो भी नहीं सकती। अन्यथा कोई किसी और की गद्दी पर बैठता है! अपने बैठने योग्य जगह खुद न बना सको तो दूसरों की गद्दियों पर बैठना पड़ता है, तो बासी कुर्सियों पर बैठना पड़ता है।
अब तुम देखते हो, कोई आदमी प्रधानमंत्री हो जाता है, वह सोचता ही नहीं
कि कितनी बासी कुर्सी पर बैठा है! कितने लोग उस पर बैठ चुके, जा चुके। यह तो होटल के--भारतीय होटल के--कप में चाय पीना है। दिन भर कितने लोग पी रहे हैं! फिर चाहे तुम चाय पीओ, चाहे जीवन-जल पीओ--इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता, कप बहुत गंदा है।
जिनमें थोड़ी भी सामर्थ्य और प्रतिभा होती है, वे अपने बैठने की, कम से
कम अपने बैठने की जगह तो खुद बना लेंगे। इतनी भी जिनमें प्रतिभा नहीं है,

ये दूसरों की गद्दियों पर बैठते हैं। ये उधार होते हैं, ये बासे हैं। आदमी दूसरे के जूते भी पहनना पसंद नहीं करता, दूसरे के उधार कपड़े भी पहनना पसंद नहीं करता, दूसरे का जूठा खाना भी पसंद नहीं करता--और तुम्हारे शंकराचार्य दूसरों की गद्दियों पर बैठे हैं, दूसरों के कपड़े पहने हैं, दूसरों के झंडे हाथ में लिए हैं, दूसरों की वाणी दोहरा रहे हैं! इन उधार लोगों की बुद्धि कितनी हो सकती है?
सरदारजी जब अमेरिका से वापस लौटे तो साथ में एक छोटी सी मानव खोपड़ी भी लेकर आए। अमृतसर में उन्होंने एक सभा की और सब को सगर्व बताया कि मैं न्यूयार्क की एक प्रसिद्ध दुकान से गुरु गोविंद सिंह की खोपड़ी खरीद कर लाया हूं--नगद दस लाख रुपयों में! यह खोपड़ी पिछले पांच सौ वर्षों से अमरीकन्स सुरक्षित रखे हुए थे।
यह सुनते ही पहले तो सभा में तालियां बजीं, जय-जयकार हो गई! लेकिन फिर धीरे-धीरे कुछ नवयुवकों ने संदेह उठाया कि गुरु गोविंद सिंह तो भारत में जन्मे और भारत में मरे, उनकी खोपड़ी अमेरिका कहां से पहुंच गई? खैर यह भी मान लिया जाए कि कोई अमरीकन पर्यटक यहां से ले गया हो, तो अमेरिका की सभ्यता की उम्र भी तीन सौ साल से ज्यादा नहीं, पांच सौ साल पहले कौन अमरीकन ले गया? खैर यह भी मान लिया जाए कि कुछ तारीख में भूल-चूक हो गई होगी, तो सबसे बड़ा सवाल यह उठता है कि खोपड़ी इतनी छोटी क्यों है? गुरु गोविंद सिंह का सिर तो काफी बड़ा था।
सरदारजी को महसूस हुआ कि उन्हें किस तरह से बेवकूफ बनाया गया है। आव देखा न ताव, फौरन अमेरिका वापस गए और जाकर उस दुकानदार की गर्दन पकड़ ली। कहा, क्यों रे, मुझे समझता क्या है? तूने मुझे उल्लू बनाने की कोशिश की? नहीं सरदारजी, मैं भला क्यों आपको उल्लू बनाने की कोशिश करूंगा! अमरीकन ने ऊपर से कहा। मन में तो सोचा होगाः उल्लू तो आप हैं ही, बनाने की जरूरत क्या है? बनाना तो उन्हें पड़ता है जो उल्लू नहीं होते। लेकिन प्रकट में कहा कि नहीं-नहीं, मैं आपको उल्लू बनाने की कोशिश क्यों करूंगा? वह काम तो खुद ईश्वर पहले ही कर चुका है। मगर, खैर बताइए इतनी नाराजगी आखिर किस कारण से है?
सरदारजी बोले, तूने मुझे झूठी खोपड़ी दे दी! बता, भला गुरु गोविंद सिंह
की खोपड़ी इतनी छोटी साइज की कैसे हो सकती है?
गजब कर दिया आपने भी--उस दुकानदार ने कहा--जरा सी बात आपकी समझ में न आई! अरे सरदारजी, यह गुरु गोविंद सिंह की बचपन की खोपड़ी है।
और सरदारजी संतुष्ट वापस लौट आए कि ठीक बात है, बचपन की खोपड़ी तो छोटी
ही होगी।... जैसे आदमी हर साल खोपड़ी बदलता है!
मैं तुम्हारे शंकराचार्यों में कोई बुद्धिमत्ता नहीं देखता हूं; जड़ता देखता हूं, मूढ़ता देखता हूं। धर्म को तो ये क्या समझेंगे? धर्म को समझने के लिए महाप्रज्ञा चाहिए, बड़ा उदार हृदय चाहिए और बड़ी गहन शांति, मौन, शून्य चाहिए। ये बातें सिर्फ विचार से समझ लेने की नहीं हैं; अनुभव में डूबने-उतरने की हैं।
इसलिए मैं कोई चिंता नहीं लेता कि कौन मेरे संबंध में क्या कह रहा है। उतना समय भी क्यों गंवाना? उतना समय भी मैं उन पर ही लगाना चाहूंगा, जो परवाने हैं, जो दीवाने हैं, जो मेरी इस मधुशाला में सम्मिलित हो गए हैं।
उनको ही थोड़ी और शराब पिलाऊं। उनके लिए ही थोड़ी और शराब ढालूं। उनके लिए ही और थोड़े अनुभव के रास्ते पर सरकाऊं, धक्का दूं।
मुझे चिंता नहीं कि मेरे संबंध में कौन क्या कहता है। जरा भी, तुम भी चिंता न लेना। इतना समय गंवाना उचित नहीं है।
लेकिन, आनंद मैत्रेय, यह सच है कि विरोध धार्मिक लोगों द्वारा ही मेरा होगा। वही सबूत होगा कि मैं जो कह रहा हूं वह सच्चा धर्म है। अन्यथा मेरे विरोध की जरूरत भी क्या है!
और यहीं नहीं, सारी दुनिया में विरोध हो रहा है। शंकराचार्य विरोध करें, ठीक है। लेकिन पोप ने अभी एक पांच पृष्ठों का वक्तव्य निकाला है। रोम से किसी संन्यासी ने मुझे भेजा है। मेरे नाम का उल्लेख नहीं है, लेकिन पूरा वक्तव्य मेरे खिलाफ है। किसी दूसरे आदमी के खिलाफ हो ही नहीं सकता; क्योंकि जो-जो कहा है वह मैं ही कह रहा हूं, कोई दूसरा व्यक्ति कह नहीं रहा

है। और वक्तव्य के अंत में यह धमकी दी है--यह धमकी है--कि जो भी इस तरह के लोगों की बातें मान कर चलेगा वह शाश्वत काल के लिए नरक की अग्नि में सड़ेगा।
स्वभावतः इस तरह की बातों से लोग डर जाते हैं।
अभी मृदुला यूरोप का भ्रमण करके लौटी। जर्मनी में उसे घुसने नहीं दिया गया--गैरिक वस्त्रों के कारण। मेरी माला बाधा बन गई। उसे बहुत परेशान किया, दो-ढाई घंटे एक कमरे में बंद रखा। उसके पासपोर्ट पर सील-मुहर लगा दी कि वह जर्मनी में प्रवेश नहीं कर सकती। और वापसी ट्रेन में बिठा कर उसको एकदम वापस रवाना कर दिया।
पर मृदुला भी ऐसे कुछ हार जाने वाली तो है नहीं। उसने दूसरे एक कोने
से देश के, घुसने की कोशिश की।
मगर जर्मन तो जर्मन, मृदुला को भी हरा दिया। उन्होंने फिर पकड़ लिया, फिर वापसी गाड़ी में बिठा दिया। उसे नहीं घुसने दिया सो नहीं घुसने दिया। जर्मनी में बड़ी घबड़ाहट है, क्योंकि एक बहुत बड़े युवकों का समूह संन्यासी हुआ है। पूना के बाद अगर सबसे ज्यादा संन्यासी कहीं होंगे तो म्यूनिख, जर्मनी में, बर्लिन में। हवा जोर से फैल रही है, लपट जोर से फैल रही है। घबड़ाहट स्वाभाविक है। दूसरे देशों में भी व्याप्त हुई जा रही है घबड़ाहट। और घबड़ाहट दो तरह के लोगों में है--पंडित-पुरोहितों में और राजनीतिज्ञों में। धर्म सदा ही दोनों के विरोध में रहा है; क्योंकि धर्म चाहता है कि तुम राजनीति से मुक्त हो जाओ और धर्म चाहता है कि तुम धर्म के नाम पर चलने वाले पाखंडों से मुक्त हो जाओ।
लेकिन ये विरोध एक अर्थ में चुनौतियां हैं, उपयोगी हैं। इनसे मेरे काम को सहायता मिलती है; बाधा नहीं पड़ती। इनसे मेरे काम में धार आती है, निखार आता है; बाधा नहीं पड़ती।

दूसरा प्रश्नः ओशो! मैं बुद्ध होकर मरना नहीं चाहती; मैं बुद्ध होकर जीना चाहती हूं।

आनंद ऋचा! जब तक चाह है--कोई भी चाह, कैसी भी चाह; यह भी चाह कि मैं बुद्ध होकर मरना नहीं चाहती, बुद्ध होकर जीना चाहती हूं--तब तक तू बुद्ध हो ही न सकेगी, फिक्र न कर। चाह के जो पार जाता है--समस्त चाह के जो पार जाता है--वही बुद्धत्व को उपलब्ध होता है। चाह ही तो बांधे है। चाह ही तो बंधन है। तुम्हारे हाथों पर जंजीरें कौन सी हैं? तुम्हारे पैरों में बेड़ियां कौन सी हैं? तुम किस कारागृह में बंद हो? तुम्हें किन पाशों ने जकड़ा है? चाहें, वासनाएं, तृष्णाएं--यह हो जाऊं, वह हो जाऊं; यह पा लूं, वह पा लूं! सिकंदर भारत आता था तो यूनान के एक बड़े फकीर डायोजनीज से मिलने गया था। डायोजनीज नग्न, नदी के तट पर सुबह की धूप ले रहा था। सिकंदर ने जाकर कहा, डायोजनीज, तुम धन्यभागी समझो अपने को! महान सिकंदर तुमसे मिलने आया है!
डायोजनीज हंसने लगा और उसने कहा, जो स्वयं को महान कहता हो, वह पागल है। और मैंने तुझ जैसा दीन-दरिद्र आदमी पहले नहीं देखा। यह महान होने का दावा आंतरिक हीनता को छिपाने के लिए ही किया जाता है। ये आभूषण, ये वस्त्र, यह नंगी तलवार, यह काफिला, यह फौज-फाटा, यह सब दिखावा है। भीतर तू बिल्कुल खाली है। लाख उपाय कर, ऐसे तू भरेगा नहीं।
बात तो सिकंदर को समझ में पड़ी। इतनी चोट से कही गई थी, इतने बलपूर्वक कही गई थी--और जिस आदमी ने कही थी, उसकी मस्ती साफ थी, उसकी मालकियत साफ थी! सिकंदर शर्म से झुक गया और उसने कहा कि मानता हूं डायोजनीज, तुम अकेले आदमी हो जिसके सामने मुझे अपनी दीनता अनुभव होती है। तुम्हारे पास कुछ भी नहीं, फिर तुम्हारे पास क्या है जिसके कारण मैं अचानक दीन मालूम हो रहा हूं? मेरे पास सब कुछ है!
डायोजनीज ने कहा, सब कुछ है तेरे पास, लेकिन और की चाह है, इसलिए तू भिखारी है। मेरे पास कुछ भी नहीं है, लेकिन और की चाह नहीं है, इसलिए मैं सम्राट हूं। और देख, जिंदगी हाथ से बीती जाती है, और मत गंवा!

सिकंदर ने कहा, मिल कर खुशी हुई। और अगर दोबारा ईश्वर ने मुझे जन्म दिया तो कहूंगा उससे--इस बार सिकंदर न बना, इस बार डायोजनीज बना। डायोजनीज खिलखिला कर हंसने लगा और उसने कहा, पागल हो तुम! अरे अभी डायोजनीज क्यों नहीं हो जाते? अगले जन्म में क्या भरोसा, याद रख सको कि भूल जाओ! फिर परमात्मा राजी हो, न राजी हो। अगला जन्म हो या न हो। कल का भरोसा नहीं, तुम अगले जन्म पर टाल रहे हो! अगर बात जंचती है तो आओ लेट जाओ तुम भी नग्न इस नदी के तट पर। यह तट बड़ा है, हम दोनों के लिए बहुत बड़ा है। कोई झगड़ा नहीं, तुम भी विश्राम करो। खूब दौड़े-धूपे, खूब आपा-धापी की! आओ हम विश्राम करें! अगर मैं तुम्हारे मन भा गया हूं तो अभी हो जाओ डायोजनीज, कौन रोकता है? सिकंदर होना हो तो मुश्किल मामला है; लेकिन डायोजनीज होना हो तो बिल्कुल सरल, क्योंकि स्वाभाविक। फेंक दो ये वस्त्र! कह दो फौजों सेः नमस्कार! वापस लौट जाओ! मेरी विजय-यात्रा समाप्त हो गई। मुझे जहां आना था वहां आ गया।
सिकंदर ने कहा, यह मुश्किल है, आज मुश्किल है, अभी मुश्किल है।
डायोजनीज ने कहा, अगर आज मुश्किल है, अभी मुश्किल है, तो सदा मुश्किल रहेगा। जो आज हो सकता है, उसे कल पर मत टालो। और जो कल पर टालता है, वह सदा के लिए टाल देता है। फिर तुम्हारी मर्जी।
सिकंदर ने कहा, मैं बहुत खुश हुआ हूं मिल कर, बहुत प्रभावित हुआ हूं। मैं आपकी कुछ सेवा कर सकता हूं?
और तुम्हें पता है, ऋचा, डायोजनीज ने क्या कहा?
डायोजनीज ने कहा, क्या मांगूं, मेरी कोई मांग नहीं! क्या चाहूं, मेरी कोई चाह नहीं! लेकिन अगर तुम कुछ करना ही चाहते हो तो तुम्हें मैं निराश भी नहीं भेजूंगा। तुम जरा हट कर खड़े हो जाओ, क्योंकि तुमने धूप रोक रखी है।... धन्यवाद कि तुमने मेरी सुनी और हट कर खड़े हो गए। और स्मरण रखना, जिंदगी में किसी की धूप रोक कर खड़े मत होना।
चोट खाकर लौटा सिकंदर, भयंकर चोट खाकर लौटा! चलते वक्त कह कर आया था डायोजनीज से कि जब लौट कर आ जाऊंगा, यात्रा पूरी करके, तो इसी जीवन में तुम्हारे जैसा ही जीऊंगा। डायोजनीज ने कहा, ऐसी यात्राओं से कोई कभी लौटता नहीं। ये यात्राएं वासना की इतनी लंबी हैं, इनका कोई अंत नहीं। वासना कभी पूरी होती है? वासना दुष्पूर है। तृष्णा कभी भरती नहीं। एक तृष्णा मिटती नहीं कि दस पैदा हो जाती हैं। तुम लौट न सकोगे। कोई कभी नहीं लौटा। यह यात्रा कभी पूरी ही नहीं होती। समझदार बीच में ही रुक जाते हैं, पूरी करने की चिंता नहीं करते। नासमझ कहते हैंः पूरी करेंगे यात्रा, फिर रुकेंगे। यात्रा ऐसी है कि पूरी होती ही नहीं। मौत पहले आ जाती है, यात्रा का अंत नहीं आता।
और यही हुआ, सिकंदर लौटते वक्त बीच में ही मर गया, घर वापस नहीं पहुंच पाया।
संयोग की बात, सिकंदर और डायोजनीज एक ही दिन मरे। सिकंदर जरा जल्दी, कोई घड़ी भर पहले; और डायोजनीज, कोई घड़ी भर बाद। कहानी प्रचलित है, प्यारी कहानी है, झूठी ही होगी। मगर झूठे होने से उसका प्यारापन कम नहीं होता। और झूठे होने से उसके भीतर छिपी हुई सचाई भी कम नहीं होती। कभी-कभी सच को झूठ के आवरण लेने पड़ते हैं, क्योंकि सच सीधा प्रकट नहीं हो सकता। कभी-कभी सच को झूठ की भाषा उपयोग करनी पड़ती है, क्योंकि सच की कोई भाषा नहीं है। सच शून्य है, निःशब्द है।
तो यह प्यारी कहानी है। सिकंदर वैतरणी पार कर रहा है, स्वर्ग जा रहा है। उसने पीछे किसी के आने की खड़बड़-खड़बड़ की आवाज सुनी। लौट कर देखा-- डायोजनीज! एक क्षण को तो खुश हुआ और एक क्षण को उदास भी, क्योंकि वह डायोजनीज फिर हंसेगा खिलखिला कर और वह कहेगाः कहा था न मैंने कि इस यात्रा को तुम पूरा न कर पाओगे? मर गए न आखिर मध्य में!
और इसलिए भी मन में उसके बड़ी शर्म आ गई कि डायोजनीज तो नंगा था; जिंदगी में भी नंगा था, अब भी नंगा था; सिकंदर जिंदगी भर सुंदर-सुंदर वस्त्रों में ढंका रहा, आज नंगा था। अब छिपाए अपने नंगेपन को सो कैसे छिपाए? बड़ी लाज लगी, बड़ी संकोच की दशा पैदा हो गई। छिपाने को लाज को, दबाने को संकोच को-- इसके पहले कि डायोजनीज हंसे, सिकंदर हंसा। हंसी झूठी थी, खोखली थी। और हंस

कर उसने डायोजनीज को कहा, कैसा अपूर्व संयोग है, एक सम्राट और एक फकीर का फिर से मिलना हो रहा है!
डायोजनीज ने कहा, बात तुम ठीक कहते हो, लेकिन जरा समझने में भूल करते
हो कि सम्राट कौन है और फकीर कौन है। सम्राट पीछे है, फकीर आगे है। फकीर तुम हो। तुम सब गंवा कर लौट रहे हो, मैं सब कमा कर लौट रहा हूं। क्योंकि तुम्हारी जिंदगी चाह की जिंदगी थी और मेरी जिंदगी आनंद की जिंदगी थी, चाह की नहीं; संतोष की, तृप्ति की।
ऋचा! यह आकांक्षा भी बाधा बन जाएगी। बुद्धत्व की उपलब्धि के बाद न जीवन कुछ है, न मृत्यु कुछ है; दोनों खो जाते हैं। जो बच रहता है, वह है एक शाश्वत अस्तित्व--जिसका न कोई प्रारंभ है, न कोई अंत है।
तू कहती हैः "मैं बुद्ध होकर मरना नहीं चाहती।"
मृत्यु का भय बना है तो बुद्धत्व उपलब्ध नहीं होगा।
तू कहती हैः "मैं बुद्ध होकर जीना चाहती हूं।"
जीने का लोभ बना है, जीवेषणा बनी है, तो बुद्धत्व उपलब्ध नहीं होगा। बुद्धत्व तो उन्हें उपलब्ध होता है जो जानते हैंः न हमारा कोई जन्म है, न हमारी कोई मृत्यु है। जो साक्षी होकर देख लेते हैं कि जन्म भी देह का है, मृत्यु भी देह की है; हम तो दोनों के पार हैं, हम तो दोनों से अतीत हैं। जो इस अतिक्रमण को उपलब्ध हो जाते हैं, वे ही केवल बुद्धत्व को उपलब्ध हो पाते हैं।

जीवन की घाटी में,
अंतस की माटी में, उग आए टीस भरे घाव।
तेल सभी चुक गयाअंतर के दीप का।
लुट गया हर मोतीआंखों की सीप का।
शोकमय अकेले में,
सुधियों के मेले में, मिला हमें केवल भटकाव।
पीड़ा लुहारिन-सीपीट रही प्राण को।
कलियों ने ठग लियाभोले पाषाण को।
हम इतने ऊबे हैं,
तड़पन में डूबे हैं, टूट रही सपनों की नाव।
सांसों के राम कोविरह-बनवास हुआ।
आंसू की गोद मेंमन का विकास हुआ।
हांफते खिलाड़ी हम,
बहुत ही अनाड़ी हम, हार गए जीवन का दांव।
ऋचा! जिंदगी ने दिया क्या? जिंदगी में मिला क्या?
जीवन की घाटी में,
अंतस की माटी में, उग आए टीस भरे घाव।
सिवाय घावों के, सिवाय पीड़ाओं के, सिवाय संताप के और जीवन में मिला क्या? जीवेषणा क्यों? जीने की इतनी आतुरता क्यों? मरने का भय क्या? मृत्यु क्या छीन लेगी? जब जीवन ने कुछ दिया ही नहीं तो मृत्यु क्या छीन लेगी?
तेल सभी चुक गयाअंतर के दीप का।
लुट गया हर मोतीआंखों की सीप का।
सब लुट गया जीवन में, फिर भी हम पकड़े बैठे हैं! रस्सी जल गई, ऐंठ नहीं जाती।
तेल सभी चुक गयाअंतर के दीप का।
लुट गया हर मोतीआंखों की सीप का।
जीवन की घाटी में,
अंतस की माटी में, उग आए टीस भरे घाव।
जरा खोल कर तो देखो अपने अंतस को--घाव ही घाव! फूल तो एक भी न खिला-- कांटे ही कांटे! कमल तो एक भी न उगा--कीचड़ ही कीचड़! फिर भी अभीप्सा, फिर भी जीवन को पकड़े रहने की आकांक्षा!
शोकमय अकेले में,
सुधियों के मेले में, मिला हमें केवल भटकाव।

पाया क्या इस भीड़ में? मिला क्या इस भीड़ में? केवल भटकाव।
पीड़ा लुहारिन-सीपीट रही प्राण को।
कलियों ने ठग लियाभोले पाषाण को।
हम इतने ऊबे हैं,
तड़पन में डूबे हैं, टूट रही सपनों की नाव।
सब टूट रहा, नाव डूब रही; मगर फिर भी हम थेगड़े लगा रहे हैं, नाव के छिद्र भर रहे हैं--बच जाएं, किसी तरह बच जाएं!
बच-बच कर भी क्या होता है? कितने जन्मों में जीए हो, कितनी लंबी यात्रा--सब गंवाया ही गंवाया!
सांसों के राम कोविरह-बनवास हुआ।
आंसू की गोद में मन का विकास हुआ।
हांफते खिलाड़ी हम,
बहुत ही अनाड़ी हम, हार गए जीवन का दांव।
यहां सब हार जाते हैं, यह जुआ ऐसा है! जीतते केवल वही हैं जो चाह से मुक्त हो जाते हैं--जो चाह की व्यर्थता को देख लेते हैं; जो तृष्णा की दौड़ से जाग जाते हैं; जो वासना से हट जाते हैं और प्रार्थना में लीन हो जाते हैं।
जागो! जागने का नाम ही बुद्धत्व है। जागो जीवन से। जागो मृत्यु से। बस जागो! जो जाग गया उसने जीवन का परम धन पा लिया है।

तीसरा प्रश्नः ओशो! आप कहते हैं कि जीवन में कुछ मिलता नहीं। फिर भी जीवन से मोह छूटता क्यों नहीं? समझ में बात आती है और फिर भी समझ में नहीं आती; समझ में आते-आते छूट जाती है, चूक जाती है।

ज्ञानरंजन! मुझे सुनते हो, मेरे रस में डूब जाते हो--जैसे कोई बगीचे में आए, और बगीचे की गंध में, बगीचे की सुगंध में और बगीचे के रंगों में लवलीन हो जाए, और क्षण भर को भूल जाए संसार की सारी चिंताएं, ऊहापोह! लेकिन फिर बगीचे के बाहर लौटेगा, फिर वही नाली की दुर्गंध, फिर वही भीड़-भाड़। रंग खो जाएंगे, गंध खो जाएगी। फिर वही चिंताओं का उभार, फिर वही... ।
मुझे सुनते हो, अभी समझे नहीं हो। सुनते-सुनते लगता है, भ्रांति होती
है कि समझ में आ गया। समझ में जिस दिन आ जाएगा उस दिन फिर छूटेगा नहीं; वही कसौटी है समझ की। इसी कसौटी पर कसना। जैसे सुनार कसौटी रखता है सोने को कसने की, कस-कस कर देख लेता है--क्या सोना है और क्या पीतल है? तुम्हें मैं यह कसौटी देता हूंः जो बात तुम्हारी समझ में आ जाएगी वह तुम्हारा जीवन बन जाएगी; उससे अन्यथा तुम न कर पाओगे, न जी पाओगे। जो बात केवल बौद्धिक रूप से समझ में आ जाएगी और जीवन नहीं बनेगी, समझना कि तुम समझे ही नहीं। बुद्धि को लगेगा कि बात समझ में आ गई, क्योंकि शब्द समझ में आ गए। मगर शब्दों को समझना बात को समझना नहीं है। बात को समझना कुछ और है; वह मस्तिष्क का काम नहीं है, वह हृदय का काम है।
मैं जो बोल रहा हूं, सीधे-सादे शब्द हैं। मेरे पास कोई पंडित की भाषा नहीं है। मैं पंडित हूं नहीं। मैं जो बोल रहा हूं, बोलचाल की भाषा है। यह कोई प्रवचन भी नहीं। बातचीत कर रहा हूं तुमसे--बतकही है, वार्ता नहीं। यह कोई धार्मिक, शास्त्रीय उद्बोधन नहीं है। मित्रों के बीच होती हुई गुफ्तगू है। तो सब समझ में आ जाता है जो मैं कहता हूं।
अगर संस्कृत के दुरूह शब्दों में बोलता, लैटिन और ग्रीक का उद्धरण देता, तो तुम्हारी समझ में न आता। और अक्सर ऐसा हो जाता हैः जो तुम्हारी समझ में नहीं आता, तुम सोचते हो बहुत गुरु-गंभीर है। इसीलिए तो पंडित मुर्दा भाषाओं से चिपके रहते हैं। न उनकी समझ में आता है, न जिनको समझाते हैं उनकी समझ में आता है। मगर दोनों मानते हैं कि बात होगी बहुत गुरु- गंभीर!
सभी धर्म अपने धर्मग्रंथों का अनुवाद बोलचाल की भाषाओं में करने के बड़े विरोधी थे, बड़ी मुश्किल से अनुवाद होने दिया। मैं उनकी बात समझता हूं। वह विरोध बिल्कुल ठीक है। वह विरोध वैसा ही है जैसा डाक्टर जब दवाई का नुस्खा लिखता है तो इस ढंग से लिखता है कि सिर्फ केमिस्ट ही पढ़ सकेगा, वह

भी मुश्किल से। क्योंकि अगर बीमार खुद पढ़ ले नुस्खा, तो केमिस्ट उतने दाम न ले सकेगा और न डाक्टर उतनी फीस ले सकेगा।
फिर डाक्टर लिखता है लैटिन-ग्रीक नामों में। न तुम समझो, न कोई और समझे। अगर लिख दे सीधी-सादी भाषा में, कामचलाऊ भाषा में, तो तुम जाकर केमिस्ट को दस रुपये नहीं दे सकोगे और न डाक्टर को पचास रुपये फीस चुका सकोगे। समझो कि लिख दे कि अजवाइन का सत्त। अब केमिस्ट तुमसे दस रुपये मांगे तो जूता निकाल लोगे। अजवाइन का सत्त और दस रुपया! दो पैसे की अजवाइन, घर ही निकाल लेंगे सत्त! और डाक्टर जब मांगेगा पचास रुपया तो तुम डाक्टर का सत्त निकाल दोगे! लेकिन लैटिन-ग्रीक में लिखता है, कुछ समझ में नहीं आता।
मुल्ला नसरुद्दीन तो मुझसे कह रहा था कि एक डाक्टर ने क्या नुस्खा लिखा, आज दो महीने हो गए, सिनेमा में जाता हूं तो पास के काम आता है। ट्रेन में सफर करता हूं बंबई-पूना, तो पास के काम आता है। क्योंकि जो भी उसे देखता है, पढ़ सकता नहीं; पढ़ नहीं सकता, मान भी नहीं सकता कि पढ़ नहीं सकता हूं; जल्दी से वापस दे देता है कि ठीक है। आखिर अपने-अपने को अपना अज्ञान तो छिपाना है।
पंडित-पुरोहित भी यही कला उपयोग लाते रहे हैं। अगर तुम वेद को हिंदी में पढ़ो तो तुम बहुत हैरान हो जाओगे कि जिस वेद की इतनी चर्चा की थी, क्या यह वही वेद है! जिस वेद पर रोज सिर रखते थे, क्या यह वही वेद है! जिस पर फूल चढ़ाते थे, क्या ये वही ऋचाएं हैं!
हां, वेद में जरूर ऋचाएं हैं एक प्रतिशत, जो अदभुत हैं। मगर एक प्रतिशत! निन्यानबे प्रतिशत तो कचरा है। अगर तुम्हें शुद्ध-शुद्ध हिंदी में वेद प्रकट कर दिया जाए तो तुम फिर सिर नहीं रख सकोगे वेद पर, क्योंकि वह एक प्रतिशत तो ठीक है, अदभुत है, महर्षियों के वचन हैं, प्रबुद्ध पुरुषों के वचन हैं; लेकिन कूड़ा-करकट भी इकट्ठा है। क्योंकि उन दिनों जो भी उपलब्ध था सब वेद में इकट्ठा कर लिया गया है। वह उस समय की सारी सार-संपत्ति है। उन दिनों अखबार नहीं होते थे, कहानी-किस्से नहीं होते थे, रेडियो नहीं था, टेलीविजन नहीं था, फिल्म नहीं थी, इतिहास नहीं था, साहित्य नहीं था; वेद ही सब कुछ था। तो जो भी उस समय की सार-संपदा थी, सभी इकट्ठी कर ली गई है। उसमें कूड़ा-करकट भी है, जैसा अखबारों में होता है।
जैसे कि एक आदमी प्रार्थना कर रहा है इंद्र देवता से कि हे इंद्र देवता, मैं तेरी पूजा करूंगा, यज्ञ करूंगा, हवन करूंगा; मगर कुछ ऐसा कर कि मेरी गउओं के थन में दूध बढ़ जाए!
अब इसको तुम कहोगे कि सिर रखने योग्य वचन है? फूल चढ़ाने योग्य वचन है? मगर इसमें भी कुछ ऐसा बुरा नहीं; गउओं का दूध बढ़ जाए, ठीक ही है। गऊ माता का दूध बढ़ जाएगा, हर्ज क्या है! रख लिया सिर, चलेगा। मगर एक दूसरा आदमी प्रार्थना कर रहा है कि हे इंद्र देवता, हवन करूंगा, यज्ञ करूंगा; कुछ ऐसा कर कि मेरे खेत में तो ज्यादा वर्षा हो और पड़ोसी के खेत में कम!
अब इसमें सिर रखोगे? थोड़ा संकोच होगा कि यह बात तो कुछ धार्मिक नहीं मालूम पड़ती। और इंद्र देवता भी इस तरह की रिश्वतें लेकर इस तरह के काम करते रहे कि पड़ोसी के खेत में कम... । इतना ही नहीं कि अपनी गऊ के थन में दूध बढ़वा लिया, पड़ोसी के गऊ के थन का दूध कम भी करवा दिया! और इंद्र देवता ने हवन के लोभ में यह भी कर दिया। तो तुम्हारी इंद्र देवता पर भी श्रद्धा कम हो जाएगी।
मगर प्राचीन संस्कृत में लिखा हुआ वेद, तुम्हारी कुछ समझ में आता नहीं, तो मजे से पूजा करते जाओ, कोई अड़चन नहीं आती। हिब्रू में लिखी हुई पुरानी बाइबिल की पूजा की जा सकती है, लेकिन जब ठीक-ठीक समझ में आने वाली भाषा में लिखी जाएगी, किसी जीवित भाषा में, तुम जरा मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि पुरानी बाइबिल का ईश्वर कहता है कि मैं बहुत ईर्ष्यालु ईश्वर हूं। जो मेरी आज्ञा नहीं मानेंगे उनको नरकों में सड़ाऊंगा और जो मेरी आज्ञा मानेंगे वे स्वर्ग के सुख भोगेंगे।
ईर्ष्यालु ईश्वर? ईर्ष्या से तो मुक्त होना चाहिए मनुष्य को भी--और
यह ईश्वर खुद ही कह रहा है कि आई एम ए वेरी जैलस गॉड, कि मैं बहुत ईर्ष्यालु ईश्वर हूं! सावधान! अगर मेरी आज्ञा नहीं मानी तो नरकों में सड़ाऊंगा। यह तो

कोई तानाशाह हुआ। यह अडोल्फ हिटलर बोल रहा हो, ऐसा मालूम पड़ता है; कि मुसोलिनी बोल रहा हो, ऐसा मालूम पड़ता है। ईश्वर की यह भाषा है!
और एक गांव में कुछ लोगों ने गलत काम किया और ईश्वर इतना नाराज हुआ कि उसने पूरे गांव को भस्मीभूत कर दिया।
कुछ लोगों ने बुरा काम किया, चलो उन कुछ लोगों को भस्मीभूत कर देते, क्षम्य था। यद्यपि ईश्वर को यह भी शोभा नहीं देता। ईश्वर तो महाकरुणा है। लेकिन पूरे गांव को भस्मीभूत कर दिया, जिन्होंने पाप नहीं किया था उनको भी--बूढ़े, स्त्रियां, बच्चे, अबोध बच्चे! मां के पेट में जो बच्चे थे वे भी-- जिन्हें पाप करने का अभी अवसर ही नहीं मिला था, पुण्य करने का भी अवसर नहीं मिला था--उन सबको ही भस्मीभूत कर दिया! यह तो ऐसे ही हुआ जैसे कोई हिरोशिमा पर एटम बम गिरा दे--निरीह, अबोध लोगों पर। एक छोटी बच्ची अपना होमवर्क करके अपना बस्ता लिए सीढ़ियों से उतर रही थी, सोने जा रही थी, और एटम गिरा हिरोशिमा पर। अपने होमवर्क, अपनी किताबें, कापियां, स्लेट, अपने बस्ते के साथ भस्मीभूत होकर दीवाल से चिपट कर रह गई। उसका चित्र बाद में छपा--राख! लेकिन खबर देती है कि कभी यह राख बच्ची रही होगी। अभी भी जल गया बस्ता, उसकी बगल में राख होकर दीवाल से लगा हुआ है। सिर्फ एक छाया रह गई है दीवाल पर। इस बच्ची ने क्या कसूर किया था? यह तो कोई दूसरे महायुद्ध के लिए जिम्मेवार न थी।
हम हिरोशिमा और नागासाकी के हत्यारों को माफ नहीं कर पाए तो हम उस ईश्वर को कैसे माफ करेंगे, जिसने नगरों को बरबाद कर दिया क्योंकि कुछ लोगों ने पाप किया!
नहीं लेकिन, हिब्रू में जब यह बात पढ़ोगे, कुछ समझ में न आएगी।
मैं तो सीधी-सादी भाषा बोल रहा हूं ज्ञानरंजन, इसलिए समझ में तो सब बात आ जाती है। और तब तुम्हें अड़चन होती है। समझ में तो आ जाती है, फिर जीवन में क्यों नहीं उतरती?
तुम्हें यह कहा गया है बार-बार कि पहले समझो, फिर जीवन में उतारो। मैं तुमसे कहना चाहता हूंः यह बात गलत है। समझ में कोई बात आ जाए तो जीवन में उतरती ही है; तुम न भी चाहो, तो भी उतरती है। कोई उपाय नहीं बचने का। इसलिए मैं यह नहीं कहता कि पहले समझो, फिर जीवन में उतारो। मैं तो इतना ही कहता हूंः समझो! जीवन अपनी फिक्र ले लेगा। समझ के विपरीत कोई आदमी कभी नहीं गया है। अगर तुम समझ के विपरीत जाते हो तो उसका मतलब यह हुआ कि जिसको तुम समझ कह रहे हो, वह तुम्हारी असली समझ नहीं है; उसके नीचे दबी हुई असली समझ और है, उसके अनुसार तुम चल रहे हो।
मैंने कहा कि जीवन और मृत्यु के साक्षी हो जाओ। तुमने सुना, बात समझ में आई, क्योंकि शब्द सीधे-सादे हैं। मगर जीवन और मृत्यु का साक्षी हो जाना सीधा-सादा मामला नहीं है। अगर जीवन भर के प्रयास से भी हो जाओ तो समझना कि जल्दी हो गए, तो समझना कि देर नहीं हुई।
लेकिन तुम्हारा जीवन क्या है? वहां साक्षी का मौका ही कहां है? तुम्हारा जीवन तो कोल्हू के बैल जैसा है, चक्कर खा रहे हो। वही-वही रोज करते हो, साक्षी नहीं होते। कल भी क्रोध किया था, परसों भी क्रोध किया था, आज भी क्रोध किया है। और डर है कि कल भी करोगे, परसों भी करोगे। वही क्रोध, वही कारण।
साक्षी होने के लिए परमात्मा कितने मौके देता है! रोज-रोज देता है! मगर तुम हो कि चूके जाते हो। तुम्हारी आदतें जड़ हो गई हैं। हां, मेरी बात सुन लेते हो। मेरी इस बगिया में गंध से पूरित हो जाते हो। ज्योतिर्मय लगते हो भीतर! आश्रम के द्वार से बाहर हुए कि फिर वही कोल्हू के बैल बन जाते हो, फिर आंखों पर पट्टियां चढ़ा लेते हो।
मैं जो कह रहा हूं इसे हृदय में डूब जाने दो। इसे सिर्फ समझो मत तार्किक रूप से। तर्क कोई समझने की ठीक-ठीक व्यवस्था नहीं है। इसे प्रेम से समझो। इसे श्रद्धा से लो। इसे हृदय का आंचल फैला कर भर लो। और फिर चौबीस घंटे के जीवन में जब भी मौका मिल जाए तब जरा इसकी फिर-फिर सुध लेना, ताकि कोल्हू के बैल में जब तुम जुत जाओ तो कभी-कभी साक्षी हो सको! धीरे-धीरे साक्षी का रस बढ़ेगा।
जरा अपनी जिंदगी को तो देखो!

सुबह से रात तक
वही वह! वही वह!

बंदरछाप दंतमंजन,
वही चाय, वही रंजन,
वे ही गाने, वे ही तराने,
वे ही मूर्ख, वे ही सयाने, सुबह से रात तक
वही वह! वही वह!

भोजनालय भी बदल देखे
(जीभ बदलना संभव न था)
"महाराजिन" से "ताजमहल"
सभी जगह एक हाल।
नरम मसाला, गरम मसाला,
वही वही भाजीपाला,
वही वही बासी चटनी
वही वही खट्टा सांबर,
सुख थोड़े, दुख अपार!

संसार के वट पर
सपनों के चमगादड़!
इन सपनों के शिल्पकार
कवि एक, कपि अनेक
परदे पर की भूतचेष्टा
बासी शाक, नपुंसक विनोद;
भ्रष्ट कथा, नष्ट बोध,
नौ धागे, एक रंग,
व्यभिचार के सारे ढंग!

फिर-फिर से वही भोग,
आसक्ति का वही रोग।
वही मंदिर, वही मूर्ति
वही फूल, वही स्फूर्ति
वही होंठ, वही चितवन,
वही चाल, वही मटकन,
वही पलंग, वही नारी
सितार नहीं, एक तारी!

लगा करूं आत्महत्या,
रोमियो की आत्महत्या,
दधीचि की आत्महत्या!
आत्महत्या भी वही वह!
आत्मा भी वही वह
हत्या भी वही वह
कारण जीवन भी वही वह
और मरण भी वही वह!

जरा देखो, जिंदगी को गौर से देखो! जरा दूर खड़े होकर अपनी जिंदगी को देखो, एक फासला बनाओ। और तुम पाओगेः एक चक्कर है, जिसमें तुम घूम रहे हो! इस चक्कर में जागना है।
चलो--जाग कर चलो, ज्ञानरंजन! बैठो--जागते हुए बैठो, ज्ञानरंजन! सोओ बिस्तर पर तो भी जागते हुए लेटो, ज्ञानरंजन! और एक दिन वह घड़ी भी आ जाएगी कि

रात शरीर सोएगा और तुम जागोगे। और एक दिन वह घड़ी भी आ जाएगी कि जीवन के सब काम भी तुम करोगे और फिर भी भीतर जागते रहोगे, साक्षी बने रहोगे। उस दिन ही जानना कि मेरी बात समझे। उसके पहले शब्द ही समझे, बात नहीं। बात में बात छिपी है। शब्दों के भीतर निःशब्द छिपा है।
मैं तुम्हें कोई उपदेश नहीं दे रहा हूं। मैं तुम्हें सिर्फ मैंने जो जाना है उसमें साझीदार बना रहा हूं। मेरी ज्योति में भागीदार बनो। मेरी सुगंध को अपनी सुगंध मत बनाओ। मेरी सुगंध को देख कर अपनी सुगंध को जगाओ। मेरे शब्दों को मत दोहराने लगना, अन्यथा पंडित हो जाओगे। अपने अनुभव को जगाओ।
मुझे हो सका है, तुम्हें भी हो सकता है। बस इतनी ही मेरी उदघोषणा है कि मुझ जैसे साधारण व्यक्ति को हो सकता है तो तुमको भी हो सकता है। ठीक वैसी ही हड्डी-मांस-मज्जा से मैं बना हूं जैसे तुम। वैसे ही अंधेरे रास्तों से मैं गुजरा हूं जिनसे तुम गुजर रहे हो। इतना ही अंधा मैं था जितने तुम हो। लेकिन मेरी आंख खुल सकी, अंधेरा टूट सका; तुम्हारा भी टूट सकता है। मुझे देख कर यह आस्था जगे तो तुम मुझे समझे। मुझे देख कर तुम्हें अपने पर यह श्रद्धा आ जाए तो तुम मुझे समझे।
मैं नहीं कहता किसी और पर श्रद्धा करो। मैं कहता हूंः आत्म-श्रद्धावान बनो। क्योंकि आत्म-श्रद्धा ही परमात्मा से जोड़ने वाला सेतु है।
आज इतना ही।

काहे होत अधीर
पांचवां प्रवचन

बैराग कठिन है

जनि कोई होवै बैरागी हो, बैराग कठिन है।।
जग की आसा करै न कबहूं, पानी पिवै न मांगी हो।
भूख पियास छुटै जब निंद्रा, जियत मरै तन त्यागी हो।।
जाके धर पर सीस न होवै, रहै प्रेम-लौ लागी।
पलटूदास बैराग कठिन है, दाग दाग पर दागी हो।।

अब तो मैं बैराग भरी, सोवत से मैं जागि परी।।
नैन बने गिरि के झरना ज्यों, मुख से निकरै हरी-हरी।
अभरन तोरी बसन धै फारौं, पापी जिव नहिं जात मरी।।
लेउं उसास सीस दै मारौं, अगिनि बिना मैं जाऊं जरी।
नागिनि बिरह डसत है मोको, जात न मोसे धीर धरी।।
सतगुरु आई किहिन बैदाई, सिर पर जादू तुरत करी।
पलटूदास दिया उन मोको, नाम सजीवन मूल जरी।।

जल औ मीन समान, गुरु से प्रीति जो कीजै।।
जल से बिछुरै तनिक एक जो, छोड़ि देति है प्रान।
मीन कहै लै छीर में राखे, जल बिनु है हैरान।।
जो कछु है सो मीन के जल है, उहिके हाथ बिकान।
पलटूदास प्रीति करै ऐसी, प्रीति सोई परमान।।

रोते हैं दो नैन
रोते हैं दो नैन, पिया बिन रोते हैं दो नैन
रुत बदली और सरसों फूली
मैं पागल सब सुध-बुध भूली
रिमझिम-रिमझिम मेघा बरसे
जी ललचाए दरस को तरसे
फिर पापिन ने मन को हारा, फिर जमना की बन कर धारा रोते हैं दो नैन
पिया बिनरोते हैं दो नैन
रोते हैं दो नैन, पिया बिन रोते हैं दो नैन बादल गरजे बिजली कड़के
आग विरह की मन में भड़के
कुहू कुहू कोयल बोले
कांपे गात जियरवा डोले
चिंता की मारी को पल भर, विरहन दुखियारी को पल भर आवत नाहीं चैन
पिया बिन
रोते हैं दो नैन
रोते हैं दो नैन, पिया बिन रोते हैं दो नैन उनकी हंसते गाते गुजरी
मेरी नीर बहाते गुजरी
उनकी कट गई सोते-सोते
मेरी कट गई रोते-रोते
उसका क्या जो बीत गई है, रैन ही थी सो बीत गई है बीत गई है रैनपिया बिनरोते हैं दो नैन
रोते हैं दो नैन, पिया बिन रोते हैं दो नैन मुझ निर्दोष का दोष बता दें
क्यों रूठे हैं ये समझा दें
नाले छाती तोड़ के निकले

ये पंछी पर जोड़ के निकले
प्रीतम आएं बालम आएं, आएं और आकर सुन जाएं
दुखियारी के बैन
पिया बिन
रोते हैं दो नैन
रोते हैं दो नैन, पिया बिन रोते हैं दो नैन
रोते हैं दो नैन

एक है वैराग्य, जो प्रीति से उमगता है; और एक है वैराग्य, जो गणित से पैदा होता है। गणित से पैदा होने वाला वैराग्य झूठा है; चालाकी है उसमें, हिसाब है, बुद्धि है, लेकिन हृदय नहीं, प्रेम नहीं, भाव नहीं। गणित से पैदा होने वाला वैराग्य साधन है; साध्य है स्वर्ग, स्वर्ग के सुख, मोक्ष, मोक्ष का आनंद। लेकिन वैराग्य केवल साधन मात्र है। और जब वैराग्य साधन होता है तो सच्चा नहीं होता। करना पड़ता है इसलिए करते हैं; कर्तव्य-बोध से करते हैं; भाव की ऊष्मा नहीं होती; हृदय की धड़कन नहीं होती; प्राणों का नृत्य नहीं होता; आंखों में आंसू झूठे होते हैं, हिसाब के होते हैं। रोना चाहिए प्रार्थना में, इसलिए रोते हैं; इसलिए नहीं कि रोना रुकता नहीं, रोकना भी चाहें तो नहीं रुकता है--तब बात और, तब अर्थ और!
एक वैराग्य है जो प्रभु-मिलन की प्यास से पैदा होता है। प्रभु नहीं है मौजूद, प्रभु नहीं मिल रहे हैं, प्रभु दूर हैं, प्रियतम बहुत दूर है; रास्ता अंधेरा, कंटकाकीर्ण; पहुंचना हो पाएगा या नहीं; मिलन संभव है या नहीं--इस पीड़ा में कोई रोता है, इस विरह में कोई जलता है--तब वैराग्य सच्चा है। और तभी वैराग्य पहुंचाता है, तभी वैराग्य सीढ़ी बन जाता है।
पलटूदास कहते हैंः जनि कोई होवै बैरागी हो, बैराग कठिन है।
मुश्किल से कभी कोई विरागी होता है। जनि कोई होवै बैरागी हो! कभी-कभी, लाखों में एक कोई जन सच में वैरागी होता है। ऐसे तो बहुत विरागी दिखाई पड़ते हैं--भभूत रमाए, धूनी रमाए। मगर इस सबके पीछे लोभ है स्वर्ग का। इस सबके पीछे भी वासना है। प्रार्थना ऊपर-ऊपर, भीतर वासना ही वासना है। फिर वासना संसार की हो या परलोक की, इससे भेद नहीं पड़ता। वासना तो वासना है। धन चाहो कि धर्म चाहो, रुपये चाहो कि स्वर्ग चाहो, संसार को विजय करना चाहो कि स्वर्ग को विजय करना चाहो--सबके पीछे एक ही अहंकार हैः मैं बड़ा हो जाऊं! मेरा राज्य बड़ा हो! मेरी संपदा बड़ी हो!
सांसारिक का लोभ तो छोटा है; जिसको तुम साधु कहते हो उसका लोभ बहुत बड़ा है। वह तो कोशिश में लगा है कि स्वर्ग का धन भी उसका अपना होना चाहिए। क्षणभंगुर से उसकी तृप्ति नहीं; शाश्वत की आकांक्षा है।
जनि कोई होवै बैरागी...
इसलिए बहुत मुश्किल से कोई सच्चा वैरागी मिलता है। सच्चा वैरागी इसलिए नहीं रोता कि रोना विधि है परमात्मा को पाने की; इसलिए रोता है कि परमात्मा कहां है? खोजूं, कहां खोजूं? कहां है द्वार उसका? कहां है मार्ग उसका? उसके प्राणों से आंसू आते हैं। उसका खून आंसू की बूंदों में टपकता है।
वैराग्य सोच-विचार नहीं है; भाव की, भावना की बात है। इसलिए वैरागी, सच्चा वैरागी, पागल मालूम होगा। झूठा वैरागी बहुत हिसाब से चलता है--इतने उपवास करो, इतने व्रत करो, तो स्वर्ग मिलेगा; इतना आसन, इतना व्यायाम, इतना प्राणायाम, तो स्वर्ग मिलेगा। एक तराजू पर रखता जाता है वैराग्य और आशा करता है दूसरे तराजू पर स्वर्ग उतरेगा। सच्चा वैरागी कुछ पाने को नहीं रोता है। सच्चा वैरागी कुछ पाने की बात ही नहीं करता है। उसकी छाती में तीर चुभा है विरह का, उसके प्राणों में तूफान उठा है। वह अपने को अकेला अनुभव करता है और बिना परमात्मा के ऐसे तड़फता है--पलटू कहते हैं आगे के सूत्रों मेंः जैसे मछली बिना पानी के! तुम मछली को जब पानी से बाहर निकाल लेते हो तो मछली ऐसा थोड़े ही सोचती है कि शास्त्र कहते हैं कि अब मुझे रोना चाहिए; कि शास्त्र कहते हैं कि अब मुझे तड़फना चाहिए; कि शास्त्र कहते हैं कि पानी से जब मीन अलग कर ली जाए और न रोए, न तड़फे, तो यह मीन को शोभा नहीं देता।

जब तुम मछली को सागर से अलग करते हो तो तड़फती है--किसी हिसाब से नहीं, किसी शास्त्र से नहीं। तड़फन स्वाभाविक है, नैसर्गिक है, स्वस्फूर्त है। जब वैराग्य भी स्वस्फूर्त होता है तो सच्चा होता है। जिसे खलने लगती है परमात्मा की गैर-मौजूदगी, जिसे उसका अभाव काटने लगता है, उसके भीतर एक वैराग्य का जन्म होता है।
जैन मुनि हैं, उनमें मुझे कभी वैराग्य नहीं दिखाई पड़ा; यद्यपि वे सबसे बड़े विरागी मालूम होते हैं भारत में। हिंदुओं के संन्यासी या बौद्धों के भिक्षु, अगर वैराग्य के गणित से सोचा जाए, तो जैन मुनियों से बहुत पीछे पड़ जाते हैं। जैन मुनियों का त्याग काफी है; उनके त्याग का पलड़ा बहुत भारी है। मगर सब गणित है। इसलिए सब झूठा है।
महावीर का त्याग कुछ और ढंग का था। महावीर अगर कई दिनों तक उपवासे रह
गए तो इसलिए नहीं कि उपवास करने से स्वर्ग मिलता है। महावीर उपवासे रह गए बहुत दिनों तक, क्योंकि सत्य की खोज में भूख ही न लगी, प्यास ही न लगी, देह की सुध-बुध न रही। यह कोई क्रियाकांड नहीं है। लेकिन जैन मुनि का उपवास क्रियाकांड है। हिसाब से चल रहा है। उसके पास नक्शा है, उस नक्शे से जी रहा है।
बुद्धि सभी चीजों को थोथा कर देती है। गहराई बुद्धि में न होती है, न
हो सकती है।
जनि कोई होवै बैरागी हो, बैराग कठिन है।
और इसीलिए वैराग्य कठिन है। वैराग्य के कारण नहीं। वैराग्य तो सरल है, सहज-स्फूर्त है; तुम्हारे कारण कठिन है। क्योंकि तुम तो बैठ गए हो आसन मार कर बुद्धि में; हृदय की तो तुम्हें याद ही न रही। जहां से स्फुरणा हो सकती थी, उस स्रोत का तो तुम पता-ठिकाना ही भूल गए हो। तुम्हारे भीतर हृदय भी है, तुम्हारे भीतर एक और तल भी है जीवन का, एक और गहराई, आयाम भी है एक और, इसका तुम्हें विस्मरण हो गया है। तुम तो जीते हो बस सतह पर। सतह पर सोच-विचार है; और गहराई में निर्विचार है। सतह पर गणित है, तर्क है; गहराई में प्रेम है।
जो लोग बुद्धि में ही जीने लगे हैं, उनके बुद्धि में अटक जाने के कारण वैराग्य कठिन हो गया है। वे सब कर लेते हैं, लेकिन सब झूठा। मेहनत बहुत करते हैं, लेकिन सब व्यर्थ चली जाती है।
जीसस ने कहा हैः जैसे कोई मुट्ठी भर दाने लेकर और फेंक दे, कुछ रास्ते
पर पड़ें, कुछ पत्थरों पर पड़ें, कुछ भूमि में पड़ें, लेकिन बंजर भूमि में, और कुछ उस भूमि में पड़ जाएं जो उपजाऊ है। बीज सब एक जैसे थे। जो पत्थर पर पड़े, कभी अंकुरित नहीं होंगे। अंकुरित होने की क्षमता थी उनकी, लेकिन गलत जगह पड़ गए, पत्थर पर पड़ गए।
ऐसे ही तुम खोपड़ी पर पड़ गए हो। खोपड़ी पत्थर है। वहां कुछ नहीं ऊगता। वहां कभी कुछ नहीं ऊगा। वहां मरुस्थल ही मरुस्थल है; वहां मरूद्यान नहीं है। जहां भाव का झरना न हो, वहां कहां मरूद्यान होगा? वहां कैसे वृक्ष हरे होंगे और कैसे रंग-बिरंगे फूल खिलेंगे? वहां पक्षियों का गीत भी नहीं होगा। वहां चांद-तारे भी नहीं ऊगेंगे। वहां तो अमावस की रात है--तारों से रहित; गहन अंधकार है। जो बीज पत्थर पर पड़ गया, क्षमता तो उसकी भी थी कि फूल बने, सुगंध बने, कि आकाश को लुटा दे अपनी सुगंध, कि भर दे आकाश को अपनी मिठास से। मगर नहीं! मर जाएगा--पत्थर पर पड़ गया, इसलिए; गलत जगह पड़ गया, इसलिए।
जो रास्ते पर पड़ेंगे वे भी न ऊग सकेंगे; यद्यपि पत्थर पर नहीं हैं, लेकिन जहां लोग आते-जाते हैं, जहां बहुत आवागमन है, उनके पैरों के नीचे दब-दब कर नष्ट हो जाएंगे।
तुम्हारे मस्तिष्क में पत्थर ही नहीं है, आवागमन भी बहुत है। विचारों
का कितना आवागमन है! कैसा ट्रैफिक! सुबह से सांझ, सांझ से सुबह हो जाती है, लेकिन विचारों का प्रवाह चलता ही रहता है। एक नहीं, दो नहीं, लाखों विचार चल रहे हैं। तुम्हारी खोपड़ी में सदा कुंभ का मेला ही भरा हुआ है। एक तो पत्थर, फिर विचारों के कुंभ का मेला! लाखों की भीड़! सतत चलती रहती है यह धारा। दिन में ही नहीं, रात में भी। सो जाते हो, फिर भी यह धारा बंद नहीं

होती। चौबीस घंटे चलती है। अगर कहीं भूल-चूक से कोई बीज ऊग भी सकता था, तो इस सतत आवागमन में दब जाता है और मर जाता है।
और फिर, जीसस ने कहा, कुछ बीज बंजर भूमि पर पड़ जाते हैं।
तुम्हारी खोपड़ी में तीसरा गुण भी है--बिल्कुल बंजर है। आज तक मनुष्य
के मस्तिष्क से कोई सृजन नहीं हुआ, न कोई आविष्कार हुआ, नये का न कोई आविर्भाव हुआ। तुम जान कर चकित होओगे, वैज्ञानिक, जो कि हृदय को मानते नहीं, उनके भी श्रेष्ठतम आविष्कार हृदय से होते हैं, मस्तिष्क से नहीं! मैडम क्यूरी, जिसको नोबल प्राइज मिली, एक गणित को तीन वर्षों से हल कर रही थी और हल नहीं हो रहा था। सारी शक्ति लगा दी थी। इस सदी की सबसे बड़ी गणितज्ञों में से एक थी। सब ताकत लगा दी थी, लेकिन नहीं हल होता था तो नहीं हल होता था। थक गई थी। एक सांझ बिल्कुल थक कर सो गई। सोचा अब कल से छोड़ ही देना है यह उपाय। यह नहीं होगा हल। तीन साल काफी होता है एक सवाल को हल करने के लिए। धैर्य की भी सीमा होती है। कोई पलटू तो थी नहीं कि कहतीः काहे होत अधीर! तीन साल में बहुत अधीर हो गई। कोई भी हो जाए। थकी-मांदी सो गई। और सुबह जब उठी तो बड़ी हैरान हुई--टेबल पर, जिस उत्तर की तलाश थी वह कागज पर लिखा हुआ रखा है! दरवाजा तो ताला लगा दिया था उसने, कोई भीतर आया नहीं। और कोई भीतर आ भी जाता तो जो सवाल मैडम क्यूरी से हल नहीं होता, वह किसी और से हल हो सकता था? नौकर-चाकर से? चोर-चपाटी से? फिर ताला लगा था, कोई भीतर आया भी नहीं। फिर उसने गौर से देखा, हस्ताक्षर उसी के हैं। तब उसे याद आया कि रात सपने में वह उठी थी। ऐसा उसे सपना आया था कि वह उठी है और उसने जाकर टेबल पर कुछ लिखा है और लिख कर सो गई। इतनी स्मृति उसे याद आई। धीरे-धीरे याद करने पर पूरी बात याद आ गई। वह उत्तर उसके भीतर से आया है। मस्तिष्क तो तीन साल में हार गया था; जब थक गया तो उत्तर भीतर से आया। किसी और आयाम से आया। यह हृदय का उत्तर था।
विज्ञान के बड़े-बड़े आविष्कार बुद्धि से नहीं होते; यद्यपि बुद्धि दावेदार है, हृदय दावा नहीं करता। बुद्धि बहुत बेईमान है; जो हृदय से जन्मता है, उस पर भी कब्जा कर लेती है! उसकी भी घोषणा दुनिया को कर देती है कि मैंने यह निर्माण किया!
दुनिया का कोई श्रेष्ठ काव्य बुद्धि से पैदा नहीं होता, हृदय से पैदा होता है। फिर उपनिषद हो कि कुरान, ये सब हृदय के आविर्भाव हैं। ये वहां से आए हैं जहां विचार नहीं जा सकते, लेकिन प्रेम की जहां गति है। विचार तो एक थोथा और झूठा जीवन जीते हैं। विचार तो पाखंडी हैं। तर्क खूब बिठा लेते हैं। तर्क ऐसा कि बिल्कुल ठीक लगता है, और फिर भी बिल्कुल गलत होता है। मुल्ला नसरुद्दीन ने एक साइकिल खरीदी। दुकानदार से कहा, सबसे ज्यादा मजबूत और सबसे ज्यादा टिकाऊ साइकिल हो, कीमत चाहे जो हो सो ले लो। दुकानदार ने सर्वश्रेष्ठ साइकिल देते हुआ कहा, नसरुद्दीन, एक साल के अंदर कोई टूट-फूट नहीं होगी, इसकी गारंटी है।
मुल्ला साइकिल पर सवार हुआ, चंदूलाल कैरियर पर बैठे, और चल पड़े घर की तरफ। पंद्रह मिनट बाद ही वापस आ गए और क्रोध में उबलते हुए मुल्ला ने चिल्ला कर दुकानदार से कहा, हद्द हो गई बेईमानी की भी! अरे एक साल की गारंटी दी और एक घंटे में टूट-फूट शुरू। वापस रखो अपनी साइकिल! हमें नहीं चाहिए।
क्या बात करते हो जी! दुकानदार ने हैरत में आकर कहा, कहां हुई टूट-फूट? दिखता नहीं, अंधे हो क्या? मुल्ला तैश में आकर बोला, मेरे चार दांत टूट
गए और इस बेचारे चंदूलाल का कीमती चश्मा टूट गया!
ऐसी ही अवस्था बुद्धि की है। वहां सब तर्कयुक्त मालूम पड़ता है, क्योंकि सब शाब्दिक है। टूट-फूट! उसका शाब्दिक अर्थ बुद्धि कुछ और लेती है। बुद्धि को वास्तविक अर्थों का पता ही नहीं है। पता हो भी नहीं सकता। बुद्धि की क्षमता वह नहीं है। उससे वैसी अपेक्षा भी नहीं करनी चाहिए। अपेक्षा में ही हमारी भूल हो जाती है। अर्थों का अनुभव तो हृदय में होता है। शब्द तो थोथे हैं; अर्थों के बिना उनका कोई मूल्य नहीं है। और ऐसा ही वैराग्य थोथा है, जो हृदय से नहीं जन्मा है।
पंडित मटकानाथ ब्रह्मचारी को अपने आश्रम के लिए एक भैंस खरीदनी थी।
वे गाय-भैंसों के बाजार में गए। एक भैंस उन्हें अच्छी लगी। उसका शरीर

हृष्ट-पुष्ट, मुख चमकीला, पूंछ लंबी, दांत सफेद, पैर सुडौल, चाल मस्त और सींग भी अत्यंत सुंदर थे। उसने अभी पहला ही बछड़ा जना था। दूध बीस किलो रोज देती थी। लेकिन कीमत भी उसकी कम न थी। पांच हजार से कम में उसे बेचने वाला तैयार न था। ब्रह्मचारी आगे बढ़ गया।
आगे चंदूलाल भी अपनी पवित्र, धार्मिक, मरियल, टूटी टांग व कड़ी पूंछ वाली भैंस बेचने के लिए खड़ा था। उसके दांत सड़े और सींग आड़े-तिरछे थे। शरीर बस हड्डियों का ढांचा था। ब्रह्मचारी मटकानाथ ने आश्चर्य से पूछा, अरे चंदूलाल! तुम भी भैंस बेच रहे हो?
हां, खरीदना है क्या? चंदूलाल ने प्रश्न किया।
यह दूध कितना देती है?
दूध! अरे दूध तो इसने आज तक नहीं दिया!
और बछड़े कितनी बार जन चुकी है?
चंदूलाल ने बताया, मेरी भैंस ने आज तक एक भी बछड़ा नहीं जना, और न कभी जनेगी।
इसे कौन खरीदेगा भाई? पंडित मटकानाथ ब्रह्मचारी ने पूछा, इसकी कीमत कितनी रखी है?
बीस हजार से एक पैसा कम नहीं।
बाप रे बाप! होश-हवास में हो या पी रखी है चंदूलाल? इसकी कीमत इतनी ज्यादा क्यों है?
ज्यादा कहां है! चंदूलाल ने कहा, ब्रह्मचारी होकर भी ब्रह्मचर्य का अर्थ नहीं समझते? भैंस ब्रह्मचारी है, बाल-ब्रह्मचारी है। और चरित्र की ही कीमत है।
तुम्हारे साधु, तुम्हारे त्यागी, तुम्हारे महात्मा बस चंदूलाल की भैंस हैं। उनका चरित्र, उनका वैराग्य, उनके व्रत-उपवास, उनकी साधुता--सब झूठी है, सब ऊपर-ऊपर है, सब निर्वीर्य है, नपुंसक है, निष्क्रिय है; उससे कुछ सृजन कभी नहीं हुआ।
वास्तविक ब्रह्मचर्य सृजनात्मक होगा। उससे कुछ जन्मेगा। अगर बच्चे न जन्मेंगे तो उपनिषद जन्मेंगे। अगर बच्चे न जन्मेंगे तो कुरान जन्मेगी। अगर बच्चे न जन्मेंगे तो कोई सुंदर गीत, कोई नृत्य, कोई वीणा बजेगी, कोई बांसुरी बजेगी। लेकिन जन्म तो निश्चित होगा। अगर देह के तल पर न होगा तो आत्मा के तल पर होगा। उससे बुद्धत्व का जन्म होगा। उससे जिनत्व का जन्म होगा। उससे असली वैराग्य का जन्म होगा।
लेकिन असली और नकली की ठीक-ठीक परख होनी चाहिए। क्योंकि नकली आसानी
से मिल जाता है, सस्ता मिल जाता है। नकली बड़ा सुविधापूर्ण है। तुम्हें कुछ गंवाना नहीं पड़ता, दांव पर कुछ लगाना नहीं पड़ता। तुम्हें कुछ करना ही नहीं पड़ता। नकली तो लोग देने को तैयार हैं, तुम लेने भर को राजी हो जाओ। तुम नहीं भी राजी होते तो भी तुम पर आरोपित कर रहे हैं। नकली का आरोपण चलता है। नकली यानी मुखौटे।
होली का दिन था और गांव के नेताजी को लोगों ने पकड़ लिया। वैसे ही साल
भर का गुस्सा था नेताजी पर और होली का मौका, दिल खोल कर कबीर बके और खूब गालियां दीं, खूब दचका और पटका नेताजी को। होली है ही इसीलिए कि जो साल भर नहीं कर सके, एक दिन के लिए छुटकारा, एक दिन की छुट्टी। खूब रंग दिया मुंह उनका कोलतार से कि जनम-जनम लग जाएं धोने में। फिर सांझ को उनके घर देखने गए कि हालत क्या है, क्योंकि कोलतार ऐसा रंगा था कि चमड़ी भला निकल जाए, मगर कोलतार न निकले। लेकिन नेताजी शुभ्र खादी पहने हुए, मुस्कुराते हुए कुर्सी पर बैठे थे! चेहरा बिल्कुल जैसा था वैसा, न कोई कोलतार, दाग भी नहीं, चिह्न भी नहीं। बड़े हैरान हुए। कहा कि कोलतार पोता था सुबह, उसका क्या हुआ?
नेताजी ने कहा, वह देखो कोने में! एक मुखौटा पड़ा था, उस पर कोलतार पुता था। नेताजी ने कहा, क्या तुम सोचते हो कि हम अपना असली चेहरा लेकर बाजार में निकलते हैं? असली चेहरा तो हम घर ही रख जाते हैं, नकली लेकर बाजार आते हैं। तुमने जिस पर कोलतार पोता था, वह वह रहा, वह हमारा चेहरा नहीं है। सभी लोग मुखौटे ओढ़े हुए हैं। और सभी तो माफ भी किए जा सकते हैं, लेकिन जिनको तुम महात्मा कहते हो, त्यागी, व्रती, वे भी मुखौटा ओढ़े हुए हैं।

उन्हें तो माफ भी नहीं किया जा सकता। लेकिन मुखौटे सस्ते हैं, बाजार में मिल जाते हैं। अगर स्वयं के चेहरे को बदलना हो और स्वयं के चेहरे को परमात्मा का चेहरा बनाना हो, तो श्रम करना होगा, तो साधना करनी होगी। और श्रम और साधना का पहल सूत्र हैः मस्तिष्क से उतरना होगा और हृदय में डूबना होगा। तर्क छोड़ना होगा और श्रद्धा पकड़नी होगी।
जनि कोई होवै बैरागी हो, बैराग कठिन है।
जग की आसा करै न कबहूं, पानी पिवै न मांगी हो।
वैराग्य का अर्थ हैः जग से कोई आशा न रखे।
बुद्ध ने कहा हैः धन्यभागी हैं वे, जो परिपूर्ण रूप से हताश हैं।
पहली दफा वचन पढ़ो तो थोड़ी हैरानी होती है। हताश को धन्यभागी कहना! हताश को तो हम हिम्मत बंधाते हैं कि छोड़ो भाई हताशा, छोड़ो निराशा! अरे उठो! आज नहीं हुआ तो कल हो जाएगा। फिर-फिर श्रम करते रहो। एक बार हार गए तो क्या घबड़ाते हो! याद करो महमूद गजनी की, सत्रह बार हार गया तो भी अठारहवीं बार हमला किया। जीता! आशा जगाए रखो और चलते चलो।
अमरीका में तो यह सूत्र ही हो गया अमरीका काः फिर-फिर चेष्टा करो!
मैंने सुना है, एक दंपति वर्षों तक श्रम करने के बाद भी किसी बच्चे को जन्म न दे पाए। बड़ी पीड़ा, बड़ा दुख! उम्र बीती जाती हाथ से--और ऐसे ही मर जाएंगे, बांझ! अंततः उन्होंने अखबार में खबर दी कि बीस वर्ष हो गए विवाह हुए, बच्चा पैदा नहीं होता; किसी व्यक्ति के पास कोई सुझाव हो तो कृपा करके भेजने की कोशिश करे।
दुनिया के कोने-कोने से सुझाव आए। अलग-अलग कौमें, अलग-अलग ढंग। अमरीका
से किसी अमरीकी ने लिखा कि कोशिश किए जाओ, फिर-फिर कोशिश करो, हारो मत! हारिए न हिम्मत, बिसारिए न राम। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, श्रम का फल सुनिश्चित मिलता है। ट्राय अगेन एंड अगेन! कोशिश करो, फिर करो, फिर करो।
एक भारतीय ने लिखा कि योग से असंभव भी संभव हो जाता है। शीर्षासन करो। पैर पर खड़े हो-हो कर बीस साल गुजार दिए, अब सिर पर खड़े होओ। जो पैर पर खड़े होने से नहीं होता, वह सिर पर खड़े होने से हो जाता है।
किसी मुसलमान ने लिखा कि फलां-फलां फकीर की मजार पर चढ़ौती चढ़ाओ।
और ऐसे हजारों सुझाव आए। और एक फ्रांसीसी ने लिखा कि क्या मैं किसी काम आ सकता हूं? अलग-अलग लोग, अलग-अलग सुझाव! मुझे सेवा का अवसर दो, उसने लिखा। जो तुम नहीं कर सके, हो सकता है मैं कर सकूं।
लेकिन बुद्ध कहते हैंः धन्यभागी हैं वे, जो हताश हैं।
हताश का उनका अर्थ बहुत और है; वही नहीं, जो तुम सोचते हो। हताशा का अर्थ नकारात्मक नहीं है। बुद्ध कहते हैंः जिसको यह समझ में आ गया कि इस जगत में कोई आशा कभी पूरी हो ही नहीं सकती। नहीं कि इससे वह दुखी होता है; आनंदित होता है कि एक सत्य हाथ में आ गया। उसकी हताशा में दुख के कांटे नहीं होते, आनंद के फूल होते हैं। एक परम सत्य हाथ लग गया, यह कोई दुख की बात थोड़े ही है। नाचो! गाओ! इसलिए धन्यभागी हैं वे, जो हताश हैं!
रेत से कोई तेल निकालने की कोशिश कर रहा था और समझ में आ गया कि रेत में तेल है ही नहीं, तो नाच उठेगा कि झंझट छूटी, नहीं तो कब तक रेत को ही पेलते रहते! और रेत से कभी तेल निकलने वाला नहीं था, क्योंकि रेत में तेल है ही नहीं।
इस संसार में कोई तृष्णा पूरी नहीं होती, कोई वासना पूरी नहीं होती।
जग की आसा करै न कबहूं, पानी पिवै न मांगी हो।
और तो मांगना ही मत कुछ, पानी भी मत मांगना! मांग की दृष्टि ही छोड़ो। भिखमंगापन छोड़ो। वासना तुम्हें भिखमंगा बनाती है। फिर चाहे तुम कितने ही बड़े सम्राट होओ, अगर तुम्हारे भीतर वासना है, अभी तुम जग से आशा रखते हो, तो तुम्हारे हाथ में भिक्षापात्र रहेगा। तुम मांगोगेः और मिल जाए, और मिल जाए! और भिक्षापात्र कभी भरता नहीं यह। खाली का खाली रहता है, कितना ही भर जाए। अकबर का नहीं भरता, सिकंदर का नहीं भरता, नेपोलियन का नहीं भरता, तुम्हारा कैसे भर जाएगा? आज तक किसी का भी नहीं भरा, तुम भी अपवाद नहीं हो। यह निरपवाद नियम है। संसार सिर्फ धोखा है, मृग-मरीचिका है। दूर के ढोल सुहावने हैं। बहुत दूर से लगता है कि क्षितिज यह रहा, यह रहा; थोड़े चले कि पहुंच जाएंगे। लेकिन तुम्हारे और क्षितिज के बीच की दूरी सदा समान रहती

है, कभी इंच भर भी कम नहीं होती, कितने ही दौड़ो और कितनी ही तेज रफ्तार से जाओ। क्योंकि क्षितिज है ही नहीं, सिर्फ दिखाई पड़ता है।
संसार सिर्फ दिखाई पड़ता है; है नहीं। किस संसार की बात कर रहे हैं--ये वृक्ष, ये पहाड़-पर्वत? ये तो हैं। इस संसार की बात नहीं है। तुम्हारे मन का संसार। वासना का संसार। आकांक्षा, अभीप्सा का संसार। ज्ञानियों ने उसे माया कहा है। और तुम समझने लगे कि पहाड़-पत्थर, ये सब माया हैं। ये माया नहीं हैं; सिर फोड़ कर देख लो, पता चल जाएगा। यह दीवाल माया नहीं है, नहीं तो निकल जाते। दीवाल में से निकल जाते, दरवाजों की जरूरत न होती।
यह संसार तो सत्य है। लेकिन एक और संसार है, जो तुमने इस संसार के ऊपर आरोपित कर दिया है। फिल्म देखने जाते हो न, परदा सत्य है--शुभ्र परदा; फिर उस पर जो धूप-छाया का खेल चलता है, वह झूठा है, वह सच्चा नहीं है।
यह संसार तो परदा है, यह सच्चा है। इस पर तुमने जो अपने-अपने सपने फैला रखे हैं, अपने सपनों का जो तुमने विस्तार कर रखा है, वह झूठा है। और कितनी बार कर चुके, कब जागोगे? कितने जन्मों से तुम यही करते रहे हो, कब सम्हलोगे?
महान जासूस शरलक होम्स अपने मित्र डाक्टर वाटसन के साथ सिनेमा देखने
गए थे। फिल्म में घुड़दौड़ का एक दृश्य था। शरलक होम्स ने कहा, वाटसन, देखो यह जो पीले रंग वाला घोड़ा है न, यही रेस में जीतेगा।
नहीं-नहीं, डाक्टर वाटसन बोले, मेरे ख्याल से तो काला घोड़ा ही जीतेगा, वही सबसे आगे भी है।
कुछ ही समय में रेस के अंत होते-होते पीला घोड़ा वाकई तेज दौड़ कर आगे आ गया और जीत गया। डाक्टर वाटसन बोले--आश्चर्यविमुग्ध होकर बोले--मेरे मित्र, मुझे तुम पर नाज है। माना कि तुम विश्व के सर्वश्रेष्ठ ख्यातिनाम जासूस हो, मगर तुमने यह कैसे पता लगाया कि पीला घोड़ा ही जीतेगा जब कि वह दौड़ में सबसे पीछे था?
यह कोई कठिन मामला नहीं, वाटसन--शरलक होम्स ने मुस्कुरा कर भेद खोला-- मैं यह फिल्म पहले भी कई बार देख चुका हूं।
इस संसार की फिल्म को तुम कितनी बार देख चुके हो, अभी भी तुम्हें पता नहीं कि पीला घोड़ा जीतेगा! अभी भी तुम आशा बांधे हो कि काला घोड़ा जीतेगा, क्योंकि काला घोड़ा आगे है। यहां पीले घोड़े ही जीतते हैं।
जीसस का प्रसिद्ध वचन हैः वे जो सबसे अंत में हैं, मेरे प्रभु के राज्य में प्रथम होंगे। पीले घोड़ों की बात हो रही है। पीछे था सबसे। और जो यहां प्रथम हैं, वे मेरे प्रभु के राज्य में अंतिम होंगे।
यहां कौन है अंतिम? जिसने जीवन से सारी आशा छोड़ दी, दौड़ ही छोड़ दी, दौड़
ही नहीं रहा है। वह घोड़ा जीतेगा। जो दौड़ ही नहीं रहा है, उसी का नाम संन्यासी है। जो घुड़दौड़ छोड़ कर किनारे बैठ कर विश्राम कर रहा है, आंख बंद कर ली हैं, भीतर डुबकी मार गया है। जिसका लक्ष्य अब बाहर नहीं है कहीं; जिसका लक्ष्य अब भीतर है। जो अंतर्मुखी हो गया है। जिसने एक नई यात्रा पकड़ ली है--अंतर्यात्रा। वही जीतेगा।
जग की आसा करै न कबहूं, पानी पिवै न मांगी हो।
तुम तो क्या-क्या मांग रहे हो, पानी भी पीने को मत मांगना! क्योंकि इस जगत में प्यास ही नहीं मिटती। कितना ही पानी पीओ, प्यास बढ़ती चली जाती है।
इस जगत में प्यास मिटाने के उपाय ही नहीं। प्यास तो मिटती है केवल परमात्मा को पीने से।
और परमात्मा मांगने से नहीं मिलता, परमात्मा मांग छोड़ देने से मिलता है। इस गणित को ख्याल रख लो। कुछ भी न मांगो। परमात्मा को भी मत मांगना।
मोक्ष भी मत मांगना। मांगना ही मत! जिस क्षण तुम उस घड़ी में आ जाओगे, जहां तुम्हारे चित्त में कोई मांग की रेखा भी न रही, उसी घड़ी सब मिल जाएगा। उसी क्षण तुम्हारी गागर सागर से भर जाएगी।
भूख पियास छुटै जब निंद्रा, जियत मरै तन त्यागी हो।
जीते-जी जो मर जाए, उसको हम त्यागी कहते हैं--पलटू कह रहे हैं। जीए, लेकिन ऐसे जैसे है ही नहीं। जीए, लेकिन जिसकी वासना मर गई है। उसका जीना चरण-चिह्न नहीं छोड़ता। पानी पर लकीर जैसे तुम खींचते हो, खिंचती नहीं। या पक्षी जैसे आकाश में उड़ते हैं, उनके पैरों के चिह्न नहीं छूटते। ऐसे जो

जीता है वह वैरागी है। जिसके जीने में आवाज नहीं होती। जिसके जीने से किसी को कोई दुविधा, द्वंद्व, कोई पीड़ा नहीं पहुंचती। जिसके जीने से किसी को पता ही नहीं चलता कि वह जी रहा है। हवा के झोंके की तरह जो जीता है--आया और गया! सूखे पत्ते की तरह जो जीता है--हवाएं जहां ले जाएं वहीं चला जाता है। अपनी कोई मरजी नहीं, अपनी कोई इच्छा नहीं; परमात्मा पर जिसने सब छोड़ दिया! जो परमात्मा को अपने भीतर जीने देता है और स्वयं को समाप्त कर चुका है। जो कहता हैः तेरे हाथ की कठपुतली हूं, तू नचाए तो नाचूं, तू न नचाए तो न नचाए। तू चलाए तो चलूं, तू न चलाए तो न चलूं। तू पूरब ले चले तो पूरब, तू पश्चिम ले चले तो पश्चिम। तू मेरा मालिक!
भूख पियास छुटै जब निंद्रा...
ऐसे व्यक्ति को भूख-प्यास और निद्रा सब छूट जाती है। इसका क्या अर्थ? क्या बुद्ध भोजन नहीं लेते? क्या बुद्ध पानी नहीं पीते? क्या बुद्ध रात विश्राम नहीं करते?
विश्राम करते हैं रात। भूख लगती है। पानी भी पीते हैं। लेकिन फिर भी
एक और गहरे तल पर न भूख है, न प्यास है, न निद्रा है; क्योंकि भोजन करते वक्त बुद्ध साक्षी बने रहते हैं, कर्ता नहीं बनते। शरीर में भोजन जाता है; बुद्ध तो सिर्फ देखते हैं--द्रष्टा मात्र! शरीर में पानी जाता है; बुद्ध तो देखते हैं। शरीर लेट जाता है, थक जाता है, सो जाता है; बुद्ध तो देखते हैं। बुद्ध मात्र साक्षी हैं। जो साक्षी हो गया, फिर उसे न भूख लगती है, न प्यास लगती है।
मैंने सुना है, एक पुरानी कहानी है, कृष्ण के दिनों की कहानी है, जैन शास्त्रों में है। कृष्ण के एक चचेरे भाई, नेमिनाथ, जैनों के तीर्थंकर हुए। नेमिनाथ का आगमन हुआ है। यमुना पूर पर है। असमय पूर आ गया है। नेमिनाथ नदी के उस तरफ ठहरे हैं। और कृष्ण ने रुक्मणी से कहा कि जाओ, भोजन ले जाओ। नेमिनाथ को भोजन करा आओ। वे तो इस पार न आएंगे। नदी पूर पर है और जैन मुनि पानी में नहीं चलता। नदी की तो बात छोड़ दो, वर्षा में नहीं चलता। क्योंकि रास्ते पर कहीं गड्ढे में पानी पड़ा हो, कुछ हो। गीली जमीन पर नहीं चलता, गड्ढों की तो बात छोड़ दो। क्योंकि गीली जमीन में कीड़े पैदा हो जाते हैं छोटे, सूक्ष्म, वे दब कर मर न जाएं। घास पर नहीं चलता। क्योंकि घास-पात में कहीं कोई छोटे-छोटे कीड़े दबे हों, मर जाएं; छिपे हों, दब जाएं। तो पानी में नहीं चलता। तो वे तो आएंगे नहीं, तुम चली जाओ।
लेकिन उन्होंने कहा, हम कैसे जाएं? नदी बहुत पूर पर है! नाव वाले भी नाव खोलने को राजी नहीं हैं, पूर भयंकर है।
कृष्ण ने कहा, यह कोई अड़चन की बात नहीं है। तुम जाकर यमुना से कहना कि
हे यमुना, अगर नेमिनाथ जीवन भर के उपवासे हों तो रास्ता दे दो! और मैं जानता हूं कि यमुना रास्ता देगी। मैं नेमिनाथ को भी जानता हूं, यमुना को भी जानता हूं। तुम जाओ तो!
भरोसा तो नहीं आया। लेकिन जब कृष्ण कहते हैं तो करके देख लें। और जिज्ञासा भी जगी कि कौन जाने ऐसा हो भी जाए तो यह चमत्कार होगा! संकोच में, संदेह में, जिज्ञासा में बहुत से थालों में भोजन सजा कर रुक्मणी और उनकी सखियां यमुना के तट पर पहुंचीं। बड़ा पागलपन लग रहा था यमुना से यह कहने में कि हे यमुना... । लेकिन कहा झिझकते-झिझकते कि हे यमुना, अगर नेमिनाथ जीवन भर के उपवासे हों तो रास्ता दे दो! आंखें फटी की फटी रह गईं, यमुना ने रास्ता दे दिया। दो हिस्सों में टूट गई, बीच में मार्ग बन गया। रुक्मणी भोजन के थाल लेकर सखियों को लेकर उस पार उतर गई। नग्न नेमिनाथ एक वृक्ष के नीचे बैठे हैं। उनकी देह को देख कर ऐसा तो नहीं लगता कि इन्होंने कभी भोजन न लिया हो। बड़ी स्वस्थ देह है।
तुमने देखा, जैन तीर्थंकरों की मूर्तियां देखीं--महावीर की, पार्श्वनाथ की, नेमिनाथ की? बड़ी स्वस्थ देह है! कहते हैं, महावीर जैसी सुंदर देह पृथ्वी पर शायद दोबारा नहीं हुई।
देख कर लगता तो नहीं कि भोजन न लिया हो कभी, उपवासे रहे हों सदा। मगर
इस तरह के लोगों के पास चमत्कार होते हैं। यमुना ने अभी-अभी रास्ता दिया है तो कौन जाने... और यमुना क्यों रास्ता देती! असंभव संभव हुआ है। बहुत थाल

सजा कर लाई थीं, नेमिनाथ सब फटकार गए। जो भोजन सौ आदमियों के लिए काफी होता, वे अकेले ही पा गए।
जब वे भोजन कर चुके, तब रुक्मणी घबड़ाई कि अब क्या कहेंगे? हमने कृष्ण
से यह तो पूछा ही नहीं कि लौटते वक्त क्या होगा! क्योंकि अब तो हम यह नहीं कह सकते, किस मुंह से कहें! और अब तो बिल्कुल नहीं कह सकते, यह आदमी थोड़ा- बहुत नहीं, सौ आदमियों का भोजन पा गया! और ऐसा लगता है कि और लाए होते तो वह भी पा गया होता। और आंखें बंद करके नेमिनाथ फिर अपने ध्यान में बैठ गए। चिंतित, व्याकुल यमुना के तट पर खड़ी हैं कि अब यमुना से किस मुंह से कहें! अब पुराना सूत्र तो काम नहीं आएगा। नेमिनाथ ने पूछा कि क्या दुविधा है? क्यों अटकी हो? उन्होंने कहा कि मामला यह है, हम यह सूत्र कहे थे; अब यह सूत्र तो काम नहीं आ सकता। नेमिनाथ खिलखिला कर हंसे और उन्होंने कहा, यह सूत्र सदा काम आएगा। तुम फिर से यही कहो कि यदि नेमिनाथ जीवन भर के उपवासे हों तो यमुना, मार्ग दे दे!
पहले तो कहा था तो संदेह से कहा था; अब तो कहा तो बिल्कुल ऐसा लगा कि पागलपन है। मगर कोई और उपाय था भी नहीं। रुक्मणी ने कहा कि हे यमुना, राह दे दो अगर नेमिनाथ जीवन भर के उपवासे हों। और राह दे दी यमुना ने!
कृष्ण से जाकर पूछा कि राज समझने के बाहर है। हमें इतनी उत्सुकता यमुना में थी, अब उससे भी ज्यादा उत्सुकता इसमें है कि नेमिनाथ कैसे उपवासे! हमारे सामने थालों पर थाल साफ कर गए, अब हमें कोई नहीं धोखा दे सकता कि वे उपवासे हैं। यमुना का मार्ग दे देना तो छोटा चमत्कार हो गया अब।
कृष्ण ने कहा, वे उपवासे हैं, क्योंकि साक्षी हैं। नेमिनाथ ने भोजन नहीं लिया। नेमिनाथ तो देखते रहे। जैसे तुम देखती रहीं कि नेमिनाथ भोजन ले रहे हैं, ऐसे ही पीछे खड़े नेमिनाथ देखते रहे भीतर खड़े कि नेमिनाथ की देह भोजन ले रही है। तुम भी देख रही थीं, नेमिनाथ भी देख रहे थे, भोजन का कृत्य तो शरीर में घट रहा था।
इसे याद रखना, नहीं तो यह सूत्र खतरे में ले जाएगा। नहीं तो कुछ नासमझ
इस तरह की कोशिश शुरू कर देते हैं कि भोजन न लो, पानी न लो, रात सोओ मत। सोओ भी, भोजन भी करो, पानी भी पीओ, संसार में जीओ भी--मगर साक्षी रहो।
भूख पियास छुटै जब निंद्रा...
और जो साक्षी है उसका सब छूट गया। सब है और फिर भी सब छूट गया।
जियत मरै तन त्यागी हो।
जीता है और फिर भी मर गया।
जाके धर पर सीस न होवै, रहै प्रेम-लौ लागी।
ऐसे व्यक्ति के जीवन में वैराग्य घटित होता है। उसके शरीर में सिर नहीं होता। उसके शरीर पर सिर नहीं होता।
जाके धर पर सीस न होवै...
वह सीस-रहित होता है, क्योंकि खोपड़ी से नीचे उतर आया। उसके पास तर्क नहीं होता--यह कहने का एक उपाय है कि उसके पास सिर नहीं होता। तुम्हारे पास सिर है, हृदय नहीं। उसके पास हृदय होता है, सिर नहीं।
जाके धर पर सीस न होवै, रहै प्रेम-लौ लागी।
उसके भीतर तो बस एक प्रेम की ज्योति जलती रहती है। उसके भीतर तर्क गया। तर्क की जरूरत न रही। जिसके भीतर प्रेम की ज्योति जग गई, प्रकाश हो गया, तर्क की आवश्यकता न रही। तर्क तो अंधे के हाथ की लकड़ी है; अनुमान है टटोलने के लिए--कि रास्ता कहां, द्वार कहां; कहां चलूं, कहां न चलूं। अंधा टटोल-टटोल कर चलता है। तर्क टटोलना है। आंख वाला लकड़ी को फेंक देता है; टटोल कर चलने की जरूरत न रही। लकड़ी तो आंख का बड़ा दरिद्र परिपूरक थी। आंख वाले को लकड़ी की आवश्यकता नहीं। जिसके भीतर प्रेम का प्रकाश हो गया, उसके लिए तर्क की कोई आवश्यकता नहीं।
जाके धर पर सीस न होवै, रहै प्रेम-लौ लागी।
पलटूदास बैराग कठिन है, दाग दाग पर दागी हो।।
बहुत घाव सहने पड़ेंगे। प्रेम की बहुत पीड़ा सहनी पड़ेगी। वैराग्य कठिन है। प्रेम की अग्नि से गुजरना होगा। जब धू-धू करके प्रेम की अग्नि तुम्हारे भीतर जलेगी तो सब कूड़ा-करकट जल जाएगा। कूड़ा-करकट--जिसको तुमने कल

तक हीरे-जवाहरात समझा था। कूड़ा-करकट--जिसे कल तक तुमने विचार, ज्ञान समझा था। कूड़ा-करकट--जिसे कल तक तुम सिर पर लिए जन्मों-जन्मों से चलते रहे थे-- मान कर कि बहुमूल्य है। सब जल जाएगा। कठिन होगा, पीड़ा होगी। पुरानी मान्यताएं, धारणाएं, पक्षपात, सब जल जाएंगे। प्रेम तुम्हें खालिस सोना कर जाएगा। लेकिन खालिस सोना होने के पहले आग से गुजरना होता है।
दाग दाग पर दागी हो।
इतनी तैयारी हो तो सच्चा वैराग्य उत्पन्न होता है। प्रेम के संबंध में सोचने से नहीं, प्रेम को जीने से वैराग्य उत्पन्न होता है। झूठा वैराग्य प्रेम-विरोधी होता है। सच्चा वैराग्य प्रेम का फूल है। यह भेद ख्याल में ले लेना। झूठा वैराग्य तो डरता है प्रेम से, क्योंकि प्रेम हो तो कहीं आसक्ति न लग जाए। सच्चा वैराग्य, साक्षी-भाव जहां जग गया, वह अब डरता नहीं; अब तो प्रेम में पूरी डुबकी मारता है। जैसे कमल झील पर तैरता है और झील का पानी उसे छूता नहीं, ऐसे सच्चा वैराग्य का कमल प्रेम की झील पर तैरता है और कुछ भी उसे छूता नहीं, वह अछूता रहता है। उसका क्वांरापन शाश्वत है।
स्त्री-रोगों के एक विशेषज्ञ ने एक बहुविवाहित महिला की जांच-पड़ताल करते समय पाया कि वह अभी तक क्वांरी है। आश्चर्य से उसकी आंखें फटी रह गईं। वह दांतों तले अंगुली दबा कर बोला, मेरा चिकित्सा-विज्ञान व्यर्थ और गलत सिद्ध हो रहा है। चमत्कार है कि आप चार विवाह करने के बाद भी अभी तक क्वांरी हैं! इसका राज क्या है?
राज-वाज कुछ भी नहीं, डाक्टर साहब! मैंने अपने पहले पति को इसीलिए तलाक दिया कि वह नामर्द था। दूसरा विवाह मैंने धन के लोभ में एक अस्सी साल के बूढ़े मारवाड़ी से किया था। मेरा तीसरा पति सुहागरात के दिन ही हृदय का दौरा पड़ने से मर गया। और मेरा वर्तमान चौथा पति--महिला ने दुखी स्वर में जवाब दिया--उसके बारे में कुछ न पूछिए। वह काम-कला का विशेषज्ञ है और प्रेम के दर्शन-शास्त्र का पंडित है। वह प्रेम क्या है, इसके संबंध में ही बातें करता रहता है! प्रेम करने का तो अवसर ही नहीं मिलता। उसका प्रेम का ज्ञान इतना है कि उस ज्ञान में ही उलझा हुआ है।
प्रेम के पंडित प्रेम को नहीं जानते, प्रेम के शास्त्र को जानते हैं। उनसे तुम प्रेम की परिभाषा समझ सकते हो। प्रेम पर वे प्रवचन दे सकते हैं, शास्त्र लिख सकते हैं, प्रेम पर पीएचड़ी. पा सकते हैं; लेकिन प्रेम नहीं जानते।
मैं विश्वविद्यालय में बहुत दिन तक रहा हूं। विश्वविद्यालयों में जितनी पीएचड़ी. संतों पर लिखी जाती हैं, उतनी किसी पर नहीं। और मैं चकित था यह देख कर कि जो लोग कबीर पर पीएच. डी. लिखते हैं, दादू पर पीएचड़ी. लिखते हैं, पलटू पर पीएचड़ी. लिखते हैं--उन्होंने न कभी ध्यान किया, न कभी भक्ति की, न कभी वैराग्य को जीया, न कभी साक्षी-भाव का स्वाद लिया--और कबीर पर पीएचड़ी.! कबीर के विशेषज्ञ हो जाते हैं!
मैं कबीर पर बोला, तो कबीर संप्रदाय के जो सबसे बड़े महंत हैं, उन्होंने एक लंबा पत्र लिखा। और लिखा कि आपने कबीर की बातों के कुछ ऐसे अर्थ किए हैं जो शास्त्रीय नहीं हैं और हमारी परंपरा के विपरीत हैं। आपको ऐसे अर्थ करने के पहले कम से कम हमसे पूछ तो लेना चाहिए था।
मैंने उनको लिखवाया है कि आप पहले कबीरदास को कहो कि ऐसे सूत्र लिखने
के पहले कम से कम हमसे तो पूछ लेना था। क्योंकि हम तो उसी जमात के हैं। जब कबीर ने ही तुमसे नहीं पूछा, तो हम अर्थ करने के लिए तुमसे पूछने आएंगे? और अगर तुम्हारी परंपरा के विपरीत पड़ते हों मेरे अर्थ, तो तुम्हारी परंपरा गलत होगी। क्योंकि मैं कबीर के संबंध में नहीं बोल रहा हूं। कबीर मेरा अनुभव है। मैं कोई कबीर का पंडित नहीं हूं, कबीर के शास्त्रों का ज्ञाता नहीं हूं। लेकिन कबीर का जो अनुभव है वह मेरा अनुभव भी है। कबीर से मेरी पहचान है। कबीर से मेरी मुलाकात है। सीधी! किसी महंत को बीच में लेने की जरूरत नहीं है।
तुम्हें अगर बदलना हो--मैंने उन्हें लिखवाया--तो अपनी किताबों में बदल लेना। अर्थ तो मुझे जो करने हैं वही मैं करूंगा; क्योंकि वही अर्थ हैं, मैं कर क्या सकता हूं!

एक पंडित है, जो शब्द से जीता है, शब्द के ही अर्थों में लगा रहता है।
और एक ज्ञानी है, जो शब्द से नहीं जीता, जो निशब्द में उतरता है, जो अनुभव को पाता है। ये बातें अनुभव की हैं।
तो जब तक तुम्हें प्रेम की लौ न जगे, जब तक तुम्हारे भीतर ध्यान का दीया न जले, तब तक तुम्हारा वैराग्य थोथा रहेगा, ऊपरी रहेगा। ऐसे वैराग्य से बचना। ऐसे पांडित्य से सावधान रहना।
अब तो मैं बैराग भरी, सोवत से मैं जागि परी।
पलटूदास कहते हैं, जिस दिन वैराग्य मुझमें भरा, उस दिन जो घटना मेरे भीतर घटी, वह थी--सोवत से मैं जागि परी! उसको ही मैं साक्षी-भाव कह रहा हूं। सोना यानी कर्ता-भाव। सोना यानी तादात्म्य। सोना अर्थात यह मानना कि मैं शरीर हूं, मन हूं, यह हूं, वह हूं, नाम हूं, जाति हूं, वर्ण हूं, हिंदू हूं, मुसलमान हूं। ये सब नींद। ये बस सोना। ये बस सपने। जागने का अर्थ कि मैं न देह हूं, न मन हूं, न ब्राह्मण, न शूद्र, न हिंदू, न मुसलमान; मैं केवल शुद्ध चैतन्य हूं--साक्षीमात्र, सच्चिदानंद! इसका नाम जागना।
अब तो मैं बैराग भरी, सोवत से मैं जागि परी।
और तुम खूब गहरी नींद में सो रहे हो।
अरे बहन, आज तुम इतनी परेशान क्यों दिखती हो?
रात सपने में मैंने देखा कि मेरे पति किसी अन्य स्त्री के साथ मौज कर रहे हैं।
तो इसमें इतनी परेशानी की क्या बात है भला?
परेशानी की बात क्यों नहीं! अरे जब मेरे सपने में वे ऐसी हरकतें कर सकते हैं तो खुद के सपने में क्या-क्या नहीं करते होंगे!
यहां सपनों का बड़ा मूल्य है। यहां तुम्हारी जिंदगी ही सारी सपना है। यहां तुम जी नहीं रहे हो होशपूर्वक, यहां तो परिस्थितियों के धक्के तुम्हें जिलाए जा रहे हैं। परिस्थिति एक धक्का दे देती है तो तुम एक काम कर गुजरते हो। तुम सोचते हो मैंने किया। जरा सोचो, तुमने किया? एक आदमी ने गाली दी और तुम्हारे मुंह से भी गाली निकली उत्तर में, यह तुमने दी या उसने दिलवा ली? यही आदमी बुद्ध को गाली देता तो बुद्ध गाली देते? बुद्ध मुस्कुराते और आगे बढ़ जाते। या हो सकता था, इसके सिर पर हाथ रख कर आशीर्वाद देते। यह आदमी बुद्ध से गाली नहीं निकलवा सकता था। क्यों? क्योंकि बुद्ध जागे हैं। लेकिन तुमसे गाली निकलवा लेता है। तुम इसके गुलाम हो गए। यह तुम्हारी हालत बटन जैसी कर दी; जैसे पंखे की बटन दबाई, पंखा चल गया; बटन दबाई, पंखा बंद हो गया। किसी ने गाली दी, तुम एकदम क्रोध में आ गए, डंडा उठा लिया। किसी ने आकर प्रशंसा कर दी, थोड़ी मक्खनबाजी की, तुम एकदम फूल कर कुप्पा हो गए!
जजः नसरुद्दीन, तुम्हारी इतनी हिम्मत आखिर कैसे हुई कि तुमने अपनी पत्नी को झाडू से मारा?
मुल्लाः क्या करूं हुजूर, परिस्थिति ही ऐसी थी कि मैं क्या आप खुद भी यदि मेरी जगह होते तो चूकते नहीं!
जज ने पूछाः क्या मतलब? मैं समझा नहीं।
मुल्लाः जरा विस्तार से सुनिए। मेरी बीबी की पीठ मेरी तरफ थी। पास ही में मूठ वाली झाडू पड़ी थी। उसकी गर्दन में दर्द था, अतः वह एकदम से मुड़ कर पीछे देख भी नहीं सकती थी। और फिर पीछे वाला दरवाजा भी खुला हुआ था। अब बताइए इसमें मेरा क्या दोष है?
तुम अपनी जिंदगी को देखोगे तो बस ऐसा ही पाओगेः एक लहर आई, धका गई, तुम कुछ कर गए; दूसरी लहर आई, धका गई, तुम कुछ कर गए। और फिर भी तुम सोचते हो तुम कर्ता हो! फिर भी तुम सोचते हो तुम्हारे कृत्य कर्म हैं!
नहीं, कर्म नहीं हैं, प्रतिकर्म हैं। भीड़ के धक्कमधक्के में हो रहे हैं। तुम अपने मालिक नहीं हो। जो जागा नहीं है, वह अपना मालिक होता नहीं है। तुम नींद में हो। इस नींद में तो तुम अगर स्वर्ग भी पहुंच जाओ तो भी नरक ही पाओगे।
परलोक की बात है। धर्मराज अच्छे मूड में थे। शायद लाटरी खुली होगी या रात जुए में जीत गए होंगे। एक व्यापारी से कह बैठे, चंदूलाल, जाओ तुम्हें

तुम्हारी मर्जी पर छोड़ते हैं। स्वर्ग या नरक, जहां जाना चाहते हो वहीं भेज देंगे।
चंदूलाल खीसें निपोर कर बोले, भगवान, जहां दो पैसे कमाने की जुगत हो वहीं भेजो। स्वर्ग-नरक में क्या फर्क पड़ता है!
दो पैसे जुड़ाने की जहां जुगत हो, वहीं भेजो। स्वर्ग-नरक में क्या फर्क पड़ता है! चंदूलाल ने जिंदगी भर बस दो पैसे जुड़ाए। वे स्वर्ग में भी जाएंगे तो भी दो पैसे ही जुड़ाने की आकांक्षा रखेंगे।
मैंने सुना है, एक जहाज डूब रहा था। सामान फेंका गया जहाज के बाहर, ताकि वजन कम हो जाए। और डूब ही नहीं रहा था जहाज, एक बड़ी शार्क मछली जहाज का पीछा कर रही थी इस प्रतीक्षा में कि कब डूबे, कि उसके यात्रियों को सफा कर जाए। उसको भी किसी तरह से संतुष्ट करना पड़ रहा था। जो भी सामान था उसके मुंह में फेंका जा रहा था। भोजन फेंका; जहाज संतरों के पिटारे ढो रहा था, वे फेंके; टेबल, कुर्सी, जो मिल सका फेंका। मगर दस-पांच मिनट के बाद वह फिर शार्क मछली आ जाए। और जहाज डुबकी मारने के करीब है। आखिर यह हालत आ गई कि तय करना पड़ा कि अब कुछ लोग भी फेंकने पड़ेंगे। सारे लोग एक यहूदी को फेंकने के लिए राजी थे, क्योंकि वह यहूदी जहाज पर भी लोगों को लूट रहा था। अब अकेला यहूदी करे भी क्या! सबने मिल कर उसको फेंक दिया शार्क मछली के मुंह में!
लेकिन जहाज को डूबना था सो डूबा और अंततः शार्क मछली सारे यात्रियों
को हड़प गई। यात्री जब शार्क मछली के पेट में पहुंचे तो बड़े हैरान हुए। यहूदी कुर्सी पर बैठा था, टेबल सामने लगा रखी थी, संतरे टेबल पर लगा रखे थे और दो-दो आने में बेच रहा था। पुराने लोग, जो शार्क मछली खा गई थी, खरीद रहे थे।
यहूदी और क्या करे! जहां मौका मिल जाएगा, अपनी पुरानी आदतों से जीएगा।
तुम सोए हो, तुम स्वर्ग में भी रहो तो भी सोए रहोगे। सच तो यह है, अगर तुम भरोसा कर सको मेरी बात पर तो मैं तुमसे कहता हूंः तुम स्वर्ग में हो! लेकिन चूंकि सोए हो, इसलिए नरक में पड़े हो। नींद नरक है, जागरण स्वर्ग है।
अब तो मैं बैराग भरी, सोवत से मैं जागि परी।
नैन बने गिरि के झरना ज्यों, मुख से निकरै हरी-हरी।
आंखों से आंसू झर रहे हैं आनंद के और पहली बार मुख से अपने आप हरि-हरि निकल रहा है। एक तो निकाला जाता है कि लिए माला बैठे जल्दी-जल्दी राम-राम राम-राम किया, देखते जा रहे हैं आंख खोल कर कि घड़ी में कितना समय है, दुकान पर कोई ग्राहक तो नहीं आ गया! लोग दुकान पर भी बैठ कर माला फेरते रहते हैं। कुत्ता आता है, उसको भगा देते हैं। नौकर को इशारा कर देते हैं कि ग्राहक को देख! माला जप रहे हैं, राम-राम भी जप रहे हैं, हरि-हरि भी जप रहे हैं। लोग तो इतने चालबाज हैं कि सोचते हैं परमात्मा को भी धोखा दे लेंगे। आदमी को तो धोखा देते ही हैं, अपने को तो धोखा देते ही हैं, परमात्मा को भी धोखा देने की आकांक्षा रखते हैं!
राम का नाम तो तब सच होता है जब तुमसे झरता है।
जैनों में एक प्रीतिपूर्ण कथा है कि महावीर बोले नहीं, उनसे वाणी झरी। यह बात मुझे रुचिकर लगती है, सत्य लगती है। बोले नहीं--झरी! भेद बहुत हो गया। बोलने का अर्थ होता है प्रयोजन, प्रयास, चेष्टा। झरना--जैसे पत्ता झर जाए वृक्ष से, कि सूरज से किरणें झरें, कि मेघ से वर्षा झरे, बूंदाबांदी हो जाए। ऐसे मेघ से भर गए हैं आनंद से, झर रहे हैं। सत्य से भर गए हैं, झर रहे हैं। ठीक है, महावीर बोले नहीं--झरे! निर्झर हैं।
नैन बने गिरि के झरना...
आंखों से आंसू--आनंद के, प्रेम के!
ज्यों मुख से निकरै हरी-हरी।
और मुंह से तो हरि-हरि निकल रहा है और आंखों से आंसू झर-झर टपक रहे हैं। यह है वैराग्य--स्व-स्फूर्त।
लेकिन तुम्हारा तो सब झूठा है। तुम राम को पुकारो तो झूठ। तुम रोओ तो झूठ। तुम अभिनय करने में कुशल हो गए हो। तुम्हारी कुशलता अदभुत है। तुम सब कुछ कर लेते हो।

मुल्ला नसरुद्दीन एक संगीत-समारोह में गया। एक महिला इतना रद्दी गा रही थी कि लोग बोर ही नहीं हो रहे थे, अनेकों के तो हाथ फड़फड़ा रहे थे कि इसकी गर्दन दबा दो। पर महिला जान कर छोड़ रहे थे। अगर पुरुष गायक रहा होता तो पिटा होता उस दिन। मुल्ला भी बहुत ऊब गया था। उठ-उठ बैठता था। कई बार उसने डंडा उठा लिया। उसने अपने बगल में बैठे हुए एक शांत श्रोता से कहा, मुझे तो उलटी करने का मन हो रहा है भाई। यह औरत गाना कब बंद करेगी? इसकी आवाज तो ऐसी सड़ियल और भद्दी है कि जैसे कोई डालडा के डिब्बे में कंकड़-पत्थर डाल कर हिलाए। गाती है कि रंभाती है! आखिर यह है कहां की गायिका की दुम? कभी नाम भी नहीं सुना इन देवी जी का। और आप क्यों इतनी शांति से सुन रहे हैं? इस स्त्री पर तो मुझे क्रोध आ ही रहा है, मगर यह स्त्री तो दूर है, कहीं मेरा डंडा तुम्हारे सिर पर न पड़ जाए!
पड़ोसी श्रोता ने शर्मिंदगी से सिर हिला कर कहा कि क्षमा करें, वह मेरी बीबी है। कोई सुने या न सुने, मुझे तो सुनना ही पड़ेगा। और फिर रोज-रोज का अभ्यास भी काम पड़ रहा है, यह रोज ही सुनना पड़ता है।
नसरुद्दीन को बड़ा पछतावा हुआ। उसने झट से क्षमा मांगी। कहा, माफ करना भाईजान, मेरा मतलब यह था कि वैसे आवाज तो सुरीली है, मधुर है, सुरताल का ज्ञान भी अच्छा है, लेकिन गीत ही जरा बेढंगा है। न शब्द अच्छे हैं, न तुक ठीक से मिलती है और न कोई श्रेष्ठ भाव-अभिव्यंजना है। अरे किसी अच्छे कवि का गीत चुनना था गाने के लिए। कहां का सड़ा-गला गीत है! किस मूरखनाथ ने लिखा है यह गीत?
बगल में बैठे हुए आदमी ने शर्म से सिर झुका कर नीचे कहा, मैंने ही लिखा है!
सोए हुए लोग गीत लिख रहे हैं, सोए हुए लोग गीत गा रहे हैं, सोए हुए लोग सुन रहे हैं। सब सड़ा-गला है, सब दुर्गंधयुक्त है। जिंदगी इतनी कुरूप ऐसे ही नहीं हो गई है, हम सबने बना रखी है। हम सबने मिल कर इस नरक को बनाया है। तुम सोचते हो नरक कहीं और है? नरक वहीं है जहां तुम नींद में हो। और स्वर्ग भी कहीं और नहीं है; स्वर्ग वहीं है जहां तुम जाग गए।
अभरन तोरी बसन धै फारौं, पानी जिव नहिं जात मरी।
लेउं उसास सीस दै मारौं, अगिनि बिना मैं जाऊं जरी।।
पलटू कहते हैंः तोड़ डाले सारे आभूषण, फाड़ डाले सारे वस्त्र। अब जीने
की कोई आकांक्षा नहीं है। अब जीने में कुछ अर्थ नहीं है--ऐसे जीने में जैसा अब तक जीए। मगर फिर भी मौत नहीं आ रही है।
लेउं उसास सीस दै मारौं, अगिनि बिना मैं जाऊं जरी।
आग तो नहीं है, लेकिन जल रही हूं। फोड़ दूं सिर को, ऐसी दशा इस लंबी नींद
ने कर दी है। इस नींद में जो वस्त्र पहन रखे थे, वे फाड़ देने योग्य थे। जो आभूषण समझे थे, वे जंजीरें थीं। जिसको अपना समझा था, पराया था। जिसको मित्र समझा था, शत्रु था। जिसको जीवन समझा था वह मृत्यु थी और जिसको मृत्यु समझ कर डरते थे वह अमृत का द्वार था।
नागिनि बिरह डसत है मोको, जात न मोसे धीर धरी।
और अब विरह ऐसा उठ रहा है, यह जो प्रेम की लपट उठ रही है...
देखते हो, लपट हमेशा आकाश की तरफ उठती है! हर दीये की ज्योति आकाश की तरफ उठती है। क्यों? यह सूरज से मिलने की आकांक्षा, क्योंकि हर ज्योति सूरज का अंग है और अपने स्रोत में लौट जाना चाहती है। जिस दिन तुम जागोगे, तुम्हारे भीतर की आत्म-ज्योति भी भागना चाहेगी, छोड़ देना चाहेगी इस दीये को--इस मिट्टी के दीये को। उड़ जाना चाहेगी दूर आकाश में--सूरज तक, मूल स्रोत तक प्रकाश के!
सतगुरु आई किहिन बैदाई...
लेकिन अपने से कुछ नहीं हो सकता था। अपने किए बहुत किया, कुछ न हुआ, करवटें ले-ले कर सो गए। लेकिन सतगुरु मिल गया।
सतगुरु आई किहिन बैदाई...
सदगुरु आया--वैद्य की तरह, चिकित्सक की तरह।
नानक ने कहा है कि नानक तो वैद्य है। बुद्ध ने भी कहा है कि मैं कोई उपदेशक नहीं हूं, उपचारक हूं।
सतगुरु आई किहिन बैदाई...

सदगुरु आया और उसने कुछ चिकित्सा की--और फूटी आंखें देखने लगीं, बंद कान सुनने लगे, सो गया हृदय धड़कने लगा।
सिर पर जादू तुरत करी।
जैसे जादू कर दिया! सदगुरु वही है जिसके पास जादू घटित हो जाए। और जादू क्या है? कोई हाथ से राख निकालना जादू नहीं है। यह तो मदारी रास्तों पर कर रहे हैं। कि हाथ से घड़ियां निकल आएं स्विसमेक। ये सब तो चालबाजियां हैं। ये सब तो हाथ की सफाइयां हैं। जादू तो बस एक है कि कोई तुम्हें सोते से जगा दे। और सब बातें व्यर्थ हैं, मनोरंजन हैं।
सिर पर जादू तुरत करी।
सदगुरु मिल जाए तो जादू कर दे। लेकिन उसके ही सिर पर कर सकता है जो सिर उसके चरणों में रख दे। सिर ही न रखो तो सदगुरु भी क्या करे! तुम सिर रखो तो जादू कर दे। सदगुरु का स्पर्श भी सोते से जगा सकता है।

रूह का नगमा बिखरा हुआ सा
जिस्म का सोना पिघला हुआ सा
हुस्न के शोले फूट गए हैं
होश के बंधन टूट गए हैं
जितने हिरन थे छूट गए हैं
कौन कमंद-ए-शौक बढ़ाए
सोए हुए को कौन जगाए
कौन ये इन्सां, कौन ये राही दोश पे डाले ता मह-ओ-माही जग की कहानी, दिल के फसाने जितने कदम, उतने ही जमाने एक मुसाफिर, लाख ठिकाने
राह जो पूछे रास न आए
सोए हुए को कौन जगाए
खाक पे कैसी लाश पड़ी है
शाम-ए-गरीबां पास खड़ी है
आबरू-ए-मरहूम है शायद
जीस्त की रफ्ता धूम है शायद जान-ओ-तन-ए-मासूम है शायद कौन गिरे आंसू को उठाए
सोए हुए को कौन जगाए
रोशनी कैसी, कैसा धुआं है आग लगी है, किसका मकां है
फूट पड़े इफलास के शोले
दूर नहीं हैं, पास के शोले
फैल न जाएं यास के शोले
दौड़ रे साथी गाम बढ़ाए
सोए हुए को कौन जगाए
कठिन है बात, सोए हुए को कौन जगाए! नींद लंबी है, पुरातन है, बहुत प्राचीन है, जन्मों-जन्मों की है। सोए हुए को कौन जगाए!
लेकिन इस पृथ्वी पर कहीं न कहीं, कोई न कोई जगाने वाला सदा मौजूद होता है। इतनी चिंता तो परमात्मा तुम्हारी लेता है कि एक जगाने वाला विदा होता है तो कहीं दूसरा जगाने वाला पैदा हो जाता है। यह सिलसिला टूटता नहीं। एक बुद्ध गया कि कहीं और दूसरा कोई बुद्ध पैदा हो जाता है। यह धारा अनवरत बहती रहती है। तुम्हारी कठिनाई यह है कि तुम मुर्दा बुद्धों से जकड़ जाते हो और इसलिए जिंदा बुद्धों को नहीं देख पाते।
बुद्ध को गए पच्चीस सौ साल हो गए, कोई अभी भी बैठा उनकी पूजा कर रहा है। अब पूजा व्यर्थ है। अगर बुद्ध से सच में तुम्हारा प्रेम है तो किसी जागे हुए बुद्ध को खोज लो। परमात्मा किसी दूसरे दीये में रोशनी बना होगा अब। लेकिन तुम पुराने दीये की तस्वीर लिए बैठे हो और इसलिए नये दीये को खोजना तुम्हें मुश्किल हो रहा है। मिल भी जाए तो पहचानना मुश्किल,

क्योंकि तुम पुराने दीये से मिलाते हो। और कोई नया दीया पुराने दीये से नहीं मिलेगा। परमात्मा नित-नूतन नये बुद्ध पैदा करता है। नई ज्योतियां आकाश से उतरती हैं। जहां भी कभी कोई हृदय ध्यान में शून्य हो जाता है वहीं परमात्मा की ज्योति उतर आती है।
लेकिन एक बात तुमसे कहूंः पृथ्वी कभी परमात्मा से खाली नहीं होती। अप्रकट परमात्मा तो सब तरफ मौजूद रहता है, लेकिन कहीं न कहीं परमात्मा प्रकट भी होता है। तुम्हारी आंखें अगर पुराने बुद्धों की तस्वीरों से न लदी हों तो तुम सदगुरु को जरूर पहचान लोगे, जरूर पहचान लोगे!
और सदगुरु जादू है, तिलिस्म है। उसका स्पर्श भी जगा सकता है। जागे हुए
के द्वारा ही सोए हुए को जगाया जा सकता है। सोया हुआ दूसरे सोए हुए को कैसे जगाएगा? हजारों सोए हुए भी संगठित हो जाएं तो भी एक-दूसरे को जगा नहीं सकते। यहां पांच सौ लोग रात सो जाएं एक-दूसरे से कह कर कि हम जगा देंगे एक-दूसरे को। मगर पांच सौ ही सो जाएंगे। कौन किसको जगाएगा! कोई जागा हुआ जगा सकता है। क्योंकि हिला सकता है, डुला सकता है, पानी के छींटे आंखों पर दे सकता है। कोई उपाय खोज लेगा। पुकार दे सकता है। कोई विधि खोज लेगा। सीधे- सीधे न उठोगे तो खींचेगा-तानेगा। तुम्हारे योग्य कोई न कोई मार्ग तलाश लेगा। अगर बिल्कुल न माने, घर में आग लगा देगा। लपटें उठती देख कर भाग खड़े होओगे, जाग खड़े होओगे। सदगुरु कुछ भी कर सकता है। क्योंकि जागना परम धन है; उसके लिए कुछ भी गंवाया जा सकता है। लेकिन बस जागा हुआ ही सोए हुए के लिए सहायक हो सकता है।
सतगुरु आई किहिन बैदाई, सिर पर जादू तुरत करी।
और एक क्षण में घटना घट जाती है। सोए तुम चाहे जन्मों से रहे हो, जागना
तो एक क्षण में हो जाएगा।
पलटूदास दिया उन मोको, नाम सजीवन मूल जरी।
मुझे जगाया और मुझे प्रभु का स्मरण दे दिया! मुझे प्रभु की स्मृति दे दी! मुझे अपने स्वभाव का बोध दे दिया!
जल औ मीन समान, गुरु से प्रीति जो कीजै।
जल से बिछुरै तनिक एक जो, छोड़ि देति है प्रान।
और जिसे गुरु मिल गया, वह ऐसी मछली है जिसको जल मिल गया।
जल औ मीन समान...
इसलिए जो प्रेम चाहिए शिष्य और गुरु के बीच, वह वैसा चाहिए जैसा जल और मीन के बीच है।
जल औ मीन समान, गुरु से प्रीति जो कीजै।
ऐसा प्रेम होना चाहिए कि गुरु के बिना जीना क्षण भर को कठिन होने लगे, असंभव होने लगे। गुरु तुम्हारी श्वास बन जानी चाहिए।
जल औ मीन समान, गुरु से प्रीति जो कीजै।
जल से बिछुरै तनिक एक जो, छोड़ि देति है प्रान।
मछली को जल से अलग करो कि प्राण छोड़ देती है। शिष्य गुरु से अलग नहीं
हो सकता। एक बार शिष्य हो जाए, एक बार झुक जाए और जागने का रस ले ले, एक बार समर्पित हो जाए, एक बार प्रेम की लपट उसके भीतर उठ आए और प्रेम का स्वाद पकड़ जाए--बस! फिर गुरु के बिना नहीं जी सकता। फिर गुरु में ही जीता है-- गुरुमय होकर जीता है।
मीन कहै लै छीर में राखे, जल बिनु है हैरान।
जो कछु है सो मीन के जल है, उहिके हाथ बिकान।।
मछली कहती है कि जल के बिना तो मैं हैरान हो जाती हूं। मेरे लिए तो जो कुछ है जीवन, सब कुछ, वह जल है। उहिके हाथ बिकान! उसके ही हाथ बिक गई हूं।
ऐसा ही शिष्य कहता हैः गुरु जो कुछ है, वही मेरा सब कुछ है। उहिके हाथ बिकान! उसके ही हाथ बिक गया हूं। इसलिए गुरु और शिष्य का संबंध तो बड़े पागल प्रेम का संबंध है, दीवानगी का संबंध है। यह कोई होशियारों की बात नहीं, यह परवानों की बात है। यह मस्तों की बात है, यह हिम्मतवरों की बात है। पलटूदास प्रीति करै ऐसी, प्रीति सोई परमान।
ऐसा प्रेम करे कि गुरु और शिष्य दो न रह जाएं, एक हो जाएं। और जिस दिन गुरु और शिष्य एक हो जाते हैं उसी दिन परमात्मा का प्रमाण मिलता है, और कोई प्रमाण नहीं है। तर्क से, विचार से शास्त्र से परमात्मा का कोई प्रमाण

नहीं मिलता। जहां गुरु और शिष्य एक हो जाते हैं वहां परमात्मा का प्रमाण मिलता है। उस एकता में ही परम एकता का बोध होता है। जैसे शिष्य और गुरु एक हो गए हैं, ऐसे ही वह घड़ी भी आती है जब व्यक्ति समष्टि से एक हो जाता है। गुरु और शिष्य की एकता व्यक्ति और समष्टि की एकता का पहला कदम है, पहला स्वाद है।
जैसे आषाढ़ में नये-नये मेघ घिरते हैं, ऐसे गुरु और शिष्य आषाढ़ का महीना। फिर जल्दी ही खूब वर्षा होगी और सावन आता है! और सावन की झरी लगेगी! गुरु और शिष्य के मिलन के बाद बस एक ही मिलन शेष रहाः व्यक्ति का समष्टि से मिलन। उस मिलन का नाम ही परमात्मा है, मोक्ष है।
प्रेम में जीओ, प्रेम में डूबो, क्योंकि प्रेम के अतिरिक्त और परमात्मा का कोई प्रमाण नहीं है। प्रेम ही प्रार्थना है! प्रेम ही परमात्मा है!
आज इतना ही।

काहे होत अधीर
छठवां प्रवचन

क्रांति की आधारशिलाएं

पहला प्रश्नः ओशो! मेरा ख्याल है कि आपके विचारों में, आपके दर्शन में
वह सामर्थ्य है, जो इस देश को उसकी प्राचीन जड़ता और रूढ़ि से मुक्त करा कर उसे प्रगति के पथ पर आरूढ़ करा सकती है। लेकिन कठिनाई यह है कि यहां के बुद्धिवादी और पत्रकार आपको अछूत मानते हैं और आपके विचारों को व्यर्थ प्रलाप बताते हैं। इससे बड़ी निराशा होती है। कृपा कर मार्गदर्शन करें।

कल्याणचंद्र जायसवाल! यह स्वाभाविक है। बुद्धिवादी जिसे हम कहते हैं
वह ब्राह्मण का नया रूप है। ब्राह्मण अर्थात पुराने बुद्धिवादी; बुद्धिवादी यानी नये ब्राह्मण। और ब्राह्मण तो परंपरा की रक्षा करेगा। ब्राह्मण का तो सारा न्यस्त स्वार्थ परंपरा में छिपा है। परंपरा के बल पर ही तो उसकी बुद्धिमत्ता है। उसकी बुद्धिमत्ता निजता की नहीं है; वह कोई बुद्ध नहीं है। उसका अनुभव मौलिक नहीं है। उसने स्वयं जाना नहीं, देखा नहीं, पहचाना नहीं; वह तो कागद की लिखी कह रहा है, आंखों की देखी नहीं।
तो शास्त्र, परंपरा, रूढ़ि, इनके विरोध में वह हो नहीं सकता। वह तो इनका
ही प्रचारक होगा, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष। यही तो उसके जीवन-आधार हैं। हां, कभी-कभी वह तमाशा भी करता है परंपरा-मुक्त होने का, क्रांतिकारी होने का। लेकिन उसकी क्रांतिकारिता, उसकी परंपरा-मुक्ति, उसका रूढ़ि- विरोध, सब थोथा और ऊपरी-ऊपरी होता है। वह पुराने पर नई व्याख्याएं आरोपित कर देता है। शराब तो पुरानी ही होती है, नई बोतलें मुहैया कर देता है, लेबल बदल देता है। बीमारियां पुरानी हैं, लेकिन नये लेबलों से और कुछ देर चल जाती हैं। उसकी क्रांति क्रांति नहीं होती; क्रांति के होने में बाधा होती है।
इसीलिए तो भारत में पांच हजार वर्षों में कोई क्रांति नहीं हो सकी। कारण? भारत के पास बुद्धिवादियों की बड़ी जमात है, जो हमेशा झूठी क्रांति पैदा कर देते हैं। और जब झूठी क्रांति पैदा हो जाती है तो सच्ची क्रांति की बात भूल जाती है। जब फिर लोग जागते हैं और सच्ची क्रांति की तलाश करते हैं, तब हम उन्हें फिर घुनघुने, खिलौने पकड़ा देते हैं। और बुद्धिवादी बड़े बौद्धिक ढंग से अपनी बात की प्रस्तावना करता है। उसकी प्रस्तावना तर्कपूर्ण होती है। और सत्य अतर्क्य है। सत्य का निवेदन हो सकता है, लेकिन सत्य का कोई प्रमाण नहीं हो सकता। सत्य का प्रमाण तो व्यक्ति की आत्मा में होता है, उसके तर्कों में नहीं।
लेकिन आत्माओं को देखने वाली आंखें कितनी हैं? तर्क को समझने में सभी लोग कुशल हैं, कमोबेश। इसलिए बुद्धिवादी छाया रहा है, ब्राह्मण का राज्य रहा है। और ऐसा मत सोचना कि बुद्धिवादी मेरे ही विरोध में है या मुझे ही अछूत समझता है; उसने बुद्ध को भी अछूत समझा, उसने महावीर को भी अछूत समझा। भारत के इतिहास में ये दो अदभुत क्रांतिकारी हुए हैं। ब्राह्मण उनके भी विरोध में था। वह उन दिनों का बुद्धिवादी था--शास्त्रों का रक्षक था, शब्दों का धनी था, उपनिषद और वेद उसे कंठस्थ थे, भाषा पर उसका अधिकार था, तर्क में उसकी निष्ठा थी। आज हम उसे ब्राह्मण नहीं कहते, सिर्फ नाम बदल गया है; अब हम उसे बुद्धिवादी कहते हैं।
इसलिए कल्याणचंद्र, तुम्हें अड़चन होती है कि बुद्धिवादी क्यों मुझे अछूत समझता है?
बुद्धिवादी मुझे अछूत न समझे तो मैं चौंकूंगा। बुद्धिवादी मेरा विरोध न करे तो मुझे चिंता होगी। उसका अर्थ होगा कि मेरी बात अर्थहीन है। नहीं तो सबसे पहले बुद्धिवादी विरोध में खड़ा होता है। क्योंकि सबसे पहले उसे ही समझ में आता है कि फिर कोई व्यक्ति मौजूद हो गया जो रूढ़ि की और परंपरा की जड़ें काट देगा। और लोग तो बाद में समझेंगे, देर में समझेंगे; बुद्धिवादी समझाएगा तब समझेंगे। लेकिन बुद्धिवादी बहुत सचेत है, वह जाग

कर चारों तरफ देखता रहता है--कोई उसकी संपदा तो लूटने नहीं आ गया? और स्वभावतः लोग उसकी सुनते हैं, क्योंकि लोग सोचते हैं वह जानता है।
वह नहीं जानता, कुछ भी नहीं जानता।
उपनिषद में एक प्यारी कथा है। श्वेतकेतु गुरुकुल से घर वापस लौटा-- सारे शास्त्रों का ज्ञान पाकर। गुरुकुल में जो भी उपलब्ध था, सब में प्रथम कोटि में वह उत्तीर्ण हुआ था। स्वभावतः अकड़ा हुआ आया।
बुद्धिवादी से ज्यादा अहंकार सिर्फ साधु-महात्मा में होता है। नंबर
दो पर बुद्धिवादी का अहंकार है। साधु-महात्मा में थोड़ा ज्यादा होता है, क्योंकि वह बुद्धिवादी होता है और धन-त्याग। पंडित और धन-त्याग। तो थोड़ा उसका अहंकार और भी प्रगाढ़ हो जाता है।
श्वेतकेतु अकड़ा हुआ आया। युवा था, शास्त्रों का अंबार सिर पर लेकर आया था। सब परीक्षाओं में स्वर्ण-पदक लेकर आया था। बड़ा सम्मान लेकर लौटा था। उसके पिता उद्दालक ने द्वार से देखा दूर से श्वेतकेतु को आते हुए-- उसकी अकड़ और अहंकार। पिता को तो बहुत पीड़ा हुई, क्योंकि इसलिए तो उसे गुरुकुल नहीं भेजा था। गुरुकुल भेजा था कि ज्ञानी होकर लौटेगा। और वह तो अज्ञानी का अज्ञानी वापस आ रहा है! जानकारी से भर गया है। जानकारी के पहाड़ लेकर आ रहा है। लेकिन जानकारी से कोई ज्ञानी थोड़े ही होता है! जानकारी झूठा सिक्का है, उधार है, बासी है, अपनी नहीं है, परायी है। पिता तो चिंतित हुआ। उसकी आंख से दो आंसू टपक गए। श्वेतकेतु आया, चरणों में झुका; लेकिन बस शरीर ही झुका। पिता गौर से देख सका कि उसका प्राण नहीं झुका है, क्योंकि मन में तो वह यह जानता है कि अब मैं अपने पिता से भी ज्यादा जानता हूं। उद्दालक ने पूछा, बेटे, इतनी अकड़ क्यों?
श्वेतकेतु ने कहा, अकड़! अकड़ नहीं है यह। गुरुकुल में जो भी उपलब्ध था,
वह सारी संपदा, वह सारा ज्ञान लेकर आ रहा हूं। आपको प्रसन्न होना चाहिए, आप उदास क्यों दिखते हैं?
उद्दालक ने कहा, क्या एक प्रश्न पूछूं? तूने वह एक जाना जिसे जानने से
सब जान लिया जाता है, या नहीं?
श्वेतकेतु ने कहा, वह एक जिसे जानने से सब जान लिया जाता है? इसकी तो कोई चर्चा ही नहीं उठी। यह तो हमारे पाठ्यक्रम में भी नहीं था। भूगोल पढ़ी, इतिहास पढ़ा, पुराण पढ़ा, व्याकरण, भाषा, वेद; मगर वह एक! किस एक की बात कर रहे हैं?
उद्दालक ने कहा, स्वयं को जाना? उसी एक की बात कर रहा हूं। और जिसने स्वयं को नहीं जाना उसका सब जानना व्यर्थ है। और जिसने स्वयं को जाना उसने कुछ भी न जाना हो तो भी सब जान लिया। तू वापस जा। हमारे परिवार में पैदाइश से ब्राह्मण होना स्वीकृत नहीं रहा है। हमारे बाप-दादाओं की आत्माएं रोएंगी तुझे देख कर। हमारे परिवार में तो हम अनुभव से ब्राह्मण होते रहे हैं, जानकारी से नहीं और न जन्म से। ब्रह्म को जान कर ब्राह्मण होते रहे हैं, ब्रह्म के संबंध में जान कर नहीं। तू वापस जा। जब तक ब्रह्म को न जान ले तब तक लौट कर मत आना। ब्राह्मण होकर ही लौटना। ब्राह्मण के सच्चे अर्थों में ब्राह्मण होकर लौटना।
एक बौद्धिकता है और एक बुद्धत्व। बौद्धिकता जानकारी है। बुद्धत्व ज्ञान है। और बौद्धिक व्यक्ति सदा ही बुद्धों के विपरीत रहेगा, क्योंकि उसे खतरा ही बुद्धों से है। बुद्धों के सामने ही उसे अपनी दीनता का बोध होता है। उनकी मौजूदगी उसे खलती है।
आखिर देखते हैं न, तथाकथित ब्राह्मणों ने बुद्ध को इस भारत से उखाड़ ही फेंका। इस देश में टिकने ही नहीं दिया। और इससे ज्यादा अछूत मानना क्या होगा! कम से कम अछूतों को तो टिकने दिया है, हैं तो! बौद्धों को तो टिकने ही नहीं दिया। क्योंकि ब्राह्मणों के पूरे व्यवसाय पर चोट पड़ी जाती थी, ब्राह्मणों के पैर उखड़ने लगे थे। या तो बुद्ध या ब्राह्मण; दोनों साथ-साथ नहीं रह सकते थे। बुद्ध तो ऐसे हैं जैसे प्रकाश। अब प्रकाश के साथ अंधेरा कैसे रहेगा?
और अंधों में काने राजा हो जाते हैं। लेकिन जब दो आंख वाला आदमी हो! और
दो आंख वाले ही नहीं होते बुद्ध, बुद्ध तीन आंख वाले होते हैं, क्योंकि तीसरा नेत्र भी खुला होता है। तो तीन आंख वालों के सामने कानों को कौन

पूछेगा? और जिनको तुम ब्राह्मण और बुद्धिवादी कहते हो, काने भी नहीं हैं, अंधे हैं। सिर्फ धोखा दे रहे हैं खुद को और दूसरों को। न जाना है, न पहचाना है--और जनाने में लग गए हैं, लोगों को समझाने में लग गए हैं!
समझाने का भी एक मजा होता है, एक अहंकार होता है। जब भी तुम दूसरे को कुछ समझाते हो तब इसकी चिंता नहीं लेते कि मैं भी समझा हूं या नहीं। दूसरे को समझाना अपने आप में ही इतना मजे से भरा हुआ है, इतना रसपूर्ण है, कि कौन फिक्र करता है कि मैं समझा या नहीं! जब भी तुम दूसरे को समझाते हो, दूसरा अज्ञानी हो जाता है, तुम ज्ञानी।
रूस का बहुत बड़ा गणितज्ञ आस्पेंस्की, एक अदभुत फकीर गुरजिएफ के पास गया।
आस्पेंस्की विश्वविख्यात था। उसकी किताबें दुनिया की चौदह भाषाओं में अनुवादित हो चुकी थीं। और उसने एक ऐसी अदभुत किताब लिखी थी कि कहा जाता है कि दुनिया में वैसी केवल तीन किताबें लिखी गई हैं। पहली किताब अरिस्टोटल ने लिखी थी। उस किताब का नाम हैः आर्गानम, ज्ञान का सिद्धांत। दूसरी किताब बेकन ने लिखी, उसका नाम हैः नोवम आर्गानम, ज्ञान का नया सिद्धांत। और तीसरी किताब पीड़ी.आस्पेंस्की ने लिखीः टर्शियम आर्गानम, ज्ञान का तीसरा सिद्धांत। कहते हैं इन तीन किताबों के मुकाबले दुनिया में और किताबें नहीं। और बात में सचाई है। मैंने तीनों किताबें देखी हैं। बात में बल है। ये तीन किताबें अदभुत हैं। और आस्पेंस्की ने तो हद्द कर दी! उसने किताब के प्रथम पृष्ठ पर ही यह लिखा है कि पहला सिद्धांत और दूसरा सिद्धांत जब पैदा भी नहीं हुए थे, तब भी मेरा तीसरा सिद्धांत मौजूद था। मेरा तीसरा सिद्धांत उन दोनों से ज्यादा मौलिक है। और इसमें भी बल है। यह बात भी झूठी नहीं है, कोरा दंभ नहीं है। इस बात में सचाई है। आस्पेंस्की की किताब बेकन, अरस्तू दोनों को मात कर देती है। दोनों को बहुत पीछे छोड़ देती है।
ऐसा प्रसिद्ध गणितज्ञ गुरजिएफ को मिलने आया। और गुरजिएफ ने पता है उससे क्या कहा! एक नजर उसकी तरफ देखा, उठा कर एक कागज उसे दे दिया--कोरा कागज--और कहा, बगल के कमरे में चले जाओ। एक तरफ लिख दो जो तुम जानते हो-- ईश्वर, आत्मा, स्वर्ग, नरक--जो भी तुम जानते हो, एक तरफ लिख दो। और दूसरी तरफ, जो तुम नहीं जानते हो। फिर मैं तुमसे बात करूंगा। उसके बाद ही बात करूंगा। बुद्धिवादियों से मेरे मिलने का यही ढंग है।
हतप्रभ हुआ आस्पेंस्की। ऐसे स्वागत की अपेक्षा न थी, यह कैसा स्वागत! नमस्कार नहीं, बैठो, कैसे हो, कुशलता-क्षेम भी नहीं पूछी। उठा कर कागज दे दिया और कहा--बगल के कमरे में चले जाओ! सर्द रात थी, बर्फ पड़ रही थी। और आस्पेंस्की ने लिखा है, मेरे जीवन में मैं पहली बार इतना घबड़ाया। उस आदमी की आंखों ने डरा दिया! उस आदमी के कागज के देने ने डरा दिया! और जब मैं कलम और कागज लेकर बगल के कमरे में बैठा सोचने पहली दफा जीवन में--कि मैं क्या जानता हूं? तो मैं एक शब्द भी न लिख सका। क्योंकि जो भी मैं जानता था वह मेरा नहीं था। और इस आदमी को धोखा देना मुश्किल है। मैंने जो किताबें लिखी हैं, वे और किताबों के आधार पर लिखी थीं; उनको मांजा था, संवारा था, मगर वे किताबें मेरे भीतर आविर्भूत नहीं हुई थीं। वे फूल मेरे नहीं थे; वे किसी बगीचे से चुन लाया था। गजरा मैंने बनाया था, फूल मेरे नहीं थे। एक फूल मेरे भीतर नहीं खिला। आस्पेंस्की ने लिखा है कि मैं पसीने से तरबतर हो गया; बर्फ बाहर पड़ रही थी और मुझसे पसीना चू रहा था! मैं एक शब्द न लिख सका। वापस लौट आया घंटे भर बाद। कोरा कागज कोरा का कोरा ही गुरजिएफ को लौटा दिया और कहा कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। आप यहीं से शुरू करें--यह मान कर कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं।
गुरजिएफ ने पूछा, तो फिर इतनी किताबें क्यों लिखीं? कैसे लिखीं? आस्पेंस्की ने कहा, अब उस दुखद प्रसंग को न उठाएं। अब मुझे और दीन न करें, और हीन न करें। क्षमा करें। मैं होश में नहीं था। मैं बेहोशी में लिख गया। वह मेरे पांडित्य का प्रदर्शन था। लेकिन आपके पास ज्ञान के लिए आया हूं, झोली फैलाता हूं भिखमंगे की। एक अज्ञानी की तरह आया हूं।
गुरजिएफ ने कहा, तो फिर कुछ हो सकेगा। फिर क्रांति हो सकती है।

कल्याणचंद्र, मेरे पास जो अज्ञानी की तरह आते हैं उनके ही जीवन में क्रांति हो सकती है, क्योंकि ज्ञान का पहला सूत्र है अपने अज्ञान को अंगीकार करना। और तुम्हारे तथाकथित बुद्धिवादी, तथाकथित बौद्धिक लोग अपने अज्ञान को स्वीकार नहीं कर सकते, यही अड़चन है। उन्हें यहां आने में भी अड़चन है। लेकिन यह बात भी उन्हें छिपानी पड़ती है कि वे यहां आ नहीं सकते हैं। इसलिए उन्हें हजार बहाने खोजने पड़ते हैं कि वे यहां क्यों नहीं आते-- यहां कुछ है ही नहीं, प्रलाप है! न मुझे सुना है, न मुझे समझा है; जो मैं कह रहा हूं, वह उन्हें पागल का प्रलाप मालूम होता है। ये आत्मरक्षा के उपाय हैं। इस तरह वे अपने को यहां आने से बचाते हैं। यहां कभी भूले-चूके कोई बुद्धिवादी आ भी जाता है तो मुझे सुन भी नहीं पाता, क्योंकि उसके सिर में न मालूम कितना ऊहापोह चलता रहता है! जब वह मुझे सुन रहा है तब वह सुनता नहीं, तौलता रहता है--कौन सी बात उससे मेल खाती है, कौन सी मेल नहीं खाती; कौन सी ठीक है, कौन सी गलत। जैसे उसे पता ही है कि गलत क्या और ठीक क्या! जैसे उसके पास कसौटी है!
बुद्धिवादी मुझे पत्र लिखते हैं, तो कुछ पूछने को नहीं, सलाह देने को--
कि आप अगर ऐसा न कहते तो ठीक होता; आप अगर ऐसा न करते तो ठीक होता; आप अगर ऐसा करें तो बहुत लाभ होगा।
जो यहां अज्ञानी की तरह आएगा, उसके ही पात्र में मैं उंडेल सकता हूं। लेकिन जो ज्ञानी की तरह आया है, उसका पात्र तो भरा हुआ है--पहले से ही भरा हुआ है, उसमें रंचमात्र भी जगह नहीं है।
झेन फकीर बोकोजू से मिलने विश्वविद्यालय का एक बहुत प्रतिष्ठित प्रोफेसर आया। बोकोजू के झोपड़े तक, पहाड़ी पर दूर बने झोपड़े तक उसने लंबी यात्रा की। थका-मांदा, पसीने से तरबतर जब वह झोपड़ी में पहुंचा तो उसने पूछा, मैं जानना चाहता हूं, क्या ईश्वर है?
बोकोजू ने कहा, बैठें, थोड़ा सुस्ता लें। मैं थोड़ा पंखा झल दूं, थोड़ा पसीना सूख जाए। पहाड़ पर चढ़ कर आप थक गए हैं। और जल्दी से आपके किए एक कप चाय बना लाऊं, चाप पी लें। फिर विश्राम से बात हो। ईश्वर की बात इतनी जल्दी नहीं। काहे होत अधीर!
प्रोफेसर ने तो सोचा भी नहीं था कि बोकोजू जैसा महर्षि चाय बनाएगा उसके लिए! लेकिन वह गया। बोकोजू ने चाय बनाई। फिर चाय लाया। प्याली प्रोफेसर के हाथ में दी। केतली से चाय ढालनी शुरू की, प्याली भर गई और बोकोजू चाय ढालता ही गया। कप भर गया, बसी भी भर गई, फिर भी बोकोजू चाय ढालता ही गया। तब प्रोफेसर चिल्लाया कि रुको! तुम होश में हो या पागल! अब सारे फर्श पर चाय फैल जाएगी। अब मेरी प्याली में एक बूंद भी चाय को रखने की जगह नहीं है।
बोकोजू ने कहा, समझदार आदमी हो। मैं तो सोचा कि सिर्फ प्रोफेसर हो। लेकिन तुम में कुछ समझ शेष है। तो इतनी बात तुम्हें समझ में आती है कि प्याली में और चाय नहीं ढाली जा सकती, क्योंकि प्याली भरी हुई है। मैं तुमसे पूछता हूं, जरा आंख बंद करके देखो, तुम्हारी खोपड़ी भरी हुई है या नहीं? अगर भरी है तो मैं उसमें कुछ ढाल नहीं सकता। खोपड़ी को खाली करके आओ। या रुको यहां मेरे पास, खोपड़ी को खाली करने के उपाय हैं।
जैसे खोपड़ी को भरने के उपाय हैं... विश्वविद्यालय यही काम करता है-- खोपड़ी को भरने के उपाय। सदगुरु का सत्संग इससे उलटा काम करता है--खोपड़ी को खाली करने का उपाय।
ध्यान और क्या है? प्रार्थना और क्या है? पूजा-अर्चना और क्या है? साधना-उपासना और क्या है? तुम्हारा सिर खाली हो जाए, रिक्त हो जाए, शून्य हो जाए। तुम्हारा पात्र इतना शून्य हो जाए कि उसमें कुछ भरा जा सके।
जब बौद्धिक व्यक्ति यहां आते हैं तो उनका सिर इतना भरा होता है, वहां पहले से ही इतनी भीड़-भाड़ है, इतना ऊहापोह है, इतने विचार हैं--वहां मेला पहले से ही भरा है! एक विचार को भी उनके भीतर प्रवेश करा देना कठिन है, असंभव है। एक तो भीड़ के कारण कोई नया विचार प्रवेश नहीं कर सकता और अगर प्रवेश कर भी जाए तो भीड़ में खो जाएगा। अगर न भी खोए, किसी तरह बचा ले अपने को, तो भीड़ का रंग, भीड़ का ढंग, वह जो भीतर के विचार हैं उनके द्वारा व्याख्याएं इस नये विचार पर आरोपित कर दी जाएंगी।

बुद्धिवादी समझ नहीं पाता। कभी नहीं समझा। जीसस से जो लोग नाराज थे
वे कौन थे? वे उस समय के बुद्धिवादी लोग थे। और सॉक्रेटीज को जिन्होंने जहर दिया था वे कौन थे? उस समय के बुद्धिवादी लोग थे।
कल्याणचंद्र, जो मेरे साथ हो रहा है वह स्वाभाविक है, अपेक्षित है। उससे मैं आश्चर्यचकित नहीं हूं। होना ही था, होना ही चाहिए। इसी तरह बुद्धिवादियों ने बुद्धों का सदा सम्मान किया है। यह उनके सम्मान का ढंग है। यह हम पहचानते हैं। इन्हें हम फूलमालाएं समझते हैं। यह उनकी स्वागत की विधि है।
और तुमने पूछा कि बुद्धिवादी और पत्रकार भी...
पत्रकार की तो और भी अड़चन है। पत्रकार तो जीता ही गलत पर है। पत्रकार
का सत्य से कोई लेना-देना नहीं है। पत्रकार तो जीता असत्य पर है, क्योंकि असत्य लोगों को रुचिकर है। अखबार में लोग सत्य को खोजने नहीं जाते, अफवाहें खोजने जाते हैं। तुम्हें शायद पता हो या न हो कि स्वर्ग में कोई अखबार नहीं निकलता। कोई ऐसी घटना ही नहीं घटती स्वर्ग में जो अखबार में छापी जा सके। नरक में बहुत अखबार निकलते हैं, क्योंकि नरक में तो घटनाएं ही घटनाएं हैं।
एक बार एक पत्रकार मरा और स्वर्ग पहुंच गया। द्वार पर दस्तक दी। द्वारपाल ने द्वार खोला और पूछा कि क्या चाहते हैं? उसने कहा, मैं पत्रकार हूं और स्वर्ग में प्रवेश चाहता हूं। द्वारपाल हंसा और उसने कहा कि असंभव! तुम्हारे लिए ठीक-ठीक जगह तो नरक में है। तुम्हारा काम भी वहीं है। तुम्हें रस भी वहीं आएगा। तुम्हारा व्यवसाय वहीं फलता है। यहां तो सिर्फ, नरक से हम पीछे न पड़ जाएं, इसलिए चौबीस जगह खाली रखी हैं अखबार वालों के लिए। मगर वे कब की भरी हैं। चौबीस अखबार वाले हमारे यहां हैं। हालांकि वे भी सब बेकार हैं। अखबार छपता नहीं। एक कोरा कागज रोज बंटता है, ऋषि-मुनि उसको पढ़ते हैं। ऋषि-मुनि कोरे कागज ही पढ़ सकते हैं, क्योंकि कोरा मन और क्या पढ़ेगा! अखबार में छपने योग्य घटना यहां घटती नहीं।
जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने कहा है, कुत्ता अगर आदमी को काटे तो यह कोई समाचार नहीं है। आदमी जब कुत्ते को काटे तो यह समाचार है।
नरक में खूब समाचार हैं, वहां आदमी कुत्तों को काटते हैं। और अखबार वालों को अगर न मिले ऐसा आदमी जो कुत्तों को काटता हो, तो उसे ईजाद करना होता है, नहीं तो अखबार मर जाए। उसका आविष्कार करना होता है, नहीं तो अखबार नहीं जी सकता।
द्वारपाल ने कहा, यहां बेकार समय खराब करोगे। तुम्हारा मन भी न लगेगा। नरक चले जाओ, वहां रोज-रोज नये अखबार निकलते ही चले जाते हैं। सुबह का संस्करण भी निकलता है, दोपहर का संस्करण भी, सांझ का भी संस्करण, रात्रि का भी संस्करण। खबरें इतनी हैं वहां! घटनाओं पर घटनाएं घटती हैं। स्वर्ग में कोई घटना थोड़े ही घटती है। महावीर बैठे अपने वृक्ष के नीचे, बुद्ध बैठे अपने वृक्ष के नीचे, मीरा नाचती रहती है अपने वृक्ष के नीचे। छापने को क्या है? कुछ नया वहां होता नहीं।
लेकिन अखबार वाला इतनी आसानी से भाग तो नहीं जाता, इतनी जल्दी से हटाया भी नहीं जा सकता--पुरानी आदतें! उसने कहा, चौबीस घंटे का अवसर तो दो। अगर मैं किसी और अखबार वाले को जाने के लिए नरक राजी कर लूं, तो मुझे जगह दे सकोगे?
द्वारपाल ने कहा, तुम्हारी मर्जी, अगर कोई राजी हो जाए। चौबीस घंटे का तुम्हें मौका है, भीतर चले जाओ।
उस अखबार वाले ने, जो वह जिंदगी भर करता रहा था, जिसमें कुशल था, वही काम किया। उसने जो मिला उसी से कहा कि अरे सुना तुमने! नरक में एक बहुत बड़े अखबार के निकलने की आयोजना चल रही है। प्रधान संपादक, उपप्रधान संपादक, संपादक, सब की जगह खाली है। बड़ी तनख्वाहें, कारें, बंगले, सब का इंतजाम है।
सांझ होते-होते उसने चौबीसों अखबार वालों को मिल कर यह खबर पहुंचा दी। चौबीस घंटे पूरे होने पर वह द्वार पर पहुंचा। द्वारपाल ने कहा कि गजब कर दिया भाई तुमने! एक नहीं चौबीस ही चले गए! अब तुम मजे से रहो।
उसने कहा, मैं भी जाना चाहता हूं।
तुम किसलिए जाना चाहते हो?

उसने कहा, कौन जाने बात में सचाई हो ही!
झूठ में एक गुण है। चाहे तुम ही उसे शुरू करो, लेकिन अगर दूसरे लोग उस
पर विश्वास करने लगें तो एक न एक दिन तुम भी उस पर विश्वास कर लोगे। जब दूसरों को तुम विश्वास करते देखोगे, उनकी आंखों में आस्था जगती देखोगे, तुम्हें भी शक होने लगेगाः कौन जाने, हो न हो सच ही हो बात! मैंने तो झूठ की तरह कही थी, लेकिन हो सकता है, संयोगवशात मैं जिसे झूठ समझ रहा था वह सत्य ही रहा हो! मेरे समझने में भूल हो गई हो। क्योंकि चौबीस आदमी कैसे धोखा खा सकते हैं? उसने कहा कि नहीं भाई, अब मैं रुकने वाला नहीं। पहले तो मुझे नरक जाने ही दो।
स्वर्ग में अखबार नहीं निकलता, क्योंकि घटना नहीं घटती। शांत, ध्यानस्थ, निर्विकल्प समाधि में बैठे हों लोग तो क्या है वहां घटना? अखबार तो जीता है उपद्रव पर। जितना उपद्रव हो उतना अखबार जीता है। जहां उपद्रव नहीं है वहां भी अखबार वाला उपद्रव खोज लेता है। जहां बिल्कुल खोज नहीं पाता वहां ईजाद कर लेता है।
अभी कुछ ही दिन पहले मेरे पास पंजाब से एक पत्रिका आई। पत्रकार ने लिखा है कि वह पंद्रह दिन इस आश्रम में रह कर गया है।
यह सरासर झूठ है। क्योंकि पंद्रह दिन आश्रम में रह कर जाए, किसी को पता नहीं! कैसे पंद्रह दिन कोई आश्रम में रह कर जाएगा! और जो उसने लिखा है वह साफ जाहिर करता है कि वह आदमी आश्रम में तो क्या पूना भी कभी नहीं आया है।
उसने लिखा है कि आश्रम पंद्रह वर्गमील स्थान पर फैला हुआ है।
पंद्रह वर्गमील तो शायद पूना भी नहीं है।
"आश्रम में बड़ी-बड़ी झीलें हैं--मीलों लंबी, जिन पर हजारों संन्यासी नग्न स्नान करते हैं। कृत्रिम जलप्रपात हैं।"
हां, एक कृत्रिम जलप्रपात है छोटा सा, दो फीट ऊंचा, उसमें चार-छह मछलियां नग्न घूमती हैं जरूर। और उनका रंग गैरिक है, यह बात सच है। पानी एक फीट से ज्यादा गहरा नहीं है। और चार वर्गफीट से बड़ी हौज नहीं है। मीलों लंबी झील! हजारों संन्यासी नग्न स्नान करते हैं! पंद्रह वर्गमील में फैला हुआ आश्रम!
"जमीन के नीचे बने हुए सभागार, जिनमें दस-दस हजार संन्यासी इकट्ठे बैठ
कर सुबह प्रवचन सुनते हैं। और सभी संन्यासी नग्न बैठते हैं।"
तुम इस भ्रांति में मत रहना कि तुम कपड़े पहने बैठे हो। तुम सब नग्न बैठे हो। अरे अगर कपड़े भी हैं तो क्या हुआ, भीतर तो नग्न ही हो न! कपड़े तो ऊपर-ऊपर हैं, अखबार वाले भीतर तक देख लेते हैं--पारदर्शी आंखें, एक्स-रे की आंखें!
"दस हजार संन्यासी रोज सुबह भूमि के नीचे छिपे हुए, शुद्ध सफेद मार्बल
से बने हुए भवन में नग्न बैठ कर प्रवचन सुनते हैं। हर प्रवचन के बाद संन्यासियों की प्रेम-क्रीड़ा और लीला शुरू होती है। द्वार पर प्रवेश करते ही एक सुंदर नग्न युवती की संगमरमर की प्रतिमा स्वागत करती है।"
लेख पढ़ कर मैंने सोचा हो न हो, क्योंकि द्वार तक मैं कम ही जाता हूं।
इन छह वर्षों में शायद तीन बार द्वार तक गया हूं। और हो न हो ये बड़ी-बड़ी झीलें! ... क्योंकि मैं अपने कमरे से बाहर सिर्फ सुबह और सांझ आता हूं। और मैं आश्रम से परिचित नहीं हूं। क्योंकि मैं आश्रम के किसी मकान में, किसी कमरे में, दफ्तर में कभी भी नहीं गया हूं। मुझे पता नहीं दफ्तर में क्या होता है, कौन होता है, क्या काम होता है, कैसे होता है। मुझे पता नहीं कि आश्रम में लोग कहां रहते हैं, क्या करते हैं। सुबह बोल कर जो मैं अपने कमरे में गया सो सांझ निकलता हूं। सांझ जो मुझसे मिलने आते हैं उनसे मिल लेता हूं। सुबह जो मुझे सुनने आते हैं उनको सुना देता हूं। इससे ज्यादा मेरा आश्रम से कोई संबंध नहीं है।
मैंने लक्ष्मी को बुलाया कि यह मूर्ति कहां है? ये झीलें कहां हैं? कम
से कम मुझे खबर तो की होती! और ये दस-दस हजार संन्यासियों को कौन प्रवचन दे रहा है? मुझे बुलाओ या न बुलाओ, मगर कम से कम खबर तो कर दो!
अगर न हो झूठ तो झूठ ईजाद करना होता है। फिर अखबार वालों की कला ही सारी इतनी है कि चिंदी को सांप बना लें। कहीं छोटा सा कोई तथ्य मिल जाए तो

उसके आस-पास झूठ का एक जाल रचने में वे उतने ही कुशल होते हैं जैसे मकड़ियां अपने ही भीतर से जाले को निकाल कर बुनने में कुशल होती हैं। वही उनकी कला है, वही उनका धंधा है।
तो ऐसे-ऐसे झूठ प्रचलित किए जा रहे हैं कि जिनमें शायद यह कहावत भी ठीक नहीं लागू होती कि चिंदी का सांप। क्योंकि चिंदी भी नहीं है और सांप खड़ा कर लिया गया है।
अखबार वाले का धंधा ही झूठ का है, अफवाह का है; वह ईजाद करता है। उसे सत्य से क्या लेना-देना! उसे शून्य से क्या लेना-देना! वह यहां आता भी है अगर कभी तो ध्यान के संबंध में बात नहीं करता। मैं क्या कह रहा हूं, इस संबंध में बात नहीं करता। यहां क्या अभूतपूर्व घटित हो रहा है, इस संबंध में बात नहीं करता। वह ऐसी-ऐसी बातें खोज ले जाता है कि हैरानी होती है। मगर अपनी-अपनी आंख। कुछ लोग होते हैं, हीरों की खदान पर भी पहुंच जाएं
तो भी कंकड़-पत्थर ही बीन लाएंगे। क्या करोगे? उनकी आंखें कंकड़-पत्थर ही देख पाती हैं, हीरे उन्हें दिखाई नहीं पड़ते। कुछ लोग हैं, गुलाब की झाड़ी के पास जाएं, बस कांटों में ही उलझ जाएंगे, फूलों तक नहीं पहुंच पाएंगे, फूल उन्हें दिखाई ही नहीं पड़ते। फूल देखने के लिए भी फूल वाली आंखें चाहिए। फूलों जैसी आंखें ही फूलों को देख पाती हैं।
फिर अखबार वाले का सारा धंधा--निन्यानबे प्रतिशत--राजनीति का है, कांटों का है। वही राजनीति का अभ्यासी जब यहां आ जाता है तो इतने भिन्न आयाम में होता है कि उसे कुछ सूझ नहीं पड़ता। वह यहां भी कुछ वही देख पाता है जो दिल्ली में देखे; जो राजनेताओं के पास देखे वही यहां भी देख लेता है। इसमें उसकी मजबूरी है। मैं उस पर नाराज नहीं। वह अपने धंधे में कुशल है। उसने एक खास तरह की आंख पैदा कर ली है, वह उसी आंख से जीता है।
गुरजिएफ के जीवन में एक उल्लेख है। गुरजिएफ अपने आश्रम में अखबार वालों को प्रवेश नहीं करने देता था। मैं उतना कठोर नहीं हूं। उन्हें न केवल प्रवेश करने देता हूं, उनके लिए सारी सुविधा जुटाई जाती है, उन्हें सब घुमा कर दिखाया जाता है, उन्हें हर साधना-पद्धति से, चिकित्सा-पद्धति से, जो यहां प्रचलित हैं उनसे परिचित कराया जाता है--इस आशा में कि कभी तो कोई आंख वाला, कभी तो कोई समझदार, हजार में एक ही सही, पहचान सकेगा।
अब जैसे कल्याणचंद्र भी "माया" मासिक के संपादकीय विभाग से आते हैं। उनका प्रश्न तो कहता है कि कुछ आंख है। उनका प्रश्न तो कहता है कि कुछ पहचान है। माया में ही नहीं उलझे हैं, थोड़ा ब्रह्म का भी बोध है।
कोई कभी आएगा आंख वाला, इसलिए मैंने द्वार खुले छोड़ रखे हैं। यद्यपि मुझे संन्यासी निरंतर आकर कहते हैं कि अखबार वालों को अंदर आना बंद कर दिया जाए, क्योंकि व्यर्थ गलत-सलत लिखते हैं। मैं उनसे कहता हूं, फिक्र छोड़ो। कुछ तो लिखते हैं, गलत-सलत ही सही। गलत-सलत को भी पढ़ कर कुछ लोग आ जाते हैं। और एक बार जो आ जाता है--किस कारण आया, यह और बात--अगर उसके भीतर जरा भी संभावना का बीज है तो जुड़ जाता है।
लेकिन गुरजिएफ अंदर नहीं घुसने देता था। क्योंकि उसने पाया कि व्यर्थ
की बाधा खड़ी होती है, व्यर्थ समय खराब करते हैं। मगर एक अखबार वाला पीछे पड़ा रहा, बरसों पीछे पड़ा रहा, तीन साल कोशिश करता रहा, तो गुरजिएफ ने कहा, अच्छा भाई, तू आ। सुबह जब मैं चाय लेता हूं, आ मेरे साथ चाय भी ले, नाश्ता कर, फिर आश्रम को घूम कर देख लेना।
चाय की टेबल पर गुरजिएफ ने जो कहा वह समझने जैसा है; जो किया वह समझने जैसा है। अखबार वाला भी बैठ कर चाय पी रहा है, गुरजिएफ भी चाय पी रहा है। गुरजिएफ ने अपनी बगल में बैठी एक शिष्या से पूछा, कल कौन सा दिन था? उसने कहा, कल शुक्रवार था। और गुरजिएफ ने पूछा, आज कौन सा दिन है? उसने कहा, यह भी कोई पूछने की बात है! जब कल शुक्रवार था तो आज शनिवार। गुरजिएफ ने प्याली पटक दी पत्थर पर और कहा, यह कैसे हो सकता है? शुक्रवार के बाद शनिवार कभी सुना है? होश है तुझे? मुझे मूढ़ समझा है?
वह अखबार वाला तो यह सब हाल देखा, उसने कहा यह आदमी तो पागल है। कह रहा
है शुक्रवार के बाद कभी शनिवार हुआ है, सुना है? और प्याली पटक दी! वह अखबार वाला तो उठ कर खड़ा हो गया कि यहां से तो निकल भागना बेहतर है। तीन साल कोशिश करके आया था और निकल भागा। गुरजिएफ ने कहा, कहां जाते हो?

उसने कहा, नमस्कार! मुझे न आश्रम देखना है, न कुछ आपकी विधियों से परिचित होना है। मैं गलती में था जो तीन साल मेहनत करता रहा।
उसके चले जाने के बाद... बैठी महिला भी बहुत हैरान थी कि गुरजिएफ ने ऐसा व्यवहार क्यों किया! वह जब चला गया तो गुरजिएफ की हंसी का फव्वारा... उस महिला ने कहा, आपने यह क्या किया? उसने कहा, देखा तीन साल की मेहनत उसकी एक मिनट में खतम कर दी! जिसमें इतना भी धैर्य नहीं था कि थोड़ी देर रुकता, देखता, समझता; जिसमें इतनी भी बुद्धि न थी कि मैं यह जो कर रहा हूं एक नाटक है, एक अभिनय; जिसमें इतनी भी बुद्धि न थी कि यह एक मजाक है; जो मजाक भी न समझ सका वह अध्यात्म क्या खाक समझेगा! उससे छुटकारा पा लिया। और उससे ही छुटकारा नहीं पा लिया, उसके जाति वालों से भी छुटकारा पा लिया। अब कोई अखबार वाला यहां नहीं आएगा, क्योंकि यह बात वह फैलाएगा।
और उसने फैलाई यह बात, खूब फैलाई। जगह-जगह छपी कि गुरजिएफ विक्षिप्त है। और गुरजिएफ हंसता था। लेकिन उसका लाभ यह हुआ कि उस दिन से अखबार वालों ने वहां आना ही बंद कर दिया, कि जो आदमी यह कर सकता है वह कुछ भी कर सकता है। मान लो अखबार वाले पर ही झपट पड़े, मारने लगे, पीटने लगे या कुछ करने लगे। इसका क्या भरोसा, जो यह भी नहीं मानता कि शुक्रवार के बाद शनिवार आता है! यह एक आध्यात्मिक प्रयोग-स्थल है। यहां कुछ अनूठे प्रयोग किए जा रहे हैं जीवन-रूपांतरण के। और निश्चित ही, कल्याणचंद्र, तुम ठीक कहते हो कि भारत की प्राचीन जड़ता और रूढ़ि को तोड़ा जा सकता है, इसकी संभावना यहां पैदा हो रही है। मगर इसीलिए विरोध होगा। इसीलिए मैं अछूत समझा जाऊंगा। इसीलिए मुझ पर कीचड़ फेंकी जाएगी। इसीलिए मेरे आस-पास झूठ ईजाद किए जाएंगे, फैलाए जाएंगे, प्रचारित किए जाएंगे। इनमें तीन लोगों का हाथ होगा।
अखबार वालों का हाथ होगा, क्योंकि उन्हें झूठ चाहिए। उन्हें अफवाहें चाहिए। उन्हें सनसनीखेज खबरें चाहिए। वे यहां आएंगे और अगर चिंदी मिल गई तो ठीक, उसका सांप बनाएंगे; अगर चिंदी न मिली तो मकड़ी की तरह अपने ही भीतर से, अपने ही मस्तिष्क से ताने-बाने बुनेंगे।
जर्मनी की एक पत्रिका ने कुछ दिन पहले एक लेख छापा। पत्रकार ने लिखा
है कि मैं पूना होकर आया, आश्रम देख कर आया। मैंने ठीक सुबह पांच बजे जाकर आश्रम के दरवाजे पर दस्तक दी, द्वार खुला, एक अति सुंदर नग्न महिला ने द्वार खोला। एकदम लिपट गई मुझसे! मेरा स्वागत किया और कहा, आइए। और भीतर ले जाकर एक बड़े रम्य बगीचे में सेव जैसा दिखने वाला एक फल तोड़ा और कहा, इसे खाइए, इससे आपकी वीर्य-ऊर्जा बढ़ेगी। इसे खाने से आप संभोग के परम आनंद को उपलब्ध होंगे।
यह आदमी आया था। लेकिन ब्लू डायमंड में ही बैठा रहा, कभी आश्रम आया नहीं। आया था, इसलिए पता है कि एक दूसरा संन्यासी--सत्यानंद, जो जर्मनी से है, जो वहां की सबसे बड़ी पत्रिका स्टर्न में संपादक था--वह उसे पहचानता था। सत्यानंद ब्लू डायमंड गया था, वहां उस आदमी को देखा तो सत्यानंद ने पहचान लिया। कहा कि तुम यहां कैसे? और वह आदमी कभी ब्लू डायमंड छोड़ कर आश्रम तक आया नहीं, आश्रम के भीतर तो उसने प्रवेश ही नहीं किया। क्योंकि सत्यानंद फिर ख्याल रखा कि वह आए तो उसे घुमाए, सब जगह दिखा दे। उसे निमंत्रण भी दिया कि आओ। मगर वह यहां आया नहीं। आने की झंझट। और आने से फिर तथ्य दिखाई पड़ें तो असत्य लिखना थोड़ा कठिन हो जाता है, मन में थोड़ा अपराध-भाव होता है। अच्छा तो यही होता है कि ब्लू डायमंड के किसी कमरे में बैठ कर जो भी तुम्हें कहानी गढ़नी है गढ़ लो।
लेकिन उसकी कहानी कई भाषाओं में अनुवादित हुई। और यहां पत्र आने शुरू
हो गए। ऑस्ट्रेलिया से एक पत्र आया कि मेरी काम-शक्ति क्षीण हो गई है। वह कौन सा फल है? मैं पूना आने को राजी हूं। अगर मुझे मेरी काम-ऊर्जा वापस मिल जाए, तो मैं कुछ भी करने को राजी हूं और जो भी कीमत हो चुकाने को राजी हूं। ऐसे न मालूम कितने पत्र आने लगे!
किसी ने जर्मनी से लिखा कि मैं अस्सी साल का हूं और एक जवान युवती से विवाह कर बैठा हूं, अब आपके सिवाय मेरा कोई बचावनहार नहीं है।
जर्मनी से संन्यासियों ने पत्र लिखे कि बहुत से पत्र जर्मनी से आने वाले हैं इस तरह के, क्योंकि इस लेख ने लोगों में तहलका मचा दिया है। और लोग उस फल में उत्सुक हैं।

पश्चिम में बड़ा रोग हैः कैसे काम-ऊर्जा बढ़े? पश्चिम में ही क्यों, पूरब में भी। दीवालों पर नहीं तो हकीम बीरूमल! और गुप्त रोगों का इलाज करने वाले डाक्टरों की कोई कमी है यहां?
एक पत्र में लिखा गया है कि क्या यह फल वही है जो इदन के बगीचे में अदम
और हव्वा ने खाया था और जिसके खाने के कारण उन्हें बगीचे से निकाला गया? मगर इस फल के बीज आप कहां पा गए?
तो पहले तो झूठ पैदा करने वाले अखबार वाले लोग होंगे। इस तरह अखबार बिकता है। उस पत्रिका की बिक्री हाथों-हाथ हो गई। उसे दूसरा संस्करण छापना पड़ा और तीसरा संस्करण छापना पड़ा। स्वभावतः, यह धंधे की बात है। मेरे संबंध में, मेरे विरोध में जो अफवाहें छपती हैं, वे पत्रिकाएं बिकती हैं, खूब बिकती हैं!
यहां पत्र आते हैं संपादकों के कि आपके संबंध में छपे लेख के कारण हमें दोबारा संस्करण छापना पड़ा। हमारी पत्रिका की बिक्री बढ़ गई है।
तो एक तो अखबार वाले झूठ फैलाएंगे। उनका धंधा है। दूसरे, बुद्धिवादी झूठ फैलाएंगे। क्योंकि मेरी मौलिक देशना यही है कि ज्ञान स्वयं के भीतर पैदा होता है, ध्यान से पैदा होता है; अध्ययन से नहीं, मनन से नहीं, चिंतन से नहीं। ज्ञान विचार से पैदा नहीं होता, निर्विचार से पैदा होता है। और बुद्धिवादी तो विचार पर जीता है। और मैं कुल्हाड़ी लेकर विचार काटने में लगा हूं। तो दूसरा विरोध होगा बुद्धिवादी की तरफ से। उसी बुद्धिवादी में नये-पुराने सब बुद्धिवादी सम्मिलित कर लो। नये बुद्धिवादी--लेखक, कवि, विचारक, प्रोफेसर, कुलपति, उपकुलपति, इस तरह के लोग। और पुराने बुद्धिवादी--पंडित, पुरोहित, शास्त्रज्ञ, महात्मा, मुनि, साधु।
और तीसरा विरोध राजनेताओं की तरफ से होगा। क्योंकि राजनेता नहीं चाहता कि लोकमानस प्रशिक्षित हो, कि लोकमानस प्रबुद्ध हो, कि लोकमानस जड़ता से छूटे। क्योंकि अगर लोकमानस जड़ता से छूट जाए तो तुम जिन बुद्धू राजनीतिज्ञों को मत देते हो, उनको मत दोगे? तुम जिन बुद्धुओं के पीछे पंक्तिबद्ध चलते हो, उनके पीछे चलोगे?
हालतें रोज से रोज बिगड़ती जा रही हैं।
जयप्रकाश नारायण के पीछे चल कर तुमने एक क्रांति कर ली--थोथी क्रांति, ढाई साल में ताश के पत्तों के घर की तरह गिर गई। क्या क्रांति की तुमने? वे ही के वे ही लोग फिर छाती पर सवार हो जाते हैं, नया झंडा ले लेते हैं। हर शाख पर उल्लू बैठे हैं! और ये ही उल्लू एक झाड़ से उचक कर दूसरे पर बैठ जाते हैं। तुम पहले इस झाड़ की पूजा करते हो। वे देखते हैं--जिस झाड़ की पूजा चल रही है उसी पर बैठो। उल्लू झाड़ पर बैठ कर सोचता है उसकी पूजा हो रही है। फिर देखते हैं कि लोग इस झाड़ को छोड़ कर अब दूसरे की पूजा करने लगे, क्योंकि इस झाड़ से उनकी मनोकामनाएं पूरी नहीं हुईं। उल्लू उचक कर दूसरे झाड़ पर बैठ जाते हैं--वही उल्लू, या उल्लुओं के पट्ठे! अगर उल्लू बहुत बूढ़े हो गए, जैसे अब मोरारजी देसाई कहते हैं चुनाव नहीं लड़ेंगे, तो अब उनका पट्ठा चुनाव लड़ने की तैयारी कर रहा है। अब कांति देसाई चुनाव लड़ेंगे। उल्लू मर भी जाएं तो औलाद छोड़ जाते हैं। उल्लू संतति-निग्रह में मानते ही नहीं। जयप्रकाश नारायण को मान कर तुमने क्रांति की, क्या हुआ? देश बरबाद हुआ। देश बरबादी के कगार पर आ गया। लेकिन तुम्हारी हालत और बिगड़ गई। जयप्रकाश नारायण में फिर भी थोड़ा सोच-विचार माना जा सकता है। लेकिन राजनारायण! इससे बड़ा कोई पतन हो सकता है--जयप्रकाश नारायण से राजनारायण! उल्लुओं से तुम महाउल्लुओं पर चले! अब राजनारायण के बाद आई.एस. जौहर! तुम्हारे पतन की कथा का अंत कहां होगा? जब तक तुम टुनटुन को भारत-माता न बना दो तब तक तुम्हारी आत्मा को शांति मिलने वाली नहीं है।
तो तीसरा विरोध राजनेताओं से होगा, क्योंकि मैं कह रहा हूं कि थोड़ा जागो, थोड़ा ध्यान से अपनी प्रतिभा को निखारो, तुम्हारी थोड़ी आंखें अंधेरे से बाहर आएं, तुम्हारा अंधापन थोड़ा छंटे, तुम्हारी आंख की जाली थोड़ी कटे। लेकिन जो भी शोषक हैं--वे चाहे धर्मगुरु हों और चाहे राजनेता हों और चाहे तथाकथित बौद्धिक लोग हों--जो भी तुम्हारा शोषण कर रहे हैं, वे सब मेरे विरोध में होंगे। उनका विरोध स्वाभाविक है, क्योंकि तुम अगर मेरी बात समझ सको तो उन सबका शोषण असंभव हो जाएगा। उन्होंने तुम पर एक आत्मिक दासता

आरोपित कर दी है। तुम्हें उन्होंने आध्यात्मिक रूप से गुलाम बना रखा है। और यह कुछ एक दिन की बात नहीं है, यह सदियों पुरानी कथा है। पांच हजार वर्ष से तुम्हारी छाती पर गलत लोग बैठे हैं। और इतने लंबे समय से बैठे हैं कि वे सोचते हैं कि बैठना उनका जन्मसिद्ध अधिकार है। और मैं तुमसे कह रहा हूंः उतार दो सब को छाती पर से! निर्भार हो जाओ! ये छाती पर जो बैठे हैं ये सब पहाड़ हैं, इनके नीचे तुम दबे जा रहे हो, मरे जा रहे हो।
निश्चित ही, कल्याणचंद्र, मैं चाहता हूं जड़ता टूटे, रूढ़ि टूटे, अतीत
से मुक्ति हो इस देश की। इस देश की ही क्यों, समस्त मनुष्यता की अतीत से मुक्ति हो। वर्तमान में जीने की कला आनी चाहिए। प्रतिभाशाली व्यक्ति वर्तमान में जीता है, अतीत से मुक्त होता है और भविष्य से भी मुक्त होता है। क्योंकि भविष्य केवल अतीत का ही प्रक्षेपण है।
भविष्य में तुम चाहते क्या हो? वही जो तुमने अतीत में पाया था सुखद, वही-वही फिर भविष्य में मिलता रहे--और भी बड़ी मात्रा में, और भी निखरे हुए रूप में, मगर वही! भविष्य तुम्हारा अतीत का ही प्रतिफलन है। मैं चाहता हूं मनुष्य अतीत से भी मुक्त हो, ताकि भविष्य से भी मुक्त हो जाए। क्योंकि न तो अतीत का कोई अस्तित्व है, न भविष्य का कोई अस्तित्व है। अतीत जा चुका, भविष्य आया नहीं। जो है वह तो वर्तमान है--अभी और यहीं! इस वर्तमान में होने की कला ध्यान है। और जो वर्तमान में समग्ररूपेण डूब जाता है, ओत-प्रोत हो जाता है, इस क्षण से इंच भर नहीं हटता आगे-पीछे, इस क्षण में डुबकी मार जाता है--उसके जीवन में प्रकाश व्याप्त हो जाता है। उसके जीवन में ज्योति जलती है--प्रेम की, ज्ञान की, प्रार्थना की, परमात्मा की। वैसा व्यक्ति किसी का अनुयायी नहीं होता। न हिंदू होगा, न मुसलमान, न ईसाई, न जैन, न बौद्ध। वैसा व्यक्ति बुद्ध हो जाता है, क्यों बौद्ध हो! वैसा व्यक्ति क्राइस्ट हो जाता है, क्यों क्रिश्चियन हो! वैसा व्यक्ति मोहम्मद हो जाता है, क्यों मुसलमान हो! वैसा व्यक्ति नानक हो जाता है, क्यों सिक्ख हो!
मेरे संन्यासी मेरे अनुयायी नहीं हैं, मेरे मित्र हैं, मेरे संगी- साथी हैं। मैं यहां अनुयायी पैदा नहीं कर रहा हूं; बल्कि मित्रों का एक समूह, एक सत्संग। मैं जो कहता हूं उसे मानना आवश्यक नहीं है। मैं जो कहता हूं उसे अंधे की तरह स्वीकार कर लेना आवश्यक नहीं है। नहीं तो फिर तुम्हारे और मेरे बीच बड़ा फासला हो गया। मैं हो गया तुम्हारा गुरु, नेता; तुम हो गए मेरे अनुयायी। और सब अनुयायी अंधे होते हैं।
मैं जो कह रहा हूं उस पर प्रयोग करो। और तुम्हारा प्रयोग अगर तुम्हें दिखा दे कि जो मैंने कहा था वह सत्य था, तो मानना। लेकिन फिर तुम मुझे नहीं मान रहे, अपने अनुभव को मान रहे हो, अपने प्रयोग को मान रहे हो। तुम अपने मालिक हो। मेरा प्रत्येक संन्यासी अपना मालिक है।
कुछ मैंने जाना है, जिसमें मैं तुम्हें साझीदार बनाना चाहता हूं। कुछ मैंने पाया है, मैं तुम्हें आमंत्रित करता हूं कि देख लो, यह तुम्हारे भीतर भी छिपा पड़ा है। मेरा ज्ञान तुम्हारा ज्ञान नहीं बनना है। लेकिन मेरे भीतर जो घटा है, अगर तुम पास आकर झांक कर देख लो, तो तुम्हें अपने खजाने की याद आ जाएगी, बस। एक दीया जल गया, इससे बुझे दीये को याद आ सकती है--तो मैं भी जल सकता हूं! एक बीज खिल गया, अंकुरित हो गया, तो पास में पड़े दूसरे बीज के भीतर भी अदम्य अभीप्सा पैदा होगी कि मैं भी टूटूं। वह भी टूटने की हिम्मत जुटाएगा, भूमि में खो जाने का साहस करेगा। क्योंकि देखा उसने एक बीज को खोते, लेकिन बीज खोने से खोया नहीं, वृक्ष हो गया। और एक वृक्ष में हजारों-लाखों बीज लगे। एक बीज क्या खोया, लाखों बीज हो गए! और बीज क्या खोया, फूल और फल हो गए! आकाश सुवास से व्याप्त हो गया!
बस, मेरे पास तुम्हें इतनी ही याद आ जाए कि मेरा बीज टूटा; मैं मिटा नहीं वरन हुआ, पहली बार हुआ! तुम भी मिटने की अभीप्सा से भर जाओ, तुम भी अहंकार को तोड़ देने का दुस्साहस कर लो, तो तुम्हारे भीतर भी फूल खिल जाएं। वे फूल तुम्हारे होंगे, वह सुगंध तुम्हारी होगी। उससे मेरा कुछ लेना-देना नहीं।
सत्य दिया नहीं जा सकता, सत्य हस्तांतरित नहीं होता। लेकिन सत्य तुम्हारे सामने उपस्थित किया जा सकता है।

मेरा कोई अनुयायी नहीं है। हां, मेरे संगी-साथी हैं। जो भी मेरे निकट आने को राजी है वह इस अपूर्व सत्संग का भागीदार हो जाता है।
कल्याणचंद्र, तोड़नी है जड़ता इस देश की, तोड़नी हैं रूढ़ियां, क्योंकि उन्हीं में फंसे हम सड़ रहे हैं, गल रहे हैं। वे सब तोड़ी जा सकती हैं। यह देश पृथ्वी का सबसे धन्यभागी देश हो सकता है। क्योंकि प्रकृति ने इसे इतना दिया है, इसकी प्रकृति इतनी बहुविध है, इतनी वैविध्यपूर्ण है कि दुनिया का कोई देश इसका मुकाबला नहीं कर सकता। यह इतना बड़ा देश है! यह कोई छोटा देश है? एक महाद्वीप है! इसमें सब तरह के मौसम हैं, सब तरह की हवाएं हैं, सब तरह के वातावरण हैं। पहाड़ हैं, नदियां हैं, मैदान हैं, समुंदर हैं। इसके पास क्या नहीं है! इसके पास अगर कमी है तो बस एक कि इसके पास प्रतिभा खो गई है, इसकी प्रतिभा जंग खा गई है। और तुम्हारे बुद्धिवादी इस जंग को नहीं हटाने देना चाहते। क्योंकि जब तक यह जंग रहे तभी तक वे बुद्धिवादी हैं। यह जंग हट जाए, उनको कौन बुद्धिवादी मानेगा? यह जंग हट जाए तो इस देश का प्रत्येक व्यक्ति बुद्धिमत्ता से भरा होगा।
तुम्हारे साधु-संत यह न चाहेंगे। क्योंकि तुम्हारे साधु-संत फिर साधु-संत न रह जाएंगे।
एक बड़े मजे की बात है कि तुम्हारे साधु-संतों के साधु-संत रहने के लिए तुम्हारा पापी होना जरूरी है। अगर तुम पापी न रह जाओ तो फिर कौन साधु! सभी साधु, तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी।
मैंने सुना है, एक प्रसिद्ध नेताजी गांव का निरीक्षण करने के लिए आए हुए थे। सरपंच उन्हें गांव की सैर करवा रहा था। सरपंच ने कहा, महोदय, सबसे बड़ी खूबी जो इस गांव की है वह यह है कि इस गांव में एक भी बीमार नहीं है। इस गांव के सभी लोग स्वस्थ हैं।
नेता को तो बड़ा आश्चर्य हुआ। एक भी व्यक्ति बीमार नहीं? सारे के सारे स्वस्थ! यह तो बड़ा चमत्कार जैसा है!
वे लोग कुछ ही आगे बढ़े होंगे कि नेताजी ने देखा कि एक व्यक्ति अपने दरवाजे के बाहर बैठा, बिल्कुल हड्डी-मांस का खोखला, अस्थिपंजर मात्र, उल्टियां कर रहा था। नेताजी ने तैश में आकर कहा, आप तो कह रहे थे कि इस गांव में एक भी व्यक्ति बीमार नहीं है, और यह क्या है?
सरपंच बोला, श्रीमान, यह इस गांव का डाक्टर है। और मरीज न मिलने के कारण इस बेचारे की यह हालत हो गई है।
अगर किसी गांव में मरीज न हों तो डाक्टरों का क्या होगा? अगर किसी गांव में चोर न हों, बेईमान न हों, पापी न हों, तो साधु-संतों का क्या होगा? और किसी गांव में अगर बुद्धू न हों, मूढ़ न हों, जड़ न हों, तो तुम्हारे बुद्धिवादियों का क्या होगा? और किसी गांव में अनुयायी बन कर अपने को अपमानित करने वाले लोग न हों तो तुम्हारे नेताओं का क्या होगा?
इसलिए मेरा विरोध स्वाभाविक है। मैं उसे अंगीकार करता हूं--सहज, नैसर्गिक रूप से। उससे मुझे चिंता नहीं है। वरन मैं उससे प्रसन्न हूं। उसका अर्थ है कि पत्रकारों ने भी अब मेरी उपेक्षा करनी बंद कर दी है। उसका अर्थ है कि बुद्धिवादी भी अब बेचैन हैं, मुझसे तिलमिला रहे हैं। उसका अर्थ है कि राजनेताओं को भी मुझसे घबड़ाहट और भय पैदा हो रहा है। यह शुभ लक्षण है।
कल्याणचंद्र, ये लक्षण हैं कि कल्याण हो सकता है।

दूसरा प्रश्नः ओशो! आप तो कहते हैं--हंसा तो मोती चुगै। लेकिन आज तो बात ही दूसरी है। आज का वक्त तो कहता हैः हंस चुनेगा दाना घुन का, कौआ मोती खाएगा। और इसका साक्षात प्रमाण है तथाकथित पंडित-पुरोहितों को मिलने वाला आदर-सम्मान और आप जैसे मनीषी को मिलने वाली गालियां।

कृष्णतीर्थ भारती! तुम कहते हो कि आज तो बात ही दूसरी है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि पहले अन्यथा था। तो बुद्ध को गालियां नहीं पड़ीं? तो महावीर पर पत्थर नहीं फेंके गए? तो जीसस को सूली किसने दी? तो मंसूर के हाथ-पैर किसने काटे?

यह बात ख्याल में लो। यह भ्रांति हम सबके मन में है। क्योंकि हमें बार-बार इस तरह के पाठ पढ़ाए गए हैं कि पहले सतयुग था, स्वर्णयुग था, रामराज्य था। लेकिन रामराज्य भी क्या खाक रामराज्य था! जब राम तक की पत्नी चुराई जा सकती हो तो औरों की पत्नियों का क्या! और जब राम तक सोने के मृग के शिकार को निकल जाते हों, बुद्धू से बुद्धू आदमी भी जानता है कि सोने के मृग नहीं होते, जब राम तक ऐसा धोखा खाते हों तो औरों की बात क्या?
राम सीता को जीत कर लौटे तो सीता से उन्होंने जो शब्द कहे हैं वाल्मीकि रामायण में, अभद्र हैं, वे कतई मर्यादा पुरुषोत्तम को मर्यादा नहीं देते। जो शब्द कहे हैं वे ये हैं कि ध्यान रख स्त्री! यह युद्ध मैंने तेरे लिए नहीं किया। यह युद्ध तो मैंने अपनी कुल-परंपरा को बचाने के लिए किया है, कुल की प्रतिष्ठा के लिए किया है।
रामराज्य में भी स्त्री का सम्मान नहीं है, अपमान है। कुल-परंपरा! अहंकार की प्रतिष्ठा! तभी तो एक धोबी के संदेह करने पर गर्भवती सीता को राम भी जंगल भेज सके। जब राम भी यह कर सकते हों तो औरों का क्या? अगर और अपनी पत्नियों को पैर की जूतियां समझते रहे हों तो कुछ आश्चर्य है? राम ने भी कुछ और बेहतर व्यवहार तो नहीं किया। न समझो जूतियां, समझ लो खड़ाऊं। जरा खड़ाऊं धार्मिक चीज है। मगर क्या फर्क पड़ता है? गर्भवती स्त्री को घर से निकालते शर्म न आई? बेशर्मी की भी सीमा होती है।
और राम जब सीता को ले आए हैं लंका से तो उसकी अग्नि-परीक्षा ली। यह अन्याय है। इतना भरोसा राम को अपनी पत्नी पर नहीं? इतनी आस्था नहीं? और अगर सीता की परीक्षा ली थी तो न्याय होता कि सीता के साथ खुद भी आग से गुजरे होते, अपनी भी परीक्षा दी होती। आखिर जितने दिन सीता राम से दूर रही, राम भी तो सीता से दूर रहे। और किन-किन के साथ रहे, अंदरों-बंदरों के साथ। इनका क्या भरोसा?
लेकिन पुरुष पुरुष है, उसकी परीक्षा का सवाल ही नहीं उठता!
इतिहासज्ञों की खोज कहती है कि शबरी कोई बूढ़ी औरत नहीं थी, जैसा कि रामलीला में दिखलाई जाती है। शबरी अति सुंदर युवा स्त्री थी। और एक बहुत प्रसिद्ध विचारक और इतिहासज्ञ डा.नावलेकर ने किताब लिखी है राम पर। उसमें यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि शबरी का राम से प्रेम था। असल में, किसी के जूठे बेर खा लेना प्रेम में ही संभव हो सकता है। तुम्हें कोई आदमी आधा केला खाकर और तुम्हें दे दे। जूता निकाल लोगे--कि तूने समझा क्या है! लेकिन प्रेम अंधा होता है। प्रेमी एक-दूसरे की जूठी चीजें खा सकते हैं, प्रेमियों में ऐसी संभावना है। और कोई जूठी चीज नहीं खा सकता। राम भी नहीं खा सकते थे। साफ देखते कि शबरी पहले खुद चख रही है, इनकार कर दिया होता। नावलेकर का दावा है कि शबरी सुंदर स्त्री थी, राम के प्रेम में थी।
राम को भी परीक्षा दे देनी थी। साथ ही गुजर जाते। शायद डर रहा हो कि कहीं ऐसा न हो कि सीता तो निकल आए और हम रह गए सो रह गए।
सच तो यह है कि स्त्रियां सदा ही पुरुषों से ज्यादा निष्ठावान रही हैं। यह कोई एकाध पुरुष के संबंध में सच नहीं है; यह समस्त पुरुषों के संबंध में सच है। पुरुष के होने का ढंग ही निष्ठा का नहीं है। स्त्री के होने का ढंग ही निष्ठा का है। स्त्री एक पुरुष को प्रेम कर लेती है और जीवन भर के लिए काफी मानती है। जीवन भर के लिए ही नहीं, मंदिरों में प्रार्थना करती है कि बार-बार यही पति मिले। और पुरुष? पुरुष कहता हैः हे प्रभु, कब इससे छुटकारा हो!
मुल्ला नसरुद्दीन बस को देख कर, ट्रक को देख कर एकदम कंपने लगता था।
तो मैंने एक दिन उससे पूछा कि नसरुद्दीन--सुबह घूम-घाम कर लौट रहे थे--तू एकदम ट्रक और बस को देख कर इतना क्यों घबड़ा जाता है? जैसे ही हार्न बजता है कि तुझे पसीना चूने लगता है।
उसने कहा, अब आपसे क्या कहूं! बीस साल पहले मेरी पत्नी एक ट्रक ड्राइवर के साथ भाग गई। डर लगता है जब भी मैं ट्रक देखता हूं कि कहीं आ न जाए! कहीं वापस न आ जाए!
रामराज्य भी कुछ बहुत रामराज्य नहीं था। रामराज्य में आदमी बिकते थे, क्योंकि दास होते थे, दासियां होती थीं। राम को भी विवाह में और-और भेंटें मिली थीं, साथ में कई दास और दासियां भी मिले थे। आदमी बिकता था और उसको

तुम कहते हो रामराज्य! और महात्मा गांधी इसी रामराज्य को फिर लाना चाहते थे! एक दफे इससे दिल नहीं भरा?
हमें यह सिखाया गया है कि अतीत सुंदर था। तो अतीत में जो भी था सब शुभ था।
इसलिए कृष्णतीर्थ, अक्सर यह सवाल उठ आता है कि आज तो बात ही दूसरी है।
आज बात दूसरी नहीं है, वही की वही बात है। दुनिया में दो तरह के लोग हैं। निन्यानबे प्रतिशत तो वे लोग हैं जो मोती पहचान ही नहीं सकते। एकाध प्रतिशत मुश्किल से ऐसे लोग हैं जो मोती पहचान सकते हैं। निन्यानबे प्रतिशत ऐसे ही सदा रहे हैं, आज ही नहीं। यह मेरी सुनिश्चित धारणा है कि यह निन्यानबे प्रतिशत भीड़ सदा ऐसी ही रही है जैसी आज है, इसमें कोई भेद नहीं पड़ा। भेद तो एक ही पड़ता है दुनिया में और वह यह है कि व्यक्ति विचार से मुक्त होकर ध्यान में प्रवेश कर जाए। बस एक ही क्रांति हैः बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाए।
तो दुनिया में बुद्धों की एक धारा है, वह भी सदा एक सी रही है। जीसस दूर इजरायल में हुए, और बुद्ध भारत में, और लाओत्सु चीन में, और जरथुस्त्र ईरान में, और पाइथागोरस यूनान में--लेकिन इन सबका स्वाद एक जैसा है। ये सब हंस हैं। ये मोती ही चुगते हैं। कृष्ण हों, महावीर हों, मूसा हों, मोहम्मद हों, ये सब हंस हैं, ये मोती ही चुगते हैं। ये कब हुए, इससे फर्क नहीं पड़ता। नानक हों, कबीर हों, पलटू हों, ये सब हंस हैं, ये मोती ही चुगते हैं। समय से, काल से, संवत से इनका कोई संबंध नहीं है।
रही भीड़, तो वह चाहे पांच हजार साल पहले की भीड़ हो और चाहे आज की आधुनिक भीड़ हो... हां, ऊपर-ऊपर फर्क पड़े हैं। पांच हजार साल पहले तुम्हें टाई लगाए हुए और पतलून पहने हुए कोई नहीं मिलता, यह बात सच है। कार नहीं मिलती, ट्रेन नहीं मिलती, हवाई जहाज नहीं मिलता, यह बात सच है। मगर न तो कार से आदमी बदलता है, न ट्रेन से, न हवाई जहाज से। आदमी तो आदमी है। किसी बुद्धू को हवाई जहाज में बिठाल दो, इससे क्या तुम सोचते हो वह बुद्ध हो जाएगा? बुद्धू के हवाई जहाज में बैठने से बुद्धू तो नहीं बदलता, हवाई जहाज को खतरा पैदा होता है--कि बुद्धू कुछ कर गुजरे!
पांच हजार साल पहले आदमी के हाथ में धनुष-बाण था। नहीं तो रामचंद्र जी
को तुमने धनुर्धारी न बनाया होता। अगर बंदूक रही होती तो बंदूक लिए चलते-- बंदूकधारी होते। या अगर एटम बम रहा होता, तो जैसे गणेश जी हाथ में मोतीचूर का लड्डू लिए रहते हैं, ऐसे रामचंद्र जी एटम बम लिए रहते। एटम बम हो तो कोई धनुष-बाण लेकर चले तो बुद्धू समझा जाए। एटम बम की दुनिया में धनुष-बाण तो बस कभी-कभी देखे जाते हैं। दिल्ली के रामलीला मैदान में जब रामलीला होती है तो धनुष-बाण निकलता है। वे भी सब झूठे। और या फिर गणतंत्र दिवस की परेड में जब कि आदिवासियों को बुलाया जाता है। वे भी रखते हैं बस गणतंत्र के लिए ही, वे भी कुछ उनका उपयोग करते नहीं अब। रखे रहते हैं उनको तैयार, रंग पोत कर, कि जब गणतंत्र का दिवस आएगा तो चले दिल्ली।
रामचंद्र जी के हाथ में धनुष-बाण है, तुम्हारे हाथ में एटम बम है--इतना फर्क पड़ा है। मगर यह फर्क तुम्हारे भीतर तो कोई फर्क नहीं। तुम्हारे हाथ में पत्थर होगा तो तुम पत्थर फेंक कर मारोगे और गोली होगी तो गोली मारोगे और बम होगा तो बम मारोगे। यह तो खतरा ही हो गया। मनुष्य कुछ विकसित नहीं हुआ, न ही मनुष्य पतित हुआ है। मनुष्य वैसा का वैसा है, चीजें बदल गई हैं। मनुष्य वैसा का वैसा है, क्योंकि मन वैसा का वैसा है।
तुम सोचते हो गांव के लोग--सीधे-सादे, भोले-भाले; पुराने लोग--बड़े भोले-भाले, सीधे-सादे। उनमें ऐसी वासना नहीं थी, क्योंकि किसी को इच्छा नहीं थी कि फिएट कार होनी चाहिए।
फिएट कार नहीं थी। जो उस समय उपलब्ध था--कोई बग्घी, कोई टमटम, किसी को घोड़े का ख्याल था कि मेरे पास तेज से तेज घोड़ा होना चाहिए। वह वही की वही बात है। तेज घोड़ा उपलब्ध था तो तेज घोड़े की आकांक्षा थी। अब घोड़ा तो चला गया, हार्स-पावर वाली कार है। अब भी हार्स-पावर ही कहते हैं उसको, अभी भी घुड़-शक्ति, अश्व-शक्ति! अभी भी नापते घोड़े से ही हैं, कि जो कार है हमारे पास चार हार्स-पावर की, यानी चार घोड़ों के बराबर। अब कार है तो कार की आकांक्षा है। जब घोड़ा था तो घोड़े की आकांक्षा थी। आकांक्षा नहीं बदली है।

आदमी दो तरह के हैं। जो जागे हुए हैं वे सदा एक से हैं--कोई सदी हो, कोई देश हो, कोई जाति हो, कोई वर्ण हो। जो सोए हुए हैं वे भी सदा एक से हैं--कोई देश, कोई जाति, कोई वर्ण, कोई समय, कोई भेद नहीं पड़ता। इस बुनियादी बात को ख्याल में ले लो। नहीं तो यह भ्रांति रहती है। कुछ लोगों को यह भ्रांति है कि मनुष्य विकास कर रहा है, प्रगतिशील है। और कुछ लोगों की यह भ्रांति है कि मनुष्य का ह्नास हो रहा है, पतन हो रहा है। तथाकथित धार्मिक लोग मानते हैं पतन हो रहा है और अधार्मिक लोग मानते हैं विकास हो रहा है। दोनों गलत हैं। न तो विकास हुआ है, न कोई पतन हुआ है। आदमी वही का वही है--वही एषणा, वही लोभ, वही क्रोध, वही वैमनस्य, वही ईर्ष्या, वही संग्रह, वही परिग्रह--सब वही का वही है--वही लड़ाई, वही झगड़े, कुछ बदला नहीं है।
बदलाहट तो एक ही होती है कि तुम छलांग लगा लो--मन से अ-मन में। छलांग लगा लो--मन से ध्यान में। उतर आओ--मस्तिष्क से हृदय में। हट जाओ--शरीर से आत्मा में। बस एक क्रांति है।
कृष्णतीर्थ, तुम पूछते होः "आप कहते हैं--हंसा तो मोती चुगै। लेकिन आज
तो बात ही दूसरी है... "
आज नहीं, सदा ही ऐसा रहा है।
"आज का वक्त तो कहता है... "
आज का वक्त नहीं, सदा यही कहा गया है!
"हंस चुनेगा दाना घुन का, कौआ मोती खाएगा।"
कौए बहुमत में हैं सदा से।
ऐसा हुआ, एक रात एक झाड़ पर एक हंस के जोड़े ने विश्राम किया। उस झाड़ पर कौओं का बसेरा था। हंस तो जा रहा था मानसरोवर, लेकिन रात हो गई, थका था, तो विश्राम कर लिया। सुबह जब चलने को हुआ और अपनी हंसनी से कहा कि चल अब उड़ चलें, तो कौओं ने कहा कि यह क्या शरारत है? एक तो हमने ठहराया और तुम हमारी पत्नी को ले चले! यह अतिथि का ढंग है? एक तो हम मेजबान और यह तुम हमें फल दे रहे हो! यह धन्यवाद!
हंस की आंखें तो फटी की फटी रह गईं। उसने कहा, क्या तुम कहते हो? यह तुम्हारी पत्नी! यह मेरी हंसनी है। तुम्हें दिखाई नहीं पड़ती? तुम काले, यह गोरी!
कौओं ने कहा, किसको धोखा दे रहे हो? यह काली है, किसने कहा गोरी है? वहां तो कौए ही कौए थे। सारे कौओं ने कांव-कांव करके कहा, काली है! गोरी कौन कहता है? मतदान हो जाए।
हंस तो समझ गया कि झंझट है। मतदान में भी क्या होगा--कौए ही कौए हैं! भीड़ ही इनकी है। हंस ने कहा कि भई तुम्हारी इस बस्ती में कोई अदालत, कोई काजी, कोई न्यायाधीश है?
उन्होंने कहा, है। चलो, वहां निर्णय करवा लें।
गया हंस। न्यायाधीश भी कौआ था। कौओं की बस्ती थी। हंस ने तो सिर फोड़ लिया। उसने कहा, मारे गए! जूरी भी हैं कि नहीं? कहा कि जूरी भी हैं। बारह कौए बैठे थे जूरी में। पुलिसवाले कौए, क्लर्क कौए, मजिस्ट्रेट कौआ, जूरी कौए--अदालत कौओं की थी। हंस ने कहा, मुकदमा लड़ना बेकार है। मैं हार ही गया। बुद्ध तो कभी कोई एकाध होता है। हंस तो कभी कोई एकाध होता है। हमने तो बुद्धों को हंस इसीलिए कहा है, परमहंस कहा है। मुश्किल से होते हैं। कौओं की भीड़ है।
लेकिन हर कौए का जन्मजात अधिकार है, चाहे तो हंस हो सकता है। क्योंकि कालिख हमने पोत रखी है, हम काले हैं नहीं। कालिख दूसरों ने हम पर पोत रखी है, हम काले हैं नहीं। हमारा स्वभाव तो हंस का है, लेकिन हमारा आवरण कौए का है। अगर हम स्वयं की तलाश करें तो हंस हो जाएं। उड़ चल हंसा वा देस! और तब उस देश की याद आती है जो हमारा देश है, हंसों का देश है। और हमें भीतर की याद आ जाए तो फिर तुम मोती ही चुगोगे। फिर कोई पागल होगा जो फिल्मी गाना गुनगुनाएगा--जब कि कुरान की आयत मौजूद हो, जब कि उपनिषद के अदभुत वचन उपलब्ध हों, जब कि धम्मपद हाथ में मिल सकता हो, तो कोई फिल्मी धुन गुनगुनाएगा? और जब पदार्थ में परमात्मा के दर्शन हो सकते हों, तो कोई कहेगा कि जगत पदार्थ है और मैं पदार्थवादी हूं? और जब प्रेम से प्रार्थना

के फूल खिल सकते हों, तो कोई प्रेम की निंदा करेगा, प्रेम को गर्हित कहेगा, पाप कहेगा?
हंसा तो मोती चुगै! जिस दिन तुम्हें अपने हंस होने की याद आ जाएगी उस दिन तुम मोती ही चुगोगे। लेकिन कौओं की भीड़ है, बहुमत उनका है। इसलिए सदा से कौए यही कहते रहेः "हंस चुनेगा दाना घुन का, कौआ मोती खाएगा।"
हालांकि कौआ मोती खा नहीं सकता; मोती को पहचान ही नहीं सकता, खाएगा क्या! परख कहां? कहता भला रहे कि कौआ मोती खाएगा, क्योंकि हमारी भीड़ है, हमारा बल है, हमारी शक्ति है। कहता भला रहे कि कौआ मोती खाएगा, लेकिन खा नहीं सकता। वह गीता में भी कोई फिल्मी पत्रिका छिपा कर पढ़ेगा, कौआ मोती खा नहीं सकता। वह घर में लाकर विष्णु और लक्ष्मी की तस्वीर टांगेगा, मगर वह तस्वीर विष्णु और लक्ष्मी की नहीं है, जैसे कोई फिल्मी अभिनेताओं की हो। तुम देखते हो, तुम घर में तस्वीरें टांगे रहते हो--भद्दी, बेहूदी, अश्लील! मगर धर्म के नाम पर टांगे हुए हो। लक्ष्मी जी की मूर्ति बना दी, तो बस टांग ली। मगर जरा गौर से तो देखो--लक्ष्मी जी लक्ष्मी जी मालूम होती हैं कि हेमामालिनी? शायद हेमामालिनी ने ही मॉडल का काम किया हो जिनकी तस्वीर बनी है। बेहूदी, अश्लील, कुरुचिपूर्ण! जैसा साज-शृंगार करवा देते हो, वह किसी वेश्या को शोभा दे भला। मगर नहीं, नाम पर्याप्त है। लक्ष्मी की मूर्ति है तो बस फोटू टांग ली, फिर कैसी ही हो। असल में तुम लाए ही इसीलिए हो कि नाम लक्ष्मी का है और फोटू किसी फिल्म तारिका की है। नाम के बहाने कमरे में टांग लोगे।
कौआ कितना ही कहे कि मोती खाएगा, खा नहीं सकता। कौआ कौआ है! जो खा सकता
है वही खाएगा। उसको ही मोती कहेगा, यह और बात है। मोती छाप कचरा! मोती का लेबल लगाएगा। मगर खाएगा तो वही जो खा सकता है।
नहीं कृष्णतीर्थ, तुम कहतेः "हंस चुनेगा दाना घुन का।"
असंभव! वह हो ही नहीं सकता। तुम बुद्धों को जहर भी दे दो तो वे उसमें
से अमृत ही पीते हैं। यह घटना घटी ही। बुद्ध की मृत्यु ही विषाक्त भोजन करने से हुई।
एक गरीब आदमी ने सुबह पांच बजे ही आकर प्रार्थना की कि आज आप मेरे घर भोजन लें। नियम था बुद्ध का कि जो पहले आए उसी का निमंत्रण स्वीकार कर लिया जाए। वह गरीब आदमी जा भी न पाया था कि सम्राट बिंबसार ने आकर प्रार्थना की अपने स्वर्ण-रथ से उतर कर कि आप मेरे घर आज भोजन लें। बुद्ध ने कहा, क्षमा करें, मैं निमंत्रण स्वीकार कर चुका।
बिंबसार ने उस आदमी को देखा और उसने कहा, इसके घर क्या भोजन होगा! यह खुद भी तो दो जून रोटी जुटा नहीं पाता, यह क्या भोजन करवाएगा आपको!
लेकिन बुद्ध ने कहा, अब जो भी करवाएगा। निमंत्रण दिया है इतने प्रेम
से तो मैं जाऊंगा।
बुद्ध गए। बिहार में उन दिनों लोग कुकुरमुत्ते इकट्ठे कर लेते थे। कुकुरमुत्ते वर्षा के दिनों में ऊग आते हैं सफेद छत्तों की तरह, जमीन में या लकड़ियों पर। उनका नाम ही कुकुरमुत्ता इसलिए है कि ऐसे स्थानों पर ऊगते हैं वे जो कुत्ते जीवन-जल बहाने के लिए चुनते हैं। उलटी-सीधी जगह पर ऊगते हैं। कुछ कुत्तों के जीवन-जल से उनका संबंध नहीं है। नहीं तो मोरारजी देसाई बहुत प्रसन्न होंगे कि देखो जीवन-जल का प्रभाव! क्या गजब का फूल खिला है! उनका नाम ही कुकुरमुत्ता है, कुत्ते के जीवन-जल से उनका कोई संबंध नहीं है।
कुकुरमुत्ते गरीब आदमी इकट्ठे कर लेते हैं, सुखा लेते हैं। फिर उनकी सब्जी साल भर काम आती रहती है। और सब्जी तो उन्हें मिलती नहीं। उस आदमी के घर पर भी कुकुरमुत्ते के सिवाय और कुछ भी न था। रोटी, नमक और कुकुरमुत्ते की सब्जी। बुद्ध ने न तो कभी कुकुरमुत्ते की सब्जी खाई थी इसके पहले, न देखी थी। और कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि कुकुरमुत्ते विषाक्त होते हैं। किसी गलत जगह में ऊगे होते हैं, किसी ऐसे वृक्ष पर ऊगे होते हैं जिसमें विष होता है, तो विषाक्त हो जाते हैं।
वह जो कुकुरमुत्ते की सब्जी थी, विषाक्त थी। बुद्ध ने चखी, कड़वी थी। लेकिन अब इस गरीब आदमी से कहें कि यह कड़वी है, तो इसके पास और तो कोई सब्जी नहीं है। यह दुखी होगा, पीड़ित होगा, परेशान होगा कि अब मैं क्या करूं! इसको

बड़ा आघात लगेगा। इसे आघात न लगे, इसलिए वे कुकुरमुत्ते की जहरीली सब्जी, कड़वी सब्जी खा गए।
उसी वक्त बुद्ध को साफ हो गया था कि अब मेरा बचना मुश्किल होगा। आते
ही उन्होंने कहा कि खतरा हो गया है। शरीर में विष फैलता मालूम पड़ता है।
शिष्यों ने कहा, कौन है यह आदमी? इसे दंड दिया जाना चाहिए।
बुद्ध ने कहा कि नहीं-नहीं, उसका कोई कसूर नहीं। उसने तो जितने प्रेम
से भोजन मुझे करवाया उतने प्रेम से कभी किसी ने नहीं करवाया था। उसके प्रेम का ख्याल करो, उसके भोजन का नहीं।
यह जहर में अमृत खोजने की कला--उसके प्रेम का स्मरण करो, उसके जहर का नहीं! जहर के लिए वह जिम्मेवार नहीं है। अब कुकुरमुत्ता अगर जहरीला था तो वह क्या करता? उसे कैसे पता चले? और जब तक बुद्ध भोजन न ले लें तब तक वह स्वयं तो भोजन लेगा नहीं। दौड़ो और जाकर खबर करो कि वह उस भोजन को न ले, वह जहरीला है!
शिष्यों ने कहा, आपने रोका क्यों नहीं? आप रुक क्यों नहीं गए?
उन्होंने कहा कि सोचा मैंने कि मौत तो एक न एक दिन आएगी ही आएगी। फिर
आज आई कि कल, क्या फर्क पड़ता है! वैसे भी अब मैं बूढ़ा हो गया, बयासी वर्ष मेरी उम्र हो गई। कितने दिन जीना है! इस आदमी को दुख देकर जीने में क्या सार है! इसके हृदय में कितनी पीड़ा न होगी! इसको अपनी दरिद्रता कितनी न खलेगी! मौत तो होनी ही है, सो होगी। और मेरा काम तो कब का पूरा हो चुका। वह तो बयालीस साल पहले पूरा हो चुका। मुझे जो पाना था जीवन से वह मैंने पा लिया है; अब देर-अबेर नाव छूटनी है--आज सही, कल सही। कल सही तो आज ही सही। उसका प्रेम याद करो।
लेकिन बुद्ध को लगा कि मैं मर जाऊंगा तो कहीं ऐसा न हो कि शिष्य उसको जाकर मार डालें, उसके झोपड़े को आग लगा दें। तो मरते वक्त उन्होंने अपने शिष्यों को बुला कर कहा कि एक बात स्मरण रखनाः दुनिया में दो व्यक्तियों से ज्यादा सौभाग्यशाली और कोई भी नहीं होता।
उन्होंने पूछा, वे कौन से दो व्यक्ति?
तो बुद्ध ने कहा, पहली तो वह मां जो बुद्ध को दूध देती है, पहला भोजन देती है। और अंतिम वह आदमी, जो बुद्ध को अंतिम भोजन देता है। ये दो आदमी श्रेष्ठतम हैं। बुद्धों के बाद बस इन्हीं की गणना है। तो जिसने मुझे अंतिम भोजन दिया है, उसका स्वागत-समारंभ करना।
मरते वक्त यह कह कर मरे। ताकि कोई उस गरीब आदमी को चोट न पहुंचा सके!
यह जहर से अमृत खोज लेने की कला है।
नहीं, हंसों को तुम जहर भी दो तो उसमें से मोती ही चुनेंगे। हंसों को तुम पत्थर भी दो तो उनमें से मोती खोज लेंगे। क्योंकि मोती सब जगह छुपे हैं, देखने वाली आंख चाहिए; बस द्रष्टा की आंख चाहिए तो सारा जगत मोतियों से भरा है, क्योंकि सारा जगत परमात्मा से व्याप्त है। और द्रष्टा की आंख न हो तो कहीं कोई मोती नहीं, क्योंकि कहीं कोई परमात्मा नहीं।
अंधे के लिए कहीं कोई सूरज नहीं, कहीं कोई चांद-तारे नहीं। आंख वाले
के लिए अंधेरे में भी रोशनी है। मैं भीतर की आंख की बात कर रहा हूं। उसी को मैं आंख वाला कहता हूं। उसे अंधेरे में भी रोशनी है। अंधे के लिए, मूर्च्छित के लिए, बेहोश के लिए--जीवन भी मृत्यु है। और जाग्रत के लिए मृत्यु भी महाजीवन है।
आज इतना ही।

काहे होत अधीर
सातवां प्रवचन

साहिब से परदा न कीजै

बनत बनत बनि जाई, पड़ा रहै संत के द्वारे।।
तन मन धन सब अरपन कै कै, धका धनी के खाय।
मुरदा होय टरै नहिं टारै, लाख कहै समुझाय।
स्वान-बिरति पावै सोई खावै, रहै चरन लौ लाय।
पलटूदास काम बनि जावै, इतने पर ठहराय।।

मितऊ देहला न जगाए, निंदिया बैरिन भैली।।
की तो जागै रोगी, की चाकर की चोर।
की तो जागै संत बिरहिया, भजन गुरु कै होय।।
स्वारथ लाय सभै मिलि जागैं, बिन स्वारथ न कोय।
पर स्वारथ को वह नर जागै, किरपा गुरु की होय।।
जागे से परलोक बनतु है, सोए बड़ दुख होय।
ज्ञान-खरग लिए पलटू जागै, होनी होय सो होय।।

को खोलै कपट-किवरिया हो, बिन सतगुरु साहिब।।
नैहर में कछु गुन नहिं सीख्यो, ससुरे में भई फुहरिया हो।।
अपने मन की कुलवंती, छुए न पावै गगरिया हो।।
पांच पचीस रहै घट भीतर, कौन बतावै डगरिया हो।।
पलटूदास छोड़ि कुल जतिया, सतगुरु मिले संघतिया हो।।

साहिब से परदा न कीजै, भरि-भरि नैन निरखि लीजै।।
नाचै चली घूंघट क्यों काढ़ै, मुख से अंचल टारि दीजै।।
सती होय का सगुन बिचारै, कहि के माहुर क्या पीजै।।
लोक-बेद तन-मन की डर है, प्रेम-रंग में क्या भीजै।।
पलटूदास होय मरजीवा, लेहि रतन नहिं तन छीजै।।

पूरा शहर उदास है, हम किस तरह हंसें
मौसम भी बदहवास है, हम किस तरह हंसें
सदियों से उठ रहा था यहां एक जलजलाअब
दिल के आस-पास है, हम किस तरह हंसें
जिसने जला दिया है चमन, आशियां, सहन
उसकी हमें तलाश है, हम किस तरह हंसें वह कौन मर गया है सरेआम इस तरह
सड़कों पर पड़ी लाश है, हम किस तरह हंसें दहशत से भर गया है यह ताजा खिला गुलाब
सहमा हुआ पलाश है, हम किस तरह हंसें
फिर से उगा है चांद किसी जख्म की तरह
बिल्कुल वही तराश है, हम किस तरह हंसें
पूरा शहर उदास है, हम किस तरह हंसें
मौसम भी बदहवास है, हम किस तरह हंसें
संसार उदास है। लाख लोग मुखौटे लगा लें हंसी के, आंसू छिपाए छिपते नहीं हैं। लाख आभूषण पहन लें सौंदर्य के, हृदय घावों से भरा है। इस संसार में कांटे ही कांटे हैं। फूल तो केवल वे ही देख पाते हैं जो स्वयं फूल बन जाते हैं। इस संसार में कांटे ही कांटे हैं, क्योंकि हम अभी कांटे हैं। जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि। तुम्हें वही मिलता है जो तुम हो। उससे ज्यादा मिलना असंभव है। तुम्हारी पात्रता के अनुकूल मिलता है। तुम्हारे पात्र अभी आंसू ही सम्हाल सकते हैं। इसलिए अमृत की आकांक्षा भला करो, आकांक्षा कोरी की कोरी रह जाएगी। अमृत पाने के लिए अपने पात्र को निखारना होगा, साफ करना होगा, अमृत के योग्य बनाना होगा।

प्रभु को तो पुकारते हो, मगर उस अतिथि के लिए बिठाओगे कहां? घर में कोई उसके बिठाने योग्य सिंहासन भी तो नहीं है। वह द्वार पर आकर खड़ा हो जाएगा तो और भी तड़पोगे। कहोगेः आज ही घर में बोरिया न हुआ! सिंहासन तो दूर, बिछाने के लिए बोरिया भी नहीं होगा।
परमात्मा को पुकारना हो तो पुकार के पहले हृदय की एक तैयारी चाहिए; हृदय में एक धार चाहिए, निखार चाहिए। हृदय में एक उत्सव चाहिए, वसंत चाहिए। हृदय गुनगुनाता हुआ हो, प्राण नाचते हुए हों। सारे द्वार-दरवाजे खुले हों कि आएं सूरज की किरणें और नाचें, कि हो बरसा की बूंदाबांदी, कि आए पवन।
प्रकृति के लिए खुलो तो परमात्मा के लिए खुल सकोगे, क्योंकि परमात्मा प्रकृति में ही छिपा है। प्रकृति उसका ही आवरण है, उसका ही घूंघट है। लेकिन हम प्रकृति के लिए भी बंद हैं और परमात्मा के लिए भी बंद हैं। हम प्रेम के लिए ही बंद हैं, इसलिए हमारी सारी प्रार्थनाएं झूठी हो जाती हैं। हम करते हैं प्रार्थना मंदिर में, मस्जिद में, गुरुद्वारे में, गिरजे में-- पर सब झूठा, दिखावा, औपचारिक, तोतों की तरह सिखाए गए शब्द। तुम्हारे हृदय से नहीं उठती है तुम्हारी प्रार्थना। तुम्हारे प्राणों की अभिव्यक्ति नहीं है उसमें। और जिसमें तुम्हारे प्राण समाहित न हों वह प्रार्थना परमात्मा तक नहीं पहुंचेगी--नहीं कभी पहुंची है, नहीं कभी पहुंच सकती है। जिस प्रार्थना में तुम्हारे प्राण ढल जाते हैं, उसे पंख मिल जाते हैं। लेकिन हमने एक थोथा संसार बसा रखा है। भीतर रोते रहते हैं, बाहर हंसते रहते हैं। भीतर घाव हैं, बाहर फूल सजा लिए हैं। भीतर दुर्गंध उठती है, ऊपर से इत्र छिड़क लेते हैं। दूसरों को धोखा हो जाए भला, तुम खुद कैसे धोखा खा जाते हो, यह आश्चर्य है। दूसरे तुम्हारे आंसू न देख पाएं और तुम्हारी मुस्कुराहटों पर भरोसा कर लें, लेकिन तुम कैसे अपनी मुस्कुराहटों पर भरोसा कर लेते हो?
लेकिन लोगों ने भरोसा कर लिया है। जब दूसरे तुम पर भरोसा कर लेते हैं
तो तुम सोचते होः जब इतने लोग भरोसा करते हैं तो बात ठीक ही होगी। तुम अपने चेहरे को सीधा जानने का उपाय ही नहीं जानते; दर्पण में देखते हो। दर्पण में देख कर मुस्कुराते हो। दर्पण बेचारा क्या करे? तुम मुस्कुराते हो तो मुस्कुराती छवि दिखा देता है। दर्पण में मुस्कुरा कर तुम सोच लेते हो कि बड़े खुश हो।
दूसरों की आंखें बस दर्पण हैं। और दूसरों को पड़ी भी क्या कि तुम्हारे अंतस को कुरेदें! अपने ही आंसू तो सम्हलते नहीं हैं, तुम्हारे आंसुओं की झंझट और कौन ले! इसलिए हमने एक शिष्टाचार का जगत बनाया है, जहां दुखों को हम दबाते हैं और झूठे सुखों को प्रकट करते हैं। शिष्टाचार का इतना ही अर्थ है कि दूसरे वैसे ही दुखी हैं, अब अपना दुख उन्हें और क्या दिखाना! अपना दुख छिपाओ। झूठे मुस्कुराओ। झूठ के फूल खिलाओ। यही दूसरे कर रहे हैं; वे भी अपना दुख छिपा रहे हैं और झूठे फूल खिला रहे हैं। इससे एक बड़ी भ्रांति पैदा हुई हैः सभी लोग मुस्कुराते और आनंदित मालूम होते हैं! और तब एक संदेह मन में उठता हैः शायद मुझे छोड़ कर और सारे लोग आनंदित हैं। अब अपनी व्यथा भी कहो तो किससे कहो! और व्यथा कहने से सिर्फ मूढ़ता ही पता चलेगी। जिस दुनिया में सारे लोगों ने सुखी होने का आयोजन कर लिया है, उसमें मैं ही नहीं कर पाया आयोजन! इससे पीड़ा होगी, हीनता होगी। इससे अहंकार को चोट लगेगी। अच्छा यही है, चार दिन की जिंदगी है, किसी तरह हंस कर गुजार दो। मत रोओ। मत कहो किसी से अपनी पीड़ा।
और इस झूठ में जीना संसार में जीना है। इस झूठ को तोड़ देना और सच्चे हो जाना संन्यास है। संन्यास जंगल भाग जाना नहीं है। संन्यास है प्रामाणिक हो जाना; जैसे हो वैसे ही। नहीं कोई आवरण, नहीं कोई आभूषण, नहीं कोई मुखौटे। झूठ के सारे परिधान उतार देना संन्यास है। जैसे हो--नग्न! जैसे भी हो--बुरे-भले, दुखी-पीड़ित, निष्कपट भाव से अपने को वैसा ही प्रकट कर देना। और एक क्रांति शुरू हो जाती है--एक अदभुत क्रांति! क्योंकि जिन चीजों को हम छिपाते हैं, वे बच जाती हैं।
यह जीवन का शाश्वत नियम हैः जिन्हें हम छिपाते हैं वे बच जाती हैं और जिन्हें हम प्रकट कर देते हैं वे कपूर की तरह उड़ जाती हैं। आंसुओं को

दबाओगे, छाती में भरे रह जाएंगे। धीरे-धीरे तुम्हारी छाती सिर्फ आंसुओं ही आंसुओं से भर जाएगी। तुम्हारे पास आत्मा नहीं बचेगी, आंसुओं का एक अंबार बचेगा। बह जाने दो आंसुओं को आंखों से; उड़ जाएंगे; और तुम आंसुओं से मुक्त और तुम आंसुओं से रिक्त पीछे छूट जाओगे। आंसुओं के हटते ही, आंसुओं के जाते ही, आंसुओं के बहते ही--आंखें स्वच्छ और निर्मल हो जाएंगी।
लेकिन अब तक मनुष्य ने एक झूठा व्यवहार आरोपित किया है। और उस झूठ के कारण करोड़ों लोग आनंद से वंचित हैं। और धर्म के नाम पर भी वही झूठ चलता है; और भी ज्यादा चलता है। अधार्मिक आदमी में तो थोड़ी प्रामाणिकता भी होती है; धार्मिक आदमी में उतनी प्रामाणिकता भी नहीं होती। वह सांसारिक झूठ ही नहीं बोलता, आध्यात्मिक झूठ भी बोलता है।
तुमसे कोई पूछता है, ईश्वर है? और तुम कहते हो, हां है। न तुमने जाना, न तुमने देखा, न तुमने पहचाना और तुम कह देते हो--है! तुम आध्यात्मिक झूठ बोल रहे हो। सांसारिक झूठ क्षम्य हैं; आध्यात्मिक झूठ क्षम्य भी नहीं। यह तो झूठ की पराकाष्ठा हो गई। तुमने परमात्मा को भी अपने झूठ से न बचने दिया! या कि हो सकता है तुम कहो--नहीं है। तब भी तुम झूठ बोल रहे हो। क्या तुमने खोजा और पाया कि नहीं है? क्या तुमने खोज लिए अस्तित्व के सारे आयाम और पाया कि परमात्मा नहीं है? नहीं, तुमने खोजे नहीं सारे आयाम।
यहां मार्क्स भी झूठा है, जो कहता है--ईश्वर नहीं है। क्योंकि न कभी ध्यान किया, न कभी प्रार्थना की। किस बलबूते पर मार्क्स कहता है कि ईश्वर नहीं है? सिर्फ तर्क के आधार पर। तर्क से ईश्वर का क्या लेना-देना है? तर्क तो वेश्या है, किसी के भी साथ हो लेता है। और तर्क तो बड़ा चालबाज है। तर्क तो वकील है। जो भी तर्क को समझा ले, बुझा ले, उसके साथ हो लेता है। और तर्क तो बड़े रास्ते निकाल लेता है। मार्क्स केवल तार्किक अर्थों में कह रहा है कि ईश्वर नहीं है, क्योंकि तर्क से ईश्वर सिद्ध नहीं होता।
और महात्मा गांधी में भी कुछ भेद नहीं है; उन्होंने भी ध्यान नहीं किया है। और जिसको वे प्रार्थना कहते थे, प्रार्थना नहीं है, केवल तोतारटंत है। लाख दोहराओः अल्ला-ईश्वर तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान। तुम्हारे दोहराने से कुछ भी नहीं होगा। काश, इतना आसान होता! ईश्वर को नहीं जाना है; वह भी तर्क से ही माना है। तर्क--कि जब इतना विराट जगत है तो कोई बनाने वाला होगा। यह भी तर्क है। और मार्क्स कहता है कि अगर इस जगत को बनाने वाला कोई है तो फिर उसको भी बनाने वाले की जरूरत होगी।
ऐसे तो अंत ही न आएगा। जगत को परमात्मा ने बनाया, और उसको किसी और परमात्मा ने बनाया, और उसको किसी और परमात्मा ने बनाया--अंत कहां होगा? जहां भी रुकना चाहेंगे, सवाल उठेगाः इसको किसने बनाया? तो इतनी व्यर्थ की यात्रा पर क्यों जाना, सीधी बात क्यों स्वीकार नहीं करते कि जगत अनबना है, किसी ने बनाया नहीं? यह भी तर्क है। तर्क के बड़े जाल हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन से उसका मित्र चंदूलाल कह रहा था कि नसरुद्दीन, हद
हो गई! जो मैंने सुना, भरोसा तो नहीं आया लेकिन भरोसा करना पड़ता है, क्योंकि विश्वस्त सूत्रों से सुना कि कल रात तुम ट्रेन में पकड़े गए एक बिल्कुल पूर्ण अजनबी स्त्री से प्रेम करते हुए।
नसरुद्दीन ने कहा, यह सरासर झूठ है! इस संसार में कोई भी पूर्ण नहीं है।
तर्क देखते हो! बचने का उपाय देखते हो! कैसा दामन को बचा कर निकल गया। तर्क से वही सिद्ध हो सकता है, वही असिद्ध हो सकता है; इसलिए तर्क का भरोसा न करना।
ईश्वर को खोजना होता है अनुभव से। और अनुभव केवल उन्हें ही मिल सकता
है जो अपने जीवन से सारे झूठों के जाल छोड़ दें। झूठ के जाल में अनुभव की मछली न कभी फंसी है, न कभी फंसती है। और सत्य का कोई जाल नहीं होता और अनुभव की मछली अपने आप चली आती है। सत्य का एक आकर्षण है। सत्य का एक अदम्य चुंबकीय आकर्षण है। सत्य का कोई जाल नहीं होता; सिर्फ महिमा होती है, प्रसाद होता है, गरिमा होती है, प्रकाश होता है। सत्य की किरणें खींच लाती हैं परमात्मा को तुम्हारे पास।
पहला पाठ धर्म का है कि अपने जीवन से पाखंड तोड़ो। और यही बात तथाकथित धार्मिकों को सबसे ज्यादा कठिन मालूम पड़ती है, क्योंकि उनका जीवन तो पूरा

का पूरा पाखंड है। पाखंड का अर्थ हैः जो तुम नहीं जानते हो वह जबरदस्ती अपने पर थोपे जा रहे हो।
सच्चा धार्मिक खोजी शून्य से शुरू करता है और पूर्ण पर पहुंच जाता है। शून्य से शुरू करो यात्रा; विश्वास से नहीं, शून्य से। न आस्तिक, न नास्तिक; न हिंदू, न मुसलमान; न ईसाई, न जैन; न बौद्ध, न पारसी--शून्य से शुरू करो यात्रा। न भारतीय, न पाकिस्तानी; न चीनी, न जापानी--शून्य से करो यात्रा। न गोरे, न काले; न स्त्री, न पुरुष--शून्य से करो यात्रा। न आस्तिक, न नास्तिक। सारी धारणाओं को हटा दो, चित्त को धारणाओं से मुक्त कर लो, क्योंकि सभी धारणाएं उधार हैं। और जो भी उधार है, उससे नगद परमात्मा नहीं पाया जा सकता।
परमात्मा नगद है; तुम्हारा ज्ञान उधार है। अगर तुम अपनी सारी धारणाओं
को हटा सको और अपने हृदय के पात्र को शून्य बना सको--उसी को मैं पात्र की तैयारी कह रहा हूं--तो तुम्हारे भीतर का आकाश परमात्मा को झेलने को राजी हो जाएगा, योग्य हो जाएगा। परमात्मा को तो पुकारते हो, लेकिन तुम तैयार नहीं हो; परमात्मा आना भी चाहे तो कैसे आए?

जीवन में कोई मिलके बिछड़ जाए तो क्या हो
विश्वास का उद्यान उजड़ जाए तो क्या हो
छोटी सी लहर से ही विचारों के भंवर में
संदेह का तूफान उमड़ जाए तो क्या हो
इज्जत से शुरू होके जो पैसे पे खतम हो
उस दौड़ में इनसान पिछड़ जाए तो क्या हो सड़कों ने जो देखी हो दीवारों ने सुनी हो
वह बात हर एक कान में पड़ जाए तो क्या हो
आंगन में बुढ़ापे के जो बचपन से पली हो
वह उम्र बिना पंख के उड़ जाए तो क्या हो
जो भूली हुई यादों के जख्मों में दबा हो
वह दर्द बिना बात के बढ़ जाए तो क्या हो
आंगन में बुढ़ापे के जो बचपन से पली हो! तुम जिस दिन से पैदा हुए हो, उसी दिन से मर रहे हो। जागो! सावचेत हो जाओ!
आंगन में बुढ़ापे के जो बचपन से पली होवह उम्र बना पंख के उड़ जाए तो क्या हो
और यह उम्र उड़ ही जाएगी, बिना पंख के ही उड़ जाएगी। आज है, कल का कुछ भरोसा नहीं। और अगर इस उम्र को तुमने धन-पद-प्रतिष्ठा को ही पाने में लगा दिया, तो तुमने प्रमाण दिया कि तुम्हारे भीतर प्रतिभा न थी। जहां हीरे इकट्ठे किए जा सकते थे, वहां तुम कंकड़-पत्थर बीनते रहे--रंगीन, रंग-बिरंगे। मगर थे वे पत्थर। जिस जीवन में श्रद्धा का जन्म हो सकता है, उसमें तुम विश्वास ही पा सके। विश्वास यानी झूठी श्रद्धा। शब्दकोश में तो लिखा है कि श्रद्धा और विश्वास पर्यायवाची हैं; जीवन के कोश में पर्यायवाची नहीं हैं। श्रद्धा आत्म-अनुभव है, अपनी आंखों देखी बात है। लिखालिखी की है नहीं, देखादेखी बात। और विश्वास? अपनी आंखों देखी बात नहीं है; औरों ने देखी, औरों से सुनी, तुमने मानी। जैसे अंधा आदमी मान ले कि प्रकाश है, वह विश्वास। आंख वाला आदमी प्रकाश पर विश्वास नहीं करता; उसकी श्रद्धा होती है; जानता है कि है। बहरा संगीत को मान ले तो विश्वास। कान वाले को मानना नहीं पड़ता।
पंडित-पुरोहित तुम्हें सिखाते हैंः विश्वास करो! क्योंकि तुम अंधे रहो, यह उनके हित में है; तुम बहरे रहो, यह उनके हित में है; तुम सोए रहो, यह उनके हित में है। तुम जाग जाओ, यह खतरनाक है। क्योंकि जैसे ही तुम जागे, पंडित-पुरोहित की जरूरत न रही। जैसे ही तुम जागे, परमात्मा और तुम्हारे बीच किसी की जरूरत न रही--किसी दलाल की, किसी मध्यस्थ की। दलाल और मध्यस्थ तभी तक जरूरी हैं जब तक तुम सोए हो, अंधे हो, बहरे हो। पंडित-पुरोहित तुम्हारे बहरेपन पर, तुम्हारे अंधेपन पर जी रहे हैं। उनका सारा व्यवसाय तुम्हारी बंद आंखों पर टिका है। वे तुम्हें विश्वास देते हैं और श्रद्धा से बचाते हैं।

सदगुरु वह है जो तुम्हें श्रद्धा दे और विश्वास से बचाए। विश्वास से बचाने का अर्थ हैः जो तुम्हें जगाए इस सत्य के प्रति कि सत्य दूसरों से नहीं मिलता है, स्वयं खोजना पड़ता है। प्राणों को निखारना पड़ता है, अग्नि से गुजारना पड़ता है, तब सत्य उपलब्ध होता है। सत्य ऐसा औरों से मिल जाता, इतना सस्ता होता, तो दुनिया में सभी के पास सत्य होता। फिर कभी-कभार कोई बुद्ध न होता, बुद्ध ही बुद्ध होते। उपनिषदों में सत्य तो लिखा है; लेकिन तुम कंठस्थ कर लो, तुम सोचते हो तुम्हें सत्य मिल जाएगा? कुरान में सत्य लिखा है; तुम कुरान का रोज-रोज पाठ करते रहो, सोचते हो तुम्हें सत्य मिल जाएगा? गुरुग्रंथ में सत्य लिखा है; तुम गुरुग्रंथ पढ़ते-पढ़ते बिल्कुल शब्दशः दोहराने में समर्थ हो जाओ, क्या तुम सोचते हो तुम्हें सत्य मिल जाएगा?
सत्य तो अपने भीतर पहले खोजना होता है। जो अपने भीतर देख लेता है, उसे कुरान में भी मिल जाता है और बाइबिल में भी और धम्मपद में भी और गीता में भी और गुरुग्रंथ में भी। और जो अपने भीतर उसे नहीं खोज पाता, वह केवल विश्वास करता है। विश्वास दो कौड़ी का है। विश्वास की नाव में तुम जीवन के सागर से पार न हो सकोगे। यह नाव कागज की है, क्योंकि यह नाव किताबों से बनी है, किताबें कागज से बनी हैं। तुम्हारे गुरुग्रंथ, कुरान और गीता, सब कागज से बने हैं। उन्हीं कागजों की नाव में बैठ कर तुम सोचते हो सागर को पार कर लोगे? डूबोगे! बुरी तरह डूबोगे!
मैं तुम्हें डूबते देखता हूं। कोई गीता की नाव में डूब रहा है, कोई कुरान की नाव में डूब रहा है, कोई बाइबिल की नाव में डूब रहा है। अलग-अलग उनकी नावें हैं, लेकिन सब एक ही कागज से बनी हैं। इसलिए मुझे हिंदू में, मुसलमान में, ईसाई में कुछ भेद नहीं दिखाई पड़ता; क्योंकि सभी कागज की नावों में डूब जाते हैं। हां, किसी की कागज की नाव पर अरबी में लिखावट है और किसी की कागज की नाव पर हिब्रू की लिखावट है और किसी की कागज की नाव पर संस्कृत की लिखावट है। मगर ये लिखावटें बचाएंगी तुम्हें? श्रद्धा बचाती है; विश्वास डुबा देता है।
और ध्यान रखना, विश्वास कभी भी संदेह से मुक्त नहीं होता। हर विश्वास
के भीतर संदेह जलता रहता है। जलेगा ही। सीधी बात है। तुमने मान लिया, अंधे हो और मान लिया कि प्रकाश है। लेकिन तुम्हारे प्राण तो कहते रहेंगेः कौन जाने हो या न हो! आखिर दूसरा सच बोलता है, इसका प्रमाण क्या? दूसरा धोखा दे रहा हो। दूसरे का कोई स्वार्थ छिपा हो। दूसरा प्रकाश की बातें करके लूटने का आयोजन कर रहा हो मुझे। दूसरा प्रकाश की बातें सिर्फ मुझे अंधा सिद्ध करने को कर रहा हो। इसका प्रमाण क्या है कि दूसरा बेईमान नहीं है? अपनी आंख न खुले तो संदेह बना रहेगा।
जीवन में कोई मिलके बिछड़ जाए तो क्या होविश्वास का उद्यान उजड़ जाए तो क्या हो
और विश्वास का उद्यान उजड़ेगा ही। उजड़ता ही है देर-अबेर। और जितनी जल्दी उजड़ जाए उतना अच्छा है, क्योंकि विश्वास का उद्यान उजड़ जाए तो शायद तुम श्रद्धा के बीज बोओ।
छोटी सी लहर से ही विचारों के भंवर में
संदेह का तूफान उमड़ जाए तो क्या हो
मगर उमड़ता ही है। जब भी तुम विश्वास करोगे, संदेह का तूफान उमड़ेगा। अगर तुम्हें संदेह से मुक्त होना है तो मैं तुम्हें सीधी राह बताता हूंः विश्वास से मुक्त हो जाओ, तुम संदेह से मुक्त हो जाओगे। सारे विश्वास छोड़ दो और तुम्हारे भीतर संदेह की लकीर भी न बचेगी।
कृष्ण ने कहा हैः संशयात्मा विनश्यति। वह जो संशय से भरा हुआ है, विनष्ट हो जाता है।
पंडित इसका अर्थ करते हैंः विश्वास करो, संशय नहीं। और मैं इसका अर्थ करता हूंः विश्वास मत करना, क्योंकि हर विश्वास के पीछे संशय पैदा होता है। जितने विश्वास उतने संशय। अगर संशय से बचना हो, सारे विश्वास छोड़ दो, फिर कैसे संशय पैदा होगा? संशय के लिए आधार चाहिए। संदेह के लिए विश्वास चाहिए। यह बात तुम्हें बहुत उलटी लगेगी। मेरी बातें तुम्हें बहुत बार उलटी लगेंगी, लेकिन अगर जरा शांति से विचार करोगे तो तुम्हें बात बहुत साफ

दिखाई पड़ जाएगी। उलटी लगती है इसलिए कि तुम्हें सदियों तक कुछ-कुछ कहा गया है। सदियों ने तुम्हें बिगाड़ा है।
मुल्ला नसरुद्दीन पर अदालत में मुकदमा चला। मुकदमा बड़ा हैरानी का था। उसकी पत्नी उसके ही आगे कार चला रही थी और वह अपनी कार में पीछे आ रहा था और पत्नी से आकर पीछे से टक्कर हो गई। मजिस्ट्रेट ने कहा, नसरुद्दीन, किसी और से भी टकराते तो ठीक था, अपनी ही पत्नी पर तो दया करते! और तुम्हारी पत्नी कहती है कि उसने हाथ दिखाया था कि वह बाएं मुड़ना चाहती है। फिर भी तुम समझे नहीं?
नसरुद्दीन ने कहा, उसी हाथ की वजह से तो यह मुकदमा हुआ। न वह हाथ दिखाती, न झंझट होती। मैं मेरी पत्नी को जानता हूं। उलटी खोपड़ी है। जब उसने बाएं मुड़ने के लिए हाथ दिखाया तो मैं समझा कि दाएं मुड़ेगी अब। वह बाईं तरफ जो हाथ दिखाना था वही तो दुर्घटना का कारण बना। न यह दुष्ट बाईं तरफ हाथ दिखाती, न मैं धोखे में आता। इसे मैं भलीभांति जानता हूं। बीस वर्षों का सत्संग चल रहा है इससे। यह पहला मौका है कि इसने बाईं तरफ हाथ दिखाया और बाईं तरफ मुड़ी।
सदियों से तुम्हें एक पाठ सिखाया जा रहा है। तुम्हारे खून में मिल गया है, तुम्हारी हड्डियों में समा गया है--विश्वास करो! क्योंकि विश्वास से तुम संदेह से मुक्त हो जाओगे।
इससे बड़ा झूठ दुनिया में दूसरा नहीं है। विश्वास तो तुम कर रहे हो, संदेह से कहां मुक्त हुए हो? हर विश्वास संदेह ले आता है। जितने विश्वास उतने ज्यादा संदेह, क्योंकि एक विश्वास और दस संदेह ले आता है।
जिस आदमी ने ईश्वर पर विश्वास नहीं किया, क्या ईश्वर पर संदेह कर सकता है? जिस आदमी ने आत्मा पर विश्वास नहीं किया, क्या आत्मा पर संदेह कर सकता है? संदेह का पहला चरण है विश्वास। पहले विश्वास करो, फिर संदेह हो सकता है।
मैं कृष्ण से राजी हूंः संशयात्मा निश्चित विनष्ट हो जाता है। लेकिन संशय को कैसे विनष्ट करें? विश्वास से संशय विनष्ट नहीं होता। विश्वास को जाने दो और उसके साथ ही संशय की छाया भी चली जाती है। संशय विश्वास की छाया है। न संशय है, न विश्वास--उस अवस्था को मैं शून्य कह रहा हूं। उस अवस्था को मैं ध्यान कहता हूं--जब तुम्हारे भीतर न विश्वास है, न संशय है; जब तुम कहते हो, अभी मैं जानता ही नहीं तो कैसे निर्णय लूं? पक्ष में या विपक्ष में कैसे कुछ कहूं? अभी मैं चुप ही रहूंगा, कुछ न कहूंगा। अभी मैं हाथ खाली रखूंगा, कुछ भी न पकडूंगा। जब तक मैं न जान लूंगा, तब तक नहीं पकडूंगा। और मजा यह है कि जो जान लेता है उसे पकड़ना नहीं पड़ता। जो जान लिया वह तुम्हारा हो जाता है; तुम पकड़ो, न पकड़ो, सवाल ही नहीं उठता। जो जान लिया वह तुम्हारे प्राणों का अंग हो जाता है। उस जानने को मैं श्रद्धा कहता हूं।
श्रद्धा आत्मबोध है। विश्वास दूसरों के द्वारा सिखाई गई बात है।
इस दुनिया में बहुत संदेह है, क्योंकि इस दुनिया में पंडित-पुरोहितों
ने बहुत विश्वास फैलाया है। सदगुरु वह है जो तुम्हें विश्वास से मुक्त कर दे, संशय से मुक्त कर दे और तुम्हारे भीतर प्राणों में एक ऐसी अभीप्सा जगा दे कि सत्य को जानना है! मुझे जानना है! स्वयं जानना है!
बुद्ध ने कहा हैः अप्प दीपो भव! अपने दीये स्वयं बनो।
तुमने अभी जो बनाया है, जो घर, बड़ा झूठा है।

रेत की छत है और पानी की दीवारें हैं।
कितने मजबूत बने आशियां हमारे हैं।
एक गुमशुदगी की वीरानी है घेरे हमको,
हम हैं महफूज कि इतने बड़े सहारे हैं।
पीठ पर बेंत के निशां हैं, पांव में छाले, जिस्म तनता है और घाव इतने सारे हैं।
रोशनी के इस किले पर हमें है नाज बहुत, जिसकी दीवार में पड़ने लगी दरारें हैं।
दिल की बस्ती में ठहरते नहीं हैं दो दिन भी, ख्वाब की शक्ल में कुछ घूमते बनजारे हैं।

रेत की छत है और पानी की दीवारें हैं।
कितने मजबूत बने आशियां हमारे हैं।
जरा गौर तो करो, तुमने कैसे घर बनाए हैं रहने के लिए!
रेत की छत है और पानी की दीवारें हैं।
कितने मजबूत बने आशियां हमारे हैं।
फिर अगर तुम्हारा जीवन व्यर्थ हो जाए तो आश्चर्य तो नहीं है। मृत्यु
आए और तुम्हें खाली हाथ पाए तो कुछ आश्चर्य तो नहीं है। मृत्यु आए और फिर तुम पछताओ... लेकिन पछताने से क्या होगा? फिर तो समय नहीं बचा। और जो भूलें तुमने इस जीवन में दोहराई हैं, वही भूलें तुम अगले जीवन में दोहराओगे, क्योंकि बार-बार दोहराने से भूलों को दोहराने की आदत हो गई है।
अभी जागो! और जागने का एक ही उपाय हैः किसी जागे हुए के साथ प्रेम कर लो; किसी जागे हुए के साथ मुहब्बत कर लो; किसी जागे हुए का हाथ पकड़ लो। पलटू के सूत्रः बनत बनत बनि जाई, पड़ा रहै संत के द्वारे।
जो जाग गया है उसके द्वार को मत छोड़ना, तो बनते-बनते बात बन ही जाएगी।
देर भला लगे, अंधेर नहीं है। और देर भी लगती है तो तुम्हारे कारण लगती है, क्योंकि तुम अपने कूड़ा-करकट को बड़ी मुश्किल से छोड़ते हो। छूटते-छूटते ही छूट पाता है। बचा-बचा लेते हो। एक दरवाजे से फेंकते हो, दूसरे दरवाजे से भीतर ले आते हो।
बनत बनत बनि जाई, पड़ा रहै संत के द्वारे।
प्यारा सूत्र है! पलटू कहते हैं, बनते-बनते बात बन जाती है। एक शर्त पूरी करनाः संत के द्वार पर पड़े रहना। अगर कहीं पा जाओ कोई बुद्ध, अगर पा जाओ कहीं कोई कृष्ण, अगर पा जाओ कहीं कोई जीसस, कोई मोहम्मद--तो छोड़ना मत। हालांकि तुम्हारी बुद्धि छोड़ने के लिए बहुत तरह के आयोजन करेगी। तुम्हारा तर्क बहुत तरह के संदेह, भ्रम पैदा करेगा। तुम्हारा मन अपने को बचाने की सब चेष्टाएं करेगा, क्योंकि गुरु के द्वार पर पड़े रहे, पड़े रहे, तो मन की मौत निश्चित है। और जहां मन मरता है, वहीं से तुम्हारे जीवन की शुरुआत है।
साधारणतः तो हालत उलटी है। तुम तो मन ही से जीते हो, मन को ही जीवन मानते हो।
मुल्ला नसरुद्दीन पर एक अदालत में मुकदमा था। मजिस्ट्रेट ने पूछा, मुल्ला, तुम्हारी उम्र कितनी है?
मुल्ला ने कहा, तीस साल।
मजिस्ट्रेट चौंका। पचास से कम नहीं मालूम होता। उसने अपना चश्मा निकाला, चश्मा पोंछा, गौर से देखा और कहा, नसरुद्दीन, पहली तो बात यह कि जहां तक मुझे याद है, दस साल पहले भी तुम मेरी अदालत में आए थे और तब भी तुमने कहा था तुम्हारी उम्र तीस साल है और अभी भी तीस साल?
नसरुद्दीन ने कहा, आपके मन में एक बात है, मेरी तरफ से दो जवाब हैं। पहला तो यह कि मैं बात का पक्का आदमी हूं, जो एक दफा कह दिया सो कह दिया। हालांकि मैं हिंदू नहीं हूं, लेकिन बाबा तुलसीदास में मेरा बड़ा भरोसा हैः रघुकुल रीति सदा चलि आई, प्राण जाएं पर वचन न जाई। एक दफा वचन दे दिया सो दे दिया। अब लाख ढंग से पूछो, हमेशा तीस साल ही कहूंगा। और दूसरी बात कि सचाई भी यही है कि मेरी उम्र तीस ही साल है। क्योंकि तीस साल में मेरी शादी हुई, उसके बाद क्या उम्र गिनना! उसके पहले उम्र थी, उसके पहले जीवन था।
लोग तो मन की उच्छृंखलताओं को ही जीवन समझते हैं। मन की आपाधापी को, दौड़-धूप को, वासना को, तृष्णा को, मन की कामना को--उसे ही जीवन समझते हैं। जैसे ही जवानी जाने लगती है और मन थोड़ा शिथिल पड़ने लगता है, लोग डरने लगते हैं कि अब मौत आई। और गुरु के द्वार पर तो मन को एकदम ही अर्पित कर देना होता है। गुरु के द्वार पर पड़े रहने का अर्थ हैः छोड़ो मन का द्वार, पकड़ो गुरु का द्वार। संघर्ष होगा मन में और गुरु में। तुम्हें चुनना होगा। मन को चुनोगे तो संसार को चुन लोगे; गुरु को चुनोगे तो मोक्ष तुम्हारा है। और बनते-बनते ही बात बनती है, जल्दी मत करना। काहे होत अधीर! अधीर मत हो जाना। यह मत कहना कि एक दिन हो गया, दो दिन हो गए, तीन दिन हो गए, गुरु-द्वार पर पड़ा हूं और अभी तक कुछ भी नहीं हुआ!
बनत बनत बनि जाई, पड़ा रहै संत के द्वारे।

तन मन धन सब अरपन कै कै, धका धनी के खाय।
और मुसीबत और भी है कि गुरु धक्के मारेगा कि भागो। गुरु हजार तरह से धकाएगा कि रस्ते पर लगो। जो दुकानदार हैं वे तो फुसलाएंगे कि टिक जाओ, यहीं रह जाओ, रात यहीं विश्राम करो; लेकिन गुरु बहुत चोटें करेगा, तिलमिला- तिलमिला देगा। ऐसा मारेगा कि चिनगारियां छूट जाएंगी। तोड़ेगा, जैसे मूर्तिकार पत्थर को तोड़ता है छैनी और हथौड़े को लेकर, ऐसे तुम्हारे अनगढ़ पत्थर को तोड़ेगा तो ही तुम्हारे भीतर मूर्ति प्रकट हो सकेगी। छिपी है, मगर प्रकट होने के लिए बहुत सा व्यर्थ असार काटना होगा। गुरु करुणावश कठोर होगा।
पंडित-पुरोहित तो तुम्हारे पैर दाबेंगे, तुम्हारी खुशामद करेंगे, तुम्हारी स्तुति करेंगे; तुम्हारी ही नहीं, तुम्हारे मर गए बाप-दादों की भी! तुम अगर प्रयाग जाओ तो तुम वहां पंडों के पास खाते-बही पाओगे, जिनमें तुम्हारे बाप और बाप के बाप और उनके बाप के बाप, उन सब की प्रशंसाएं लिखी हैं। वे सब तुम्हारे अहंकार पर मक्खन लगा रहे हैं। उसी लिए खाते-बही सम्हाल कर रखे गए हैं। बाप-दादे तो मर गए, मगर उनके नाम सम्हाल कर रखे गए हैं, क्योंकि तुम भी उसी सिलसिले के हिस्से हो। तुम्हारे पिता की प्रशंसा, और पंडा बढ़ा कर कहेगा कि आए थे तो इतना दान किया--सोना चढ़ाया, चांदी चढ़ाई, इतना धन चढ़ाया! वह तुम्हें फुला रहा है। वह तुम्हारे अहंकार में हवा भर रहा है। वह तुम्हारा गुब्बारा बड़ा कर रहा है। वह यह कह रहा हैः जितना हो चढ़ा जाओ, अपने बाप से पीछे थोड़े ही रहोगे! इज्जत का सवाल है। यह तुम्हारी कुल-मर्यादा है। वह तुम्हें लूटने का इंतजाम कर रहा है। वह बड़ी सेवा करेगा। सब तरह से तुम्हारी स्तुति करेगा, सब तरह से तुम्हारे पुण्य का गुणगान करेगा। कहेगा कि आए हो तीर्थ में, यह सभी को उपलब्ध नहीं होता; यह तो सिर्फ पुण्यात्माओं को... ।
लेकिन गुरु के पास जाओगे तो न तो तुम्हारे बाप-दादों की प्रशंसा करेगा... उलटे ऐसी चोटें करेगा कि तुम भी पिटोगे, तुम्हारे मुर्दा बाप-दादे भी पिटेंगे। वह तुम्हें भी कहेगा कि तुम अज्ञानी हो और तुम्हारे बाप-दादे भी अज्ञानी थे। वे भी यूं ही मर गए व्यर्थ, तुम भी न मर जाना! वह तुम्हारी खुशामद नहीं करेगा। वह तुम्हें तोड़ेगा। वह तुम पर चोट करेगा।
ठीक कहते हैं पलटूः तुम तो दोगे अपना तन-मन-धन, सब अर्पण कर दोगे और गुरु की तरफ से केवल मिलेंगे धक्के। मगर घबड़ाना मत, धनी के धक्के खाना बेहतर है। निर्धन की प्रशंसा किस काम की? भिखमंगे तो तुम्हारी प्रशंसा करेंगे ही, क्योंकि प्रशंसा के द्वारा ही तुम्हें लूटा जा सकता है। भिखमंगे देखते कैसी प्रशंसा करते हैं--कि हे दाता! कहां जा रहे हो? मेरी तरफ देखो! तुम जैसा दानी और बिना दिए चला जाए!
भिखमंगे तुम्हें बीच बाजार में पकड़ लेते हैं, जहां अपनी इज्जत बचाने
की तुम्हें फिक्र हो जाती है पैदा कि अगर दो पैसे न दो तो लोग क्या समझेंगे कि महाकंजूस! अकेले जाते हो तो भिखमंगा तुम्हें नहीं पकड़ता, लेकिन अगर चार आदमियों के साथ हो, एकदम पैरों से लिपट जाता है--कि हे दाता, यह अवसर न चूको! कर लो लाभ! कमा लो पुण्य! परलोक में काम आएगा। यहां दोगे एक, वहां करोड़ पाओगे। चार आदमियों को देख कर तुम्हें देना पड़ता है। भिखमंगे को तुम नहीं देते, उन चार आदमियों की उपस्थिति को देते हो। बीच बाजार में पकड़ लेता है, प्रतिष्ठा का सवाल खड़ा हो जाता है। भिखमंगा भी मौके देखता है। सुबह भीख मांगने निकलता है, शाम को नहीं। क्योंकि शाम को तो तुम इतने कुटे- पिटे लौटते हो घर कि आशा तुमसे रखनी मुश्किल है कि तुम भिखमंगे को कुछ दोगे। उलटे टूट पड़ो उस पर, या उसी की थैली में से कुछ छीन लो, या झपट्टा मार कर उसका भिक्षापात्र ले लो कि भाग यहां से! शाम को भिखमंगा नहीं आता; जानता है कि तुम काफी कुट-पिट गए। दिन भर बाजार में पिटे हो, अब यह कोई मांगने का वक्त नहीं। सुबह-सुबह आता है। ताजे-ताजे, रात भर सोए हुए, मधुर स्वप्नों से जागे हुए, अभी आशा की जा सकती है कि शायद तुम्हें फुसलाया जा सके। भिखमंगा तुम्हारी प्रशंसा करेगा। ठीक इससे उलटी हालत धनी की है। और धनी किसको कहते हैं पलटू? जिसने परम धन पा लिया, जिसने प्रभु पा लिया, वही धनी है। वही धन्यभागी है।
धका धनी के खाय।

वह बहुत धकाएगा, बहुत भगाएगा कि भागो यहां से। वह सब तरह के उपाय करेगा कि तुम टिक न पाओ। वे सब परीक्षाएं हैं। उनसे ही तुम्हारी पात्रता निर्मित होती है। वे कसौटियां हैं। लेकिन जिसने सिर झुकाया और उठाया ही नहीं, धक्के धनी कितना ही मारे, जो लौट-लौट आ जाता है, वही टिक पाता है गुरु के पास।
मुरदा होय टरै नहिं टारै...
तुम तो बिल्कुल मुर्दा होकर पड़ जाना, कितना ही टारे गुरु, टरना ही मत। मुरदा होय टरै नहिं टारै, लाख कहै समुझाय।
गुरु कितना ही समझाए कि भागो, यहां क्या रखा है! तुम उसकी बातों में आना ही मत। न समझाने में आना। तुम तो उसे देखना। तुम तो उसे पहचानना। तुम तो उसके आस-पास की रोशनी को पीना। तुम तो उसके सत्संग का स्वाद लेना। और अगर कहीं तुम्हें सत्संग का स्वाद आ जाए तो छोड़ना ही मत वह द्वार; मुर्दे की भांति पड़ जाना।
स्वान-बिरति पावै सोई खावै, रहै चरन लौ लाय।
जैसे स्वान की वृत्ति होती है--कुत्ते को भगा दो, फिर लौट आता है--ऐसा
ही शिष्य होना चाहिए, स्वान-वृत्ति! तुम भगा कर आ भी नहीं पाए कि वह मौजूद है। कभी-कभी तुमसे पहले आ जाता है।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी बहुत खिलाफ थी उसके कुत्ते के, कि इसको हटाओ यहां से। तुम मुझ पर नहीं भौंक सकते, मगर यह मुझ पर भौंकता है। यह बरदाश्त के बाहर है। बहुत पीछे पड़ी थी तो आखिर एक दिन नसरुद्दीन ने उसे एक बोरे में बांधा, रखा बैलगाड़ी में और जंगल गया कि दूर-दूर छोड़ आए। फिर जाकर घने जंगल में उसको छोड़ा। कुत्ता तो छोड़ दिया, लेकिन घर का रास्ता न मिले उसको। आखिर अपने कुत्ते के पीछे ही आना पड़ा, क्योंकि वह जानता था कुत्ता तो घर पहुंच ही जाएगा। और कुत्ता घर पहुंच गया।
एक आदमी बाजार में कुत्ता खरीदने गया था। एक बड़ी कुत्तों की दुकान। पश्चिम की कहानी है, क्योंकि वहां तो कुत्तों पर बड़ा लगाव है। आदमी आदमी में तो प्रेम करना मुश्किल हो गया है। आदमी आदमी के बीच सारे सेतु टूट गए हैं। न पति की पत्नी से बनती है, न पत्नी की पति से बनती है; न बच्चों की मां-बाप से बनती है, न मां-बाप की बच्चों से बनती है। मनुष्य के नाते सब टूट गए हैं। और बिना नाते के आदमी नहीं रह सकता है। प्रेम चाहिए ही चाहिए। वह उसकी अनिवार्य जरूरत है। जैसे श्वास चाहिए देह को, ऐसे प्रेम चाहिए प्राण को। तो मजबूरी हो गई है। तो कुत्ते पालते हैं लोग, बिल्ली पालते हैं लोग। और जो जरा और विचित्र स्वभाव के हैं, कोई सांप भी पालते हैं। तरह-तरह के जानवर पालते हैं।
एक आदमी बाजार में कुत्ता खरीदने गया है। सबसे कीमती कुत्ता उसने चुना। शानदार अलसेशियन कुत्ता है। बहुत कुत्ते देखे हैं उसने, लेकिन इतना शानदार कुत्ता नहीं देखा। उसकी ऊंचाई, उसकी अकड़, उसका ढंग! वह दुकानदार से पूछता है कि यह कुत्ता जैसा दिखाई पड़ता है वैसा है भी? क्योंकि दिखाई पड़ने के धोखे में मैं बहुत आ चुका हूं। दिखता कुछ, भीतर कुछ निकलता है। यह वफादार है?
दुकानदार ने कहा, इसकी वफादारी की आप बात ही न पूछो।
कुलीन है? नसरुद्दीन ने पूछा।
दुकानदार ने कहा, कुलीन? अगर यह बोल सकता होता तो न तो तुमसे बोलता न मुझसे बोलता, यह इतना कुलीन है! अभिजात वर्ग से आता है। इसकी मां भी कुलीन थी, इसका बाप भी कुलीन था। इसकी नस्ल बड़ी ऊंची है। रही वफादारी की बात, सो आप फिक्र ही मत करो। इसको मैं कम से कम पचास बार बेच चुका हूं, दो दिन में वापस लौट आता है। ऐसी वफादारी है! इसकी तो आप बात ही मत करो। वफादारी की तो बात ही मत करो, वह तो दो दिन बाद आपको पता चल जाएगी।
पलटू कहते हैंः स्वान-बिरति! जैसे स्वान की वृत्ति होती है--भगा दो, वापस लौट आता है। डंडा लेकर दौड़ते हो, बाहर निकल जाता है; तुम भीतर लौटे, तुम्हारे पीछे ही पीछे चला आता है। ऐसी शिष्य की वृत्ति होनी चाहिए। गुरु तो बहुत बार डंडे लेकर दौड़ेगा। डंडे प्रत्यक्ष ही होते हैं, ऐसा नहीं; अप्रत्यक्ष होते हैं, सूक्ष्म होते हैं।

मैं भी तुम पर कितनी चोटें करता हूं--तुम्हारे विश्वासों पर, तुम्हारे धर्मों पर, तुम्हारे शास्त्रों पर, तुम्हारी परंपराओं पर। जो नासमझ हैं वे तो नाराज हो जाते हैं, वे तो दुश्मन हो जाते हैं। जो समझदार हैं वे समझते हैं कि न तो मेरा विरोध शास्त्रों से है, न मेरा विरोध सिद्धांतों से है, न मेरा विरोध धर्मों से है। सच तो यह हैः मेरा विरोध सिर्फ तुम्हारे मन से है। और तुम्हारे मन में ये सारी चीजें बैठी हैं-- धर्म, शास्त्र, सिद्धांत--इन सबको उखाड़ना है। ये उखड़ जाएं तो एक दिन तुम्हारे भीतर सच्चे धर्म का जन्म होगा। नैसर्गिक, स्वाभाविक, स्फूर्त, धर्म का झरना फूटेगा। और तब तुम जान सकोगे कि तुम्हारे सारे शास्त्रों में बस इसी का प्रतिफलन है।
मैं तुम्हें असली शास्त्र देने के लिए तुम्हारे शास्त्रों का विरोध करता हूं। असली धर्म देने के लिए तुम्हारे धर्मों का विरोध करता हूं। असली जीवन देने के लिए तुम्हारे अतीत का, तुम्हारी परंपराओं का विरोध करता हूं। लेकिन नासमझ तो भाग जाते हैं दुश्मन होकर; समझदार ही टिक पाते हैं।
स्वान-बिरति पावै सोई खावै, रहै चरन लौ लाय।
मारे कितना ही गुरु, फिक्र न करे। तुम तो गुरु के चरणों में अपनी वृत्ति को लगाए रखना, अपनी लौ को लगाए रखना।
पलटूदास काम बनि जावै, इतने पर ठहराय।
उससे पहले ठहरना ही मत, जब तक काम न बन जाए। तब तक कितना ही गुरु भगाए, कितनी ही चोटें करे, सब पी जाना--जब तक काम ही न बन जाए। और काम कब बनेगा? जब तक कि तुम्हारे भीतर चित्त न ठहर जाए, थिर न हो जाए; चित्त की चंचलता विलीन न हो जाए; चित्त की लहरें शांत न हो जाएं।
मितऊ देहला न जगाए, निंदिया बैरिन भैली।
जिनको तुम साधारणतः मित्र कहते हो, वे काम नहीं पड़ेंगे; वे तुम्हें जगा नहीं सकते। वे खुद ही सोए हैं।
मितऊ देहला न जगाए...
मित्र ने नहीं जगाया।
निंदिया बैरिन भैली।
और दुश्मन नींद छाई रही, छाई रही।
इसमें मित्र का कसूर नहीं है, नाराज भी न होना। मित्र कर भी क्या सकता है? मित्र खुद ही सोया है। वह कह भी दे कि मैं तुम्हें जगा दूंगा, वह खुद ही नहीं जागा है, कैसे जगाएगा?
और एक मन की तरकीब समझनाः मन हमेशा उनको मित्र बनाता है, जो तुमसे नीचे हैं। मन कभी अपने से ऊपर के लोगों को मित्र नहीं बनाता। क्यों? क्योंकि अपने ऊपर के लोगों से मित्रता बनानी हो तो अहंकार छोड़ना पड़ता है। अपने ऊपर के लोगों से मित्रता बनानी हो तो समर्पण करना होता है, झुकना होता है। और अहंकार झुकना नहीं चाहता। इसलिए अहंकार हमेशा रस लेता है अपने से नीचे लोगों में। वह उनके बीच अकड़ सकता है।
इसलिए राजनेताओं के पास तुम पाओगे चमचे इकट्ठे होते हैं। राजाओं के पास, सम्राटों के पास पुराने दिनों में यही चलता था, चमचे इकट्ठे हो जाते थे। वही उनके दरबारी, वही उनके वजीर। जो जितना बड़ा चमचा उतना बड़ा दरबारी। इन चमचों को देखना हो, तुम दिल्ली जाकर देखो। चमचे वही हैं, राजनेता बदल जाते हैं। मगर चमचे बड़े कुशल हैं। एक हंडिया फूट गई, वही चमचे दूसरी हंडिया में चले जाते हैं। उन्हीं को तुम पाओगे एक प्रधानमंत्री के पास, उन्हीं को तुम पाओगे दूसरे प्रधानमंत्री के पास। बड़े कुशल हैं। प्रधानमंत्री आते-जाते रहते हैं, चमचे थिर हैं। जैसी टोपी नेता चाहे वैसी टोपी लगा लेते हैं। अगर गांधीवादी है, तो शुद्ध खादी पहन कर दो अक्टूबर को चरखा लेकर गांधी की समाधि पर चरखा तक कात लेते हैं, चाहे कते कि न कते, चले कि न चले। कभी बाप-दादे ने चलाया हो तो चले। मगर बैठ कर, चरखे का चक्र चला कर, थोड़ी-बहुत पोनी खराब करके घर लौट आते हैं। अगर नेता समाजवादी है तो लाल टोपी लगा ली; अगर कम्युनिस्ट है तो लाल झंडा ले लिया। जो हो... ।
मुल्ला नसरुद्दीन एक नवाब के यहां नौकरी करता था। दोनों एक दिन भोजन
पर बैठे। नवाब प्रेम करता है नसरुद्दीन को। चमचों को कौन प्रेम नहीं करता!

भिंडी की सब्जी बनी, नई-नई भिंडियां आई थीं। नवाब ने कहा, सुंदर है, स्वादिष्ट है। नसरुद्दीन पीछे रहता! ऐसे मौकों की तलाश में चमचे रहते हैं। नसरुद्दीन ने कहा, स्वादिष्ट! अरे वनस्पति-शास्त्र के हिसाब से यह अमृत है। जो भिंडी की सब्जी खाता है, हजार बरस जीता है। और उसके एक-एक बरस में हजार दिन होते हैं। भिंडी की सब्जी, जैसे आप सम्राटों के सम्राट ऐसे भिंडी भी सब्जियों की सम्राट है।
रसोइए ने भी यह बात सुनी, जब ऐसे गुण हैं भिंडी के, अमृत जैसे, तो उसने दूसरे दिन भी भिंडी बनाई, तीसरे दिन भी भिंडी बनाई, वह रोज ही भिंडी बनाने लगा। सातवें दिन नवाब ने थाली फेंक दी। उसने कहा, भिंडी-भिंडी-भिंडी! मार डालेगा?
नसरुद्दीन ने अपनी थाली और जोर से फेंकी और उठ कर एक चपत लगा दी उस रसोइए को कि तू मालिक को मारना चाहता है दुष्ट? भिंडी जैसी सड़ीसड़ाई चीज भिखमंगे भी नहीं खाते! नाम देख--भिंडी! जहर है जहर! तू दुश्मनों के हाथ में खेल रहा है, किसी शड्यंत्र में भागीदार है।
नवाब ने कहा, नसरुद्दीन, जहां तक मुझे याद आता है, सात दिन पहले तुमने कहा था भिंडी अमृत है।
नसरुद्दीन ने कहा, मालिक, बिल्कुल ठीक याद आता है।
तो नवाब ने कहा, मैं समझा नहीं, आज एकदम तुम जहर कहने लगे और बेचारे रसोइए को मार भी दिया और तुमने थाली मुझसे भी जोर से फेंकी!
नसरुद्दीन ने कहा, मालिक, हम कोई भिंडी के नौकर नहीं, हम तो आपके नौकर हैं। भिंडी की ऐसी की तैसी! भिंडी जाए भाड़ में! जब आपने थाली फेंकी, हमने और जोर से फेंकी। जब आपने प्रशंसा की, हमने प्रशंसा के पुल बांध दिए। हम तो नौकर आपके हैं। तनख्वाह हमें आपसे मिलती है, भिंडी से नहीं। आप दिन को रात कहो, हम रात कहें। आप रात को दिन कहो, हम दिन कहें। हम तो मालिक के वफादार हैं।
जिनके पास धन है, सत्ता है, जिनके पास थोड़ी सुविधा है, वे अपने से बहुत क्षुद्र तरह के लोगों से घिर जाते हैं। स्वभावतः, क्योंकि वे क्षुद्र लोग उनकी प्रशंसा करते हैं। और प्रशंसा की भूख है। अहंकार प्रशंसा से तृप्त होता है।
मितऊ देहला न जगाए, निंदिया बैरिन भैली।
वह दुश्मन नींद छाई ही रहती है तुम्हारी छाती पर। और मित्र कितने ही वायदे करते हों कि हम जगा देंगे, जगा नहीं सकते।
पहले तो मित्र तुम उनको चुनते हो जो तुमसे ओछे हैं; जो तुमसे भी ज्यादा गहरी नींद में हैं। जो बड़बड़ा रहे हैं सपनों में, उनको तुम मित्र चुनते हो। नींद में ही वे बड़बड़ाते हैं, कहते हैंः जगा देंगे, घबड़ाओ मत। मगर उनके जगाए जागरण नहीं हो सकता। केवल कोई जागा हुआ ही मित्र मिल जाए तो जागरण हो सकता है।
की तो जागै रोगी...
पलटू कहते हैंः या तो रोगी जागते हैं, क्योंकि सो नहीं सकते। सोना चाहते हैं, सो नहीं सकते।
की चाकर...
या नौकर जागते हैं--पहरेदार--जबरदस्ती, मजबूरी में।
की चोर।
या चोर जागते हैं, क्योंकि उनका धंधा ऐसा है कि जब और सब सो जाएं तब वे चोरी कर सकते हैं।
की तो जागै संत बिरहिया...
और या फिर जागते हैं विरही संत, क्योंकि परमात्मा का प्रेम उन्हें सोने नहीं देता।
भजन गुरु कै होय।
उनके भीतर भजन ही चलता रहता है। उनके भीतर भाव की तरंगें ही उठती रहती हैं। उनके भीतर परमात्मा की किरण उतरती ही रहती है; अंधेरा हो ही नहीं पाता कि वे सो जाएं।
स्वारथ लाय सभै मिलि जागैं...

जो किसी स्वार्थ के कारण जागते हैं, उनका जागना सच्चा नहीं है, क्योंकि स्वार्थ तो नींद है।
बिन स्वारथ न कोय।
वह चोर, चाकर, रोगी, वे सब स्वार्थ से जागते हैं।
पर स्वारथ को वह नर जागै, किरपा गुरु की होय।
जब तक जागे हुए किसी सदगुरु की कृपा न हो, तब तक सच्चा जागरण नहीं होता। जागरण--रोगी वाला नहीं, पहरेदार वाला नहीं, चोर वाला नहीं। वे तो सब झूठे जागरण हैं। उनसे नींद नहीं टूटती। वे तो बड़ी गहरी नींद में पड़े हैं। लेकिन जो प्रभु के प्रेम में जागा है, जो प्रभु में जागा है, जिसकी आंखों में प्रभु-मूरत समाई है और जिसके हृदय में सतत उसकी धुन बज रही है, जो अनाहत के नाद से भरा है, जिसके भीतर सतत संगीत बह रहा है--ऐसे किसी गुरु की कृपा हो जाए तो तुम्हारे जीवन में जागरण आता है।
जागे से परलोक बनतु है, सोए बड़ दुख होय।
सोना दुख है और जागना आनंद। जागना स्वर्ग है; सोना नरक।
ज्ञान-खरग लिए पलटू जागै, होनी होय सो होय।
और जब एक बार किसी के भीतर ज्ञान की ज्योति जग गई, ज्ञान की तलवार चमक गई, फिर कोई चिंता नहीं रह जाती कि क्या होगा, क्या नहीं होगा। होनी होय सो होय! फिर जो भी होता है, सब शुभ है। फिर जैसा होता है वैसा ही स्वीकार है।
फिर जरा भी असंतोष नहीं है। फिर परितुष्टि है, फिर परितोष है।
तुम्हारी पत्नी तो बहुत शांत, धीर-गंभीर, सुशील दिखाई देती है ढब्बूजी--ढब्बूजी के एक नये मित्र ने कहा।
हां, यही तो इसका एकमात्र गुण है--ढब्बूजी बोले।
क्या--शांत, धीर-गंभीर होना?
नहीं-नहीं, दिखाई देना!
चोर जागा हुआ दिखाई देता है। चाकर जागा हुआ दिखाई देता है। रोगी जागा हुआ दिखाई देता है। जागे नहीं हैं। जागता तो सिर्फ योगी है। कृष्ण ने कहा हैः या निशा सर्व भूतायाम तस्याम जागर्ति संयमी। वह जो सबके लिए गहन रात्रि है, निद्रा है--वैसी रात्रि में, वैसी निद्रा में भी योगी जागता है, संयमी जागता है, ध्यानी जागता है।
ध्यानी सो ही नहीं सकता। उसने अपने भीतर उस तत्व को पहचान लिया है जो कभी सोया ही नहीं, जहां सोने की घटना घटती ही नहीं। शरीर सोता है, मन सोता है; आत्मा कभी नहीं सोती। तुमने अपने को शरीर मान लिया, इसलिए तुम्हें सोना पड़ता है; मन मान लिया, इसलिए सोना पड़ता है। जिस दिन तुम जानोगे कि तुम आत्मा हो, शाश्वत, न जिसका कोई प्रारंभ है, न कोई अंत; जिस दिन तुम जानोगे तुम अमृत हो, तुम्हारी कोई मृत्यु नहीं; जिस दिन तुम अपने साक्षी-भाव को पहचानोगे, उसी दिन से निद्रा गई। शरीर फिर भी सोएगा, मन फिर भी सोएगा; क्योंकि ये तो यंत्र हैं, थकते हैं। लेकिन साक्षी जागा रहता है।
नींद में भी ध्यानी जागा रहता है। शरीर सोया रहता है और भीतर जागरण का दीया जलता रहता है। वह जागरण का दीया जिसने भी पा लिया, स्वर्ग में प्रविष्ट हो गया। स्वर्ग कोई भौगोलिक स्थान नहीं है कहीं। स्वर्ग तुम्हारे जागरण की अवस्था का नाम है।
एक बार चंदूलाल और ढब्बूजी भंग पीकर घूमने निकले। दोनों इंडिया गेट
के नजदीक से गुजर रहे थे। चंदूलाल बोले, अरे ढब्बू! आज यह इंडिया गेट इतना झुक गया! इतना कैसे झुक गया? देख, सम्हल कर निकलना, नहीं सिर फोड़ लेगा। यदि हम खड़े-खड़े इसके नीचे से निकलेंगे तो लगता है कि सिर में लगेगा ही। ऐसा करते हैं घुटने-घुटने चल कर इसके नीचे से निकलते हैं।
ढब्बू बोला, हां यार, लगता तो है कुछ दाल में काला है। इंडिया गेट इतना कैसे झुक गया! और दोनों घुटने-घुटने चलने लगे।
कुछ ही दूर पहुंचे होंगे कि चंदूलाल फिर बोले, लगता है ढब्बू, आज इंडिया गेट को कुछ हो गया! देख न, कितना नीचा हो गया! मुझे तो ऐसा लग रहा है कि घुटने-घुटने चलने के बावजूद भी सिर में लग सकता है। ऐसा करें, लेट कर पेट के बल खिसकते हैं।
ढब्बू बोले, हां चंदू, तुम ठीक कहते हो। पेट के बल ही घिसट कर इसे पार करना चाहिए। दोनों पेट के बल घिसटने लगे। भीड़-भाड़ का समय। एक पुलिसवाले ने

आकर दोनों के सिर पर एक-एक बेंत रसीद की। चंदूलाल ने क्रोध और आश्चर्य के साथ ढब्बू से कहा, हद हो गई यार! पेट के बल घिसट कर निकल रहे थे, साला तब भी सिर में लग ही गया।
एक बेहोशी की दुनिया है, जहां कुछ भी करके निकलो, सिर फूटने ही वाला है!
अहंकार में जो जी रहा है, उसने भंग पी रखी है। अहंकार से ज्यादा और नशीली कोई चीज नहीं, शराब भी नहीं! शराब तो सांझ पीओगे, सुबह उतर जाएगी। लेकिन अहंकार जिंदगी भर चढ़ा रहता है।
जागने का अर्थ हैः मैं-भाव से जागना; मैं-भाव की मदिरा से मुक्त होना।
और यह वहीं हो सकता है जहां कोई अहंकार-शून्य व्यक्ति तुम्हें उपलब्ध हो जाए। उसी के पास बैठ कर तुम्हें भी अहंकार-शून्यता का स्वाद अनुभव में आएगा।
एक बार नसरुद्दीन ट्रेन में यात्रा कर रहा था। टिकट कलेक्टर ने आकर उससे टिकट मांगी। मुल्ला बोला, हुजूर, टिकट तो नहीं है।
टिकट कलेक्टर बोला, मियां, क्या तुम्हें पता नहीं कि बिना टिकट ट्रेन में बैठना मना है?
मुल्ला ने जवाब दिया, मालूम था हुजूर, इसीलिए तो देखिए न मैं कब से खड़ा हूं! मैं बैठा ही नहीं!
निद्रा के अपने तर्क हैं, यह याद रखना। निद्रा के भी अपने को बचाने के उपाय हैं, यह याद रखना। निद्रा तुम्हें ऐसे ही न छोड़ देगी। पहले अपनी रक्षा करेगी, हर भांति रक्षा करेगी। और जो भी तुम्हें जगाएगा, उसका तुम्हें दुश्मन बना देगी। इसीलिए तो जीसस को सूली लगती है, बुद्धों को पत्थर मारे जाते हैं। ये सोए हुए लोग, जो जागना नहीं चाहते; ये अहंकार से भरे हुए लोग; और बुद्धों की सारी चोट इनके अहंकार पर है, इनकी निद्रा पर है।
अगर जागना हो तो सोए मन की बहुत मत सुनना। मन कहे भी तो भी सुनी-अनसुनी
कर देना। इसका ही अर्थ है शिष्यत्व। मन की न सुनना और गुरु की सुनना, यही है शिष्यत्व का सार। गुरु चाहे अटपटी बात भी कहे, आज अटपटी लगे, आज उलटी लगे, तो भी सुनना। और मन चाहे बिल्कुल तर्कयुक्त बात कहे, तो भी सरका देना एक तरफ। क्योंकि मन के तर्क सिर्फ तुम्हारी निद्रा को बचाने के तर्क हैं। रात का समय, मुल्ला नसरुद्दीन अपनी कार से गुजर रहा था। रास्ते में एक गांव पड़ा। गांव के किनारे की ओर सड़क पर पत्थरों का एक बड़ा ढेर लगा हुआ था और उस ढेर पर एक जलती हुई लालटेन रखी हुई थी। मुल्ला ने देखा तो उसे थोड़ा आश्चर्य हुआ। वह बड़ी देर तक वहां रुका रहा। आखिर एक गांव का किसान जब उधर से निकला तो मुल्ला ने उसे बुलाया और पूछा, क्यों भैया, यह क्या मामला है? यह लालटेन इस ढेर के ऊपर क्यों रख छोड़ी है?
वह व्यक्ति बोला, अरे बड़े मियां, तुम्हें इतना भी नहीं मालूम? अरे यह इसलिए रखी है ताकि आने-जाने वाले लोगों को यह पत्थर का ढेर दिखता रहे। मुल्ला बोला, अच्छा, यह बात है! लेकिन यह तो बताओ कि यह पत्थरों का ढेर यहां क्यों लगा रखा है?
उस व्यक्ति ने बड़ी ही हिकारत से कहा, बड़े मियां, हम तो सुनते थे शहर के लोग बड़े ही बुद्धिमान होते हैं, मगर तुम तो बिल्कुल मूर्खता की बातें कर रहे हो। और यदि पत्थरों का ढेर नहीं लगाएंगे तो लालटेन किस चीज के ऊपर रखेंगे? इस लालटेन को रखने के लिए इस प्रकार पत्थरों का ढेर लगाया गया है। तुम जरा गौर करना अपने मन के तर्कों पर। वे एक चक्कर में घूमते हैं। लालटेन रखी है, पत्थरों का ढेर दिखता रहे, इसलिए। और पत्थरों का ढेर इसलिए लगाया है ताकि लालटेन रखी जा सके, नहीं तो लालटेन कहां रखो!
तुम जरा अपने मन के तर्कों पर विचार करना और तुम उनको सदा पाओगे कि वे
एक चक्कर में घूमते हैं। उनका कोई आधार नहीं है। मगर अगर अंश तर्क को तुमने देखा तो वह अर्थपूर्ण मालूम होगा। तर्क की पूरी प्रक्रिया को देखोगे तो तुम्हें तत्काल समझ में आ जाएगा कि पूरी प्रक्रिया भ्रांत है। लेकिन पूरी प्रक्रिया कौन देखता है? इतना मनन कौन करता है? इतना ध्यान कौन करता है?

अगर मन पर तुम ध्यान करो तो तुम्हें बड़ी हंसी आएगी। एक चक्कर में घूमता रहता है कोल्हू के बैल की तरह। सोचता है कहीं पहुंच रहे हैं; न कभी पहुंचता है कहीं, न कोई मंजिल आती है। चलता बहुत है। मन कितना चलता है देखो तो! दिन-रात चलता है। सुबह चलता है, सांझ चलता है; दिन चलता है, रात चलता है। विचार में, सपने में, चलता ही रहता है, चलता ही रहता है। तुमने कभी यह पूछा कि इतना चल कर यह पहुंचा कहां? और अगर इतना चल कर कहीं नहीं पहुंचा तो जरूर वर्तुल में चल रहा होगा, एक गोल घेरे में घूम रहा होगा। तो चलने का काम भी हो रहा है और पहुंचना भी नहीं हो पाता।
मन के द्वारा कोई कभी कहीं नहीं पहुंचा है। जो पहुंचे हैं, मन को छोड़
कर पहुंचे हैं। और मन को छोड़ना अत्यंत कठिन है। क्योंकि तुमने मन में अपनी सब कुछ जीवन ऊर्जा न्यस्त कर रखी है। तुमने सारा दांव मन के साथ लगा दिया है। और यही मन तुम्हें गुरु से न मिलने देगा।
तुम अनेक बार बुद्धों के करीब आ गए हो और चूक गए। तुम कोई नये तो नहीं हो, शाश्वत यात्री हो। तुम में से कुछ जरूर गौतम बुद्ध के करीब से गुजरे होंगे; ऐसे ही किसी सुबह बैठ कर तुमने गौतम बुद्ध को सुना होगा। कुछ जीसस के पास से गुजरे होंगे; ऐसे ही किसी सुबह बैठ कर तुमने जीसस के वचन सुने होंगे। या जरथुस्त्र, या मोहम्मद, या कबीर, या कौन जाने कोई तुम में से पलटू के वचन भी सुना हो। तुम यहां सदा से हो। अनेक-अनेक रूपों में, अनेक देशों में, अनेक जातियों में तुम पैदा हुए हो। अनेक योनियों में तुम पैदा हुए हो। असंभव है यह बात कि इतनी लंबी यात्रा में कभी तुम किसी बुद्धपुरुष के पास से न गुजरे होओ। कोई नानक कहीं मिल गया होगा, कोई फरीद कहीं मिल गया होगा, कोई रूमी कहीं मिल गया होगा, कोई मंसूर कहीं मिल गया होगा। लेकिन तुम चूक गए। तुम देख नहीं पाए। तुम्हारी आंख पर चश्मा है। यह चश्मा तुम्हारे मन का है। यह मन तुम्हें देखने नहीं देता। यह मन तुम्हें गुरुओं को देखने ही नहीं देता, क्योंकि गुरु को देखना मन की मौत का प्रारंभ है।
को खोलै कपट-किवरिया हो, बिन सतगुरु साहिब।
और जब तक तुम सदगुरु को न देखोगे, कौन खोलेगा किवाड़ प्रभु के मंदिर के? कौन खोलेगा झरोखे, जिनसे तुम झांक सको शाश्वत को--उस परम रहस्यमय को, उस परम विस्मय को!
नैहर में कछु गुन नहिं सीख्यो, ससुरे में भई फुहरिया हो।
तुम्हारी जिंदगी यूं ही जा रही है। जनम गुजर जाते हैं, तुम कुछ सीखते
ही नहीं।
नैहर में कछु गुन नहिं सीख्यो, ससुरे में भई फुहरिया हो।
न तो नैहर में कुछ सीखा, न ससुराल आकर। ससुराल में आकर और फूहड़पन आ गया।
अपने मन की कुलवंती, छुए न पावै गगरिया हो।
और अपने अहंकार से तुम इतने भरे हो कि सागर को पाना तो दूर, गागर को पाना भी मुश्किल है। तुम अपने अहंकार से इतने भरे हो कि सागर तो कहां तुम्हारे भीतर जगह पाएगा, एक गागर को रखने की भी जगह नहीं है। गुरु गागर है; परमात्मा सागर है।
पांच पचीस रहै घट भीतर, कौन बतावै डगरिया हो।
और तुम एक होते तो भी ठीक था। तुम पांच-पच्चीस हो। तुम भीड़ हो! महावीर
ने कहा हैः तुम बहुचित्तवान हो। तुम्हारे भीतर एक चित्त नहीं है, बहुत चित्त हैं।
सांझ तय करते हो कि सुबह पांच बजे उठूंगा, अब तो उठूंगा ही उठूंगा, ब्रह्ममुहूर्त में ही उठना है, चाहे कुछ भी हो जाए। जब सभी ज्ञानी कहते रहे ब्रह्ममुहूर्त में उठो, तो जरूर कुछ रहस्य होगा। अब तो पक्का संकल्प करके सोता हूं। और सुबह पांच बजे जब अलार्म बजेगा तो तुम ही अलार्म को बंद कर दोगे; करवट बदल कर लेट रहोगे और कहोगे कि एक दिन में क्या बिगड़ता है, कल देखेंगे! जिस चित्त ने तय किया था कि उठूंगा ही उठूंगा, क्या यह वही चित्त है जो सुबह करवट ले लेता है और अलार्म बंद कर देता है? नहीं; अब तो मनोवैज्ञानिक भी महावीर की इस बात से राजी होते हैं कि यह वही चित्त नहीं है, यह दूसरा चित्त है।

एक चित्त कहता है कि जीवन भर तुम्हें प्रेम करूंगा। और जीवन भर की बात दूर, सांझ ही झगड़ा हो जाता है। जिसके लिए मरने को राजी थे, उसी को मारने को तैयार हो जाते हो। भूल गए जीवन भर के वायदे। यह चित्त और है।
एक चित्त तय करता हैः क्रोध नहीं करूंगा। और कोई तभी गाली दे देता है
और क्रोध उमग आता है। यह और चित्त है। और फिर क्रोध के चले जाने के बाद फिर पछताते हो कि यह फिर गलती हो गई। यह और चित्त है। तुम्हारे भीतर चित्तों की भीड़ है।
पांच पचीस रहै घट भीतर...
एकाध नहीं हो तुम, नहीं तो मामला आसान हो जाता। अगर एक होते, एकजूट होते, तो क्रांति बहुत आसान हो जाती।
गुरु के सामने सबसे बड़ी कठिनाई यह होती है कि शिष्य को एक कैसे बनाए? उसकी भीड़ को कैसे पिघलाए और एक में ढाले? पांच तो तुम्हारी इंद्रियां हैं और हर इंद्रिय कम से कम पांच दिशाओं में बह रही है, सो गुणनफल कर लोः पांच-पच्चीस! एक भीड़ भीतर खड़ी हो गई है।
तुम्हारी अवस्था वैसी ही है जैसे दिल्ली में प्रधानमंत्रियों की होती है। कोई टांग खींच रहा है, कोई हाथ खींच रहा है, कोई टोपी ही उतार ले भागा। कोई चूड़ीदार पाजामा ही खींच रहा है। इसीलिए तो चूड़ीदार पाजामा पहनते हैं नेता लोग कि बड़ी मुश्किल से उतरता है। लाख खींचो, इतना आसान नहीं है उतरना। चूड़ीदार पाजामा का राज ही यह है। नेहरू ने भला किया जो चूड़ीदार पाजामा चुना। कहीं बंगाली धोती चुनी होती तो बड़ी मुश्किल हो जाती। कोई धोती ही लेकर भाग जाता। और तुम अपनी कुर्सी छोड़ नहीं सकते, सो नंग-धड़ंग कुर्सी पर बैठे रहते। चूड़ीदार पाजामे की खूबी है-- पहनाने को भी दो आदमी चाहिए, उतारने को भी दो आदमी चाहिए।
तुम्हारी दशा भी वैसी है। कोई टांग खींच रहा है, कोई हाथ खींच रहा है।
एक मन कहता है पूरब, एक कहता है पश्चिम; एक कहता है यह करो, दूसरा कहता है वह करो। धक्कमधुक्की हो रही है! तुम कैसे जीए जाते हो, यह एक चमत्कार है। इस धक्कमधुक्की में भी किसी तरह तुम अपने को खींचे जाते हो, यह आश्चर्य है।
तुम्हारी दशा फुटबाल जैसी है; इधर से मारा तो उधर, उधर से मारा तो इधर। पांच पचीस रहै घट भीतर, कौन बतावै डगरिया हो।
और डगरिया बताना भी चाहे कोई तो कौन बताए? किसको बताए? वहां सुनने वाला कौन है? वहां तो कलह मची है, संघर्ष मचा है। और चूंकि तुम एक से अनेक हो गए हो, तुम दीन-हीन हो गए हो, तुम्हारी सारी ऊर्जा इन छिद्रों से बही जा रही है। हो सकते थे सिंह, मगर सिंह नहीं हो।
एक आदमी फौज में भरती हुआ। कवायद के लिए पहले ही दिन ऐसे पैर उठाए सम्हाल-सम्हाल कर कि जैसे किसी की बरात में गया हो; जैसे दूल्हा दुल्हन के द्वार पर चल रहा हो। उसके कप्तान ने डांटा कि सुनते हो जी, ऐसे नहीं चलेगा! यह कोई बरात नहीं है। यह बराती की चाल बंद करो। और तुम्हें बता दूं अभी कि मेरा नाम है शेरसिंह, रस्ते पर लगा दूंगा।
वह आदमी बिल्कुल रोती आवाज में बोला कि नाम की न कहिए, नाम तो मेरा भी
है बब्बर सिंह, मगर नाम से क्या होता है! हालत मेरी यही है। इससे ज्यादा तेजी से मैं नहीं चल सकता। कर भी क्या सकता हूं, शादीशुदा आदमी हूं! पहले ही इतना पिट चुका हूं कि अब और मुझ गरीब को न पीटो।
अब बस करो गुलजान, नहीं तो मेरे अंदर का जानवर जाग जाएगा--नसरुद्दीन
ने क्रोध में आकर अपनी पत्नी गुलजान से कहा। पत्नी ने मजाक उड़ाते हुए कहा, अरे जा-जा, जाग जाने दे तेरे भीतर के इस जानवर को। चूहे से डरता ही कौन है! आदमी सिंह हो सकता था, लेकिन चूहा भी नहीं रह गया है। सारी ऊर्जा बह जाती है, जैसे घड़े में हजार छेद हों। तो टिकता ही नहीं कुछ। कौन बताए मार्ग? किसको बताए मार्ग?
अपने मन की कुलवंती, छुए न पावै गगरिया हो।
पांच पचीस रहै घट भीतर, कौन बतावै डगरिया हो।
पलटूदास छोड़ि कुल जतिया, सतगुरु मिले संघतिया हो।
छोड़ो कुल, छोड़ो जात, छोड़ो पांत, छोड़ो वर्ण--तो ही तुम उस परम साथी को खोज सकोगे जिसका नाम सदगुरु है।
सतगुरु मिले संघतिया हो।

वही एक साथी है, वही एक संगी है। जो परमात्मा से जुड़ा दे वही मित्र है।
जो परमात्मा से तुड़ा दे वही शत्रु है। इसको तुम परिभाषा समझोः शत्रु वह है जो तुम्हें परमात्मा से तुड़ा दे; और मित्र वह है जो तुम्हें परमात्मा से जुड़ा दे।
साहिब से परदा न कीजै, भरि-भरि नैन निरखि लीजै।
और कभी ऐसा कोई साहब... । संतों का शब्द साहब बड़ा प्यारा है। वे परमात्मा के लिए साहब का उपयोग करते हैं, क्योंकि वही मालिक है। या मालिक! सूफी फकीरों ने उसको नाम दिया है। साहिब! कभी अगर तुम्हें कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाए जिसमें साहिब का पदार्पण हुआ हो तो उससे परदा न करना; घूंघट की ओट से मत देखना उसे। चूक मत जाना। भर-भर आंख देख लेना! क्योंकि बहुत मुश्किल से ऐसी घटना घटती है।
साहिब से परदा न कीजै, भरि-भरि नैन निरखि लीजै।
पी जाना उसे आंखों से! खोल देना आंखों के द्वार उसके लिए! कानों से हटा लेना सारे परदे! घूंघट हटा देना! सब छोड़ देना, जो भी बाधा बनता हो।
नाचै चली घूंघट क्यों काढ़ै, मुख से अंचल टारि दीजै।
और जब सदगुरु मिल जाए, नाचने की घड़ी आ गई! अब घूंघट को सम्हालने से नहीं चलेगा।
मुख से अंचल टारि दीजै।
अब तो सब घूंघट छोड़ दो। मीरा ने कहा हैः सब लोक-लाज खोई!
सती होय का सगुन बिचारै, कहि के माहुर क्या पीजै।
सती का अर्थ होता हैः जिसने एक को ही चाहा, जिसने एक को ही सब कुछ समर्पित कर दिया। शिष्य में एक सती-भाव होता है। सती शब्द आता है सत से। जिसने सत के लिए सब कुछ समर्पित कर दिया, वह सती। जिसने अपने प्रिय के लिए सब कुछ समर्पित कर दिया, वह सती। और सदगुरु से नाता प्रेम का है, प्रीति का है। वह तो आत्मा की आत्मा से भांवर है।
सती होय का सगुन बिचारै...
और फिर यह नहीं देखना पड़ता कि पूछो लगन-महूरत कि कब देखें गुरु को और
कब न देखें। झूठ लगन-महूरत सब! कोई जरूरत नहीं। गुरु के साथ कोई छिपाव न रखे, कोई भेद-भाव न रखे--सब उघाड़ दे। गुरु के सामने हृदय को नग्न हो जाने दे। बुरा-भला जैसा है, सब प्रकट कर दे। तुम चिकित्सक के पास जाते हो तो अपनी सारी बीमारी खोल कर कह देते हो, छिपाते तो नहीं। नहीं तो चिकित्सक क्या करेगा?
मुल्ला नसरुद्दीन एक डाक्टर के पास गया। डाक्टर ने पूछा कि क्या तकलीफ है?
मुल्ला ने कहा, अब आप ही बताइए। आप डाक्टर कि मैं डाक्टर?
तो उस डाक्टर ने कहा, आप ऐसा करिए, वेटनरी डाक्टर के पास जाइए। क्योंकि वेटनरी डाक्टर ही आपका इलाज कर सकता है। जानवर कुछ बताते तो हैं नहीं, डाक्टरों को ही अनुमान करना पड़ता है। मैं आदमियों का डाक्टर हूं, आप गलत जगह आ गए।
डाक्टर के सामने सब खोल कर रख देना पड़ता है। और जब तुम गुरु के पास आए
तो तुम परम चिकित्सक के पास आए हो। देह का ही इलाज नहीं, आत्मा का इलाज करना है। सब खोल कर रख देना होगा।
सती होय का सगुन बिचारै...
फिर समय नहीं देखा जाता, लाज नहीं देखी जाती, लोक-प्रतिष्ठा नहीं देखी जाती, गुरु के समक्ष सब बेशर्त खोल दिया जाता है। उस खुलने से ही क्रांति शुरू हो जाती है।
कहि के माहुर क्या पीजै।
और गुरु अगर जहर भी पीने को दे तो कह-कह कर मत पीना कि देखो, जहर पी रहा हूं! कि देखो, यह त्याग दिया! कि देखो, यह छोड़ दिया! कि देखो, कितना अर्पण किया! कैसा मेरा समर्पण! कैसी मेरी श्रद्धा! कह-कह कर मत करना। कह-कह कर सब खराब हो जाएगा। कह कर पीया तो क्या पीया! गुरु अगर जहर दे तो आनंद से पी जाना, शब्द भी न निकालना; क्योंकि गुरु के हाथ से आया हुआ जहर भी अमृत है।

चिकित्सक को कभी-कभी इलाज के लिए जहर भी देना पड़ता है। चिकित्सक के हाथ में जहर भी औषधि हो जाता है। नासमझ के हाथ में तो औषधि भी जहर हो जाती है।
लोक-बेद तन-मन की डर है, प्रेम-रंग में क्या भीजै।
और अगर डर है लोक का, वेद का, तन का, मन का--तो एक बात ख्याल रखना, फिर प्रेम के रंग में न भीज सकोगे।
पलटूदास होय मरजीवा, लेहि रतन नहिं तन छीजै।
पलटूदास कहते हैंः तुम तो जीते जी गुरु के चरणों में मर जाओ। मरजीवा शब्द के दो अर्थ हैं। जीते जी मर जाओ--एक; वह उसका परम अर्थ है। और एक अर्थ है गोताखोर। गोताखोर को मरजीवा कहते हैं, क्योंकि जीते जी पानी में जब वह गोता लगाता है तो सांस बंद कर लेता है; मरे जैसा हो जाता है, क्योंकि मरने पर सांस बंद हो जाती है। तो गोताखोर भी एक अर्थ है कि वह जीते जी गोता मार जाता है, सांस बंद कर लेता है, मुर्दे जैसा हो जाता है।
गुरु के चरणों में गोताखोर हो जाओ। उसके चरण सागर जैसे हैं। उसके चरणों की गहराई अनंत है। क्योंकि वह तो है ही नहीं, वह तो केवल परमात्मा के लिए एक द्वार है--एक घाट है सागर का! डुबकी मार जाओ, गोताखोर हो जाओ!
लेहि रतन नहिं तन छीजै।
घबड़ाओ मत, कुछ छीजेगा नहीं, तन गल नहीं जाएगा। और रतन मिल जाएंगे। अगर गहरा गोता मारा तो झोली रत्नों से भर जाएगी।
और परम अर्थों में मरजीवा का अर्थ हैः जीते जी मुर्दा हो जाओ। गुरु के पास तुम्हारा अपना कोई जीवन न रह जाए; गुरु का जीवन ही तुम्हारा जीवन हो। उसकी श्वास में श्वास लो। उसके प्राण की धड़कन में अपनी धड़कन जोड़ दो। उसके संगीत में अपने स्वर मिल जाने दो। जीते जी अगर तुम मर जाओ तो परम जीवन उपलब्ध हो जाता है। तुम्हारी झोली में अमृत के हीरे, अमृत के मोती भर जाएंगे।
लेकिन डूबना पड़े, जैसे एक सती अपने पति में डूब जाती है। सती शब्द अब
तो पुराना पड़ गया। अब तो उसके अर्थ भी खो गए। अब तो वह गरिमा न रही, वह महिमा न रही। कभी उस शब्द के बड़े गहरे अर्थ थे। जब पलटू ने लिखा होगा तब वह शब्द सात आसमानों पर था। अब तो सती होना कानूनी रूप से अपराध है। अगर कोई स्त्री सती होती पकड़ ली जाए तो सजा काट जाएगी। शायद आजीवन दंड हो जाए। वे दिन गए। अब दिन और हैं। अब सती की महिमा न रही।
लेकिन इस शब्द में बड़ी गहराई थी। और इस देश ने प्रेम की एक अनूठी अनुभूति जानी थी। क्योंकि प्रेम के पकने के लिए समय चाहिए। प्रेम कोई मौसमी फूल नहीं है। पूरा जीवन जब दो व्यक्ति एक-दूसरे में अपने को डुबा देते हैं, तो धीरे-धीरे...
बनत बनत बनि जाई, पड़ा रहै संत के द्वारे।
तन मन धन सब अरपन कै कै, धका धनी के खाय।
प्रेम एक बार हो जाए तो हो जाए। लेकिन दिन बदल गए हैं।
जब मुल्ला नसरुद्दीन रात को जल्दी घर वापस आ गया, तो उसने देखा कि उसकी बीबी पलंग पर लेटी हुई है तथा उसको देख कर एकदम से कोई पुरुष पीछे के दरवाजे से भाग गया है। नसरुद्दीन ने क्रोध को दबाते हुए गुलजान से कहा, कौन था वह? क्या मेरा दोस्त चंदूलाल?
नहीं!
तो फिर क्या ढब्बूजी थे?
नहीं, बीबी ने पूर्ववत कहा।
तब भोंदूमल था? कि मटकानाथ ब्रह्मचारी होगा?
इन प्रश्नों को सुन कर पत्नी रोने लगी। नसरुद्दीन ने करुणा भाव से कहा, जो हुआ सो हुआ। अब रोने से क्या फायदा? गुलजान, भविष्य में ऐसी गलती मत करना। मैंने तुम्हें माफ किया। उठो, चुप हो जाओ।
मैं इसलिए नहीं रो रही हूं मुल्ला--बीबी ने सिसकते हुए कहा--मैं तो इसलिए रो रही हूं कि तुमने सिर्फ अपने ही दोस्तों के नाम लिए, जैसे कि मेरा कोई मित्र ही नहीं है!
दिन बदल गए। अब सती की वह महिमा न रही। मगर सती की धारणा में बड़ी गरिमा थी। हमने ही नष्ट कर दी, क्योंकि हम स्त्रियों को जबरदस्ती सती बनाने लगे।

ये चीजें जबरदस्ती नहीं होतीं। होती हैं तो होती हैं। और जब हम किसी श्रेष्ठ चीज को भी जबरदस्ती करने लगें तो हम ही उसके नष्ट करने के कारण हो जाते हैं। जैसे कली को कोई जबरदस्ती खोल कर फूल बना दे, तो नष्ट कर देगा। कली अपने से खिले तो मजा और। और तुमने खोल-खाल कर, किसी तरह खींच-तान कर और ले आए इलेक्ट्रिक प्रेशर और दबा कर पंखुड़ियों को खोल दिया कमल की--तो मार डालोगे।
यही हुआ। सती की भव्य धारणा... लेकिन भव्य तभी है जब सहज हो, स्वाभाविक हो, अपने से हो। लेकिन हमने उलटा कर लिया। हम सदा उलटा कर लेते हैं। हम सारी आकाश की धारणाओं को मिट्टी में खींच लाते हैं, धूल-धूसरित कर देते हैं। हम जबरदस्ती हर स्त्री को मजबूर करने लगे कि तेरा पति मरे तो तुझे मरना होगा। हमने ऐसी मजबूरी पैदा कर दी कि अगर स्त्री न मरे तो निंदित हो जाए, उसे अपराध भाव पैदा हो जाए और समाज सदा फिर उसकी निंदा करे। और हम सती करने के लिए ऐसा इंतजाम करने लगे कि जबरदस्ती स्त्री को ले जाने लगे मरघट। इतना घी फेंका जाता था पति की लाश पर और फिर जिंदा स्त्री को उसमें धका दिया जाता था। घी इसलिए फेंका जाता था ताकि लपटें भयंकर हों और धुआं बहुत उठे। धुआं इतना उठे कि बाकी लोग जो जलाने आए हैं, उनको यह दिखाई न पड़े कि जिंदा स्त्री की क्या हालत हो रही है। और पंडित-पुरोहित चारों तरफ मशालें लेकर खड़े हो जाते थे। क्योंकि स्त्री, जिंदा आदमी को तुम चिता में जबरदस्ती फेंकोगे तो भागेगा। जरा दीये में हाथ तो डाल कर देखो, हाथ अपने आप खिंच आएगा। पूरे शरीर को, जीवित व्यक्ति को तुम फेंकोगे लाश पर तो वह भागेगा। वह भाग न पाए इसलिए पंडित-पुजारी चारों तरफ मशालें लेकर खड़े होते थे कि उसको मशालों से धक्का देकर वापस चिता में डाल दें। और खूब बैंड-बाजे बजाए जाते थे, तुरही और नगाड़े पीटे जाते थे, ताकि उसकी चीख-पुकार सुनाई न पड़े। जिंदा आदमी जलाओगे तो चीखेगा, पुकारेगा, भयंकर चीख उठेगी।
यह तो दुर्गति हो गई। यह सती की महिमापूर्ण धारणा नारकीय हो गई। यह तो हत्या है। यह सतीत्व नहीं है।
लेकिन सौ में निन्यानबे मौके पर तो यह बात सच थी कि सती की धारणा हत्या हो गई थी। लेकिन एक मौके पर--और एक मौका भी काफी है--यह सहज घटता था कि दो व्यक्ति इतने एक हो गए... । जरूरी नहीं है कि कोई कब्र पर जाकर ही मरे, कि चिता पर जाकर चढ़े; लेकिन पति के जाने के बाद सती का जीवन मरजीवा हो जाता है। वह जीती है और मुर्दे की भांति जीती है--जीती भी और नहीं भी जीती। यही उसकी साधना हो जाती है और इसी साधना से वह परम प्रकाश को पा जाती है। उसके लिए पति ही सदगुरु हो गया। उसकी मृत्यु भी उसके लिए परमात्मा का द्वार बन जाती है।
मेरे पिता चल बसे तो मेरी मां ने आकर जो पहली बात मुझसे पूछी, वह यही
कि अब मेरे जीवन में कोई अर्थ नहीं। अब मैं भी कैसे परम ध्यान को उपलब्ध हो सकूं, यह मुझे बताओ। मैं भी कैसे तुम्हारे पिता की भांति परमात्मा में लीन हो सकती हूं, यह मुझे बताओ।
मैं जानता हूं, साठ वर्ष उन दोनों का साथ रहना लंबा समय है। साठ वर्ष एकजूट एक-दूसरे को चाहना, साठ वर्षों में इंच भर को एक-दूसरे का प्रेम न डगमगाना--लंबी यात्रा है। अब साठ वर्ष के बाद मेरी मां का अकेला रह जाना निश्चित ही बहुत बड़ा अकेलापन है। लेकिन चिता पर चढ़ जाने से तो कुछ होगा नहीं। हां, ध्यान-समाधि में उतर जाने से जरूर कुछ होगा।
और वही उन्होंने मुझसे आकर पूछा। मैं आनंदित हुआ। चिता पर चढ़ने से तो सिर्फ शरीर जल जाता, फिर जन्म लेना पड़ता। लेकिन अगर समाधि उपलब्ध हो सके तो फिर जन्म नहीं होगा। और मैं आशा करता हूं कि समाधि उपलब्ध हो सकेगी। क्योंकि अब ऐसे जीने का अवसर आ गया है, जैसे जीने और न जीने में अब कोई फर्क नहीं, अब जीवन और मृत्यु बराबर है। बस यही तो पहला चरण है ध्यान का, समाधि का। अब समाधि के पाने में कोई रुकावट नहीं है।
जैसे पति-पत्नी के बीच एकजूट, एकाग्र प्रीति का संबंध होता है, वैसा
ही संबंध शिष्य और गुरु के बीच है। अगर तुम गुरु के पास आकर ऐसे हो जाओ जैसे तुम रहे ही नहीं, अब गुरु ही तुम्हारे लिए सब कुछ है; वही बोलेगा तुमसे, वही उठेगा तुमसे, वही चलेगा तुमसे, वही श्वास लेगा, वही धड़केगा तुम्हारे हृदय में--तो बस काफी हो गया। अब सागर दूर नहीं। घाट तो मिल ही

गया, अब छलांग कभी भी लग जाएगी। और तुमने न भी लगाई तो गुरु धक्का दे देगा, ठीक अवसर पर, ठीक मौके की तलाश में रहेगा और धक्का दे देगा।
और एक बार तुम उतर गए तो कोई लौटता नहीं। एक बार डूबने का मजा ले लिया
तो कोई लौटता नहीं। जैसे नमक का पुतला अगर सागर में उतर जाए तो गल जाता है, ऐसे ही तुम भी अगर परमात्मा में उतर गए तो गल जाओगे, खो जाओगे, शून्य हो जाओगे। और तुम्हारा शून्य होना पूर्ण का अवतरण है।
लेकिन धीरे-धीरे होती है यह बात।
बनत बनत बनि जाई, पड़ा रहै संत के द्वारे।
आज इतना ही।

काहे होत अधीर
आठवां प्रवचन

प्रेम एकमात्र नाव है

पहला प्रश्नः ओशो! आपने कहा कि गणित या ज्ञान से उपजा वैराग्य झूठा है; प्रेमजनित वैराग्य ही वैराग्य है। लेकिन प्रेम तो राग लाता है; उससे वैराग्य कैसे फलित होगा?

आनंद मैत्रेय! प्रेम तो सीढ़ी है; उससे नीचे भी उतर सकते हो, उससे ऊपर
भी चढ़ सकते हो। प्रेम तो द्वार है; उससे भीतर भी आ सकते हो, उससे बाहर भी जा सकते हो। प्रेम न तो राग पैदा करता है, न वैराग्य पैदा करता है। प्रेम तो तटस्थ है। तुम्हारे हाथ में सब है। प्रेम का कैसे उपयोग करोगे, परिणाम इस पर निर्भर होता है।
प्रेम पतित हो तो राग बन जाता है। प्रेम विकसित हो तो वैराग्य बन जाता है। जैसे घर में कोई खाद को इकट्ठा कर ले तो दुर्गंध फैलेगी और उसी खाद को बगिया में छितरा दे तो सुगंध उठेगी। वही खाद वृक्षों का पोषण बनेगी; फूलों में रंग, रस और गंध बनेगी। वही खाद, जो घर में इकट्ठी कर ली होती तो जीना दूभर हो जाता--तुम्हारा ही नहीं, पड़ोसियों का भी।
ऐसा ही प्रेम है। प्रेम तो खाद है। अगर कामवासना में ही बंद रह गया तो सड़ांध पैदा होगी और अगर प्रार्थना में मुक्त हो गया तो परम सुवास पैदा होगी।
मैं तुम्हारा प्रश्न समझता हूं; नया नहीं है, सदियों-सदियों से पूछा गया है। क्योंकि जिसने भी परमात्मा की तलाश की है, उसके सामने यह प्रश्न निश्चित ही खड़ा हुआ है। होगा ही, क्योंकि प्रेम तुम्हारी प्रकृति है। इस प्रेम का क्या करें? परमात्मा को खोजने जो जाएगा, उसे प्रेम के संबंध में कुछ निर्णय लेने ही होंगे--कुछ निर्णय जो कि निर्णायक सिद्ध होने वाले हैं। या तो उसे तय करना होगा कि मैं प्रेम को दबाऊं, क्योंकि प्रेम से राग पैदा होता है। और जिसने दबाया प्रेम को, उसने भर लिया अपना भवन खाद से; अब सड़ांध पैदा होगी।
इसलिए तुम्हारा तथाकथित धार्मिक आदमी ऊपर-ऊपर धार्मिक होता है; जरा खरोंचो उसे और उसके भीतर से अधर्म निकल आता है। तुम्हारा धार्मिक आदमी ही तो मंदिर जलाता, मस्जिद जलाता, हिंदुओं को मारता, मुसलमानों को मारता, छुरे भोंकता, आगजनी करता, बलात्कार करता। तुम्हारे धार्मिक आदमी के कुकृत्यों से इतिहास भरा हुआ है। इतना अनाचार अधार्मिक लोगों ने नहीं किया है। इस पृथ्वी पर जितने लहू के धब्बे धार्मिक आदमी ने छोड़े हैं, उतने अधार्मिक आदमियों ने नहीं छोड़े हैं।
और भी एक मजाः अधार्मिक आदमी तो अगर पाप भी करता है तो व्यक्तिगत रूप
से करता है--कोई चोरी कर लेता है, कोई हत्या कर देता है। धार्मिक आदमी जब पाप करता है तो सामूहिक रूप से करता है। और जब सामूहिक रूप से पाप किए जाते हैं तो अनंत गुने हो जाते हैं। हिंदुओं की भीड़, मुसलमानों की भीड़, ईसाइयों की भीड़ जब पाप करने पर उतारू होगी तो फिर हिसाब नहीं रखे जाते।
और यह भी ध्यान में रहे कि जब व्यक्ति पाप करता है, तो उसके भीतर चिंता पैदा होती है; उसके भीतर विचार पैदा होता है। उसकी आत्मा कहती हैः क्या कर रहे हो? पापी से पापी की आत्मा कहती हैः क्या कर रहे हो? ठहरो, मत करो! बुरा है। ऐसे ही अंधेरे में हो, और अंधेरे में चले जाओगे। चोर, जो हजार बार चोरी कर चुका है, वह भी जब फिर चोरी करने जाता है तो कोई भीतर खींचता है, रोकता है। कोई अंतरात्मा की आवाज, चाहे कितनी ही धीमी पड़ गई हो, सुनाई पड़ती है-- ठहर जाओ। मत करो बुरा।
लेकिन भीड़ की कोई आत्मा नहीं होती। इसलिए भीड़ के पास अंतरात्मा की कोई आवाज नहीं होती। जब हिंदुओं की भीड़ मस्जिद को जलाती हो, जब मुसलमानों की भीड़ मंदिर को तोड़ती हो, तो मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि भीड़ में जुड़े हुए व्यक्ति को उत्तरदायित्व का बोध मिट जाता है। उसे यह सवाल ही नहीं उठता कि मैं अपराध कर रहा हूं। मैं तो सिर्फ संगी-साथी हूं; भीड़ कर रही है। और भीड़

अच्छे लोगों की है--पंडित, पुरोहित, मौलवी, पादरी उसके नेता हैं। मैं तो सिर्फ पीछे चलने वाला एक अनुयायी मात्र। धर्मयुद्ध में लगा हूं, जेहाद कर रहा हूं।
और तुम्हारे तथाकथित धर्मगुरुओं ने तुम्हें सिखाया है कि धर्मयुद्ध में अगर मारे गए तो स्वर्ग सुनिश्चित है; जेहाद में अगर मरे तो बहिश्त पाओगे। खूब प्रलोभन--पाप के लिए प्रलोभन! निपट पाप के लिए स्वर्ग का पुरस्कार! भयंकर अपराधों के लिए दंड नहीं--प्रशंसा, स्तुति। तो उत्तरदायित्व का बोध टल जाता है व्यक्ति का, जब वह भीड़ में पाप करता है। इसलिए भीड़ जैसे पाप करती है, व्यक्ति ने कभी भी नहीं किए, व्यक्ति कर ही नहीं सकता।
तुम अगर किसी भीड़ के हिस्से होकर पाप करो और फिर तुमसे अकेले में पूछा जाए कि क्या तुम अकेले भी ऐसा कर सकते थे? तो तुम चकित होओगे, तुम्हारे भीतर ही कोई कहेगा कि नहीं, अकेले में मैं ऐसा नहीं कर सकता था। भीड़ में एक सुविधा हैः इतने लोग कर रहे हैं तो ठीक ही कर रहे होंगे। इतने लोग तो गलत नहीं हो सकते। मैं गलत हो सकता हूं; मगर ये हजारों-हजारों हिंदू, ये तो गलत नहीं हो सकते; ये तो ठीक ही कर रहे होंगे। फिर पंडित-पुरोहित आगे हैं, संत-महात्माओं का आशीष है, गलती हो कैसे सकती है? और फिर जहां इतने लोग कर रहे हैं, दायित्व बंट गया, तुम्हारे सिर पर ही न रहा। बोझ बहुत हलका है। अकेले होते तो सागर तुम्हारे ऊपर टूटता पाप का; भीड़ में एकाध बूंद तुम पर पड़ जाए तो पड़ जाए। एक बूंद की कौन चिंता करता है!
फिर भीड़ में तुम सदा उत्तरदायित्व दूसरे पर टाल सकते हो--कि महात्मा
ने कहा था, कि मौलवी ने कहा था, कि पंडित ने कहा था। मैं क्या करूं? मैंने तो सिर्फ माना। मैंने किया नहीं, मैंने तो आदेश पालन किया है।
अभी कल ही मैं पढ़ रहा था कि अमरीका और रूस के वैज्ञानिक ऐसे कंप्यूटर बनाने में सफल हो गए हैं जो बिल्कुल मनुष्यों जैसे हैं। पढ़ा तो मैंने सोचाः और आगे पढूं। मनुष्यों जैसे अगर कंप्यूटर बनाने में सफल हो गए हैं तो बहुत बड़ी उपलब्धि है। लेकिन वह एक व्यंग्य था। आगे कहा गया था कि मनुष्यों जैसे कंप्यूटर बनाने में समर्थ हो गए हैं, क्योंकि अब उन्होंने ऐसे कंप्यूटर बना लिए हैं, जो भूल तो खुद करते हैं, दोष दूसरे को देते हैं। मशीनें अब तक इतनी चालाक नहीं थीं--कि मैं क्या करूं, उत्तरदायित्व दूसरे का है!
और यह सारा मनुष्य का दुर्गंधयुक्त अतीत एक बुनियाद पर खड़ा है कि हमने प्रेम को दबाया। हमने प्रेम के फूल न खिलने दिए। हमने प्रेम की खाद इकट्ठी कर ली। और जिससे सुगंध पैदा हो सकती थी, उससे केवल दुर्गंध पैदा हुई।
इसलिए मेरी मौलिक देशना हैः प्रेम को सीढ़ी समझो। उसका एक छोर पृथ्वी
पर है और दूसरा छोर आकाश में। प्रेम की सीढ़ी पर ऊर्ध्वगमन करो। प्रेम को निखारो, शुद्ध करो। निखारो--कामना से, वासना से, क्रोध से, वैमनस्य से, ईर्ष्या से, प्रतिस्पर्धा से।
मुल्ला नसरुद्दीन सुबह-सुबह चाय पीते वक्त अपनी पत्नी से बोला, कहना
तो नहीं चाहिए, लेकिन तुझसे मैं कुछ छिपाना भी नहीं चाहता। दुख तुझे होगा, मगर ध्यान रखना यह केवल सपने की बात है, यह कोई सच नहीं है। नाहक तूल मत दे देना। तिल का पहाड़ मत बना लेना। इधर कुछ दिनों से रात सपने में रोज तेरी सहेली को देखता हूं।
पत्नी तो भन्ना गई। सपने में ही सही, मगर ईर्ष्या जग उठी। चाय की केतली उसने जमीन पर पटक दी।
मुल्ला ने कहा, मैंने पहले ही कहा था कि यह सिर्फ सपने की बात है।
पत्नी ने कहा, तो फिर तुम भी सुन लो, मैं भी कहना नहीं चाहती थी। मेरी सहेली अकेली ही दिखाई पड़ती होगी सपने में।
मुल्ला ने कहा, यह बात तो सच है, लेकिन तुझे कैसे पता चला?
उसने कहा, क्योंकि उसका पति तो मेरे सपने में आता है।
मुल्ला ने लकड़ी उठा ली, डंडा उठा लिया।
पत्नी ने कहा, सपना ही है, ऐसे क्या भन्नाए जाते हो!

मगर ईर्ष्याएं ऐसी हैं। ईर्ष्याएं घेरे हुए हैं तुम्हारे प्रेम को; वैमनस्य घेरे हुए है; घृणा घेरे हुए है। और अगर इस कारण तुम्हारा प्रेम नरक बन जाता है तो प्रेम का कसूर नहीं है। तुमने प्रेम में जहर घोल दिया है। और जहर को तो निकालोगे नहीं; कहते हो, प्रेम को ही फेंकेंगे तब वैराग्य पैदा होगा।
अंग्रेजी में कहावत है कि जब बच्चे को टब में नहलाओ तो गंदे पानी के साथ बच्चे को भी मत फेंक देना। बच्चे को तो बचा लेना, गंदे पानी को फेंक देना। लेकिन यही होता रहा है। सदियों-सदियों में तुमने गंदे पानी के साथ बच्चे भी फेंक दिए हैं। फिर रोते हो, फिर तड़पते हो, क्योंकि सीढ़ी टूट जाती है--और वही सीढ़ी परमात्मा से जोड़ने वाली है।
इसलिए आनंद मैत्रेय, मैंने बार-बार कहा हैः गणित या ज्ञान से उपजा वैराग्य झूठा है।
और तुम्हारा तथाकथित साधु-महात्मा ज्ञान और गणित से ही चलता है। वह वैराग्य भी क्या वैराग्य है जिसमें गणित हो? गणित का अर्थ होता हैः लोभ। गणित का अर्थ होता हैः हिसाब। गणित का अर्थ होता हैः यहां छोड़ेंगे तो स्वर्ग में पाएंगे। मगर क्या पाओगे स्वर्ग में?
तुम जरा, दुनिया के धर्मों ने स्वर्ग की जो तस्वीरें खींची हैं, उन पर ध्यान तो दो। तो साधारण बुद्धि का आदमी भी देख पाएगा जालसाजी। जो तुम यहां छोड़ते हो वही हजार गुना, लाख गुना, करोड़ गुना होकर वहां मिलेगा। यह कोई छोड़ना हुआ! यहां तुमने एक पत्नी छोड़ी और वहां अप्सराएं पाओगे! और पत्नी तो तुम्हारी साधारण पत्नी थी, हड्डी-मांस-मज्जा की देह वाली थी। अप्सराएं स्वर्ण-काया की हैं! उनकी देह से पसीना नहीं बहता, इत्र झरता है। और वे कभी वृद्ध नहीं होतीं। उनकी उम्र जो अटकी है सोलह पर सो अटकी ही है। सदियां बीत गईं, अप्सराएं अभी भी सोलह की हैं। उर्वशी की उम्र अभी भी सोलह ही वर्ष है। एक दिन आगे नहीं बढ़ती।
और वहां कल्पवृक्ष हैं, जिनके नीचे बैठ कर तुम जो भी चाहोगे तत्क्षण पूरा होगा। तत्क्षण! इस जगत में तो कुछ चाहो तो फिर श्रम करना होता है, वर्षों प्रतीक्षा करनी होती है। फिर भी मिलेगा या नहीं मिलेगा, यह पक्का नहीं है। क्योंकि और भी प्रतिस्पर्धी हैं, और भी लोग उसी को पाने चले हैं। लेकिन कल्पवृक्ष के नीचे तत्क्षण, समय नहीं लगता। इधर चाहा, उधर हुआ। मैंने सुना है, एक आदमी भूला-भटका गलती से स्वर्ग पहुंच गया। गलतियां
तो सब जगह होती हैं।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन, जब मोरारजी देसाई प्रधानमंत्री थे, तो उनसे मिलने गया। मुल्ला को गैरिक वस्त्रों में देख कर मोरारजी तो आगबबूला हो गए। मेरे बहुत से संन्यासियों ने मुझे आकर कहा है कि उनके पास गैरिक वस्त्रों में जाने का बड़ा आनंद है, वे एकदम आगबबूला हो जाते हैं। होश ही खो देते हैं। कुछ का कुछ कहने लगते हैं। अल्ल-बल्ल बकने लगते हैं। जैसे लाल झंडी देख कर सांड़ भड़क जाते हैं, ऐसे गैरिक वस्त्र देख कर मोरारजी भड़क जाते हैं।
तो उन्होंने मुल्ला को देखते ही उससे कहा, मुल्ला, बुढ़ापे में तुम्हें यह क्या सूझी? तुम भी रजनीश के चक्कर में आ गए! तुमसे ऐसी आशा न थी। तुम्हें क्या हो गया?
मुल्ला ने कहा, क्या करूं? जब से इस आदमी को देखा तब से मुझे भरोसा आया
कि ईश्वर है।
मोरारजी ने कहा, अच्छा! तो मुझे देख कर तुम्हें क्या ख्याल आता है? नसरुद्दीन ने कहा, आपको देख कर ख्याल आता है कि ईश्वर से भी गलती हो सकती है।
गलतियां सब जगह होती हैं। तुम खुद ही सोचो, अगर ईश्वर से गलती न होती
तो तुम कैसे होते? तुम हो, यह काफी प्रमाण है कि ईश्वर से भी भूल-चूक होती है।
तो यह आदमी भूल-चूक से स्वर्ग पहुंच गया। थका-मांदा था, एक वृक्ष के नीचे लेटा। उसे क्या पता कि यह कल्पवृक्ष है! जब लेटने लगा, कंकड़-पत्थर थे, ऊबड़-खाबड़ जमीन थी--सोचा कि इतना थका हूं कि इस समय अगर सोने के लिए एक सुंदर शय्या मिल जाती, ठीक से विश्राम हो जाता! ऐसा उसका सोचना ही था कि एकदम

जैसे शून्य से एक सुंदरतम शय्या प्रकट हुई! सम्राट जिसको देख कर तरस जाएं! वह इतना थका-मांदा था कि उसने यह सोचा भी नहीं कि यह कहां से आई, कैसे आई। वह तो गिर पड़ा और सो गया। जब दो घंटे, तीन घंटे बाद सुस्ता लिया, आंख खुली, बहुत भूख लगी थी, सोचा कि इस समय अगर सुस्वादु भोजन कहीं मिल जाए, कहीं कोई पास में होटल-रेस्तरां इत्यादि होता... यहां कोई दिखाई भी नहीं पड़ता। ऐसी भूख मेरे जीवन में कभी लगी न थी! उसका ऐसा सोचना था कि एकदम थालियों पर थालियां लिए अप्सराएं उपस्थित हो गईं। थोड़ा संदेह तो हुआ, मगर भूख इतनी थी कि जल्दी से वह भोजन करने में लग गया। जब भोजन कर चुका, विश्राम कर चुका, तब उसे ख्याल आया कि यह मामला क्या है? यह कहां से बिस्तर आया? और कहां से यह भोजन? और कहां से ये सुंदर स्त्रियां? एकदम आकाश से उतर आईं! कहीं कोई भूत-प्रेत तो नहीं है? और एकदम भूत-प्रेत मौजूद हो गए। भूत-प्रेतों को देख कर उसने कहा, मारे गए! अब मारे गए! और वे झपट पड़े और उन्होंने उसकी गर्दन दबा दी और उस आदमी को मार डाला।
कल्पवृक्ष के नीचे तुम जो सोचोगे वह तत्क्षण हो जाता है। कभी भूल-चूक
से पहुंच जाओ कल्पवृक्ष के पास, तो थोड़ा समझ-सोच कर... ऐसी उलटी-सीधी बातें मत सोचना कि कहीं भूत-प्रेत तो नहीं हैं? अब मारे गए!
किनने ये कल्पवृक्ष ईजाद किए हैं? ये उन्हीं लोगों ने, जिन्होंने यहां थोड़ा कुछ दबाया है, कुछ त्यागा है। और किनने ये अप्सराएं पैदा की हैं?
उन्हीं ने जिन्होंने स्त्रियों को नरक का द्वार कहा है। उन्हीं शास्त्रों में स्त्रियां नरक का द्वार हैं, उन्हीं शास्त्रों में अप्सराओं का वर्णन है--जो उनको मिलेंगी जो पुण्यात्मा हैं।
एक महात्मा मरे। संयोग की बात, उनका प्रमुख शिष्य भी घड़ी भर बाद मर गया। शायद दुख में ही मर गया हो। शिष्य चला जा रहा था स्वर्ग की तरफ सोचता हुआ कि मेरे गुरु को तो उर्वशी से कम कोई नहीं मिला होगा। थे भी तो महात्मा बड़े। उर्वशी पैर दाब रही होगी। अहा! शिष्य ने सोचाः आज गुरु के सारे त्याग-तपश्चर्या का फल आनंद की तरह उन पर बरस रहा होगा। और जब पहुंचा स्वर्ग तो जो देखा, भरोसा आ गया कि जो सोचा था ठीक था। एक बड़ी सुंदर स्त्री गुरु के गले लिपटी थी। शिष्य एकदम पैरों पर गिर पड़ा और उसने कहा कि हे गुरुदेव, आज बिल्कुल सिद्ध हो गया कि थे आप महात्मा पहुंचे हुए, कि किए थे पुण्य आपने, कि की थी तपश्चर्या। वृक्ष फलों से जाने जाते हैं और महात्माओं का भी अंतिम निर्णय स्वर्ग में होता है। मालूम होता है बाई उर्वशी है! क्या गले लिपटी है!
गुरु ने कहा, उल्लू के पट्ठे, तू उल्लू का पट्ठा ही रहा! अरे नासमझ... ! शिष्य ने कहा, इसमें नासमझी कैसी? अरे आपको आपके पुण्यों का फल मिल रहा है।
गुरु ने कहा, फिर मैं कहता हूं कि जरा गौर से देख। मेरे पुण्यों का फल
यह स्त्री नहीं है; इस स्त्री के पापों का फल मैं हूं। इसको दंड दिया जा रहा है। अब मुझसे ज्यादा हड्डी-हड्डी, क्योंकि तपश्चर्या में... मुझसे ज्यादा दुर्गंधयुक्त, क्योंकि वर्षों से मैं नहाया नहीं, क्योंकि स्नान तो शरीर को सजाना है,शृंगार है... मुझसे ज्यादा घबड़ाने वाला, क्योंकि राख पोते-पोते जिंदगी बिताई--और कहां मिलेगा! मैं इसका दंड हूं, यह मेरा पुरस्कार नहीं।
मगर जिन्होंने सोचे हैं ये पुरस्कार, वे कौन लोग हैं? यह अपनी वासनाओं
को ही पीछे के द्वार से वापस ले आना है।
जो प्रेम को दबाएगा वह कभी वासना से मुक्त न हो पाएगा। उसके जीवन में दुर्गंध ही दुर्गंध हो जाएगी। हां, ऊपर से वह आवरण ढांक लेगा; भीतर मवाद होगी, ऊपर से फूल सजा लेगा। मैं नहीं कहता प्रेम को दबाओ। और मैं नहीं कहता गणित से सोचो। गणित का सोचना तो लोभ है, लोभ का ही विस्तार है गणित। गणित की भाषा ही लोभ की भाषा है, और कुछ उसे दिखाई ही नहीं पड़ता।
एक जहाज डूब रहा था। सारे लोग घबड़ा रहे हैं, परेशान हो रहे हैं, लेकिन
एक मारवाड़ी निश्चिंत बैठा हुआ है। आखिर किसी ने कहा कि सेठजी, जहाज डूब रहा है!

तो उस मारवाड़ी ने कहा, तो अपने बाप का क्या डूब रहा है? सरकारी जहाज है, डूबने दो!
गणित तो लोभ की भाषा में सोचता हैः अपना क्या है? कल का डूबता आज डूब जाए। लेकिन किसी ने कहा कि यह तो ठीक कह रहे हैं आप कि अपना जहाज नहीं है, मगर जहाज में हम भी डूबेंगे।
मारवाड़ी ने कहा, इंश्योरेंस करवा कर चलता हूं। बीमा करवाया है। तुम जैसा बुद्धू नहीं हूं।
मरने की फिक्र नहीं है। शायद मारवाड़ी हिसाब लगा रहा हो कि अहा, आ गया मौका! अब निकला इंश्योरेंस कंपनी का दीवाला! मौत की चिंता नहीं है, हिसाब-किताब है। और यही मारवाड़ी महात्मा हो जाता है, तब भी इसका हिसाब-किताब जारी रहता है। तब यह सोचता हैः इतने व्रत किए, इतने उपवास किए, कितना लाभ मिलेगा? तब भी हिसाब-किताब है।
जहां लोभ है, वहां कहां वैराग्य! वैराग्य लोभ से पैदा नहीं होता। और
जो वैराग्य लोभ से पैदा होता है, झूठा होता है। वैराग्य तो पैदा होता है प्रेम की परम शुद्धि से। जैसे सोने को हम आग में डालते हैं और निखर कर कुंदन बन कर निकलता है, ऐसे ही जब हम प्रेम को ध्यान की आग से गुजारते हैं तो जो शुद्ध स्वर्ण की तरह प्रेम उपलब्ध होता है--जिसमें न वासना होती है, न कामना होती है, न कोई हेतु होता, न कोई पाने की आकांक्षा, न कुछ खोने का डर--सिर्फ एक आनंद-उत्सव शेष रह जाता है! एक गीत होता है--शब्द-शून्य! एक संगीत होता है--ध्वनि-मुक्त! अनाहत का नाद होता है। एक प्रफुल्लता होती है। एक झरता हुआ आनंद का झरना होता है तुम्हारा हृदय। तुम अस्तित्व के साथ प्रेमलीन होते हो। नहीं कि तुम किसी को प्रेम करते हो, बल्कि तुम प्रेम होते हो! तब वैराग्य एक नये अर्थों में प्रकट होता है--विधायक अर्थों में। तब वैराग्य की महिमा बहुत है। और नहीं तो पीछे के दरवाजे से सब चीजें लौट आती हैं। दमन से न कभी कोई मुक्त हुआ है और न कभी कोई मुक्त हो सकता है। मुल्ला नसरुद्दीन को अभी-अभी डाकिया चिट्ठी दे गया था। नसरुद्दीन ने लिफाफा खोला तो ढब्बूजी भी उचक कर देखने लगे कि आखिर किसकी है! इस पर नसरुद्दीन ने लिफाफा उनके हाथ में रख दिया और कहा कि लो, खुद पढ़ कर देख लो। गुलजान ने भेजी है मायके से।
ढब्बूजी ने चिट्ठी खोल कर देखी जो चौंक कर बोले, लेकिन यह तो कोरा कागज है!
हां, आजकल मेरी और उसकी बोलचाल बंद है--नसरुद्दीन ने मायूसी से जवाब दिया--जब से झगड़ा करके गई है, ऐसे ही पत्र डालती है।
मगर पत्र जारी हैं! पीछे के दरवाजे से! पत्र डालना बंद नहीं हुआ।
ऐसे ही तुम्हारा तथाकथित विरागी होता है। ऊपर-ऊपर से वैराग्य, भीतर-भीतर सारी वासनाएं, सारी कामनाएं दबी हुई--दमित चित्त। मनोविज्ञान की दृष्टि से रुग्ण है तुम्हारा विरागी। मैं जिसे वैराग्य कह रहा हूं वह स्वस्थ वैराग्य है। और वह तो प्रेम से ही पैदा हो सकता है। क्योंकि प्रेम, तुम्हारे भीतर जो श्रेष्ठतम है, उसकी अभिव्यक्ति है। प्रेम तुम्हारे भीतर परमात्मा की किरण है। प्रेम तुम्हारे भीतर प्रार्थना का बीज है। इस बीज को बोओ! सींचो!
अंसुअन जल सींचि-सींचि प्रेमबेल बोई! स्मरण करो मीरा को। और ऐसे ही पानी से नहीं सींची जाएगी यह प्रेम की बेल। अंसुअन जल सींचि-सींचि प्रेमबेल बोई! जिस प्रेम की बात मीरा ने कही है, उसी प्रेम की बात मैं भी कह रहा हूं। आंसुओं से सींचो इसे। अपने प्राणों को ढाल दो। मिट जाओ प्रेम में। और तुम्हारे भीतर वैराग्य का फूल खिलेगा--सहस्रदल कमल खिलेगा। तब तुम संसार में रहोगे और संसार के बाहर; जल में जैसे कमल तैरे! कहीं भागना न होगा, पलायन न करना होगा। जीवन को उसकी परम गहराई में जीने की क्षमता आएगी। क्योंकि परमात्मा जीवन की गहराइयों में छिपा है; भगोड़ों को नहीं मिलता। जो भागा वह चूका। परमात्मा मिलता है--जागने से, भागने से नहीं। और प्रेम जिस भांति जगाता है, कोई और चीज नहीं जगाती।
स्मरण करो पलटू के वचन! बार-बार पलटू कहते हैं कि जब से प्रेम उठा है
तब से नींद खो गई। जब से प्रेम जगा है तब से कैसे नींद! पता नहीं कब आ जाए मालिक, किस क्षण द्वार पर दस्तक दे दे!

कभी प्रेम में किसी की प्रतीक्षा की है? फिर नींद कहां? नींद में भी चौंक-चौंक पड़ते हो। अगर मेहमान घर आने को है, प्यारा मेहमान घर आने को है, तो रात भर जाग कर प्रतीक्षा करते हो। हवा चलती है जोर से, द्वार, खिड़की- दरवाजे खड़-खड़ होते हैं--भाग कर द्वार पर आ जाते हो, कहीं मेहमान आ तो नहीं गया! कोई भी निकलता है राह से, और लगता है उसी की पदचाप! डाकिया आता है, लगता है उसी का पत्र! याद भीतर सघन है तो कैसे सोओगे?
पलटू ठीक कहते हैंः जिसके भीतर प्रेम जगा, उसकी नींद खो गई।
जबरदस्ती अपने को जगाने वाले लोग भी हैं। मैं एक गांव में गया था। लोगों ने कहा कि इस गांव में एक बड़े महात्मा हैं, उनका नाम है खड़ेश्री बाबा! वे दस साल से खड़े ही हुए हैं।
मैंने कहा, पागल होंगे। क्योंकि परमात्मा ने दस साल तक खड़े होने की किसी को भी आज्ञा नहीं दी है। परमात्मा भीतर से खबर देता है कि अब थक गए, अब बैठो, कि अब लेटो, कि अब विश्राम करो। और क्या गुण हैं उनमें?
कहा, नहीं, और तो कोई गुण नहीं हैं। मगर यह कोई कम बात है, दस साल से खड़े हैं!
मैंने कहा, खड़े होने का आयोजन क्या है?
आयोजन यह है कि रस्सियां लटका रखी हैं। हाथ रस्सियों से बांध रखे हैं। पैरों को डंडों से बांध दिया है, ताकि वे झुक न जाएं। नहीं तो दस साल कोई खड़ा रहेगा! सारा शरीर सूख गया है और पैर हाथी-पांव हो गए हैं, सूज गए हैं। सारा खून पैरों में समा गया है।
इस विक्षिप्त आदमी को महात्मा की तरह पूज रहे हो! दिन-रात पूजन चल रही है!
मैंने कहा, कभी उनसे पूछा है कि क्यों खड़े हो?
तो उन्होंने कहा, ताकि नींद न आ जाए। क्योंकि कृष्ण ने गीता में कहा है--या निशा सर्वभूतायाम तस्याम जागर्ति संयमी। जब सब सो जाएं तब भी संयमी जागता है।
मगर, मैंने कहा, कभी कृष्ण को तुमने किसी कहानी में, किसी पुराण में देखा कि ऐसे रस्सियां बांध कर और हाथ बैसाखियों पर रख कर और पैरों में डंडे बांध कर खड़े रहे हों? सोते थे, विश्राम करते थे। कृष्ण की मृत्यु ही ऐसे हुई। एक वृक्ष के तले विश्राम कर रहे थे, तब किसी शिकारी ने भ्रांति से, भूल से उनके पैर में तीर मार दिया। उससे उनकी मृत्यु हुई। खड़ेश्री बाबा नहीं थे वे, सोयेश्री बाबा थे।
उनका अर्थ कुछ और हैः भीतर चित्त जागा रहे। देह को तो विश्राम चाहिए। देह तो मिट्टी की है। मिट्टी थक जाती है, उसकी सीमा है। लेकिन चेतना अथक जागी रह सकती है। मगर ये चेतना को जगाने के उपाय पागलखाने में ले जाने योग्य हैं। ये उपाय नहीं हैं चेतना को जगाने के। चेतना को जगाने का सम्यक उपाय हैः प्रीति! परमात्मा के प्रति प्रेम जगे। यही प्रेम जो तुमने अभी क्षुद्र चीजों से लगा रखा है--किसी ने धन से, किसी ने पद से, किसी ने प्रतिष्ठा से--यही सारा प्रेम तुम परमात्मा की तरफ उंडेल दो, इसे एकाग्र करो। यह जो हजार धाराओं में बंट गया है--पलटू कहते हैं, यह जो पांच-पच्चीस हो गया है--इसको इकट्ठा करो, एक धारा बनाओ, ताकि यह सागर तक पहुंच जाए। लेकिन लोग अपने ढंग से सोचते-समझते हैं। किसी ने जागने का अर्थ ले लिया कि बस खड़े रहेंगे, नींद नहीं आएगी, तो परम ज्ञान को उपलब्ध हो जाएंगे। ऐसे पागल हुए हैं जिन्होंने आंख की पलकें उखाड़ कर फेंक दीं, ताकि न होगा बांस न बजेगी बांसुरी! मगर तुम्हें पता है, पलकें भी उखाड़ कर फेंक दो तो भी नींद लग जाएगी!
मैं एक महिला को जानता हूं, जिसकी एक पलक में कुछ खराबी आ गई थी कि उसका सहज बंद होना और खुलना बंद हो गया था। हाथ से बंद करो तो बंद हो जाती थी, खोलो तो खुल जाती थी। उसको नींद में भी तुम खोल दो उसकी आंख, तो खुल जाती थी। और आंख बिल्कुल पथरीली, सोई हुई। अक्सर वह खुली आंख से सोई रहती थी। मेरे घर मेहमान थी। मेरे पड़ोस में कुछ बच्चे जो मेरे पास आते थे, उनसे मैंने कहा, तुम्हें एक चमत्कार देखना है? तुमने कोई व्यक्ति देखा जो एक आंख बंद करके सोता हो?
उन्होंने कहा कि नहीं देखा।

तो तुम जाकर कमरे में देख लो।
दोपहर थी, गरमी और वह महिला सो रही थी। उन बच्चों ने झांक कर देखा। वे
तो घबड़ा कर बाहर आ गए। उन्होंने कहा, यह बात तो सच है। उसकी एक आंख खुली, एक बंद। इस महिला को कहां से ले आए आप? और बड़ा डर लगता है देख कर।
रात में तुम भी अगर किसी को एक आंख खुली और एक आंख बंद सोए देखो तो एक बार तो भीतर घबराहट पैदा हो जाएगी कि अब पता नहीं यह और क्या करे! एक तो स्त्री, फिर एक आंख खोले और एक आंख बंद! अब पता नहीं आगे क्या करे! भाग निकलो!
लोग श्रेष्ठतम सिद्धांतों से भी अपनी विक्षिप्तता के अनुकूल अर्थ निकाल लेते हैं।
ढब्बूजी ने अखबार में शराब की बुराइयां छपी देखीं तो अखबार फेंकते हुए कहा, बंद! आज से बिल्कुल बंद!
पास ही बैठे चंदूलाल ने पूछा, ढब्बूजी, क्या बंद कर रहे हो? क्या शराब पीना?
जी नहीं, अखबार लेना--ढब्बूजी ने जवाब दिया।
मुल्ला नसरुद्दीन ने भी एक दफा शराब पीना छोड़ने की कसम खा ली। मुश्किल थी तो एक कि बाजार जाए, दफ्तर जाए, कहीं भी जाए तो बीच में शराबघर पड़ता था। उससे बचने का कोई उपाय नहीं था। रास्ता एक ही था गांव में। वही घबड़ाहट थी कि घर तो किसी तरह हिम्मत बांधे बैठे रहेंगे। इसीलिए तो तुम्हारे साधु-संन्यासी जंगल भाग जाते हैं। डर लगता है, क्योंकि यहां परिस्थितियां ऐसी हैं कि असलियत प्रकट हो जाएगी--चुनौती। अब मुल्ला क्या करे, क्या न करे! दफ्तर जाना होगा, सब्जी भी खरीदने बाजार जाना होगा, और हजार काम हैं--और एक ही रास्ता है गांव में और बीच में ही पड़ता है शराबघर। एक दिन तो गया ही नहीं।
पत्नी ने कहा, ऐसे नहीं चलेगा। यह तो और महंगा पड़ जाएगा। इससे तो तुम अपनी शराब पीनी जारी रखो तो ठीक रहेगा। अगर तुम दफ्तर ही न गए तो हम तो भूखे मर जाएंगे। फिर सब्जी कौन लाएगा? और बाजार से सामान कौन खरीदेगा? और खरीदने को पैसे ही कहां से आएंगे? शराब पीते थे, कम से कम तुम आधी तनख्वाह उड़ा देते थे, ठीक है, आधी तो बचती थी!
मुल्ला ने कहा, जब कसम खाई है तो निभाऊंगा। जाऊंगा बाजार भी। चला, मन
ही मन में कुरान की आयतें पढ़ रहा है, अपनी हिम्मत बढ़ा रहा है कि मत घबरा। अपने से कह रहा हैः अरे इतने लोग निकल जाते हैं बिना पीए शराबघर के सामने से, तो तू भी मर्द है! दृढ़ संकल्प रख! शराबघर आ गया, पैर डगमगाने लगे, मन डांवाडोल होने लगा। मुल्ला ने कहा कि नहीं, बिल्कुल नहीं! आंख से भी नहीं देखा शराबघर की तरफ, आंख भी नीचे रखी।
बौद्ध भिक्षु चार फीट ही देख कर चलते हैं। सिर्फ डर के कारण--कोई स्त्री दिखाई पड़ जाए! अब जब तुम चार फीट ही देखोगे तो ज्यादा से ज्यादा स्त्री के पैर दिखाई पड़ेंगे, और क्या दिखाई पड़ेगा! और पैर दिखाई पड़ गए तो और तीन ही फीट देखना। और घबड़ा जाना तो आंख ही बंद कर लेना। इधर-उधर नहीं देखता बौद्ध भिक्षु, क्योंकि कुछ दिखाई पड़ जाए, प्रलोभन आ जाए, आकर्षण पैदा हो जाए। यह कोई त्याग है!
मुल्ला नीचे जमीन की तरफ देखता हुआ चला जा रहा है। और उसे पता है, जिंदगी भर तो शराबघर आया है कि कब शराबघर आता है! हालांकि नीचे देख रहा है, मगर भीतर तो शराबघर दिखाई पड़ने लगा कि आ गया, अब बिल्कुल बगल में है, अब बिल्कुल सामने हूं। अब तो भागने लगा, क्योंकि अगर धीमे चला तो उसे डर है कि कहीं मुड़ न जाए शराबघर की तरफ। सौ कदम आगे निकल गया, तब रुका, अपनी पीठ ठोंकी और कहा, शाबाश नसरुद्दीन! आ, अब इस खुशी में तुझे पिलाते हैं! पहुंच गया शराबघर वापस। उस दिन दुगुनी पी। आखिर खुशी भी तो मनानी होगी। संकल्प की ऐसी विजय कि सौ कदम आगे निकल गया बिना शराबघर की तरफ देखे!
ये ही पीठ ठोंकने वाले महात्मा स्वर्गों में अप्सराएं भोगने की आकांक्षाएं कर रहे हैं।
नहीं, मैं इन गणितों में भरोसा नहीं करता हूं। मेरा भरोसा प्रेम में है, हृदय में है; मस्तिष्क में नहीं। मैं तुमसे नहीं कहता कि तुम यह त्याग कर दो तो तुम्हें यह मिलेगा। यह कोई त्याग हुआ जब मिलने की बात पहले ही तय

करवा ली? लोग मुझसे आकर पूछते हैं कि हम व्रत करेंगे तो क्या मिलेगा? उपवास करेंगे तो क्या मिलेगा? मिलेगा क्या, पहले तय हो जाना चाहिए। यहां तक कि लोग मुझसे आकर पूछते हैंः ध्यान करेंगे तो क्या मिलेगा? मिलना सुनिश्चित हो जाए, गारंटी हो जाए, तो फिर सब कुछ करने को राजी हैं।
यह व्यवसायी चित्त, यह मारवाड़ी चित्त, यह धार्मिक कैसे हो सकता है? असंभव है! धार्मिक चित्त एक और ही अभियान है, एक और ही आयाम है। धार्मिक चित्त यह नहीं पूछता कि क्या मिलेगा? इसका फल क्या होगा? धार्मिक चित्त यह पूछता है कि मैं दुख में हूं, क्यों हूं दुख में? मैं नरक में हूं, क्यों हूं नरक में? कैसे मैंने यह नरक निर्मित किया है? मैं इतना मूर्च्छित क्यों हूं कि अपने लिए मैंने दुख के जाल बुन लिए हैं? मुझे होश कैसे आए? वह यह नहीं पूछता कि होश से मुझे क्या मिलेगा। वह सिर्फ इतना ही पूछता है कि होश मुझे आ जाए, ताकि मैं ये जो दुख के जाल निर्मित किए चला जाता हूं, और निर्मित न करूं।
और जहां दुख नहीं है वहां आनंद अपने आप झरता है। मूर्च्छा दुख है, जागरण आनंद है। जागरण का फल नहीं है आनंद--जागरण स्वयं आनंद है। मूर्च्छा का फल नहीं है दुख--मूर्च्छा स्वयं दुख है। और प्रेम से ज्यादा जगाने वाली कोई और कीमिया नहीं है।
इसलिए मैं, आनंद मैत्रेय, यही कहता हूं कि जो वैराग्य प्रेम से पैदा होता है, प्रभु-प्रेम से, वही वैराग्य सच्चा है। जिस वैराग्य में पाने की कोई कामना छिपी है, कोई हिसाब छिपा है--इतना करूं, इतना पाऊं--वह दुकानदारी है, वह वैराग्य नहीं है। और ऐसा वैराग्य जो दुकानदारी है, गणित है, हिसाब-किताब है--हमेशा उदास होगा। क्योंकि मिलेगा तो मृत्यु के बाद, क्या भरोसा? क्या पक्का है? कोई गारंटी तो नहीं। मृत्यु के बाद बचोगे भी, इसकी भी कोई गारंटी नहीं। बच भी गए, तो जो बेईमान यहां सब सुख भोग रहे हैं, वे बेईमान वहां भी बेईमानी न कर जाएंगे, इसका क्या पक्का पता है? जो लुच्चे-लफंगे यहां छीन रहे हैं तुमसे सुख, वे वहां भी नहीं छीन लेंगे, इसका क्या पक्का पता है? स्वर्ग में भी तुम सोचते हो कि दादागिरी नहीं चलती होगी? दादा लोग कहां जाएंगे? तुम स्वर्ग में घुस भी पाओगे? दादा घुसने भी देंगे? जो यहां छाती पर चढ़ बैठे हैं उन्हें छाती पर चढ़ बैठने का अभ्यास हो गया है। और तुम्हें उन्हें छाती पर बिठाए रखने का अभ्यास हो गया है। क्या पक्का, वहां भी बात यही रहे कि वे फिर तुम्हारी छाती पर चढ़ जाएं। और तुम्हें भी अच्छा न लगेगा जब तक कोई तुम्हारी छाती पर चढ़ कर न बैठ जाए; तुम्हें भी खाली-खाली लगेगा, सूना-सूना लगेगा। जैसा यहां है वैसा ही वहां होगा। क्या पक्का कि इससे अन्यथा नियम काम वहां करेगा? आखिर यह जगत भी तो परमात्मा का है! अगर उसका नियम यहां काम नहीं कर रहा है तो स्वर्ग भी उसी का है, उसका नियम वहां कैसे काम करेगा? इसलिए संदेह उठता है, शक उठता है।
जहां तर्क है वहां संदेह है। जहां विश्वास है वहां संदेह है। तो तुम किसी तरह छोड़ते हो थोड़ा-बहुत, मगर संदेह से भरे हुए, पता नहीं! मगर इस आशा में कि कौन जाने... तो अगर हजार कमाते हो तो दस रुपये दान भी कर दो, तो परलोक भी सम्हला रहेगा। वहां भी थोड़ा बैंक बैलेंस होगा। वहां भी जाकर कहने को तो होगा कि मैंने कुछ दान किया था, पुण्य किया था, उसका बदला चाहिए।
एक आदमी मरा। द्वारपाल ने स्वर्ग पर उससे पूछा कि कुछ दान किया है? कुछ पुण्य किया है?
उसने कहा, हां, एक बूढ़ी स्त्री को मैंने तीन पैसे दिए थे।
द्वारपाल मुश्किल में पड़ा--क्या करे, क्या न करे! किताबें खोलीं, बात
सच थी, तीन पैसे उसने दिए थे। द्वारपाल ने अपने सहयोगी से कान में पूछा कि अब क्या करें? इसने पुण्य तो किया है, इसको स्वर्ग मिलना चाहिए। मगर कुल तीन पैसे में स्वर्ग पा ले यह, तो बहुत सस्ता हो गया मामला। इसको एकदम नरक भी नहीं भेज सकते, क्योंकि पुण्यात्मा और नरक जाए! तीन ही पैसे का सही पुण्य, लेकिन पुण्यात्मा नरक जाए तो पुण्य पर श्रद्धा उठ जाएगी।
सहयोगी ने कहा, ऐसा करें, इसको तीन पैसे भी दे दें ब्याज सहित और नरक भेजें। और क्या करेंगे? बहुत से बहुत ब्याज ले ले, और क्या करेगा!
तो मैं तुमसे कहे देता हूंः गणित से तुम चलोगे, तो ज्यादा से ज्यादा ब्याज पाओगे। जिंदगी से चूक जाओगे।

जिंदगी उनकी है जो गणित से मुक्त हो जाते हैं; जो हिसाब-किताब से ऊपर उठते हैं, अतिक्रमण करते हैं; जो प्रेम से जीते हैं। जो हृदय से जीते हैं, जिंदगी उनकी है। और जिनकी जिंदगी है उन्हीं का परमात्मा है। और जिनकी जिंदगी है उनका स्वर्ग कल नहीं है, भविष्य में नहीं है, मौत के बाद नहीं है। उनका स्वर्ग अभी है और यहीं है। वे स्वर्ग में ही हैं।
प्रेम को निखारो! प्रेम का दीया जलाओ! प्रेम की दीपावली मनाओ! प्रेम
की फाग खेलो! प्रेम के रंग-गुलाल उड़ाओ! जरूर प्रेम अभी बहुत कीचड़ में पड़ा है, लेकिन कीचड़ से ही तो कमल पैदा होते हैं। कीचड़ से मुक्त करो कमल को। मगर नष्ट मत कर देना। नष्ट कर दिया तो सीढ़ी ही टूट गई। नष्ट कर दिया तो नाव ही टूट गई। फिर उस पार कैसे जाओगे?
प्रेम की नाव बनाओ। यही नाव है--एकमात्र नाव, जो उस पार ले जा सकती है। हिम्मत चाहिए, परवाने की हिम्मत चाहिए--जो प्रेम में ज्योति पर झपट पड़ता है और मर जाता है। उतना साहस चाहिए--जो सब लोक-लाज खो देता है, छोड़ देता है। तो जरूर प्रेम तुम्हारे लिए अभी और यहीं स्वर्ग के द्वार खोल सकता है।

दूसरा प्रश्नः ओशो! आप कहते हैं कि जीवित बुद्ध ही तारते हैं।
तब यह कैसी विडंबना है कि बुद्धों को जीते जी निंदा मिलती है और मरने
पर पूजा? यह कैसा विधान है?

स्वरूप! इसमें न तो विडंबना है, न कुछ आश्चर्यचकित होने की बात। यह जीवन की सहज व्यवस्था है। जीवित बुद्ध ही तारते हैं, क्योंकि जो स्वयं ही जीवित नहीं है वह तुम्हें कैसे जीवन दे सकेगा? जिसका स्वयं का दीया बुझा है वह तुम्हारे बुझे दीये को कैसे जला सकेगा? जलते दीये के पास ही तुम बुझे दीये को लाओ तो बुझा दीया जलता है। ज्योति से ज्योति जले!
जीवित बुद्ध ही तारते हैं। अगर तुम डूब रहे हो तो कोई जिंदा आदमी ही तुम्हें बचा सकता है। घाट पर हजारों लाशें रखी रहें, तो उन लाशों में से एक भी छलांग लगा कर पानी में नहीं कूदेगी, तुम्हें बचाएगी नहीं। और जीवित भी लोग बैठे हों, लेकिन जीवित में भी केवल वही बचा सकता है तुम्हें जो तैरना जानता हो।
मैं एक बार नदी के किनारे बैठा था और एक आदमी डूबने लगा। मैं भागा। लेकिन जब तक मैं किनारे पर पहुंचूं, एक दूसरा आदमी जो और भी पास था किनारे के, वह कूद ही पड़ा था। तो मैं रुक गया। लेकिन वह जो आदमी कूद गया था, खुद ही डूबने लगा। पहले मुझे उसे बचाना पड़ा। एक की जगह दो आदमी बचाने पड़े। मैंने उस दूसरे आदमी से पूछा कि मेरे भाई, तुझे क्या हुआ?
उसने कहा, मैं भूल ही गया कि मुझे तैरना नहीं आता। इस आदमी को डूबते देख कर मैं एकदम कूद ही गया।
मुरदे तो कूद नहीं सकते। जिंदा कूद सकते हैं, लेकिन तभी काम आ सकते हैं जब उन्हें तैरना आता हो। तो मुरदे नहीं बचा सकते। जिंदा भी नहीं बचा सकते। जिंदा बुद्ध बचा सकते हैं। जिंदा बुद्ध का अर्थ हैः जिसे तैरना आता है; जो तैर गया सारा भवसागर। जो उस किनारे को देख कर लौटा है, वही तुम्हें उस किनारे तक पहुंचा सकता है, वही मार्गदर्शक हो सकता है।
लेकिन स्वरूप, तुम्हारा प्रश्न ठीक है कि जिंदा बुद्ध तारते हैं। लेकिन जिंदा बुद्धों को सिवाय गालियों के और कुछ भी नहीं मिलता। ऐसा क्यों?
इसीलिए कि वे तारते हैं और तुम तरना नहीं चाहते। उनकी हालत करीब-करीब ऐसी समझो कि एक स्कूल में एक मिशनरी ने अपने बच्चों को समझाया कि सप्ताह में कम से कम एक पुण्य का कार्य करना ही चाहिए।
बच्चों ने पूछा, लेकिन कौन सा पुण्य का कार्य? जैसे उदाहरण?
तो मिशनरी ने कहा, जैसे कोई बूढ़ी स्त्री रास्ता पार करना चाहती हो तो उसको हाथ पकड़ कर रास्ता पार करा देना चाहिए।
सात दिन बाद जब फिर मिशनरी स्कूल में आया, उसने बच्चों से पूछा कि याद
है पुराना पाठ? कोई पुण्य का कार्य किया? किस-किस ने किया?

तीन बच्चों ने जोर से हाथ हिलाए। उसने पहले बच्चे से पूछा, तूने क्या किया?
उसने कहा, मैंने एक बूढ़ी स्त्री को... होगी कोई नब्बे साल की; बहुत बूढ़ी, ऐसी बूढ़ी स्त्री मैंने पहले देखी ही नहीं थी। असल में, कौन बूढ़ियों को देखता है! मगर वह तो मैं चूंकि तलाश में ही था कि कोई बूढ़ी स्त्री मिले तो पुण्य करूं, तो मिल गई। तो मैंने उसे रास्ता पार करवाया।
शिक्षक ने उसकी पीठ ठोंकी और कहा, शाबाश! तूने अच्छा किया। ऐसा ही आगे
भी करना।
दूसरे से पूछा, तूने क्या किया?
उसने कहा, मैंने भी एक बूढ़ी स्त्री को पार करवाया। उम्र रही होगी कोई नब्बे वर्ष।
थोड़ा संदेह हुआ मिशनरी शिक्षक को कि दो बूढ़ी स्त्रियां, दोनों नब्बे वर्ष की, कहां मिल गईं! मगर कोई बड़ी आश्चर्य की बात नहीं, दो बूढ़ी स्त्रियां हो सकती हैं इतने बड़े गांव में। और नब्बे वर्ष की हों। उसकी भी पीठ ठोंकी। हालांकि उतने जोर से नहीं ठोंकी, थोड़ा संदेह मन में रहा कि हो सकता है यह सिर्फ इसकी बात दोहरा रहा है।
तीसरे से पूछा, और तूने क्या किया?
उसने कहा कि मैंने भी नब्बे वर्ष की एक स्त्री को... ।
तब तो न रहा गया उस मिशनरी से। उसने कहा कि तुम तीनों को नब्बे वर्ष की तीन ब.ूढी स्त्रियां मिल कहां गईं?
उन तीनों ने एक साथ कहा, तीन नहीं थीं, एक ही थी। उसी एक को हम तीनों ने पार करवाया।
उस मिशनरी ने पूछा, तो एक ब.ूढी स्त्री को पार करवाने के लिए तुम तीन
की जरूरत पड़ी?
उन्होंने कहा, अरे महाराज, तीन भी बामुश्किल से पार करवा पाए। वह होना
ही नहीं चाहती थी। हम खींचें उस तरफ, वह खिंचे इस तरफ। मगर हमने भी पूरी ताकत लगा दी। लाख चिल्लाई, शोरगुल मचाया, हाथ-पैर मारे, पिटाई तक हमारी की उसने; मगर हमने एक न सुनी। अब पुण्य करना ही था, सो हम तो उसको उस पार कर आए। हालांकि अब आपसे क्या छिपाना, जैसे ही हमने उसे छोड़ा वह फिर इस पार आ गई। फिर हमने सोचा अब दूसरे विद्यार्थी भी हैं, उनके लिए छोड़ो, अब हम ही पुण्य करते रहेंगे! फिर हमें पता नहीं दूसरों ने करवाया उसे पार कि नहीं करवाया, हमें और भी काम थे। पुण्य कोई एक ही काम तो नहीं है। उसी में तो उलझे न रहें। और फिर इस बुढ़िया को कितने दफे... दोबारा भी करवाओ, यह मारती-पीटती है, चिल्लाती भी है और फिर लौट कर आ जाएगी।
बुद्धों का काम इसलिए थोड़ा कठिन है। तुम गाली देते हो, क्योंकि तुम पार नहीं होना चाहते। तुम कहते होः हम भले हैं, मजे में हैं, कहां ले चले? हमें जाना नहीं। हमने यहां घर बना लिया है, गृहस्थी बसा ली है, बहुत फैलाव कर लिया है, बहुत जाल बुन लिया है। हमारे सारे स्वार्थ इस किनारे पर हैं। और तुम कहते हो--उस किनारे चलो। तुम ही जाओ! आएंगे कभी हम भी, मगर अभी नहीं। लेकिन बुद्धों की भी तकलीफ है। उनको दिखाई पड़ता है कि तुमने जो बनाया
है सब झूठा है, माया है, सपना है। वे चाहते हैं कि तुम्हें जगा दें। उनकी करुणा चाहती है कि तुम्हें जगा दे। क्योंकि तुम जो धन इकट्ठा कर रहे हो वह धन नहीं है, कूड़ा-करकट है। तुमने जो हीरे समझे हैं, वे हीरे नहीं हैं, कंकड़-पत्थर हैं। बुद्धों को साफ दिखाई पड़ रहा है कि तुम कंकड़-पत्थरों को इकट्ठे कर रहे हो और समय गंवा रहे हो। वे तुम्हें झकझोरना चाहते हैं। वे कहते हैंः जरा आंख खोल कर भाई मेरे देखो, ये कंकड़-पत्थर हैं! और मुझे हीरों की खदान पता है, मैं तुम्हें ले चलता हूं। और इतने हीरे हैं अकूत!
मगर तुम्हारी भी अड़चन है। तुम जन्मों-जन्मों से इन्हीं कंकड़-पत्थरों
को हीरे मान रहे हो। तुम्हारी बड़ी श्रद्धा इन कंकड़-पत्थरों पर है। कोई डिप्टी कलेक्टर है, उसको कलेक्टर होना है। वह कहता है, अभी ठहरो। अभी निर्वाण नहीं, अभी समाधि नहीं। अभी कहां कैवल्य! पहले कलेक्टर तो हो जाऊं! लेकिन कलेक्टर होने से क्या होता है? कमिश्नर होना है। कमिश्नर होने से क्या होता है? गवर्नर होना है! और यह होने की दौड़ का कोई अंत नहीं है।

एक सज्जन मेरे पास आते थे, वे डिप्टी मिनिस्टर थे। आशीर्वाद लेने आए
थे कि इस बार मामला न चूके, इस बार तो मिनिस्टर बनवा दें।
मैंने उनसे कहा कि अगर मुझसे आशीर्वाद मांगा तो डिप्टी मिनिस्टर भी न
रह जाओगे। तुम किसी बुद्धू से आशीर्वाद मांगो। मैं तो यही आशीर्वाद दे सकता हूं कि जागो।
फिर वे मिनिस्टर भी हो गए। कोई दो-तीन वर्ष बाद एक ट्रेन में अचानक यात्रा करते वक्त मुझे मिल गए। मैंने कहा, क्या हुआ?
उन्होंने कहा, आपके आशीर्वाद से।
मैंने कहा, झूठ! मैंने आशीर्वाद दिया ही नहीं था।
हमारे मुल्क में तो औपचारिक हो गई हैं ये बातें! कि आपके आशीर्वाद से,
वे कहने लगे, मिनिस्टर हो गया।
मैंने कहा, मैंने यह आशीर्वाद दिया नहीं, मुझ पर यह पाप थोपो मत। मुझे क्यों फंसाते हो? कयामत के दिन तुम्हारे साथ मैं भी बंधूंगा कि तुमने इन्हें क्यों आशीर्वाद दिया था? मैंने दिया ही नहीं है। मैंने तभी तुम्हें कह दिया था कि यह आशीर्वाद तुम किसी और से मांगो।
मैंने कहा, कुछ तृप्ति हुई?
उन्होंने कहा कि तृप्ति कहां! अब बस एक ही धुन सवार है कि चीफ मिनिस्टर कैसे हो जाऊं!
मैंने कहा, चीफ मिनिस्टर होकर तुम सोचते हो तृप्ति हो जाएगी?
कहने लगे, अब उतनी हिम्मत से नहीं कह सकता, जितनी जब मैं डिप्टी मिनिस्टर था कह सकता था कि मिनिस्टर होने से तृप्ति हो जाएगी; अब नहीं कह सकता, क्योंकि यह धोखा, नहीं कुछ हल हुआ। मगर फिर भी आकांक्षा है, एक बार चीफ मिनिस्टर हो जाऊं। इस बार तो आशीर्वाद दे दें!
फिर इस देश में तो सभी गधे-घोड़े मिनिस्टर, चीफ मिनिस्टर सभी हो रहे हैं। वे भी आखिर में हो गए। फिर मैं उनकी राजधानी से निकलता था तो मैंने उनको फोन करवाया कि हालांकि मैंने तुम्हें आशीर्वाद नहीं दिया, लेकिन कम से कम आकर धन्यवाद तो दे जाओ। अगर आशीर्वाद दे दिया होता तो कभी न होते, कम से कम इतना तो ख्याल रखो!
आए मिलने। मैंने पूछा, कहो तृप्ति कुछ हुई?
उन्होंने कहा कि अब आपसे क्या छिपाना! आपसे छिपता भी नहीं। मैं छिपाऊं तो भी नहीं छिपेगा। अब बस एक ही धुन सवार है कि बहुत दिन हो गए भोपाल में, अब दिल्ली!
मैंने कहा, कब यह दौड़ खतम होगी? कैसे यह दौड़ खतम होगी?
आदमी दौड़े ही चले जाते हैं और बुद्धों की चेष्टा होती है--रोक लें! तुम
जब धुन में दौड़े चले जा रहे हो, कोई बुद्ध तुम्हें रोके, तो नाराजगी नहीं होगी? जरूर होगी। क्योंकि बुद्ध बोलते हैं किसी और लोक से, उनकी भाषा और, उनका अनुभव और, उनका जगत और। तुम्हारी दुनिया और। दोनों का कहीं तालमेल नहीं होता। अगर बुद्ध जीतें तो तुम्हारी दुनिया अभी गिर जाए ताश के पत्तों की तरह। और तुमने बड़ी मुश्किल से ताश के पत्ते जमाए हैं। छोटे-छोटे बच्चे ताश के पत्तों का घर बनाते हैं। तुम जरा फूंक मार दो, उनका ताश के पत्तों का घर गिर जाता है। वे एकदम गुस्से में आ जाएंगे। उनकी मेहनत भी तो देखो! बामुश्किल तो जमा पाए, जमा-जमा कर तो जमा पाए। जमते-जमते भी गिर-गिर जाते थे। जरा सा धक्का खुद के ही हाथ का लग जाता था तो पूरा महल गया। किसी तरह बच्चा जमा पाया है और तुम आए और तुमने फूंक मार दी।
मैं एक घर में मेहमान था। अपने मेजबान के साथ बैठ कर बगीचे में गपशप
कर रहा था। उनका छोटा बेटा आया। उसने मुझे आकर कहा कि आप भी आएं। मैंने एक सुंदर महल बनाया है। तो मैं भी गया, उसके पिता भी गए। उसने खूब बड़ा महल बनाया था! कई ताश की गड्डियों का जोड़ किया था। रंग-बिरंगा था। मैंने फूंक मार दी।
वह तो एकदम भरोसा ही नहीं कर सका। उसने कहा, आप भी कैसे आदमी हैं! मैंने इतनी मुश्किल से बनाया, तीन घंटे मेहनत की! गिर-गिर जाता था, सम्हाल-सम्हाल कर बनाया। सब द्वार-दरवाजे बंद कर दिए कि हवा का झोंका न आए। और मैं आपको दिखाने लाया था, अभी मुझे अपने मित्रों को, पड़ोसियों को भी दिखलाना था--और आपने फूंक मार दी!

उसकी नाराजगी साफ है। उसके बाप ने भी कहा कि आपने फूंक क्यों मारी, यह मेरी समझ में भी नहीं आता।
मैंने कहा, यही मैं तुम्हारे साथ कर रहा हूं, यही तुम्हारे बेटे के साथ कर रहा हूं। बेटा भी नाराज है, तुम भी नाराज हो। तुमने भी जो घर बनाया है वह ताश के पत्तों का है।
इसलिए जब बुद्धों को तुम गाली देते हो तो बुद्ध कुछ हैरान नहीं होते; स्वभावतः स्वीकार करते हैं तुम्हारी गालियों को। जानते हैं कि ऐसा होगा ही। भाषा अलग-अलग है, जगत अलग-अलग हैं।

शहर की एक महिला ने
हिम्मत दिखाई
वह प्रौढ़ों को
शिक्षित करने के लिए
गांव में आई।
एक दिन यूं ही
बैठी-बैठी सुस्ता रही थी
और एक गीत गा रही थी--
"ओ सावन के बदरा
आए नहीं हमारे सजना
अब की नहीं बरसना।"
गीत के दर्द भरे बोल लोगों तक पहुंचे लोग मुखिया के पास पहुंचे
मुखिया जी
शिक्षिका के पास दौड़े
और हाथ जोड़े--
कि बस इतना सा काम?
हमें क्यों नहीं बताती हैं हम आपके सजना को
कान पकड़ कर ले आते हैं।

शिक्षिका पहले तो हड़बड़ाई फिर मुखिया को एक डांट पिलाई-- कि ये क्या बला है?
मेरा सजना आए या न आए
ये मेरा निजी मामला है।

मुखिया जी बोले--
"भाड़ में जाए आपका सजना
हमें उससे क्या करना
पर सावन तो आपका निजी नहीं है उससे क्यों कहती हैं
कि अब की नहीं बरसना?
सूखा पड़ जाएगा
बच्चे हमारे भूखों मरेंगे आपके सजना के बाप का क्या जाएगा!

"और हमें तो
आपके सजना के लक्षण
अच्छे नहीं लगते
छह महीने हो गए
आपको यहां रहते
उसने एक बार भी पता लगाया नहीं
कि आप जी रही हैं या मर गई हैं
फिर आप उसकी चिंता क्यूं कर रही हैं?

वो अब तक नहीं आया
तो पता नहीं कब आएगा,
और ऐसा सजना
आकर भी क्या कर लेगा!

"हमारी तो
किस्मत ही खराब है
पिछले साल
कीड़े फसल खा गए थे
इस साल आपका सजना मरवाएगा!

"नहीं! हम ये जोखिम नहीं उठा सकते हमें उसका पता दीजिए
या फिर आप अक्ल से काम लीजिए
आपके सजना का
सावन से क्या लेना-देना?
वो अपने हिसाब से आएगा
इसको अपने हिसाब से
बरसने दीजिए।"

बुद्धों की एक भाषा--वे तुम्हें जगाना चाहते हैं। तुम्हारी दूसरी दुनिया--तुम सोना चाहते हो। नींद तुम्हारा जगत; जागरण उनका जगत। दोनों में कहीं तालमेल नहीं। दोनों कहीं एक-दूसरे को काटते नहीं। इसलिए तुम अगर नाराज हो जाओ, और तुम अगर गालियां देने लगो, और तुम अगर पत्थर फेंकने लगो, और तुम अगर बुद्धों को सूलियों पर चढ़ाओ--सब स्वीकृत है। बुद्धों की तरफ से इसमें कुछ हैरानी नहीं है।

पतिदेव दफ्तर से आकर
पत्नी से बोले
मुस्कुरा कर--
"ये सज-धज, ये सिंगार
क्या इरादा है सरकार!"

पति का ये संबोधन सुन कर
पत्नी बोली रुआंसी होकर-- "आप हमें
कुछ भी कहते रहिए
किंतु सरकार मत कहिए
हम भी अखबार पढ़ते हैं
सरकार कैसी होती है
सब समझते हैं।
भविष्य में,
यदि आप हमें
सरकार कह के बुलाएंगे
तो याद रखना पछताएंगे
मेरा तो कुछ नहीं बिगड़ेगा
पर आपके हाल
हिंदुस्तान जैसे हो जाएंगे।"

भाषा की मजबूरियां हैं, भाव की मजबूरियां हैं। अलग लोक हैं।
स्वरूप, तुम पूछते होः "आप कहते हैं कि जीवित बुद्ध ही तारते हैं। तब
यह कैसी विडंबना है कि बुद्धों को जीते जी निंदा मिलती है और मरने पर पूजा?"

मरने पर पूजा आसान है, क्योंकि मरते ही बुद्ध तुम्हारे हाथ में हो जाते हैं। तुम जहां बिठाओ, बैठें। तुम जैसा उठाओ, उठें। देखते नहीं, रामचंद्रजी को जब दिल हो सुला दो! कृष्णजी को जब जी हो झूला झुला दो! चाहे उन्हें चक्कर ही आ रहे हों, मगर वे यह भी नहीं कह सकते कि अभी मत करो, अभी मत सताओ! जब पट खोलो, खोलो। जब पट बंद करना हो, बंद कर दो। जब भोग लगाना हो, लगाओ। दातून करवाओ चाहे न करवाओ। सब तुम्हारे हाथ में है। जैसे ही बुद्ध इस जगत से विदा होते हैं, आसान हो जाता है सब काम। फिर तुम उनकी मूर्तियां बना लेते हो। मूर्तियों की तुम पूजा करते हो। मूर्तियां तुम्हारी बनाई हुई हैं, बुद्धों का मूर्तियों से क्या लेना-देना है! कोई मूर्ति बुद्ध की नहीं है। बुद्धों की तो सिर्फ आकृति है, मूर्ति तो तुमने बनाई है। और शक तो यह है कि आकृति भी तुम बुद्धों की नहीं लेते, आकृति भी तुम अपनी चुनते हो। आकृति भी तुम्हारी ही है, तुमने ही दी है।
यह बात सुनिश्चित है कि गौतम बुद्ध का चेहरा ऐसा नहीं था जैसा तुम मूर्तियों में पाते हो। कई कारणों से यह बात सुनिश्चित है। बुद्ध भारत और नेपाल के बीच तराई में पैदा हुए। सच पूछा जाए तो बुद्ध को भारतीय नहीं कहना चाहिए, नेपाली कहना चाहिए। अब नेपालियों की शक्ल ऐसी नहीं होती जैसी बुद्ध की मूर्ति की है। नेपाली तो तिब्बती, चीनी, उनके ज्यादा करीब हैं। उनकी नस्ल उनके ज्यादा करीब है। और बुद्ध की मूर्ति तुम देखते हो, उसमें तुम्हें नेपाली लक्षण मालूम पड़ता है? उसमें गुरखा लक्षण बिल्कुल नहीं है। बुद्ध की मूर्ति यूनानी है, भारतीय भी नहीं है।
बुद्ध के मरने के पांच सौ वर्ष तक तो बुद्ध की मूर्ति बनी ही नहीं। उन दिनों कोई फोटोग्राफी तो थी नहीं कि बुद्ध का कोई चित्र बचाया जा सकता। पांच सौ वर्ष बाद मूर्ति जब बुद्ध की बनी, तो तुम जान कर हैरान होओगे, सिकंदर के आधार पर बनी। इस बीच सिकंदर भारत आया और सिकंदर के यूनानी नाक-नक्श खूब भाए मूर्तिकारों को। बुद्ध की प्रतिमा न नेपाली है, न भारतीय-- यूनानी है। उसके नाक-नक्श यूनान से उधार लिए गए हैं।
तुमने जैन मंदिर में जाकर देखा, चौबीस तीर्थंकरों की मूर्तियां बिल्कुल एक जैसी! जरा भी भेद नहीं। इस दुनिया में दो आदमी भी बिल्कुल एक जैसे नहीं होते, जुड़वा भाई भी एक जैसे नहीं होते। मां दोनों में भेद करती है। मां जानती है कौन कौन है। बाकी लोग शायद भेद न भी कर पाएं, क्योंकि बाकी लोग उतने गौर से नहीं देखते।
मुल्ला नसरुद्दीन एक स्त्री के प्रेम में था। वह स्त्री अकेली नहीं थी, उसकी जुड़वां बहन भी थी। दोनों एक जैसी लगती थीं। मैंने एक दिन नसरुद्दीन से पूछा कि नसरुद्दीन, मैं तो दोनों को देखता हूं तो कुछ फर्क नहीं कर पाता, दोनों बिल्कुल एक जैसी लगती हैं। तू तो प्रेम करता है एक को, तू भेद कैसे कर पाता है?
नसरुद्दीन ने कहा, भेद! भेद हम करें ही क्यों? एक से प्रेम है, दोनों
का मजा ले रहे हैं--जो मिल जाए! हम भेद करेंगे ही नहीं। हम ऐसी कोई चीज देखेंगे ही नहीं जिससे भेद जाहिर हो। हम तो ऐसा ही व्यवहार करते हैं, जो भी मिल जाए, कि इसी से प्रेम है।
लेकिन मां या पिता भेद करने लगते हैं, देखने लगते हैं कि अलग-अलग हैं। जुड़वां भाई, बहन भी बिल्कुल एक जैसे नहीं होते। दो आदमी एक जैसे नहीं होते! ये चौबीस आदमी एक जैसे कैसे मिल गए? जैनों को अपनी मूर्तियों के नीचे चिह्न बनाना पड़ते हैं ताकि भेद पता चल सके कि कौन महावीर, कौन नेमिनाथ, कौन पार्श्वनाथ। नीचे चिह्न बनाने पड़ते हैं, क्योंकि चिह्नों के अतिरिक्त और तो कोई भेद नहीं है।
ये मूर्तियां कल्पित हैं। ये मूर्तियां सच्ची नहीं हैं। ये आदमी के द्वारा गढ़ी गई हैं। ये आदमी की धारणा से गढ़ी गई हैं। तीर्थंकर को कैसा होना चाहिए, उस हिसाब से गढ़ी गई हैं।
तुम देखोगे जैन मंदिर में जाकर कि हर तीर्थंकर के कान की लंबाई इतनी
है कि कंधे को छूती है। क्राइस्ट की मूर्ति में कान की लंबाई ऐसी नहीं है कि कंधे को छुए, न ही राम, न कृष्ण। मगर जैनों के चौबीस तीर्थंकरों के कान कंधे को छूते हैं। इतने लंबे कान!

जैनों की धारणा यह है कि तीर्थंकरों के कान कंधों को छूने ही चाहिए,
तो ही वे तीर्थंकर हैं। तो चौबीसों के कान छुआ दिए। शक की बात है। एकाध के छूते रहे हों, यह हो सकता है। शायद पहले के, जो नंबर एक हुआ, उसके छूते रहे हों, यह हो सकता है। उसके आधार पर फिर धारणा बन गई हो कि हर तीर्थंकर के कान कंधे को छूने चाहिए। फिर जिनके नहीं भी छूते, उनके भी छुआ दिए। फिर जबरदस्ती छुआने पड़े, नहीं तो तीर्थंकरत्व में कमी पड़ जाएगी। लक्षण तो पूरे करने पड़ेंगे।
तुम्हारी मूर्तियां भी कल्पित हैं, तुमने बना ली हैं। और उनकी तुम पूजा करो, मजे से करो। मूर्तियां तुम्हारा क्या बिगाड़ लेंगी? मूर्तियां तुम्हारे सपनों को औरशृंगार दे देती हैं; तुम्हारी नींद को और भी शामक दवाओं का काम कर जाती हैं। तुम और मजे से सोते हो।
मूर्ति तो मुर्दा है। क्या तुम्हें खाक जगाएगी! जरा एकाध दिन मूर्ति
से कह कर तो सोना रात कि हे गणेशजी, कल सुबह ट्रेन पकड़नी है, जरा चार बजे उठा देना! जिंदगी भर ट्रेन न पकड़ पाओगे। गणेशजी को खुद ही पता नहीं कि चार कब बजते हैं। वहां तो बारह बज गए, अब चार कहां बजना है! वहां तो कांटा थिर हो गया है। मिट्टी के गणेशजी--जब चाहो बनाओ, जब चाहो विसर्जित कर आओ। जब गणेशजी को डुबाने लगते हो तब बेचारे चिल्लाते तक नहीं कि बचाओ, हे बचाओ! कहां डुबा रहे हो! तुम्हारी मौज, तुम्हारे हाथ के खिलौने हैं।
जब बुद्ध जीवित होता है तो तुम्हें बचाता है, तुम्हें जगाता है, तुम्हें झकझोरता है, तुम्हारे न्यस्त स्वार्थों को तोड़ता है। इसलिए नाराजगी पैदा होती है। और जब बुद्ध विदा हो जाते हैं तो तुम्हारे भीतर अपराध का भाव पैदा होता है। इस मनोविज्ञान को ठीक से समझ लेना। क्योंकि तुम जिंदा बुद्धों के साथ इतना दुर्व्यवहार करते हो कि जब वे मर जाते हैं तो तुम्हारे भीतर बड़ा अपराध का भाव पैदा होता है--कि अरे, हमने यह क्या किया? उस अपराध-भाव की पूर्ति करने के लिए तुम फिर पूजा शुरू करते हो। पूजा तुम्हारे अपराध-भाव की पूर्ति है।
तुम देखते हो, महावीर के कितने अनुयायी हैं? बहुत ज्यादा नहीं, मुश्किल से तीस-पैंतीस लाख। क्या बात हो गई? महावीर जैसा प्रतिभाशाली व्यक्ति केवल तीस-पैंतीस लाख अनुयायी जुटा पाया पच्चीस सौ साल में! अगर महावीर ने पैंतीस जोड़े भी प्रभावित किए होते तो पच्चीस सौ साल में पैंतीस लाख बच्चे पैदा हो गए होते। क्या कारण हो गया कि महावीर इतने थोड़े से अनुयायी जुटा पाए और जीसस ने आधी दुनिया ईसाई कर ली, एक अरब अनुयायी! कारण क्या है?
कारण हैः जीसस को फांसी लगी। जीसस को जिन्होंने फांसी दी, वे इतने अपराध-भाव से भर गए कि मरने के बाद पूजा करनी जरूरी हो गई, एकदम जरूरी हो गई। इस निरीह, निहत्थे, सीधे-सादे, सरल चित्त व्यक्ति को फांसी दे दी। देते वक्त तो जोश में कर गए काम, लेकिन देने के बाद पछताए होंगे कि यह हमने क्या किया! अपने हाथ देखे होंगे खून से रंगे हुए। धोए होंगे। लेकिन खून धुलता नहीं--ऐसा खून आसानी से नहीं धुलता।
तुम जान कर यह हैरान होओगे कि पांटियस पायलट, जो उन दिनों रोमन गवर्नर
था इजरायल में, जिसकी आज्ञा से जीसस को फांसी लगी, उसे जिंदगी भर एक रोग सताया--हाथ धोने का रोग! जीसस को मार डालने के बाद वह बार-बार हाथ धोता था, अकारण हाथ धोता था।
सिग्मंड फ्रायड से उसका अर्थ पूछो। वह हाथ धोता था, क्योंकि उसे लगता
था कि मेरे हाथ खून से रंग गए--और एक निर्दोष आदमी के खून से रंग गए!
मगर लाख हाथ धोओ, यह खून धुल नहीं सकता। क्योंकि यह खून कोई दृश्य खून नहीं है; यह अदृश्य है, सूक्ष्म है। यह तुम्हारे प्राणों पर छा गया। यह काटेगा तुम्हें, सालेगा तुम्हें। इससे बचने का एक ही उपाय है कि जो तुमने किया, उससे उलटा करो अब। गाली दी थी, स्तुति करो। पत्थर मारे थे, फूल चढ़ाओ। सूली दी थी, अब कहानी रचो कि ईसा पुनरुज्जीवित हो गए।
ये सिर्फ अपराध-भाव से बचने के उपाय हैं।
जीवित बुद्धों के साथ तुम असदव्यवहार करते हो। तुम्हारा असदव्यवहार समझा जा सकता है। कारण साफ है। तुम जागना नहीं चाहते, वे तुम्हें जगाते हैं। तुम उस पार नहीं जाना चाहते, वे तुम्हें नाव में बैठने के लिए

निमंत्रण देते हैं। निमंत्रण देते हैं, हाथ पकड़-पकड़ कर तुम्हें लाते हैं।
तुम झिटक-झिटक कर भागना चाहते हो। तुम जीवित बुद्धों से डरते हो, भयभीत होते हो। उनके पास आना, कहीं तुम्हारी बसी-बसाई दुनिया न उजड़ जाए।
मेरे पास न मालूम कितने पत्र आते हैं। लोग लिखते हैं कि हम आएंगे, जरूर आएंगे! लेकिन अभी समय नहीं आया है।
कौन तय करेगा, कब समय आएगा? कैसे तय करोगे? लगन-महूरत ज्योतिषी से पूछोगे?
लगन-महूरत झूठ सब! जिसको जागना है, उसके लिए प्रत्येक पल जागने के लिए सम्यक है। और जिसे सोए रहना है वह कल पर टालता जाएगा, नये-नये बहाने खोजता जाएगा और कल पर टालता जाएगा।
एक युवक ने संन्यास लिया। उसके पिता आए, बहुत नाराज थे। पिता की उम्र होगी कोई अस्सी वर्ष। कहने लगे, आपने यह क्या किया? यह कैसा संन्यास! मेरे जवान बेटे को संन्यास दे दिया! शास्त्रों में तो साफ कहा है कि पच्चीस साल तक ब्रह्मचर्य, फिर पच्चीस साल तक अर्थात पचास वर्ष की उम्र तक गृहस्थी। अभी मेरा बेटा तो केवल पैंतीस साल का है, अभी पचास साल तक इसको गृहस्थी में रहना चाहिए। और फिर पचहत्तर साल तक वानप्रस्थ। पचहत्तर साल के बाद संन्यास का नियोजन है शास्त्रों में। आप शास्त्र के विपरीत काम कर रहे हैं। आप हमारी संस्कृति को मिटाए डाल रहे हैं।
मैंने उनकी बात सुनी और मैंने कहा, ठीक। तो मैं सौदा करने को तैयार हूं।
उन्होंने कहा, आपका मतलब?
मैंने कहा, मतलब यह कि मैं आपके बेटे को संन्यास से मुक्त करता हूं, आप संन्यास ले लें। आप पचहत्तर पार कर गए। और आपको अब मैं न जाने दूंगा, क्योंकि यह शास्त्र का अपमान हो जाएगा।
तब वे घबड़ा गए। कहने लगे, मैं अभी कैसे ले सकता हूं? हजार काम उलझे पड़े हैं, सब निपटाने हैं।
मैंने कहा, मौत आएगी, पूछेगी नहीं कि कितने काम उलझे पड़े हैं। सब काम उलझे पड़े रह जाएंगे और ले जाएगी।
फिर मैंने कहा, शास्त्र का आधार लेते थे अपने लड़के को संन्यास से बचाने के लिए; अब शास्त्र का आधार नहीं लेते अपने को संन्यास में डुबाने के लिए? तो शास्त्र भी बस तुम्हारे जब काम पड़ें, तुम्हारी मूढ़ता के विस्तार में जब सहयोगी हों, तब उनका उल्लेख कर लेना!
शास्त्रों से भी लोग अपना हेतु सिद्ध करते हैं!
मुल्ला नसरुद्दीन रोज कुरान पढ़ता है और रोज शराब भी पीता है। मैंने उससे कहा, नसरुद्दीन, कम से कम कुरान पढ़ने वाले को तो शराब नहीं पीनी चाहिए। साफ कुरान में कहा हुआ है कि जो शराब पीएगा, वह नरक में सड़ेगा। मुल्ला ने कहा, मुझे मालूम है, मैं तो रोज पढ़ता हूं।
फिर मैंने कहा कि फिर शराब क्यों पीते हो?
उसने कहा, जितनी अपनी सामर्थ्य है, उतना अभी कर रहा हूं। पूरा वाक्य हैः जो शराब पीएगा, वह नरक में सड़ेगा। अभी आधा ही वाक्य पूरा कर रहा हूं--जो शराब पीएगा। अभी बाकी आधे को पूरी करने की मेरी सामर्थ्य नहीं है। अपनी मर्यादा से ही तो चलना पड़ता है। अभी कुरान की ही आज्ञा पूरी कर रहा हूं--जो शराब पीएगा। पीने की आज्ञा साफ है। फिर आगे का आगे देखा जाएगा। और फिर कुरान में ही तो कहा है कि परमात्मा महाकरुणावान है, रहीम है, रहमान है, उसकी क्षमा का पारावार नहीं है। तो जिसकी क्षमा का पारावार नहीं है, यह छोटी-मोटी शराब... एकदम सिर पटक दूंगा उसके पैर पर और कहूंगा कि क्षमा करो, तुम करुणावान हो! तुम्हारी करुणा का कोई पारावार नहीं है! और मैंने शराब कितनी ही पी हो, तुम्हारी करुणा से बड़ा पाप तो नहीं किया है। तुम्हारी करुणा मेरे पाप से बहुत बड़ी है।
लोग अपने मतलब की बात निकाल लेते हैं।
उन बूढ़े सज्जन ने कहा कि मैं सोच कर आऊंगा।
मैंने कहा कि सोच कर कोई कभी नहीं आता। संन्यास सोच कर नहीं लिया जाता। अब यह मौका आ गया है तो चूको मत। फंस ही गए हो! अपने आप आ गए, मैंने

बुलाया भी नहीं था। अब कहां जाते हो? और मैंने कहा कि मैं सौदा कर रहा हूं, तुम्हारे बेटे को मुक्त करता हूं।
आज तीन साल हो गए, वे सज्जन लौटे ही नहीं। अब लौटेंगे भी नहीं, क्योंकि अभी दो महीने पहले उनकी मृत्यु हो गई। फिर नहीं आए मुझसे कहने कि बेटे को संन्यास देकर आपने शास्त्रों का उल्लंघन कर दिया। क्योंकि अब किस मुंह से आएं!
लोग चालबाज हैं, लोग बेईमान हैं, लोग धोखेबाज हैं। दूसरों को ही धोखा नहीं देते, अपने को भी धोखा देते हैं। तुम्हारी सब पूजा धोखा है। तुम बदलना नहीं चाहते। तुम चाहते नहीं कि तुम्हारे जीवन में क्रांति हो। तुम पत्थर की मूर्तियों को पूजते हो और तुम जीवित बुद्धों से भागते हो। क्योंकि जीवित बुद्धों के पास क्रांति अनिवार्य है; आए कि बदले। लेकिन मंदिर की मूर्तियां क्या करेंगी? क्या कर सकती हैं? तुम जैसे जाते हो, वैसे ही वापस लौट आते हो।
इसलिए इसमें कुछ विडंबना नहीं है, न ही कोई विचित्र विधान है; यह जीवन
का सीधा गणित है।
लेकिन आना हो तो जीवित बुद्धों के पास ही आना--तो ही कुछ संपदा तुम पर बरस सके, कुछ आशीष तुम पर बरस सकें, कुछ अमृत के घूंट तुम्हारे कंठ में उतर सकें। जो भूल दूसरों ने की है, तुम न करना।
और हम भूलें वही की वही दोहराए चले जाते हैं। और मजा यह है कि दूसरे जब भूलें करते हैं तो हम देख लेते हैं; जब हम भूलें करते हैं तो नहीं देख पाते।
जीसस को सूली जिन लोगों ने दी थी, हमें दिखाई पड़ता है गलत किया। मंसूर
को जिन्होंने मारा, हमें लगता है गलत किया। बुद्ध पर जिन्होंने पत्थर फेंके, हमें लगता है कि गलत किया। लेकिन आज भी वही हो रहा है। आज भी बुद्धों, मंसूरों के साथ वही व्यवहार हो रहा है। जमाने बदल गए, आदमी नहीं बदलता, आदमी की जड़ता वैसी की वैसी है।
तुमसे यह भूल न हो, इतना ही अगर कर सको तो काफी है।

आखिरी प्रश्नः ओशो! मैं परम आलसी हूं। क्या मैं भी परमात्मा को पा सकता हूं?

योगेंद्र! परमात्मा को पाना न तो कर्म की बात है, न कर्मठता की, न आलस्य की। परमात्मा को पाना तो साक्षी-भाव की बात है। जो कर्मठ है उसको अपने कर्म का साक्षी होना पड़ेगा। और जो आलसी है उसे अपने आलस्य का साक्षी होना पड़ेगा। कर्म है तो कर्म को आधार बना लो साक्षी बनने का। आलस्य है तो आलस्य को आधार बना लो साक्षी बनने का। कोई भी निमित्त काम कर जाएगा। साक्षी हो जाओ, परमात्मा मिल जाएगा।
आलस्य से घबड़ाओ मत। और आलस्य की बहुत निंदा की गई है, इसलिए घबड़ाहट होती है। इसलिए तुम्हें चिंता पैदा होती होगी कि मैं हूं परम आलसी, परमात्मा को कैसे पाऊंगा?
पहली तो बातः परमात्मा को पाना नहीं है, परमात्मा मिला हुआ है। परमात्मा तुम्हारे भीतर विराजमान है। अगर परमात्मा को पाने में कोई खतरा है तो अति कर्मठता खतरा हो सकती है। क्योंकि वह जो हमेशा आपाधापी में भागा-भागा फिर रहा है, दुनिया के ओर-छोर एक किए दे रहा है, कहीं बैठ ही नहीं सकता दो क्षण को--शायद उसे पाना मुश्किल हो जाए। क्योंकि परमात्मा तुम्हारे भीतर बैठा है; अगर तुम भी बैठ जाओ तो मिलन हो जाए।
इसलिए योगेंद्र, घबड़ाओ न, चिंता न लो।
मगर मैं नहीं मानता कि तुम परम आलसी हो। अन्यथा यहां तक कैसे आ गए? परम आलस्य तो बड़ी सिद्धावस्था की बात है।
जापान में एक सम्राट बहुत आलसी था, झक्की भी था। और अजीब-अजीब काम करने के उसे ख्याल आते थे। और सम्राट था, इसलिए कर भी सकता था। एक दिन उसे ख्याल आया कि दुनिया में सबके लिए व्यवस्था है। विधवा-आश्रम खुले हुए हैं, वृद्धाश्रम खुले हुए हैं। आलसियों के लिए कोई इंतजाम नहीं। और बेचारे आलसियों का क्या कसूर है? अरे परमात्मा ने बनाया जैसा सो वैसा बनाया! उसने

आलसी बनाया तो अब आलसी क्या करे? विधवा तो चाहे तो विवाह भी कर ले; कोई परमात्मा ने विधवा नहीं बनाया है, विधवा तो समाज की धारणा है। लेकिन आलसी क्या करे?
उसने अपने वजीरों को कहा कि डुंडी पीट दी जाए पूरे राज्य में कि आलसियों के लिए राज्य की तरफ से जगह-जगह आश्रम खोल दिए जाएं। आलसियों के लिए राज्य का आश्रय मिलेगा--भोजन, रहना, कपड़ा--और वे अपना आलस्य करें। वजीर चिंतित हुए। वजीरों ने कहा कि आप कहते तो ठीक हैं, आपकी दलील भी ठीक है कि उनका कसूर क्या? परमात्मा ने आलसी बनाया! किसी को नीम बनाया, किसी को आम बनाया। अब नीम क्या करे? मीठी नहीं है, इसमें नीम का क्या कसूर है? और आम मीठा है तो इसमें गुण क्या? जिसको जैसा बनाया वह वैसा है। आप बात तो ठीक कहते हैं। लेकिन बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाएगी। अगर हमने आलसियों को आश्रय दिया तो सभी लोग दावा करेंगे कि वे आलसी हैं। और तय कैसे करेंगे हम कि कौन आलसी है, कौन नहीं है? और अगर सारे लोग दावा करने लगे आलस्य का तो फिर मुश्किल पड़ जाएगी। फिर आलसियों के लिए भोजन बनाने का काम कौन करेगा? उनके लिए बिस्तर लगाने का काम कौन करेगा? और यह सारा देश अड़चन में आ जाएगा। तो पहले तो हमें यह कसौटी खोजनी पड़ेगी कि पक्का आलसी कौन है, परम आलसी कौन है? जब तक इसकी कसौटी न हो जाए... ।
राजा ने कहा, यह बात ठीक है, यह जंचती है। तो डुंडी पीट दी जाए कि जो-जो अपने को आलसी समझते हैं, राजमहल आ जाएं, यहां परीक्षा हो जाएगी।
लोगों ने सुना तो लोग चल पड़े। जिन्होंने कभी सोचा भी नहीं था जीवन में
कि हम भी आलसी हैं, उन्होंने भी सोचा ऐसा मौका क्यों छोड़ना! कोई दस हजार आदमी एकदम इकट्ठे हो गए। वजीरों ने उनके लिए घास के झोपड़े बनवा दिए। वे उनमें ठहर गए। और रात को झोपड़ों में आग लगवा दी। यह परीक्षा थी। भाग खड़े हुए लोग एकदम, बाहर निकल आए। लेकिन चार आदमी नहीं निकले, उन्होंने और कंबल ओढ़ लिया। और जब किसी ने उनसे कहा कि भाई, आग लगी है! उन्होंने कहा, लगी रहने दो, हमें परेशान न करो। अब जो होगा सो होगा।
दस हजार लोगों में केवल वे चार ही चुने गए, क्योंकि उनको बामुश्किल बचाया जा सका। उनको खींच कर बाहर लाना पड़ा। बिस्तर में ही उनको उठा कर बाहर लाना पड़ा। वे थे परम आलसी, योगेंद्र! तुम कैसे परम आलसी? यहां आ गए, प्रश्न भी पूछ रहे हो! इतने निराश होने की जरूरत नहीं मालूम होती।
गांव का सरपंच नेताजी को गांव की सैर करवा रहा था। सरपंच ने गांव की अनेक चीजें दिखाईं। जब वे रास्ते के किनारे से गुजर रहे थे तो नेताजी ने देखा, एक व्यक्ति आम के वृक्ष पर सो रहा है। सरपंच ने उस व्यक्ति की ओर इशारा करते हुए कहा, यह हमारे गांव का सबसे बड़ा आलसी व्यक्ति है।
नेताजी ने आश्चर्य से पूछा, आलसी! फिर यह वृक्ष पर कैसे चढ़ गया?
सरपंच बोला, हम लोगों ने जब आम की गुठली यहां बोई थी, तब यह व्यक्ति आकर उस गुठली पर सो गया था, सो आज तक सो रहा है। यह वृक्ष पर चढ़ा नहीं है। योगेंद्र, इसको कहते हैं परम आलस्य! और ऐसा व्यक्ति परमात्मा को पा ही लिया समझो।
घबड़ाओ न, तुम जिसके पास आ गए हो अब, परमात्मा से बचने का कोई उपाय नहीं--आलस्य भी नहीं। संन्यास और लो। इतना किया, इतना और करो। मुझे आलसी भी स्वीकार हैं। मुझे पापी भी स्वीकार हैं। मुझे शराबी भी स्वीकार हैं। मुझे जुआरी भी स्वीकार हैं। जब तुम परमात्मा को स्वीकार हो तो मैं कौन हूं बीच में जो बाधा डालूं? जब परमात्मा तुम्हें जिलाए जा रहा है तो जरूर तुम्हें स्वीकार करता है।
मैं तुम्हें स्वीकार करता हूं। तुम्हारे आलस्य में से ही रास्ता खोज लेंगे।

गुरु ने चेले से
कहा लेटे-लेटे
कि उठ कर पता लगाओ
बरसात हो रही है या नहीं, बेटे।

तो चेले ने कहा--

"ये बिल्ली
अभी-अभी बाहर से आई है
इसके ऊपर हाथ फेर कर देख लीजिए अगर भीगी हुई हो
तो बरसात हो रही है, समझ लीजिए।"

गुरु ने दूसरा काम कहा
कि सोने का समय हुआ
जरा दीया तो बुझा दे बचुआ।

बचुआ बोला--
"आप आंखें बंद कर लीजिए
दीया बुझ गया समझ लीजिए।"

अंत में गुरु ने कहा हार कर कि उठ, किवाड़ तो बंद कर।

शिष्य ने कहा--
"गुरुवर,
थोड़ा तो न्याय कीजिए
दो काम मैंने किए हैं
एक काम तो आप भी कर लीजिए।"

आओ, ऐसा कुछ होगा!
आज इतना ही।

काहे होत अधीर
नौवां प्रवचन

चलहु सखि वहि देस

चलहु सखी वहि देस, जहवां दिवस न रजनी।।
पाप पुन्न नहिं चांद सुरज नहिं, नहीं सजन नहीं सजनी।।
धरती आग पवन नहिं पानी, नहिं सूतै नहिं जगनी।।
लोक बेद जंगल नहिं बस्ती, नहिं संग्रह नहिं त्यगनी।।
पलटूदास गुरु नहिं चेला, एक राम रम रमनी।।

चित मोरा अलसाना, अब मोसे बोलि न जाई।।
देहरी लागै परबत मोको, आंगन भया है बिदेस।
पलक उघारत जुग सम बीते, बिसरि गया संदेस।।
विष के मुए सेती मनि जागी, बिल में सांप समाना।
जरि गया छाछ भया घिव निरमल, आपुई से चुपियाना।।
अब न चलै जोर कछु मोरा, आन के हाथ बिकानी।
लोन की डरी परी जल भीतर, गलिके होई गई पानी।।
सात महल के ऊपर अठएं, सबद में सुरति समाई।
पलटूदास कहौं मैं कैसे, ज्यों गूंगे गुड़ खाई।।

वाचक ज्ञान न नीका ज्ञानी, ज्यों कारिख का टीका।।
बिन पूंजी को साहु कहावै, कौड़ी घर में नाहीं।
ज्यों चोकर कै लड्डू खावै, का सवाद तेहि माहीं।।
ज्यों सुवान कछु देखिकै भूंकै, तिसने तो कछु पाई।
वाकी भूंक सुने जो भूंकै, सो अहमक कहवाई।।
बातन सेती नहिं होय राजा, नहिं बातन गढ़ टूटै।
मुलुक मंहै तब अमल होइगा, तीर तुपक जब छूटै।।
बातन से पकवान बनावै, पेट भरै नहिं कोई।
पलटूदास करै सोई कहना, कहे सेती क्या होई।।

नीर बहाने को मन चाहे
काहे पतझड़ भाए

मन इक सागर थाह न
जिसकी ध्यान लगाए डुबकी
चुन-चुन सच्चे मोती लाएं
नैनन राह गंवाए
काहे पतझड़ भाए
नीर बहाने को मन चाहे
प्रेम जोत का सुंदर धोखा
कोमल फूल समान
कांटा चुभ कर लहू बहाए यही प्रीति का दानपल-पल मन में आग लगाए क्षण-क्षण जी भर आए
काहे पतझड़ भाएनीर बहाने को मन चाहे
चंदरमा के गोरे मुख पर काली बदरी डोलेजागे दुख और बने चकोरी खाए पवन झकोलेबदले रूप हजारों विरहा क्या-क्या छवि दिखलाए
काहे पतझड़ भाएनीर बहाने को मन चाहे
वह घड़ी धन्य है जब व्यक्ति को फूलों में भी कांटे दिखाई पड़ने शुरू हो जाते हैं; जब वसंत में भी पतझड़ का आभास मिलता है; और जब जीवन में भी मृत्यु की छाया की स्पष्ट प्रतीति होने लगती है।
जिसने फूल ही देखे, वह भटका। जिसने फूलों में छिपे कांटे भी देख लिए,
वह पहुंचा। जो वसंत में रम गया और पतझड़ को भुला बैठा, वह आज नहीं कल रोएगा,

बहुत रोएगा; पछताएगा, बहुत पछताएगा। लेकिन जिसने वसंत में भी पतझड़ को याद रखा, वह दुख के पार हो जाता है, दुख से अतिक्रमण कर जाता है।
जीवन में द्वंद्व है--सुख का, दुख का; जन्म का, मृत्यु का; कांटों का, फूलों का; वसंतों का, पतझड़ों का। इस द्वंद्व में हम एक को पकड़ते हैं और दूसरे से बचना चाहते हैं। यही हमारी व्यथा है, यही हमारी पीड़ा है। जिसे हम पकड़ना चाहते हैं, पकड़ में नहीं आता, छूट-छूट जाता है; और जिससे हम बचना चाहते हैं, बच नहीं पाते, उसकी पकड़ में आ-आ जाते हैं। लेकिन जिम्मेवारी किसी और की नहीं है, हम स्वयं ही जिम्मेवार हैं। क्योंकि जो हमें विपरीत दिखाई पड़ता है वह केवल विपरीत दिखाई ही पड़ता है; है नहीं। कांटे और फूल साथ-साथ हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। और जीवन और मृत्यु भी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तुम एक पहलू को बचाना चाहो और दूसरे को छोड़ना चाहो, यह कैसे होगा? असंभव नहीं होता है, नहीं हो सकता है। असंभव करने चलोगे तो पीड़ा पाओगे। और यही पीड़ा जन्मों-जन्मों से हम पा रहे हैं।
इसलिए कहता हूंः वह घड़ी धन्य है जब तुम्हें जीवन का द्वंद्व दिखाई पड़ जाए और यह भी दिखाई पड़ जाए कि यह द्वंद्व एक बड़ा शड्यंत्र है। जैसे ही यह बात दिखाई पड़ जाएगी, तुम द्वंद्व से ऊपर उठने लगे, अतीत होने लगे। तुम द्रष्टा हो जाओगे फिर; न जीवन, न मृत्यु--दोनों के साक्षी; न दिन, न रात-- दोनों के साक्षी; न वसंत, न पतझड़--दोनों के साक्षी; न प्रेम, न घृणा--दोनों के साक्षी। और जो व्यक्ति हर द्वंद्व का साक्षी है वह समाधिस्थ है; वह निर्वाण को उपलब्ध है।
आज के सूत्र इसी द्वंद्वातीत अवस्था की तरफ इशारे हैं, मील के पत्थर हैं। समझोगे उनके इशारों को तो मंजिल बहुत दूर नहीं है। पलटू कहते हैंः चलहु सखी वहि देस, जहवां दिवस न रजनी।
मित्र, उस देश चलें, जहां न दिन होता है न रात।
पाप पुन्न नहिं चांद सुरज नहिं, नहीं सजन नहीं सजनी।
मित्र, चलें उस देश, जहां पाप-पुण्य का द्वंद्व नहीं है, चांद-सूरज का द्वैत नहीं है, सजन-सजनी का भेद नहीं है। अभेद में चलें! निर्द्वंद्व में उठें!
धरती आग पवन नहिं पानी, नहिं सूतै नहिं जगनी।
उस देश को तलाशें, क्योंकि वही हमारा स्वदेश है। उस घर को खोजें, जहां
न जागना होता है न सोना। क्योंकि वही हमारा असली घर है। उसे पा लिया तो अमृत को पा लिया; उससे चूके तो जहर में ही डुबकी खाते रहे। और जन्मों- जन्मों से हम चूक रहे हैं। कितना ही घर बनाओ यहां, गिर-गिर जाता है। यहां बनाए सभी घर ताश के पत्तों के घर सिद्ध होते हैं। कितने ही मजबूत बनाओ, पत्थरों से बनाए हुए महल भी अंततः रेत ही सिद्ध होते हैं। क्योंकि पत्थर भी रेत के अतिरिक्त और कुछ नहीं है--रेत के कणों का ही जोड़ है; जो आज जुड़ा है, कल बिखर जाएगा।
यहां कितना ही भरोसा रखो, सब भरोसे आत्मवंचनाएं हैं। यहां कितनी ही कामनाओं के घोड़े दौड़ाओ, सब सपनों की दौड़ है। कितनी ही नावें चलाओ, सब कागज की नावें हैं। और कितना ही मन फूला-फूला लगे, सब पानी के बबूले हैं--अब टूटे, तब टूटे, देर-अबेर, लेकिन सब बबूले टूट जाएंगे, फूट जाएंगे। हाथ यहां कुछ भी नहीं लगता है। खाली हाथ हम आते हैं और खाली हाथ हम जाते हैं। कुछ गंवा कर भला जाते हों, कमा कर तो कुछ भी नहीं जाते।
बच्चा पैदा होता है तो बंद मुट्ठी आता है; जाता है आदमी तो खुला हाथ जाता है। कम से कम भ्रम तो था बंद मुट्ठी का। कहते हैंः बंधी मुट्ठी लाख की, खुली तो खाक की! ठीक ही कहते हैं। कम से कम बच्चा भ्रम तो लेकर आता है।
लेकिन वे सारे भ्रम जीवन तोड़ देता है।
अभागे हैं वे लोग, जो जीवन से पाठ नहीं लेते; जो जीवन की सुनते ही नहीं। जीवन तोड़ता है तुम्हारे भ्रमों को, तुम नये-नये निर्मित करते हो। जीवन धूल-धूसरित करता है तुम्हारे सपनों को, तुम नये-नये निर्मित करते हो।
मरते क्षण तक भी तुम सपनों में ही लगे रहते हो--उन्हीं का विस्तार, उसी प्रपंच में। और इसीलिए खुद का घर--जो मिल सकता था, जो दूर भी न था, जो तुम्हारे भीतर ही छिपा था, जो तुम्हारे प्राणों के प्राण में था, जो तुम्हारी अंतरात्मा था--उससे वंचित रह जाते हो।

चलहु सखी वहि देस...
उस देश चलें! और यह देश कहीं दूर नहीं है। यह देश कहीं परदेस में नहीं है। यह देश कहीं आकाशों में नहीं है, पातालों में नहीं है। यह देश तुम्हारे ही भीतर है।
चलहु सखी वहि देस, जहवां दिवस न रजनी।
पाप पुन्न नहिं चांद सुरज नहिं, नहीं सजन नहीं सजनी।।
धरती आग पवन नहिं पानी, नहिं सूतै नहिं जगनी।
लोक बेद जंगल नहिं बस्ती, नहिं संग्रह नहिं त्यगनी।।
न वहां त्याग है, न संग्रह है। न वहां लोक है, समाज है; न वेद है, शास्त्र है; न ही जंगल है, न ही बस्ती है।
पलटूदास गुरु नहिं चेला, एक राम रम रमनी।
वहां सब खो जाते हैं। गुरु-चेले का अंतिम भेद भी खो जाता है। और सब भेद
तो खो ही जाते हैं--पति के पत्नी के, भाई के बहन के, मित्र के शत्रु के--जो अंतिम भेद है, प्यारे से प्यारा भेद है, गुरु-शिष्य का भेद भी वहां खो जाता है। वहां तो बचता है एक। अब एक को क्या नाम दें! एक तो अनाम ही होगा। दो हों तो नाम हो सकते हैं।
एक राम रम रमनी।
बस एक राम बच रहता है। यहां राम से अर्थ दशरथ-पुत्र राम से नहीं है। यहां राम से अर्थ है तुम्हारे प्राणों में बसे हुए साक्षी ब्रह्म से। जहां एक राम ही रह जाता है--न कोई भक्त, न कोई भगवान; न कोई दृश्य, न कोई द्रष्टा; जहां एक शुद्ध साक्षी-भाव रह जाता है, दर्पण मात्र, जिसमें कुछ झलकता भी नहीं, इतना द्वंद्व भी नहीं--इस अवस्था को योग ने समाधि कहा है, निर्विकल्प समाधि। महावीर ने शुक्ल-ध्यान की अवस्था कहा है। इतना शुद्ध, इतना पवित्र, इतना पावन--इसलिए शुक्ल, शुभ्र, शुभ्रतम! इसे बुद्ध ने निर्वाण कहा है। जहां अहंकार का दीया बुझ गया। क्योंकि अहंकार के दीये के लिए द्वंद्व चाहिए।
तुम जब बिल्कुल अकेले रह जाते हो तो तुम्हें जो अड़चन होती है, शायद तुमने सोचा भी न होगा--क्यों होती है? अकेले में तुम इतने बेचैन क्यों हो जाते हो? अगर दस-पांच दिन अकेला रहना पड़े तो इतने घबड़ा क्यों जाते हो? मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि तीन सप्ताह अगर व्यक्ति को बिल्कुल एकांत में रहना पड़े तो पागल हो जाए। क्यों? सीधा सा कारण है। सोचा नहीं होगा, प्रयोग नहीं किया होगा, ख्याल में नहीं आया होगा।
तुम्हारे अहंकार के जीवित रहने के लिए दूसरे की जरूरत है। अगर दूसरा मौजूद हो तो अहंकार जीता है। तू हो तो मैं जीता है; बिना तू के मैं का कोई अस्तित्व नहीं बचता। जहां तू ही नहीं है वहां मैं भी नहीं है। और जहां मैं नहीं है वहां घबड़ाहट लगेगी कि डूबने लगे--डूबने लगे अतल गहराइयों में! कोई पार मिल सकेगा इस अतल गहराई का, भरोसा नहीं आता। हाथ से छूटने लगे सब सहारे। अब तक अहंकार में जीए हो--मैं हूं! लेकिन जहां तू गया वहां मैं भी गया; फिर जो शेष रह जाता है--
एक राम रम रमनी।
इसलिए तो हम भीड़ तलाशते हैं। इसलिए धर्म के नाम पर भी भीड़ में ही सम्मिलित हो जाते हैं--हिंदू की भीड़, मुसलमान की भीड़, ईसाई की भीड़, जैन की भीड़--भीड़ की तलाश करते हैं। महावीर ने ज्ञान पाया एकांत में। बुद्ध ने ज्ञान पाया एकांत में। जीसस ने ज्ञान पाया एकांत में। लेकिन हम भीड़ तलाशते हैं। हमें अकेलापन काटता है। जितनी बड़ी भीड़ हो उतना हमें आश्वासन मालूम पड़ता है। भीड़ की तलाश राजनीति है और एकांत की तलाश धर्म है। राजनेता को भीड़ चाहिए। बिना भीड़ के उसके प्राण निकलने लगते हैं।

एक भूतपूर्व एम.एल.ए.
बस स्टॉप पर
खड़ा हुआ आकर
और थोड़ी देर बाद
गिर पड़ा गश खाकर।
उसकी चेतना उड़ गई

और उसके आस-पास
अच्छी-खासी भीड़ जुड़ गई।

एक आदमी ने लोगों से
अनुरोध किया
कि आप ये भीड़ हटा लीजिए
बेचारे को हवा आने दीजिए।

तब मैंने कहा,
"नहीं! ये भीड़ रहने दीजिए आपको शायद मालूम नहीं है कि यह बेहोश पड़ा व्यक्ति एक हारा हुआ विधायक है
हाल-फिलहाल ये भीड़
इसके लिए लाभदायक है
आप भीड़ हटाने की नादानी
क्यों कर रहे हैं
अरे, भीड़ ने साथ छोड़ दिया था
इसीलिए तो ये दौरे पड़ रहे हैं!"

आदमी भीड़ में जीता है। राजनेता ही नहीं, सभी भीड़ की तलाश करते हैं। परिवार हम बसाते हैं, किसलिए? अकेलापन न अनुभव हो। विवाह करते हैं, बच्चे पैदा करते हैं--अकेलापन अनुभव न हो, संग-साथ रहे। सबसे बड़ा डर अकेले होने का डर है कि कहीं मैं अकेला न पड़ जाऊं! इसके लिए हम कितने आयोजन करते हैं! अगर हम जीवन को छान कर देखें तो हमारे सारे आयोजन एक बात के हैं कि किसी तरह मुझे यह याद न आए कि मैं नहीं हूं। और बुद्ध कहते हैं कि जो जान ले मैं नहीं हूं, उसने पा लिया सब, उसे मिल गया वह देश--जहां न तू है, न मैं है। चूंकि हम भीड़ पर निर्भर होते हैं, इसलिए भीड़ से डरते भी हैं, भीड़ से भयभीत भी रहते हैं। भीड़ हमसे जो करवाए हम करते हैं। भीड़ की आज्ञा माननी पड़ती है। भीड़ जो चरित्र दे दे, उसे थोप लेना पड़ता है; चाहे अंतरात्मा गवाही दे या न दे। भीड़ को खुश रखना होता है, क्योंकि बिना भीड़ के हम मुश्किल में पड़ जाते हैं। इसलिए भीड़ अगर युद्ध को जा रही हो तो हम भी चले युद्ध को। अगर भीड़ मंदिर को जला रही हो तो हम भी जलाते हैं मंदिर को। अगर भीड़ मस्जिद को गिराती हो तो हम मस्जिद गिराते हैं। अगर भीड़ हत्याएं करती हो तो हम हत्याएं करते हैं। हिंदू-मुस्लिम दंगे सिर्फ भीड़ों के कारण हैं। कुछ लोग एक भीड़ के हिस्से बन गए हैं, कुछ लोग दूसरी भीड़ के हिस्से बन गए हैं।
इस दुनिया से हिंदू-मुस्लिमों के दंगे, ईसाइयों-मुसलमानों के दंगे नहीं मिटेंगे तब तक, जब तक आदमी अकेला होने की सामर्थ्य नहीं जुटाता। जब तक भीड़ें हैं तब तक दंगे रहेंगे, क्योंकि भीड़ को भी बचने के लिए दंगों की जरूरत है। जैसे तुम्हें बचने के लिए भीड़ की जरूरत है, भीड़ को बचने के लिए दंगों की जरूरत है।
अडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि अगर तुम्हारे देश का कोई शत्रु न हो तो झूठा शत्रु पैदा रखो, लेकिन बनाए रखो। जब तक शत्रु है तब तक देश इकट्ठा रहता है, मजबूत रहता है। जैसे ही शत्रु न हुआ वैसे ही देश ढीला पड़ जाता है, सुस्त हो जाता है। अगर सच्चा शत्रु हो तो सौभाग्य; अगर सच्चा शत्रु न हो तो झूठी ही अफवाहें उड़ाए रखो, डराए रखो लोगों को। इस्लाम खतरे में है--तो मुसलमान इकट्ठा रहता है। हिंदू धर्म खतरे में है, हिंदू राष्ट्र खतरे में है--तो लोग चले राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में चड्डियां पहन कर कवायद करने। खतरा पैदा रखो, खतरे को जगाए रखो। जब तक खतरा है तब तक तुम इकट्ठे हो; जैसे ही खतरा गया कि तुम बिखरे।
तुम देखते हो, देश में, इस देश में अभी तीस साल पहले अंग्रेजों का राज्य था तो सारा देश इकट्ठा था, क्योंकि दुश्मन एक था, उससे लड़ना था। उससे लड़ना था तो लोग इकट्ठे थे। कोई झगड़ा न था गुजराती और मराठी का, हिंदी बोलने वाले का और तमिल बोलने वाले का--कोई झगड़ा न था। सारा देश इकट्ठा था।

अंग्रेज उस इकट्ठेपन से डरा हुआ था। इसलिए उसने एक झगड़ा खड़ा करवा दिया था हिंदू-मुसलमानों का। हिंदुओं को अंग्रेज भड़काते रहे कि तुम्हारा धर्म खतरे में है और मुसलमानों को भड़काते रहे कि तुम्हारा धर्म खतरे में है। इस झगड़े में उलझाए रखे। इस झगड़े में उन्होंने इस देश को दो हिस्सों में तुड़वा दिया। हिंदू-मुसलमान लड़ते रहे।
लोग सोचते थे कि हिंदुस्तान और पाकिस्तान बंट जाएंगे तो फिर दंगा- फसाद खतम हो जाएगा। मगर नहीं खतम हुआ। हिंदू-मुसलमान अगर बंट गए तो क्या होता है! तो अब और छोटी-छोटी चीजों पर झगड़े शुरू हो गए। तो उत्तर भारत का और दक्षिण भारत का झगड़ा है। तुम अगर रावण की प्रतिमा जलाते हो तो दक्षिण में राम की प्रतिमा जलाई जाएगी। क्योंकि राम उत्तर के थे। उत्तर छाती पर चढ़ा हुआ है। दक्षिण को उत्तर से मुक्त होना है। उत्तर-दक्षिण का झगड़ा होगा, यह कभी सोचा भी न था।
और छोटी-छोटी बातों के झगड़े हैं। नर्मदा का जल किसका है--मध्यप्रदेश
का कि गुजरात का? एक छोटी-मोटी तहसील, कि जिला किसका है--कर्नाटक का कि महाराष्ट्र का? छुरेबाजी होगी। बंबई किसकी है--गुजरातियों की कि महाराष्ट्रियनों की? छुरेबाजी हो जाएगी।
आदमी भीड़ में रहता है तो उसे लगता है मैं हूं। और भीड़ दूसरी भीड़ों से लड़ती रहती है तो उसे लगता है कि मैं हूं। अगर कोई लड़ने को न बचे, भीड़ बिखर जाए। तुम्हें मित्रता नहीं बांधती, तुम्हें शत्रुता बांधती है। तुम्हें प्रेम नहीं बांधता, तुम्हें घृणा बांधती है।
इसलिए तुमने देखा, अगर पाकिस्तान से झगड़ा हो रहा हो तो भारतीयों के आपसी झगड़े एकदम शांत हो जाते हैं। अभी पाकिस्तान से पहले निपटें, फिर ये आपसी झगड़े तो पीछे काम में आ जाएंगे; जब कोई और झगड़ा न रहेगा तब इन झगड़ों में समय बिता लेंगे। चीन का हमला हो जाए तो तुम एकदम इकट्ठे हो जाते हो। फिर तुम अपने झगड़े भूल जाते हो। और नहीं तो छोटे-छोटे झगड़े खड़े हो जाते हैं--सिक्खिस्तान चाहिए! बंगालियों को अखंड बंगाल चाहिए!
भीड़ जिंदा नहीं रह सकती बिना भीड़ों से टकराए। ये तुम्हारे राष्ट्र-- भारत, पाकिस्तान, चीन, जापान--और क्या हैं सिवाय भीड़ों के नाम? और इनके बचने का राज क्या है? इनके बचने का राज वही है। अगर मूल सूत्र से समझोः तुम नहीं बचोगे अगर अकेले रह जाओ; भीड़ नहीं बचेगी अगर और भीड़ें न रह जाएं।
हम द्वंद्व में जीते हैं। न केवल जीते हैं, बल्कि द्वंद्व को पोषण करते हैं। फिर जिस भीड़ के आधार पर तुम जीते हो, स्वभावतः उससे डरना होगा। अगर वह कहे कि ऐसा भोजन करो, तो वैसा भोजन करना होगा। वह कहे इस ढंग से उठो, इस ढंग से बैठो--तो इस ढंग से उठना होगा, इस ढंग से बैठना होगा। क्योंकि भीड़ बरदाश्त नहीं करती है बगावतियों को, विद्रोहियों को; क्योंकि विद्रोही भीड़ के लिए खतरा हैं, भीड़ को वे तोड़ देंगे, भीड़ को खंड-खंड कर देंगे। भीड़ चाहती है आज्ञाकारी व्यक्ति। आज्ञा का उल्लंघन भीड़ की दृष्टि में सबसे बड़ा पाप है। तो तुम डरते हो। और जब तक तुम एकांत में जी न पाओगे, जब तक तुम अपने भीतर के एकांत में डूब न पाओगे, जब तक तुम ध्यान में रसमग्न न हो पाओगे--तब तक भीड़ तुम्हारी मालिक रहेगी, तुम गुलाम रहोगे।
बीमार नेताजी से डाक्टर ने पूछा, क्या आप पार्टियों में बहुत आते- जाते हैं? आपका पेट खराब है, हाजमा बिगड़ा हुआ है।
हां, मैं पार्टियों में बहुत आता-जाता हूं, नेताजी ने कहा। पहले मैं जनसंघी था, फिर समाजवादी, फिर साम्यवादी, फिर स्वतंत्र पार्टी में, फिर जनता पार्टी में। वहां से स्वर्ण-कांग्रेस में आया और आजकल इंदिरा- कांग्रेस में हूं, क्योंकि अब आसार उसी के नजर आते हैं।
नेता पार्टी का मतलब भी एक ही जानता है--हाजमा भी खराब हो तो भी! उसकी अपनी बंधी भाषा है।
भीड़ से डरोगे, वेद से भी डरोगे। वेद प्रतीक है। मुसलमान हो तो कुरान समझ ले और ईसाई हो तो बाइबिल समझ ले और बौद्ध हो तो धम्मपद समझ ले। तुमने जिस किताब को मान रखा हो, वही वेद है। तुम जिस किताब को मान कर चल रहे हो, वही वेद है।
लोक बेद...

अगर तुम भीड़ से डरोगे तो भीड़ की किताब को भी मान कर चलना पड़ेगा। और भीड़
की किताबों ने क्या-क्या पाप तुमसे नहीं करवा लिए हैं! मनुस्मृति ने क्या- क्या पाप नहीं करवा लिए हैं! लेकिन अगर हिंदू हो तो मनुस्मृति को मान कर चलना ही पड़ेगा। क्योंकि हिंदुओं की भीड़ को बांध कर कौन रखेगा? कोई किताब चाहिए, कोई नियम चाहिए, कोई व्यवस्था चाहिए--वह कौन देगा?
इसलिए किताबें इतनी मूल्यवान हो गई हैं। अपनी बुद्धि मूल्यहीन हो गई है, परायी बुद्धियां मूल्यवान हो गई हैं। मनु महाराज को मरे पांच हजार वर्ष हो गए, लेकिन उनसे छुटकारा नहीं होता। अब भी जब तुम कभी किसी हरिजन को जलाते हो तो उसमें मनु महाराज की किताब का हाथ होता है।
तुम्हें शायद ज्ञात हो या न हो, लेकिन मनुस्मृति ने ब्राह्मण, शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय की अखंड धारा चलाई है, भेद बिल्कुल सुनिश्चित कर दिए। इतने सुनिश्चित कि जिनको तुम महापुरुष कहते हो वे भी महापुरुष नहीं मालूम होते।
स्वयं राम ने एक शूद्र के कानों में गरम सीसा पिघलवा कर भरवा दिया था, क्योंकि उसने वेद को सुनने की हिम्मत की थी। सुनने की हिम्मत, क्योंकि वेद वर्जित है शूद्र के लिए! और राम को तुम मर्यादा-पुरुषोत्तम कहते हो! शायद इसीलिए कहते हो, क्योंकि तुम्हारी मर्यादा से बाहर नहीं गए। तुम्हारी मर्यादा यही थी कि शूद्र वेद को न सुने; पढ़ना तो दूर, सुने भी नहीं। और एक शूद्र ने वेद को सुन लिया, उसके कानों में सीसा पिघलवा कर भरवा दिया। मर ही गया होगा बेचारा।
और अगर राम ऐसे कृत्य कर सकते हैं तो फिर छोटे-मोटे राम जो करते हैं गांव-गांव में, वह सब मर्यादा है! ये छोटे मर्यादा-पुरुषोत्तम!
तुम्हारे महापुरुष भी तुम्हारी मानें तो महापुरुष, तुम्हारी न मानें
तो महापुरुष नहीं। यह चमत्कार है कि छोटे-छोटे लोग भी अपने महापुरुषों को अपने पीछे चलवाते हैं। इस जगत का नियम है कि नेता को नेता होना हो तो अनुयायियों के पीछे चलना पड़ता है। यह बड़ा उलटा नियम है। असली नेता वही है, समझदार नेता वही है जो देख ले कि भीड़ कहां जा रही है और सदा भीड़ को देख कर हमेशा भीड़ के आगे हो जाए। पीछे से तो भीड़ के पीछे होता है, वस्तुतः तो भीड़ के पीछे होता है, देख लेता है भीड़ कहां जा रही है। अगर बाएं मुड़ती है भीड़ तो होशियार नेता बाएं मुड़ जाता है; दाएं मुड़ती है भीड़ तो होशियार नेता दाएं मुड़ जाता है! नेता तो ऐसे है जैसे हवा का रुख बताने वाला पंखा होता है, जो हवा का रुख बताता रहता है--बाएं, दाएं, कहां हवा बह रही है, पंखी उसी तरफ उड़ने लगती है।
तुम्हारे महापुरुष भी बिल्कुल थोथे हैं। नहीं तो तुम उन्हें महापुरुष मानोगे भी नहीं; तुम उन्हें पत्थर मारोगे, गालियां दोगे। तुम उन्हें जिंदा जला दोगे। और तुमने वही किया है--असली महापुरुषों के साथ तुमने वही किया है। राम को तो मर्यादा-पुरुषोत्तम कहा है, लेकिन महावीर का उल्लेख भी नहीं किया। हिंदू शास्त्रों में महावीर का कोई उल्लेख नहीं है। क्यों? क्योंकि इसने वेद की मर्यादा नहीं मानी, इसने मनुस्मृति की मर्यादा नहीं मानी। इसने चार वर्णों का नियम नहीं माना और न ही चार आश्रमों का नियम माना। और इतना ही नहीं, यह व्यक्ति वस्त्र छोड़ कर नग्न खड़ा हो गया। इसने सब मर्यादाएं तोड़ दीं। यह बगावती है। इस बगावती को स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसलिए महावीर को पत्थर मारे गए, गांव-गांव से खदेड़ा गया, कानों में सींकचे ठोंक दिए गए। भयानक खूंखार कुत्ते महावीर के पीछे छोड़े गए। महावीर को जितना सताया जा सकता था, सताया गया।
वही तुमने बुद्ध के साथ किया। चट्टानें सरकाईं पहाड़ों से--कि बुद्ध नीचे ध्यान कर रहे हैं, उनके ऊपर चट्टान गिर जाए। कहानियां कहती हैं कि चट्टानें बच कर निकल गईं, बुद्ध को छोड़ दिया उन्होंने। ऐसा लगता है कि चट्टानों के पास भी तुमसे ज्यादा समझ है। पागल हाथी बुद्ध के ऊपर छोड़ा गया। लेकिन बुद्ध के चरणों में आकर झुक गया। ऐसा मालूम होता है, तुम पागल हाथियों से भी ज्यादा पागल हो।
मीरा को तुमने जहर पिलाया, मंसूर के हाथ-पैर काट डाले, जीसस को सूली पर लटकाया, सुकरात को मौत की सजा दी।
और राम को तुम कहते हो मर्यादा-पुरुषोत्तम! उनकी मर्यादा क्या है?

पहली मर्यादा कि बूढ़े बाप की गलत आज्ञा मानी। बूढ़े बाप ने बुढ़ापे में विवाह किया है जवान लड़की से, उस जवान लड़की को वचन दे दिया है। इस बूढ़े बाप की आज्ञा मानी; आज्ञाकारी हैं--यह उनकी मर्यादा है! फिर तथाकथित ऋषियों- मुनियों की रक्षा की, पंडित-पुजारियों की--यह उनकी मर्यादा है! शूद्र के कान में सीसा पिघलवा कर भरवा दिया ताकि फिर दुबारा ऐसी भूल कोई शूद्र न करे--यह उनकी मर्यादा है! इसलिए राम का गुणगान चल रहा है सदियों से, रामलीला चल रही है गांव-गांव। तुलसीदास की चौपाइयां लोगों ने रट ली हैं और सोचते हैं इन चौपाइयों को दोहरा कर वे धार्मिक हो रहे हैं। भीड़ ने राम को इतना सम्मान दिया है, उससे साफ है कि राम भीड़ की मान कर चलते रहे; जैसा भीड़ चाहती थी वैसा ही करते रहे। कुशल राजनीतिज्ञ रहे होंगे, होशियार नेता रहे होंगे!
और तुम वेदों की मानते हो, चाहे वेद कुछ भी कहें।
कोई किताब शाश्वत नहीं है, सब किताबें सामयिक होती हैं, अपने समय के अनुकूल होती हैं। अपने समय के लिए जरूरी भी होती हैं, उपयोगी भी होती हैं, उपादेय भी होती हैं। लेकिन कोई किताब शाश्वत नहीं है।
बाइबिल में लिखा है कि पृथ्वी चपटी है। अब वैज्ञानिकों ने खोज लिया
कि पृथ्वी गोल है। अब मुश्किल खड़ी हो गई। वह जो वेद को मान कर चलता है, उसके लिए अड़चन खड़ी हो गई। आज से तीन सौ साल पहले, इस पृथ्वी पर पैदा हुए बड़े से बड़े वैज्ञानिकों में से एक, गैलीलियो को पोप ने बुलवाया अपनी अदालत में माफी मंगवाने को--कि माफी मांगो और कहो कि पृथ्वी चपटी है, गोल नहीं! और सूरज पृथ्वी का चक्कर लगाता है, पृथ्वी सूरज का चक्कर नहीं लगाती। विज्ञान ने दोनों बातें खोज ली थीं। गैलीलियो की दोनों बातों के लिए काफी प्रमाण थे गैलीलियो के पास कि पृथ्वी गोल है और पृथ्वी सूरज का चक्कर लगाती है, सूरज नहीं। मगर गैलीलियो भी बहुत अलमस्त आदमी रहा होगा। बूढ़ा था, लेकिन बड़ा समझदार रहा होगा। उसने कहा कि ठीक, आप सबको इससे प्रसन्नता होती है कि पृथ्वी चपटी रहे, आपकी मौज! मैं कहे देता हूं--पृथ्वी चपटी है, गोल नहीं। और आपको आनंद मिलता है यह बात जान कर कि सूरज पृथ्वी का चक्कर लगाए, पृथ्वी सूरज का न लगाए। मैं बिल्कुल राजी हूं। मुझे क्या अड़चन है? मेरा क्या बनता-बिगड़ता है? मैं कहे देता हूं कि सूरज ही चक्कर लगाता है, पृथ्वी चक्कर नहीं लगाती। लेकिन एक बात ध्यान रहे, मेरे कहने से कुछ भी नहीं होता। पृथ्वी गोल है और गोल ही रहेगी। और पृथ्वी सूरज का चक्कर लगाती है तो चक्कर लगाएगी ही। गैलीलियो की आज्ञा का कुछ भी अर्थ नहीं, मैं कितना ही चिल्लाऊं। मगर मैं कहे देता हूं, मैं क्षमा मांगे लेता हूं, मैं घुटने टेके देता हूं। मैं इस झंझट में नहीं पड़ता, मैं इस तरह की क्षुद्र बातों को व्यर्थ का विवाद नहीं बनाना चाहता। लेकिन मैं क्या करूं?
उसने बार-बार दोहरा कर कहा कि मैं क्या करूं? उसने पोप को अच्छा लथाड़ा। माफी तो मैं मांग रहा हूं, मेरी तरफ से मांग सकता हूं, पृथ्वी के लिए मैं क्या कर सकता हूं! पृथ्वी... आप पृथ्वी को अदालत में बुलाइए। लेकिन क्या पोप को अड़चन थी? अगर विज्ञान ने यह तथ्य खोज लिया है तो इसे स्वीकार करने में अड़चन क्या थी? एक अड़चन आती है। और वह अड़चन यह है कि अगर बाइबिल की एक बात गलत हो सकती है तो फिर शक पैदा होता है, और बातें भी गलत हो सकती हैं। इस शक से तो बड़ी असुविधा हो जाएगी। एक ईंट खिसक जाए बुनियाद की, तो और ईंटें भी लोग खिसकाने लगेंगे। लोग कहेंगे कि जब तुम्हारे धर्मग्रंथ में ऐसी बुनियादी भूल है, तो क्या पता कि बाकी भी सब भूलें हों! तो वह जो विश्वास का एक गढ़ खड़ा कर रखा है, वह गिरना शुरू हो जाएगा।
इसलिए कोई धर्म अपनी धार्मिक किताब में किसी तरह का विचार स्वीकार नहीं करना चाहता। जैसा लिखा है, बस वैसा; उससे इंच भर इधर-उधर नहीं होना। और कोई धर्मग्रंथ सदा के लिए उपयोगी नहीं हो सकता। अपने समय की प्रतिछाया होती है उसमें; अपने समय की भाषा होती है; अपने समय के नियम प्रतिबिंबित होते हैं। और ठीक अपने समय के लिए वह उपयोगी भी रहा है। लेकिन उसे सदा के लिए उपयोगी बनाना और सदा के लिए लोगों की छाती पर थोप देना खतरनाक है, महंगा सौदा है। लेकिन हम खुद ही कर लेते हैं। हम लोगों से डरते हैं और हम शास्त्रों से डरते हैं। और ये दोनों भय हमें अपने अंतरतम में नहीं जाने देते।

स्वयं की प्रज्ञा को निखारो। स्वयं की बुद्धि को धार धरो। शास्त्र में नहीं, स्वयं में छिपा है सत्य। और भीड़ में नहीं; पाओगे अगर परमात्मा को तो अपने में, स्वयं में।
लोक बेद जंगल नहिं बस्ती, नहिं संग्रह नहिं त्यगनी।
एक ऐसी भी चैतन्य की दशा है, जहां न संग्रह है, न परिग्रह है, न त्याग है। इस बात को समझना। क्योंकि दुनिया में दो तरह के लोग हैं। होने चाहिए तीसरे तरह के लोग, लेकिन तीसरे तरह के लोग तो कभी-कभी होते हैं--बहुत विरल। दुनिया में दो तरह के लोगों की भीड़ है। एक वे जो संग्रह में जीते हैं-- इकट्ठा किए जाओ, भरे जाओ--कुछ भी हो, कूड़ा-करकट, लेकिन भरे जाओ, इकट्ठा किए चले जाओ!
मैं एक मित्र के साथ घूमने निकलता था। एक साइकिल का हैंडल पड़ा था रास्ते के किनारे। उन्हें संकोच तो बहुत लगा, लेकिन मुझसे कहा, माफ करिए! और उन्होंने तो हैंडल उठा लिया।
मैंने कहा, इस जंग लगे हैंडल का, टूटे-फूटे हैंडल का क्या करोगे? उन्होंने कहा, आप देखिए! ऐसे ही मैंने दो चाक भी इकट्ठे कर लिए हैं। पैडिल भी एक है मेरे पास। जरा देखते जाइए--बनत बनत बनि जाई! एक न एक दिन साइकिल बना कर बता दूंगा।
और जब मैं उनके घर गया, तब तो मैं चकित रह गया, उन्होंने तो कई तरह की चीजें इकट्ठी कर रखी थीं; जिन चीजों का कोई उपयोग नहीं रहा, वे भी सब इकट्ठी कर रखी थीं। उनके घर में रहने की ही जगह नहीं बची थी--टूटा-फूटा फर्नीचर, बर्तन-भांडे, सब... । उनके घर में जो भीतर आता वह बाहर जाता ही नहीं। जो चीज भीतर आ गई वह इकट्ठी होती चली जाती।
कोई धन इकट्ठा करता है, कोई ज्ञान इकट्ठा करता है। कुछ हैं जो त्याग इकट्ठा करने लगते हैं, मगर इकट्ठा करना जारी रहता है। यह क्यों ऐसा होता है? इकट्ठा करने की यह इतनी दौड़ क्यों है? यह परिग्रह का इतना पागलपन क्यों है?
हम बहुत खाली मालूम होते हैं। आत्मज्ञान के बिना व्यक्ति खाली है ही।
और खालीपन काटता है; इसे किसी तरह भर लो! लोग ज्यादा भोजन करके भर लेते हैं।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि लोग ज्यादा भोजन इसीलिए कर लेते हैं कि खालीपन लगता है। ज्यादा कपड़े इकट्ठे कर लेते हैं, क्योंकि खालीपन लगता है। कुछ भी इकट्ठा करो, इकट्ठा करने का यह जो रोग है, यह तुम्हारे भीतर की रिक्तता का सूचक है। पश्चिम में बहुत रिक्तता का बोध है, इसलिए पश्चिम में इकट्ठा करे जाओ चीजों को। और यहां भी, चीजें उतनी नहीं हैं, सुविधा उतनी नहीं है इकट्ठी करने की, इसलिए लोग कूड़ा-करकट ही इकट्ठा करते हैं--मगर कुछ न कुछ इकट्ठा करते जाओ। इकट्ठा करने में एक तरह की भ्रांति होती है कि हम भरे-पूरे हैं।
भरा-पूरा तो आदमी सिर्फ तभी होता है जब राम से भरता है। फिर याद दिला दूंः दशरथ के बेटे राम से मतलब नहीं है। दशरथ के बेटे राम से तो मुझे कुछ लेना-देना ही नहीं है। राम से मेरा अर्थ है--परमात्मा से, आत्मा की परम अवस्था से। जब आत्मा प्रकाशित होती है, जब आत्मा का राज्य उपलब्ध होता है, तब तुम लगोगे भरे-पूरे। अन्यथा खाली लगोगे। और कितना ही भरो, कितनी ही चीजों से भर लो--पद से, प्रतिष्ठा से, नाम से--कुछ भी न होगा।
एक अंतर्राष्ट्रीय भोज-सम्मेलन का आयोजन किया गया था, जिसमें दूर-दूर देशों से आए हुए महारथी सम्मिलित हुए थे। सम्मेलन में सबसे ज्यादा भोजन करने वाले व्यक्ति को सम्मानित किया जाने वाला था तथा उसे अनेक उपहार दिए जाने वाले थे। प्रतियोगिता आरंभ हुई और अंततः चंदूलाल ने दो सौ पूरियां, चार सौ रसगुल्ले, दो सौ प्लेट दही-बड़े, चार सौ कचौड़ियां और अस्सी गिलास शरबत पीकर अंत तक मैदान में अपने को जमाए रखा। निर्णायकों ने घबड़ा कर उसे विजयी घोषित किया कि कहीं मर-मरा न जाए। वह तो अभी तत्पर था और। वह तो कहता था, और थोड़ा चल जाने दो। रिकार्ड ही कायम कर देना है! मगर निर्णायक घबड़ा गए, उन्होंने कहा कि रिकार्ड कायम हो गया। मगर हम पर भी दया करो, नहीं तो हम पकड़े जाएंगे। अगर तुम मर गए तो पुलिस हमें सताएगी।

उन्होंने उसे विजयी घोषित किया और पुरस्कार लेने के लिए स्टेज पर आमंत्रित किया। बामुश्किल उठ सका चंदूलाल। तुम खुद ही सोच लो कैसे उठा होगा। मगर उठ गया।
अहंकार की तृप्ति जो न करवा ले थोड़ा है। मुर्दा उठ आते हैं। कोई मर जाए, उसके कान में अगर जाकर कह दो कि अरे, यह भी कोई वक्त है मरने का! अभी चुनाव पास, जीतने का मौका! और तुम हैरान मत होना अगर वह उठ कर बैठ जाए। किसी तरह चंदूलाल उठ कर खड़ा हो गया, स्टेज पर पहुंचा। पुरस्कार लेने
के बाद लोगों को संबोधित करते हुए बोला, दोस्तो! मैं आज यहां इस प्रतियोगिता में सम्मिलित हुआ हूं, कृपया इस बात को मेरी पत्नी तक न पहुंचने दें, अन्यथा वह मुझे आज का खाना नहीं देगी और मैं भूखा रह जाऊंगा। लोग भरे जाते हैं, भरे जाते हैं। फिर भी भरता नहीं कुछ; फिर भी खाली के खाली रह जाते हैं।
मुझे एक कहानी बहुत प्रीतिकर है--सूफियों की कहानी है। एक फकीर ने एक सम्राट के द्वार पर अपना भिक्षापात्र रखा। सुबह-सुबह थी और सम्राट अपने बगीचे से घूम कर महल में प्रवेश कर रहा था। सम्राट ने कहा, क्या चाहते हो? फकीर ने कहा, क्या का सवाल नहीं है। एक बात चाहता हूं कि मेरा भिक्षापात्र खाली न रहे। चाहे कंकड़-पत्थरों से भर दो, मगर भर दो। रिक्तता काटती है। खाली नहीं रहना चाहता। मेरा भिक्षापात्र भर दो।
सम्राट ने कहा, यह भी कोई बहुत बड़ा सवाल है! इतना छोटा सा भिक्षापात्र, अभी भरवाए देते हैं!
लेकिन उस फकीर ने फिर कहा कि देखना, ख्याल रखना। शर्त यह है कि भिक्षापात्र भरना चाहिए, नहीं तो हटूंगा नहीं द्वार से।
सम्राट ने कहा, अरे पागल! तूने मुझे समझा क्या है, कोई भिखमंगा समझा है? अपने वजीरों को बुला कर कहा कि भर दो सोने से इसका भिक्षापात्र! स्वर्ण-अशर्फियां डाली गईं। मगर उसका भिक्षापात्र अदभुत था। डाली गईं स्वर्ण-अशर्फियां, आवाज भी न करें और खो जाएं। खन-खन की आवाज भी न हो। जैसे किसी अतल गहराई में गिर गईं! छोटा सा भिक्षापात्र और जब झांक कर देखो तो उनका पता ही न चले। खजाना खाली होने लगा। दोपहर हो गई, सारी राजधानी इकट्ठी हो गई, खबर आग की तरह फैल गई कि सम्राट ने एक झंझट ले ली। बड़े-बड़े युद्ध जीता, एक फकीर से हारा जा रहा है। और फकीर अपना भिक्षापात्र लिए खड़ा है और अपना चमीटा बजा रहा है। और वह कहता है कि तब तक नहीं हटूंगा... जब शर्त स्वीकार की है तो मेरा भिक्षापात्र भर दो। और राजा के आंसू निकले आ रहे हैं और राजा की कमर टूटी जा रही है। हीरे-जवाहरात भी चले गए, सोना-चांदी भी चला गया। जो कुछ भी था पास, सब समाप्त हो गया। सांझ होते-होते खजाने खाली हो गए। वजीरों ने कहा, अब हमारे पास कुछ भी नहीं है।
सम्राट उसके पैरों पर गिर पड़ा और कहा, मुझे क्षमा करो! मगर जाने के पहले एक राज बता जाओ, तुम्हारे इस भिक्षापात्र का क्या रहस्य है?
उस फकीर ने कहा, इसका कोई रहस्य नहीं है। इसे मैंने आदमी की खोपड़ी से बनाया है। न आदमी की खोपड़ी कभी भरती है, न यह भिक्षापात्र कभी भरता है। इसका कोई बड़ा राज नहीं है। ऐसे ही मरघट पर यह खोपड़ी मिल गई थी, इसको घिस-घिस कर, ठीक-ठाक करके मैंने भिक्षापात्र बना लिया। जब मैंने बनाया था भिक्षापात्र, मुझे भी यह राज पता नहीं था। वह तो जब मैंने चीजें इसमें रखीं और खो गईं, तब मैं चौंका कि वाह! वाह रे आदमी! जिंदा में भी चमत्कार, मर कर भी चमत्कार!
वही चंदूलाल विश्व-प्रतियोगिता-फेम एक दिन घबड़ाए हुए डाक्टर के यहां पहुंचे और बोले, डाक्टर साहब, आजकल मुझे भूख नहीं लगती।
डाक्टर ने पूछा, आज सबेरे से क्या खाया?
चंदूलाल बोले, सबेरे बिस्तर पर वही कोई दस कप चाय पी और चाय के साथ दस-पंद्रह प्लेट जलेबियां। फिर हाथ-मुंह धोकर बाजार गया। वहां कोई पंद्रह प्लेट समोसे और कोई छह गिलास दूध पीया। फिर शहर का एक चक्कर मारा, तब तक ग्यारह बज चुके थे और भोजन का समय भी हो चुका था, सो घर पहुंचा। वहां बीस रोटियां और दस प्लेट चावल और कोई दस संतरे खाए, और...
डाक्टर बीच में ही टोकते हुए बोला, तो क्या अब मुझे खाने का इरादा है? भरता नहीं मन। भरता ही नहीं; मन का वह स्वभाव नहीं है।

तो एक तरफ परिग्रह वाले लोग हैं, जो इकट्ठा करते चले जाते हैं। फिर इकट्ठा करते-करते थक जाते हैं, बुरी तरह थक जाते हैं। थक जाते हैं तो उलटा करने लगते हैं। सोचते हैं परिग्रह से तृप्ति नहीं मिली तो त्याग से मिलेगी। पहले धन इकट्ठा करते थे, अब धन छोड़ कर भागते हैं। पहले स्त्रियों के पीछे भागते थे; अब स्त्रियां देखीं कि एकदम भागते हैं, उनकी तरफ पीठ करके भागते हैं। जो-जो पहले किया था उससे उलटा करने लगते हैं। जैसे कोई आदमी सोचता हो कि शीर्षासन करेंगे तो जीवन रूपांतरित हो जाएगा।
अगर बुद्धू शीर्षासन करे तो क्या तुम सोचते हो बुद्ध हो जाएगा? शीर्षासन करके और बुद्धू मालूम पड़ेगा, और महाबुद्धू हो जाएगा। कम से कम पैर के बल था, थोड़ी-बहुत बुद्धि की संभावना थी, अब वह भी न रही।
लेकिन मनुष्य के जीवन का एक तर्क है--एक काम करके जब थक जाता है तो तत्क्षण दूसरी अति पर चला जाता है। स्वभावतः उसे लगता है ऐसा करने से नहीं हुआ, इससे विपरीत करके देख लूं। इसलिए भोगी हैं, परिग्रही हैं और त्यागी हैं।
और तुम यह चकित होओगे जान करः जितना भोगी समाज हो उतना ही उसमें त्यागियों का आदर होता है। क्योंकि भोगी को त्याग का तर्क समझ में आता है। उसके मन में भी लग रहा है कि कुछ मिल तो रहा नहीं है, इकट्ठा तो कर रहा हूं, कुछ मिल तो रहा नहीं है। अभी अपनी सामर्थ्य कम है, आत्मबल कम है, संकल्प कम है। जब संकल्प होगा तो हम भी त्याग कर और मुनि हो जाएंगे।
तुम देखते हो, इस देश में जैनियों के पास सर्वाधिक धन है, सर्वाधिक सुविधा--और जैन ही सर्वाधिक त्याग के पक्षपाती! परिग्रह है और त्याग का पक्षपात! ऊपर से देखने में विपरीत मालूम होता है, मगर भीतर एक ही तर्क का फैलाव है। जैन अपने मुनि से जितने त्याग की अपेक्षा करता है उतना कोई समाज अपने साधुओं से नहीं करता। मुसलमान अपने फकीर से इतने त्याग की आशा नहीं करते। क्योंकि मुसलमान के पास अभी कुछ है ही नहीं, अभी वह थका ही नहीं है परिग्रह से, तो त्याग की अपेक्षा कैसे करे? लेकिन जैन अपने फकीर से बहुत त्याग की अपेक्षा करते हैं। जैन श्रावक तो बिल्कुल जांचते ही रहते हैं अपने मुनि को, कि कहीं जरा सी भूल-चूक मिल जाए कि इसको ठिकाने लगा दें! कब उठता, कब बैठता; क्या खाता, क्या पीता; कितना खाता, कितना पीता--सब जांच-पड़ताल रखते हैं। व्रत-उपवास नियम से करता कि नहीं करता--सब तरह का हिसाब रखते हैं। मगर धोखा देने वाले रास्ते निकाल ही लेते हैं।
कुछ दिनों पहले जैनों के एक तीर्थ शिखरजी में नग्न दिगंबर जैन मुनि पकड़े गए एक ऐसे मामले में, पुलिस थाने ले जाना पड़ा उनको, कि कल्पना भी नहीं की जा सकती! जैनियों ने काफी रिश्वत देकर, खिला-पिला कर बात को दबाया कि अखबारों तक न पहुंच जाए, क्योंकि जैन मुनि और ऐसे मामले में! दो जैन मुनि झगड़ पड़े और एक-दूसरे की मार-पीट कर दी।
अहिंसा! नग्न! अब झगड़े को है भी क्या पास? झगड़ने के लिए भी कोई निमित्त चाहिए! मगर निमित्त था। दोनों ने अपनी पिच्छी में... पिच्छी होती है साथ, जिससे जमीन साफ करने को कि कोई चींटी इत्यादि न मर जाए, उसमें डंडा होता है, उस डंडे को पोला करके सौ-सौ के नोट उसमें भर रखे हैं और दोनों ने तय कर रखा था कि आधा-आधा बांटेंगे। जिसके डंडे में ये नोट थे वह जरा ज्यादा रखना चाहता था। स्वभावतः, क्योंकि रखे उसने, झंझट उसने उठाई, खतरा उसने मोल लिया। मगर दूसरे को राज पता था; उसने कहा, राज मैंने छिपाया, नहीं तो कभी की मिट्टी पलीद हो जाती है। बराबर हिस्सा बंटना चाहिए।
इसी पर झगड़ा हो गया। और तो कुछ था नहीं, बस वही पिच्छियां थीं, उन्हीं
से एक-दूसरे की पिटाई कर दी। कुछ गांव के लोगों ने देख लिया, उन्होंने पुलिस में खबर कर दी। पुलिस थाने में दिगंबर जैन मुनि मौजूद--और तब यह सब राज खुला कि झगड़ा नोटों का है!
अब तुम कभी सोच भी नहीं सकते कि दिगंबर जैन मुनि अपनी पिच्छी की डंडी में और नोट रखे होगा! अब की बार दिगंबर जैन मुनि मिले तो पहले पिच्छी की डंडी देखना, पीछे नमस्कार करना। मगर अब उन्होंने कोई दूसरी तरकीब निकाल ली होगी, क्योंकि वह बात तो पकड़ी जा चुकी।
जहां नियम है वहां नियम से बचने के लिए चालाकियां भी निकल आती हैं। अब क्या भेद रहा? और फिर जब तुम त्यागते हो तो किसलिए? उसमें भी आशा है--कि

पुण्य होंगे, पुण्य के फल मिलेंगे स्वर्ग में। मगर वही व्यवसाय, वही वाणिज्य, वही व्यवसाय-बुद्धि, वही गणित--जरा भी कहीं अंतर नहीं है।
लोक बेद जंगल नहिं बस्ती, नहिं संग्रह नहिं त्यगनी।
पलटू कहते हैं कि न तो संग्रह है और न त्याग; न भोग, न योग--इन दोनों के ऊपर जो जाए वही पाता है। अतियों से जो मुक्त हो उसी की उपलब्धि है। पलटूदास गुरु नहिं चेला, एक राम रम रमनी।
जब एक ही रह जाए... और वह एक कौन है? उस एक का क्या नाम है? उस एक का क्या स्वरूप है?
साक्षी-भाव उसका नाम, साक्षी-भाव उसका स्वरूप। संग्रह में भी कर्ता आ जाता है और त्याग में भी कर्ता आ जाता है। और जहां कर्ता आ गया वहां संसार आ गया। कर्ता यानी संसार का द्वार।
जहां भी होओ--चाहे संसार में और चाहे संसार के बाहर, चाहे त्यागी होओ चाहे भोगी--एक बात ख्याल रखनाः कर्ता-भाव न आए। जहां कर्ता-भाव आया, वहीं चूक हो गई, वहीं फिसले, बुरे फिसले। साक्षी-भाव बना रहे। दुकान पर भी बैठ कर अगर साक्षी-भाव बना रहे, बाजार में भी बैठ कर अगर तुम सिर्फ दर्शक मात्र रहो--तो पर्याप्त। बस यह साक्षी-भाव सतत बहने लगे, चौबीस घंटे बहने लगे, सपने में भी बना रहे, सपने में भी दिखाई पड़ता रहे कि मैं साक्षी हूं--फिर तुम्हारे ऊपर कोई कालिख न रह जाएगी, कोई कलुष न रह जाएगा, कोई कल्मष न रह जाएगा। तुम परम शुद्ध परमात्मा को अनुभव कर लोगे! वह तुम्हारे भीतर विराजमान है, एक क्षण को भी वहां से हटा नहीं है। लेकिन तुम भागे-भागे हो-- कभी भोग में, कभी त्याग में।
त्याग से भी बचो, भोग से भी बचो; उन दोनों में बहुत भेद नहीं है।
मुल्ला नसरुद्दीन, ऐसा लगता है कि ये दो कप तुम्हें किसी प्रतियोगिता में मिले होंगे--मुल्ला के घर आए हुए एक मेहमान ने चांदी के दो कपों को देख कर पूछा।
हां, मुझे अखिल विश्व-संगीत-प्रतियोगिता में ये ईनाम में मिले थे।
अच्छा! कब-कब मिले थे?
सन उन्नीस सौ छप्पन में।
एक ही प्रतियोगिता में दो कप क्यों मिले?
जब मैंने गायन-वादन प्रारंभ किया तब यह छोटा सा कप मिला--मुल्ला नसरुद्दीन ने समझाया--और बाद में गाना बंद करवाने के लिए उन्होंने यह बड़ा वाला कप ईनाम में दिया।
गाना शुरू करो कि गाना बंद करो--ये एक ही प्रक्रिया के दो अंग हुए। भोग
या त्याग, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इस सत्य को जितना गहरा अपने भीतर उतर जाने दो उतना अच्छा है।
मुल्ला नसरुद्दीन रोज अभ्यास करता है, वर्षों से अभ्यास करता है संगीत का। और जब भी अभ्यास करता है तो उसकी पत्नी बाहर आकर टहलने लगती है। एक दिन मैंने उसकी पत्नी से पूछा, यह बात क्या है? जैसे ही मुल्ला राग छेड़ता है, उसने भरा आलाप, कि तू लाख काम छोड़ कर एकदम बाहर क्यों निकल आती है? और जब तक वह बंद नहीं करता अभ्यास, बाहर ही टहलती रहती है!
उसने कहा, इसलिए ताकि मोहल्ले वाले यह न समझें कि मैं उसकी पिटाई कर रही हूं।
और मुल्ला नसरुद्दीन का अभ्यास भी जानने योग्य है। बस एक ही तार को सितार के, वह खींचता रहता है। थोड़े दिन तक तो लोगों ने बरदाश्त किया। सुबह, सांझ, रात, वक्त-बेवक्त बस एक ही स्वर निकालता रहता है। आखिर मुहल्ले वालों ने उसकी पत्नी से प्रार्थना की कि भई यह किस तरह का अभ्यास हो रहा है? एक ही सुर सुन-सुन कर हम दीवाने हुए जा रहे हैं। कभी-कभी तो ऐसी हालत हो जाती है कि अपना सिर दीवाल से फोड़ लें कि क्या करें! इसका एक सुर बजता ही रहता है!
मुल्ला की पत्नी ने कहा, मैं भी क्या करूं! मैंने उनसे प्रार्थना की
है कि आप यह एक सुर बजाना बंद करो। दुनिया में हमने और भी वादक देखे हैं, कई सुर बजाते हैं, सब तार छेड़ते हैं।

नसरुद्दीन ने कहा, उनको अभी अपना सुर मिला नहीं, वे उसकी खोज कर रहे हैं। मुझे मिल गया, अब मैं क्यों खोजूं? जब मिल ही गया तो मैं उसी को बजाता हूं।
एक रात एक पड़ोसी ने खिड़की खोली और नसरुद्दीन से कहा, नसरुद्दीन, अब बंद भी करो बड़े मियां, चार बज गए! अगर एक मिनट और बजाया तो मैं खिड़की से कूद कर आत्महत्या कर लूंगा।
नसरुद्दीन ने कहा कि तुम्हारी मर्जी। मुझे तो सितार बंद किए दो घंटे
हो चुके।
अब तुम सोच सकते हो, लोगों की क्या हालत हो गई होगी! पगला गए हैं! अभी
भी उनको सुनाई पड़ रहा है, वह दो घंटे से बंद ही कर चुका है। उसने कहा, मैं तो सो रहा था, तुमने बुलाया तो नींद में से उठा हूं। इसमें मेरा कोई हाथ नहीं है।
एक तरफ वे लोग हैं जो भागे जा रहे हैं वस्तुओं की तरफ पागलों की तरह!
एक धुन सवार है, एक सुर उनको पकड़ गया है--किसी को धन का, किसी को पद का, किसी को प्रतिष्ठा का। फिर किसी तरह थक जाते हैं, तो भी पुरानी आदत नहीं छूटती, विपरीत दौड़ने लगते हैं--त्याग, साधुता, संतत्व। मगर दौड़ वही, चाल वही, राग वही! वही पुराना ढंग, वही पुराना मन! जाना है दोनों के पार।
चलहु सखी वहि देस, जहवां दिवस न रजनी।।
पाप पुन्न नहिं चांद सुरज नहिं, नहीं सजन नहीं सजनी।।
धरती आग पवन नहिं पानी, नहिं सूतै नहिं जगनी।।
लोक बेद जंगल नहिं बस्ती, नहिं संग्रह नहिं त्यगनी।।
पलटूदास गुरु नहिं चेला, एक राम रम रमनी।।
चित मोरा अलसाना, अब मोसे बोलि न जाई।
अगर द्वंद्व से ऊपर उठ जाओ, अगर दो को पीछे छोड़ दो और एक हो जाओ, तो यह घटना घटेगी--
चित मोरा अलसाना...
मन निश्चल हो जाएगा, थिर हो जाएगा, अचल हो जाएगा।
चित मोरा अलसाना, अब मोसे बोलि न जाई।
अचानक तुम पाओगेः एक ऐसी शांति, एक ऐसी गहन शांति तुम्हारे भीतर उतरी है--जो तुम्हारी निर्मित नहीं है; जो तुमने ठोंक-पीट कर अपने को किसी तरह आरोपित नहीं कर ली है; जो तुमने जबरदस्ती योगासन इत्यादि लगा कर, अपने को समझा-बुझा कर, बांध-बूंध कर खड़ी नहीं कर ली है। एक अपूर्व शांति तुम उतरती हुई पाओगे--आकाश से, अनंत से, विराट से! या अपने भीतर उगते हुए पाओगे। मगर तुम्हारा कृत्य नहीं होगी वह--प्रसादरूप!
चित मोरा अलसाना...
प्रसादरूप चित्त निश्चल हो जाता है।
अब मोसे बोलि न जाई।
अब बोलना मुश्किल हो जाता है।
लोग हैं जिनसे बिना बोले नहीं रहा जाता। उन्हें चाहिए ही चाहिए कोई जिससे वे बोलें, चाहे बोलने को कुछ भी न हो। बोलने को है भी क्या? लेकिन लोग बोले जा रहे हैं। सारी पृथ्वी पर चर्चा चल रही है, शोरगुल मचा हुआ है। तुम रुकना भी चाहो तो रुक नहीं सकते।
लोग रात में भी नींद में बड़बड़ा रहे हैं। दिन में ही नहीं बोलते, रात में भी बोल रहे हैं। और अगर उनको अकेला छोड़ दो दो-चार-दस दिन रहने के लिए, तो अकेले में खुद से ही बातें करने लगेंगे। वैज्ञानिक कहते हैं, इक्कीस दिन लगेंगे उन्हें अकेले में अपने से बात करने में। बस इक्कीस दिन के बाद बरदाश्त के बाहर हो जाएगा। फिर वे खुद ही बोलेंगे और खुद ही जवाब देंगे। आखिर किसी चीज में तो अपने को उलझाएंगे। बातें इतनी इकट्ठी हो जाएंगी इक्कीस दिन में उनके भीतर कि बहने लगेंगी--ऊपर से बहने लगेंगी, अब कोई सुने कि न सुने।
मुल्ला नसरुद्दीन चंदूलाल से कह रहा था, चंदूलाल, मेरी पत्नी बड़ी अजीब है, अकेले में ही बोलती रहती है!
चंदूलाल ने कहा, है तो मेरी भी इतनी ही अजीब, मगर उसको एक भ्रांति है,
वह सोचती है कि मैं सुन रहा हूं। हालांकि सुनता कौन है!

एक बड़े मनोवैज्ञानिक से उसके शिष्य ने पूछा कि मैं तो थक जाता हूं बीमारों की बातें सुन-सुन कर। पागलों की बातें सुन-सुन कर कौन न थक जाएगा! और आप सुबह आते ताजा और शाम दिन भर न मालूम पच्चीसों मरीजों की बकवास सुन कर जब लौटते हैं तब भी ताजा! और यह उम्र! इसका राज क्या है?
उस बूढ़े मनोवैज्ञानिक ने कहा, इसका राज कुछ भी नहीं। सुनता ही कौन है!
मैं एक राजनेता को जानता था--कैलासनाथ काटजू। उनके दोनों कान खराब थे। वे जब तक यंत्र न लगाएं तब तक सुन नहीं सकते थे। और जब भी कोई उनसे कुछ शिकायत करने आए, वे पहला काम करते थे यंत्र निकाल कर रख देते थे। ये होशियारों के लक्षण हैं। मैंने उनसे पूछा कि यह आपने तरकीब कैसे खोजी? उन्होंने कहा, और क्या करूं? मार डालेंगे! इनकी बकवास सुन-सुन कर... इनको भी लगता रहता है कि मैं सुन रहा हूं; ये भी प्रसन्न और मैं भी प्रसन्न। ये समझे कि सुन लिया और प्रसन्न घर लौटते हैं और मैं हां-हूं करता रहता हूं।
तुम भी अगर गौर करोगे तो तुम लोगों की बात इसी तरह सुनते हो, नहीं तो पगला जाओगे। कौन सुनता है! कौन किसकी सुनता है! तुम्हें वह आदमी बहुत बोर करने वाला मालूम पड़ता है जो तुम्हारी नहीं सुनता है--जो अपनी ही सुनाए जाता है; जो इतना बलवान है कि पिलाए चला जाता है। तुम लाख बचने का उपाय करो, वह छोड़ता ही नहीं।
एक तो ऐसी अवस्था है मनुष्य की, जब तुम रुकना चाहो तो रुक नहीं सकते, बोलते ही चले जाते हो; और एक ऐसी अवस्था भी आती है परम मौन की, कि बोलना कठिन हो जाता है, एक-एक शब्द खींचना पड़ता है। सत्य का अनुभव तो उस परिपूर्ण, शांत, मौन अवस्था में होता है। लेकिन सत्य के साथ जगती है करुणा और करुणा कहती है कि जो जाना है, वह जनाओ। करुणा कहती है, जो पाया है वह लुटाओ। और तब शब्द नहीं मिलते।
चित मोरा अलसाना, अब मोसे बोलि न जाई।
पलटू कहते हैंः एक वक्त था कि बोल ही बोल चलता था--काम, बेकाम; जरूरत, गैर-जरूरत; और अब ऐसी घड़ी आई कि चित्त अलसा गया है, निश्चल हो गया है। अब बोलने की घड़ी आई, बोला नहीं जाता। अब मौका आया कि कुछ कहूं, कि कुछ कहने योग्य मेरे पास है--और शब्द नहीं जुटते।
देहरी लागै परबत मोको...
और एक वक्त था कि भागा फिरता था, पहाड़ लांघ जाता। शांति ही न थी तो आपाधापी थी, भाग-दौड़ थी। सात समंदर लांघ जाता। और अब हालत यह आ गई हैः देहरी लागै परबत मोको! वह जो घर की देहरी है, उसके बाहर जाने का मन नहीं होता।
देहरी लागै परबत मोको, आंगन भया है बिदेस।
अपना ही आंगन विदेश हो गया है। अपने आंगन में भी जाने का मन नहीं रहा-- जाने का ही मन नहीं रहा। मन ही नहीं रहा। सारा व्यवसाय क्षीण हो गया, सारा व्यापार बंद हो गया। मन की गति खो गई, मन की चंचलता खो गई। और अब मौका था कि जाता, क्योंकि लोग हैं जो भटक रहे हैं। अब था कि उन्हें हिलाता-डुलाता। अब था कि कुछ कहता उनसे। अब मेरी बात में कुछ प्रामाणिकता थी। अखबार में पढ़ी बात न थी। वेद और कुरान में पढ़ी बात न थी। लिखालिखी की है नहीं, देखादेखी बात! जब तक लिखालिखी की थी, खूब कहा, खूब सुना; अब देख लिया, अब कहने का क्षण आया, मगर अब कहने के लिए शब्द नहीं।
देहरी लागै परबत मोको, आंगन भया है बिदेस।
पलक उघारत जुग सम बीते...
आंख खोलने की ही तबीयत नहीं होती।
पलक उघारत जुग सम बीते...
ऐसा लगता है, जैसे कि आंख खोलने में हजारों साल लग जाते हों। इतनी मुश्किल मालूम होती है छोटी सी बातः आंख का खोलना!
बिसरि गया संदेस।
है मेरे पास देने को, मगर कैसे दूं, शब्द बिसर गए! संदेश जिन शब्दों में दिया जा सकता था, वे शब्द बिसर गए। एक भाव है, लेकिन शब्द नहीं मिलते।
एक गीत है, लेकिन गान नहीं मिलता। संगीत है, लेकिन वाद्य नहीं मिलता।

घूंघर आज हाथ लगे हैं, मगर पैर कहां जिन पर बांधूं? आकाश उपलब्ध हो गया है, लेकिन पंख कट गए!
विष के मुए सेती मनि जागी, बिल में सांप समाना।
वासना के जहर से आत्मा जग गई है, लेकिन सारा ऊहापोह, सारा विचार, मन की सारी प्रक्रियाएं ऐसी हो गई हैं जैसे कोई आदमी आ जाए और सांप डर कर अपने बिल में समा जाए। मैं क्या जाग गया, मन का सांप डर कर अपने बिल में समा गया! पलटू बड़ी कीमत की बात कह रहे हैं। यह सारे संतों की पीड़ा है। और ऐसा नहीं है कि संत नहीं बोले। बोले, खूब बोले! महावीर चालीस वर्ष जिंदा रहे ज्ञान के बाद। झरी वाणी। बुद्ध बयालीस वर्ष जिंदा रहे। सतत बोले--सुबह बोले, सांझ बोले। फिर भी बोल नहीं पाए! जो बोलना था वह अबोला ही रह गया। जो गाना था वह गीत गाया नहीं जा सका। कहा, कहने के सब तरह से प्रयास किए, लेकिन सब प्रयास असफल हो गए। उपनिषद असफल प्रयास हैं, कुरान असफल प्रयास है, धम्मपद असफल प्रयास है। महाकरुणा है उस प्रयास में, लेकिन प्रयास सफल नहीं हुआ।
कभी सफल नहीं होगा। जिसे निःशब्द में जाना है उसे शब्द में बांधने का
न कोई उपाय है, न हो सकता है। उसे तो गुरु के पास निःशब्द होकर, बैठ कर ही जाना जा सकेगा। उसे तो गुरु के साथ डुबकी मारनी पड़ेगी, तो पा सकोगे। गुरु का हाथ पकड़ लो तो हो सकता है। गुरु के शब्द पकड़ोगे, चूक जाओगे।
जरि गया छाछ भया घिव निरमल...
जैसे घी बनाते हैं तो जब शुरू-शुरू में घी को आंच देते हैं तो जितनी छाछ बच रहती है घी में, वह छुन-छुन करती, आवाज करती, जलती; लेकिन जब छाछ जल जाती है और सिर्फ घी रह जाता है, तो चुप हो जाता है, सब छुन-मुन बंद हो जाती है।
जरि गया छाछ भया घिव निरमल, आपुई से चुपियाना।
बिल्कुल चुप हो जाता है। बोल नहीं सूझते। मौन सहज हो जाता है। जिन्होंने जाना है उन्हें अपने ज्ञान के पर्वत-शिखरों से तुम्हारी अंधेरी घाटियों तक आना बड़ा मुश्किल हो जाता है। बड़ी कोशिश करते हैं, पुकार देते हैं! मगर तुम शब्द समझ सकते हो और उनके पास जो संदेश है, अब शब्द का नहीं, निःशब्द का है। इसलिए सत्संग से तो हो सकता है, अध्ययन-मनन से नहीं हो सकता, पठन-पाठन से नहीं हो सकता।
सदगुरु क्या कहते हैं, इसमें सार नहीं है; सदगुरु क्या हैं, इसमें सार है। सदगुरुओं से जुड़ना हो तो उनके शब्दों को कंठस्थ मत कर लेना, नहीं तो तोते हो जाओगे। सदगुरुओं से जुड़ना हो तो उनके निःशब्द से अपने को जोड़ना, उनके मौन से अपने को जोड़ना। उनके पास बैठना चुप्पी में। उनके सन्नाटे को पीना। बस उनके पास बैठते-बैठते, उठते-बैठते किसी दिन तार से तार मिल जाएंगे, किसी दिन जुगलबंदी बंध जाएगी। किसी दिन उनके साथ तुम्हारा हृदय धड़कने लगेगा--एक लयबद्ध होकर। उस दिन स्वाद मिलेगा।
अब न चलै जोर कछु मोरा, आन के हाथ बिकानी।
पलटू कहते हैं, अब मेरा जोर नहीं चलता। अब तो मैं परलोक के हाथ बिक गया--आन के हाथ बिकानी! जब तक अपना जोर चलता था तब तक अपने पास देने को कुछ न था। यह देखते हो विरोधाभास! और अब देने को कुछ है तो अपना जोर नहीं चलता।
आन के हाथ बिकानी! अब तो परमात्मा जो चाहे करवाए। उसकी मर्जी! उसकी मर्जी ही संत का जीवन।
लोन की डरी परी जल भीतर...
जैसे नमक की डली को किसी ने पानी में डाल दिया।
लोन की डरी परी जल भीतर, गलिके होई गई पानी।
वह भी गल कर पानी हो गई। यही हमारी हालत है, पलटू कहते हैं। भीतर क्या गए, मन की जो लोन की डरी थी, वह भीतर जाते-जाते डूबती गई, डूबती गई; खोती गई, खोती गई। और जब कोई अपने बिल्कुल केंद्र पर पहुंचता है तो मन बिल्कुल शून्य हो जाता है। मैं ही खो गया। रह जाता है परमात्मा। रह जाती है उसकी सुवास; हों जिनके पास नासापुट अनुभव करने वाले, कर लें। रह जाता है उसका प्रकाश; हों जिनके पास आंखें, देख लें। रह जाता है उसका वाद्यहीन संगीत, स्वरहीन संगीत; हों जिसके पास कान, सुन ले। हो जिसके पास हृदय, अनुभव कर ले।

सात महल के ऊपर अठएं, सबद में सुरति समाई।
अब तो मेरी स्मृति, मेरा बोध, मेरा भाव, मेरा अस्तित्व सब, उस अनाहत नाद में समा गया है।
सात महल के ऊपर अठएं...
सात चक्र हैं मनुष्य के। पहला चक्र तो कामवासना का है, जहां अधिक लोग जीते हैं। उनका जीवन वही। उनका सोचना-विचारना वही। दिन वहीं, रात वहीं। उनके सपने वही। एक ही चीज उनके पीछे घूमती रहती है--कामवासना।
उससे थोड़े ऊपर उठते हैं तो दूसरे केंद्र हैं। हृदय के केंद्र पर प्रेम का आविर्भाव होता है। हृदय मध्य में है। तीन केंद्र हृदय के नीचे हैं; उनमें कामवासना, धन-वासना, पद-वासना, इनकी दौड़ रहती है। मध्य पर केंद्र है प्रेम का, हृदय का। और फिर हृदय के ऊपर तीन केंद्र हैं। वहां न धन है, न पद है, न काम है। फिर निरंतर समाधि की तरफ बढ़ना शुरू हो जाता है। हृदय के ऊपर कंठ का केंद्र है। कंठ के केंद्र पर प्रवेश होते ही विचार खो जाते हैं; जैसे कंठ अवरुद्ध हो जाता है। फिर उसके ऊपर तीसरी आंख, तृतीय नेत्र का केंद्र है। उस पर आते ही भाव खो जाते हैं, भावनाएं खो जाती हैं। और विचार न रहे, भाव न रहे, तो मन गया, क्योंकि मन इन दो से ही बना है। उसके ऊपर सातवां केंद्र है--सहस्रार। जिसकी ऊर्जा सहस्रार तक पहुंच जाती है-- प्रतीक है यह तो--कि जैसे हजार पंखुड़ियों वाला कमल उसके भीतर खिल उठता है! मगर ये तो सात केंद्र हैं। पलटू बहुत गहरी बात कह रहे हैं। पलटू कह रहे हैंः सात महल के ऊपर अठएं। इन सात महलों के ऊपर एक आठवां भी है। क्योंकि जहां कमल है, अभी वहां भी स्थूल मौजूद है। फिर आठवां क्या है? कमल की सुवास--जो उड़ चली आकाश में। उस आठवें महल को पा लेना मोक्ष है, कैवल्य है, निर्वाण है। सातवें पर जो पहुंच गया, उसे आठवां मिल ही जाता है, अनिवार्यरूपेण। जिसका फूल खिल गया, उसकी गंध अपने आप विसर्जित होती है, उसके लिए कुछ करना नहीं पड़ता। सातवें तक श्रम करना होता है; आठवां सहज घटित होता है।
इसलिए बहुत संतों ने आठवें की बात ही नहीं की है। ऐसा नहीं कि उनको आठवें का पता नहीं था। आठवें की बात ही क्या करनी है; वह तो अपने से होता है। सात तक श्रम है, साधना है। सात तक सीढ़ियां हैं, जो हमें पार करनी हैं। आठवें की बात करने की कोई जरूरत नहीं है।
जैसे कोई माली तुम्हें बीज बोने की कला सिखाए, तो बीज के संबंध में बताए, खाद के संबंध में बताए--भूमि को कैसे तैयार करो, कंकड़-पत्थर कैसे अलग करो, घास-पात कैसे हटाओ--यह सब समझाए। कब बीज बोओ, ठीक घड़ी, ठीक मुहूर्त में, कब वर्षा आएगी, कब वसंत आएगा--सब समझाए। फिर कितना पानी दो, कितना न दो, कैसी बागुड़ लगाओ, कब तक वृक्ष को रक्षा की जरूरत होगी--यह सब समझाए। फिर कब वृक्ष में फूल लगेंगे, यह भी समझाए। लेकिन यह थोड़े ही समझाएगा कि फिर आखिर में फूलों में से गंध उठेगी। वह तो उठेगी ही! इसलिए बहुत संतों ने आठवें की बात नहीं की है।
पलटू ने आठवें की बात की है, ताकि तुम्हें याद रहे कि असली घटना तो तब घटती है जब फूल भी पीछे छूट जाता है, सहस्रदल कमल भी पीछे छूट जाता है, और उड़ चले तुम आकाश की तरफ! उड़ चले अनंत की तरफ! हो गए लीन विराट में! ब्रह्माकार हो गए!
कल किसी ने प्रश्न पूछा था कि मैं सच में ही ब्राह्मण होना चाहता हूं, मैं क्या करूं?
आठवें महल में पहुंचना पड़े। वहीं पहुंच कर कोई ब्राह्मण होता है। लेकिन लोग तो पहले पर ही रहते हैं। और जो भी पहले पर रहता है वह शूद्र; वह चाहे ब्राह्मण घर में पैदा हुआ हो, चाहे वैश्य घर में, चाहे क्षत्रिय घर में, चाहे शूद्र घर में, कोई फर्क नहीं पड़ता। कामवासना के केंद्र पर ही जो अटके रह जाते हैं वे शूद्र। लेकिन अधिक लोग, सौ में से निन्यानबे प्रतिशत लोग वहीं अटके रह जाते हैं। हमने उसी को जीवन मान लिया है। जीवन बहुत बड़ा है। तुम महल के बाहर ही रह गए। महल में कक्ष के भीतर कक्ष हैं, खजानों के भीतर खजाने हैं।
सात महल के ऊपर अठएं, सबद में सुरति समाई।
पलटूदास कहौं मैं कैसे, ज्यों गूंगे गुड़ खाई।।

कहना चाहता हूं, कह नहीं सकता हूं। गूंगे का गुड़ हो जाता है सत्य। लेकिन इतना कह सकता हूं कि किस-किस से बचना। यह तो नहीं कह सकता, क्या मैंने पाया; लेकिन यह कह सकता हूं, किस-किस से बचा तो पाया। नकारात्मक रूप से कह सकता हूं। यह तो नहीं कह सकता कि परमात्म-अनुभव क्या है, लेकिन यह जरूर कह सकता हूं कि परमात्म-अनुभव क्या-क्या नहीं है।
इस बात को ख्याल में रखना। दो उपाय हैं कहने के। एक तो उपाय है कि सीधा बता दो। कोई पूछे--गुलाब का फूल कहां है? अंगुली रख कर बता दो कि यह रहा गुलाब का फूल। क्योंकि गुलाब का फूल स्थूल है, अंगुली रखी जा सकती है। लेकिन सूक्ष्म अनुभवों पर अंगुलियां नहीं रखी जा सकतीं। अंगुलियां सूक्ष्म नहीं हैं, स्थूल हैं। सूक्ष्म अनुभवों को नेति-नेति के ढंग से समझाना होता है; कहना पड़ता है--यह नहीं, यह भी नहीं, यह भी नहीं... । और जब सब निषेध हो जाता है तब कहा जाता हैः अब जो शेष रह गया, वही है।
वाचक ज्ञान न नीका ज्ञानी, ज्यों कारिख का टीका।
इसलिए पलटूदास कहते हैं, इतना मैं कह सकता हूं कि पढ़े-लिखे से जो ज्ञान मिलता है वह असली ज्ञान नहीं है। असली ज्ञान क्या है, मत पूछो मुझसे। ज्यों गूंगे गुड़ खाई! उस संबंध में तो मुझे चुप रहने दो। मगर नकली क्या है, यह मैं तुम्हें बताए देता हूं।
वाचक ज्ञान न नीका ज्ञानी...
जो पढ़-लिख कर ज्ञानी हो गया है, वह असली ज्ञानी नहीं है; वह बुद्धपुरुष नहीं है; वह जिन नहीं है।
ज्यों कारिख का टीका।
वह तो ऐसा है जैसे किसी ने कोलतार का टीका लगा लिया हो। टीका जैसा लगता है कोलतार का टीका भी, लेकिन वह कोई असली तिलक नहीं है। असली तिलक तो केवल उनको ही लगता है जिनका तीसरा नेत्र खुल जाता है। तिलक का राज यही है। क्यों हम तिलक लगाते हैं? कहां हम तिलक लगाते हैं? वह ठीक वही स्थल है जो तीसरे नेत्र का स्थल है। आकांक्षा है तिलक में कि कभी तीसरी आंख खुले। सुहागिन स्त्री तिलक लगाती है, टीका लगाती है, मांग भरती है। ये प्रतीक हैं सिर्फ। ये प्रतीक हैं इस बात के कि उसका प्रेम इस ऊंचाई तक पहुंचे, नीचे ही न भटकता रह जाए। शूद्र के लोक में ही न रह जाए, ब्राह्मण बने। उसका प्रेम इस लोक तक पहुंचे कि तीसरी आंख खुले। इतना ही नहीं, मांग भरी जाती है। मांग प्रतीक है केवल सातवें का--सहस्रदल कमल खिले! वही असली सुहागरात है, वही असली सुहाग है, क्योंकि वहीं मिलन होता है। परमात्म-मिलन कहो, आत्म-मिलन कहो, सत्य से मिलन कहो। वहीं समाधि लगती है।
वाचक ज्ञान न नीका ज्ञानी, ज्यों कारिख का टीका।
पढ़ा-लिखा ज्ञान ज्ञान नहीं है। पढ़ा-लिखा भी बस पढ़ा-लिखा मूरख समझो। अज्ञान तो भीतर छिपा है, पढ़े-लिखे में ढांक लिया है।
सरकारी पक्ष की ओर से मुल्ला नसरुद्दीन को गवाही के तौर पर अदालत में पेश किया गया था। अभियुक्त के वकील ने मुल्ला से जिरह करते हुए पूछा, अच्छा यह बताओ मुल्ला, जब तुमने कत्ल होते हुए देखा था उस समय तुम घटनास्थल से कितनी दूर थे?
मुल्ला नसरुद्दीन तत्क्षण बोला, पंद्रह गज, दो फीट, नौ इंच।
वकील ने कहा, हद हो गई! तुम तो इस इत्मीनान से बोल रहे हो जैसे तुमने नाप लिया हो। नौ इंच... इंच-इंच! क्या तुम वहां नाप कर खड़े थे?
मुल्ला बोला, हां, मैंने नापा था--कत्ल के पहले नहीं, कत्ल के बाद।
वकील ने पूछा, क्यों? इसकी क्या जरूरत थी? नापने की क्या जरूरत थी? मुल्ला ने कहा, क्योंकि मैं पहले से ही जानता था कि कोई बेवकूफ वकील जरूर इस प्रकार का सवाल पूछेगा।
पंडितों के सवाल और जवाब दो कौड़ी के हैं। सवाल भी दो कौड़ी के, जवाब भी
दो कौड़ी के। सवाल भी सच्चे नहीं, जवाब भी सच्चे नहीं। स्वयं अनुभव नहीं हुआ है तो कैसे जवाब सच्चे हो सकते हैं?
मालकिन, कल कचरे में ये सोने की अंगूठियां, छल्ले, इयर-रिंग्स और चांदी की पायलें मिलीं। आप अपना सामान जरा होश-हवास के साथ सम्हाल कर रखा करें--नौकरानी ने कहा--मान लीजिए अगर कुछ गुम हो गया तो मेरी ही बदनामी

होगी। कोई यह न कहेगा कि आप खुद अपनी धन-संपत्ति के प्रति लापरवाह हैं; दोष आपका ही है।
फिक्र मत करो--मालकिन ने रहस्य खोला--ये सब चीजें नकली हैं।
वह तो मैं भी तुरंत समझ गई थी--नौकरानी ने उदास होकर कहा--तभी तो आपको देने आई हूं।
तुम भी जानते हो कि पंडित नकली हैं। पंडित भी जानते हैं कि वे नकली हैं। मगर तुम असली से डरते हो, क्योंकि असली के लिए कीमत चुकानी पड़ती है।
नकली सस्ता है। जितना नकली उतना सस्ता। जितना असली उतना महंगा। असली के लिए तो कीमत चुकानी ही होगी। शायद जीवन से चुकानी होगी।
वाचक ज्ञान न नीका ज्ञानी, ज्यों कारिख का टीका।
बिन पूंजी को साहु कहावै, कौड़ी घर में नाहीं।
कौड़ी भी घर में नहीं है तुम्हारे तथाकथित पंडित-पुरोहितों के--और बिन पूंजी को साहु कहावै--और बिना पूंजी का साहूकार बना बैठा है।
मुल्ला नसरुद्दीन के घर में एक रात चोर घुसे। चोर बड़े सम्हल कर चल रहे थे, लेकिन मुल्ला एकदम से झपट कर अपने बिस्तर से उठा, लालटेन जला कर उनके पीछे हो लिया। चोर बहुत घबड़ाए। उसने मौका ही नहीं दिया भागने का। वह ठीक दरवाजे पर खड़ा हो गया लालटेन लेकर। चोरों ने कहा कि भई, तुम तो सो रहे थे, एकदम नींद से कैसे उछल पड़े?
मुल्ला ने कहा, घबड़ाओ मत, चिंता न लो। भागने की जल्दी न करो। अरे मैं
तो सिर्फ तुम्हें सहायता देने के लिए लालटेन जला कर... अंधेरे में कैसे खोजोगे? तीस साल हो गए इस घर में मुझे खोजते हुए, एक कौड़ी नहीं मिली। और तुम अंधेरे में खोज रहे हो, मैंने दिन के उजाले में खोजा। इसलिए लालटेन जला कर तुम्हारे साथ आता हूं; अगर कुछ मिल गया, बांट लेंगे।
और भी मैंने एक कहानी सुनी है कि एक रात मुल्ला के घर चोर घुसे। पड़ोस में से भी कई सामान चुरा कर ले आए थे, फिर मुल्ला के घर में गए। जब तक वे अंदर गए, मुल्ला अपना कंबल ओढ़े सोया था, उसने कंबल जमीन पर बिछा दिया और खुद बिस्तर पर लेट गया। लौट कर आए, बड़े हैरान हुए चोर कि यह मामला क्या है! यह कंबल इसने जमीन पर क्यों बिछा दिया है? उनको घर में कुछ मिला भी नहीं, उन्होंने कहा चलो कंबल ही ले चलो। अब जो है सो ठीक। कंबल में उन्होंने पड़ोस के लोगों का जो सामान ले आए थे वह बांधा और जब बाहर निकले तो मुल्ला भी बिल्कुल चुपचाप बिना आहट किए उनके पीछे हो लिया।
आधी दूर जाकर उनको शक हुआ कि कोई पीछे है। लौट कर देखा तो मुल्ला। कहा, नसरुद्दीन, तुम हमारे पीछे क्यों आ रहे हो?
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, भई, बहुत दिन से मैं घर बदलने की सोच रहा था।
अब जो मेरे पास था, तुम ले ही आए, तो मैंने सोचा चलो घर बदल लूं। जहां कंबल रहेगा वहीं हम भी रहेंगे।
चोरों ने हाथ-पैर पड़े और कहा, बाबा अपना कंबल ले जाओ, मगर कम से कम दूसरों की चीजें जो कंबल में हैं, वे तो हमें लौटा दो।
तुम्हारे पंडित-पुरोहितों के पास क्या है? अनुभव की कौड़ी भी नहीं! मगर साहूकार बने बैठे हैं। अंधों में काने राजा हो जाते हैं।
ज्यों चोकर कै लड्डू खावै, का सवाद तेहि माहीं।
अगर चोकर के लड्डू बनाओगे, उसमें क्या कोई स्वाद होने वाला है!
ज्यों सुवान कछु देखिकै भूंकै, तिसने तो कछु पाई।
अगर कुत्ता भौंकता है कुछ देख कर तो शायद कुछ पा भी ले।
वाकी भूंक सुने जो भूंकै, सो अहमक कहवाई।
लेकिन कुछ कुत्ते ऐसे अहमक होते हैं कि कोई दूसरा कुत्ता भौंक रहा है
तो वे भौंकने लगते हैं। कुत्तों में ऐसे अहमक होते हैं; एक कुत्ता भौंके, तुम थोड़ी देर में पाओगे मोहल्ले भर के कुत्ते भौंक रहे हैं। लेकिन कुत्तों का अहमकपन क्षमा किया जा सकता है; लेकिन आदमियों में भी ऐसे अहमक हैं।
पंडित ऐसे ही अहमक हैं। कोई बुद्ध बोला, कोई बुद्ध जागा--चलो ठीक, उसने कुछ पाया, कुछ बोला, कुछ जागरण बांटा। लेकिन दूसरे बैठे हैं जो जल्दी से लिख कर और शास्त्र तैयार कर लेंगे।

यहां एक डाक्टर आते थे। पढ़े-लिखे आदमी हैं। मगर हैं वेटनरी डाक्टर; सो पढ़ा-लिखा भी कुछ ज्यादा नहीं है; पशुओं के संबंध में जानकारी है। मैं उनको देखता कि वे हमेशा नोट ले रहे हैं। मैं इधर बोल रहा हूं और वे नोट लेने में लगे हैं--तेजी से!
मैंने उन्हें बुलाया। मैंने कहा, तुम करते क्या हो? तुम पशुओं के साथ रहते-रहते खराब तो नहीं हो गए? तुम्हारी बुद्धि तो ठीक है? मैं बोलता हूं, तुम एकदम लिखने में लगे हो!
वे कहते हैं, मैं इसलिए लिख लेता हूं ताकि बाद में काम आएगा।
मैंने कहा, अभी समझ में नहीं आ रहा, बाद में क्या खाक काम आएगा! पहले समझ तो लो। और जिसने समझ लिया उसे नोट करने की जरूरत नहीं है।
मैं विश्वविद्यालय में अध्यापक था, मेरा यह अनुभव हैः जो विद्यार्थी नोट करते हैं, वे गधे हैं--निपट गधे! मैं विद्यार्थी भी था, मैं कभी नोट नहीं किया। मेरे एक प्रोफेसर इससे बहुत नाराज थे। क्योंकि सारे विद्यार्थी नोट कर रहे हैं, मैं उनके सामने ही बैठा रहूं। उन्होंने मुझसे कहा कि नोट क्यों नहीं करते? मैंने कहा, मैं कोई गधा नहीं हूं। मैं समझ रहा हूं, बात खतम हो गई। नोट करने का क्या है?
और मैं जब शिक्षक हो गया विश्वविद्यालय में, तो मैं सिर्फ एक ही चीज
पर एतराज करता था कि कोई नोट न करे। क्योंकि नोट करने का मतलब ही यह है कि तुम समझने से चूक रहे हो। तुम्हारा ध्यान नोट करने में लगा है। और जब अभी मैं मौजूद तुम्हें समझा रहा हूं, नहीं समझ में आ रहा है, तो कल तुम अपनी किताब में से अपने ही नोट को पढ़ोगे, समझ पाओगे?
मुल्ला नसरुद्दीन पकड़ा गया किसी चोरी में। उससे कहा अदालत ने, मजिस्ट्रेट ने, कि तुम दस्तखत करो।
उसने कहा कि मैं लिखना तो जानता हूं, पढ़ना नहीं जानता।
मजिस्ट्रेट ने कहा, तुमसे कह ही कौन रहा है कि तुम पढ़ो? तुम लिखो!
उसने लिखना शुरू किया सो अंत ही न आए। रजिस्टर का पूरा पन्ना लिख मारा, दूसरा पन्ना जब लिखने लगा, मजिस्ट्रेट ने कहा, रुको, क्या पूरा रजिस्टर खराब कर दोगे! और मैं देख रहा हूं, मेरी भी कुछ समझ में नहीं आ रहा है, क्या लिख रहे हो?
मुल्ला ने कहा, वह मैंने तुमसे पहले ही कह दिया कि मुझे लिखना आता है, पढ़ना मुझे आता नहीं। दस्तखत कर रहा हूं। न मुझे शुरू का पता है न मुझे अंत का। अब क्या लिखा है कौन जाने!
मैंने उन डाक्टर को बुला कर कहा कि यह लिखना बंद करो, समझने की कोशिश करो। दीया जला हो, उसकी रोशनी में देखने की कोशिश करो। तुम दीये की तस्वीर बना रहे हो! फिर अंधेरे में तस्वीर लेकर घूमना, उससे कुछ रोशनी नहीं होगी। और तब तुम दीये को गाली दोगे कि दीया गलत रहा होगा; यह कैसा दीया! भूल सब तुम्हारी है।
बुद्ध बोलते हैं, पंडित इकट्ठा कर लेते हैं। यह तुम चकित होओगे जान कर
कि महावीर तो क्षत्रिय थे, जैनों के चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय थे, लेकिन महावीर के जो गणधर थे वे सब ब्राह्मण। यह बड़ी हैरानी की बात है। क्षत्रिय तीर्थंकर के जितने गणधर थे, जितने प्रमुख शिष्य थे, वे सब ब्राह्मण पंडित। और उन्होंने ही महावीर के वचन लिखे। वह पंडित अपनी आदत से बाज नहीं आ सकता। और पंडित जो लिखेगा वह गलत हो जाएगा। उसे लिखना ही भर आता है, पढ़ना नहीं आता!
खलील जिब्रान की बड़ी प्रसिद्ध कहानी है, कि एक कुत्ता नेता हो गया। अब कुत्ता नेता हो जाए तो समझाए क्या? वह कुत्तों को यह समझाने लगा कि देखो, हमारी कुत्ते की जाति का कितना पतन हो गया! कहां हमने सतयुग देखे, स्वर्ण-युग देखे, रामराज्य... और कहां यह कलियुग! और कारण? कारण है तुम्हारा अकारण भौंकना। इसमें ही सारी शक्ति खराब हो रही है। इसी में हम पिटे जा रहे हैं। नहीं तो मनुष्यों को हम कभी का ठिकाने लगा देते। आज हमारा राज्य होता। मगर तुम्हारे भौंकने में सब शक्ति निकल जाती है।
कुत्तों को बात तो जंचती, बात तो सच है कि दिन-रात भौंक-भौंक कर परेशान
हो रहे हैं। फिर बेकार ही भौंक रहे हैं। कार निकली, भौंके। पोस्टमैन निकला, भौंके। पुलिसवाला निकला, भौंके। संन्यासी निकला, भौंके। कुत्ते

कुछ यूनिफॉर्म के खिलाफ हैं; कोई भी यूनिफॉर्म वाला निकले, एकदम भौंके! बात तो जंचे कुत्तों को, मगर भौंकना रोकें भी कैसे! रोकें तो बड़ी अड़चन होती है, एकदम गले में खुजलाहट उठती है। कई कुत्तों ने अभ्यास भी किया कि नेता कहता ठीक है, मगर नहीं रोक पाए।
आखिर नेता बूढ़ा होने लगा और थक गया कह-कह कर। उसने कहा, देखो, अब मेरे जाने का भी वक्त आ गया, तुम सुनोगे कभी या नहीं?
एक अमावस की रात कुत्तों ने कहा कि बात ठीक है, अब नेता बूढ़ा हो गया, पता नहीं कब चल बसे, एक दिन तो कम से कम इसकी मान लें! आज अमावस की रात, खाते हैं कसम कि रात चाहे कितनी ही उत्तेजना हो और कितने ही प्रलोभन मिलें, चाहे कितनी ही सुविधाएं मिलें भौंकने की, कितने ही पुलिसवाले निकलें, पोस्टमैन निकलें, संन्यासी निकलें--निकलने दो। आंख ही बंद करके कोनों में, अंधेरों में पड़े रहेंगे, मगर भौंकेंगे नहीं। गले में खुजलाहट उठेगी, पी जाएंगे, घूंट पी लेंगे अपने दुख का, मगर जाहिर न करेंगे।
सब कुत्ते एक-एक कोने में दब कर पड़ रहे आंख बंद करके, कि न देखेंगे न भौंकेंगे। नेता घूमना शुरू किया। उसको कोई मिले ही नहीं जिसको वह उपदेश दे। वह उसके खुद के गले में जोर से खराश उठने लगी। वह अब तक भौंकने से इसीलिए तो बचा था कि भौंकने लायक उसके पास ताकत ही नहीं बचती थी। सुबह से सांझ तक समझाना, रात थक कर सो जाए, सुबह से फिर समझाना। उसका भौंकना समझाने में निकला जा रहा था। आज पहली दफा झंझट आई। आज पहली दफा उसको पता चला कि हूं तो मैं भी कुत्ता, नेता ही हो गया तो क्या होता है! इतने जोर से खुजलाहट उठने लगी, ऐसी भयंकर खुजलाहट, जनम-जनम की रुकी हुई खुजलाहट... बहुत खोजा उसने कि कोई एकाध भौंक दे तो टूट पडूं। ऐसा समझाऊं, ऐसा समझाऊं कि कभी नहीं समझाया था। मगर कोई नहीं भौंका सो नहीं भौंका। कुत्ते भी जिद मार कर बैठ गए थे, वे आंख ही नहीं खोल रहे थे।
आखिर एक ही उपाय रहा, उस नेता ने एक गली में गया और भौंका। बहुत मजा आया। कई जन्मों से यही भौंकने का काम बंद किए हुए था। और जैसे ही उसने भौंका, फिर कुत्तों ने कहा कि कोई बेईमान तोड़ दिया कसम को! अब हम पर भी क्यों लागू रहे? सारी बस्ती भौंकी। और ऐसी भौंकी कि जैसी कभी नहीं भौंकी थी, क्योंकि उस दिन संयम का एकदम बांध टूटा। जैसे जैनियों का होता है न पर्युषण के बाद, वैसा उस दिन कुत्तों का हुआ, एकदम टूट पड़े! ... सब्जियों के भाव एकदम तीन गुने हो जाते हैं! ... दस दिन किसी तरह भौंकने को रोके रहे, रोके रहे, रोके रहे; फिर ग्यारहवें दिन ऐसे टूटते हैं कि दस दिन का बदला। जब सारा गांव भौंकने लगा, नेता बड़ा प्रसन्न, फिर चला, फिर समझाने लगा कि देखो जी, लाख दफे कहा कि यही हमारे पतन का कारण है।
तुम्हारे पंडित तुम्हें समझा रहे हैं, क्योंकि समझाने में उनके अहंकार को एक तृप्ति मिलती है। मगर तुमसे उनमें कोई भेद नहीं है। और वे भौंक रहे हैं, क्योंकि वेदों में ऐसा लिखा है, उपनिषदों में ऐसा लिखा है, कुरान में, बाइबिल में ऐसा लिखा है। अहमक हैं! ठीक कहते हैं पलटू--
वाकी भूंक सुने जो भूंकै, सो अहमक कहवाई।
बातन सेती नहिं होय राजा, नहिं बातन गढ़ टूटै।
बातों से न तो कोई राजा होता है और न बातों से गढ़ टूटते हैं।
मुलुक मंहै तब अमल होइगा, तीर तुपक जब छूटै।
तब होगा तुम्हारा साम्राज्य, जब तीर छूटे, तोप छूटे। कुछ करो! कुछ जीवन को रूपांतरित करने के लिए करो!
बातन से पकवान बनावै, पेट भरै नहिं कोई।
पलटूदास करै सोई कहना, कहे सेती क्या होई।।
बात कर-कर के पकवान नहीं बनते, भूख नहीं मिटती।
पलटूदास करै सोई कहना...
जिस दिन कर लो उस दिन कहना। जिस दिन जान लो उस दिन कहना। जिस दिन पहचान
लो उस दिन पुकार देना।
पलटूदास करै सोई कहना, कहे सेती क्या होई।
सिर्फ कहने से क्या होगा अगर जाना न हो! जब तुम्हारा दीया जले तो रोशनी दिखाना। जब तुम्हारा फूल खिले तो सुगंध को उड़ जाने देना।
आज इतना ही।

काहे होत अधीर
दसवां प्रवचन

प्रेम तुम्हारा धर्म हो

पहला प्रश्नः ओशो! प्रार्थना क्या है?

अविनाश! प्रार्थना प्रेम का निचोड़ है। जैसे फूलों को निचोड़ो, इत्र बने--ऐसे प्रेम के सारे रूपों को निचोड़ो तो प्रार्थना बने। जैसे फूलों में सुगंध है, ऐसे प्रेम की सुगंध प्रार्थना है। प्रार्थना न तो हिंदू होती, न मुसलमान, न ईसाई। और अगर हो तो समझना कि प्रार्थना नहीं है, कुछ और है; धोखाधड़ी है, आत्मवंचना है। और धोखाधड़ी परमात्मा तक नहीं पहुंचती। असली सीढ़ियां चाहिए, तो ही उस मंदिर के द्वार तक पहुंच पाओगे।
प्रार्थना न तो हिंदू होती, न मुसलमान, न ईसाई--प्रार्थना होती है हार्दिक। और हृदय का कोई संबंध संप्रदायों से नहीं है, न शास्त्रों से है। हृदय का संबंध तो उत्सव से है, आनंद से है, संगीत से है, नृत्य से है। हृदय के नृत्य, हृदय के संगीत, हृदय के उत्सव का नाम प्रार्थना है।
यदि तुम उत्सव भरी आंखों से जगत को देखने लगो तो तुम्हारे चौबीस घंटे
का जीवन ही प्रार्थना में रूपांतरित हो जाएगा। जिन आंखों में उत्सव की तरंग है, उन्हें पक्षियों की आवाज में प्रार्थना सुनाई पड़ेगी। कुरान की आयतें फीकी पड़ जाएंगी; गीता के श्लोक--दूर की प्रतिध्वनियां; वेद की ऋचाएं--अर्थहीन। उन्हें सुबह के ऊगते सूरज में प्रार्थना का आविर्भाव दिखाई देगा।
जिसे सुबह के ऊगते सूरज में प्रार्थना न दिखी, उसे परमात्मा कभी भी दिखाई नहीं पड़ सकता। प्राची पर फैल गई लाली, सुबह की ताजी हवाएं, पक्षियों के गीत, उड़ान, फूलों का अचानक खिल जाना--और तुम्हें प्रार्थना नहीं दिखाई पड़ती? पक्षियों को भी पता चल जाता है कि आ गई घड़ी उत्सव की। फूलों को भी पता चल जाता है कि खुलो अब, कि लुटा दो अपनी सुवास को! लेकिन तुम्हें पता नहीं चलता।
आदमी का मन जैसे पत्थर हो गया है! और पत्थर हो जाने के पीछे कारण यही बातें हैं। कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई जैन है, कोई ईसाई है--आदमी कोई भी नहीं।
यूनान का एक बहुत बड़ा महर्षि हुआ--डायोजनीज। वह दिन की रोशनी में भी जलती हुई लालटेन लेकर चलता था। राह पर जो लोग भी मिल जाते, लालटेन उठा कर उनका चेहरा गौर से देखता। लोग उसे पागल समझते थे। लोग उससे पूछते थेः डायोजनीज, भरी रोशनी में, भरी दुपहरी में, यह लालटेन क्यों जला रखी है? डायोजनीज कहता कि मैं आदमी की तलाश कर रहा हूं। आदमी दिखाई नहीं पड़ता। न मालूम कितने चेहरों पर मैंने अपनी लालटेन उठाई है, लेकिन आदमी अनुपस्थित है।
और कहते हैं, जब डायोजनीज मर रहा था तब किसी ने डायोजनीज से पूछा कि डायोजनीज, जिंदगी भर हो गई खोजते हुए आदमी को, आदमी मिला?
डायोजनीज ने कहा, आदमी तो नहीं मिला, लेकिन यही क्या कम सौभाग्य है कि मेरी लालटेन कोई नहीं चुरा ले गया! मेरी लालटेन बच गई, यही बहुत है।
एथेंस में था तो लालटेन बच गई। नई दिल्ली में होता तो लालटेन भी न बचती।
आदमी कहां खो गया है? किस जंगल में खो गया है? शास्त्रों के, शब्दों के! और प्रार्थना का न शास्त्रों से कोई संबंध है, न शब्दों से कोई संबंध है। यह तो निःशब्द हृदय की पुकार है।
और प्रार्थना सदा निजी होती है, सामूहिक नहीं होती। क्योंकि हृदय निजी बात है। दो व्यक्तियों की प्रार्थना एक जैसी नहीं हो सकती। और तुम जब प्रार्थना सीख लेते हो तो औपचारिक हो जाती है।
मुल्ला नसरुद्दीन का एक स्त्री से प्रेम था। फिर टूट गया प्रेम तो मुल्ला गया, जो-जो चीजें उसने भेंट की थीं, वापस मांगने--कि मैंने छल्ला दिया था, चूड़ियां दी थीं, वे सब मुझे वापस कर दो।

स्त्री भी गुस्से में थी, उसने सब उठा कर फेंक दिया। मुल्ला फिर भी खड़ा था।
उसने कहा, अब क्या खड़े हो? लो सामान अपना और रास्ता लगो!
मुल्ला ने कहा, और मैंने जो पत्र लिखे थे, वे पत्र भी मुझे लौटा दो।
वह स्त्री भी थोड़ी चौंकी कि सोने की अंगूठी मांग लो, ठीक है; मोतियों
का हार दिया था, मांग लो, ठीक है। लेकिन पत्र! उसने कहा, पत्रों का क्या करोगे?
मुल्ला ने कहा, अब तुमसे क्या छिपाना! मुहल्ले के एक पंडित जी से लिखवाता था। हर पत्र के लिए एक रुपया दिया है। और अभी मेरी जिंदगी बाकी है, अभी फिर प्रेम करूंगा। ये पत्र काम आ जाएंगे। नहीं तो फिर से लिखवाने पड़ेंगे।
प्रेम-पत्र भी उधार हैं, वे भी किसी और से लिखवाए गए हैं! तो तुम्हें हंसी आती है। लेकिन तुम्हारी प्रार्थना? वह भी तो प्रेम-पत्र है परमात्मा के नाम, प्रेम की पाती है। वह भी तो उधार है। वह भी तुमने पंडितों से सीख ली है। वह भी तुम्हारी अपनी नहीं है।
अगर तुम्हारे हृदय से उठे, फिर चाहे तुम्हारे शब्द तुतलाते हुए ही क्यों न हों, पहुंच जाएंगे। लेकिन पुकार अपनी हो, बासी न हो, उधार न हो। सीधी-सादी हो, औपचारिक होने की जरूरत नहीं। बहुत अलंकृत नहीं चाहिए। कोई परमात्मा सिर्फ संस्कृत ही समझता है, इस भ्रांति में मत रहना--कि तुम जब संस्कृत में प्रार्थना करोगे, तब समझेगा। तुम ही न समझोगे तो परमात्मा क्या खाक समझेगा! पहली समझ तो तुम्हारी तरफ घटनी चाहिए। और तुमने अगर समझी तो तुम्हारे समझने में ही परमात्मा ने समझ ली। और तुम्हारा हृदय अगर ओत-प्रोत हो गया, रसमग्न हो गया, तुम अगर डोल उठे, तुम अगर नाच उठे, अनायास तुम्हारे पैरों में घूंघर बंध गए और तुम्हारे कंठ से स्वर फूटे--फिर चाहे वे बहुत काव्यपूर्ण न हों, जरूरत भी नहीं है--जरूर पहुंच जाएंगे!
हार्दिक जो भी है वह सत्य है। बौद्धिक जो भी है वह असत्य है।
पूछते हो, अविनाशः "प्रार्थना क्या है?"
हृदय की पुकार! करुण-पुकार! क्योंकि मनुष्य अकेला है। और मनुष्य के पास बड़े छोटे हाथ हैं और सागर का विस्तार बहुत, कैसे तैर पाएंगे! इसलिए मनुष्य अभीप्सा करता है अस्तित्व से कि मुझे साथ दो! हे पक्षियो, मुझे पंख दो! हे सूरज, मुझे रोशनी दे! हे चांद-तारो, मेरे रास्ते को दीयों से भर देना! प्रार्थना और क्या है? अस्तित्व से मांग है इस बात की कि मैं अकेला हूं, बहुत छोटा हूं--और जीवन बड़ा है, विराट है। मेरे पैर बहुत छोटे, सामर्थ्य बहुत सीमित--और चढ़ने हैं उत्तुंग पर्वत। हे हवाओ, मुझे ले चलो! हे बादलो, मुझे उठा लो! एक करुण पुकार है। जैसे छोटा बच्चा रोए अपनी मां के लिए, बस ऐसे ही। प्रार्थना आंसुओं से बनती है, शब्दों से नहीं; असहाय अवस्था में निर्मित होती है, पांडित्य में नहीं।
प्रार्थना विस्मय-विमुग्ध भाव है। यह जगत कितने आश्चर्य से भरा हुआ है! इस जगत में प्रतिपल चमत्कार घट रहे हैं--विस्मय पर विस्मय! बीज फूटता है, अंकुरित होता है, और तुम चमत्कृत नहीं होते? बीज, जो अभी कंकड़ की तरह था, उसमें से हरे पत्ते निकल आए हैं! बीज, जो अभी ना-कुछ था, काटते तो न हरे पत्ते मिलते, न लाल सुर्ख फूल मिलते। वर्षा का झोंका आया है, बीज अंकुरित हो उठा है, हरे पत्ते निकल आए हैं, लाल सुर्ख फूल जगने लगे हैं--और तुम चमत्कृत नहीं होते? इतना विराट अस्तित्व और इतनी नियमबद्धता से चल रहा है! इतने अनंत तारे और टकरा नहीं जाते!
तुम अगर जरा आंख खोल कर देखो तो आश्चर्य में डूब जाओगे। वही आश्चर्य प्रार्थना की जननी है। तुम अगर आंख खोल कर देखो तो कृतज्ञता में झुक जाओगे। कितना दिया है! तुम्हारी पात्रता क्या है? आंखें दी हैं कि देख सको चांद-तारों को, कान दिए हैं कि सुन सको अमृत संगीत को, हाथ दिए हैं कि स्पर्श कर सको अस्तित्व को, हृदय दिया है कि अनुभव कर सको उस सबका जो पकड़ में भी नहीं आता, बुद्धि की समझ में भी नहीं आता। इतना सब दिया है किसी अज्ञात स्रोत ने, तुम धन्यवाद नहीं दोगे? वही धन्यवाद प्रार्थना है।
और यह रहस्य देख कर, रहस्य को और-और जानें, ऐसी जिज्ञासा नहीं जगती? कि
इस रहस्य को देख कर अस्तित्व के द्वार पर सांकल खटखटाएं कि खोलो द्वार,

आने दो मुझे भीतर, और-और जानूं, और-और पहचानूं--इतना जानूं कि कुछ और जानने को शेष न रह जाए! इतना जगाओ कि मेरी सारी नींद टूट जाए! ऐसी अस्तित्व के द्वार पर दी गई दस्तक का नाम प्रार्थना है।

पट मंदिर के खोल
प्रेम-नगर से आई मैं दासी, पट मंदिर के खोल
हीरे-मोती लाई मैं दासी, पट मंदिर के खोल
वो मोती हैं तेज से जिनके चंद्रमा छुप जाए
वो हीरे हैं जोत जिन्हों की सूरज को शरमाए
नयनन का कांटा है इनको इस कांटे में तोल पट मंदिर के खोल सुबह सवेरे छेड़ा किसने बंसी का यह राग
आंख खुली ऐसे में मेरी ये भी मेरे भाग
कोयल, मोर, पपीहा, श्यामा, सब सोवें नर-नारी
गहरे सपने में डूबी है सपने की मतवारी
सारा जग मुर्दा है पुजारी हीरे-मोती रोल
पट मंदिर के खोल
दो नयनन में सौ आंसू हैं दीवानी की भेंट
नयन मेरे माटी हैं केवल भेंट हैं ये अनमेट
उस मंदिर के खोल जरा पट जिसमें हैं गिरधारी
वो गिरधारी जिन पर सारी दुनिया है बलिहारी
कब से मैं चीखूं बेचारी, सुन लो मेरे बोल पट मंदिर के खोलप्रेम-नगर से
आई मैं दासी,
पट मंदिर के खोल
एक पुकार है अस्तित्व के समक्ष, एक दस्तक! बस उससे ज्यादा प्रार्थना कुछ भी नहीं है। किन शब्दों में कहोगे, किस भाषा में कहोगे--तुम्हारा चुनाव है। मैं तुम्हें कोई बंधी-बंधाई प्रार्थना नहीं दे सकता।
मुझसे अक्सर लोग आकर पूछते हैं कि एक प्रार्थना निर्मित करें जो हम सारे संन्यासियों की प्रार्थना हो। मैं उनसे कहता हूंः मैं निर्मित करूंगा, तुम्हारे लिए झूठी हो जाएगी। तुम ही अपनी प्रार्थना गढ़ लो। टाल्सटाय की प्रसिद्ध कहानी है कि रूस में तीन फकीरों की बड़ी प्रसिद्धि हो गई--इतनी प्रसिद्धि कि रूस का जो सबसे बड़ा पादरी था, उसे ईर्ष्या जगी कि ये कौन फकीर हैं जिनकी तरफ हजारों लोग जा रहे हैं! मेरे रहते, चर्च का मैं प्रधान हूं, ये कौन हैं जो संत हो गए!
ईसाइयत में एक बड़ा पागलपन हैः संत कोई तभी होता है जब चर्च उसे सर्टिफिकेट दे। तुमने अक्सर सोचा होगा कि हिंदी का शब्द "संत" और अंग्रेजी का "सेंट" एक ही शब्द के रूप हैं। नहीं, दोनों में बड़ा भेद है। हिंदी का शब्द संत तो बना है सत से--जिसने सत को जान लिया; जान ही नहीं लिया, जो सत के साथ एकरूप हो गया; जिसने सत में अपना अंत कर दिया, सत्य में अपने को डुबा दिया; जो बचा नहीं, सत ही बचा; सत में जिसका अंत हो गया है उसे हम संत कहते हैं। अंग्रेजी का शब्द सेंट बड़े और ढंग से आता है। अंग्रेजी का शब्द सेंट आता है सेंक्शन से। सेंक्शन का अर्थ होता है--सरकारी स्वीकृति, चर्च के द्वारा स्वीकृति। जिसको चर्च स्वीकार कर लेता है वह संत।
इन अर्थों में तो भारत में विनोबा भावे के सिवाय और कोई संत नहीं, क्योंकि वे ही सरकारी संत हैं, बाकी तो सब गैर-सरकारी हैं।
पादरी बहुत चिंतित था, चिंता उसकी बढ़ती चली गई, क्योंकि भीड़ धीरे-धीरे चर्च आना बंद ही हो गई। एक दिन क्रोध में वह गया उन संतों की तलाश में। एक झील के उस पार उन संतों का वास था। तो उसने नाव की, माझी नाव खेकर ले चले उसे उस पार। उसने अपने पूरे चर्च के प्रधान की जो वेशभूषा थी, पहन रखी थी; तगमे लटका रखे थे; सोने का मुकुट सिर पर रख छोड़ा था; हाथ में, जो महा पुरोहित के हाथ का डंडा था सोने का बना हुआ, वह ले रखा था। वह अपनी पूरी साज-सज्जा में गया था कि आज इन संतों को रास्ते पर लगा दूंगा। उतरा, देख कर हैरान हुआ--एक झाड़ के नीचे तीन सीधे-सादे से लोग बैठे थे! उसने पूछा, क्या तुम्हीं वे तीन संत हो?

उन्होंने कहा, संत? नहीं-नहीं, हमारी क्या पात्रता संत होने की! हम तो गांव के सीधे-सादे गंवार हैं। मगर लोग मानते ही नहीं। लोग हैं कि आए चले जाते हैं, हम तो मना करते हैं। हम जितना मना करते हैं उतने ही लोग हैं कि आए चले जाते हैं। हमारा तो जीना मुश्किल कर दिया है। आप अच्छे आ गए, हमें बचाओ। यह भीड़-भाड़ हमें रुचती नहीं। हम तो अपने मजे में थे। यह कैसे लोगों में खबर पहुंच गई? यह किसने खबर पहुंचा दी?
प्रधान तो बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने कहा, घबड़ाओ मत। लेकिन तुम करते क्या
हो यहां बैठे-बैठे?
उन्होंने कहा, और क्या करेंगे, प्रार्थना करते हैं!
बाइबिल कहां है?
वे तीनों एक-दूसरे की तरफ देखने लगे। उन्होंने कहा, क्षमा करें, हमें पढ़ना नहीं आता, सो बाइबिल हम रख कर भी क्या करेंगे?
तब तो पुरोहित और भी प्रसन्न हुआ कि जिन्हें बाइबिल भी पढ़ना नहीं आता,
ये कैसे संत हो सकते हैं? मटियामेट कर दूंगा इनका! भीड़ को वापस चर्च आना पड़ेगा। तो उसने कहा, फिर तुम्हारी प्रार्थना क्या है? तुम कहते हो प्रार्थना करते हो, प्रार्थना क्या करते हो?
वे तीनों नीचे देखने लगे जमीन की तरफ।
उस पुरोहित ने कहा, बोलते क्यों नहीं? शर्माते क्यों हो?
उन्होंने कहा, अब आपसे कैसे कहें? बड़ा संकोच लगता है। असल में, हमें प्रार्थना भी नहीं आती। क्योंकि जो चर्च के द्वारा स्वीकृत प्रार्थना है, बहुत लंबी है और कठिन है।
तो तुम प्रार्थना करते क्या हो फिर? डरो मत, बोलो। मैं तुम्हें क्षमा
कर दूंगा और क्षमा करवा दूंगा।
उन्होंने कहा, अब आप नहीं मानते तो मजबूरी है। शर्म तो बहुत आती है। हमने अपनी प्रार्थना खुद ही बना ली है। माफ करें, गैर पढ़े-लिखे हैं। पादरी की तो प्रसन्नता बढ़ती चली गई। अपनी बनाई प्रार्थना भी कहीं काम
आ सकती है? प्रार्थना तो स्वीकृत होनी चाहिए शास्त्रों के द्वारा, संतों के द्वारा, परंपरा के द्वारा, सदियों के द्वारा, अतीत जिसके समर्थन में हो! गायत्री पढ़ता है हिंदू तो जानता है कि दस हजार सालों से ऋषि-मुनियों
ने इसको समर्थन दिया है। दस हजार साल से जिन ऋषि-मुनियों ने इसे समर्थन दिया है, जरूर उसमें कुछ राज होगा, रहस्य होगा। और दस हजार से भी दिल नहीं मानता तो हिंदू पंडित सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि यह और भी पुरानी है। यह दस हजार का ख्याल तो अंग्रेजों ने दे दिया। इसी पूना में हुए लोकमान्य तिलक, उन्होंने सिद्ध करने की कोशिश की कि गायत्री नब्बे हजार साल पुरानी है। जितनी पुरानी उतनी श्रेष्ठ। जैसे कि प्रार्थना भी कोई शराब हो, कि जितनी पुरानी उतनी श्रेष्ठ! जितनी सड़ जाए उतनी श्रेष्ठ! खुद कैसे तुम प्रार्थना बना सकते हो? इसलिए हिंदुओं की एक अकड़ है कि हमारी प्रार्थनाएं सबसे ज्यादा पुरानी हैं। यहूदियों की भी उतनी पुरानी नहीं, ईसाइयों की तो अभी केवल उन्नीस सौ साल पुरानी हैं, और मुसलमानों की केवल चौदह सौ साल, और सिक्खों की तो केवल पांच सौ साल।
जैनों का भी दावा ऐसा ही है कि हमारी प्रार्थनाएं भी हिंदुओं से कम पुरानी नहीं हैं, ज्यादा ही पुरानी हैं। क्योंकि वेद में जैनों के प्रथम ऋषि का उल्लेख है, प्रथम तीर्थंकर का उल्लेख है; इससे सिद्ध होता है कि जैन धर्म ऋग्वेद से भी पुराना है। क्योंकि ऋग्वेद में आदिनाथ का इतने सम्मान से उल्लेख किया गया है, उससे सिद्ध होता है कि आदिनाथ जिंदा नहीं थे। क्योंकि जिंदा आदमियों को लोग इतना सम्मान देते ही नहीं। मर चुके होंगे। मर ही न चुके होंगे, हजार, दो हजार, पांच हजार साल बीत चुके होंगे, तब कहीं लोग सम्मान देते हैं। लोगों की आदतें तो पुरानी हैं, वही की वही हैं-- मुर्दे को सम्मान, जीवित को अपमान। तो ऋग्वेद में आदिनाथ का इतना सम्मानपूर्वक उल्लेख, जैनों का दावा है, सिद्ध करता है कि आदिनाथ को गए वर्षों बीत चुके होंगे, सैकड़ों वर्ष, तब इतना सम्मान मिला है। तो हमारी प्रार्थनाएं तो और भी पुरानी हैं, उनका दावा है।
यहां सभी की कोशिश, सारे धर्मों की कोशिश यही है कि उनका जो शास्त्र है, पुराना है। जितना पुराना उतनी प्रतिष्ठा। जैसे शास्त्र भी कोई बाजार

की दुकान है। साख होती है न पुरानी दुकान की! दुकान की साख भी बिकती है, नाम भी बिकते हैं। जो दुकान हजारों साल से चल रही है, उसका नाम भी करोड़ों का होता है। सिर्फ उसका नाम ही ले लो, लेबल, तो तुम्हें हजारों साल की प्रतिष्ठा मिल जाती है।
उस पादरी ने कहा कि तुमने बनाई प्रार्थना? जघन्य अपराध किया है! प्रार्थनाएं बनाई नहीं जातीं, उनका इलहाम होता है। जीसस को परमात्मा ने स्वयं प्रार्थना दी थी, तुमने कैसे बनाई? फिर भी बोलो तुम्हारी प्रार्थना क्या है?
उन्होंने कहा, आपने हमें बहुत डरा दिया है। अब आप हमसे पूछें ही मत, क्योंकि आप सुनेंगे तो बहुत नाराज होंगे। और आपके हाथ में डंडा देख कर हमें बहुत भय भी लगता है। और आपका सोने का मुकुट और यह वेशभूषा... हम आपके चरण छूते हैं, हमें माफ करें! आप हमें असली प्रार्थना बता दें, हम वही करेंगे।
लेकिन पादरी को भी जिज्ञासा जगी कि है आखिर तुम्हारी प्रार्थना क्या?
तो उन्होंने कहा, अब आप नहीं मानते तो हम बताए देते हैं। हमने बहुत सोचा। हम गैर पढ़े-लिखे हैं, गंवार हैं। खूब हमने गणित बिठाया, कौन सी प्रार्थना करें! फिर हम तीनों ने एक बात तय की। ईसाइयत मानती है कि ईश्वर के तीन रूप हैं। जैसे हिंदू मानते हैं त्रिमूर्ति--ब्रह्मा, विष्णु, महेश-- ऐसे ही ईसाई मानते हैं--ट्रिनिटी, ईश्वर के तीन रूप हैं। तो हमने एक प्रार्थना बना ली कि तुम भी तीन, हम भी तीन, हम पर कृपा करो!
गंभीर पादरी को भी हंसी आ गई। उसने कहा, हद्द हो गई प्रार्थना की! बहुत प्रार्थनाएं सुनीं, यह कोई प्रार्थना हुई कि तुम भी तीन, हम भी तीन, हम पर कृपा करो! यू आर थ्री, वी आर थ्री, हैव मर्सी आन अस। यह कोई प्रार्थना है! खुश हुआ कि इनको रास्ते पर लाऊंगा। उनको असली प्रार्थना बताई--चर्च
की स्वीकृत प्रार्थना--लंबी, प्राचीन भाषा में लिखी गई। एक दफा सुनाई। उन्होंने कहा, एक दफा और। दो दफा सुनाई। उन्होंने कहा, एक दफा और, क्योंकि हम भूल जाएंगे। और भूल-चूक नहीं होनी चाहिए। हमारी तो प्रार्थना ऐसी थी कि भूल-चूक हो ही नहीं सकती थी। हमें याद ही रहता था--हम भी तीन, तुम भी तीन, बचा इतना कि हम पर कृपा करो! इसमें भूलने का कोई उपाय नहीं था; इसको हम नींद में, सपने में भी दोहराते थे। इतनी सी बात ही तो याद रखनी थी कि तुम भी तीन, हम भी तीन, हम पर कृपा करो! अब और बचा भी क्या, सब आ गया था इसमें। लेकिन आपकी प्रार्थना लंबी है।
तीसरी बार भी सुनी। और उस पादरी ने कहा, घबड़ाओ नहीं, कभी-कभी चर्च भी आया करो। धीरे-धीरे तुम्हारा जीवन सुधर जाएगा।
वह बड़ा खुश कि एक उपद्रव मिटाया, अपनी नाव में सवार होकर झील से चला। बीच झील में नाव पहुंची होगी कि माझी भी हैरान हुए, पादरी भी हैरान हुआ--वे तीनों फकीर झील के पानी पर दौड़ते हुए चले आ रहे थे। उनको पानी पर चलते देख कर तो पादरी की सांस बंद हो गई। यह चमत्कार तो सिर्फ जीसस ने किया था--पानी पर चलना! वे तीनों भागते चले आ रहे थे--बदहवास, पसीना-पसीना! आकर एकदम किनारे पर खड़े हो गए नाव के और कहा कि रुकें, एक दफा और प्रार्थना दोहरा दें, हम तो भूल ही गए! हममें तो झगड़ा हो गया। यह कहता है इस तरह शुरू होती है; मैं कहता हूं इस तरह शुरू होती है; वह कहता है उस तरह शुरू होती है। आपने और बिगूचन खड़ी कर दी। अब हम विवाद करें कि प्रार्थना करें!
पादरी की आंखें खुलीं। झुक कर उसने उन तीनों के चरण छुए और कहा, मुझे माफ कर दो। तुम्हारी प्रार्थना ठीक थी, क्योंकि सुन ली गई। मेरी प्रार्थना गलत है, क्योंकि अभी तक सुनी नहीं गई। मैं पानी पर नहीं चल सकता, यह मेरा साहस नहीं। मैं पानी पर पैर नहीं रख सकता, ऐसी अभी मेरी श्रद्धा नहीं। तुम वापस जाओ! मैंने जो कहा था, बिल्कुल भूल जाओ। असल में, आज से मैं भी यही प्रार्थना करूंगा जो तुम करते थे। तुम्हारी प्रार्थना जीत गई है, मेरी प्रार्थना हार गई है।
यह तो कहानी है टाल्सटाय की। लेकिन कहानी महत्वपूर्ण है। कौन सी प्रार्थना जीतती है? जो हार्दिक हो! जो तुम्हारे भीतर अंकुरित हो! अपनी प्रार्थना खोजो।

इसलिए जब मुझसे कोई कहता है कि मैं संन्यासियों के लिए एक प्रार्थना निर्मित करूं, तो मैं सदा इनकार कर देता हूं। कोई प्रार्थना निर्मित नहीं की जाएगी। हां, प्रार्थना क्या है, इस संबंध में इशारे करूंगा। फिर खोजना तुम। तुम्हें ख्याल दे दूंगा कि गुलाब के फूल कैसे हो जाते हैं, गुलाब के फूल कैसे होते हैं, उनकी गंध की थोड़ी तुम्हें पहचान करा दूंगा। फिर कहूंगाः जाओ जंगल में, खोजो गुलाब के फूल, निकालो उनसे इत्र अपना। उनसे इत्र निकालोगे तो तुम सुगंधित हो उठोगे।
प्रार्थना वैसे ही सीखने की जरूरत नहीं है जैसे प्रेम सीखने की जरूरत नहीं है। प्रेम की क्षमता लेकर तुम पैदा हुए हो, वैसे ही प्रार्थना की क्षमता लेकर भी पैदा हुए हो। बस अपने प्रेम को विकसित करो। फैलने दो प्रेम को, कोई सीमा प्रेम के लिए न हो! पत्नी पर न रुके, बेटे पर न रुके, मां पर न रुके, भाई पर न रुके--फैलता जाए! और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि पत्नी को प्रेम मत करना।
इस संबंध में भेद समझ लेना। ऐसे लोग हुए हैं जिन्होंने तुमसे कहा है
कि अगर परमात्मा को प्रेम करना, तो पत्नी को प्रेम मत करना, पति को प्रेम मत करना, बच्चों को प्रेम मत करना। इसका तो अर्थ हुआ कि परमात्मा भी प्रतियोगी है पत्नी और बच्चों का! ईर्ष्यालु है!
मुल्ला नसरुद्दीन एक ट्रेन में सफर कर रहा था। उसकी पत्नी उसके बगल में ही बैठी थी। और सामने की ही सीट पर एक बहुत सुंदर युवती बैठी थी। मुल्ला आंख बचा-बचा कर उस सुंदर युवती को देख लेता था। पत्नी तो जली जा रही थी। लेकिन मुल्ला ने कुछ हरकत भी नहीं की थी कि कुछ कहे। और देखता भी इस ढंग से था जैसे अनायास, इधर से उधर देखते हुए दिखाई पड़ गई। घूर कर भी नहीं देख रहा था, नहीं तो ठिकाने लगा देती। उस युवती का पति भी मौजूद था, इसलिए थोड़ा ढाढ़स भी था उसे कि घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं है। मुल्ला नसरुद्दीन बिल्कुल खिड़की के पास बैठा हुआ था। उसके खीसे से एक रूमाल हवा के झोंके खा- खा कर धीरे-धीरे सरक आया था बाहर। सामने बैठी स्त्री ने कहा, महानुभाव, रूमाल को सम्हालिए, नहीं तो उड़ जाएगा बाहर। बस मुल्ला की पत्नी टूट पड़ी। उसने कहा, कलमुंही, तेरे पति की सिगरेट से उसका कोट जल रहा है, मैं तो कुछ नहीं बोली, घंटे भर से देख रही हूं। मेरे पति का रूमाल उड़े या न उड़े, तुझे क्या लेना-देना?
इस जगत में जिसको हम प्रेम कहते हैं वह तो बहुत ईर्ष्या से भरा हुआ है। वह तो ईर्ष्या का ही एक नाम है। और तुम्हारे पंडितों ने तुम्हें समझाया है कि परमात्मा भी बड़ा ईर्ष्यालु है। अपने बेटे से भी प्रेम करोगे तो उसे जलन हो जाएगी। अपने भाई को प्रेम करोगे तो वह नाराज हो जाएगा। अपनी पत्नी को चाहोगे तो वह फिर दोजख में डालेगा, नरक में सड़ाएगा--कि मेरे रहते और तुमने अपनी पत्नी को चाहा! अपने पति को चाहा!
मैं तुमसे यह नहीं कह सकता हूं। इन मूढ़ों के कारण ही जगत से प्रेम खो गया। और जब प्रेम खो जाता है तो प्रार्थना कहां बचेगी? जब फूल ही न बचे तो इत्र कहां से आएगा? मैं तुमसे कहता हूंः खूब प्रेम करो, जी भर कर प्रेम करो--पत्नी को, पति को, बच्चों को, भाई को, मित्रों को। सिर्फ एक ख्याल रखना, कोई सीमा न बने। जैसे कंकड़ फेंकते हो झील में, एक जगह गिरता है, मगर उसकी लहर उठती है तो उठती ही चली जाती है, दूर-दूर... दूर-दूर के किनारों को छुएगी वह लहर। और इस अस्तित्व का तो कोई किनारा नहीं है। तुम्हारे प्रेम से जो लहरें उठें वे जाएं दूर-दूर अनंत तक।
प्रेम कहीं रुके न तो प्रार्थना बन जाता है। प्रार्थना प्रेम के विपरीत नहीं है; प्रेम की कंकड़ी से उठी हुई लहरों का ही विस्तार है। इसलिए अपने प्रेम को निखारो। प्रेम से भागना मत, प्रेम को संवारो। प्रेम की बगिया को पानी दो, खाद दो।
मैं जो प्रार्थना तुम्हें सिखा रहा हूं वह प्रेम का ही शुद्धतम रूप है। इसलिए कठिन भी नहीं, सीखने की जरूरत भी नहीं, क्योंकि प्रेम तो तुम निसर्ग से ही लेकर आए हो। हर बच्चा प्रेम की क्षमता के साथ पैदा होता है। जैसे हर बीज में फूल छिपा है, ऐसे हर आत्मा में प्रेम छिपा है।
मगर तुम्हें इस ढंग की बातें सिखाई गई हैं कि तुम्हारा प्रेम विकसित नहीं हो पाता। सब जगह कारागृहों में कैद हो जाता है। और जब प्रेम कारागृह

में कैद हो जाता है तो सड़ने लगता है। और प्रेम अगर सड़ता है तो उससे बहुत दुर्गंध उठती है। यह सारी पृथ्वी प्रेम की दुर्गंध से भर गई है।
क्यों सड़े हुए प्रेम से दुर्गंध उठती है? क्योंकि प्रेम अगर विकसित होता तो सुगंध उठती। जिससे सुगंध उठती है वह अगर सड़ जाए तो दुर्गंध उठती है। अपने प्रेम को सड़ने मत देना, उसे कहीं रुकने मत देना। उसकी कोई सीमा मत मानना, उसकी कोई परिभाषा मत बनाना। मत कहना कि मैं हिंदू को ही प्रेम करूंगा, क्योंकि मैं हिंदू हूं। मत कहना कि मैं भारतीय को ही प्रेम करूंगा, क्योंकि मैं भारतीय हूं। कोई सीमा मत बनाना--न देश की, न जाति की, न वर्ण की। तुम्हारा प्रेम अबाध बहता रहे। प्रेम तुम्हारा धर्म हो। फिर देर नहीं होगी कि तुम जल्दी ही प्रार्थना से परिचित हो जाओगे। यह प्रेम के ही वृक्ष की अंतिम शाखाओं पर प्रार्थना का फूल खिलता है।

दूसरा प्रश्नः ओशो! आदरणीय दद्दाजी की मृत्यु पर आपने अपने संन्यासियों को कहा कि वे उत्सव मनाएं, नाचें। लेकिन इस उत्सव और नृत्य के होते हुए भी रह-रह कर आंसू पलकों को भिगोए दे रहे थे।
ओशो, दद्दाजी के चले जाने के बाद हृदय को अभी भी विश्वास नहीं कि वे चले गए हैं। लगता है कि वे यहीं हैं। उन्होंने हमें जो प्रेम दिया वह अकथ्य है।

कृष्णतीर्थ! इसीलिए तो कहता हूं उत्सव मनाओ! कोई जाता नहीं, कोई कहीं जाता नहीं। जाने का उपाय नहीं है, जाने को कोई स्थान नहीं है। हम शाश्वत हैं। अमृतस्य पुत्रः। हम अमृत के पुत्र हैं। हम अमृत में ही लीन हो जाते हैं। जैसे बूंद सागर में खो जाती है। खोजे से नहीं मिलेगी अब; लेकिन खो नहीं गई है, सागर हो गई है।
इसलिए तुम्हारा लगना ठीक है कि अभी भी विश्वास नहीं आता कि वे चले गए हैं।
जाएंगे कहां? हां, जिस देह की सीमा में बंधे थे उस सीमा में अब नहीं हैं। और तुम देह को ही देख सकते थे। यह तुम्हारी आंख की कमजोरी है। यह जाने वाले का कसूर नहीं। तुम केवल पदार्थ को ही पहचान सकते थे। यह तुम्हारी समस्या है। काश, तुम अपने भीतर आत्मा को पहचान लो, तो फिर कोई तुम्हें कभी मृत्यु का धोखा नहीं दे सकेगा। मृत्यु में भी तुम जानोगे कि केवल देह गिर गई; जीवन तो मिल गया महाजीवन में।
सभी व्यक्ति मृत्यु के बाद महाजीवन में सम्मिलित नहीं हो जाते, क्योंकि उनका देह से मोह बना रहता है। देह से मोह बना रहता है तो वही मोह का पाश उन्हें फिर नई देह में खींच लाता है। जो व्यक्ति देह से सारा मोह छोड़ कर जाता है उसके लौटने का उपाय नहीं होता, उसका आवागमन नहीं होता। जिस दिन उनका महाप्रस्थान हुआ... ।
पांच सप्ताह से वे अस्पताल में थे। एक भी दिन उन्होंने खबर नहीं भेजी
कि मैं देखने आऊं। मैं देखने गया दो बार, जब भी मुझे लगा कि खतरा है। लेकिन अंतिम दिन उन्होंने खबर भेजी, सुबह से ही खबर भेजी, तो मैंने कहा कि मैं आता हूं। मैंने खबर भेजी कि मैं आता हूं कि उनकी तत्क्षण खबर आई कि कोई जरूरत नहीं, नाहक परेशान न होओ।
मैं फिर भी तीन बजे गया। मैं आनंदित था, क्योंकि उनका मुझसे जो मोह था, मुझे देखने का जो मोह था, वह उनका आखिरी बंधन था, वह भी टूट गया था। और जब मैंने उनसे कहा कि आपका कमरा भी तैयार हो गया है, नया बाथरूम भी बन गया है, बस अब दिन दो दिन में आपको अस्पताल से छुट्टी मिलने वाली है; आपके लिए नई कार भी बुला ली है, क्योंकि अब पैर में तकलीफ है तो चलने में मुश्किल होगी, नई कार भी आ गई है--तो न तो उन्होंने नई कार में कोई उत्सुकता ली, न नये कमरे में, न नये बाथरूम में; सिर्फ कंधे बिचकाए, कुछ बोले नहीं। जरा सा भी रस दिखाते तो लौटना पड़ता। कंधे बिचकाए तो मैं खुश हुआ। कंधे बिचकाने का मतलब था कि सब बेकार है। अब सब मकान बेकार हैं, अब सब कारें बेकार हैं। अब कहां आना-जाना? फिर भी मैंने दोहराया और जोर दिया कि चिंतित न हों, बस दिन दो दिन की बात है, घर ले चलेंगे। तो भी उन्होंने यह नहीं कहा कि घर आऊंगा; इतना ही कहा कि हां, कीर्तन करेंगे।

घर आए, जीवित तो नहीं आए। और चूंकि उन्होंने कहा था कि कीर्तन करेंगे, इसलिए मैंने कहा कि पहला काम जो करने का है वह कीर्तन करो। आभास उन्हें स्पष्ट था कि जाने की घड़ी आ गई। अब कैसा घर! असली घर जाने की घड़ी आ गई।
सभी इस अवस्था को उपलब्ध हो सकते हैं। नहीं हो पाते, क्योंकि हम प्रयास नहीं करते हैं, हम ध्यान में नहीं डूबते हैं। एक ही उपाय है--ध्यान कहो, प्रार्थना कहो, जो भी नाम देना हो दो--एक ही उपाय है कि अपने में डूबो और अपने को पहचानो।
उस सुबह उनकी अपने से पहचान पूरी हो गई। मुझे एक ही चिंता थी कि कहीं
वे अपने को बिना जाने समाप्त न हो जाएं। एक ही फिक्र थी कि किसी तरह थोड़े दिन और खिंच जाएं। क्योंकि ध्यान उनका बस करीब-करीब आया जा रहा था। जैसे किनारे पर आ गए थे, बस एकाध कदम और! मगर कहीं ऐसा न हो कि वह एकाध कदम उठाने के पहले चले जाएं, तो फिर जन्म हो जाएगा। और फिर पता नहीं जो सुअवसर उन्हें इस बार मिला था वह इतनी आसानी से दोबारा मिलेगा कि नहीं मिलेगा। और एक बार भटका हुआ, कब फिर मंदिर के निकट आ पाएगा, यह भी कहना मुश्किल है। और एक चीज से दूसरी चीज पैदा होती चली जाती है। फिर सिलसिला अनंत हो सकता है।
इसलिए मेरी एक ही चिंता थी। वे बचें, यह सवाल न था। इतनी देर बच जाएं केवल कि इस देह से सदा के लिए विदा हो सकें, बस इतनी मेरी चिंता थी। अगर वे बच गए होते और बिना समाधि को उपलब्ध हुए बच गए होते, तो मैं दुखी होता। वे नहीं बचे, मगर समाधि को उपलब्ध होकर नहीं बचे, तो मेरे आनंद का कोई पारावार नहीं है।
कहते हैं, पिता के ऋण से उऋण नहीं हुआ जा सकता। लेकिन मैं तुमसे कहता हूंः मैं उऋण हो गया। और क्या दे सकता था उनको? उन्होंने मुझे जीवन दिया था, मैंने उन्हें महाजीवन दिया। और तो कोई देने को चीज थी भी नहीं, है भी नहीं। जीवन के बाद तो बस महाजीवन ही एक भेंट है। मैं खुश हूं, आनंदित हूं। वे ऐसे गए हैं जैसे जाना चाहिए। उन्होंने ऐसे विदा ली है जैसी विदा लेनी चाहिए।
इसलिए जो लोग वहां मौजूद थे उनकी आखिरी घड़ी में, उनको भी ऐसा नहीं लगा
कि मृत्यु घट रही है। उनको भी ऐसा लगा जैसे महाजीवन घट रहा है। उनको भी ऐसा नहीं लगा कि कोई कालिमा उतर आई अमावस की। उनको भी ऐसा लगा जैसे पूर्णिमा हो गई।
उनके मर जाने के बाद उनके शरीर को जाकर मैंने दो जगह छुआ था। एक तो आज्ञाचक्र पर। क्योंकि दो ही संभावनाएं थींः या तो वे आज्ञाचक्र से विदा होते तो फिर एक बार उन्हें जन्म लेना पड़ता, सिर्फ एक बार; और अगर वे सातवें चक्र से, सहस्रार से विदा होते तो फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। पहले मैंने उनका आज्ञाचक्र देखा, डरते-डरते हाथ रखा उनके आज्ञाचक्र पर। क्योंकि जहां से जीवन विदा होता है वह चक्र खुल जाता है, जैसे कली खिल कर फूल बन जाए। और जिनको चक्रों का अनुभव है वे केवल स्पर्श करके तत्क्षण अनुभव कर ले सकते हैं--जीवन कहां से विदा हुआ। मैं अत्यंत खुश हुआ जब मैंने पाया कि आज्ञाचक्र से जीवन विदा नहीं हुआ है। तब मैंने उनका सहस्रार छुआ, जिसको सहस्रदल कमल कहते हैं, जिसको हजार पंखुड़ियों वाला कमल कहते हैं, वह खुला हुआ है। वे उड़ गए हैं सातवें द्वार से।
पलटू कहते हैंः सातवें से जो उड़ जाए वह आठवें में प्रवेश कर जाता है। सात महल के ऊपर आठवां महल है। वह आठवां महल ही निर्वाण है, मोक्ष है, कैवल्य है। वह आठवां महल ही परमात्मा है, सत्य है, शिव है, सुंदर है, सच्चिदानंद है। वही ब्रह्मलोक है।
कृष्णतीर्थ! वे कहीं गए नहीं, यहीं हैं। बड़े होकर, विराट होकर यहीं हैं। फैल कर यहीं हैं। फूल की तरह नहीं हैं, सुवास की तरह यहीं हैं। रामकृष्ण मरणशय्या पर थे। उनकी पत्नी शारदा रोने लगी और उसने पूछा कि परमहंस देव! आप तो जा रहे हैं, मेरा क्या होगा?
उन्होंने आंख खोलीं और कहा कि जा रहा हूं! पागल, कहां जाऊंगा? जाने को कोई जगह कहां है? यहीं था, यहीं रहूंगा। अभी देह में था, अब बिना देह के रहूंगा।
तुम जब दीये की ज्योति को फूंक देते हो तो दीये की ज्योति कहां जाती है?

सूफी फकीर हसन के जीवन में उल्लेख है कि वह एक गांव में प्रवेश हुआ। सांझ का वक्त था, उसने एक छोटे से बच्चे को हाथ में दीया लिए हुए पास की एक मजार की तरफ जाते देखा। ऐसे ही मौज में, मजे में, मस्ती में उसने उस बच्चे से पूछा, बेटे, यह दीया लेकर कहां जा रहे हो?
उस बच्चे ने कहा, मजार पर चढ़ाने जा रहा हूं।
फकीर ने कहा, यह दीया तुमने ही जलाया?
उस बच्चे ने कहा, हां, मैंने ही जलाया।
तो फकीर ने कहा, एक बात का जवाब दो। तुमने जब दीया जलाया तो क्या तुम
कह सकते हो ज्योति कहां से आई? क्योंकि तुमने ही जलाई, तुम्हारे सामने ही आई; कहां से आई?
सिर्फ बच्चे के साथ मजाक कर रहा था। मगर कभी-कभी मजाक महंगी पड़ जाती है। आशा नहीं थी कि बच्चा ऐसा करेगा। उस बच्चे ने मुस्कुरा कर फकीर की तरफ देखा और दीये में फूंक मार दी। फूंक मारते ही दीया बुझ गया। उस बच्चे ने पूछा, आपके सामने ही दीया बुझा, बता सकते हैं ज्योति कहां गई?
कहते हैं हसन ने झुक कर उसके पैर छुए और उसने कहा कि मैं तो मजाक ही कर रहा था, लेकिन तूने भारी चोट पहुंचा दी। न ज्योति कहीं से आती, न कहीं जाती; सिर्फ प्रकट होती है और अप्रकट होती है। है तो यहीं। कभी प्रकट अवस्था में होती है, तो तुम्हें दिखाई पड़ती है; कभी अप्रकट अवस्था में होती है, तुम्हें दिखाई नहीं पड़ती। देह में होती है ज्योति तो तुम सोचते हो कि है, हालांकि देह में भी तुम्हें आत्मा दिखाई नहीं पड़ती, देह ही दिखाई पड़ती है; मगर अनुमान करते हो कि आत्मा होनी चाहिए। आदमी बोलता है, उठता है, चलता है, खाता है, पीता है, तो आत्मा होनी चाहिए--यह अनुमान है तुम्हारा। तुमने आत्मा देखी नहीं है। अपने में नहीं देखी तो दूसरे में कैसे देखोगे? जिस दिन अपने में देख लोगे उस दिन चकित हो जाओगेः देह तो कुछ भी नहीं है, केवल आवरण है! और तुम आवरण को सब कुछ समझ रखे हो।
निश्चित ही आवरण एक दिन गिर जाएगा। लेकिन जो आवरण के भीतर था, वह नष्ट नहीं होता है। अगर वासना शेष रह गई तो फिर नया आवरण ग्रहण करेगा। अगर वासना निःशेष हो गई तो फिर आवरण ग्रहण करने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। धर्म की कला और धर्म का विज्ञान एक ही खोज में संलग्न है कि कैसे हम इतने निर्वासना से भर जाएं कि फिर देह में न लौटना पड़े, क्योंकि देह में लौटना सिवाय कष्ट और पीड़ा के और कुछ भी नहीं है। मां के पेट में नौ महीने कारागृह में बंद, मलमूत्र में पड़े हुए, अंधकार में डूबे हुए--कोई बड़ी सुखद स्थिति नहीं हो सकती। फिर जन्म की पीड़ा--मां के गर्भ से बाहर आना, एक संकरे द्वार से बाहर आना--जन्म की पीड़ा। फिर जीवन की अनंत-अनंत पीड़ाएं हैं। क्योंकि यहां कोई वासना सफल नहीं होती, हर वासना असफल होती है। इसलिए हर वासना विषाद लाती है। फिर बीमारियां हैं, रोग हैं, बुढ़ापा है, फिर मृत्यु है--पीड़ा ही पीड़ा का जाल है।
सत्य के खोजी एक ऐसे जीवन की तलाश करते रहे हैं जो आनंद ही आनंद हो। वह जीवन देह-मुक्त ही हो सकता है, विदेह ही हो सकता है।
कृष्णतीर्थ! वे कहीं चले नहीं गए हैं, सिर्फ विदेह हो गए हैं--यहीं हैं। तुम्हारी आंखों से आंसू आ रहे हैं, क्योंकि तुम्हें इस बात पर भरोसा नहीं आता कि वे यहीं हैं। तुम्हारी आंख में आंसू आ रहे हैं, क्योंकि मृत्यु सदा से दुख का कारण रही है। और साधारणतः मृत्यु दुख का कारण है भी। लेकिन कभी कुछ मृत्युएं होती हैं जो दुख का कारण नहीं होतीं, आनंद का कारण होती हैं। होनी तो सभी मृत्युएं ऐसी ही चाहिए, प्रयास तो यही रहे, अभ्यास तो यही रहे, साधना तो यही चले कि तुम भी ऐसे ही मर सको।
इस बुद्ध-क्षेत्र में मैं तुम्हें जीवन भी सिखाना चाहता हूं, मृत्यु
भी सिखाना चाहता हूं। इसलिए किसी अवसर को छोड़ नहीं देना चाहता। मृत्यु की यह महाघटना घटी, मैं चाहता था यह तुम्हारे लिए पाठ बन जाए, तुम इसमें भी नाच सको। आंखों में आंसू आएंगे--पुरानी आदत, सदियों पुरानी आदत, संस्कार। एक मित्र का बेटा चल बसा। जलगांव से कुछ ही दिनों पहले मुझे पत्र आया। बड़ा क्रोध से भरा हुआ पत्र। एक मेरे संन्यासी का बेटा चल बसा और उन्होंने बेटे की मृत्यु पर उत्सव मनाया, कीर्तन किया, नाचे। उनके किसी मित्र ने क्रोध में मुझे लिखा है कि आपने इनको बिल्कुल भ्रष्ट कर दिया। घर में लड़का

मर जाए, तो यह कोई नाचने और उत्सव मनाने की बात है? आपको ऐसी शिक्षा नहीं देनी चाहिए।
जिनका बेटा मरा है, वे तो नाचे, उत्सव मनाए। जिनका बेटा नहीं मरा है,
वे नाराज हो रहे हैं। उनका कहना है दुख मनाया जाना चाहिए था। हम ऐसे दुखवादी हैं कि दुख का कोई अवसर हो तो छोड़ना नहीं चाहते! उनके मित्र ने लिखा कि क्या मेरे ये बंधु पागल हो गए हैं?
दुनिया ऐसी है। जो दुनिया करती है वह ठीक। उससे भिन्न कुछ करो तो दुनिया नाराज होती है।
मैं तुम्हें जीवन का ही पाठ नहीं देना चाहता, मृत्यु का भी पाठ देना चाहता हूं। अब एक लाख संन्यासी हैं मेरे, उनमें बहुत वृद्ध हैं। धीरे-धीरे वे जाएंगे, विदा होंगे। मैं चाहूंगा कि तुम विदाई देने का ढंग भी सीखो, कला भी सीखो।
इतना तो पक्का है कि बहुत से संन्यासी समाधिस्थ होकर जाएंगे। बहुत से इतना आयोजन करके तो जाएंगे ही जाएंगे कि ज्यादा से ज्यादा एक जन्म हो। बहुत से इतना आयोजन करके जाएंगे कम से कम कि ज्यादा से ज्यादा दो जन्म हों। और बहुत से इतना आयोजन करके जाएंगे कि ज्यादा से ज्यादा तीन जन्म हों। अनंत जन्मों कीशृंखला है, इसमें अगर तुम तीन जन्म हों, इतना भी आयोजन करके जा सके, तो तुम्हारी सफलता कम नहीं है। तो तुम रास्ते पर चल पड़े, मंदिर दिखाई पड़ने लगा--बस तीन कदम और, या दो कदम और, या एक कदम और, या आखिरी कदम।
मेरी चेष्टा यह है कि मेरे संन्यासी कम से कम इन तीन अवस्थाओं में ही विदा हों। तीनों हालत में उनके जीवन का उत्सव मनाया जाना चाहिए। और फिर अगर कोई न भी ध्यान की अवस्था में गया हो, साधारणजन ही रहा हो और अनंत बार आगे भी जन्मेगा, तो भी मैं चाहता हूं कि जो उसके पीछे रह गए हैं वे तो उत्सव मनाएं ही मनाएं, वे तो नाचें और गाएं ही। क्योंकि तुम्हारा नाचना और गाना, जो चला गया है उसके जीवन को तो नहीं बदलेगा, लेकिन तुम्हारा नाचना और गाना तुम्हारी अपनी मृत्यु के प्रति तुम्हारी दृष्टि को बदलेगा। जो गया वह तो गया। तुम रोओ तो लौटता नहीं; तुम हंसो तो लौटता नहीं। तुम छाती पीटो तो नहीं लौटता; तुम नाचो तो नहीं लौटता। लेकिन तुम रोओ और छाती पीटो तो तुम अपने लौटने का इंतजाम कर रहे हो। और तुम अगर नाच सको, गा सको, तो तुम निकट आ रहे हो मंदिर के।
बहुत संन्यासी विदा होंगे, स्वाभाविक है। इन संन्यासियों को विदा देने के लिए तुम्हें नया ढंग सीखना होगा--आनंद-उत्सव से। यह बात गौण है कि तुम्हारा आनंद-उत्सव, जो चला गया है उसके लिए क्या करेगा, यद्यपि उसके लिए भी कुछ करेगा; मगर वह जरा सूक्ष्म बात है, तुम्हारी समझ में आए या न आए। क्योंकि तुम जब रोते हो, पीड़ित होते हो... समझो कि पति चल बसा, पत्नी रोती है, पीड़ित होती है, छाती पीटती है, जार-जार होती है, तो वह जो पति चला गया है वह भी हट नहीं पाता, वह भी जा नहीं पाता, वह भी अटका रह जाता है। अपने प्रियजन इतने पीड़ित हो रहे हों, इतने दुखी हो रहे हों, तो स्वभावतः जन्म भर की उसकी आदत उनको अपना मानने की, एक दिन में नहीं टूट जाती, समय लगता है। अगर उसके प्रियजन बहुत रो रहे हों तो वह भूत-प्रेत होकर यहीं भटकेगा। ऐसे ही तो भूत-प्रेत तुम पैदा करते हो।
यह जान कर तुम चकित होओगे कि पश्चिम में--ईसाई, यहूदी, मुसलमानों में-- ज्यादा भूत-प्रेत होते हैं। इंग्लैंड में जितने भूत-प्रेत होते हैं, उतने दुनिया के किसी देश में नहीं होते। इस पर काफी शोध हुई है, खोजबीन हुई है। परा-मनोविज्ञान ने इस पर काफी अनुसंधान किया है कि क्या कारण है। जहां भी लोगों की देह को कब्र में दबा दिया जाता है वहां भूत-प्रेत ज्यादा होते हैं बजाय उन देशों के जहां उनके शरीर को जला दिया जाता है।
इसलिए तो हमने जलाने की विधि खोजी थी। यह कुछ आकस्मिक नहीं है। यह बड़ी महत्वपूर्ण है। जो व्यक्ति अपनी देह को छोड़ कर चला गया है वह कम से कम अड़तालीस घंटे तो अपनी देह के आस-पास घूमता रहता है, अगर देह में उसका जरा भी रस है। कम से कम अड़तालीस घंटे और ज्यादा से ज्यादा तेरह दिन वह अपनी लाश के आस-पास घूमता रहता है। मन नहीं होता उसका छोड़ देने को इस देह को। वह इसमें वापस प्रवेश पाने की चेष्टा करता रहता है। पुराने लगाव! जैसे

तुम्हें कोई तुम्हारे घर से बाहर निकाल दे तो तुम एकदम थोड़े ही चले जाओगे कि पीछे लौट कर देखोगे ही नहीं। तुम पीछे के दरवाजे से घुसने की कोशिश करोगे, खिड़की से कूदना चाहोगे, दरवाजा तोड़ना चाहोगे... इतनी आसानी से थोड़े ही... तुम्हारा घर, और तुम्हें बाहर निकाल दिया गया!
परा-मनोविज्ञान कहता है कि शरीर के छूटने के बाद कुछ घंटे लग जाते हैं आत्मा को यह समझने में कि मेरी मृत्यु हो गई। तुम्हें तो तत्क्षण समझ में आ जाता है, आत्मा को समझने में घंटों लग जाते हैं कि मेरी मृत्यु हो गई। क्योंकि आत्मा को तो कुछ फर्क नहीं पड़ता। अभी भी उसे दिखाई पड़ता है, कुछ हैरानी जरूर होती है कि शरीर भी दिखाई पड़ रहा है अपना पड़ा हुआ; लोग रो रहे हैं, ये भी दिखाई पड़ रहे हैं--मामला क्या है? क्या मैं कोई सपना देख रहा हूं?
तुमने कभी सपने में अपने को मरा हुआ देखा? जरूर अनेक लोगों ने देखा होगा। सपने में अगर तुम देखो कि तुम मर गए तो तुम्हें एक हैरानी भी भीतर होती रहती है कि मामला क्या है? मैं मर भी गया और मैं देख भी रहा हूं कि यह मेरी देह पड़ी है, तो मैं हूं भी! क्योंकि देखने वाला मौजूद है। और लोग क्यों रो रहे हैं? लोग क्यों परेशान हो रहे हैं? मैं तो अभी हूं!
पहली दफा जब कोई मरता है तो घंटों लग जाते हैं उसे यह अनुभव करने में
कि मैं मर गया। उसको अनुभव करवा देने के लिए सबसे सुगम उपाय है उसके शरीर को जला देना। क्योंकि जैसे ही शरीर जल जाता है, उसका घर गिर जाता है, अब पीछे लौटने को कुछ बचा ही नहीं, देखने को भी कुछ नहीं बचा; लपटें हैं और राख। अब चले वह, मुड़े, मुख मोड़े इस देह की तरफ से, नई यात्रा पर चले।
लेकिन जिन देशों में शरीर को गड़ा देते हैं, उन देशों में मुश्किल होती है। एक तो तीन दिन तक शरीर को रखे रहते हैं कि दर्शनार्थी दर्शन कर सकें। उन दर्शनार्थियों में वह जो निकल गया है, वह भी मौजूद रहता है। वह भी लौट-लौट कर आ जाता है कि देखें क्या हो रहा है? कहां तक बात पहुंची? फिर से घुस सकता हूं या नहीं?
और कई बार तो लोग फिर से घुस भी गए हैं। कई बार मुर्दा जिंदा हो गए हैं।
कल ही ऐसा हुआ। एक संन्यासिनी का अजित सरस्वती ने आपरेशन किया। पैंतालीस मिनट के लिए उसकी सांस बंद हो गई। पैंतालीस मिनट लंबा वक्त है। और पैंतालीस मिनट के लिए श्वास का बंद हो जाना मतलब मर गई वह। मगर पैंतालीस मिनट के बाद श्वास लौट आई। काफी धक्कमधुक्की की होगी उसने, घुस गई फिर घर में।
आजकल किसी को घर में से निकालना है भी कानूनन कठिन। लोग अदालत में जाते हैं, मुकदमा लड़ते हैं। एक दफा किराएदार घर में घुस गया कि घुस गया, घर उसका है। हालांकि किराएदार! किराएदार तो छोड़ दो, तुम किसी को मेहमान की तरह कुछ दिन रख लो कि वही तुम पर आंखें तरेरने लगेगा कि इतने दिन से हम यहां रह रहे हैं, जाना हो तो तुम ही जाओ, हम तो अब यहीं रहेंगे।
और तुम तो इस देह में वर्षों रहे। वर्षों में तुमने इस देह को अपना मानने का इतना मोह बना लिया।
परा-मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जला देना श्रेष्ठतम है। अलग-अलग हिसाब
से बातें हैं। गड़ा देना प्राकृतिक दृष्टि से श्रेष्ठतम है। क्योंकि शरीर के सारे तत्व जो तुमने पृथ्वी से लिए थे वे वापस पृथ्वी को मिल जाने चाहिए, नहीं तो पृथ्वी धीरे-धीरे बंजर हो जाएगी। इसलिए भारत की पृथ्वी बंजर होती जा रही है, क्योंकि हम पचा तो लेते हैं पृथ्वी के तत्वों को और फिर जला देते हैं। वे राख हो गए। अगर गड़ा देते तो धीरे-धीरे शरीर के तत्व फिर पृथ्वी में मिल जाते। फिर किसी वृक्ष में तुम्हारे शरीर के तत्वों का आविर्भाव होता, फूल बनते, फल बनते। मगर हम जला देते हैं। प्राकृतिक दृष्टि से तो गड़ा देना ठीक है। लेकिन आध्यात्मिक दृष्टि से जला देना ठीक है।
और इन दोनों से श्रेष्ठ है पारसियों का ढंग, मगर वह जरा अमानवीय मालूम पड़ता है। पारसी तो लाश को छोड़ देते हैं पशु-पक्षियों के खाने के लिए। वह श्रेष्ठतम है, क्योंकि उसमें प्राकृतिक ढंग से जो फायदा होता है कब्र में गड़ाने का, वह भी पूरा हो गया। तुमने भोजन किया था जीवन भर, तुम वापस भोजन बन गए, तुमने लौटा दिया भोजन। जिससे लिया था उसे लौटा दिया। पशु-पक्षी खा

लेंगे, फिर पशु-पक्षी मरेंगे, मिट्टी में मिल जाएंगे। कोई नुकसान नहीं हुआ; तत्व जले नहीं, तत्व बचे रहे। इकोलॉजी के हिसाब से पारसियों का ढंग श्रेष्ठतम है। और इस हिसाब से भी, लपटों से भी जितनी घबड़ाहट पैदा नहीं होगी उतनी घबड़ाहट पैदा होगी कि गिद्ध तुम्हें खा रहे हैं। अग्नि से भी ज्यादा पीड़ादायी होगा यह देखना कि गिद्ध तुम्हें लोंच रहे हैं जगह-जगह से। कोई तुम्हारी आंख निकाल रहा है, कोई तुम्हारा हृदय खा रहा है, टुकड़े- टुकड़े हुए जा रहे हो। यह देख कर तुम एकदम मुड़ पड़ोगे। इससे बड़ी वितृष्णा पैदा होगी। इससे वैराग्य पैदा होगा।
पारसियों का ढंग वैराग्य के लिए सबसे महत्वपूर्ण है। ऐसा व्यक्ति जब नया जन्म लेगा, जब नये गर्भ में जाएगा, तो शायद गर्भ में जाते वक्त भी यह स्मृति उसका पीछा करेगी कि शरीर की क्या गति हो जाती है। आग में भी इतनी दुर्गति नहीं होती, पारसी की जैसी दुर्गति होती है।
लेकिन पारसी का ढंग जरा अमानवीय मालूम पड़ता है। जिस पति को इतना प्रेम किया, जिस बेटे को इतना चाहा, जिस पत्नी पर सब निछावर किया, उसको रख आए गिद्धों से खाने के लिए! और थोड़ा असंस्कृत भी मालूम पड़ता है, असभ्य भी। और गांव में बास-बदबू भी फैलती है। इसलिए खुद पारसी जमातें भी जगह-जगह विचार कर रही हैं कि हम कोई दूसरा रास्ता खोजें, क्योंकि दूसरे लोग एतराज लेते हैं कि दुर्गंध फैला रहे हो।
जलाने का ढंग ज्यादा सुसंस्कृत मालूम होता है। वह जो आत्मा जा रही है उसकी भी विदाई हो गई और जो पीछे रह गए हैं उन्होंने भी देख लिया कि शरीर का अंतिम हश्र क्या है; उनको भी बोध आएगा। काश, तुम उत्सव मना सको जाते हुए व्यक्ति को विदा देते समय तो तुम उसे एक ऊर्जा दोगे। तुम्हारे आंसू उसे खींचेंगे, तुम्हारा रोना उसे राग पैदा करेगा। तुम अगर उत्सव मना सको, प्रभु के गीत गा सको, आनंद मंगल, उसे उसकी परम यात्रा के लिए बधाई दे सको, तो उसे भी होश आएगा कि अब वापस क्या लौटना! अब परम यात्रा पर, महाप्रस्थान पर निकल जाऊं! तुम्हारे कीर्तन की धुन उसके कानों में गूंजती हुई चली जाएगी। तुम्हारा उत्सव, तुम्हारी विदाई उसके लिए अंतिम सौगात होगी तुम्हारी, अंतिम भेंट होगी तुम्हारी।
तो नहीं जो ज्ञान को उपलब्ध हुआ हो, उसको भी नाच कर ही विदा देना, उसके लिए भी लाभपूर्ण है और तुम्हारे लिए भी लाभपूर्ण है। तुम्हारे लिए इसलिए लाभपूर्ण है ताकि तुम समझ सको कि जीवन क्षणभंगुर है, क्या रोना! मिट्टी है, क्या रोना! मिट्टी मिट्टी में गिर गई और मिल गई, क्या परेशान होना! कृष्णतीर्थ! वे कहीं गए नहीं; यहीं हैं। इसलिए तुम्हारी प्रतीति भी ठीक है कि विश्वास नहीं होता कि वे चले गए; लगता है कि वे यहीं हैं।
लेकिन यह सिर्फ कहीं तुम्हारे मन का भुलावा न हो। क्योंकि हम कई बातें मान लेना चाहते हैं। हम मान लेना चाहते हैं--वे कहीं नहीं गए, यहीं हैं। हम मान लेना चाहते हैं--आत्मा अमर है। हम मान लेना चाहते हैं। जो-जो हमें डराता है उससे विपरीत हम मान लेना चाहते हैं। यह तुम्हारी मान्यता न हो, यह तुम्हारा बोध बने। मैं मान्यता का दुश्मन हूं और बोध का पक्षपाती हूं। क्योंकि बोध ही तुम्हें बुद्धत्व की तरफ ले जाएगा। बोध की ही तो परिपक्वता का नाम बुद्धत्व है। मान्यताओं से कोई बुद्ध नहीं होता। मान्यताओं में दबे हुए लोग तो बुद्धू ही रह जाते हैं। मान्यताओं का अर्थ केवल इतना ही होता है कि स्वयं तो नहीं जाना; औरों ने कहा, मान लिया। और औरों ने भी औरों की सुन कर मान लिया है। तुम्हारे मानने में बल कैसे हो सकता है?
मुल्ला नसरुद्दीन हवाई जहाज में पहली दफा सफर कर रहा था। पत्नी साथ-- गांव की रहने वाली, पूर्णतः शुद्ध भारतीय परिधान पहने। लेकिन मुल्ला शौकीन मिजाज। शान के लिए पैंट-कोट, जो कि एक मित्र से उधार लिए थे, पहन कर आया था। जब हवाई जहाज उड़ने लगा तो अनाउंसर की आवाज आई--कृपया सभी अपने-अपने बेल्ट कस लें। मुल्ला नसरुद्दीन ने झट अपनी कमर का बेल्ट और भी जोर से कस लिया--ऐसे कि प्राण निकलने लगे। अब आदेश का उल्लंघन कर भी कैसे सकता है! अपना बेल्ट कसने के बाद उसने झट अपनी पत्नी की ओर देखा और बोला, मेरा मुंह क्या देख रही है, जल्दी कर और अपने पेटीकोट का नाड़ा कस ले! सुनी नहीं आज्ञा?

आज्ञाएं सुन कर तुम जो करोगे, करोगे तो तुम अपनी ही बुद्धि से! आज्ञाएं बुद्ध देते हों भला, मगर उन आज्ञाओं की व्याख्या कौन करेगा? तुम ही करोगे व्याख्याएं! और तुम्हारी व्याख्याएं तुम्हारी ही होंगी। सुबह-सुबह मुल्ला नसरुद्दीन घूमने निकला। एक दरवाजे पर लगी छोटी सी तख्ती उसने देखीः श्री भोंदूमलजी, भूतपूर्व मुख्यमंत्री। बड़ा आश्चर्य हुआ। उसे तो पता तक न था कि वे सज्जन पिछले पांच वर्षों से कहां रह रहे हैं। ये तो पड़ोस में ही रहते हैं! मुल्ला तो सोचता था कि मर-मरा गए होंगे। कब से नाम तक नहीं सुना और ये भोंदूमल यहां रह रहे हैं। सड़े-गले इलाके में, टूटे-फूटे मकान में! मुल्ला को बड़ा तरस आया। इतना बड़ा मंत्री और उसके घर के सामने ऐसी गंदगी! सुबह-सुबह ही कोई गाय माता वहां पवित्र गोबर कर गई थी, मकान की सीढ़ियों पर ही। नसरुद्दीन ने अपनी जेब से कलम निकाली और गोबर के पास ही लिख दियाः श्री गोबरमलजी, भूतपूर्व हरी घास!
व्याख्या तो तुम्हारी होगी। मान्यताएं कहीं से लो, समझ कहां से लाओगे? प्रज्ञा कहां से लाओगे? चेहरा कोई भी हो, दर्पण तो तुम्हारा होगा; अगर दर्पण ही इरछा-तिरछा है तो सुंदर से सुंदर चेहरा भी इरछा-तिरछा हो जाएगा। दर्पण को बदलना होगा। मान्यताएं बदलने से कुछ भी नहीं होता, बोध बदलना होगा। और बोध ज्ञान से नहीं बदलता, ध्यान से बदलता है। भीतर की एक निर्मलता लानी होगी, एक स्वच्छता लानी होगी। चित्त को निर्विचार करना होगा, निर्विकार करना होगा। चित्त से मुक्त होना होगा। और तब जैसा मैं कह रहा हूं वैसा ही तुम्हें दिखाई पड़ सकेगा। तब तुम अनुभव कर सकोगेः जीवन भी आनंद है, मृत्यु भी आनंद है, क्योंकि यह सारा अस्तित्व आनंद से ही निर्मित है।
मेरी बातों को मान मत लेना। मेरी बातों को सुनना और प्रयोग करना। तुम्हारा प्रयोग सिद्ध कर दे कि सही है, तो ही मानना, नहीं तो मत मानना। और जब तुम्हारा प्रयोग सिद्ध कर दे किसी बात को और तुम मानो, तो मानना कहां हुआ, यह तो जानना है!
एक मारवाड़ी सेठ को हवाई यात्रा से बहुत ज्यादा डर लगता था। हवाई जहाज
का नाम सुन कर उनकी जान सूखती थी। मगर व्यापार तो आखिर व्यापार है। कई बार उन्हें धंधे के सिलसिले में लंदन जाना पड़ता था। वे हमेशा बीमा करा कर ही हवाई जहाज में कदम रखते थे। एक बार जब वे बिना बीमा कराए ही जाने लगे तो उनके एक परिचित ने पूछा, सेठ जी, इस बार इंश्योरेंस नहीं करवाना क्या? सेठ जी की आंखों से आंसू झलक आए। उन्होंने निराशा भरे उदास स्वर में कहा, कितनी बार तो करवा चुका! कभी कुछ होता-वोता तो है ही नहीं। हर बार असफलता हाथ लगती है। मेरा तो कुछ भाग्य ही खराब है।
लोग इंश्योरेंस तक भी करवाएं तो भी मारवाड़ी की बुद्धि तो मारवाड़ी की।
वह तो हिसाब लगा कर चलता है कि लाभ कितना होगा। उसको तो इंश्योरेंस, अगर मर कर भी पैसा मिलता हो, तो वह लेने को राजी है।
एक मारवाड़ी को एक पिस्तौलधारी गुंडे ने एक अंधेरी गली में पकड़ लिया।
उसके सिर पर पिस्तौल लगा दी और कहा कि दो चीजों में से एक चुन लो--जिंदगी चाहिए कि धन चाहिए? या तो धन मेरे हवाले कर दो और नहीं तो खोपड़ी फोड़ दूंगा गोली से।
मारवाड़ी ने आव देखा न ताव, एक क्षण नहीं सोचा, उसने कहा, मार दो गोली।
धन तो मैंने बुढ़ापे के लिए बचा कर रखा है।
प्रत्येक व्यक्ति अपने हिसाब से सोचता-समझता है। और इसीलिए बुद्धों
के वचन, जिनों के वचन, ऋषियों के वचन तुम्हारे हाथ में पड़ते ही घास-पात हो जाते हैं। गुलाब उड़ जाते हैं, कमल खो जाते हैं, घास-पात हो जाते हैं। उनको ही तुम मान्यताएं कहते हो, विश्वास कहते हो।
मैं विश्वास का पक्षपाती नहीं हूं। मैं तो चाहता हूं कि तुम में श्रद्धा जन्मे। और श्रद्धा विश्वास का पर्यायवाची नहीं है। श्रद्धा का अर्थ होता है--अपने अनुभव से उपलब्ध ज्ञान। मेरे पास तो तुम ध्यान को पकड़ो। ये सारे अवसर इसीलिए हैं। यहां कुछ भी घटेगा, हम सारे अवसरों को तुम्हारे ध्यान के लिए ही उपयोग करने वाले हैं। किसी बच्चे का जन्म होगा तो उसका उपयोग करेंगे। किसी वृद्ध की मृत्यु होगी तो उसका उपयोग करेंगे। किसी युवक-युवती का विवाह होगा, उसका उपयोग करेंगे। यहां तो हर तीर को

परमात्मा की तरफ ही लगा देना है। और तभी तुम पर चोट पर चोट पड़ती रहे, पड़ती रहे, पड़ती रहे, तो शायद एक दिन तुम जाग सको। जागना बहुत कठिन है, क्योंकि नींद बहुत पुरानी और बहुत लंबी है।

तीसरा प्रश्नः ओशो! देश की स्थिति रोज-रोज बिगड़ती जाती है। आप इस संबंध में कुछ क्यों नहीं कहते हैं?

रामतीर्थ! मैं चिंता करता हूं तुम्हारी स्थिति की। देश तो पहले भी था, तुम न थे। देश पीछे भी रहेगा, तुम न रहोगे। तुम्हारी सुधर जाए, उसके लिए बोल रहा हूं। और तुम्हारी सुधर जाए तो देश की सुधरने का भी रास्ता बनता है। और कोई रास्ता नहीं है।
देश है क्या? व्यक्तियों का समूह। समाज है क्या? व्यक्तियों का जोड़। तुम्हें कभी समाज मिला? कि चले जा रहे थे रास्ते पर, समाज मिल गया और कहा कि जयरामजी! कि कहीं जा रहे थे और देश मिल गया और तुमने कहा कि आइए, विराजिए, देख कर बड़ी खुशी हुई! न देश कहीं मिलता है, न समाज कहीं मिलता है; जब भी कहीं कोई मिलता है तो व्यक्ति मिलता है। व्यक्ति ही सच है। देश और समाज तो केवल शब्द हैं। लेकिन शब्दों से हम बड़े सम्मोहित हो जाते हैं। देश की स्थिति खराब होती जा रही है! अब देश की स्थिति सुधारो। और अगर देश केवल शब्द है तो तुम कैसे स्थिति सुधारोगे? समस्या को तुमने गलत ढंग से शुरू कर दिया। अब समाधान कभी नहीं होगा। व्यक्ति को सुधारो। व्यक्ति की स्थिति न बिगड़े, यह ध्यान रखना जरूरी है। व्यक्ति जागे, व्यक्ति सजग हो, व्यक्ति ज्यादा होशपूर्वक जीए। ये सारी समस्याएं जो तुम्हें दिखाई पड़ती हैं, व्यक्तियों की पैदा की हुई हैं। और व्यक्ति बिल्कुल गहरी नींद में सोया है, खर्राटे ले रहा है। और कभी-कभी नींद उसकी थोड़ी-बहुत खुलती भी है तो वह यही सोच कर कि देश की हालत बड़ी खराब है, फिर करवट लेकर सो जाता है।
वे बोले--
"जहां तक नजर जाती है
बत्तीस बरस का
एक अपंग बच्चा नजर आता है
जो अपने लुंज हाथों को उठाने की
कोशिश करता हुआ
चीख रहा है--
मुझे दलदल से निकालो
मैं प्रजातंत्र हूं, मुझे बचा लो। जनता को नारे
और कामवाले हाथों को
झंडे थमा देने वाले
वक्त के ये सौदागर
बड़े ऊंचे खिलाड़ी हैं
जो अपना भूगोल ढांकने के लिए राजनीति लपेट लेते हैं
और रहा कॉमर्स
सो उसे, उनके भाई-भतीजे
और दामाद समेट लेते हैं।"

हमने कहा--
"नेताओं के अलावा आपके पास कोई विषय नहीं है?"

वे बोले--
"क्यों नहीं
बूढ़ा बाप है
बीमार मां है
उदास बीबी है

जहां मन आया थूक दिया
जब भी मौका मिला
देश को
चुनाव के चूल्हे में झोंक दिया।"

हमने पूछा--
"तो क्या चुनाव होगा?"

वे बोले--
"राजनीति के चरण भारी थे
कुछ न कुछ तो होता
यह प्रकृति का खेल है
राम जाने
आने वाला मेल है या फीमेल है।"

देश की चिंता करने वाले बहुत लोग हैं--मेल भी, फीमेल भी! यहां तुम देश
की चिंता न लाओ। मुझे तो व्यक्ति को सुलझाने दो। मूल क्रांति व्यक्ति में होती है। और चूंकि हम व्यक्ति की चिंता नहीं करते, देश की चिंता करते हैं, कुछ हल नहीं होता; बात और बिगड़ती जाती है। बात और नीचे से नीचे गिरती जाती है।

चौराहे पर पान की पीक थूकते हुए
एक ने कहा--
"इंदिरा को संजय खा गया
कांति के कारनामों से
मोरारजी को पसीना आ गया।"

दूसरा बोला--
"सुरेश, जगजीवन को नचा रहा है।"

तीसरा बोला--
"जहां पुत्र नहीं है
वहां दामाद यह रोल निभा रहा है।"

उनकी चर्चा सुन कर
एक बीच की कौम के आदमी ने
मुंह खोला
और ताली बजा कर बोला--
"इस बार मध्यावधि चुनाव में
हमें सफल बनाइए
हमारे दल का प्रधानमंत्री बनाइए
हमारे यहां इस किस्म की कोई प्रॉब्लम नहीं है।
हमारी अपील पर गौर कीजिए
बत्तीस साल से ये लोग आपको बेवकूफ बना रहे हैं
इस बार हमें मौका दीजिए।"

बस ये बेवकूफ बनाने वालों का सिलसिला है एक। एक से छूटे, दूसरा बनाएगा; दूसरे से छूटे, तीसरा बनाएगा। वही के वही लोग हैं--टोपियां बदल लेते हैं, झंडे बदल लेते हैं--वही के वही लोग हैं! राजनीति धंधा है--सबसे घातक धंधा! जैसे डाकुओं ने समर्पण कर दिया, ऐसे पता नहीं राजनीतिज्ञ कब समर्पण करेंगे! यह सुसंस्कृत डाकागिरी है। यह सुसंस्कृत चोरी है, बेईमानी है। यह होने वाला है।
लेकिन तुम भी अगर राजनीति की भाषा में सोचो, रामतीर्थ, तो गलती हो जाएगी। संन्यासी होकर अब राजनीति की भाषा में नहीं सोचना है; अब धर्म की

भाषा में सोचो। राजनीति करने वाले बहुत हैं, उन्हें करने दो; देश को सुधारने वाले बहुत हैं, उन्हें सुधारने दो। आखिर उनको भी तो कोई काम चाहिए। ऐसे भी बेकाम बहुत हैं, बेरोजगार बहुत हैं; इनकी रोजी भी तुम छीन लेना चाहते हो! इनको इनकी रोजी चलाने दो, इनको इनका काम करने दो। हम कुछ और करें, हम कुछ करने योग्य करें। हम थोड़े से व्यक्तियों को प्रज्वलित दीये बनाएं! हम थोड़े से व्यक्तियों के जीवन में रोशनी लाएं! और एक दीया जल जाए तो एक दीये से लाखों दीये जल सकते हैं। और जले दीये की ज्योति कम नहीं होती, लाखों दीये जल जाएं, इससे। ज्योति को कितना ही बांटो, चुकती नहीं। ज्योति का खजाना अपार है, अकूत है।
मेरे पास बैठ कर तो तुम अपनी चिंता लो--तुम्हारी दशा क्या है? और मैं तुम्हारी दशा को बदलने में जरूर उत्सुक हूं। तुम्हारी दुर्दशा देखो। मगर हम बड़े होशियार हैं, हम चारों तरफ की दुर्दशा देखते हैं, अपनी दुर्दशा न देख पाएं इससे बचने के लिए। लोग सुबह-सुबह अखबार पढ़ते हैंः यहां चोरी हो गई, वहां डाका पड़ गया। वहां का राजनेता धोखा दे गया, बेईमानी कर गया; यहां का राजनेता रिश्वत खा गया। और अखबार पढ़-पढ़ कर उनको बड़ा मजा आता है। मजा क्या है? मजा एक बात का है कि इनसे तो हम ही भले। अरे, चोरी हम भी करते हैं, मगर छोटी-मोटी; बेईमानी हम भी करते हैं, मगर इन बेईमानों के मुकाबले हमारी बेईमानी क्या है! तुम्हें अच्छा लगता है अखबार पढ़ कर, क्योंकि अखबार की तुलना में तुम भलेमानुष मालूम होते हो। अखबार पढ़ने का मजा यही है। अखबार की काली लकीर देख कर तुम शुभ्र मालूम होने लगते हो-- तुलना में। अच्छा लगता है मन को कि इससे तो हम ही बेहतर। और भी एक सुविधा मिल जाती है कि जब देश की हालत खराब ही है और सभी लोग बेईमानी कर रहे हैं, तो थोड़ी-बहुत तो हमें भी करनी ही पड़ेगी, नहीं तो जीएंगे कैसे? थोड़ी-बहुत तो स्वीकार करनी ही पड़ेगी, नहीं तो जीना असंभव हो जाएगा। ऐसे मन को सांत्वना देते हो।
और अंधों की भीड़ देख कर तुम्हें लगता है कि अंधा होना आकस्मिक नहीं है, स्वाभाविक है। इसलिए लोग एक-दूसरे की निंदा की बातों में रस लेते हैं। लोग मिलते हैं तो निंदा ही करते हैं। निंदा में रस है। पता नहीं जिन्होंने पुराने दिनों में रसों का वर्णन किया, उसमें निंदा को क्यों नहीं जोड़ा? क्योंकि जितना रस निंदा में है उतना तो किसी और चीज में लोगों को नहीं है। लोग बढ़ा-चढ़ा कर निंदा करते हैं। कारण? जितनी निंदा का पहाड़ खड़ा कर लेते हैं उतना ही भीतर अच्छा लगता है कि हम कितने ही बुरे हों, इतने बुरे नहीं। अभी हम में आदमी जिंदा है। अभी हमारी आत्मा श्वास ले रही है। अभी हमें परमात्मा का कभी-कभी स्मरण आता है।
ऐसे अपने को धोखा मत दो, रामतीर्थ। छोड़ो फिक्र औरों की, वे जानें, उनका काम जाने। तुम अपनी फिक्र कर लो। तुम बदलना चाहो तो भी न बदल सकोगे सभी को। यह भी अहंकार ही है कि हम सभी को बदल लेंगे। यह अहंकार अब तक सफल नहीं हुआ, किसी का सफल नहीं हुआ, किसी का सफल होने वाला नहीं है। इतना ही काफी है कि तुम अपने को बदल लो। और जिसने अपने को बदला उसने दूसरों को बदलने के लिए राह सुझाई। वह मील का एक पत्थर बना। वह एक मशाल बना। उसकी जलती ज्योति देख कर दूर-दूर से लोग चले आएंगे--खोजते लोग चले आएंगे। जिन्हें प्यास है वे सरोवर खोज लेते हैं। जिन्हें रोशनी की प्यास है वे जलते हुए किसी बुद्धत्व को खोज लेते हैं।
मैं यहां देश की स्थिति पर विचार करने को नहीं बैठा हूं। हां, तुम्हारे ऊपर जितना विचार हो सके थोड़ा है।
तुम कहते होः "देश की स्थिति रोज-रोज बिगड़ती जाती है। आप इस संबंध में कुछ क्यों नहीं कहते हैं?"
कहने से क्या होगा? मैं कुछ कर रहा हूं, कहने से क्या होगा? हालांकि मेरा करना सूक्ष्म है, क्योंकि मेरा करना आत्मिक है।
कहीं अकाल पड़ जाए तो लोग मेरे पास आते हैं; वे कहते हैं, आप कुछ करते क्यों नहीं?
मैं कहता हूंः अकाल पड़ते रहे, तुम सदा करते रहे। अकाल फिर भी पड़ते रहेंगे, तुम करते ही रहना।
कहीं बाढ़ आ जाए तो लोग कहते हैं, आप कुछ करते क्यों नहीं?

मैं किसी और बड़े अकाल को देख रहा हूं जिसमें आत्मा मरी जा रही है। मैं किसी और बड़ी बाढ़ को देख रहा हूं जिसमें प्राण डूबे जा रहे हैं। मैं किसी एक बहुत बड़ी भयंकर दुर्घटना को देख रहा हूं जो रोज करीब आती जा रही है। और अगर आदमी को नहीं जगाया जा सका तो यह पृथ्वी ज्यादा दिन आबाद नहीं रहेगी। आदमी के दिन इने-गिने हैं, अंगुलियों पर गिने जा सकते हैं।
ये आने वाले बीस साल, इस सदी के अंतिम साल, मनुष्यता का अंत बन सकते हैं, अगर आदमी जागा नहीं। अगर हम दुनिया में कुछ बुद्ध, कुछ महावीर, कुछ जीसस, कुछ मोहम्मद पैदा न कर सके तो यह आदमी गया। इसलिए देश, राजनीति, समाजशास्त्र, अर्थ--इस सब में मेरी चिंता नहीं है। ये सब गौण हैं। जैसे किसी के घर में आग लगी हो, उस समय तुम नहीं कहोगे उससे कि भई चलो, बैठ कर कुछ राजनीति की बात करें। वह एक झापड़ रसीद करेगा। वह कहेगा, मेरे घर में आग लगी है, तुम्हें राजनीति की पड़ी है! अभी आग बुझाने दो। ये फुर्सत के समय की बातें हैं जब कुछ काम-धाम न हो। जैसे लोग ताश खेलते हैं, चौपड़ बिछाते हैं बरसात के दिनों में, वैसे राजनीति की बात भी कर लेंगे। अभी घर में आग लगी है।
मैं देखता हूं कि आदमी के घर में आग लगी है। आदमी के प्राण धू-धू कर जल रहे हैं। आदमी की परम संपदा नष्ट हो रही है। छोटी-मोटी बातों में मेरी उत्सुकता नहीं है। जो बाढ़ में डूब गए हैं वे जल्दी ही पुनर्जन्म ले लेंगे, उनकी कोई बहुत फिक्र न करो। न मालूम कितने मूढ़जन दुनिया में उनको जन्म देने के लिए तत्पर बैठे हैं।
मेरी चिंता तो सिर्फ एक है--तुम कैसे आत्मवान बनो! तुम्हारी आत्मा को कैसे धार दी जा सके, कैसे निखार दिया जा सके, कैसे स्वच्छता दी जा सके! और उसी माध्यम से एक क्रांति समाज में भी हो सकती है। मगर समाज की क्रांति परोक्ष होगी। प्रत्यक्ष क्रांति तो व्यक्ति की क्रांति है।

अंतिम प्रश्नः ओशो! मैं विवाह करूं या नहीं? और स्वयं की पसंदगी से करूं या कि घरवालों की इच्छा से?

राकेश! मेरी सलाह हैः घरवालों की इच्छा से करो। तुम पूछोगे, क्यों? मेरा उत्तर हैः उससे तुम्हें जिंदगी भर एक राहत रहेगी कि भूल मैंने खुद नहीं की, दूसरे करवा गए, उत्तरदायित्व मेरा नहीं है। अपने बाप को, अपनी मां को गाली देने की सुविधा रहेगी कि खुद तो चले गए, मुझे फंसा गए।
खुद चुनोगे तो बड़ी मुश्किल होगी। दोष किसको दोगे? फिर अपना ही सिर पीटना पड़ेगा। इसलिए मेरी तो सलाह है कि घरवालों की मान कर कर लेना। इससे सब पाप उनको लगेगा। और तुम्हें एक आनंद रहेगा सदा कि खुद तो भूल नहीं की, कम से कम खुद तो भूल नहीं की!
मुल्ला नसरुद्दीन से कोई पूछ रहा था कि तलाक बढ़ता जा रहा है, इसका क्या कारण है?
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, तलाक चाहे पश्चिमी देशों में दिया जाए अथवा भारत में, उसकी वजह सिर्फ एक होती है।
उस आदमी ने पूछा, वह क्या?
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, शादी।
कुछ लोग तलाक दे ही देते हैं; कुछ लोग तलाक देते नहीं, मगर तलाक की अवस्था में जिंदगी भर रहते हैं। दो सोए हुए व्यक्तियों का साथ उपद्रव का ही होने वाला है। ऐसा मत सोचना कि मैं यह कह रहा हूं कि तुम्हारी पत्नी का ही कसूर है। पत्नी भी क्या करे? तुम जैसा पति पाकर जो कर सकती है वही करेगी!
तुम्हारे ऋषि-मुनि तुम्हें झूठ बात कह गए हैं कि स्त्री नरक का द्वार है। वह पुरुष की अहमन्यता है, पुरुष का अहंकार है, थोथापन है। इसमें स्त्री और पुरुष का सवाल नहीं है।
दो सोए हुए आदमी साथ रहेंगे तो उपद्रव होने वाला है। और दुगुना नहीं होगा, गुणनफल हो जाता है। तुम दुखी, तुम्हारी पत्नी दुखी थी, दोनों ने सोचा कि साथ जुड़ जाएंगे तो सुख होगा। दो दुखी आदमी मिलेंगे तो सुख कैसे हो जाएगा? दो बीमारियां मिलेंगी तो स्वास्थ्य हो जाएगा? तुम्हारी पत्नी

अकेली थी, तुम अकेले थे, सोचा कि दोनों मिल जाएंगे तो अकेलापन मिट जाएगा। मैं तुमसे कहता हूंः दोनों मिल जाएंगे, अकेलापन दुगुना--और दुगुना ही नहीं, कई गुना हो जाएगा।
पहले तुम अपने अकेलेपन को ज्योतिर्मय करो। ध्यान के बाद अगर विवाह हो
तो विवाह में भी एक अर्थ है, एक गरिमा है। इस देश में हमने जो व्यवस्था की थी, वह यह थी कि पच्चीस वर्ष की उम्र तक ब्रह्मचर्य। वह समझदारों की व्यवस्था रही होगी। ब्रह्मचर्य का अर्थ होता हैः ब्रह्म जैसी चर्या। और ब्रह्म जैसी चर्या सिवाय ध्यान के और किसी तरह नहीं होती। पच्चीस वर्ष तक युवक गुरुकुल में रह कर ध्यान कर रहे थे, समाधि का अनुभव ले रहे थे। और जब ध्यान का अनुभव उनका परिपक्व हो जाता था, तब गुरु कहता थाः अब संसार में जाओ। अब तुम योग्य हो! संसार में रहोगे, लेकिन संसार तुममें प्रवेश नहीं कर सकेगा।
तो राकेश, मैं तो कहूंगाः पहले ध्यान! फिर देखेंगे, ये बातें तो बाद में सोची जा सकती हैं। अगर ध्यान करने के बाद लगे कि विवाह करना है, जरूर करना। मैं विवाह-विरोधी नहीं हूं। और ध्यान करने के बाद लगे कि बात खत्म हो गई, अब करने जैसा कुछ बचा नहीं विवाह में, तो मत करना। मैं कोई ब्रह्मचर्य-विरोधी नहीं हूं। मैं तो तुम्हारे ध्यान से निर्णय आना चाहिए, बस इतना चाहता हूं। उसके पहले तुम कैसे भी करो, अड़चन में पड़ोगे। अड़चनें ही अड़चनें हैं। तुमसे कुछ कहानियां कहता हूं, ताकि अड़चनों का तुम्हें ख्याल आ जाए।
एक बार नसरुद्दीन को किसी व्यक्ति ने धमकी दी कि नसरुद्दीन, पंद्रह दिन के अंदर पचास हजार रुपये लाल पहाड़ी पर ले जाकर रख देना, अन्यथा तुम्हारी पत्नी का अपहरण कर लिया जाएगा।
पंद्रह दिन बाद मुल्ला लाल पहाड़ी पर पहुंचा और उसने एक छोटी सी पर्ची वहां पर रख दीः महोदय, मैं क्षमा चाहता हूं कि मैं आपकी मांग पूरी नहीं कर सकता। लेकिन मुझे परिपूर्ण आशा है कि आप अपना वायदा अवश्य पूरा करेंगे। पहले लोग बंधने को आतुर, फिर छूटने को आतुर। अकेले भी परेशान थे, विवाहित होकर भी परेशान हैं--और ज्यादा परेशान हैं! क्योंकि अब दूसरे की परेशानियां भी सिर पर आ पड़ी हैं।
एक आदमी ने स्वर्ग के द्वार पर दस्तक दी। द्वारपाल ने खिड़की खोल कर झांका और पूछा, क्या नाम?
उसने कहा, चंदूलाल।
द्वारपाल ने पूछा, विवाहित, अविवाहित?
उसने कहा, विवाहित।
द्वारपाल ने झट से दरवाजा खोल दिया। उसने कहा, तुम नरक काफी भोग चुके,
अब स्वर्ग में आ जाओ।
उसी के पीछे एक दूसरे आदमी ने दस्तक दी। फिर खिड़की खुली। पूछा, कौन?
कहा, ढब्बूजी।
विवाहित, अविवाहित?
ढब्बूजी ने कहा, चार बार विवाहित।
द्वारपाल ने खिड़की बंद करते हुए कहा कि नरक जाओ, यहां पागलों के लिए स्थान नहीं।
एक बार क्षमा किया जा सकता है, क्योंकि बिना भूल किए आदमी जानेगा भी कैसे कि यह भूल है।
इसलिए राकेश, एक बार तो भूल करना, उससे स्वर्ग का दरवाजा बंद नहीं होगा। मगर भूल पर भूल मत किए चले जाना, क्योंकि स्वर्ग पागलों के लिए नहीं खुला है। एक बार तो भूल स्वाभाविक है। नई-नई भूल करो, क्योंकि सीखने का और कोई उपाय नहीं है। मगर उन्हीं-उन्हीं भूलों को बार-बार मत करना।
मुल्ला नसरुद्दीन की शादी को तीस वर्ष हो गए हैं। और उसकी पत्नी ने सुबह उठ कर कहा कि मुल्ला, याद है आज तीस वर्ष पूरे होते हैं! आज हमारे विवाह की वर्षगांठ है। कैसे मनाएं? क्या इरादा है तुम्हारा? क्या यह अच्छा न होगा कि जो मुर्गा हम छह माह से पाल रहे हैं, आज उसे काट लिया जाए? नसरुद्दीन ने कहा, तीस साल पहले हुई दुर्घटना के लिए मुर्गे को दंड देना कहां तक उचित है? फिर मुर्गे का उसमें कोई हाथ भी नहीं था।

तुम मुझसे पूछ कर मुझे भी फंसा रहे हो। फिर जिंदगी भर मुझे गाली दोगे
कि मैंने कहा था। इसलिए भैया, न मैं हां कहता, न ना।
एक आदमी अपने विवाह की पच्चीसवीं वर्षगांठ मना रहा था। मित्र इकट्ठे थे, भोज दिया था, सारे गांव के प्रतिष्ठित लोग थे, संगीत चल रहा था, नृत्य चल रहा था, शराब ढाली जा रही थी। तभी लोगों ने देखा कि वह खुद नदारद है। उसका एक निकटतम मित्र, नगर का सबसे प्रतिष्ठित वकील, उसे खोजने बगीचे में गया बाहर कि शायद बाहर चला गया हो। चांदनी रात है, पूरे चांद की रात है और वह उदास एक झाड़ के नीचे बैठा है।
उस वकील ने उसके कंधे पर हाथ रखा और कहा, मेरे भाई, सब लोग इतने प्रसन्न हैं, पच्चीसवीं वर्षगांठ विवाह की मनाई जा रही है। तुम इतने दुखी क्यों बैठे हो?
उसने कहा, तुम्हारे ही कारण! विवाह के तीन महीने बाद मैं तुम्हारे पास गया था, याद है? और मैंने कहा था, अगर मैं इस अपनी पत्नी को गोली मार दूं तो मुझे कितनी सजा होगी? तुमने कहा था, पच्चीस साल कम से कम। उसी डर के कारण मैंने गोली नहीं मारी। और आज चित्त दुखी हो रहा है कि अगर मार दी होती तो आज पच्चीस साल पूरे हो गए, आज मैं स्वतंत्र आदमी होता। तुमने ही मुझे डराया।
तो मैं नहीं कह सकता हां, मैं नहीं कह सकता ना। इतना ही कह सकता हूं कि पहले ध्यान। तुम चाहे विवाह की पूछो, चाहे जन्म की, चाहे मृत्यु की। मेरे पास तो इलाज एक हैः ध्यान। रामबाण औषधि! पहले ध्यान करो, राकेश। फिर ध्यान से जो हो, शुभ है। और ध्यान से जो न हो, अशुभ है।
आज इतना ही।

काहे होत अधीर
ग्यारहवां प्रवचन

मन बनिया बान न छोड़ै

मन बनिया बान न छोड़ै।।
पूरा बांट तरे खिसकावै, घटिया को टकटोलै।
पसंगा मांहै करि चतुराई, पूरा कबहुं न तौले।।
घर में वाके कुमति बनियाइन, सबहिन को झकझोलै।
लड़िका वाका महाहरामी, इमरित में विष घोलै।।
पांचतत्त का जामा पहिरे, ऐंठा-गुइंठा डोलै।
जनम-जनम का है अपराधी, कबहूं सांच न बोलै।।
जल में बनिया थल में बनिया, घट-घट बनिया बोलै।
पलटू के गुरु समरथ साईं, कपट गांठि जो खोलै।।

जहां कुमति कै बासा है, सुख सपनेहुं नाहीं।।
फोरि देति घर मोर तोर करि, देखै आपु तमासा है।।
कलह काल दिन रात लगावै, करै जगत उपहासा है।।
निर्धन करै खाए बिनु मारै, अछत अन्न उपवासा है।।
पलटूदास कुमति है भोंड़ी, लोक परलोक दोउ नासा है।।

है कोई सखिया सयानी, चलै पनिघटवा पानी।
सतगुरु घाट गहिर बड़ा सागर, मारग है मोरी जानी।।
लेजुरी सुरति सबदि कै घैलन, भरहु तजहु कुलकानी।।
निहुरिके भरै घैल नहिं फूटै, सो धन प्रेम-दिवानी।।
चांद सुरुज दोउ अंचल सोहैं, बेसर लट अरुझानी।।
चाल चलै जस मैगर हाथी, आठ पहर मस्तानी।।
पलटूदास झमकि भरि आनी, लोकलाज न मानी।।

मन बनिया बान न छोड़ै।
पलटू ने बार-बार मन को बनिया कहा है और कहा है कि मन का यह बनिया अपनी आदत नहीं छोड़ता। क्यों मन को बनिया कहा है?
मन जीता है हिसाब-किताब में। मन जीता है गणित में, तर्क में। मन जीता
है अपनी होशियारी में, चतुराई में। और मन को पता ही नहीं कि एक और भी बुद्धिमत्ता है जो मन के पार है। मन अपने सब हिसाब बिठाता है, लेकिन उसके सब हिसाब अंततः गलत हो जाते हैं। उसके सब गणित गिर जाते हैं। धन के पीछे दौड़ता है, निर्धन मरता है। पद के पीछे दौड़ता है, पद यहीं रह जाते हैं। मृत्यु के पार उन्हें साथ नहीं ले जाया जा सकता। प्रतिष्ठा का दीवाना है। अहंकार की मदिरा पीए है।
और सब धूल-धूसरित हो जाना है। देह मिट्टी में मिल जाएगी। जिस सिर को अकड़ा कर चले थे बहुत, उसका पता भी न चलेगा, कहां खाद बन जाएगी! लोगों के पैरों के नीचे दबेगी वह धूल, जो आज तुम्हारा सिर बनी है।
लेकिन मन इन्हीं सब दौड़ों में संलग्न रहता है और असली धन से वंचित रह जाता है। ऐसे धन इकट्ठा कर लेता है, तिजोरियां भर लेता है और आत्मा खाली रह जाती है। और वहीं है वास्तविक धन।
इसलिए बनिया ऊपर से तो बहुत होशियार दिखता है; भीतर बहुत नासमझ। ठीक
ही मन को बनिया कहा है। पलटूदास संन्यस्त होने के पहले स्वयं भी बनिया थे, इसलिए बनिया की भाव-दशा को समझते हैं। संत वही भाषा बोलते हैं जिस भाषा को उन्होंने संसार में सीखा है। कबीर ऐसे बोलते हैं जैसे जुलाहा बोलेगा। स्वाभाविक। जुलाहे की भाषा होगीः झीनी-झीनी बीनी रे चदरिया! यह बुद्ध नहीं कह सकते; कभी चादर बुनी ही नहीं। मन बनिया बान न छोड़ै! यह भी बुद्ध नहीं कह सकते, महावीर नहीं कह सकते। बनिए के मन से परिचय ही नहीं है। यह पलटूदास ही कह सकते हैं; कबीर नहीं कह सकते, नानक नहीं कह सकते।

नानक युवा हुए तो माता-पिता चिंतित थे कि वे दिन-रात राम की धुन में लीन, साधु-संग में लगे। पिता ने बहुत समझाया कि एक उम्र होती है साधु- सत्संग की। अभी मैं भी साधु-सत्संग में नहीं पड़ा हूं--पिता ने कहा--और तू पड़ गया! यह कोई वक्त है? अभी जवान है। अभी जिंदगी के मजे ले। अभी जिंदगी की प्रतिष्ठा, सफलता अभियान पर निकल। कुछ धंधा कर, कुछ कमा। ऐसे समय मत गंवा। पिता ने कहा तो नानक ने कहा, ठीक है, तो कुछ कमाऊंगा।
पिता खुश हुए। बहुत से रुपये देकर भेजा कि पास के बड़े नगर से कंबल खरीद ला; सर्दी के दिन आ रहे हैं, अच्छी बिक्री हो जाएगी। और तेरे लिए कमाई का पहला पाठ हो जाएगा।
नानक रुपये लेकर गए और सात दिन बाद जब वापस आए तो उनकी मस्ती देखने लायक थी, जैसे रुपये दस गुने हो गए हों! आए खाली हाथ, रुपये तो थे ही नहीं, कंबल भी नहीं लाए थे! पूछा पिता ने, क्या हुआ? खुश तो ऐसे नजर आते हो जैसे बहुत कमाई कर ली! क्या कमा कर लाए?
नानक ने कहा, आपकी कृपा से, आपके आशीष से खूब कमाई हुई। कंबल लेकर आ रहा था, रास्ते में साधुओं की एक जमात मिल गई। सर्दी आ गई है। साधु बिना कंबलों के थे। बांट दिए कंबल। दिन दो दिन खूब सत्संग भी चला और चित्त प्रसन्न हुआ। उन सबको कंबलों में सर्दी से बचते हुए देख कर ऐसा आनंद हुआ जैसा कभी न हुआ था। कमा कर आ रहा हूं, आनंद कमा कर आ रहा हूं, उत्सव कमा कर आ रहा हूं।
बाप ने सिर पीट लिया। बाप का गणित बनिए का था। बेटे का गणित कुछ और था। बाप ने कमाई से कुछ और चाहा था, बेटा कमाई से कुछ और समझा था। बाप बाहर की कमाई की बात कर रहा था, बेटा भीतर की कमाई करके लौटा था। बाप भीतर की कमाई देखने में असमर्थ था, अंधा था; अन्यथा उसी दिन नानक को पहचान जाता। वह मस्ती पारलौकिक थी। वे आंखें किसी और ही लोक के प्रकाश से ज्योतिर्मय थीं। वह हृदय किसी अदभुत संगीत से भरा था। लेकिन बाप सोचता था कि हजार रुपये दिए थे, दस हजार होने चाहिए। वह रुपये गिन रहा था। हजार भी हाथ से गए! उसे भारी हानि हो गई थी। बेटा कुछ और गिन रहा था। बाप मन में अटका था, बेटा आत्मा में उतर गया था।
ऐसे बहुत प्रयास किए, सब व्यर्थ गए। फिर आखिर सोचा--दुकानदारी इससे न
हो सकेगी, नौकरी लगा देनी चाहिए। गांव के ही सूबेदार के यहां नौकरी लगा दी। सूबेदार को भी नानक के बाप ने कहा, ध्यान रखना इसका। कोई बहुत जिम्मेवारी का काम देकर मत भेज देना। और रुपये तो इसके हाथ में देना ही मत, नहीं तो यह कुछ कमा कर आ जाएगा जो हमारे लिए तो गंवाना है और यह समझता है कमाना है। हमारा-इसका गणित बैठता नहीं। तो मैं आपको पहले सावधान कर दूं, नहीं तो पीछे मैं झंझट में पडूंगा कि कहां का बेटा हमें लाकर दे दिया! स्वस्थ था, सुंदर था, प्रतिभाशाली था; सूबेदार ने रख लिया। उसने काम
भी ऐसा दिया कि जिसमें कुछ गंवाने का सवाल ही नहीं था। उसके सिपाही थे बहुत, उनको रोज भोजन के लिए गेहूं, चावल, दाल तौल कर देने पड़ते थे। सूबेदार ने नानक को कहा कि तू यही काम कर। बस इनको तौल कर दे दिए। ये जो पर्ची लाएं कि किसको कितना पसेरी चावल चाहिए, किसको कितना पसेरी गेहूं चाहिए, उतना तौल कर दे देना और इनकी चिट्ठियां रखते जाना। तुझे चिंता भी नहीं कोई; न कम देना है, न ज्यादा; न पैसा लेना है।
नानक ने काम शुरू कर दिया, लेकिन दूसरे ही दिन गड़बड़ हो गई। एक दिन भी कैसे ठीक चल गया, यह भी आश्चर्य है। पहले दिन तो ठीक चला। पिता भी खुश थे जब नानक घर लौटे, कुछ गड़बड़ न हुई थी। सूबेदार ने भी खबर भेजीः निश्चिंत रहो, बेटा होशियार है। और ठीक से काम किया। व्यवस्थित काम किया। पर दूसरे दिन ही सब गड़बड़ हो गया। तौलते थे। पहले दिन गड़बड़ नहीं हुई, उसका कारण केवल इतना था कि किसी को केवल पांच पसेरी चाहिए था, किसी को छह पसेरी, किसी को सात पसेरी, किसी को दस पसेरी। दूसरे दिन सिपाहियों की एक टुकड़ी को बीस पसेरी चावल चाहिए था। बस वहीं गड़बड़ हो गई। नानक ने तौला। हिंदी में तो शब्द तेरह है, पंजाबी में शब्द है तेरा। बस वह "तेरा" में उपद्रव हो गया। आठ, नौ, दस, ग्यारह, बारह तक सब ठीक रहा और जब तेरा आया, बस ईश्वर की याद आ गई, उसकी याद आ गई। "तेरा" शब्द और बस नानक ने सुध-बुध खो दी। लोगों के हिसाब से सुध-बुध खो दी, अपने हिसाब से तो सुध-बुध पा ली। बस फिर पसेरी पर पसेरी भरते गए। और

"तेरा" से आगे तो कुछ है ही नहीं संख्या। "तेरा" आ गया तो अब इसके आगे और क्या! चौदह आया ही नहीं। सिपाही भी चौंके, वे तौले ही जाते हैं--और "तेरा!" सुबह से सांझ हो गई, भीड़ लग गई। अंततः सूबेदार को खबर पहुंची कि वह तुम्हारा सारा भंडार लुटाए दे रहा है और तेरा पर अटका है। कहां के आदमी को रखा है! मालूम होता है उसे इससे ज्यादा संख्या नहीं आती, चौदह नहीं आता उसे, पंद्रह नहीं आता उसे। कल तो सब ठीक चला, क्योंकि तेरह के नीचे की संख्याएं थीं, आज सब गड़बड़ हो गई।
लोग यही समझे कि इसे गणित नहीं आता। इसे कोई और गणित आता था। इसे पारलौकिक गणित आता था। इसे तो "तेरा" शब्द ने ही रूपांतरित कर दिया। इसकी तो भाव-दशा बदल गई। यह तो एक मस्ती से भर गया। और हर बार कहे "तेरा" और हर बार डाले अनाज और हर बार उसकी मस्ती बढ़ती जाए। सांझ जब सूबेदार आया, वह "तेरा" का काम चल रहा था, सारा गांव इकट्ठा हो गया था। किसी की हिम्मत भी न पड़ रही थी कि नानक को रोके। उन क्षणों में नानक की आभा ऐसी मालूम हो रही थी, बल ऐसा मालूम हो रहा था। न कोई थकान थी, दिन भर तौलते रहे--एक अपूर्व ऊर्जा थी, एक अदभुत नृत्य था! सूबेदार भी खड़ा रह गया। यह "तेरा" की धुन प्रार्थना बन गई थी। यह मंत्र था। यह मंत्र किसी शास्त्र से उधार नहीं लिया था, यह आविष्कृत हुआ था। यह अपना था, यह अपने प्राणों से आया था।
सूबेदार चरणों में गिर पड़ा। उसने कहा कि मैं देख सकता हूं। मैं कोई बनिया नहीं हूं। तेरा पिता नहीं देख सकेगा। मैं क्षत्रिय हूं। मैं देख सकता हूं, क्या तुझे घट रहा है! लेकिन हमारे काम का तू नहीं है, तू उसके ही काम का है, तू उसके ही काम में लग! मैं तेरे पैर छूता हूं, क्योंकि जो आज मैंने तुझमें देखा है, किसी में कभी नहीं देखा। जो ज्योति आज तुझमें झलकी है, वह मैंने कभी किसी में नहीं देखी। बड़े फकीर देखे, बड़े संत-महात्मा देखे, मगर सब उधार। तू नगद है। और तेरा यह स्वर, "तेरा" की तेरी यह पुकार, इससे बड़ा कोई महामंत्र नहीं हो सकता। पर हमारे किसी काम न आएगा, हम तो बरबाद हो जाएंगे। ऐसे तूने अगर तौला तो हम तो कहीं के न रहेंगे; हमें इस दुनिया में रहना है।
लेकिन सूबेदार समझा जरूर। एक बात समझ गया कि हमारा गणित अलग है, इसका गणित अलग है। मन का एक गणित है, उसको पलटू बनिया कह रहे हैंः मन बनिया बान न छोड़ै।
और यह गणित पुराना है। यह सदियों-सदियों पुराना है। तुम न मालूम कितने जन्मों से इस गणित को मान कर चल रहे हो। यह गणित रच-पच गया है। यह तुम्हारे रोएं-रोएं में समा गया है। तुम इससे अन्यथा सोच ही नहीं सकते। तुम्हारे सोचने की आधारशिला यही है। तुम जब सोचते हो तब धन, पद, प्रतिष्ठा। तुम जब सोचते हो तब अहंकार, मान, अभिमान। ऊपर से चाहे तुम विनम्र ही क्यों न हो जाओ, लेकिन भीतर विनम्रता में भी अहंकार ही छिपा होता है।
सुनी है मैंने एक कहानी--तीन ईसाई फकीर एक रास्ते पर मिले। तीनों अपने-अपने आश्रम की प्रशंसा में लग गए। पहले ने कहा कि और कुछ हो या न हो, लेकिन जैसा त्याग हमारे संन्यासियों का है वैसा किसी का भी नहीं। त्याग में तो हम अप्रतिम हैं। हमारी कोई तुलना ही नहीं है। दूसरे तो बहुत पीछे छूट जाते हैं।
अब यह त्याग त्याग न रहा; अब तो यह त्याग भी अहंकार हो गया।
दूसरे ने कहा, त्याग शायद तुम ठीक कहते हो। मगर त्याग में रखा क्या है? असल सवाल है ज्ञान। जिस तरह का पांडित्य हमारे संन्यासियों में है, शास्त्रों में जैसी उनकी गति है, जैसे मछली सागर में तैरे, प्रयास नहीं करना पड़ता--ऐसे हमारे संन्यासी ज्ञान के सागर में तैरते हैं--अप्रयास, हाथ-पैर भी नहीं चलाने होते। और कुछ भी हो, और कुछ में है भी नहीं सार, ज्ञान में हम गौरीशंकर हैं, हम से ऊंचा कोई नहीं।
अब यह ज्ञान भी अहंकार की ही घोषणा हो गया। त्याग भी! ज्ञान भी! और तीसरे ने तो हद्द कर दी। तीसरे ने कहा कि न हमें त्याग में कुछ रस है, न ज्ञान में। हमारी साधना तो विनम्रता की है। और विनम्रता में तुम सब दो कौड़ी के हो। जहां तक विनम्रता का सवाल है, सरलता का सवाल है, हमारी विनम्रता चांद-तारों से ऊपर है। तुम हमारे पैर भी नहीं छू सकते, इस योग्य

भी नहीं हो। रखे रहो अपने शास्त्र और करते रहो तुम्हारा त्याग, विनम्रता में हम सर्वप्रथम हैं!
त्यागी को भी माफ कर दो, ज्ञानी को भी माफ कर दो, मगर विनम्रता वाला भी
कह रहा है कि विनम्रता में हम सर्वप्रथम हैं! हम से आगे कोई नहीं, हम चांद-तारों से ऊपर हैं! तुम हमारे पैर की धूल हो! यह कैसी विनम्रता हुई? मगर यही है।
मन बनिया बान न छोड़ै।
त्यागी हो जाए बनिया, तो भी कुछ फर्क नहीं पड़ता। ज्ञानी हो जाए, तो भी फर्क नहीं पड़ता। निरभिमानी हो जाए, तो भी फर्क नहीं पड़ता। भीतर उसकी बान जारी रहती है। और तब यह मन बनिया तुम्हें नरक की तरफ घसीटता रहता है। इसकी अंतिम परिणति नरक है।
मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन पर्वतारोहण के अभ्यास के लिए एक महीने
की छुट्टी लेकर गया। लौटने पर आफिस के मित्रों ने पूछा, नसरुद्दीन, पर्वतारोहण कैसा रहा? मजा आया?
हां, मजा क्यों नहीं आया--नसरुद्दीन बोला--मैंने एक दिन पहाड़ पर लगभग
दस फीट चढ़ाई की थी।
सिर्फ एक दिन? और वह भी केवल दस फीट! बाकी उनतीस दिन क्या करते रहे?
बाकी उनतीस दिन अस्पताल में रहा।
संसार में तुम हो या कि अस्पताल में? तुम्हारे जीवन का हिसाब-किताब क्या है? तुम्हारी उपलब्धि क्या है? पीड़ा और पीड़ा के अंबार। बहुत-बहुत तरह के दुख, अलग-अलग तरह के दुख, कीमती दुख, सस्ते दुख, महंगे दुख--दुखों का बाजार है और लोग दुख खरीद रहे हैं। और बड़ी मेहनत से खरीद रहे हैं, बड़ा श्रम करते हैं।
मन बनिया की बुनियादी आदत क्या है? दुख पैदा करने की कला उसे आती है। सुख की आशा देता है, और बड़ा होशियार है, सुख के आश्वासन देता है और दुख पकड़ा देता है। और यह बार-बार हुआ। मन ने कभी सुख का आश्वासन पूरा न किया। हर बार सुख का प्रलोभन दिया और हाथ में दुख आया, फिर भी तुम जागते नहीं? बान बड़ी पुरानी है, जगने नहीं देती। आदत ऐसी हो गई है कि आदतवश ही किए चले जाते हो; तय भी कर लेते हो कि अब ऐसा नहीं करेंगे।
जीवन भर क्रोध किया और जीवन भर दुख पाया। और कितनी बार संकल्प नहीं कर लिया कि अब क्रोध नहीं, बहुत हो गया, आखिर हर चीज की सीमा है! और समझ की कभी- कभी बिजली तुममें भी कौंधती है, क्योंकि समझ तुम्हारी आत्मा का स्वभाव है। लाख आदतों में दब जाओ, लेकिन कहीं-कहीं से समझ फूट पड़ती है, उसका झरना टूट पड़ता है। कहीं मौके पाकर समझ बिजली की भांति कौंध जाती है। एक क्षण को सब रोशन हो जाता है, सब साफ दिखाई पड़ने लगता है। उस क्षण में तुमने निर्णय भी कर लिया कि अब क्रोध नहीं। और तुमने सोचा है कि अब सच में ही क्रोध नहीं हो सकेगा। इतना साफ तो दिखाई पड़ गया कि क्रोध करना अपने ही हाथ अपनी गर्दन दबाना है; अपने ही हाथ अपने चारों तरफ आग लगाना है।
बुद्ध ने कहा हैः क्रोध करने से बड़ी मूढ़ता नहीं है। दूसरे के कसूर के लिए अपने को दंड देना, इससे बड़ी और क्या मूढ़ता होगी! किसी ने गाली दी, तुम क्रोधित हो गए। गाली तो उसने दी और क्रोधित तुम हो गए। अंगारे तुमने अपनी छाती में भभका लिए। लपटें तुमने लगा लीं। कसूर उसका, दंड अपने को दे रहे हो! इससे बड़ी मूढ़ता और क्या होगी!
मन की सबसे बड़ी जो कला है, जिसमें वह कुशल है--बड़ा कुशल विक्रेता है मन! मैंने सुना है, एक आदमी घबड़ाया हुआ भागा हुआ अपने मालिक के पास आया और उसने कहा, बड़ी मुश्किल हो गई। उनका धंधा था जमीन लेना, जमीन बेचना। मालिक ने पूछा, क्या गड़बड़ हो गई? वह नया-नया एजेंट था, दलाल था, जो उनका काम करता था। उसने कहा कि हमने वह जो नई जमीन बेची थी, वह दस फीट पानी में डूबी हुई है। और हमने चकमा दिया उस आदमी को। जमीन और दिखाई थी, बेची और। लेकिन आखिर असलियत एक दिन खुलेगी न खुलेगी! अब उसको पक्का पता चल गया है कि यह जमीन मिली है और वह दस फीट पानी में दबी है। तो वह बहुत नाराज है। वह पैसे वापस चाहता है।
मालिक ने कहा कि तू अभी सिक्खड़ है। उसको ला! आया वह आदमी, बड़ा भनभनाता हुआ आया। मालिक ने उसकी भनभनाहट सुनी, उसे प्रेम से बिठाया, पान-सिगरेट,

स्वागत-सत्कार... । और आखिर में जब वह आदमी गया तो एक मोटरबोट भी खरीद कर ले गया। मालिक ने कहा, यूं धंधा किया जाता है। जमीन तो बेची ही बेची, अब दस फीट पानी में डूबी है तो मोटरबोट भी बेच दो। ऐसे घबड़ा कर लौट नहीं आना पड़ता। हर मौके का उपयोग करो।
एक आदमी एक कपड़े की दुकान में गया--रेडीमेड कपड़ों की दुकान। उसे एक जैकेट बहुत पसंद आई। जैकेट पहन कर वह आईने के सामने खड़ा हुआ। जैकेट इतनी चुस्त कि उसके प्राण निकले जा रहे। दुकानदार से उसने कहा कि भई जैकेट है तो देखने में सुंदर, मगर बहुत चुस्त है, मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। दुकानदार ने कहा, घबड़ा मत, यह कोट तो पहन!
उस आदमी ने कहा, कोट पहनने से क्या होगा?
उसने कहा, तू पहले कोट पहन।
कोट और भी चुस्त था। उस आदमी ने कहा, क्या मुझे मार डालोगे?
उस दुकानदार ने कहा, जरा ठहर, यह तू पतलून तो पहन। पतलून ऐसा है चुस्त
कि तू कोट-जैकेट सब भूल जाएगा।
बड़े दुख के सामने छोटा दुख भूल जाता है।
मैंने एक कहानी और सुनी है कि एक आदमी एक प्रसिद्ध दर्जी के मकान से बाहर निकला। उसकी चाल बड़ी अजीब थी। एक हाथ ऊंचा किए हुए था, एक टांग भीतर सिकोड़े हुए था। गर्दन तिरछी थी। यह आदमी अभी जब भीतर गया था तो बिल्कुल ठीक-ठाक था। लोगों ने देखा कि इसको क्या हो गया! उन्होंने पूछा कि भई, क्या हो गया? यह तुम्हारी हालत कैसी? और कपड़े बहुत सुंदर तुमने पहन रखे हैं! उस आदमी ने कहा, इन्हीं कपड़ों की बदौलत। इस दर्जी ने, इस दुष्ट ने कोट पहनाया, उसका एक हाथ छोटा और एक बड़ा था। तो उसने मुझसे कहा कि जो हाथ छोटा है उसको जरा लंबा कर और जो हाथ बड़ा है उसको जरा भीतर खींच ले। इसमें क्या लगता है? तो मैंने उसकी बात मान ली। फिर यही पतलून की हालत हुई। अब अगर इन कपड़ों को पहनना है तो इसी अवस्था में रहना होगा। और कपड़ों पर बहुत खर्च किया। और यह महंगी चीज है, इंपोर्टेड कपड़ा है! और दर्जी ने कहा, अब जो हो गया सो हो गया। अब चीज जैसी बन गई सो निभा लो। अरे संतोष रखो, संतोष बड़ी चीज है! काहे होत अधीर! थोड़े दिन में अभ्यास हो जाएगा इसी तरह जीने का।
मन भी तुम्हें तरह-तरह से तिरछा कर जाता है और आश्वासन देता रहता हैः काहे होत अधीर! समझाता रहता हैः संतोष बड़ी चीज है। यह गर्दन तिरछी है, यह हाथ लंबा है, यह पैर आड़ा है--यह सब ठीक हो जाएगा। यह धीरे-धीरे अभ्यास हो जाएगा, भूल ही जाओगे।
ऐसे ही तो लोग तिरछे हो गए हैं, अपंग हो गए हैं। ऐसे ही तो लोग पक्षाघात से घिर गए हैं। ऐसे ही तो लोगों को लकवा मार गया है। यह लकवा बाहर से नहीं आया है, यह लकवा उनके ही मन की ईजाद है।
तो मन का पहला तो अनिवार्य नियम है कि जो आदत बन गई है, वह उससे भिन्न नहीं जाने देता; वह हमेशा तुम्हें आदत के भीतर बांध कर रखता है। अगर तुम एक जगह से छूटते हो, वह दूसरी जगह से आदत को आरोपित कर देता है।
मन का दूसरा नियम है कि वह तुम्हें सदा भिखारी बनाए रखता है। कितना ही तुम्हारे पास हो, मगर मन कभी यह नहीं अनुभव करने देता कि अब बहुत हुआ, अब कुछ और करें। जीने के कोई और नये आयाम खोजें। बहुत हो गया धन, अब थोड़ा ध्यान में उतरें। बहुत हो गया संसार, अब थोड़े संन्यास में डूबें।
मन पुनरुक्ति करवाए चला जाता है और भिखारी बनाए रखता है। मन कहता हैः थोड़ा और! थोड़ा और! मन जीता है और में। और मन का भोजन है।
एक भिखारी मुल्ला नसरुद्दीन से भीख मांग रहा था। मुल्ला नसरुद्दीन ने पहले तो उसे एक अच्छा-खासा भाषण पिलाया और फिर डांटते हुए कहा, शर्म नहीं आती भीख मांगते हुए! कोई मेहनत का काम क्यों नहीं करते?
भिखारी बोला, क्या कभी आपने भीख मांगी है?
मुल्ला ने उत्तर दिया, नहीं तो। मैंने कभी भीख नहीं मांगी।
भिखारी बोला, तो फिर आपको क्या पता कि मेहनत क्या होती है! अरे मियां, इससे ज्यादा मेहनत का काम दुनिया में दूसरा कोई है ही नहीं।
और वह भिखारी ठीक कह रहा है। भीख मांगने से ज्यादा मेहनत का और क्या काम होगा? क्योंकि कितनी ही मांगो, मिलती नहीं है! यह उसकी बड़ी अंतहीन दौड़ है। जितना मांगो उतनी बढ़ती है; जितना पानी पीओ, प्यास बढ़ती है; जैसे कोई आग

में घी डालता हो! भिखमंगापन बड़ी मेहनत का काम है। मौत आ जाती है, मगर भिखमंगा मांगता ही रहता है, मांगता ही रहता है, मांगता ही चला जाता है। भिखमंगे ही लोग जीते हैं, भिखमंगे ही लोग मरते हैं।
जब तक वासना है तब तक भिखमंगापन है। वासना का दूसरा नाम ही भिखमंगापन है। और वासना से मुक्त हो जाने का नाम ही मालकियत है। इसलिए हमने संन्यासियों को स्वामी कहा है--मालिक! हमने संन्यासियों को सम्राट कहा है, शहंशाह कहा है।
स्वामी राम ने एक किताब लिखी है, उस किताब को नाम दिया हैः बादशाह राम
के छह हुक्मनामे। किसी ने पूछा कि आप और अपने को बादशाह मानते हैं? आपके पास कुछ दिखाई तो पड़ता नहीं!
रामतीर्थ ने कहा, इसीलिए! क्योंकि मुझे किसी चीज की कोई जरूरत नहीं। मेरी सारी जरूरतें गईं, मेरा भिखमंगापन गया। जरूरतों के साथ ही मेरा भिखमंगापन चला गया। अब मैं मालिक हूं। ये सब चांद-तारे मेरे हैं। यह सारा अस्तित्व मेरा है। मैंने एक आंगन क्या छोड़ा, सारा आकाश मेरा हो गया है! लेकिन मन बहुत से तर्क देगा। अगर तुम मन से हटना चाहोगे, जगना चाहोगे,
तो आसान मत समझना काम को। मन बहुत तर्क देगा। और तर्क ऐसे कि भा जाएं। तर्क ऐसे कि जंच जाएं। मन तर्क में बहुत निष्णात है। आत्मा के पास तो कोई तर्क नहीं है। आत्मा तो अतर्क्य है। वहां तो केवल दीवाने ही प्रवेश कर पाते हैं, जो तर्क इत्यादि को छोड़ कर जाते हैं। वहां तो मस्तों की दुनिया है। वह तो अलमस्तों का लोक है। वह तो पियक्कड़ों के लिए ही द्वार खुलता है।
मन बिल्कुल तार्किक है। हर चीज का उत्तर है मन के पास। और उत्तर से तुम बैठ जाते हो तृप्त होकर, हालांकि उत्तर से कुछ होता नहीं।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन नाई की दुकान पर पहुंचा और नाई से बोला, भाई जरा जल्दी में हूं, जरा फ्रंटियर मेल की स्पीड से दाढ़ी बना दो।
नाई दाढ़ी बनाने लगा। दाढ़ी बनाते-बनाते उसने कई जगह के बाल छोड़ दिए। जल्दबाजी जो थी! मुल्ला ने बड़ी नाराजगी से कहा कि यह क्या बेहूदगी है! तुमने यह क्यों किया? ये बाल क्यों छोड़ दिए जगह-जगह?
नाई बोला, भाईजान, फ्रंटियर मेल छोटे-छोटे स्टेशनों पर कभी नहीं रुकती।
बात तो ठीक है। नाई की बात में है तो तर्क। मुल्ला को फिर कुछ सूझा नहीं बोलते। जब फ्रंटियर मेल की रफ्तार से बनेंगे बाल तो जगह-जगह छोटे स्टेशन तो छूट ही जाएंगे।
मन तर्क दे देता है और तुम्हें चुप कर देता है। मन जानता है कैसे तुम्हें चुप करे। तुम अगर कहो कि धन व्यर्थ है, तो मन कहता हैः तो सारी दुनिया पागल है? ये करोड़ों-करोड़ों लोग जो धन के लिए जा रहे हैं, ये पागल हैं? यह तुम्हारा एकाध महावीर, एकाध बुद्ध, एकाध मोहम्मद, इनकी गिनती क्या है? होंगे प्यारे लोग, उनकी बातें होंगी मधुर, उनके गीत होंगे सुंदर, उनके पास होगा व्यक्तित्व सम्मोहक कि उनके पास जो लोग आए होंगे सम्मोहित हो गए होंगे। लेकिन क्या सारी दुनिया पागल है? और फिर यह तो देखो, कौन उनकी मानता है? जो उनकी पूजा करते हैं, वे भी उनकी कहां मानते हैं! कोई उनकी नहीं मानता। पूजा करने वाले भी कहां मानते हैं! पूजा भी वे इसीलिए करते हैं कि हे भइया, क्षमा करो। यह पूजा लो, मगर हमारा पीछा छोड़ो। पूजा एक तरह की रिश्वत है कि हमें सताओ मत, हमें ज्यादा जगाओ मत। हम अभी मधुर सपने देख रहे हैं, तुम बीच-बीच में हमारे सपनों में आओ मत। तुम नाहक शोरगुल न मचाओ यहां। तुम जंगल-पहाड़ पर अपना ध्यान करो। और आएंगे हम कभी-कभी, तुम्हारे चरण छू जाएंगे, दो फूल चढ़ा जाएंगे। बस इतना हमारा तुमसे नाता होगा।
अगर संख्या से तय होता हो सत्य, तो महावीर, बुद्ध और कृष्ण सब गलत हैं। संख्या तो तुम्हारी है। करोड़ों-करोड़ों अरबों-अरबों लोग कैसे गलत हो सकते हैं? और लोकतंत्र ने और एक लोगों को भ्रांति दे दी है कि जहां भीड़ है, जहां अधिक लोगों के हाथ हैं, वहां सत्य है।
मन कहता हैः जब इतने लोग धन इकट्ठा करने में लगे हैं तो पागल नहीं हो सकते। ज्यादा संभावना तो यही है कि महावीर और बुद्ध पागल रहे हों। और गणित ठीक मालूम पड़ता है, तर्क उचित मालूम पड़ता है। तर्क में भ्रांति नहीं दिखाई पड़ती। और मन कहता है कि तुम प्रभावित हो गए, यह ठीक है, लेकिन प्रभावित

होने से कुछ नहीं होता। प्रभावित तो लोग फूल से हो जाते हैं। एक कमल का फूल देखते हो, तो क्या तुम कमल का फूल होने की कोशिश करने लगते हो? प्रभावित तो लोग चांद-तारों से हो जाते हैं, तो क्या चांद-तारे बनने की कोशिश करने लगते हैं? ये प्यारे लोग रहे, चलो इतना स्वीकार। इनको देख कर इन जैसा होने का मन तुममें होता है, यह भी स्वीकार। मगर इन जैसे बनने की झंझट में मत पड़ जाना, नहीं तो मुश्किल में डालोगे अपने को और जीवन के गणित के विपरीत चले जाओगे। इसलिए लोगों ने बड़ी होशियारी कर ली है। वह भी मन बनिया की ही तरकीब है। मन बनिया जब बुद्ध और महावीर जिंदा होते हैं तो उनके विपरीत होता है, विरोध में होता है। हर तरह से उनकी निंदा करता है। और जब वे मर जाते हैं तो यही मन बनिया उनकी पूजा करता है। जब जिंदा होते हैं तो यह मन बनिया डरता है कि कहीं उनका प्रभाव मुझे खींच ही न ले आत्मा की तरफ! कहीं परिधि से केंद्र की तरफ मैं चल ही न पडूं! कहीं उनकी वाणी, कहीं उनकी गरिमा, कहीं उनके व्यक्तित्व का बल, कहीं उनका चुंबकीय आकर्षण मुझे संसार से छुड़ा ही न दे! इस भय से बचने के लिए उनकी निंदा करता है, गालियां देता है; अपने और उनके बीच जितना फासला बना सकता है उसको बनाने की कोशिश करता है। ये गालियां, निंदा, ये पत्थर, ये सूलियां अपने और उनके बीच फासला, पहाड़ खड़े करने के उपाय हैं, और कुछ भी नहीं। खूब निंदा करके अपने को समझा रहा है कि प्रभावित होने की कोई जरूरत नहीं है। ऐसे आदमियों से कोई प्रभावित होता है! खूब निंदा करके मन यह कह रहा है कि जाना ही मत ऐसे लोगों के पास।
मैंने सुना है, महावीर के समय की एक प्यारी घटना है। एक बड़ा चोर था श्रावस्ती में। महावीर श्रावस्ती आए थे। उस चोर को सबसे ज्यादा भय महावीर से था, पुलिसवालों से नहीं। पुलिसवाले क्या करेंगे? चोर-चोर मौसेरे भाई! कुछ सरकारी चोर हैं, कुछ गैर-सरकारी चोर हैं, बस इतना फर्क है। पुलिसवाले क्या करेंगे? उसे सम्राट से भी भय नहीं था, क्योंकि सम्राट यानी बड़े चोर। वे अपनी ही पंक्ति में खड़े हुए जरा आगे लोग हैं। उन्होंने भी छीना-झपटी की, जबरदस्ती की, डकैती डाली, लूटा है। उनकी लूट जरा बड़ी है कि दिखाई नहीं पड़ती।
इतिहास में तुम जिनकी कहानियां पढ़ते हो, वे लुटेरे हैं। चंगीजखां और नादिरशाह और अकबर और सिकंदर, ये सब लुटेरे हैं। लेकिन इतने बड़े लुटेरे हैं कि तुम्हारी समझ में नहीं आता। और ये बड़े लुटेरे छोटे लुटेरों के खिलाफ हैं। छोटे लुटेरे इनसे डरते नहीं; वे जानते हैं कि बड़े लुटेरे छोटे लुटेरे; हैं हम सब एक ही दुनिया के हिस्से।
उसे डर नहीं था किसी से। सच तो यह है कि सम्राट उससे डरता था, क्योंकि
वह बड़ा कुशल चोर था। जब महावीर का गांव में आगमन हुआ तो उसने अपने बेटे को बुला कर कहा कि एक बात ध्यान रखना, इस महावीर से बचना। इस तरह के लोग हमेशा हमारे धंधे के खिलाफ रहे हैं। इस तरह के लोग हमारे जानी दुश्मन हैं। सुनने भी मत जाना। अगर महावीर किसी रास्ते से गुजरते हों, उस रास्ते से मत गुजरना। अगर अचानक महावीर रास्ते पर मिल जाएं तो आस-पास के गली-कूचे में निकल भागना। अगर महावीर कहीं प्रवचन देते हों, अपने कान में अंगुलियां डाल कर घर की तरफ भाग खड़े होना, सुनना ही मत।
बाप ने समझाया तो बेटे ने ऐसा ही किया, महावीर से बचता रहा। लेकिन जब तुम किसी से बचोगे तो एक आकर्षण भी पैदा होता है--कि बात क्या है? बाप सम्राट से नहीं डरता, बड़े-बड़े पुलिस के अधिकारियों से नहीं डरता, सेनापतियों से नहीं डरता, तलवारों-बंदूकों से नहीं डरता, जेल-जंजीरों से नहीं डरता, इन नंग-धड़ंग महावीर से क्यों डरता है? इसमें बात क्या है? तो कभी-कभी खिंचा चला जाता था। मगर फिर बाप की आज्ञा भी माननी थी। देखने का मन भी होता था तो आंख की कोरों से देखता था। एक दिन गुजर रहा था रास्ते से, धीरे-धीरे गुजर रहा था, क्योंकि महावीर बोल रहे थे, सोचा कि चलो एकाध शब्द कान में पड़ जाए--है क्या मामला? क्या बोलते हैं जिससे बाप इतना डरा हुआ है? तो जरा धीरे-धीरे चला। कुछ ही शब्द उसके कान में पड़े। और उसी रात वह पकड़ा गया चोरी करते वक्त।
लड़का पकड़ा गया है, तो सम्राट बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा इससे इसके बाप का भी राज खुलवा लेंगे। बाप तो काइयां है, सिद्धहस्त है; लड़का अभी सिक्खड़ है। इससे बाप के भी राज खुलवा लेंगे। मगर कैसे खुलवाना? तो उसके

वजीरों ने एक बड़ा इंतजाम किया। उसे खूब शराब पिलाई। उसे इतनी शराब पिलाई कि वह बिल्कुल बेहोश होकर गिर पड़ा। और जब वह बेहोश होकर गिर पड़ा तो महल का जो सबसे सुंदर कक्ष था सम्राट का, जो सिर्फ दिखाने के काम में लाया जाता था, कोई उसका उपयोग नहीं करता था। मेहमान आते थे, उनको दिखाया जाता था। सोना ही सोना था, चांदी की दीवालें थीं, हीरे-जवाहरात जड़े थे। पलंग सोने का था, हीरे-जवाहरात जगमग हो रहे थे। सुंदर से सुंदर कालीन थे, कीमती से कीमती फानूस थे। ऐसा लगता था जैसे इस लोक का न हो, परलोक का हो। स्वर्ग का जैसा वर्णन है वैसा था।
उस बेहोश युवक को उस पलंग पर जाकर सुला दिया। और सुंदरतम स्त्रियां
जो महल में थीं, उन सब को परियों जैसे वस्त्र पहनाए, जैसे वे अप्सराएं हों! और उन सबको उसकी सेवा में रत कर दिया। और उनसे कहा, जब इसे होश आए तो यह पूछेगा कि मैं कहां हूं? स्वभावतः, एकदम चौंकेगा। इसने कभी ऐसा तो देखा नहीं होगा महल और इतनी सुंदर स्त्रियां भी नहीं देखी होंगी। यह पूछेगा-- मैं कहां हूं? तो कहना कि तुम स्वर्ग और नरक के मध्य में हो। और यहां से तय होगा कि अब तुम्हें स्वर्ग ले जाया जाए या नरक। तुम अपने सारे पापों का अगर प्रायश्चित्त कर लो तो तुम स्वर्ग जाओगे।
उसके सारे पापों का प्रायश्चित्त करवाने का यह आयोजन था। था तो चोर
का बेटा ही। तभी उसे महावीर का वचन याद आया। जब उसे होश आया, उसने पूछा--मैं कहां हूं? उन अप्सराओं जैसी स्त्रियों ने कहा कि तुम ठीक मध्य-लोक में हो अब। और यहीं से निर्णय होना है। चौराहे पर हो। स्वर्ग या नरक, सब तुम पर निर्भर है। अगर पश्चात्ताप कर लोगे, अपने सारे पाप खोल कर कह दोगे, खुली किताब की तरह, तो स्वर्ग जाओगे; अगर छिपाओगे तो नरक में सड़ोगे। वह कहने ही जा रहा था, अपने पापों का प्रायश्चित्त करने--क्योंकि बात साफ लग रही थी कि कहीं चौराहे पर है, स्वर्ग के बहुत करीब है, ज्यादा दूर नहीं--तभी उसे महावीर का वचन याद आया जो उसने आज ही सुबह सुना था। महावीर अपने भिक्षुओं को कह रहे थे कि स्वर्ग में देवताओं की छाया नहीं बनती।
यह एक केवल प्रतीक है और महत्वपूर्ण प्रतीक है। छाया तो ठोस चीज की बनती है--शरीर की बनती है; आत्मा की नहीं बन सकती। अगर बिल्कुल शुद्ध कांच हो--शुद्ध कांच हो, पारदर्शी-- तो उसकी छाया नहीं बनेगी। या बनेगी भी तो बहुत झीनी-झीनी बनेगी। है वह भी पदार्थ, लेकिन पारदर्शी होगा तो छाया नहीं बनेगी। आत्मा तो पदार्थ नहीं है, चेतना है; आत्मा की कोई छाया नहीं बन सकती। देह तो यहीं छूट जाती है; परलोक में तो सिर्फ आत्मा होती है। आत्मा की कैसी छाया!
यह महावीर समझा रहे थे कि आत्मा की छाया नहीं बनती। बस इतना ही उसने सुना था। चोर तो था ही, तत्क्षण उसने गौर से देखा कि ये जो अप्सराएं हैं, इनकी छाया बन रही है या नहीं?
सब की छाया बन रही थी। समझ गया कि कोई चालबाजी है। पापों का प्रायश्चित्त तो एक तरफ छोड़ा, अपने पुण्यों की कथा कहने लगा कि मैंने क्या-क्या पुण्य किए हैं! और मैंने ही नहीं, मेरे बाप ने भी क्या-क्या पुण्य किए हैं!
वजीर हैरान हुए, सम्राट हैरान हुआ कि हमारी आयोजना व्यर्थ हो गई। उससे पूछा कि तू सच-सच बता, हमारी सारी आयोजना कैसे व्यर्थ हो गई?
उसने कहा, इतना मैं जरूर कहूंगा कि सारी आयोजना व्यर्थ हो गई, क्योंकि महावीर का एक वचन मेरे कान में पड़ गया। और अब मैं सीधा वहीं जा रहा हूं, यहां से छूटा कि सीधा वहीं जा रहा हूं। अब पिता की नहीं सुनूंगा। जिसके एक वचन ने बचा लिया, काश मैं उसकी पूरी वाणी समझ लूं! और जिसका वचन बचा सकता है, वाणी बचा सकती है, काश मैं उसके व्यक्तित्व को समझ लूं तो शायद मेरा उद्धार हो जाए! और मैं तुम्हें भी निमंत्रित करता हूं कि आओ! क्योंकि हैं तो हम सब मौसेरे भाई-भाई। मैं भी चोर, तुम भी चोर। हम छोटे चोर, तुम बड़े चोर। पाप हमारे हैं, पाप तुम्हारे हैं। हमारे छोटे, तुम्हारे बड़े। मैं तुमसे भी कहता हूं कि आओ, जिसके एक वचन ने नौका बन कर मुझे आज बचाया है वह तुम्हें भी बचा सकता है।
और कहानी कहती है कि सम्राट भी महावीर को सुनने गया। दीक्षित हुआ। वह चोर भी दीक्षित हुआ। फिर उसके पीछे उसका पिता भी दीक्षित हुआ।

मन सुनने नहीं देगा। मन बचाता है। मन कहता हैः ऐसी बात ही मत सुनना जो
मन के पार ले जाने वाली हो। और मन समझता है कि बड़ा चतुर है। मन चतुर नहीं है। यह चतुराई मूढ़ता का आवरण है।
मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा उससे पूछ रहा था, पापा, मुझे स्कूल के नाटक में मूर्ख का पार्ट करना है, इसके लिए मैं क्या तैयारी करूं?
मुल्ला नसरुद्दीन बोला, बेटा, कुछ भी नहीं, कुछ तैयारी की जरूरत नहीं। जैसे हो ऐसे ही स्टेज पर चले जाना।
मूढ़ तो मनुष्य है ही।
एक ईसाई पादरी समझा रहा था अपने अनुयायियों को कि जब तुम लोगों को समझाओ और जब तुम स्वर्ग का वर्णन करो तो तुम्हारे चेहरे पर एकदम प्रफुल्लता आ जानी चाहिए, एकदम मुस्कुराहट फैल जानी चाहिए, तुम्हारा चेहरा एकदम दैदीप्यमान हो जाना चाहिए। तभी लोग समझेंगे कि स्वर्ग क्या है। स्वर्ग शब्द ही--और तुम्हें आह्लादित कर देना चाहिए। हाथ उठाना, आंख ऊपर की तरफ उठाना, आकाश की तरफ देखना। एकदम क्षण भर को ठहरे खड़े रह जाना। किसी एक शिष्य ने खड़े होकर पूछा कि ठीक है, स्वर्ग को तो ऐसे समझा देंगे। और नरक को?
तो उस पादरी ने कहा, नरक को समझाने की कोई जरूरत नहीं। तुम जैसे हो बस ऐसे ही खड़े रहना। तुम्हें देख कर ही नरक का पता चल जाएगा।
आदमी मूढ़ है। उसे देख कर ही मूढ़ता पता चल रही है। उसके दुख उसकी मूढ़ता
का प्रमाण हैं। आदमी नरक है। उसकी आंखों में झांको, अंधेरा ही अंधेरा-- अमावस का अंधेरा! उसके प्राणों में झांको, एक दीया भी नहीं जलता। उसके जीवन में देखो, कहीं कोई सुगंध नहीं है। और यह सब कैसे हुआ है? किसके द्वारा हुआ है? कौन मनुष्य को इस दशा में पहुंचा गया? कोई और नहीं--मन बनिया बान न छोड़ै!
पूरा बांट तरे खिसकावै...
पूरा बांट तुम्हारे पास भी है, जैसे बनिया के पास है। ऐसा नहीं कि बनिया के पास पूरा बांट नहीं होता। उसके पास भी पूरा बांट है। जब कोई चीज खरीदता है तो पूरे बांट से खरीदता है। सच तो यह है, उसके पास पूरे से भी बड़ा बांट है। वह जब दूसरे से खरीदता है तो उससे खरीदता है। और उसके पास घटिया बांट भी है। जब वह बेचता है तो घटिया बांट से बेचता है।
पूरा बांट तरे खिसकावै, घटिया को टकटोलै।
वह अपनी गद्दी के नीचे दोनों तरह के बांट रखे रहता है। जब बेचना है तो घटिया को टटोलता है और जब खरीदना है तो पूरे को टटोलता है। जब दूसरे को लूटना है तब उसके पास एक तरह के बांट हैं। और जब बेचना है तब भी वह लूट रहा है, तब उसके पास दूसरी तरह के बांट हैं।
तो मन की दूसरी बात पलटू कह रहे हैं कि मन के पास दो तरह के बांट हैं।
मन हमेशा दो तरह के मूल्य मान कर चलता है--अपने लिए और, दूसरों के लिए और। मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा अपने बाप से पूछ रहा था कि अगर कोई मुसलमान हिंदू हो जाए, तो उसे क्या कहोगे?
तो मुल्ला ने कहा, गद्दार! भ्रष्ट! पापी! काफिर!
और उसके बेटे ने पूछा, पापा, और कोई हिंदू अगर मुसलमान हो जाए?
तो उसने कहा, बुद्धिमान! समझदार! प्रतिभाशाली! सोच-विचारशील! सम्मानयोग्य! पुण्यधर्मा! बहिश्त उसका है।
हिंदू मुसलमान हो जाए तो एक बांट; मुसलमान हिंदू हो जाए तो दूसरा बांट! जैन हिंदू हो जाए तो भ्रष्ट और हिंदू अगर जैन हो जाए तो महात्मा!
मन हमेशा दोहरे बांट रखे हुए है। हर चीज के संबंध में दोहरे मूल्यांकन हैं। तुम्हारी पार्टी से कोई दूसरी पार्टी में चला जाए-- दलबदलू! धोखेबाज! और दूसरी पार्टी से तुम्हारी पार्टी में आ जाए तो इसको होश आया, समझ आई, बुद्धि लौटी, नासमझी छूटी! और यह हम रोज करते हैं। हम दूसरों को एक ढंग से तौलते हैं, अपने को और ढंग से तौलते हैं। अगर दूसरा बेईमानी करे तो बेईमान; अगर हम बेईमानी करें तो बेईमानी नहीं है--क्या करें, सारी दुनिया बेईमान है! करना ही पड़ती है। जीवन की व्यवस्था है। अगर हम झूठ बोलें तो वह सिर्फ व्यावहारिक है और दूसरा अगर झूठ बोले तो उसको हम व्यावहारिक नहीं कहते। वह पाप कर रहा है, नरक में सड़ेगा। हम अगर झूठ बोलें

तो वह तो यूं ही बात-बात में बोल दिया था और दूसरा अगर झूठ बोले तो वह झूठा है। उसका झूठ बोलना उसके पूरे व्यक्तित्व को झूठ कर देता है। हमारा झूठ बोलना सिर्फ गपशप थी।
अगर मन से बचना हो तो ये दोहरे बांट छोड़ने होंगे। और ये दोहरे बांट हम
सब जगह उपयोग करते हैं, हर जगह उपयोग करते हैं।
पूरा बांट तरे खिसकावै, घटिया को टकटोलै।
और जब तक तुम पूरे बांट को नहीं जीवन में लाओगे और घटिया से ही काम चलाते रहोगे, घटिया रहोगे। पूरा बांट प्रतीक है परमात्मा का--जो पूरा है! मन तो हमेशा अधूरा है, कभी पूरा नहीं। घटिया बांट है। और तुम सारी चीजें मन से ही तौल रहे हो।
संसार को परमात्मा से तौलो, मन से नहीं। संसार को परमात्मा की आंख से देखो, मन की आंख से नहीं। मन की आंख से देखोगे तो अपना-पराया; और परमात्मा की आंख से देखोगे तो न कुछ अपना है, न कुछ पराया। मन की आंख से देखोगे तो सारी चीजें मन के रंग में रंग जाएंगी। मन की बेईमानी, मन की धोखाधड़ी चीजों पर आरोपित हो जाएगी। परमात्मा की, साक्षी की आंख से देखोगे, चीजें स्वच्छ और निर्मल होकर प्रकट होंगी; जैसी हैं वैसी प्रकट होंगी।
पूरा बांट तरे खिसकावै, घटिया को टकटोलै।
पसंगा मांहै करि चतुराई, पूरा कबहुं न तौले।।
तुमने मन से कभी पूरा नहीं तौला। लोग अपनों को भी धोखा दे जाते हैं।
लोगों को मौका लगे तो खुद को भी धोखा दे जाते हैं, औरों की तो बात ही छोड़ दो! पसंगा मारते रहते हैं; जिस तरह भी बने, कम तौलते रहते हैं।
पसंगा मांहै करि चतुराई...
और सोचते हैं कि बहुत चतुराई कर रहे हैं, बड़ी बुद्धिमानी से जी रहे हैं। यहां जिससे पूछो वही सोचता है कि बुद्धिमानी से जी रहा है; जीने की कला उसे आती है। न केवल खुद वैसे जीना चाहता है, अपने बच्चों को भी चाहता है कि वे भी वैसे ही जीएं; उनको भी वही शिक्षा दे जाता है।
पूरा कबहुं न तौले।
तुमने जीवन को कभी पूर्णता की दृष्टि से नहीं देखा। अपूर्ण मन को देखते हो, इसलिए तुम्हें सब अपूर्ण दिखाई पड़ता है। पूर्ण दृष्टि से देखोगे तो सब पूर्ण दिखेगा। और जिसको सब पूर्ण दिखेगा--कहां अतृप्ति! कहां पीड़ा! कहां दुख! कहां नरक!
शादी के पहले तुम मुझे कितने कीमती उपहार देते थे, वस्त्र भेंट देते
थे और कितने मीठे-मीठे पत्र लिखते थे! अब तुम ऐसा क्यों नहीं करते चंदूलाल?
गुलाबो, तुम वाकई कितनी भोली हो! चंदूलाल ने जवाब दिया। क्या तुमने कभी ऐसा सुना है कि कोई मछुआ मछली पकड़ने के बाद उसे आटा खिलाता है?
पत्नी ने कहा, तो क्या तुम मुझे मछली समझते हो और खुद को मछुआ समझते हो?
चंदूलाल ने कहा, नहीं-नहीं, तुम्हें मछली नहीं समझता और न ही मैं मछुआ हूं। मैं मारवाड़ी हूं।
लेकिन हमारे जीवन को देखने के ढंग यही हैं--मछली और मछुए के! एक-दूसरे
को फांसने की चेष्टा चल रही है। एक-दूसरे के शोषण की चेष्टा चल रही है। और जब तक तुम दूसरे के शोषण में संलग्न हो, कैसे देख पाओगे उसमें परमात्मा को? और परमात्मा को देख लोगे तो शोषण कैसे कर पाओगे? फिर तो सेवा ही कर सकोगे।
घर में वाके कुमति बनियाइन, सबहिन को झकझोलै।
कुमति को पलटू ने कहा कि वह बनियाइन है। मन तो है बनिया और भीतर बैठी
है कुमति।
सुमति और कुमति का भेद समझ लो। सुमति कहते हैं उस मति को जो सत्य की तरफ ले जाए। और कुमति कहते हैं उस मति को जो असत्य की तरफ ले जाए। कुमति बहिर्गामी होती है और सुमति अंतर्गामी। कुमति वस्तुओं में रस लेती है और सुमति स्वयं में। कुमति सांसारिक होती है, सुमति आध्यात्मिक।
मन अगर बनिया है तो कुमति बनियाइन है; कुमति से उसका विवाह हुआ है।

तुम जरा सोचना, खोजना--तुम्हारा चित्त सदा बाहर की तरफ दौड़ रहा है या नहीं? जब भी सोचते हो तभी बाहर के सोच में पड़े रहते हो। रात सपने भी बाहर के देखते हो। तुम्हारा चित्त सदा ही बाहर की तरफ जा रहा है। अपने घर कब आओगे? अपने घर कैसे आओगे? अपने घर से तो दूर निकलते जाते हो--और दूर! और दूर! घर तो तुम बहुत पीछे छोड़ आए हो। घर को पाना हो तो अपने स्रोत की तरफ चलना पड़ेगा। घर को पाना हो तो गंगा को गंगोत्री की तरफ बहना पड़ेगा। और गंगा भागी जा रही है गंगोत्री से दूर। स्वरूप से हम दूर भागे जा रहे हैं। स्वरूप में जो ले जाए, वह सुमति।
मगर हम अपनी कुमति के लिए काफी सुरक्षा करते हैं। हम कहते हैंः यह जरूरी है। नहीं तो संसार में टिकेंगे कैसे?
टिक कर भी क्या होगा? और टिकोगे कितनी देर? टिक भी लिए थोड़ी देर, तो भी पैर उखड़ जाने हैं। मगर बड़ी चतुराई मानती है कुमति! आदमी गड्ढे खोदता है औरों के लिए; उसे पता नहीं कि उन्हीं गड्ढों में खुद गिरेगा। आदमी कांटे बोता है औरों के लिए; उसे पता नहीं कि इन्हीं कांटों में खुद उलझेगा। क्योंकि तुम जो देते हो जगत को, वही तुम पर लौट आता है। तुम गालियां देते हो तो गालियां लौट आती हैं--हजार गुना होकर। तुम फूल बांटोगे तो फूल लौट आएंगे--हजार गुना होकर।
मगर फूल तो बांटोगे कैसे, फूल तुम्हारे भीतर अभी पैदा नहीं हुए! भीतर
तो कांटे ही कांटे उग रहे हैं। लोग कैक्टस हो गए हैं--कांटे ही कांटे! और तुम उन कांटों को खूब पानी दे रहे हो।
मुल्ला नसरुद्दीन ने अपनी बीबी के जन्मदिन पर उसे एक चप्पल लाकर भेंट दी। सिर्फ एक चप्पल बाएं पैर की। बीबी बहुत नाराज हुईः क्या तुम मुझे पागल समझते हो जो सिर्फ एक पैर की चप्पल लाकर दे दी? इससे भला होता तुम कुछ न देते। क्यों मेरी बेइज्जती करते हो नसरुद्दीन?
कैसी बात करती हो गुलजान--मुल्ला बोला--क्या तुम चाहती हो कि मैं तुम्हें दो चप्पलें देकर तुम्हारी दोगुनी बेइज्जती करूं?
अगर एक चप्पल से बेइज्जती होती है तो दो चप्पल से दोगुनी हो जाएगी। गणित तो ठीक, हिसाब तो ठीक, हिसाब में तो कोई चूक नहीं है। मगर बुनियाद ही गलत है, आधार ही गलत है। तर्क के हम बड़े भवन खड़े कर लेते हैं--बिना यह सोचे कि रेत पर खड़े कर रहे हैं। तर्क बहुत कुशल है, लेकिन प्रतिभावान नहीं।
घर में वाके कुमति बनियाइन, सबहिन को झकझोलै।
और वह कुमति है कि सबसे झगड़ती रहती है। झगड़ा मन का स्वभाव है। तुम देखते हो, मन हमेशा झगड़ने को आतुर। नहीं झगड़ते हो तो उसका कारण यह नहीं होता कि तुम नहीं झगड़ना चाहते हो; नहीं झगड़ते हो तो इसलिए कि सामने जो है उससे झगड़ना खतरे से खाली नहीं है। लोग कमजोर से झगड़ना चाहते हैं, जहां जीत पक्की हो। ताकतवर के सामने पूंछ हिलाने लगते हैं, कमजोर के सामने भौंकने लगते हैं। दफ्तर में अगर तुम्हारा मालिक उलटा-सीधा बोलता है तो भी तुम जी हजूर, जी हजूर कहते रहते हो। मगर आग जल रही है भीतर। उस आग को तुम कहीं न कहीं निकालोगे। हो सकता है घर आकर अपनी पत्नी पर निकालो; हालांकि पत्नी का कोई कसूर न होगा। पत्नी शायद तुम पर न निकाल सके, क्योंकि तुम पति हो--पति यानी परमात्मा! अपने बच्चे पर निकालेगी। बच्चा मां पर नहीं निकाल सकता; अपनी गुड़िया की टांग तोड़ देगा। और ऐसे सरकता जाता है क्रोध और फैलता जाता है जहर।
सबहिन को झकझोलै।
यह जो कुमति है, यह बुरी तरह झकझोरती है--और सबहिन को, सबको। एक की कुमति न मालूम कितने झंझावात पैदा करती है।
कहानी है कि अकबर एक दिन गुस्से में आ गया। कुछ बीरबल ने ऐसी बात कह दी। कही तो थी मजाक में ही, लेकिन मजाक जरा गहरा हो गया कि अकबर ने आव देखा न ताव, एक चांटा बीरबल को रसीद कर दिया! बीरबल भी कोई चुप रह जाने वाला तो था नहीं, लेकिन अकबर को चांटा मारना तो महंगी बात हो जाए। सो उसने पास में खड़े एक दरबारी को और भी करारा चांटा मार दिया। दरबारी तो बहुत चौंका, उसने कहा, यह कैसा न्याय? अकबर ने तुम्हें मारा, तुम मुझे क्यों मारते हो?

बीरबल ने कहा, तू क्यों फिक्र करता है? अरे और किसी को तू मार! चलने दे, कभी न कभी अकबर के पास पहुंच जाएगा। देता चल। आगे बढ़ाओ। रोकने की जरूरत नहीं है। पहुंच जाएगा अकबर तक, घबड़ाओ मत। दुनिया गोल है।
और हर चीज पहुंच जाती है--शायद आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों। कर्म
का सारा सिद्धांत इतना ही है कि हर चीज एक दिन तुम पर लौट आएगी। सोच-समझ कर देना।
लड़िका वाका महाहरामी...
मन की पत्नी है कुमति--बहिर्गामी यात्रा। लड़का कौन है? तर्क है उसका पुत्र। और तर्क तुम्हारे जीवन को गलत सुझाव देता रहता है, गलत दिशाएं देता रहता है, गलत इशारे देता रहता है। ठीक इशारे प्रेम से मिलते हैं; गलत इशारे तर्क से मिलते हैं। ठीक राह प्रीति की राह है; गलत राह तर्क की राह है। लेकिन सभी लोग तर्क को पकड़े बैठे हैं। तर्क सिखाया जाता है--स्कूल में, कालेज में, विश्वविद्यालय में। यह सारा समाज तर्क पर जीता है। प्रेम झुठलाया जाता है। प्रेम भुलाया जाता है। प्रेम विस्मृत किया जाता है और तर्क की शिक्षा दी जाती है।
तर्क हिंसात्मक है; खंडन उसका लक्ष्य है। तर्क एक तरह की तलवार है, जिससे दूसरे की गर्दन काटो। और जिस तलवार से तुम दूसरे की गर्दन काट रहे हो, याद रखना, आज नहीं कल इसी तलवार से आत्महत्या करोगे। यही तलवार आत्मघात बनेगी।
तर्क से थोड़े सावधान रहना। तर्क की कोई निष्ठा नहीं होती। तर्क वेश्या है। आज तुम्हारे साथ है, कल किसी और के साथ हो सकता है। इसलिए भूल कर भी अपने भवन को तर्क पर खड़ा मत करना। तर्क में बुनियाद के पत्थर मत रखना। तुम्हारे तर्क खंडित किए जा सकते हैं। ऐसा कोई तर्क ही नहीं है जो खंडित न किया जा सके। सिर्फ प्रेम अखंड है और प्रेम को खंडित नहीं किया जा सकता।
रामकृष्ण के पास केशवचंद्र गए और बहुत तर्क करने लगे कि ईश्वर नहीं है। और जानते थे कि रामकृष्ण को तो क्षणों में परास्त कर देंगे, क्योंकि रामकृष्ण तो बेपढ़े-लिखे थे, केवल दूसरी कक्षा तक पढ़े थे--क्या तर्क करेंगे! और केशवचंद्र तो महातार्किक थे। लेकिन रामकृष्ण को हरा न पाए। प्रेम को हराना संभव ही नहीं है। हार कर लौटे। प्रेम से हारना ही पड़ेगा। केशवचंद्र तर्क देते ईश्वर के विरोध में और रामकृष्ण उठ-उठ कर केशवचंद्र को गले लगाते और कहतेः वाह! खूब रही! खूब कही!
यह तो कुछ उलटा ही होने लगा। जो लोग इकट्ठे हुए थे देखने, वे भी थोड़े बेचैन हो गए। सोचा था कि कुछ तर्क होगा, रामकृष्ण कुछ जवाब देंगे। जवाब तो देते नहीं, उलटे कहते हैंः वाह! खूब! खूब कही! क्या कही! क्या महीन बारीक बात कही! और जब बहुत बारीक बात हो जाती, तो उठ कर गले लगा लेते।
केशवचंद्र भी बड़ी मुश्किल में पड़ गए, उदास होने लगे। आखिर उन्होंने कहा, यह मामला क्या है? आप जवाब क्यों नहीं देते?
रामकृष्ण ने कहा, मैं जवाब ही दे रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि मैंने
जो जान लिया है, उसे खंडित करने का कोई उपाय नहीं। तुम्हारे तर्क बड़े प्यारे हैं, लेकिन अज्ञानियों को ही राजी कर पाएंगे। हां, किसी अंधे के सामने तुम अगर प्रकाश के खिलाफ बोलोगे तो वह तुमसे राजी हो जाएगा। असल में, अंधे को प्रकाश के पक्ष में राजी करना मुश्किल है। प्रकाश के विपक्ष में राजी करने में क्या कठिनाई है? तुम अगर प्रकाश के खिलाफ तर्क दोगे अंधे को, राजी हो जाएगा। मगर मेरी आंख खुल गई, मैं क्या करूं! तुम जरा देर से आए केशव! अगर तुम दस-पंद्रह साल पहले आए होते, जब मेरी भी आंख बंद थी, तो शायद मैं तुमसे राजी हो गया होता। तुम जीत गए होते। मगर अब जीतने का कोई उपाय नहीं।
केशवचंद्र ने पूछा, चलो यह भी सही। मगर उठ-उठ कर मुझे गले क्यों लगाते हैं? और यह वाह-वाह और यह प्रशंसा!
तो रामकृष्ण कहने लगे, इसलिए कि तुम जैसी प्रखर प्रतिभा मैंने कभी नहीं देखी! तुम्हारी प्रतिभा की मैं प्रशंसा करता हूं। लेकिन जरा और खींचो, जरा और धार दो। और तुम्हें देख कर मुझे परमात्मा पर और भी भरोसा आता है--कि जहां जगत में ऐसी प्रतिभा हो सकती है, वह जगत परमात्मा से खाली नहीं

हो सकता। इसीलिए तुम्हें गले लगाता हूं कि अहा! खूब आए! तुम आखिरी प्रमाण होकर आए। मुझे तो फूलों को देख कर परमात्मा का प्रमाण मिलता है, चांद-तारों को देख कर परमात्मा का प्रमाण मिलता है। तुम्हारी प्रतिभा को देख कर भी उसका प्रमाण मिलता है। मुझे तो उसके प्रमाण ही प्रमाण मिलते हैं। लेकिन तर्क खेल है। केशव, इससे ऊपर उठो। खिलौने हैं बच्चों के। आओ मेरे पास, बैठो मेरे पास! ले चलूंगा तुम्हें उस द्वार से--प्रीति के द्वार से! और प्रीति का द्वार ही परमात्मा का द्वार है।
केशव ने अपनी आत्मकथा में लिखवाया है कि अपने जीवन में मैं पहली दफा हारा--और उस आदमी से हारा, जिसने एक भी तर्क मेरे विपरीत न दिया।
लड़िका वाका महाहरामी...
तर्क उसका बेटा है।
इमरित में विष घोलै।
अगर अमृत भी दे दो तर्क को तो वह उसमें भी विष घोल देगा। अगर किसी को परमात्मा की याद दिलाना चाहो तो तर्क उसमें भी बाधा डालेगा--कैसा परमात्मा? कहां का परमात्मा? न देखा, न सुना। और जिन्होंने देखा है, सुना है, वे भी सच कहते हों क्या पता! कि झूठ बोलते हों, कि धोखा देते हों; या खुद धोखा खा गए हों।
इमरित में विष घोलै।
बुद्धों के पास बैठ कर भी तर्क अमृत को नहीं पीता; उसमें भी विष घोल देता है। इसके पहले कि तुम तक पहुंचे, विष घोल देता है। हर चीज में अश्रद्धा पैदा कर देता है। अश्रद्धा विष है। अगर श्रद्धा अमृत है तो अश्रद्धा विष है। हर चीज में संदेह जगा देता है। और एक दफा संदेह जगा दिया कि तुम झंझट में पड़ गए। संदेह जगा कि तुम्हारा जीवन गतिमान नहीं हो सकता। संदेह जगा कि तुम ठहर जाओगे, ठिठक जाओगे, कि पहले तय तो हो जाए तब आगे बढूं। तय हो जाए तो दिशा चुनूं।
और तर्क कभी कुछ तय नहीं होने देता। तुम कुछ भी तय करो, उसमें संदेह की छाया बनी ही रहती है--कौन जाने, ऐसा हो, ऐसा न हो! अनुमान है तर्क। अनुमान श्रद्धा कैसे बन सकता है?
इमरित में विष घोलै।
तुम जरा जाग कर देखना, तुम्हारे भीतर भी यह काम चल रहा है रोज। अगर तुम जरा जग जाओ तो तुम पहचानने लगोगे कि कब-कब यह कुमति का बेटा किस-किस तरकीब से जहर घोल देता है।
पांचतत्त का जामा पहिरे, ऐंठा-गुइंठा डोलै।
हो क्या तुम? मिट्टी-पानी के जोड़! पांच तत्व के पुतले हो! आत्मा उड़ जाएगी, पिंजड़ा पड़ा रह जाएगा।
पांचतत्त का जामा पहिरे, ऐंठा-गुइंठा डोलै।
और कैसे अकड़ कर चल रहे हो! कैसे ऐंठ कर! कैसे गुइंठ कर! कैसे डोल रहे हो! क्षण भर में मिट्टी हो जाओगे। सब ऐंठ पड़ी रह जाएगी। रोज देखते हो तुम यह घटना घटते--कोई चला गया, कोई विदा हो गया। मगर फिर भी तर्क तुमसे कुछ कहता रहता है कि कोई गया, दूसरा मरता है सदा, मैं थोड़े ही मरता हूं। मैं तो देखो अभी जिंदा हूं। मैं मरने वाला नहीं हूं। यह मृत्यु का नियम औरों पर लागू होता होगा, मुझ पर लागू नहीं होता। देखो कितने मर गए, मैं अभी भी जिंदा हूं!
यही तर्क वे मरने वाले भी अपने को देते रहे थे। यही तर्क तुम भी दे रहे हो। यह अकड़ छोड़ो। तर्क तुम्हारे अहंकार को पोषित करता है।
जनम-जनम का है अपराधी, कबहूं सांच न बोलै।
तर्क कभी सत्य नहीं बोलता--बोल नहीं सकता, क्योंकि सत्य को तर्क की जरूरत नहीं है। जहां सत्य है वहां तर्क व्यर्थ है। तर्क की तो जरूरत ही वहां होती है जहां असत्य होता है। क्योंकि असत्य को तर्क का सहारा न मिले तो वह असत्य की भांति प्रकट हो जाता है। तर्क का सहारा लेकर सत्य का ढोंग रच पाता है। सत्य को किसी तर्क की कोई आवश्यकता नहीं है। सत्य तो नग्न खड़ा हो सकता है--तो भी सत्य है, तो भी सुंदर है, तो भी गरिमायुक्त है। असत्य को कपड़ों की जरूरत होती है।

तो तुमने देखा, खेत में लोग झूठा आदमी बना देते हैं! एक डंडा गड़ा दिया,
एक हंडी लगा दी, ऊपर एक गांधी टोपी लगा दी। एक और बांस बांध दिया, वे दो हाथ हो गए, उसमें कुरता पहना दिया--शुद्ध खादी का! और चूड़ीदार पाजामा! और कहीं मिल गए जूते पड़े हुए, वे जूते भी पहना दिए। जो और जरा शौकीन तबीयत के हैं, मुंह में सिगरेट भी दबा देते हैं। हंडी पर नाक-नक्शा भी उभार देते हैं। अब इन सज्जन के अगर तुम कपड़े उतार लो तो सब गड़बड़ हो जाए, तो भीतर एक डंडा मिले और एक हंडी मिले। ये तो कपड़े में ही शोभायमान होते हैं। ये नग्न नहीं हो सकते। ये तो कपड़े के भीतर ही जंचते हैं।
ऐसा ही असत्य है। भीतर कुछ भी नहीं, बस कपड़े सुंदर। शास्त्र ओढ़ लो, सिद्धांत ओढ़ लो, दर्शनशास्त्र ओढ़ लो और अपने चारों तरफ खूब जाल बुन लो तर्क का। मगर भीतर? भीतर कुछ है--कोई सत्व? कोई सत्य? अगर नहीं है तो व्यर्थ समय गंवा रहे हो। मौत जल्दी आएगी, एक धक्के में यह झूठा पुतला गिर जाएगा, हंडी फूट जाएगी, सारा तिलिस्म मिट जाएगा।
जनम-जनम का है अपराधी, कबहूं सांच न बोलै।
जल में बनिया थल में बनिया, घट-घट बनिया बोलै।
और यह जो तुम्हारा मन है, हर जगह तुम्हें पकड़े हुए है--जल में, थल में, घट-घट में। यह बनिया बोल रहा है।
पलटू के गुरु समरथ साईं, कपट गांठि जो खोलै।
मिल जाए कोई सदगुरु तुम्हें--पलटू कहते हैं, जैसा मुझे सदगुरु मिला-- समर्थ, साईं!
ये शब्द समझने जैसे हैं। कौन है समर्थ सदगुरु? जिसने स्वयं जाना हो वह समर्थ है। जो उधार शास्त्रों को दोहरा रहा है वह समर्थ नहीं है। साईं का अर्थ होता हैः स्वामी, मालिक। जिसने मालिक को जाना है वह मालिक हो जाता है। उपनिषद कहते हैंः उसे जो जानता है वही हो जाता है।
जो सदगुरु है, समर्थ है, साईं है, वही तुम्हारी कपट की गांठ खोल सकता है। वही उतारेगा तुम्हारी अचकन, तुम्हारा कोट और बताएगा कि डंडा भीतर है। वही तुम्हारा नाक-नक्शा, तुम्हारे मुखौटे अलग करेगा और दिखाएगा भीतर की हंडी और कहेगाः कब तक इससे धोखा खाओगे? असली आदमी की तलाश करो! कब तक कपड़े बदलते रहोगे? कब तक चेहरे बदलते रहोगे? अपने मूल को खोजो! अपने स्वरूप को पहचानो!
जिसने खुद की कपट की गांठ खोल ली हो वही तुम्हारी कपट की गांठ खोल सकता है।
जहां कुमति कै बासा है, सुख सपनेहुं नाहीं।
जब तक कुमति है तब तक न सुख है, न सुख की कोई संभावना है--सपने में भी संभावना नहीं!
फोरि देति घर मोर तोर करि, देखै आपु तमासा है।
और यह जो कुमति है, हमेशा हर चीज को तोड़ देती है--मेरे में, तेरे में; द्वंद्व खड़ा कर देती है।
फोरि देति घर मोर तोर करि, देखै आपु तमासा है।
तुम तमाशे हो जाते हो। तुम्हारी जिंदगी एक तमाशा है। तुम्हारी जिंदगी में सत्य नहीं है तब तक, बस सर्कस है।
कलह काल दिन रात लगावै, करै जगत उपहासा है।
और इसी कुमति के कारण रोज झगड़ा हो रहा है और जगत में उपहास हो रहा है।
जागो! बहुत सोए, जागो!
निर्धन करै खाए बिनु मारै, अछत अन्न उपवासा है।
यह कुमति तुम्हें निर्धन बनाए हुए है, भिखमंगा बनाए हुए है।
निर्धन करै खाए बिनु मारै...
तुम्हें खाती भी नहीं और धीरे-धीरे मार डालती है।
अछत अन्न उपवासा है।
और सब होते हुए तुम्हें भूखा रखती है। तुम्हारे पास धनों का धन है।
मालिक का मालिक तुम्हारे भीतर बैठा हुआ है। प्रभु का साम्राज्य तुम्हारा है। सब तुम्हारे पास है और फिर भी तुम भूखे मर रहे हो; जैसे कोई सरोवर के बीच में और प्यासा! मरुस्थल में होते और प्यासे होते तो क्षम्य भी थे। तुम सरोवर के बीच प्यासे हो, क्षमा नहीं किए जा सकते हो।

पलटूदास कुमति है भोंड़ी, लोक परलोक दोउ नासा है।
इस भोंड़ी कुमति से जागो, पलटूदास कहते हैं। इसने दोनों ही लोक नष्ट कर दिए हैं।
है कोई सखिया सयानी, चलै पनिघटवा पानी।
सुनी तुमने मेरी बात--पलटूदास कहते हैं--अब है किसी की तैयारी कि चले मेरे साथ?
कबीर कहते हैं कि है किसी की हिम्मत कि अपने घर को जलाए और हमारे साथ चले?
कबिरा खड़ा बजार में, लिए लुकाठी हाथ।
जो घर बारै आपना, चलै हमारे साथ।।
कबीर कहते हैंः लट्ठ लिए हुए बाजार में खड़ा हूं। है किसी की हिम्मत कि अपने घर में आग लगा दे और हमारे साथ चले?
किस घर की बात कर रहे हैं? इसी कुमति का घर। इसी मन बनिया ने जो घर बनाया है, उसी घर की बात कर रहे हैं। और किस लट्ठ की बात कर रहे हैं? लिए लुकाठी हाथ! यही तुम्हारी जो हंडी जैसी खोपड़ी है, तोड़ देने जैसी है। कबीर के हाथ पड़ जाओ तो तुम्हारी खोपड़ी तोड़ी उन्होंने!
है कोई सखिया सयानी...
पलटू कहते हैं, है तुममें कोई सयाना?
चलै पनिघटवा पानी।
तो मैंने पनघट देख लिया है, जहां प्यास बुझ जाती है। आओ, चलो मेरे साथ। सतगुरु घाट गहिर बड़ा सागर, मारग है मोरी जानी।
और मैं तुम्हें ले चलूं सदगुरु के पास। मार्ग मेरा जाना हुआ है, उसमें मैं चला हूं।
जब भी कोई सदगुरु बोलता है तो इतनी प्रामाणिकता से बोलता है। वह यह नहीं कहता कि ऐसा उपनिषद में लिखा है, इसलिए मानो; कि ऐसा महावीर ने कहा है, इसलिए मानो; कि ऐसा बुद्ध ने कहा है, इसलिए मानो। जब कोई सदगुरु बोलता है तो वह कहता हैः ऐसा मैंने जाना है। यह मेरा अनुभव है।
सतगुरु घाट गहिर बड़ा सागर...
तुम प्यासे मरे जा रहे हो और सदगुरु के घाट पर बड़ा गहरा सागर है।
मारग है मोरी जानी।
और घबड़ाओ मत। मार्ग मेरा जाना हुआ है।
है कोई सखिया सयानी, चलै पनिघटवा पानी।
ले चलूं तुम्हें पनघट पर, पिला दूं तुम्हें जल!
लेजुरी सुरति सबदि कै घैलन...
रस्सी ले आओ सुरति की, स्मृति की, ध्यान की, बोध की, प्रभु-स्मरण की।
लेजुरी सुरति सबदि कै घैलन...
और शून्य में जो शब्द सुना जाता है, अनाहत जो नाद सुना जाता है, उसका घड़ा ले चलो। ध्यान की रस्सी, ध्यान में सुने गए संगीत का घड़ा।
लेजुरी सुरति सबदि कै घैलन, भरहु तजहु कुलकानी।
और फिर छोड़ो सब कुल की मान-मर्यादा। फिर मत कहो कि मैं हिंदू हूं, कि मुसलमान, कि ब्राह्मण, कि शूद्र। अरे जब पनघट पर आ गए तो दिल भर कर पीओ! अब छोड़ो सब लोकलाज! बनाओ अंजुरी अपने हाथों की और जी भर कर पी लो! अब कोई अड़चन, बाधा मत डालने देना।
यहां मेरे पास लोग आते हैं। कोई पूछता है कि मैं कैथलिक ईसाई हूं; आपकी बातें तो जंचती हैं, मगर मैं ईसाई हूं, कैसे संन्यासी हो जाऊं?
ईसाई हो, इसलिए पनघट पर पानी न पीओगे?
कोई जैन पूछता है कि मैं जैन हूं। बात तो आपकी पकड़ में आती है, मगर कुल-मर्यादा, वंश-परंपरा कैसे छोड़ दूं?
तुम्हारी मर्जी। पनघट पर पहुंच कर भी तुम जैन ही बने रहना, हिंदू बने रहना, मुसलमान बने रहना! तुम्हें प्यास नहीं बुझानी है?
तुम्हें तो जब तक कोई जैन कुआं न मिले तब तक तुम न पीओगे! और जैन कुएं होते नहीं। कुएं तो बस कुएं हैं--न हिंदू, न मुसलमान, न ईसाई। पानी तो बस पानी है। सिर्फ हिंदुस्तान के स्टेशनों पर हिंदू पानी और मुसलमान पानी होता है, बाकी तो... । बड़ी मजेदार दुनिया है! स्टेशनों पर चलता है...

चिल्लाते हुए लोग--हिंदू पानी, हिंदू चाय! चाय भी हंसती होगी, पानी भी हंसता होगा--कि आदमी भी कितना मूरख! पानी तो बस पानी है।
ठीक कहते हैंः लेजुरी सुरति सबदि कै घैलन, भरहु तजहु कुलकानी।
छोड़ो सब कुल की, परंपरा की बातें। दिल भर कर पी लो।
निहुरिके भरै घैल नहिं फूटै...
मगर एक बात ख्याल रखना, झुक कर भरना तो घड़ा फूटेगा नहीं। और अगर झुक कर
न भरा तो घड़ा फूट जाएगा। झुकना कला है--समर्पण।
निहुरिके भरै घैल नहिं फूटै, सो धन प्रेम-दिवानी।
और जो झुक कर भर लेती है और बिना घड़े को फोड़े भर लेती है--सो धन प्रेम-दिवानी! वह प्रेम-दीवानी धन्य है।
अचानक तुम देखते हो, भक्तों की वाणी में यह घटता है बार-बार, पुरुष-वचन
से हट जाते हैं, स्त्री-वचन का उपयोग करने लगते हैं! क्योंकि भक्ति का मार्ग स्त्रैण है। प्रेम का मार्ग स्त्री का मार्ग है।
निहुरिके भरै घैल नहिं फूटै, सो धन प्रेम-दिवानी।
धन्य है वह प्रेम की दीवानी, जो भूल जाती है कुल-मर्यादा और झुक कर भर लेती है।
चांद सुरुज दोउ अंचल सोहैं, बेसर लट अरुझानी।
फिर उसके आंचल में चांद-तारे चमकने लगते हैं। सिर तो खो जाता है, लेकिन आकाश की घटाएं उसके केश बन जाती हैं!
चाल चलै जस मैगर हाथी...
और उसकी चाल--जैसे मस्ताना हाथी चले!
चाल चलै जस मैगर हाथी, आठ पहर मस्तानी।
और जिसने प्रभु के पनघट से पानी पिया उसकी मस्ती घटती नहीं, कम नहीं होती; उसकी मस्ती बढ़ती ही जाती है। क्षणभंगुर नहीं है उसकी मस्ती कि अभी है और अभी नहीं; चौबीस घंटे बनी रहती है।
चाल चलै जस मैगर हाथी, आठ पहर मस्तानी।
पलटूदास झमकि भरि आनी, लोकलाज न मानी।
पलटूदास कहते हैंः मेरी सुनो। ऐसी चिंता मुझे भी पकड़ सकती थी, नहीं पकड़ी।
झमकि भरि आनी...
मैंने तो जैसे ही पनघट पाया, सदगुरु पाया कि झमक कर भर लिया था!
झमकि भरि आनी, लोकलाज न मानी।
फिर मैंने सोचा ही नहीं कि लोग क्या कहेंगे; वेद क्या कहता है; प्रतिष्ठा होगी, अप्रतिष्ठा होगी; पागल समझा जाऊंगा, दीवाना समझा जाऊंगा।
फिर मैंने चिंता ही न की थी।
पलटूदास झमकि भरि आनी, लोकलाज न मानी।
तुम भी ऐसा कर सको तो मन बनिया से छुटकारा हो सकता है। और मन बनिया से छुटकारा चाहिए ही चाहिए! यही भटका रहा है जन्मों-जन्मों से।
मन से जो मुक्त है, वह परमात्मा से युक्त हो जाता है। मन से जो शून्य है, वह परमात्मा से पूर्ण हो जाता है।
आज इतना ही।

काहे होत अधीर
बारहवां प्रवचन

खाओ, पीओ और आनंद से रहो

पहला प्रश्नः ओशो! महाप्रयाण के कुछ दिनों पूर्व पूज्य दद्दाजी ने एक रात चर्चा करते हुए बताया कि वही है, और उसके अलावा कुछ और नहीं। यह पूछने पर कि संसार को चलाने वाला कौन है? वे बोले, कोई नहीं। सब अपने आप चल रहा है। जो हो रहा है वह हो रहा है। कोई कुछ कर नहीं रहा है; सब हो रहा है। कर्म के सिद्धांत से संबंधित प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा, वह सब बकवास है। हमने पूछा, फिर हम क्या करें? वे बोले--खाओ, पीओ और आनंद से रहो। बस, इसके सिवाय संसार में कुछ और नहीं है।
ओशो, कृपया उनकी इन उपदेशनाओं पर कुछ कहें।

शैलेंद्र! ईश्वर कोई व्यक्ति नहीं है। ईश्वर शब्द से व्यक्ति की भ्रांति पैदा होती है। ईश्वरत्व है, ईश्वर नहीं। भगवत्ता है, भगवान नहीं। यह सारा जगत दिव्यता से परिपूरित है। इसका कण-कण, रोआं-रोआं एक अपूर्व ऊर्जा से आपूरित है। लेकिन कोई व्यक्ति नहीं है जो संसार को चला रहा हो। हमारी ईश्वर की धारणा बहुत बचकानी है। हम ईश्वर को व्यक्ति की भांति देख पाते हैं। और तभी अड़चनें शुरू हो जाती हैं। जैसे ही ईश्वर को व्यक्ति माना कि धर्म पूजा-पाठ बन जाता है; ध्यान नहीं, पूजा-पाठ, क्रिया-कांड, यज्ञ-हवन। और ऐसा होते ही धर्म थोथा हो जाता है। किसकी पूजा? किसका पाठ? आकाश की तरफ जब तुम हाथ उठाते हो, आंखें उठाते हो, तो वहां कोई भी नहीं है। तुम्हारी प्रार्थनाओं का कोई उत्तर नहीं आएगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रार्थना व्यर्थ है। इसका इतना ही अर्थ है कि प्रार्थना के उत्तर की प्रतीक्षा व्यर्थ है। प्रार्थना अपने आप में आनंद है; साधन नहीं है, साध्य है। अभिव्यक्ति है तुम्हारे भीतर उठे हुए कृतज्ञता के भाव की।
इस विश्व ने तुम्हें इतना दिया है--बिन मांगे दिया है; तुम्हारी पात्रता भी नहीं है, वह सब भी दिया है! सौंदर्य को देखने वाली आंखें दी हैं; संगीत को सुनने वाले कान दिए हैं; प्रेम को अनुभव करने वाला हृदय दिया है। जीवन के रहस्यों को प्रतीति करने वाली प्रज्ञा दी है। जीवन के आत्यंतिक केंद्र का साक्षात्कार करने की, समाधि की क्षमता दी है। और क्या चाहिए? और क्या मांगोगे? तुम जो मांगोगे बहुत छोटा होगा। काश, तुमने मांगा होता तो बहुत कम आशा है कि तुमने समाधि की क्षमता मांगी होती। बहुत कम आशा है कि तुमने सौंदर्य की प्रतीति मांगी होती, कि तुमने संगीत का अनुभव मांगा होता, कि तुमने काव्य की स्फुरणा मांगी होती। तुमने कुछ दो कौड़ी की चीजें मांगी होतीं--धन, पद, प्रतिष्ठा। तुमने एक बड़ा मकान मांगा होता, बड़ी दुकान मांगी होती, बैंक में बड़ा खाता मांगा होता।
अच्छा ही है अस्तित्व ने तुमसे नहीं पूछा--क्या चाहिए? अस्तित्व ने तुमसे बिना पूछे तुम्हें दिया है। और इतना दिया है कि तुम अगर हिसाब लगाने बैठोगे तो हिसाब न लगा पाओगे। अकूत दिया है! लेकिन कोई व्यक्ति नहीं है जो दे रहा है; समष्टि है। यह सारा अस्तित्व ऊर्जा का एक अपूर्व अनुभव है। परमात्मा को अनुभव समझो। किस बात का अनुभव? इस बात का अनुभव कि सब जुड़ा है। जोड़ का नाम परमात्मा है। हम भिन्न-भिन्न नहीं हैं। हम सबके भीतर सेतु है; हम एक-दूसरे से जुड़े हैं। घास की छोटी सी पत्ती महासूर्यों से जुड़ी है। सुबह सूरज न निकले, पत्ती हरी न रह जाए। सुबह सूरज न निकले, तुम्हारे आंगन में फूल न खिलें। रात चांद-तारे न हों, दुनिया बदल जाए। लाखों प्रकाश-वर्ष दूर जो तारे हैं, वे भी छोटी से छोटी चीज से संयुक्त हैं, नहीं तो सब बिखर जाए। यह सब बंधा चल रहा है। यह रास, यह नृत्य किसी सुर में बद्ध है, किसी लय में आबद्ध है; उस लय का नाम परमात्मा है। उस लय में तुम भी आबद्ध हो जाओ तो तुम्हारी आबद्धता का नाम प्रार्थना है, ध्यान है।
तुम उस लय से दूर-दूर चलो, छिटके-छिटके, अलग-अलग, तो तुम दुख में रहोगे।

मेरे दुख की यही परिभाषा हैः यह जो परम समारोह चल रहा है, यह जो महोत्सव चल रहा है, इससे जो अलग-थलग है, जो अपनी ढाई चावल की खिचड़ी अलग पका रहा है...
अंग्रेजी में एक शब्द है ईडियट। वह शब्द बड़ा प्यारा है! साधारणतः तो उसका अर्थ होता है मूढ़; लेकिन जिस मूल शब्द से वह आता है, जिस मूल धातु से पैदा होता है, उसका अर्थ होता हैः जो अपनी खिचड़ी अलग पका रहा है। ईडियट का मतलब होता हैः जो अपने ढंग से जीने की कोशिश कर रहा है--पृथक। जो अहंकार में जी रहा है वह ईडियट है। जो समस्त के साथ नहीं, समस्त के विपरीत जी रहा है वह ईडियट है। जो धारा के साथ नहीं बह रहा, धारा के विपरीत जा रहा है, वही मूढ़ भी है। जो धारा के साथ बहने लगा, वही ज्ञानी है।
और इस धारा में चांद-तारे हैं। और इस धारा में समुद्र हैं। और इस धारा में पृथ्वियां हैं। और इस धारा में पशु हैं, पक्षी हैं, मनुष्य हैं। इस धारा में सब कुछ है। इस धारा में क्या नहीं है! और तुम हो कि अपने को अलग-थलग किए खड़े हो--सिकुड़े, डरे, कि कहीं धारा तुम्हें डुबा न ले! तुम अपने को बचाना चाहते हो--अस्मिता की तरह, अहंकार की तरह। यही तुम्हारा दुख है। और जब तुम अपने को अहंकार की तरह बचाओगे तो मृत्यु का भय पकड़ेगा। क्योंकि अगर अलग हो तो डर पैदा होगा कि मरना पड़ेगा। जिस व्यक्ति ने जाना कि मैं अलग नहीं हूं, उसकी मृत्यु का भय गया। न जन्म के पहले मैं अलग था, न जन्म के बाद अलग हूं, न मृत्यु के बाद अलग होऊंगा। अस्तित्व तो सदा है।
इसलिए उन्होंने ठीक ही कहा कि--"वही है, और उसके अलावा कुछ और नहीं।" लेकिन वही से तुम किसी ईश्वर को मत समझ लेना। वही का अर्थ है-- लयबद्धता। वही का अर्थ है--संगीत। इस संगीत में डूबो। इस संगीत के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। जिस भांति हो सके अपने को हटा लो, बीच में मत खड़े होओ। जिस भांति हो सके अपने को विदा दे दो, अंतिम नमस्कार कर लो। अहंकार तोड़े हुए है, निरअहंकार जोड़ देगा। जोड़ का नाम योग है। और जहां योग है वहां समाधि है।
समाधि शब्द को समझते हो? समाधान से बना है। आ गया परम समाधान! आधियां- व्याधियां गईं; समाधि आई। समस्याएं गईं, प्रश्न गए; मौन आया, निःशब्द, आनंद आया। तुम्हारे भीतर एक झरना फूट पड़ा! जैसे कोयल गाती है, ऐसे तुम गा उठे, तो प्रार्थना सच्ची है। जैसे वृक्षों में फूल खिलते हैं, ऐसे तुम्हारे प्राणों में फूल खिल जाएं, तो ध्यान सच्चा है।
मगर ये फूल, ये गीत तुम्हारी मौजूदगी के कारण नहीं खिल पा रहे हैं। तुम जितने मौजूद हो, परमात्मा उतना गैर-मौजूद है। तुम जितने गैर-मौजूद हो जाओगे, परमात्मा उतना मौजूद हो जाएगा।
उन्होंने ठीक कहा कि--"संसार को चलाने वाला कोई नहीं है।"
संसार चैतन्य है। चलाने वाले की जरूरत तो तब होती है जब संसार जड़ हो।
तो फिर कोई चेतन चाहिए जो संसार को चलाए। फिर द्वंद्व पैदा होता है, द्वैत पैदा होता है। फिर एक स्रष्टा और सृष्टि। लेकिन परमात्मा स्रष्टा नहीं है--सृजनात्मकता है।
तुम एक काम करो, तुम्हें बहुत लाभ होगाः सभी संज्ञाओं को क्रियाओं में बदल दो। स्रष्टा नहीं, सृजनात्मकता। और तुम परमात्मा को समझने में ज्यादा सफल हो पाओगे। नर्तक नहीं, नृत्य; गायक नहीं, गीत; वादक नहीं, वादन-- तुम सारी संज्ञाओं को क्रियाओं में बदल दो।
निश्चित ही फिर तुम परमात्मा की प्रतिमा न बना सकोगे। और जहां प्रतिमा गई वहां मंदिर गए, पूजागृह गए। फिर पूजा एक आंतरिक आयाम लेगी। फिर पूजा किसी प्रतिमा की नहीं, फिर पूजा एक भाव होगा--धन्यवाद का। फिर पूजा आंख बंद करके होगी। फिर तुम वृक्षों से तोड़ कर फूल नहीं चढ़ाओगे और न मिट्टी के दीये जलाओगे। जलाओगे तुम प्राणों का दीया और चढ़ाओगे तुम चेतना के फूल। और यह सब भीतर हो जाएगा। इसके लिए एक कदम भी बाहर उठाने की जरूरत न पड़ेगी।
ठीक कहा उन्होंनेः "कोई नहीं है बनाने वाला, कोई नहीं है चलाने वाला।
सब अपने से चल रहा है।"
जो भी जानते हैं, ऐसा ही कहेंगे। मगर न जानने वाले को बड़ी अड़चन होती हैः सब अपने से कैसे चल रहा है?

हमारे सोचने के ढंग हमें मजबूर करते हैं कि कोई चलाने वाला होना चाहिए। लेकिन कभी तुम यह भी सोचते हो कि फिर चलाने वाले को कौन चलाएगा? चलाने वाला तो अपने से चलेगा न! जब अंततः अपने से चलाने की बात स्वीकार करनी ही है तो उसे धक्के देकर और आगे क्यों ले जाना? व्यर्थ की उलझन क्यों खड़ी करनी?
इसलिए बुद्ध ने और महावीर ने भी यही कहाः कोई चलाने वाला नहीं है, सब अपने से चल रहा है। इसलिए लाओत्सु ने भी यही कहाः सब अपने से चल रहा है। बुद्ध ने तो धर्म का अर्थ ही कहा है--नियम, महानियम--एस धम्मो सनंतनो! यह शाश्वत नियम है, व्यक्ति नहीं।
जैसे चीजें नीचे की तरफ गिरती हैं। तो न्यूटन ने खोजा गुरुत्वाकर्षण
का नियम। अब ऐसा नहीं है कि जमीन के भीतर छिपा हुआ कोई आदमी बैठा है, कि जैसे ही फल पके कि उन्हें खींच लेता है; कि तुमने पत्थर ऊपर फेंका कि उसने जल्दी से नीचे खींचा। जमीन में कोई छिपा नहीं बैठा है। गुरुत्वाकर्षण कोई व्यक्ति नहीं है, गुरुत्वाकर्षण नियम है।
जैसे गुरुत्वाकर्षण नियम है ऐसे ही परमात्मा नियम है। धर्म का अर्थ-- नियम। धर्म का अर्थ--स्वभाव। चलना इस जगत का स्वभाव है। होना इस जगत का स्वभाव है।
लेकिन तब तुम पूछोगेः फिर नास्तिक-आस्तिक में भेद क्या रहा? नास्तिक
भी कहता है ईश्वर नहीं, बुद्ध भी कहते हैं ईश्वर नहीं, महावीर भी कहते हैं ईश्वर नहीं।
इसीलिए तो हिंदू महावीर और बुद्ध पर बहुत नाराज हुए। उन्होंने उनके पैर नहीं टिकने दिए इस देश में। क्योंकि वे तो पंडित-पुरोहित के धंधे को जड़ से काटे डाल रहे थे। अगर ईश्वर नहीं है तो मंदिर नहीं है, तीर्थ नहीं है। अगर ईश्वर नहीं है तो पूजा नहीं है, पाठ नहीं है। अगर ईश्वर नहीं है तो पुरोहित की क्या जरूरत है? ईश्वर गया तो सारा धर्म का जाल गया।
लेकिन बुद्ध ने जो कहा था, वह है परम सत्य और विज्ञान से उसका मेल खाता है। इसलिए पश्चिम में बुद्ध का प्रभाव बढ़ता जाता है। रोज बढ़ता जाता है। कुछ आश्चर्य न होगा कि विज्ञान रोज-रोज बुद्ध से सहमत होता जाए--हो रहा है।
पच्चीस सौ वर्ष पहले की गईं बुद्ध की घोषणाएं विज्ञान के द्वारा धीरे- धीरे स्वीकृत होती जा रही हैं।
नास्तिक-आस्तिक में भेद क्या है? तुम पूछोगे। हिंदुओं ने तो महावीर
को और बुद्ध को नास्तिक ही कह दिया।
गलत है यह बात। बुद्ध और महावीर से बड़े आस्तिक पृथ्वी पर दूसरे नहीं हुए। एच.जी.वेल्स ने बुद्ध के संबंध में लिखा है--महत्वपूर्ण वचन लिखा है-- सो गॉडलाइक एंड सो गॉडलेस! इतना ईश्वर जैसा व्यक्ति और इतना ईश्वर-विहीन! भगवत्ता जैसे साकार उतर आई हो! और फिर भी बुद्ध कहते हैंः कोई ईश्वर नहीं है! क्यों? फिर हम चार्वाक और बुद्ध को एक ही साथ तौलें, एक ही तराजू पर? गलती हो जाएगी।
चार्वाक कहता हैः कोई ईश्वर नहीं है, कोई ईश्वरत्व भी नहीं है। कोई भगवान भी नहीं है, कोई भगवत्ता भी नहीं है। जगत चेतना से शून्य है। चार्वाक की इसी धारणा को आधुनिक युग में कार्ल मार्क्स ने पुनरुक्त किया है कि चेतना केवल एक उप-उत्पत्ति है, इपी फिनामिनन। यह पदार्थ से पैदा हुई चीज है। चार्वाक ने पुराने ढंग से कहा था, पांच हजार साल पहले ढंग और थे, लेकिन बात उसने यही कही थी। उसने यही कही थी जैसे कि पान हम बनाते हैं--चूना, कत्था, सुपारी। चूना अलग से खाओ तो भी तुम्हारे ओंठ रंगेंगे नहीं। और पान अलग से चबाओ तो भी तुम्हारे ओंठ रंगेंगे नहीं। और कत्था अलग से खाओ तो भी तुम्हारे ओंठ रंगेंगे नहीं। और सुपारी अलग से खाओ तो भी तुम्हारे ओंठ रंगेंगे नहीं। लेकिन सब के मिलन से जब तुम पान बनाते हो तो तुम्हारे ओंठ सुर्ख रंग जाते हैं। यह सुर्खी कहां से आ रही है? यह सुर्खी अलग नहीं है--चार्वाक ने कहा था--यह पान में मिलाई गई चार-पांच चीजों के जोड़ से पैदा हो रही है।
यह पांच हजार साल पुराना ढंग था कहने का। कार्ल मार्क्स का ढंग नया है, लेकिन कोई नई बात नहीं है। कार्ल मार्क्स कह रहा है कि पदार्थ के एक विशिष्ट मिलन से चेतना पैदा हो जाती है और पदार्थ जब बिखर जाता है तो

चेतना बिखर जाती है। पदार्थ मूल है; चेतना केवल एक उप-उत्पत्ति है। चेतना वस्तुतः नहीं है, उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं है। पदार्थ का अपना अस्तित्व है।
काश, कार्ल मार्क्स वापस लौट आए तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाएगा! क्योंकि आधुनिक विज्ञान कह रहा हैः पदार्थ है ही नहीं! जितना पदार्थ को खोजा है उतना ही पाया कि पदार्थ नहीं है। पदार्थ तो कब का गया! पदार्थ अब बचा नहीं है विज्ञान की भाषा में। अब तो पदार्थ की जगह ऊर्जा है, शक्ति है। और ऊर्जा बड़ी और बात है।
वही बुद्ध कह रहे हैं। जीवन ऊर्जा है। और इस ऊर्जा में अचेतना नहीं है। इस ऊर्जा में केंद्र पर चेतना छिपी है। उस चेतना को खोज लेना परमात्मा को खोज लेना है। इसलिए परमात्मा की खोज पूजा नहीं बनती, ध्यान बनती है।
परमात्मा की खोज अगर तुम्हें मंदिर ले जाए, तीर्थ ले जाए, तो गलत हो गई।
परमात्मा की खोज अगर तुम्हें अपने भीतर ले जाए तो सही हो गई।
उन्होंने ठीक कहा कि कोई नहीं है चलाने वाला; सब चल रहा है, अपने से चल रहा है, अपने से हो रहा है, कोई कुछ कर नहीं रहा है।
इससे यह मत समझ लेना कि उन्होंने कोई नास्तिकता की बात कही। यह आस्तिकता का परम रूप है। यह अद्वैतवाद का निचोड़ है। एक ही है! स्रष्टा और सृष्टि दो नहीं हैं; स्रष्टा अपनी सृष्टि में समाया हुआ है। स्रष्टा और सृष्टि के बीच ऐसा भेद नहीं है जैसा चित्रकार और उसके चित्र में होता है। जब चित्रकार चित्र बनाता है, जैसे-जैसे चित्र बनता जाता है, चित्र चित्रकार से अलग होता जाता है। पहले तो चित्रकार के भीतर था, उसकी कल्पना में था, उसके मानस-लोक में था, उसका मानस-पुत्र है। लेकिन जैसे-जैसे कैनवास पर रंग उतरते हैं, चित्र अलग होता जाता है। फिर चित्रकार मर जाएगा तो भी चित्र रहेगा। मूर्तिकार मर जाएगा तो भी मूर्ति रहेगी। मूर्ति पृथक हो गई, चित्र पृथक हो गया।
ईश्वर और उसकी सृष्टि में ऐसा संबंध नहीं है। इसलिए हमने जो पुरानी
से पुरानी धारणा ईश्वर की की है, वह है नटराज की, नर्तक की। तुमने समझा, देखा, नटराज की धारणा में तुमने कभी झांका? नृत्य की एक खूबी है जो किसी और चीज की नहीं। नृत्य और नर्तक को अलग नहीं किया जा सकता; वह उसकी खूबी है। चित्रकार और चित्र अलग हो जाते हैं, मूर्तिकार और मूर्ति अलग हो जाते हैं। लेकिन नर्तक और नृत्य एक हैं; उनमें भेद नहीं किया जा सकता। नर्तन बचेगा नहीं अगर नर्तक न हो। और अगर नर्तन न हो तो नर्तक कहां? उसको फिर नर्तक नहीं कहा जा सकता; वह तो जब नृत्यमय होता है तभी नर्तक होता है।
तो नृत्य और नर्तन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। सृष्टि और स्रष्टा एक
ही सिक्के के दो पहलू हैं। और अगर दोनों को जोड़ना हो एक ही शब्द में तो हमें कहना चाहिए--सृजनात्मकता, क्रिएटिविटी। भूल जाओ पुराना शब्द सृष्टि, और भूल जाओ पुराना शब्द स्रष्टा। दोनों संज्ञाओं को एक ही क्रिया में डूब जाने दो--सृजनात्मकता। और तब तुम ईश्वर की अनूठी प्रतीति कर पाओगे, तब तुम्हें चारों तरफ वह मौजूद मिलेगा। एक बीज फूट कर अंकुरित हो रहा है--यह सृजनात्मकता है। एक नदी बह कर सागर की तरफ जा रही है; बादल घिर आए हैं और बूंदाबांदी हो रही है; एक स्त्री गर्भवती हो गई है, मां बनने के करीब आ रही है--यह सब सृजनात्मकता है--एक चित्रकार के मन में एक सपना सघन हो रहा है, एक मूर्तिकार के भीतर मूर्ति रूप ले रही है।
मेरे देखे, अगर तुम परमात्मा के निकट आना चाहते हो तो सत्यनारायण की कथा तुम्हें उसके निकट नहीं लाएगी। क्योंकि तुम्हारी सत्यनारायण की कथा में न तो सत्य है और न नारायण है; वह तो पंडित-पुरोहित का व्यवसाय है। यज्ञ-हवन, आग में फेंका गया घी, गेहूं, चावल--पागलपन है, विक्षिप्तता है, अपराध है। देश भूखा मरता हो और हजारों मनों का अनाज, सैकड़ों पीपे घी प्रतिवर्ष बहाया जाता है अग्नि में। तुम पागल हो! यह धर्म नहीं है।
जलानी है अपने भीतर की मशाल। और उसके जलाने का सुगमतम जो उपाय है, वह
है सृजनात्मक हो जाओ। जीवन को वैसा ही मत छोड़ो जैसा तुमने पाया था। जीवन को कुछ सुंदर करो। उठाओ तूलिका, जीवन को थोड़े रंग दो! उठाओ वीणा, जीवन को थोड़े स्वर दो! पैरों में बांधो घूंघर, जीवन को थोड़ा नृत्य दो! प्रेम दो! प्रीति दो! तोड़ो उदासी। जीवन को थोड़ा उत्सव से भरो! और तुम जितने

सृजनात्मक हो जाओगे उतना ही तुम पाओगे, तुम परमात्मा के करीब आने लगे।
क्योंकि परमात्मा अर्थात सृजनात्मकता। उसके करीब आने का एक ही उपाय हैः सृजन।
इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि तुम्हारे पंडित-पुजारी से तो कवि, चित्रकार, मूर्तिकार, अभिनेता कहीं ज्यादा करीब होता है परमात्मा के। अभिनेता जब अभिनय में अपने को पूरी तरह डुबा देता है तो वह प्रार्थना का क्षण है। चित्रकार जब चित्र बनाने में बिल्कुल लवलीन हो जाता है, तल्लीन हो जाता है, भूल ही जाता है अपने को--तब वह प्रार्थना का क्षण है। जब भी तुम सृजन की किसी क्रिया में अपने को पूरा गला देते हो, पिघला देते हो--मिट जाते हो। कवि, चित्रकार, अभिनेता, मूर्तिकार कहीं ज्यादा करीब हैं परमात्मा के--पंडित, पुरोहितों, दार्शनिकों, विचारकों से।
लेकिन कवि हो, चित्रकार हो, मूर्तिकार हो, बस क्षण भर को डूबता है, फिर बाहर निकल आता है; उसकी डुबकी गहरी नहीं।
तीन छोटे-छोटे बच्चे बात कर रहे थे। एक बच्चे ने कहा कि तैरना तो कोई मेरे पिताजी से सीखे, क्या डुबकी मारते हैं!
दूसरे ने कहा, तुम्हारे पिताजी, डुबकी! फिर निकलते हैं या नहीं?
निकल आते हैं।
उसने कहा, डुबकी मेरे पिताजी मारते हैं। आधा-आधा घंटे तक पता ही नहीं चलता।
तीसरे ने कहा, यह भी कोई डुबकी है! मेरी पिताजी ने डुबकी सात साल पहले मारी थी, अभी तक नहीं लौटे। और मैं मां से पूछता हूं, कब लौटेंगे? मां कहती है, अब वे आने वाले नहीं, वे डुबकी मार ही गए। डुबकी इसको कहते हैं!
कवि की डुबकी ऐसी है--गया और आया, गया और आया। छूता है, उछलता है, चरणों
तक पहुंच जाता है; मगर गिर जाता है वापस। इसलिए हमारे देश में हमने दो शब्द उपयोग किए हैं, दोनों का अर्थ तो एक ही होता है--कवि और ऋषि। कवि हम उसे कहते हैं, जो डुबकी मारता है और निकल आता है, जो क्षण भर को श्वास को साध लेता है। और ऋषि हम उसे कहते हैं, जो डुबकी मारता है तो फिर निकलता नहीं--जो डूब ही जाता है; जो परमात्मा से वापस नहीं लौटता!
पलटू ने कहा न, जैसे नमक की पुतली डूब जाए सागर में, फिर क्या लौटेगी?
गल जाएगी, एक हो जाएगी, एकरूप हो जाएगी! लेकिन कवि एक महत्वपूर्ण कदम है ऋषि होने के लिए।
मैं अपने संन्यासी को निरंतर कहता हूंः सृजनात्मक बनो।
पुराने दिनों का संन्यास असृजनात्मक हो गया था, इसलिए मुर्दा हो गया था। उसका परमात्मा से संबंध टूट गया था। तुम्हारे पुराने महात्मा क्या सृजन किए हैं? तुम धीरे-धीरे असृजनात्मक क्रियाओं को बड़ा सम्मान देने लगे थे, क्योंकि तुम्हें सृजनात्मकता का बोध ही भूल गया। लोग प्रशंसा करते हैं कि फलां महात्मा बहुत बड़ा है। क्या करता है? क्या किया उसने? क्योंकि वह नग्न है। क्योंकि वह जब सर्दी पड़ती है तो कपड़े नहीं पहनता। क्योंकि वह धूप में खड़ा होता है। जब लोग छाया तलाशते हैं तब वह धूप में खड़ा होता है। और जब लोग धूप तलाशते हैं तब वह सर्दी में खड़ा होता है। ये विक्षिप्तता के लक्षण हैं। यह आदमी दुखवादी है। यह आदमी रुग्ण है, इसको मानसिक चिकित्सा की जरूरत है।
कोई इसलिए महात्मा है कि कांटों पर सोता है। अब कांटों पर सोना, यह कोई सहज वृत्ति नहीं है। यह तो बहुत असहज है, अस्वाभाविक है। कोई पशु- पक्षी को तुमने देखा कि पहले कांटों की सेज बनाए और फिर उस पर लेटे? सिवाय आदमियों में, इस तरह के पागल और कहीं नहीं पाए जाते। पशु-पक्षी हंसते होंगे देख कर तुम्हारे महात्माओं को जब वे कांटे बिछा कर लेटते होंगे। इस आदमी के भीतर कहीं कुछ गलत हो गया। यह आत्मघाती है। यह शनैः-शनैः आत्मघात कर रहा है। तुम आदर देते हो इन बातों को। तुम आदर देते हो क्योंकि कोई आदमी लंबे उपवास करता है, भूखा मरता है। इसके भूखे मरने से क्या सृजन होता है? इसके भूखे मरने से इसके चारों तरफ विक्षिप्तता की तरंगें पैदा होती हैं, और कुछ पैदा नहीं होता। यह अपने चारों तरफ रुग्ण कीटाणु फैलाता है। मनोवैज्ञानिक इस तरह के रोग को मैसोचिज्म कहते हैं, स्वदुखवाद।

दुनिया में दो तरह के दुष्ट हैं। एक तो वे हैं जो दूसरों को सताते हैं। और एक वे हैं जो स्वयं को सताते हैं। इन दोनों तरह के दुष्टों में कोई भी धार्मिक नहीं है। ये दोनों ही हिंसक हैं। दूसरे को सताओ कि स्वयं को सताओ, सताने में हिंसा है। और हिंसा विध्वंस है, सृजन नहीं।
मैं अपने संन्यासी को एक नया आयाम दे रहा हूं--एक स्वस्थ आयाम। न तो दूसरे को सताओ, न स्वयं को सताओ--सताना पाप है। चाहे तुम दूसरे की देह को सताओ, तो भी तुम परमात्मा को सता रहे हो। और चाहे तुम अपनी देह को सताओ, तो भी तुम परमात्मा को सता रहे हो। क्योंकि सभी देहों में वही व्याप्त है। क्या तुम सोचते हो...
बड़े आश्चर्य की बात है! ये तुम्हारे महात्मागण कहते हैं, सब जगह परमात्मा व्याप्त है--सिर्फ इनको छोड़ कर! तो जब ये भूखे मरते हैं, किसको भूखा मार रहे हैं? और जब ये रात भर जागते हैं तो किसको जगाए रखे हैं? और जब ये कांटों की सेज पर सोते हैं तो किसको कांटों की सेज पर सुलाते हैं? परमात्मा को ही! क्या इनके भीतर छोड़ कर और सब जगह परमात्मा है?
और इस तरह की प्रक्रियाओं का क्या प्रयोजन है? दुनिया में वैसे ही दुख बहुत है, और दुख न बढ़ाओ। ऐसे ही दुनिया कांटों की सेज है, और क्या कांटे तलाशते हो! ऐसे ही दुनिया में चिता पर चढ़े हो, और क्या चिता खोजते हो! लेकिन अतीत का संन्यास दुखवादी था, हालांकि तुम उसे त्यागवादी कहते थे। त्याग अच्छा शब्द है दुखवाद के लिए, बस और कुछ भी नहीं। भोगी दूसरे को सताता है, त्यागी खुद को सताता है। मगर सताने का गणित एक है। दोनों से सावधान! न तो दूसरे को सताना, न अपने को सताना। सताना ही नहीं! सब जगह परमात्मा है। बन सके तो सुख की तरंगें फैलाना! बन सके तो मधुर कोई गीत गाना! बन सके तो रसपूर्ण कोई नृत्य पैदा करना!
संन्यासी सृजनात्मक होना चाहिए--कवि हो, चित्रकार हो, मूर्तिकार हो, नर्तक हो। या जो भी करे, उसे इस ढंग से करे, ऐसी तल्लीनता से करे कि उसका छोटा-छोटा कृत्य भी ध्यान हो जाए।
इस महत प्रयोग को करने के लिए ही यहां सारा आयोजन चल रहा है। तुम यहां संन्यासियों को जूते बनाते देखोगे; स्नानगृहों, पाखानों को साफ करते देखोगे; बढ़ई का काम करते देखोगे। लेकिन एक अदभुत प्रफुल्लता से! क्योंकि यह कृत्य नहीं है--यह प्रभु का अर्चन है, यह उसका पूजन है! जब कृत्य पूजन बन जाएं तभी जानना कि तुम संन्यासी हुए हो।
उन्होंने ठीक कहाः "सब हो रहा है।"
जीवन में कुछ चीजें हैं जो करने से होती हैं। वे ही चीजें व्यर्थ चीजें हैं। तुम एक झाड़ के नीचे बैठ जाओ तो धन अपने आप तुम्हारी तरफ नहीं आएगा, तुम्हें तलाशता हुआ नहीं आएगा। तुम एक झाड़ के नीचे बैठे रहो... कहानियों की बात छोड़ दो कि जब वह देता है तो छप्पर फाड़ कर देता है। किसी को छप्पर फाड़ कर नहीं देता। छप्पर भला फाड़ दे, और कुछ नहीं आता। फिर छप्पर अपना बनाओ। छप्पर कई के फाड़ देता है, लेकिन छप्पर फाड़ कर किसी को देता नहीं। तुम इस भ्रांति में मत रहना कि पुरानी बच्चों की कहानियां पढ़ते रहो और भ्रांतियां खाते रहो कि एक आदमी एक नगर में प्रवेश करता है सुबह-सुबह, उसको पकड़ कर ले जाया जाता है और सम्राट बना दिया जाता है। तुम दिल्ली में जितनी बार चाहे जाओ-आओ... नेतागण दिल्ली आते-जाते रहते हैं, दिन-रात चक्कर ही मारते रहते हैं दिल्ली का--इसी आशा में शायद कि किसी दिन कोई कहानी सच हो जाए, कि गए दिल्ली और एकदम लोगों ने पकड़ा और कहा कि नहीं, आप राष्ट्रपति हो जाएं! कि प्रधानमंत्री हो जाएं!
धन और पद ऐसे नहीं आते। धन और पद तो छीनने होते हैं, झपटने होते हैं; लड़ना होगा, झगड़ना होगा, प्रतिस्पर्धा करनी होगी, ईर्ष्या में जलना होगा और औरों को जलाना होगा। लेकिन कुछ चीजें हैं जो अपने आप आती हैं। जैसे आनंद, जैसे प्रेम, जैसे ध्यान, जैसे प्रार्थना, जैसे परमात्मा, जैसे स्वर्ग--ये अपने आप आते हैं। इनके आने का ढंग और है। ये कृत्य से नहीं आते। ये कर्ता- भाव से नहीं आते। जब तुम अकर्ता-भाव में होते हो। जब तुम इतने शांत होते हो कि न कोई कृत्य होता है, न कुछ करने की आकांक्षा होती है; जब तुम परिपूर्ण शून्य होते हो; जब तुम्हारे भीतर सब थिर होता है, कोई हलन-चलन नहीं, कोई वासना नहीं, कोई भविष्य नहीं, कुछ पाने की आकांक्षा नहीं, कुछ होने की

आकांक्षा नहीं; तब तुम्हारे भीतर कुछ उतरना शुरू होता है--जो अलौकिक है! उस अलौकिक को तुम जो नाम देना चाहो... महावीर ने उसे कहा कैवल्य; बुद्ध ने उसे कहा निर्वाण। तुम परमात्मा कहना चाहो, परमात्मा प्यारा शब्द है, परमात्मा कहो। मगर ध्यान रखना, व्यक्ति मत बना लेना परमात्मा को। परमात्मा व्यक्ति नहीं है। व्यक्ति में तो सीमित हो जाएगा। परमात्मा समष्टि है। उसे असीम रखो।
परमात्मा सागर है, जिसके कोई ओर-छोर नहीं हैं। और परमात्मा को पाने का
एक ही ढंग है कि तुमने पाने के जितने ढंग सीख रखे हैं वे छोड़ दो। तुम एक ऐसी अवस्था में आ जाओ जहां पाने की कोई आकांक्षा नहीं, अभीप्सा नहीं। होना काफी हो जहां। बस तब तुम समझ पाओगे कि सब हो रहा है। जब तुम अपने भीतर परमात्मा को उतरते देखोगे, आनंद को--और तुमने कुछ किया नहीं, तुम चुपचाप बैठे थे--तो तुम कैसे कह सकोगे मेरा कृत्य है? तुम यही कह सकोगे--प्रसाद है!
इसलिए जानने वालों ने परमात्मा को प्रसाद कहा है। प्रसाद का अर्थ होता है--जो मिला; जो उतरा अनंत से; जो आकाश से आया है और तुममें समा गया है। उस दिन तुम यह भी जान पाओगे कि सब अपने से हो रहा है।
वृक्षों को कोई खींच-खींच कर बड़ा थोड़े ही कर रहा है! बादलों में कोई पानी भर-भर कर थोड़े ही भेज रहा है! सब अपने से हो रहा है। और सब अपने से हो रहा है, यह जीवन के रहस्य को बढ़ाता है, कम नहीं करता। तुम जब कहते हो ईश्वर कर रहा है, तो तुम जीवन के रहस्य को मार डालते हो।
असल में, मनुष्य का मन हमेशा रहस्य की हत्या करने में संलग्न रहता है।
वह उत्तर चाहता है। वह कहता है, कोई उत्तर मिल जाए ताकि रहस्य खतम हो। किसने बनाया संसार? कोई उत्तर नहीं है, क्योंकि संसार कभी बना नहीं--सदा से है और सदा रहेगा, शाश्वत है, आदि-अंतहीन है। मगर इससे जिज्ञासा हल नहीं होती। लेकिन कोई कह देता है कि ब्रह्माजी ने बनाया; थोड़ा हलका हुआ मन कि चलो किसी ने बनाया। अब ब्रह्माजी की तलाश करें! अब जिसने जगत बनाया है उसकी ही पूजा करें, उसका ही पाठ करें, उसकी ही खुशामद करें, स्तुति करें। जिसने जगत बनाया है वही सम्हालेगा।
फिर कौन सम्हाल रहा है? अगर कोई कहे कोई नहीं सम्हाल रहा है, यह अपने
से सम्हला हुआ है... अधर? तो मन में बड़ी मुश्किल हो जाती है।
एक होटल में एक आदमी आकर रुका। मैनेजर ने कहा कि क्षमा करें, यद्यपि
एक कमरा खाली है मगर हम दे न सकेंगे, आप किसी दूसरी होटल में चले जाएं।
उस आदमी ने कहा, कारण? कमरा खाली है, आप दे क्यों न सकेंगे?
उन्होंने कहा, उसी कमरे के नीचे एक राजनेता रुके हुए हैं। और अभी पद
पर हैं, इसलिए जरा-जरा सी बात में खीझ जाते हैं। अगर ऊपर तुम जरा जोर से चले और जरा धमक भी उनको सुनाई पड़ गई तो वे पूरी होटल को हिला देते हैं। तो हमने ऊपर का कमरा खाली ही रखा है। अब कोई आदमी ऊपर रहेगा तो कभी बर्तन भी गिर सकता है हाथ से, कभी चलने में जोर से भी चल सकता है।
उस आदमी ने कहा, आप निश्चिंत रहें। मैं दिन भर तो बाजार में उलझा रहूंगा, रात बारह बजे लौटूंगा और चार बजे सुबह की गाड़ी मुझे पकड़नी है। तो चार ही घंटे मुश्किल से मैं सो सकूंगा। सोने में क्या आप सोचते हैं मेरे सपनों की आवाज उनको सुनाई पड़ेगी? चुपचाप आकर सो जाऊंगा, सुबह चार बजे उठ कर गाड़ी पकड़ लेनी है, कोई अड़चन न आएगी।
बात मैनेजर को भी जमी। कमरा उसे दे दिया गया। बारह बजे थका-मांदा दिन
भर मेहनत करके वह लौटा। बिस्तर पर बैठ कर उसने एक जूता खोला और जोर से पटक दिया। जैसे ही जोर से पटका फर्श पर, उसे याद आई कि कहीं नेता जी नाराज न हो जाएं। तो उसने दूसरा जूता आहिस्ता से रख कर और कंबल ओढ़ कर सो गया।
कोई दो घंटे बाद नेताजी ने आकर उसका दरवाजा खटखटाया। दो बजे रात! उठा, हैरान हुआ कि कौन जगा रहा है! दरवाजा खोला, नेता जी खड़े थे, एकदम भनभना रहे थे। उसने कहा कि क्षमा करें, क्या गड़बड़ हो गई? मैं तो दो घंटे से सोया हुआ हूं। कुछ भूल-चूक हुई?
उन्होंने कहा, हां हुई! दूसरे जूते का क्या हुआ? वह मेरे सिर पर लटक रहा है। पहला तुमने पटका, वह मैंने कहा कि ठीक है, सज्जन आ गए। मगर दूसरे का क्या हुआ? फिर मैंने कई तरह से अपने को समझाने की कोशिश की कि अपने को क्या

मतलब! समझो कि एक जूता पहने ही सो गया होगा। तो भी, एक जूता पहने सो रहा है कोई आदमी, यह भी मन को बेचैन करता है। कि समझो एक जूता होगा ही नहीं। यह कैसे हो सकता है? कि समझो उसने धीरे से रख दिया होगा। मगर क्यों वह धीरे से रखेगा, जब पहला उसने जोर से पटका! हजार तरह से समझाने की कोशिश की, लेकिन जिज्ञासा है कि बढ़ती चली जाती है; जब तक उत्तर न मिल जाए मैं सो नहीं सकता। आखिर मजबूरी में मुझे आना पड़ा। इतना तुम बता दो कि दूसरे का क्या हुआ, ताकि मैं शांति से सो सकूं।
ऐसी मन की अवस्था है। तुमसे कोई कह देता है, ब्रह्माजी ने बनाया। न उन्हें ब्रह्माजी का पता है, न तुम्हें। खुद ब्रह्माजी को भी अपना पता है, यह भी संदिग्ध है। क्योंकि बौद्ध कथाएं हैं कि जब बुद्ध ज्ञान को उपलब्ध हुए तो जो पहला व्यक्ति उनके दर्शन को आया वह ब्रह्मा। और उसने आकर उनके चरणों में सिर रखा और कहा कि मुझे आत्मज्ञान दीजिए।
ब्रह्मा को भी पता नहीं है! यह तो बौद्धों ने मजाक किया है कि यह ब्रह्मा को भी अभी पता नहीं है कि वे कौन हैं। जिसको अपना ही पता नहीं वह सारी दुनिया को बना रहा है! यह तो सिर्फ मजाक है, व्यंग्य है--पुराने ढंग का मजाक है।
फिर कौन सम्हाल रहा है? तो उत्तर चाहिए। नहीं तो अधर में लटके हुए हैं! तो बड़ी घबड़ाहट हो जाएगी। तो विष्णु सम्हाल रहे हैं। फिर कौन इसका अंत करेगा? तो शिव इसका अंत करेंगे। बस निश्चिंत हो गए। तुम्हें तीनों उत्तर मिल गए। परमात्मा के तीन चेहरे बना लिए, त्रिमूर्ति बना ली।
तुम देखते हो, ब्रह्मा के बहुत मंदिर नहीं हैं, सिर्फ एक मंदिर है भारत में! क्यों? क्योंकि कौन फिक्र करे, उनका तो काम खतम हो गया। लेना- देना क्या उनसे! विष्णु के बहुत मंदिर हैं--क्योंकि सब राम, कृष्ण, विष्णु के अवतार हैं; ये सब मंदिर विष्णु के हैं। राम को पूजो कि कृष्ण को पूजो, तुम पूज तो विष्णु को ही रहे हो; ये विष्णु के ही रूप हैं। जो सम्हाल रहा है, उसको लोग पूजते हैं।
अब मोरारजी को कोई पूजता है? हालांकि चरणसिंह केवल सम्हाल रहे हैं-- केयरटेकर। कोई ज्यादा कुछ बड़े बल में नहीं हैं, मगर पूछते लोग चरणसिंह को हैं। पूछना पड़ेगा। विष्णु--केयरटेकर। तो विष्णु के मंदिर ही मंदिर।
और फिर शिव जी के तो बहुत। गांव-गांव, झाड़-झाड़ के नीचे, जहां देखो वहीं उनकी पिंडी रख दी। क्योंकि इनसे निपटना ही पड़ेगा आज नहीं कल, ये अंत हैं, इनके हाथ में अंत है। अब जो गुजरी सो गुजरी, कम से कम अंत तो सम्हल जाए! इसलिए लोग शिव की पूजा कर रहे हैं, बड़ी स्तुतियां हो रही हैं। जगह-जगह मंदिर बना लिए हैं, जगह-जगह पिंडियां स्थापित कर दी हैं। जितने शिव के मंदिर हैं और पिंडियां हैं, उतनी किसी की भी नहीं।
ये तुम्हारे चित्त की सूचनाएं हैं। ब्रह्मा का एक मंदिर। किसको लेना- देना है! बात ही खत्म हो गई, एक बना दो और झंझट से छुटकारा करो। विष्णु के बहुत, शिव के और भी बहुत। क्योंकि जो जीवन को सम्हाल रहा है उसका तो ध्यान रखना पड़ेगा। और फिर जो मृत्यु का मालिक है, विध्वंस का, उसको तो राजी रखो। नहीं तो कौन सी झंझट में डाले, कौन सी मुसीबत खड़ी कर दे, क्या पता! कम से कम तुम्हारे सिर पर तांडव नृत्य न करे, इतना ही बहुत है! ये तुम्हारे मनोविज्ञान के प्रतीक हैं। न कहीं कोई ब्रह्मा हैं, न कोई विष्णु हैं, न कोई महेश हैं। अस्तित्व अपने से चल रहा है।
मगर इस बात को समझने के लिए कि अस्तित्व अपने से चल रहा है, बड़ी ध्यान
की अवस्था चाहिए। क्योंकि ध्यान में तुम देखोगे कि सब अपने से हो रहा है। ध्यान में तुम्हें यह प्रतीति इतनी स्पष्ट हो जाएगी कि सब अपने से हो रहा है, कि फिर यह कोई तार्किक सिद्धांत नहीं रहेगा, तुम्हारा अनुभव होगा। ऐसे ही अनुभव से उन्होंने कहा कि सब अपने से हो रहा है।
और तुम पूछते हो शैलेंद्र कि उन्होंने कहा कि--"कर्म का सिद्धांत इत्यादि सब बकवास है।"
एक अर्थ में बकवास ही है, क्योंकि कर्म का सिद्धांत मनुष्य की चालबाजी है। आज आग में हाथ डालोगे, आज जलोगे कि अगले जन्म में जलोगे? अभी पानी में डूबोगे तो अभी मरोगे कि अगले जन्म में मरोगे? गाली अभी दोगे और फल अगले जन्म में पाओगे! इतना फासला? कार्य और कारण में इतना फासला? अकारण

मालूम होता है। यह आदमी की चालबाजी है। यह बचने का उपाय है। क्योंकि बीच में अगर समय हो तो इंतजाम की सुविधा रहेगी। अभी गाली दे लेंगे, फिर कल क्षमा मांग लेंगे, या मंदिर में जाकर पूजा कर लेंगे, या गंगास्नान कर आएंगे, या कुछ पुण्य कर देंगे, दान कर देंगे। मंदिर बनवा देंगे, भगवान पर नया स्वर्ण-मुकुट चढ़वा देंगे। बीच में समय है तो सुविधा है। कुछ कर लेंगे। भगवान की खुशामद कर लेंगे।
और सदियों से तुम्हें समझाया गया है कि भगवान खुशामदियों को पसंद करता है, स्तुतिकारों को पसंद करता है। तो तुम्हारी पूजा और तुम्हारी प्रार्थना क्या है? जरा गौर से देखोगे तो तुम खुद ही चौंकोगे, बड़े शर्मिंदा होओगे। क्या कर रहे हो तुम प्रार्थना में? तुम खुशामद कर रहे हो। यह खुशामद वैसी ही है जैसी राजा-महाराजाओं की चलती थी। तुम दरबारी बन रहे हो।
मैंने सुना है कि बल्ख और बुखारा के नवाब ने अपने एक वजीर को दिल्ली दरबार संदेश लेकर भेजा--मैत्री का संदेश। जिस दरबारी को भेजा था, दिल्ली के दरबार में जब वह आया तो सम्राट ने पूछा कि बल्ख और बुखारा का नवाब और मैं, दोनों के बीच तुम क्या तुलना करते हो?
दिल्ली का मामला! अब बल्ख और बुखारा तो दूर रह गए, वह नवाब भी दूर रह गया। यह वजीर यहां अकेला, अब यह तुलना भी क्या करे! इसने कहा, बात आप क्या पूछते हैं! बल्ख और बुखारा का नवाब दूज का चांद, आप पूर्णिमा के चांद। आपकी उसकी क्या तुलना!
सम्राट बहुत प्रसन्न हुआ। उसने बहुत हीरे-जवाहरातों से उसको भेंट भेजी और मैत्री स्वीकार की। लेकिन उसके पहले खबर पहुंच गई। उसके भी दुश्मन थे दरबारियों में। दरबारियों में दुश्मन न हों तो और कौन हों! दरबारी एक-दूसरे के दुश्मन होते ही हैं! खबर पहले पहुंच गई बल्ख और बुखारा। नवाब को बताया गया कि अपमान हो गया। जिस आदमी को भेजा वह गद्दार निकला, धोखेबाज निकला। उसने दिल्ली के सम्राट को पूर्णिमा का चांद कहा और आपको दूज का चांद बताया--जो कि कभी दिखाई भी पड़ता है, कभी दिखाई भी नहीं पड़ता। दूज का चांद भी कोई चांद है? जरा सी रेखा थोड़ी देर को दिखती है और गई! उसने बहुत अपमान कर दिया है।
यह तो बहुत भेंट इत्यादि लेकर आ रहा था, खुश था; लेकिन जैसे ही दरवाजे
पर प्रविष्ट हुआ, वैसे ही पकड़ लिया गया, हथकड़ियां पहना दी गईं। दरबार में हथकड़ियों में लाया गया। सम्राट ने कहा, तुमने मेरा अपमान किया है!
लेकिन दरबारी तो दरबारी होते हैं--होशियार, कुशल स्तुति में। उसने कहा, आप समझे नहीं। आप मतलब नहीं समझे।
अब बल्ख और बुखारा आ गया, अब कहां दिल्ली! अब यह दूसरी झंझट सामने है।
तो उसने कहा, तुम मतलब साफ करो। तुमने दिल्ली के सम्राट को पूर्णिमा
का चांद और मुझे दूज का चांद बताया।
उसने कहा कि निश्चित ही। क्योंकि पूर्णिमा के चांद का अर्थ है कि अंत
का समय आ गया। अब खात्मा! अब आगे कुछ नहीं। और दूज का चांद बढ़ता हुआ चांद है मालिक, आप समझे नहीं बात को! आपका भविष्य है, उसका कोई भविष्य नहीं। हथकड़ियां खोल दी गईं, और हीरे-जवाहरात बरसा दिए गए।
सम्राटों के साथ दरबारी जो करते रहे हैं वही तुम पूजा-पाठ में कर रहे हो--कि हम पतित हैं, तू पतितपावन है! हम महापापी हैं, तू महाकरुणावान है! तुम दोनों बातें झूठ कह रहे हो। न तो तुम मानते हो कि तुम महापापी हो। जरा दिल पर हाथ रख कर कहो। तुम कहोगेः मैं और महापापी! अरे मुझसे बड़े-बड़े पड़े हैं। मैं किस गिनती में आता हूं! वह तो कहने के लिए कह रहा हूं। अपने को महापापी कह रहा हूं, ताकि तुमको महाकरुणावान कह सकूं। वह तो तुम्हारी प्रशंसा बढ़ाने के लिए अपने मुंह पर कालिख पोत रहा हूं, ताकि तुम बिल्कुल गोरे मालूम पड़ो, तुलना में गोरे मालूम पड़ो। लेकिन दिल से तो पूछो।
ये स्तुतियां वहां काम नहीं करेंगी, क्योंकि वहां कोई है नहीं सुनने वाला। वहां से कोई उत्तर न आएगा। और तुम्हारी प्रार्थनाओं के उत्तर नहीं आते; इससे दुनिया में नास्तिकता पैदा होती है। हजारों साल में तुमने प्रार्थनाएं की हैं, उत्तर नहीं आए; इसलिए नास्तिकता बढ़ती गई है। नास्तिकता बढ़ाने का बुनियादी कारण तुम्हारे पंडित-पुरोहित, उनके द्वारा

दिए गए आश्वासन हैं। चूंकि वे सब आश्वासन असफल हो जाते हैं। हां, कभी-कभी संयोगवशात कोई तीर लग जाता है। अंधेरे में भी चलाओ तो लग जाए कभी-कभी। कोई प्रार्थना नहीं सुनी जाती; कभी-कभी लग जाता है।
कल मैंने अखबार में एक खबर पढ़ी, मैं हैरान हुआ। अखबार में मैंने खबर पढ़ी, एक व्यक्ति ने पत्र लिखा है संपादक के नाम कि वह जहांगीर अस्पताल में भर्ती होने गया था। बड़े दिनों से बीमारियों से पीड़ित था। मैं--मेरे पिता बीमार थे--उनको देखने गया था। उनको देख कर मैं बाहर निकलता था... मुझे तो पता ही नहीं वह आदमी कहां खड़ा था। उसने लिखा है कि मैं वहीं खड़ा था और उसने हाथ जोड़ कर नमस्कार किए और मैंने उसे आशीर्वाद दिया--और तत्क्षण उसकी सारी बीमारियां दूर हो गईं! भर्ती होने गया था जहांगीर अस्पताल में, कैंसिल करवा दिया, घर लौट आया। सारी बीमारियां समाप्त हो गईं।
अब यह अंधेरे में लग गया तीर है। मुझे पता ही नहीं उनका। अब वह मुझे फंसा रहा है। अब ऐसे दूसरे उपद्रवी भी यहां आने लगेंगे। लक्ष्मी बहुत डरी थी। उसने कहा कि यह अखबार में खबर छपी है, अब दफ्तर में दिक्कत होगी। लोग आएंगे कि हमें आशीर्वाद चाहिए। बीमारों की कतार लग सकती है।
और मुझे तो यहां तक भी शक है कि वह मुझे मिला। जहां तक तो संभव है-- स्वभाव, क्योंकि वे ही वहां मेरे पिता की देख-रेख में थे। क्योंकि मैंने न तो किसी को आशीर्वाद दिया, मुझे याद ही नहीं पड़ता। और मेरी याददाश्त इतनी कमजोर नहीं है। जहां तक तो उसने स्वभाव के चरण छुए होंगे, स्वभाव ने आशीर्वाद दे दिया। मन ने मान लिया। मन मान ले तो क्रांतियां घट सकती हैं। क्योंकि सौ में से नब्बे प्रतिशत बीमारियां तो मानसिक होती हैं। अगर मन मान ले तो नब्बे प्रतिशत बीमारियां तो तत्क्षण तिरोहित हो सकती हैं। मानने की बात है।
तो तुम्हारी प्रार्थनाएं अगर कभी पूरी भी हो जाती हों तो तुम यही समझना कि लग गया तीर अंधेरे में। कोई परमात्मा तुम्हारी प्रार्थनाएं नहीं सुन रहा है, लेकिन तुम्हारी प्रार्थना अगर प्रगाढ़ता से की जाए तो तुम्हारे मन को प्रभावित करती है। और तुम्हारा मन प्रभावित हो तो रूपांतरण होते हैं।
लेकिन परमात्मा को बीच में लेने की कोई जरूरत नहीं है। तब तुम प्रार्थना को ज्यादा परिपूर्णता से कर सकोगे। कोई सुनने वाला नहीं है, यह जान कर तुम्हारी प्रार्थना ज्यादा से ज्यादा ध्यानमय होने लगेगी। तुम्हारी प्रार्थना धीरे-धीरे किसी की स्तुति न रह जाएगी, बल्कि एक भाव-दशा बनेगी। और तुम तब चौबीस घंटे प्रार्थनापूर्ण रह सकते हो। न घंटी बजानी पड़ेगी, न धूप-दीप जलानी पड़ेगी--एक प्रार्थना का भाव, अस्तित्व के प्रति एक कृतज्ञता का भाव, कि इसने इतना दिया है मुझ अपात्र को! अमृत बरसाया है मुझ पर! मेरी कोई योग्यता न थी, मैंने कुछ अर्जित न किया था! उन्होंने ठीक कहा। और उन्होंने यह बताया कि सब कर्म की बातचीत बकवास है। कर्म फल लाता है, लेकिन तत्क्षण। तुम बुरा करते हो, उसी क्षण तुम बुरा पाते हो। तुम भला करते हो, उसी क्षण तुम भला पाते हो। तुम प्रीति करते हो, तुम्हारे भीतर सुगंध फैल जाती है। तुम क्रोध करते हो, तुम्हारे भीतर दुर्गंध फैल जाती है। तुम क्रोध करते हो, तुम नरक में उतर गए। तुमने प्रेम किया, तुम स्वर्ग में उठ गए। यह प्रतिक्षण हो रहा है। इसको कल पर टालने की जरूरत नहीं है; कल पर टालना बकवास है। और इसको अगले जन्म पर टालना पंडित-पुरोहित का शड्यंत्र है। उस शड्यंत्र में बड़ी खूबियां हैं। तुम गरीब हो तो वह कहता है, तुम्हारे पिछले जन्मों के पापों के कारण तुम गरीब हो। तो इसका अर्थ तो यह हुआ कि रूस में किसी ने पिछले जन्म में पाप नहीं किए, क्योंकि अब रूस में कोई गरीब नहीं है। तुम अमीर हो तो वह कहता है, तुमने पिछले जन्म में पुण्य किए हैं। तो रूस में किसी ने पिछले जन्म में पुण्य भी नहीं किए, क्योंकि कोई अमीर भी नहीं है। बीस करोड़ का मुल्क, पिछले जन्म इन लोगों के हुए कि नहीं हुए? कुछ तो किया होगा! अच्छा किया होगा, बुरा किया होगा। कुछ तो किया होगा!
लेकिन पंडित ने ईजाद कर रखी थी यह तरकीब। यह गरीब के लिए अफीम थी कि गरीब संतुष्ट रहता था कि क्या करूं, पिछले जन्मों के कर्मों का फल भोग रहा हूं! और आशा रखता था कि अब अच्छे कर्म करूंगा तो अगले जन्म में फल पाऊंगा

अच्छे। और अच्छे कर्म का क्या अर्थ था? आज्ञा मानो पुरोहित की! अच्छे कर्म का अर्थ था, जो शास्त्र कहे वैसा करो। अच्छे कर्म का अर्थ था कि शूद्र के घर में पैदा हुए हो तो शूद्र ही रहो, ब्राह्मण होने की कोशिश मत करना। जो तुम्हें मिला है उसमें ही जी लो, ताकि अगले जन्म में तुम्हारे ऊपर बगावत का कोई दोष न रहे, तो अगले जन्म में तुम्हें अच्छे-अच्छे फल मिलेंगे। अगले जन्म का क्या पता! न तुम्हें पिछले जन्म का पता है, न अगले जन्म
का पता है।
और अमीर को कह रहा था कि तूने पिछले जन्म में खूब दान-पुण्य किया था,
तू अब भी दान-पुण्य किए जा, तो अगले जन्म में और अमीर होगा; जितना देगा उससे करोड़ गुना पाएगा। तो अमीर से पैसे ले रहा था, दान करवा रहा था। दान ही किसको करवाएगा? सारे शास्त्रों में लिखा है कि दान ब्राह्मण को करना चाहिए! ब्राह्मण को किया दान ही असली दान है। जैन शास्त्रों में लिखा है, जैन मुनि को दिया गया आहार ही सबसे बड़ा पुण्य है। जैन मुनि ही लिख रहे हैं! ब्राह्मण ही लिख रहे हैं! बौद्ध ग्रंथों में लिखा हुआ है कि बौद्ध भिक्षु को दिया गया दान ही सबसे बड़ा दान है। बौद्ध ग्रंथ नहीं कहते कि जैन मुनि को दिया गया दान दान है, या ब्राह्मण को दिया गया दान दान है; यह तो सब अज्ञान है। यह भी खूब मजा रहा!
तो धनी को समझा रहे हैं कि हमें और दो। और गरीब को समझा रहे हैं कि तू अपनी गरीबी में तृप्त रह, बगावत मत करना।
इन्हीं पंडितों के कारण पांच हजार साल में भारत में कोई क्रांति नहीं हुई। भारत दुनिया में सबसे क्रांति-विहीन देश है। मुर्दा से मुर्दा! और क्रांतियां भी होती हैं तो यहां कचरा क्रांतियां होती हैं। अभी जयप्रकाश नारायण की जो क्रांति हुई, इतनी कचरा क्रांति दुनिया में कहीं होती नहीं। उस कचरा क्रांति का एकमात्र परिणाम हुआः जयप्रकाश खुद सठिया गए और सारे मुल्क को सठिया गए। जयप्रकाश डायलिसिस पर जी रहे हैं और पूरा मुल्क डायलिसिस पर जी रहा है। क्रांति! और क्रांति पर जो फूल खिला--मोरारजी देसाई! ऐसी क्रांति तुमने देखी? चौरासी साल के बूढ़े आदमी सिंहासन पर विराजमान हो गए, यह तो खूब क्रांति हुई! अब कोई और बड़ी क्रांति करे और कब्रें खोद कर मुर्दों को बिठा दे तो वह महाक्रांति होगी।
क्रांति की तैयारियां चल रही हैं। अब तीसरी क्रांति की तैयारियां चल रही हैं। वह राजनारायण करेंगे। और चौथी क्रांति की तैयारी चल रही है, वह आई.एस.जौहर करेंगे। अब तुम देखना क्रांतियां, बड़े-बड़े मसखरे करने वाले हैं क्रांतियां, जोकर क्रांति करेंगे।
किसी ने पूछा है कि कल आपने एक कविता में उल्लेख किया कि पता नहीं कौन आएगा चुनाव के बाद--मेल या फीमेल! आपका क्या कहना है?
बहुत मुश्किल सवाल है, क्योंकि ऐसा भी कोई आ सकता है जो न मेल हो, न फीमेल हो।
राजनारायण से बंबई में किसी पत्रकार ने पूछा कि आई. एस. जौहर के संबंध में आप क्या कहते हैं?
राजनारायण ने कहा, हू इ.ज शी? ये देवीजी कौन हैं?
उस पत्रकार ने कहा, अरे हद्द हो गई! आपको यह भी पता नहीं कि ये देवीजी नहीं हैं, देवता हैं।
राजनारायण ने ठीक जवाब दिया। सार आ गया। इस देश में क्रांति न तो हुई
है अभी तक, न अभी जल्दी कोई आशा है। क्योंकि क्रांति के लिए जो आधार चाहिए वे नहीं हैं। और क्रांति के लिए बाधा, सबसे बड़ी बाधा अगर है तो कर्म का सिद्धांत है। और कर्म के सिद्धांत में जयप्रकाश जैसा आदमी भी भरोसा करता है। आज दो-ढाई साल से निरंतर जसलोक अस्पताल के डाक्टर प्राणपण से जयप्रकाश को बचाने की कोशिश कर रहे हैं। लेकिन इस बार जयप्रकाश जब पटना लौटे और जब उनका स्वागत किया गया एयरपोर्ट पर तो उन्होंने क्या कहा मालूम है! उन्होंने कहा, गंगा मइया की कृपा से मैं बच गया!
जसलोक अस्पताल के डाक्टर मेहनत करें और बचते हैं गंगा मइया की कृपा से! गंगा मइया तो उनके मकान के पीछे से ही बहती है, फिर जसलोक के लोगों को क्यों परेशान करते हो? जब जस गंगा मइया का होना है तो जसलोक पर कृपा करो। तुम्हारे आने से जसलोक की हालत खराब हो जाती है, क्योंकि तब फिर जसलोक

जसलोक नहीं रह जाता, दिल्ली से घिर जाता है। दिल्ली में दो सभाएं हैं-- राज्यसभा और लोकसभा। फिर एक तीसरी सभा शुरू हो जाती है--जसलोक-सभा।
क्योंकि फिर सब नेता यहां, सब खुशामदी यहां। और जस है गंगा मइया का। जयप्रकाश जैसा आदमी कहे कि गंगा मइया के कारण बचा हूं, तो इस मुल्क में क्रांति होगी? गंगा मइया क्रांति करेंगी? गंगा मइया क्रांति होने देंगी? गंगा मइया तो सारी क्रांति-विरोधी शक्तियों का अड्डा हैं।
नहीं, इस देश के पास क्रांति के मूल आधार नहीं हैं। और सबसे बड़ी बुनियादी जो दिक्कत है, वह है कर्म का सिद्धांत। हर आदमी अपने कर्म का फल भोग रहा है, क्रांति का सवाल कहां है? बिरला अमीर हैं--पुण्यों के कारण। और तुम गरीब हो--अपने पापों के कारण। बात खतम हो गई। हमने तो हल कर लिया है मसला, अब क्रांति कहां! अब तो क्रांति का मतलब यह होगा कि कर्म के सिद्धांत के विपरीत जाओ। और कर्म के सिद्धांत के विपरीत जरा सम्हल कर जाना, क्योंकि वह परमात्मा के विपरीत जाना है। उसके फल भयंकर होंगे। नरक में सड़ोगे सदियों तक। नरक में जलते हुए कड़ाहों में चढ़ाए जाओगे।
इस देश में पंडित ने और राजनीतिज्ञ ने समझौता कर रखा है; क्रांति हो नहीं पाती।
मैं भी कहता हूं कि कर्म का सिद्धांत, जिस तरह से अब तक निरूपित किया गया है, गलत है। उसे एक नया अर्थ दिया जाना चाहिए। और वह अर्थ है--तत्क्षण का, आने वाले जीवन का नहीं। अभी तुम जो करोगे, अभी पाओगे। प्रतिपल जीओ! क्या भविष्य, क्या अगला जन्म, क्या पिछला जन्म?
और इसीलिए उन्होंने कहाः खाओ, पीओ और आनंद से रहो।
प्रतिपल जीओ! मौज से जीओ! जीवन को एक व्यर्थ व्यथा मत बनाओ। और जीवन की छोटी-छोटी चीजों में धन्यता अनुभव करो--खाने में भी, पीने में भी! प्रत्येक जीवन की छोटी से छोटी चीज को पवित्रता दो, पुण्यता, पावनता। जीवन का प्रत्येक कृत्य धार्मिक हो उठे। खाना-पीना भी पूजा बन जाए।
कबीर ने कहा हैः खाऊं-पिऊं सो सेवा! कि मैं खुद खाता-पीता हूं, यह परमात्मा की सेवा है। क्योंकि वही तो भीतर बैठा है। उठूं-फिरूं सो परिक्रमा। मैं उठता हूं, चलता हूं, फिरता हूं--यह उसकी परिक्रमा हो गई। मैं कोई विश्वनाथ के मंदिर जाने वाला नहीं हूं--कबीर ने कहा--कि परिक्रमा करूं परमात्मा की जाकर। मेरा उठना, बैठना, चलना उसकी परिक्रमा है, क्योंकि वह सब जगह मौजूद है। उसके लिए तलाशने कहीं जाने की कोई जरूरत नहीं है।
और मैं जिस धर्म का सूत्रपात कर रहा हूं, वह धर्म इस जीवन के सारे सुखों को स्वीकार करता है, त्याग नहीं करता। त्याग में मेरा भरोसा नहीं है। त्याग हार चुका। त्याग काफी कोशिश कर चुका। हमने काफी समय दिया त्याग को। कम से कम दस हजार साल का इतिहास हमने त्याग के लिए दिया। और परिणाम क्या है? हाथ में क्या आया?
मैं त्यागवादी नहीं हूं। लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं कि मैं भोगवादी हूं। भोग को प्रार्थना बनाओ। भोग को ध्यान बनाओ। तुम्हारे जीवन का भोग भी परमात्मा को अर्पित करो। और भोग को सीढ़ी बनाओ--परमात्मा के मंदिर की सीढ़ी। त्याग को तुमने सीढ़ी बना कर देख लिया, सीढ़ी नहीं बनी। मैं कहता हूंः भोग को परमात्मा के मंदिर की सीढ़ी बनाओ। और भोग परमात्मा के मंदिर की सीढ़ी बनेगा, क्योंकि अस्तित्व, पदार्थ और अध्यात्म दोनों की एकता है।
तो अस्तित्व एकता होनी चाहिए विपरीत की। तुम भोगो, लेकिन ऐसे भोगो कि अछूते रहो। खाओ-पीओ, फिर भी साक्षी रहो। खाना-पीना ही मत हो जाना। उतने पर ही जो समाप्त हो गया, वह अज्ञानी है, वह नास्तिक है, वह चार्वाकवादी है। जो उसके विपरीत भाग गया, वह भगोड़ा है, पलायनवादी है। भोगो और फिर भी साक्षी रहो। भोग के बीच जो साक्षी रह सकता है, तूफान के बीच उसने शांत रहने की कला सीख ली है।

दूसरा प्रश्नः ओशो! धन और पद के संबंध में आपके क्या विचार हैं?

न तो धन बुरा है, न पद। ध्यान हो तो सब सुंदर है; ध्यान न हो तो कुछ भी सुंदर नहीं है। ध्यान हो तो धन भी सृजनात्मक है। ध्यानी के पास धन हो तो जगत का हित ही होगा, अकल्याण नहीं, कल्याण ही होगा, मंगल ही होगा। क्योंकि

धन ऊर्जा है। धन शक्ति है। धन बहुत कुछ कर सकता है। मैं धन-विरोधी नहीं हूं। मैं उन संत-महात्माओं की कतार का हिस्सा नहीं हूं जो तुमको समझाते रहे कि बचो धन से! भागो धन से! वे बातें कायरता की बातें हैं।
मैं कहता हूंः जीओ धन में, लेकिन ध्यान का विस्मरण न हो। ध्यान भीतर रहे, धन बाहर, फिर कोई चिंता नहीं है। फिर तुम कमलवत हो। फिर पानी में रहोगे और पानी तुम्हें छुएगा नहीं।
मैं कोई पद का भी दुश्मन नहीं हूं। आखिर दुनिया चलनी है तो लोगों को कहीं न कहीं तो होना होगा। कहीं न कहीं तो होना ही होगा।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दोपहर घर आया। जल्दी आ गया। आना था सांझ को। जैसे ही भीतर आया, उसने किसी का छाता रखा देखा। छाता उठा कर देखा, चंदूलाल का नाम लिखा है। जूते भी किसी के देखे, चंदूलाल के ही हैं। पुराना परिचित मित्र। भीतर गया। पत्नी थोड़ी घबड़ाई सी है। उसने पूछा, चंदूलाल कहां है? पत्नी ने कहा, कैसे चंदूलाल? यहां कौन चंदूलाल?
उसने एक-एक अलमारी खोल कर देखी। फ्रिज में छिपे थे चंदूलाल, तो उसने फ्रिज खोला। चंदूलाल उकड़े-सिकुड़े उसके भीतर बैठे थे। एक तो ठंड और घबड़ाहट। मुल्ला ने कहा, चंदूलाल, तुम और यहां!
चंदूलाल बाहर निकल आया और उसने कहा कि भई, कहीं न कहीं तो होना ही पड़ेगा। आखिर जब हूं तो जैसे वहां वैसे यहां, कहीं न कहीं तो होना ही पड़ेगा। इसमें इतना तूल-तवाल मचाने की क्या जरूरत है?
प्रत्येक व्यक्ति को कहीं न कहीं तो होना ही पड़ेगा। इतना बड़ा संसार है, इसका विस्तार, इसका काम, इसकी व्यवस्था... किसी को कहीं न कहीं तो होना ही पड़ेगा। बस इतना ही ख्याल रहे, पद से तादात्म्य न हो। तुम चाहे राष्ट्रपति हो जाओ तो भी राष्ट्रपति मत बन जाना। जानना--एक काम है, जो पूरा किया। जब राष्ट्रपति की कुर्सी पर बैठो तो राष्ट्रपति का काम कर देना और जैसे ही कुर्सी से नीचे उतरो और घर आओ, भूल-भाल जाना सब। दुकान पर दुकानदार हो जाना, घर आकर सब भूल-भाल जाना। लोग भूलते ही नहीं।
मैं कलकत्ता में एक घर में मेहमान होता था। मित्र थे मेरे, हाईकोर्ट
के जज थे। उनकी पत्नी ने मुझसे कहा कि और किसी से मैं कह भी नहीं सकती, लेकिन आपसे कहूंगी और आप ही इन्हें समझाइए। हम परेशान हो गए हैं। ये घर से जाते हैं तो घर में हलकापन आ जाता है। बच्चे हंसने लगते हैं, खेलने लगते हैं, मैं भी प्रसन्न हो जाती हूं। और जैसे ही इनकी कार आकर पोर्च में रुकती है कि एकदम सन्नाटा फैल जाता है; बच्चे एक-दूसरे को खबर कर देते हैं कि डैडी आ गए। मैं भी घबड़ा जाती हूं। एकदम घर में उदासी छा जाती है, मातम छा जाता है।
मैंने कहा, मैं समझा नहीं, बात क्या है?
उसने कहा, बात यह है कि ये चौबीस घंटे न्यायाधीश बने बैठे रहते हैं।
ये मेरे साथ बिस्तर पर भी रात जब सोते हैं तो न्यायाधीश की तरह। मेरे पति नहीं हैं ये, ये न्यायाधीश हैं। और इनकी हर बात की आज्ञा वैसे ही मानी जानी चाहिए, जैसे कि अदालत में ये खड़े हों। इनके सामने हर-एक मुजरिम है। बच्चे ऐसे खड़े होते हैं डरे हुए कि कोई अपराधी खड़े हों, कि चोर-बदमाश खड़े हों। इन्होंने ऐसा रोब बांध रखा है घर में, इससे हम सब परेशान हैं और ये भी सुखी नहीं, क्योंकि इतने तनाव में रहते हैं।
यह ढंग न हुआ पद पर होने का। यह पागलपन हुआ।
एक नेताजी पागलखाने में भाषण देने गए। भाषण के बाद पागलखाने के इंचार्ज ने बतलाया कि आज आपके भाषण के बाद पागल जितने खुश नजर आ रहे हैं, इतना प्रसन्न तो मैंने उन्हें अपनी पूरी जिंदगी में नहीं देखा। पच्चीस साल मुझे नौकरी करते हो गए।
नेताजी यह सुन कर मुस्कुराए, बोले, भाषण ही आज मैंने ऐसा दिया था कि अच्छे-अच्छे तक बिना प्रभावित हुए नहीं रह सकते; फिर ये तो बेचारे पागल हैं।
ऐ भाई, जरा यहां आओ--एक पागल को बुला कर राजनीतिज्ञ ने पूछा--तुम लोग आज इतने खुश क्यों नजर आ रहे हो?

पागल ने कहा, खुश क्यों न हों नेताजी, हमारा महासौभाग्य कि आप यहां पधारे। यह हमारा इंचार्ज तो एकदम पागल है, जब कि आप बिल्कुल हमारे जैसे लगते हैं।
पद तुम्हें पागल न बनाए। पद तुम्हें विक्षिप्त न करे। पद का उपयोग हो। तुम पद के साथ तादात्म्य न कर लो। आखिर कुछ लोगों को तो काम करना ही पड़ेगा, किसी को कलेक्टर होना पड़ेगा, किसी को कमिश्नर होना पड़ेगा, किसी को गवर्नर होना पड़ेगा, किसी को स्टेशन मास्टर, किसी को हेडमास्टर, किसी को प्रिंसिपल, किसी को वाइस चांसलर...
ये काम तो सब चलते रहेंगे। लेकिन ध्यानी इन कामों से तादात्म्य नहीं करता। इन कामों के कारण अकड़ नहीं जाता। ध्यानी जानता है कि जूता बनाने वाला चमार उतना ही उपयोगी काम कर रहा है जितना राष्ट्रपति। इसलिए अपने को कुछ श्रेष्ठ नहीं मान लेता, क्योंकि जूता बनाने वाला उतना अनिवार्य है जितना कोई और। इसलिए कोई हायरेरकी, कोई वर्ण-व्यवस्था पैदा नहीं होती कि मैं ऊपर, तुम नीचे; कोई सीढ़ियां नहीं बनतीं। सारे लोग, समाज के लिए जो जरूरी है, उस काम में संलग्न हैं। जिससे जो बन रहा है, जिसमें जिसको आनंद आ रहा है, वह कर रहा है। जिस दिन पद तुम पर हावी न हो जाए उस दिन पद में कोई बुराई नहीं।
और धन तुम्हारे जीवन का सर्वस्व न हो जाए। तुम धन को ही इकट्ठा करने में न लगे रहो। धन साधन है, साध्य न बन जाए। धन के लिए तुम अपने जीवन के और मूल्य सब गंवा न बैठो। तो धन में कोई बुराई नहीं है। मैं धन का निंदक नहीं हूं। मैं तो चाहूंगा कि दुनिया में धन खूब बढ़े, खूब बढ़े, इतना बढ़े कि देवता तरसें पृथ्वी पर जन्म लेने को!
लेकिन धन सब कुछ नहीं है। कुछ और भी बड़े धन हैं--प्रेम का, सत्य का, ईमानदारी का, सरलता का, निर्दोषता का, निर-अहंकारिता का। कुछ और भी धन हैं-- धन से भी बड़े धन हैं! कोहिनूर फीके पड़ जाएं, ऐसे भी हीरे हैं--हीरे वे भीतर के हैं! सब कुछ धन न हो जाए।
मैंने एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन से पूछा, नसरुद्दीन, सुना कि तुमने नई फर्म बनाई! कितने साझीदार हैं?
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, अब आपसे क्या छिपाना! चार तो अपने ही परिवार
के लोग हैं और एक पुराना मित्र। इस तरह पांच पार्टनर हैं।
मैंने पूछा, फर्म का नाम क्या रखा है?
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, मेसर्स मुल्ला एंड मुल्ला एंड मुल्ला एंड मुल्ला एंड अब्दुल्ला कंपनी।
मैंने कहा, नाम तो बड़ा अच्छा है, बड़ा सुंदर, मगर यह अब्दुल्ला कहां से बीच में आ टपका!
टपकाना ही पड़ा--दुखी स्वर में मुल्ला नसरुद्दीन बोला--पैसा तो सब उसी बेवकूफ का लगा है।
यहां मित्रता सब पैसे की है, संबंध सब पैसे के हैं। धन का यहां एक ही अर्थ है--लूटो जितना लूट सको, जिससे जितना लूट सको। तो फिर धन रोग है।
धन पैदा करो! धन सृजन करो! धन को लूटने का नुस्खा बहुत पुराना हो गया।
और इस देश में अभी वही नुस्खा चल रहा है। अभी हम धन का एक ही अर्थ लेते हैं कि दूसरे की जेब से निकाल लें। इससे कुछ हल नहीं होता; उसकी जेब से तुम्हारी जेब में आ जाता है, तुम्हारी जेब से दूसरा कोई निकाल लेता है, ऐसे जेबों में धन घूमता रहता है, लेकिन धन पैदा नहीं होता। अभी हमने यह नहीं सीखा कि धन का सृजन किया जाता है। अभी धन हमारे लिए शोषण का ही अर्थ रखता है।
जो सच में समृद्ध देश हैं, जैसे अमरीका, उन्हें पता है कि धन शोषण नहीं है, सृजन है। धन पैदा किया जाता है। दो सौ वर्षों में अमरीका ने सारी दुनिया को पीछे छोड़ दिया! हम दस हजार साल से चेष्टा में लगे हैं और भूखे मर रहे हैं और सड़ रहे हैं--और अमरीका दो सौ वर्षों में शिखर पर पहुंच गया! क्या कारण होगा? रूस भी, पचास-साठ साल क्रांति गुजर चुकी, तो भी अमीर नहीं हो पाया है, तो भी गरीब है। अमीर मिटा दिए गए, इसलिए गरीबों को अब ज्यादा बेचैनी नहीं है। क्योंकि--यह बड़े मजे की बात है, दुनिया बड़ी अजीब है--यहां अपनी गरीबी नहीं खलती, यहां दूसरे की अमीरी खलती है! इस देश में भी अगर

बिड़ला, टाटा, डालमिया, साहू, सिंघानिया, दस-बीस नाम हैं, ज्यादा तो हैं नहीं, इनको मिटा डालो तो गरीब बड़े प्रसन्न होंगे; अमीर नहीं हो जाएंगे, मगर बड़े प्रसन्न होंगे कि आ गया समाजवाद। गरीबी बंट गई। अमीरी तो है क्या जो बांटोगे? तुम्हारे बिड़ला-टाटा कहां खो जाएंगे, पता नहीं चलेगा। इनकी सारी संपत्ति भी बांट दोगे तो एक-एक आदमी के हाथ में क्या पड़ेगा?
मैंने सुना है, राकफेलर से एक भिखारी ने एक दिन आकर कहा कि तुमने बहुत लूटा। यह सारी संपत्ति बंट जानी चाहिए। मैं भिखारी ही नहीं हूं, मैं कम्युनिस्ट भी हूं।
राकफेलर ने कहा कि ठीक, तू हिसाब लगा। इतनी मेरे पास संपत्ति है, दुनिया में कितने लोग हैं?
उसने कहा कि दुनिया में कोई तीन अरब आदमी हैं।
एक-एक आदमी के हिस्से में कितना पड़ेगा?
एक-एक डालर, उस आदमी ने कहा।
राकफेलर ने एक डालर उसको निकाल कर दिया और कहा कि तू रस्ता लग, तेरा हिस्सा ले। अब दोबारा यहां मत आना। जो भी हिस्सा लेने आएगा उसको दे दूंगा। मगर एक-एक डालर अगर तीन अरब आदमियों के हाथ भी लग जाए तो कितनी देर चलने वाला है? इस तरह अमीरी को बांटने से कोई अमीरी नहीं आने वाली है। रूस गरीब का गरीब है; साठ साल की मेहनत के बाद भी बहुत निम्न तल पर जी रहा है। अमरीका का गरीब भी रूस के बड़े से बड़े अधिकारी, बड़े से बड़े शक्तिशाली व्यक्ति से ज्यादा समृद्ध है। कारण क्या है? अमरीका ने एक नई तरकीब खोजी। उसने धन का सृजन करना सीखा। धन सृजन करना चाहिए।
यहां लोग आते हैं--खासकर भारतीय मित्र जब यहां आते हैं--तो उनको यही हैरानी होती है कि यह सब चल कैसे रहा है?
यह तो अभी कुछ भी नहीं है। तुम दो-चार साल में देखोगे, दस हजार संन्यासियों की बस्ती और ऐसी समृद्ध जैसी कि कोई बस्ती दुनिया में कहीं न हो। धन पैदा किया जा सकता है। और हमारी भूमि किसी भूमि से गरीब नहीं है। हमारा देश किसी देश से गरीब नहीं है। मगर हम मूढ़ हैं और हम मूढ़तापूर्ण बातों को बहुत महत्वपूर्ण मानते हैं।
जैसे कि मैं अगर रोज झाड़ के नीचे बैठ कर दो घंटे चरखा कातूं तो तुम मुझको महात्मा मानोगे, हालांकि मैं मूढ़ता कर रहा हूं। चरखा तो बिजली कात सकती है, मैं क्यों कातूं? और मुझसे बहुत बेहतर कात सकती है। और दो घंटे में जो मैं कर सकता हूं वह बिजली नहीं कर सकती। मैं वह करूं जो मैं कर सकता हूं; बिजली को वह करने दूं जो बिजली कर सकती है। मगर अगर मैं चरखा कात-कात कर अपना कपड़ा बनाऊं और अपनी चादरें बनाऊं... अहा! तुम्हारा दिल बड़ा प्रसन्न होगा। तुम्हारी मूढ़ता इतनी पुरानी हो गई है कि तुम्हें होश ही नहीं है कि तुम क्या कर रहे हो। अगर मैं अधनंगा रहने लगूं तो तुम कहोगेः हां, ये हैं महात्मा! और जब तुम अधनंगों को महात्मा समझोगे तो तुमको अधनंगा रहना पड़ेगा, क्योंकि तुम जिसको आदर दोगे वैसे ही तुम रहोगे। तुम अगर उपवास करने वालों को आदर दोगे तो तुम्हें भूखा मरना पड़ेगा, क्योंकि तुम भूख का समादर कर रहे हो।
महात्मा गांधी ने दरिद्र को एक नया नाम दे दिया--दरिद्रनारायण। जब तुम दरिद्र को नारायण कहोगे तो मिटाओगे कैसे? भगवान को कोई मिटाता है? भगवान तो बचाना पड़ते हैं, उनकी तो रक्षा करनी पड़ेगी। दरिद्र को मिटाओगे कैसे? अछूत नाम अच्छा था; उसमें पीड़ा थी, उसमें दंश था, उसमें कांटा चुभता था। अछूत को मिटाना ही पड़ेगा। दरिद्रनारायण की तो पूजा करनी होती है। दरिद्रनारायण के तो पैर दबाओ। और उसको दरिद्र रखो, नहीं तो वह नारायण नहीं रह जाएगा; यह भी ख्याल रखना। क्योंकि अब लक्ष्मीनारायण के दिन गए, अब दरिद्रनारायण के दिन हैं।
हम गरीबी की पूजा करेंगे तो कैसे अमीर होंगे? और हम धन का तिरस्कार करेंगे... और तुम्हारे महात्मा यही समझाते रहे कि धन का तिरस्कार करो! धन पाप है, महापाप है! जब धन महापाप है तो धन पैदा होना बंद हो गया। कौन करे अपराध? कौन सड़े नरकों में?
मैं तुमसे कहता हूंः धन में कोई पाप नहीं है। धन का सृजन करना उतना ही पुण्य है जितना काव्य का सृजन करना, जितना चित्र का सृजन करना, जितना

संगीत का सृजन करना। शायद ज्यादा बड़ा पुण्य है धन का सृजन करना, क्योंकि धन हो तो और सब हो सकता है--काव्य हो सकता है, संगीत हो सकता है, ध्यान हो सकता है। धन हो तो हम कुछ और ऊंची खोजों में लग सकते हैं। पेट भरा हो तो ही वे खोजें हो सकती हैं। भूखे भजन न होहिं गोपाला।
मेरा कोई विरोध धन से नहीं है, कोई विरोध पद से नहीं है। पद से तादात्म्य न करना और धन को सिर्फ शोषण से मत पैदा करना। धन पैदा करने की, सृजन करने की कीमिया खोजो। अब तो कीमिया हमारे हाथ में है; मशीनें हैं, टेक्नॉलॉजी है। जमीन से हम उतना ले सकते हैं जितना चाहिए। गाएं उतना दूध दे सकती हैं जितना चाहिए। मगर उसकी हमें फिक्र ही नहीं है। यहां कोई उपवास नहीं करता कि गायों से ज्यादा दूध पैदा किया जाए। यहां उपवास करते हैं लोग कि गायों की हत्या न की जाए।
मैं नहीं कहता कि गायों की हत्या करो। यहां आदमी जी नहीं पा रहा है, तुम गायों को क्या जिलाओगे! विनोबा भावे का उपवास... मरी हुई, हड्डी-हड्डी गाएं जगह-जगह खड़ी दिखाई पड़ेंगी। यह उनको तुम दुख दोगे, सुख नहीं दे सकते। आदमी का पेट नहीं भर रहा है, उनका तुम पेट कैसे भरोगे?
हमारी गाएं दुनिया में सबसे कम दूध देती हैं। और हम दस हजार साल से गऊमाता के भक्त हैं। बड़ी हैरानी की बात है! हम बड़े चमत्कारी लोग हैं! जय गोपाल, जय गोपाल। गोपाल कृष्ण के गीत गा रहे हैं दस हजार साल से। और गऊएं? किसी की गऊ अगर तीन पाव दूध देती है तो वह समझता है बहुत दूध है। स्वीडन में कोई गाय अगर तीन पाव दूध दे, कल्पना के बाहर है। चालीस किलो, पचास किलो, साठ किलो सहज ही एक गाय दूध देती है। पश्चिम में कोई भैंस का दूध नहीं पीता। कोई जरूरत नहीं है भैंस का दूध पीने की, गाएं इतना दूध देती हैं! सारे तकनीक उपलब्ध हैं। मगर मूढ़ों के हाथ में तकनीक भी क्या करे! मशीन
से काम लो। मगर तुम्हारे महात्मा मशीन के खिलाफ हैं। महात्मा गांधी मशीन के खिलाफ हैं। वे तो रेलगाड़ी के भी खिलाफ हैं और टेलीग्राफ के भी खिलाफ हैं। और तुम अगर इस तरह की बातों को मान कर चलते रहे तो दरिद्र रहोगे, दीन रहोगे। मशीनों का उपयोग करो। मशीनों का जितना उपयोग हो उतना अच्छा। क्योंकि मशीनें जितनी ज्यादा काम में आएं, आदमी का उतना श्रम बचता है। और आदमी का श्रम बचे तो किन्हीं ऊंचाइयों पर लगे, किन्हीं नई खोजों में लगे, नये आविष्कार करे। पृथ्वी सोना उगल सकती है, लेकिन बिना मशीन के यह नहीं होगा। देश का औद्योगीकरण होना चाहिए, यंत्रीकरण होना चाहिए। देश समृद्ध हो। और जितना समृद्ध हो उतना ही धार्मिक हो सकता है।

आखिरी प्रश्नः ओशो! मैं एक ज्योतिषी के पास गया था। उसने मेरा हाथ देख
कर कहा कि तुम सत्य के खोजी हो और तुम्हें सदगुरु भी मिल गया है। साधना जारी रखो, एक दिन श्रेय को भी अवश्य उपलब्ध होओगे।
मैं ज्योतिषी या ज्योतिष पर विश्वास नहीं करता, लेकिन उसकी बातें तो सभी सत्य थीं। इसका रहस्य क्या है? आप कुछ कहें।

सत्यानंद! थोड़ा तो बुद्धि का उपयोग करो। गेरुए वस्त्र में किसी ज्योतिषी के पास जाओगे और अगर वह तुमसे कह दे कि तुम सत्य के खोजी हो, तो इसमें कुछ ज्योतिष का चमत्कार है? माला मेरी लटकाए हुए हो, ज्योतिषी अंधा था क्या? तुम समझ रहे तुम्हारा हाथ देख रहा था; वह देख रहा होगा माला। स्वभावतः वह कह देगा कि सदगुरु मिल गया है, अब साधना जारी रखो। श्रेय को भी अवश्य उपलब्ध होओगे।
इसमें कुछ ज्योतिष की जरूरत है? ज्योतिषी इसी तरह के लटकों पर तो जीते हैं। किसी का हाथ देख कर कहते हैं कि धन तो बहुत आता है, लेकिन टिकता नहीं। किसके हाथ में टिकता है? कभी तुमने किसी के हाथ में धन टिकता देखा? ज्योतिषी लोगों को देख कर कहते हैंः जीवन में चेष्टा तो बहुत करते हो, मगर सफलता हाथ नहीं लगती। किसको लगती है? किसी को नहीं लगती। जिनको तुम समझते हो कि लग गई, उनको भी नहीं लगती। क्योंकि वे और आगे के लिए सफल होने के लिए तैयारी कर रहे हैं। जो डिप्टी मिनिस्टर हो गया उसे मिनिस्टर होना है, जो मिनिस्टर हो गया उसको चीफ मिनिस्टर होना है। तुमको लगता है कि फलां आदमी देखो डिप्टी मिनिस्टर हो गया, सफल हो गया। मगर उसको थोड़े ही लगता है। वह

कहता है कि डिप्टी हुए, यह भी कोई होना हुआ! अरे मिनिस्टर कब होंगे? श्रम में लगा है। जो मिनिस्टर है, वह सोचता है, वह सफल हो गया। लेकिन मिनिस्टर चीफ मिनिस्टर होने के पीछे पड़ा हुआ है। और कतार का कोई अंत नहीं है। ज्योतिषी इन सीधी-सादी बातों का उपयोग करता है। वह कहता हैः चेष्टा
तो बहुत करते हो, मगर सफलता हाथ नहीं लगती। दुश्मन बाधा डाल रहे हैं। किसके दुश्मन नहीं हैं? जिसकी स्पर्धा है उसके दुश्मन हैं। और दुश्मनों को तो तुम समझते ही हो कि उनकी बाधा के कारण ही तो अड़चन आ रही है, नहीं तो तुम तो कभी के सफल हो जाते। तुम्हारी प्रतिभा, तुम्हारी योग्यता, तुम्हारी महिमा! लेकिन दुष्ट बाधाएं डाल रहे हैं। सारे दुष्ट तुम्हारे पीछे पड़े हैं। शैतान तुम्हें बढ़ने ही नहीं देता। नहीं तो तुम जैसा पुण्यात्मा!
इससे क्या तुम सोचते हो कि ज्योतिषी कुछ कह रहा है? ज्योतिषी सभी को कहते हैं कि जीवन में तुम्हारे बड़ा दुख है। और सभी राजी हो जाते हैं। किसके जीवन में सुख है!
अब तुम मुझसे पूछते हो कि आप कुछ कहें इस रहस्य पर।
रहस्य इसमें कुछ भी नहीं है। मैं तुमसे एक कहानी कहता हूं।
महानगरी दिल्ली में बड़ा प्रसिद्ध एक चमचा था, जिसका कि ज्योतिष में बिल्कुल भरोसा नहीं था। फिर भी वह एक दिन अपना हाथ दिखाने ज्योतिषी के पास पहुंच गया। उसने सोचा, चलो इसी बहाने आज यह परीक्षण भी हो जाए कि ज्योतिष में कुछ है भी या यूं ही बकवास है। तो चमचा ज्योतिषी के पास पहुंचा, ज्योतिषी ने हाथ देखा और जैसा कि ज्योतिषी शुरू करते हैं, उसने चमचे के संबंध में बताना शुरू किया। सबसे पहले ज्योतिषी बोला, बच्चे, तेरा हाथ बता रहा है कि तू किसी महान नेता का चमचा है और वह नेता शीघ्र ही प्रधानमंत्री होने वाला है।
चमचा बोला, बकवास बंद करो। यह तो कोई अंधा भी बता सकता है कि मैं किसी नेता का चमचा हूं। देख नहीं रहे, यह चूड़ीदार पाजामा, यह अचकन, यह गांधी टोपी! कोई काम की बात बताओ, कोई ऐसी बात बताओ कि जिससे सिद्ध हो कि ज्योतिष भी कोई चीज है।
ज्योतिषी ने आगे बताते हुए कहा, बच्चे, तेरे हाथ की रेखाएं बता रही हैं कि तू शादीशुदा है।
चमचा बोला, रहने दो महाराज, अपनी बकवास को आगे न बढ़ाओ तो अच्छा है। अरे कोई भी बता सकता है कि मैं शादीशुदा हूं। देख नहीं रहे, अभी-अभी बीबी से पिट कर चला आ रहा हूं! ये चेहरे पर चोटों के निशान! इसमें ज्योतिष क्या है? ज्योतिषी आगे बोला, बच्चे, तेरे हाथ की रेखाएं कहती हैं कि तेरे दो बच्चे हैं।
चमचा बोला, अब तो हद्द हो गई महाराज! अरे मेरे दो नहीं तीन बच्चे हैं। ज्योतिषी बोला, यह तेरी गलतफहमी है बच्चे। बच्चे तो हैं तीन जरूर, मैं मना नहीं करता; लेकिन असलियत जो है, सचाई जो है, वह यही है कि तेरे दो बच्चे हैं, एक बच्चा नेताजी का है।
ज्योतिषी तरकीब निकाल लेते हैं। अगर तुम... कभी भूल-चूक हो जाए तो उसका
भी गणित है कि भूल-चूक के कैसे बाहर होना।
सीधी-सादी बात है सत्यानंद। ज्योतिषी के पास जाते ही क्यों हो? ज्योतिषी के पास कौन जाता है? जिसे भविष्य की चिंता है। और मैं तुम्हें सिखा रहा हूंः छोड़ो अतीत, छोड़ो भविष्य। जीओ वर्तमान में। यही क्षण एकमात्र सत्य है। अतीत जा चुका, भविष्य अभी आया नहीं, दोनों असत्य हैं। सत्य है केवल वर्तमान। इस क्षण को आह्लादित होकर जीओ। क्या चिंता पड़ी है कल की? कल की चिंता वही करता है, जिसका आज खाली-खाली है, जिसका आज भरा नहीं है। वह सोचता है शायद कल सब ठीक हो जाए।
मैं तुमसे कहता हूंः आज ही सब ठीक है। जरा आंख खोलो, जरा जागो! इस क्षण
ही कुछ कमी नहीं है। इसलिए क्यों जाओगे ज्योतिषी के पास! नासमझ ही जाते हैं। और स्वभावतः नासमझ सब जगह लूटे जाएंगे।
ज्योतिष जैसी बातें नासमझों के कारण चलती हैं। तुम उनको चला रहे हो। तुम जिम्मेवार हो। समझदार वर्तमान क्षण में जीएगा। जो करेगा उसे ऐसी तल्लीनता से करेगा, ऐसा डूब कर करेगा कि कल का सवाल ही नहीं उठता, कल का

विचार ही नहीं उठता। इसको ही मैं ध्यान कहता हूं--इस निर्विचार तल्लीनता को ध्यान कहता हूं। ध्यान की फिक्र करो, हाथ की रेखाओं में क्या रखा है! मैं तुम्हें आत्मा की रेखाएं पढ़ना सिखा रहा हूं, और तुम हाथ की रेखाओं की बात कर रहे हो!
मैंने तो सुना है कि दो ज्योतिषी पास ही पास रहते थे। रोज सुबह एक-दूसरे को मिलते, नमस्कार करते; एक-दूसरे का हाथ देखते कि भई आज धंधा कैसा चलेगा और एक-दूसरे को चवन्नी भेंट कर देते। हर्जा कुछ था ही नहीं। दोनों को चवन्नी मिल जाती और दोनों एक-दूसरे का हाथ देख देते और एक-दूसरे के संबंध में भविष्यवाणी कर देते।
जिनको तुम ज्योतिषी कहते हो वे भी चिंतातुर हैं भविष्य के लिए।
मैं जयपुर में था, एक ज्योतिषी को मित्र पकड़ लाए। बड़ा ज्योतिषी! एक हजार रुपया उसकी फीस! मित्रों ने कहा कि आपका हाथ दिखाना है। उस ज्योतिषी ने कहा, मेरी फीस।
मैंने कहा, फीस तुम्हारी मिलेगी। हाथ तुम देखो। अब आ ही गए हो तो तुम्हें खाली नहीं लौटाऊंगा।
ज्योतिषी बहुत खुश हुआ। मेरे आस-पास उसने देखे जयपुर के बड़े धनपति बैठे थे। सोहनलाल दूगड़, वहां के एक बड़े धनपति, मेरे बगल में ही बैठे थे। बड़ी गाड़ियां बाहर रुकी थीं। उसने सोचा कि हजार रुपये की क्या दिक्कत है, मिल ही जाएगा। हाथ देखा, देख-दाख कर उसने कहा कि अब चलता हूं, मेरी फीस? मैंने कहा, तुम्हें इतना भी पता नहीं, अपना हाथ तो घर देखा होता कि यह आदमी फीस देने वाला नहीं है। और मेरा हाथ देख कर भी तुमको पता न चला! शुरू में पहले यह पता लगाया करें कि यह आदमी फीस देगा कि नहीं देगा। क्या खाक ज्योतिष का काम करते हो!
वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया। उसकी कुछ सूझ में न आया कि अब क्या करूं, क्या न करूं! मैंने कहा, तुम असली ज्योतिषी नहीं हो। तुम पढ़ी-पढ़ाई, रटी- रटाई बातें दोहरा रहे हो। सीखा-साखा! और सीखे सपूत सीढ़ियां नहीं चढ़ते। तुम पहले सीखो, ज्योतिष की कला सीखो। और अगर न सीख सको तो मेरे पास आओ, मैं तुम्हें सिखाऊंगा।
तुम जिस ज्योतिषी के पास गए थे, सत्यानंद, जरा उसकी शक्ल तो देखते कि वहां बारह बज रहे हैं! वह तुम्हारा हाथ देख रहा है, तुम्हारा भविष्य बता रहा है! कल की उसकी रोटी का ठिकाना नहीं है। वह तुम्हारा हाथ देख रहा था, तुम जरा उसका चेहरा देख लेते, बात खत्म हो जाती। कितने पैसे लिए उसने तुमसे? चार आने, आठ आने, बारह आने, रुपया... रुपये-रुपये में जो हाथ देख रहा है वह कुछ जानता होगा भविष्य? भविष्य जानने वाला इतना सस्ता मिल जाएगा? उसे कुछ पता नहीं है। अब की बार जाओ, एक चांटा रसीद करना और कहना कि महाराज, कम से कम इतना तो ख्याल रखा करें कि कौन आदमी मारेगा-पीटेगा, कौन झंझट करेगा खड़ी!
खुद भी जागो, उसको भी जगाओ!
मगर सोए लोग सोए लोगों की दुकानें चला रहे हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन एक बार अपने एक पुराने मित्र सरदार विचित्तर सिंह
को दावत पर बुलाया। खाना-पीना हो रहा था कि एकाएक चावल का एक दाना नसरुद्दीन की मूंछों में फंस गया। नसरुद्दीन के नौकर बल्लेखां को यह दिखाई दे गया, लेकिन मालिक को सीधे-सीधे कहना कि आपकी मूंछ में चावल फंसा है, ठीक नहीं था। सो उसने दूर से ही नसरुद्दीन से कहा, हुजूर, शाख पर बुलबुल! सुनते ही नसरुद्दीन ने अपनी अंगुली के एक झटके से मूंछ का दाना नीचे गिरा दिया।
सरदार विचित्तर सिंह तो पूरी घटना बड़ी हैरानी से देखते रहे और उस नौकर की अक्ल पर कुर्बान हो उठे। खाना इत्यादि पूरा होने के बाद मुल्ला ने पूछा, सरदार जी, पान खाएंगे?
सरदार विचित्तर सिंह बोले, नहीं-नहीं, छोड़िए! अब काफी देर हो गई, मुझे
अब जाना होगा।
मुल्ला ने कहा, कोई देर नहीं होगी। देखिए! यह बल्लेखां ने जूते पहन लिए, अब वह दरवाजे से बाहर हो गया, अब वह सड़क पार कर रहा है। अब वह दुकान से

पान बंधवा रहा है। उसने फिर लौट कर सड़क पार कर ली, अब वह घर के भीतर आ गया है और उसने जूते उतार लिए हैं और ये रहे पान!
इसके साथ ही बल्लेखां पान लेकर कमरे में हाजिर हो गया। सरदार विचित्तर सिंह को तो अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ। ऐसा होशियार नौकर उन्होंने जिंदगी में नहीं देखा था। सरदारजी ने तय कर लिया कि वे मुल्ला को दिखा कर रहेंगे कि उनका नौकर पिचत्तर सिंह भी कोई कम नहीं है। सरदारजी ने विदा लेते-लेते मुल्ला से आग्रह किया कि वे अगले सप्ताह दावत पर उसके घर आएं। मुल्ला ने निमंत्रण स्वीकार कर लिया।
मुल्ला जिस दिन आने वाला था, उस दिन सुबह से सरदारजी ने अपने नौकर को ठीक वही का वही करने की पूरी सूचना दे दी जो बल्लेखां ने किया था--किस तरह सरदारजी चावल का दाना मुल्ला की नजर बचा कर मूंछों में फंसा लेंगे। किस तरह तू कहेगा, हुजूर, शाख पर बुलबुल। और वे किस अंदाज से मूंछ से उस दाने को एक झटके से नीचे गिराएंगे, इत्यादि-इत्यादि... ।
शाम को मुल्ला आया। खाना शुरू हुआ। सरदारजी ने चालाकी से चावल का एक दाना अपनी मूंछ में फंसा लिया और पिचत्तर सिंह के कहने का इंतजार करने लगे। लेकिन वह तो बेचारा सब कुछ भूल ही गया। सरदारजी ने आंखों से उसे इशारा किया तो नौकर को एकदम याद आया कि उसे कुछ कहना है, परंतु "शाख पर बुलबुल" वाक्य उसे याद नहीं आ रहा था। घबड़ाहट में उसने कहा, हुजूर, तुहाड़ी मूंछों पर वह सुबह वाली गल्ल।
सरदारजी बड़े शर्मिंदा हुए, साथ ही नाराज भी बहुत हुए, लेकिन मुल्ला के सामने कुछ बोले नहीं। खाना पूरा होने पर उन्होंने मुल्ला से पान के लिए पूछा। मुल्ला ने कहा, देर बहुत हो चुकी है और घर में गुलजान ने कहा था कि जल्दी लौट आना, तो अब जल्दी से लौट जाना चाहता हूं।
इस पर सरदारजी बोले, कोई देर नहीं लगेगी। वह देखिए पिचत्तर सिंह ने जूते पहन लिए और वह दरवाजे के बाहर हो गया। अब वह पान वाले से पान बंधवा रहा है। और अब वह घर की ओर लौट रहा है, अब वह दरवाजा खोल कर अंदर आ रहा है और उसने जूते उतार लिए हैं--और ये रहे पान!
लेकिन पिचत्तर सिंह कमरे में आया ही नहीं। सरदारजी ने झेंप कर चिल्लाते हुए कहा, ओ पिचत्तर सिंह, पान कहां हैं?
पिचत्तर सिंह बोला, हुजूर, जूतियां ढूंढ रहा हूं।
तुम किन ज्योतिषियों के पास जा रहे हो, जरा उनकी शक्ल तो देखो! जरा गौर
से उनकी हालत तो देखो! जिनको भविष्य का ज्ञान हो, उनकी यह हालत होगी? काश, तुम उनकी आंखों में झांक कर देखो तो तुम पाओगे कि बेचारे गरीब हैं, दरिद्र हैं, दीन हैं, दुखी हैं। कोई और उपाय न खोज कर दो रोटी कमाने के लिए यह व्यवस्था कर ली है। लेकिन इस दुनिया में मूढ़ इतने हैं, एक ढूंढ़ो हजार मिलते हैं। इसलिए मूढ़ों से सारा धंधा चलता जाता है।
सत्यानंद! ऐसी मूढ़ताओं में न पड़ो। भविष्य है ही नहीं, है तो वर्तमान।
वर्तमान से इंच भर न हटो, इसमें पूरी डुबकी मारो और तुम सब पा लोगे जो पाने योग्य है। मोक्ष तुम्हारा है। आनंद तुम्हारा है। समाधि तुम्हारी है।
परमात्मा तुम्हारा है।
आज इतना ही।

काहे होत अधीर
तेरहवां प्रवचन

ध्यान है मार्ग

माया तू जगत पियारी, वे हमरे काम की नाहिं।
द्वारे से दूर हो लंडी रे, पइठु न घर के माहिं।।
माया आपु खड़ी भई आगे, नैनन काजर लाए।
नाचै गावै भाव बतावै, मोतिन मांग भराए।।
रोवै माया खाय पछारा, तनिक न गाफिल पाऊं।
जब देखौं तब ज्ञान ध्यान में, कैसे मारि गिराऊं।।
रिद्धि-सिद्धि दोई कनक समानी, बिस्तु डिगन को भेजा।
तीन लोक में अमल तुम्हारा, यह घर लगै न तेजा।।
तू क्या माया मोहिं नचावै, मैं हौं बड़ा नचनिया।
इहवां बानिक लगै न तेरी, मैं हौं पलटू बनिया।।

पाप कै मोटरी बाम्हन भाई, इन सब ही को बगदाई।
साइत सोधिकै गांव बेढ़ावै, खेत चढ़ाय के मूंड़ कटावै।।
रास वर्ग गन मूर को गाड़ि, घर कै बिटिया चौके रांड़ि।
और सभन को गरह बतावै, अपने गरह को नाहिं छुड़ावै।।
मुक्ति के हेतु इन्हें जग मानै, अपनी मुक्ति के मरम न जानै।
औरन को कहते कल्यान, दुख मा आपु रहै हैरान।।
दूध-पूत औरन को देते, आप जो घर-घर भिक्षा लेते।
पलटूदास की बात को बूझै, अंधा होई तेहु को सूझै।।

भलि मति हरल तुम्हार, पांडे बम्हना।।
सब जातिन में उत्तम तुमहीं, करतब करौ कसाई।
जीव मारिकै काया पोखौ, तनिको दरद न आई।।
रामनाम सुनि जूड़ी आवै, पूजौ दुर्गा चंडी।
लंबा टीका कांध जनेऊ, बकुला जाति पखंडी।।
बकरी भेड़ा मछरी खायो, काहे गाय बराई।
रुधिर मांस सब एकै पांडे, थू तोरी बम्हनाई।।
सब घट साहब एकै जानौ, यहिमां भल है तोरा।
भगवतगीता बूझि विचारौ, पलटू करत निहोरा।।

अपना ही मन खो बैठे जब, औरों की क्या बात है,
सह ले पगले! चुप हो सह ले, आया जो आघात है।
दुनिया बहुत बड़ी है, जीवन का भी है विस्तार बड़ा,
तू किस भ्रम में युगों-युगों से इस सराय के द्वार खड़ा? चलता-फिरता दिन है मूरख! चलती-फिरती रात है!
गहराई को कौन पूछता, गहरा तो है कूप भी,
पर न पहुंचता वहां समीरन, नहीं पहुंचती धूप भी,
जीत उसी की, जो लहरों का देता रहता साथ है!
बादल का क्या दोष फोड़ यदि सका न यह चट्टान तू?
पानी तो पानी है, मत कर यों अपना अपमान तू!
कल्प-कल्प का धैर्य जुटे जब, बनता तभी प्रपात है!
सह ले पगले! चुप हो सह ले, आया जो आघात है!
अपना ही मन खो बैठे जब, औरों की क्या बात है,
सह ले पगले! चुप हो सह ले, आया जो आघात है।
इस जीवन में जो भी घटता है, तुम्हारे अतिरिक्त कोई और उसका कारण नहीं है। तुम हो मालिक अपनी नियति के। कोई और विधाता नहीं है जो तुम्हारा भाग्य निर्मित करता है। तुम ही रोज अपना भाग्य निर्मित करते हो। तुम ही लिखते हो अपनी किस्मत रोज, प्रतिपल। मूर्च्छित जीओगे तो नरक में जीओगे। होश में जीओगे तो जहां हो वहीं स्वर्ग है। मूर्च्छित जीओगे तो सराय घर जैसी मालूम

होगी। और फिर बड़ी मुश्किल होगी। क्योंकि सराय सराय है, तुम्हारे मानने से घर न हो जाएगी। आज नहीं कल सराय छोड़नी ही पड़ेगी। और तब बहुत पीड़ा होगी। इतने दिन की आसक्ति, इतने दिन का लगाव, इतने पुराने बंधन, इतनी गहरी जड़ें-- सब उखाड़ कर जब अनंत की यात्रा पर निकलोगे, बहुत पीड़ा होगी। लौट-लौट कर देखोगे। न जाना चाहोगे। तड़पोगे। पकड़-पकड़ रखना चाहोगे। देह को पकड़ोगे, मन को पकड़ोगे। लेकिन कुछ भी काम न आएगा। जाना है तो जाना होगा। कितना ही रोओ, कितना ही तड़फो, कितना ही चिल्लाओ-चीखो, सराय सराय है और घर नहीं हो सकती है।
और जो सराय को सराय की तरह देख लेता है, उसने अपने घर की खोज में एक बहुत महत्वपूर्ण कदम उठा लिया। क्योंकि अंधेरे को अंधेरे की तरह पहचानना प्रकाश को प्रकाश की तरह पहचानने के लिए अनिवार्य पृष्ठभूमि है। गलत को गलत की तरह देख लेना सही को देखने के लिए भूमिका है।
दुनिया बहुत बड़ी है, जीवन का भी है विस्तार बड़ा, तू किस भ्रम में युगों-युगों से इस सराय के द्वार खड़ा?
कभी यह सराय, कभी वह सराय। कभी यह देह, कभी वह देह। कभी यह योनि, कभी वह योनि। और दुनिया का विस्तार बहुत बड़ा है! सराय ही सराय फैली हैं। एक सराय से चुकते हो, दूसरी सराय में उलझ जाते हो। अपना घर कब तलाशोगे? अपनी खोज कब करोगे? धन खोजा, पद खोजा, प्रतिष्ठा खोजी; अपने को कब खोजोगे? औरों की ही खोज में लगे रहोगे? अपने से अपरिचित! और जो अपने से अपरिचित है, वह कैसे दूसरे से परिचित हो सकता है? जो अपने से ही परिचित नहीं, उसे परिचय की कला ही नहीं आती। वह दूसरों से भी अपरिचित ही रहेगा। उसका सब ज्ञान मिथ्या है, थोथा है। जो अपने से परिचित है, उसने ठीक बुनियाद रखी ज्ञान की।
अपने से परिचय का नाम ध्यान है। आत्म-परिचय की प्रक्रिया ध्यान है।
और जिसने ध्यान की शिला पर अपने मंदिर को बनाया है, उसके मंदिर के शिखर आकाश में उठेंगे; बादलों को छुएंगे; चांद-तारों का अमृत उन पर बरसेगा; सूरज की रोशनी में चमकेंगे। उसके जीवन में गरिमा होगी। और जिसने जीवन का मंदिर बना लिया, उसके मंदिर में एक दिन परमात्मा की प्रतिष्ठा होती है।
मंदिर तुम बनाओ, परमात्मा तो अपने से आ जाता है। प्रतीक्षा ही कर रहा
है कि कब बनाओगे, कब भेजोगे नेह-निमंत्रण, कब पुकारोगे।
मगर पुकारो भी तो कैसे पुकारो? ठहराओगे कहां? तुम खुद ही सराय में ठहरे हो। उस मालिकों के मालिक को सराय में तो नहीं ठहराओगे! सराय में वह आएगा भी नहीं। उसके योग्य स्थान बनाना होगा।
एक सूफी कहानी है, एक सम्राट एक फकीर का बहुत सम्मान करता था। लेकिन
जब भी सम्राट मिलना चाहता, फकीर कहता, मैं खुद ही आता हूं, आप परेशान न हों। और फकीर सम्राट के महल पहुंच जाता। सम्राट को जिज्ञासा लगी कि कभी फकीर मुझे अपने झोपड़े तक नहीं आने देता, राज क्या है! एक दिन बिना बताए सम्राट फकीर के झोपड़े पर पहुंच गया। फकीर तो खेत में काम करने गया था। उसकी पत्नी थी, उसने कहा, बैठें! विराजें! मैं बुला लाती हूं। दौडूंगी, जल्दी ही बुला लाऊंगी, खेत ज्यादा दूर नहीं है।
लेकिन सम्राट ने कहा, मैं यहीं टहलता हूं, तू बुला ला।
फकीर की पत्नी ने सोचा कि शायद खाली जगह में सम्राट बैठ नहीं सकता, इसलिए उसके पास जो कुछ भी था, फटी-पुरानी चटाई, वही उसने बिछा दी। कहा, आप बैठें तो!
लेकिन सम्राट ने चटाई की तरफ एक दफा देखा और कहा कि मैं टहलता हूं, तू बुला ला।
सोचा उसने कि शायद चटाई योग्य नहीं सम्राट के। तो उसके पास जो शाल थी-- किसी ने फकीर को भेंट की थी--उसे बिछा दिया चटाई पर। कहा, बैठें!
लेकिन सम्राट ने कहा, मैं टहलूंगा, तू जाकर अपने पति को बुला ला, समय खराब न कर।
फकीर की पत्नी गई। जब वे दोनों वापस आ रहे थे तो राह में उसने पूछा कि सम्राट बहुत अजीब आदमी है! अपने पास जो प्यारी से प्यारी चटाई थी, वह मैंने बिछा दी। फिर तुम्हारी जो शाल थी, जिसे तुम कभी-कभी सूफियों के उत्सव में ओढ़ कर जाते थे, वह भी मैंने बिछा दी; उससे ज्यादा कीमती तो हमारे पास कुछ है

नहीं। लेकिन सम्राट है कि टहल ही रहा है! वह कहता है, मैं बैठूंगा नहीं, टहलूंगा।
फकीर हंसने लगा। उसने कहा, पागल, सम्राट को बिठाना हो तो स्वर्ण-सिंहासन चाहिए। और इसीलिए तो मैं उसे बार-बार कहता था, मैं खुद ही आता हूं। हमारे घर में उसे बिठाने योग्य स्थान नहीं है।
अगर सम्राट के लिए स्वर्ण-सिंहासन चाहिए तो परमात्मा के लिए भी कोई सिंहासन भीतर बनाओ। स्वर्ण-सिंहासन परमात्मा के काम नहीं आएगा। चेतना का सिंहासन बनाओ। समाधि का सिंहासन बनाओ। बुद्धत्व का सिंहासन बनाओ। तो फिर तुम्हारा निमंत्रण स्वीकार है। तत्क्षण स्वीकार हो जाता है! तुम भेजो भी नहीं निमंत्रण, तो भी परमात्मा आकर स्वयं द्वार पर दस्तक दे देता है। तुम्हारी तैयारी पूरी हुई कि परमात्मा प्रकट होता है।
लेकिन तुम पड़े हो सराय में। एक से छूटते हो तो दूसरे में उलझ जाते हो। सोचते हो शायद यह घर होगा। उससे छूटे तो तीसरे में उलझ जाते हो। और यह संसार सरायों का विस्तार है, बहुत बड़ा विस्तार है! इस संसार में उलझने की हमारी जो आदत है, उसका नाम माया है। माया से ऐसा मत समझना कि यह संसार झूठा है, जैसा कि तुम्हारे पंडित-पुरोहित, साधु-महात्मा तुम्हें समझाते हैं कि संसार असत्य है।
संसार असत्य नहीं है, तुम्हारा मन असत्य है। संसार तो परिपूर्ण रूप
से सत्य है। तुम्हारी आत्मा भी सत्य है, संसार भी सत्य है। लेकिन दोनों के बीच में एक असत्य खड़ा हो गया है, उस असत्य का नाम मन है। मन माया है। और जिसे माया से मुक्त होना है उसे मन से मुक्त होना होगा।
लेकिन चूंकि महात्मा समझाते हैं--संसार माया है, तुम संसार से भागते हो। लेकिन भाग कर कहां जाओगे? जहां रहोगे वहीं संसार बन जाएगा। एक झोपड़े में रहोगे तो उसी झोपड़े से मेरा, ममत्व का भाव जुड़ जाएगा। एक वृक्ष के नीचे बैठोगे तो उसी से ममत्व हो जाएगा। कल अगर आकर कोई दूसरा उस वृक्ष के नीचे बैठ जाएगा तो तुम लट्ठ लेकर खड़े हो जाओगे कि रास्ता लगो! मैं बीस साल से इस वृक्ष के नीचे बैठता हूं, यह जगह मेरी है!
और जहां मेरा है, ममत्व है, वहीं माया है। माया यानी मेरे का भाव। फिर
यह मेरे का भाव तुम किस चीज पर आरोपित करते हो, इससे भेद नहीं पड़ता। धन पर करो, पद पर करो, त्याग पर करो, धर्म पर करो--मेरा धर्म--तो वहां भी माया शुरू हो गई। और मेरा कहां से पैदा होता है? मेरा पैदा होता है मन से। मन का प्रक्षेपण है मेरा। मन गया--मेरा गया। मेरा गया--तेरा गया। और जहां न मेरा है न तेरा है, वहां जो शेष रह जाता है वही परमात्मा है।
पलटू के ये सूत्र प्यारे हैं, समझने की कोशिश करना।
माया तू जगत पियारी, वे हमरे काम की नाहिं।
कहते हैं कि माया, तू जगत भर को प्यारी है, मगर हमारे काम की नहीं है।
क्यों हमारे काम की नहीं है? जिसने एक क्षण भी अ-मन की अवस्था का जान लिया, माया फिर उसके काम की नहीं है। जिसने पल भर भी झलक पा ली समाधि की, माया फिर उसके काम की नहीं है। फिर उसने देख लिया आर-पार माया का धोखा।
जैसे तुम जाते हो न सिनेमागृह में! परदे पर धूप-छाया का खेल चलता है।
और तुम भलीभांति जानते हो कि धूप-छाया है, फिर भी आंदोलित हो उठते हो। कभी रोते हो, कभी हंसते हो। कभी धक से तुम्हारा हृदय बंद हो जाता है। कोई ऐसी रोमांचक घटना घटती है तो रोमांचित हो उठते हो। परदे पर कुछ भी नहीं है, तुम जानते हो, फिर भी भूल-भूल जाते हो। एक दिन सिनेमागृह में बैठ कर ऐसे देखना कि तीन घंटे सिनेमा चले तो तीन घंटे स्मरण रहे कि परदा है, परदे पर धूप-छाया का खेल है, और कुछ भी नहीं। और तुम तब बड़े हैरान होओगे। अगर तुम यह याद रख सको कि धूप-छाया है, भूलो न, तो न तो दुख पकड़ेगा, न सुख पकड़ेगा, न रोमांच होगा, न घबड़ाहट होगी, न पीड़ा होगी। परदे पर कोई मर जाए तो और परदे पर शहनाई बजे किसी के विवाह की तो--सब बराबर होगा।
ऐसी ही दशा ज्ञानी की है, ध्यानी की है, समाधिस्थ की है। उसे इस विराट
के परदे पर जो भी खेल चल रहा है, वह मन का प्रक्षेपण है। वह अपने ही मन का फैलाव है। वहां कुछ भी नहीं है। जिस मकान को तुम कह रहे हो मेरा, जिस मकान के लिए तुम लड़ोगे अदालत में, जिस मकान के पीछे हाथापाई हो सकती है, सिर खुल सकते हैं, गर्दनें कट सकती हैं, लहू बह सकता है, जीवन लिए-दिए जा सकते हैं--

उस मकान को पता ही नहीं है कि तुम्हारा है। उस मकान को तुम्हारी कोई खबर ही नहीं है। तुम व्यर्थ ही लड़े-मरे जा रहे हो।
भर्तृहरि के जीवन में उल्लेख है।
भर्तृहरि अदभुत व्यक्ति हैं। जैसा व्यक्ति होना चाहिए वैसे व्यक्ति हैं। पहले भोग का सारा संसार देखा और अपने भोग के सारे निष्कर्ष कुछ सूत्रों में लिखे, उन सूत्रों का नाम हैःशृंगार-शतक। वे बड़े प्यारे सूत्र हैं। जगत के संबंध में भोगियों ने जो भी वक्तव्य दिए हैं, उनमें सर्वश्रेष्ठ हैं। चार्वाक को भी मात कर दिया। एपिकुरस को बहुत पीछे छोड़ दिया। मार्क्स और एंजिल्स किसी कोटि में नहीं आते। भर्तृहरि ने माया में जैसी महिमा देखी है अपनेशृंगार-शतक में, किसी ने भी नहीं देखी।
लेकिन जो इतना गहरा माया में उतरेगा उसको एक दिन वैराग्य पैदा होने
ही वाला है। होने ही वाला है, अपरिहार्य, उससे बचा नहीं जा सकता। क्योंकि माया में जो इतने गहरे जाएगा, आर-पार, वह देख लेगा माया की व्यर्थता। दूर बैठ कर देखते रहो सिनेमागृह में तो शायद तुम्हें पता भी न चले कि सामने जो है, सिर्फ तस्वीरें हैं। और यह जिंदगी ऐसा सिनेमा है जिसका न तुम्हें शुरू दिखाई पड़ता है न अंत। जैसे कि मध्य में तुम पहुंचे हो सिनेमागृह में। शुरू में पहुंचते तो परदा दिखाई पड़ता, फिर फिल्में शुरू होतीं, तो तुम्हें पता रहता। यह जीवन एक ऐसा सिनेमागृह है जिसका न कोई शुरू है न कोई अंत। तुम हमेशा मध्य में आते हो और मध्य में ही उठ जाते हो। यह खेल जारी रहता है। इसलिए तुम्हें कभी परदा खाली दिखाई नहीं पड़ता।
लेकिन काश, तुम परदे के पास जाकर टटोल कर देख लो तो तुम बड़े चकित होओगे, वहां कोई भी नहीं है, खाली परदा है! परदे पर धूप-छांव की माया है, धूप-छांव का खेल है।
भर्तृहरि ने बहुत गौर से, बहुत गहराई से संसार को भोगा। उसी भोग से उनका योग निकला। वे सब छोड़ कर जंगल चले गए।
इस छोड़ कर जाने में त्याग नहीं था, ख्याल रखना। त्यागता तो वह है जिसका मोह अभी शेष हो। जिसका मोह ही न बचा उसका त्याग क्या? व्यर्थता दिखाई पड़ गई। फिर छोड़ना क्या है? छूट जाता है। सच्चा त्याग होता है, किया नहीं जाता। जो किया जाता है वह झूठा, वह कभी सच्चा नहीं।
भर्तृहरि को दिखाई पड़ गई व्यर्थता, एक दिन चल पड़े जंगल--अपनी तलाश में। झांक लिया दूसरे में, पाया कुछ भी नहीं है--अपनी ही कामनाएं, अपनी ही वासनाएं प्रक्षेपित हो जाती हैं; दूसरा परदे का काम करता है। तो अब यह भीतर कौन छिपा है, जिससे यह सारा जादू, यह सारा तिलिस्म पैदा होता है, इसकी तलाश में निकल गए।
फिर उन्होंने समाधि की अपूर्व दशा पाई और तब दूसरे सूत्र लिखेः वैराग्य-शतक। वह भी अदभुत है। जैसेशृंगार-शतक बेजोड़ है, अद्वितीय है, वैसे ही वैराग्य-शतक भी बेजोड़ है, अद्वितीय है। वैराग्य की भी इतनी गहराई और इतनी ऊंचाई और इतनी गरिमा और इतनी महिमा किसी और ने नहीं गाई। मगर यह गा सकता है कोई भर्तृहरि जैसा व्यक्ति ही। जिसने राग जाना हो वही वैराग्य जान सकता है। जिसने अंधेरा जाना हो वही रोशनी का अर्थ समझ सकता है। और जिसके पैरों में कभी कांटे चुभे हों वही फूलों की कमनीयता से परिचित हो सकता है। जिसने जहर पीया हो वही अमृत का स्वाद पहचान पाएगा।
जंगल में भर्तृहरि एक दिन बैठे हैं--एक वृक्ष के नीचे, एक शिला पर-- शांत, मौन, ध्यान में लीन। तभी कोई घुड़सवार गुजरता है। घोड़े की टापों से उनकी आंखें खुल जाती हैं। क्या देखते हैं कि घुड़सवार तो चला गया हवा की भांति, लेकिन घुड़सवार के झोले से एक बहुमूल्य हीरा गिर गया और वह पड़ा है सामने भर्तृहरि के।
बेहोशी बड़ी सूक्ष्म है। एक क्षण को भर्तृहरि को मन हो आया कि उठा लूं।
बस एक क्षण को! एक पुलक--बड़ा प्यारा है! बहुमूल्य दिखाई पड़ता है। हीरों के पारखी थे, जन्म ही हीरों में हुआ था, जीए ही हीरों में थे। बहुत हीरे देखे थे, लेकिन यह हीरा बहुमूल्य दिखाई पड़ रहा था--उठा लूं! लेकिन तभी हंसी आ गई कि अपने सब हीरे छोड़ कर आया हूं, वह किसलिए? और यह पराए दूसरे गिरे हीरे को उठा रहा हूं। फिर वही जाल! फिर सराय में प्रवेश! फिर किसी मूढ़ता में बंधने

की आतुरता! अपने पर हंसे। और ध्यान रखना, जो दूसरों पर हंसता है वह नासमझ है। और जो अपने पर हंसता है, बुद्धिमत्ता उसकी है--बुद्धत्व उसका है। हंसे, मुस्कुराए, मन की चालबाजी देखी। देखा कि मन अभी भी मूर्च्छित होने को कितना तत्पर है! ऐसा मस्त हो रहे थे सोच कर, मन के ये जाल देख कर, मन के प्रति साक्षी हो रहे थे। तभी देखा कि दोनों तरफ से दो घुड़सवार आए हैं, दोनों की नजर एक साथ हीरे पर पड़ी। हीरा था भी ऐसा कि नजर से बच नहीं सकता था। सुबह के सूरज में उसकी चमक अनूठी थी। उसके चारों तरफ जैसे इंद्रधनुष बुन गया हो! किरणें लौट रही थीं उससे। दैदीप्यमान था। दोनों घुड़सवारों की नजर एक साथ पड़ी। दोनों ने अपनी तलवारें म्यान से निकाल लीं और हीरे के पास टेक दीं और दोनों ने दावा किया कि पहले नजर मेरी पड़ी, इसलिए हीरा मेरा है! और भर्तृहरि देख रहे हैं। अब भर्तृहरि को और हंसी आने लगी कि यह खेल तो बढ़ने लगा! यह खेल तो अब खतरनाक हुआ जा रहा है! और देर न लगी, तलवारें चल गईं। और तलवारें ऐसी चलीं कि एक-दूसरे की छाती में घुस गईं। थोड़ी देर में दोनों ही घुड़सवार जमीन पर पड़े थे मुर्दा। हीरा अपनी जगह पड़ा था। भर्तृहरि हंसे और आंखें बंद कर लीं। और भर्तृहरि ने कहा कि अच्छा हुआ मैं नहीं उठा, नहीं तो यह गति होती। नजर तो मेरी पहले पड़ी थी, मैं झंझट में पड़ जाता।
और भर्तृहरि ने कहा कि हीरे को बेचारे को पता ही नहीं कि दो आदमी आए भी, गए भी! और हीरे पर कितना ममत्व रोप गए कि अपना जीवन चढ़ा गए। और हीरे को खबर भी नहीं है, हीरा धन्यवाद भी नहीं देगा। कभी हीरे को फिर मिल जाएंगे तो हीरा पहचानेगा भी नहीं। उस क्षण भर्तृहरि का अगर कोई सूक्ष्म राग कहीं छिपा रह गया था, वह भी तिरोहित हो गया।
माया तू जगत पियारी...
पलटू कहते हैंः सारा जगत तेरे प्रेम में पड़ा है।
वे हमरे काम की नाहिं।
लेकिन हमारे काम की तू नहीं है। हम जाग गए। हमने देख लिया तेरा असली रूप।

नयनों की अंजलि में जल भर दे दूंगी मैं शाप।
कि चुप रह बैरी, चुप रह।
तू कागज की नाव चला ले
मन को भ्रम से तू नहला ले
मेरे मीत मगर छलिया हैं
गोताखोर बड़े बढ़िया हैं
जाल बिछा कर स्वयं न फंस री रस मुरली का ताप। न सह री बैरी, मत बह।
पानी बिना कमल कब खिलता
प्यासे से पानी कब मिलता
यह गुलाब का रंग धूल में
मिल जाएगा बस न भूल में
देख सुहागिन मेरी चुनरी, जा अपना पथ नाप। कि सुन री बहरी, मत ढह।
सोने के हैं देव किसी के
चांदी सी मैं उनकी रानी
सुरभि-सिंगार परस पारस को
अमृत पा जाता है पानी
मनमानी मत कर पगली री, जल मत मद में आप।
कि सुन री बैरिन, मत कह।
तू कागज की नाव चला ले
मन को भ्रम से तू नहला ले
मेरे मीत मगर छलिया हैं
गोताखोर बड़े बढ़िया हैं
जाल बिछा कर स्वयं न फंस री रस मुरली का ताप। न सह री बैरी, मत बह।
नयनों की अंजलि में

जल भर दे दूंगी मैं शाप।
कि चुप रह बैरी, चुप रह।
एक दफा दिखाई पड़ना शुरू हो जाए तो सब नावें कागज की हैं और सब घर बालू
से बने हैं। और सब सपने पानी पर खींची गई लकीरें हैं। और हम कितने दौड़ते हैं, कितना श्रम लेते हैं, कितना गंवाते हैं--कुछ कमाने की आशा में! और फिर खाली हाथ जाते हैं। और ऐसा नहीं है कि कमाई नहीं हो सकती है; कमाई हो सकती है, मगर हमारी दिशा गलत है।
पलटू कहते हैंः द्वारे से दूर हो लंडी रे, पइठु न घर के माहिं।
कहते हैंः आगे बढ़! माया से कहते हैंः आगे बढ़! अब कागज की नावें मैं नहीं चलाऊंगा। रेत में भवन मैं नहीं बनाऊंगा। पानी के बबूलों पर मैं नहीं अब अपनी अभीप्साएं रोपूंगा। आगे बढ़! जैसे कोई भिखमंगों को कह दे कि आगे बढ़ो!
और माया को कहते हैं दासी। साधारणतः तो आदमी माया का दास है। सारे लोग माया की सेवा में लगे हैं। फिर चाहे धन, चाहे पद, चाहे प्रतिष्ठा--क्या तुम्हारी माया का नाम है, इससे भेद नहीं पड़ता, तुम सेवा में संलग्न हो। लेकिन जो जागते हैं, जरा सा भी जागते हैं, उन्हें दिखाई पड़ता है कि हम मालिक हैं। हम उस मालिक के हिस्से हैं, हम मालिक ही हो सकते हैं।
उपनिषद कहते हैंः उस पूर्ण से पूर्ण को निकाल लो, फिर भी पीछे पूर्ण
ही शेष रह जाता है।
हम उस मालिक के हिस्से हैं, इतना ही नहीं; वह मालिक कुछ ऐसा है कि उसके हिस्से हो नहीं सकते। तो जब भी हम उस मालिक से आते हैं, पूरा का पूरा मालिक हमारे भीतर होता है।
पीड़ी.ऑस्पेंस्की ने अपने महत्वपूर्ण ग्रंथ टर्शियम आर्गानम में लिखा
है कि दुनिया में दो तरह के गणित हैं। साधारण गणित। साधारण गणित का नियम है--आधारभूत नियम--कि अंश हमेशा अंशी से छोटा होता है। स्वभावतः, किसी चीज का हिस्सा उस पूरी चीज से छोटा होगा ही। एक पत्ते को तुम तोड़ लोगे तो पत्ता वृक्ष से छोटा होगा। फूल की एक पंखुड़ी को तोड़ोगे तो फूल से पंखुड़ी छोटी होगी। यह साधारण गणित है, ऑस्पेंस्की कहता है। और वह यह कहता है कि एक और भी गणित है--महागणित, पारलौकिक गणित।
उपनिषद जब कहते हैं कि पूर्ण से पूर्ण को निकाल लो, फिर भी पीछे पूर्ण
ही शेष रह जाता है और पूर्ण में तुम पूर्ण को डाल दो तो भी पूर्ण बढ़ता नहीं--न घटता, न बढ़ता--यह किसी दूसरे गणित की बात हो रही है।
ऑस्पेंस्की कहता हैः उस दूसरे गणित का नियम है--अंश अंशी के बराबर होता है, छोटा नहीं होता। साधारण गणित के हिसाब से बूंद सागर से छोटी है, बहुत छोटी है; महागणित के हिसाब से बूंद में सागर समाया हुआ है, बूंद सागर के बराबर है। क्योंकि जो राज सागर का है वही बूंद का है। आकार पर न जाओ, प्रकार पर मत जाओ--ये तो ऊपर की बातें हैं। भीतर के राज समझो, भीतर के रहस्य में झांको। एक बूंद में पानी का सारा रहस्य छिपा हुआ है। अगर हम एक बूंद को पूरा-पूरा समझ लें तो हमने सारे संसार के सागरों को समझ लिया। और इतना ही नहीं, जो गहरे गए हैं वे कहते हैं कि अगर हम एक बूंद को पूरा समझ लें तो हमने पूरे अस्तित्व को पूरा समझ लिया। क्योंकि एक बूंद में सब समाया हुआ है। बूंद में सब राजों का राज छिपा हुआ है।
फूल की एक पंखुड़ी को तुम पहचान लो तो तुमने सारे विश्व को पहचान लिया। क्योंकि फूल की एक पंखुड़ी में सारा विश्व समाया हुआ है, सारे विश्व का हाथ है, दान है। सूरज कुछ दे गया है, सागर कुछ दे गया है, चांद कुछ दे गया है, तारे कुछ दे गए हैं। सबने दान दिया है, तब फूल निर्मित हुआ है।
और अगर पूर्ण से पूर्ण को भी निकाल कर पीछे पूर्ण शेष रहता है, तो फिर कुछ अड़चन नहीं है। हम मालिक हैं, क्योंकि हम मालिक के हिस्से हैं। और हम पूरे-पूरे मालिक हैं। हम अंश ही नहीं, अंशी हैं। इसलिए उपनिषद कह सकेः अहं ब्रह्मास्मि! मैं ब्रह्म हूं! इसलिए मंसूर कह सकाः अनलहक! मैं सत्य हूं! मैं परमात्मा हूं! इसलिए जीसस कह सके कि मुझमें और मेरे पिता में कुछ भी भेद नहीं है; हम दोनों एक हैं, एक के ही दो नाम हैं।
द्वारे से दूर हो लंडी रे...
हे दासी, हट द्वार से!

पइठु न घर के माहिं।
सुन, घर के भीतर प्रवेश मत करना! इधर मैं मालिक हूं। पलटू कहते हैंः मैं मालिक हूं, यहां रास्ता नहीं है तेरे लिए। वहां जा जहां गुलाम हैं।
वहां जा जहां लोग तेरे पैर दबाने को आतुर हैं। मैंने तो तुझे देख लिया। अब ये छायाएं मुझे धोखा नहीं दे सकतीं।
माया आपु खड़ी भई आगे, नैनन काजर लाए।
हालांकि माया बहुत लुभाएगी, आंखों में काजल लगाएगी, आगे-आगे खड़ी हो जाएगी। तुम बाएं मुड़ोगे, दाएं मुड़ोगे; तुम इधर जाओगे, तुम उधर जाओगे; हमेशा आगे-आगे आएगी। रिझाएगी।
माया आपु खड़ी भई आगे, नैनन काजर लाए।
नाचै गावै भाव बतावै, मोतिन मांग भराए।।
मोतियों से मांग भरेगी अपनी। सुंदर-सुंदर रूप धरेगी। नाचेगी, गाएगी, बहुत तरह के भाव बताएगी। और सारा मजा यह है कि ये सब तुम्हारे ही मन के खेल हैं। ये मोती तुम्हीं उसकी मांग में भर रहे हो। और ये नाच-गान तुम्हीं उसमें डाल रहे हो। यह जो माया का सौंदर्य है, यह तुम्हारी कल्पना की सृष्टि है। लेकिन बड़ी भूल हो रही है समझने में, क्योंकि प्रोजेक्टर, वह जो प्रक्षेपण का यंत्र है, पीछे है।
तुम जब फिल्म देखते हो, तुम्हारी नजर तो परदे पर लगी होती है, लेकिन असली खेल परदे पर नहीं है, असली खेल तो पीछे है। तुमसे पीछे जो दीवाल है पीठ की तरफ, वहां प्रोजेक्टर है, वहां से खेल चल रहा है। प्रत्येक व्यक्ति का मन एक प्रोजेक्टर है, एक प्रक्षेपण यंत्र है। सामने खेल दिखाई पड़ रहा है। और इसलिए तुम्हें भ्रांति हो जाती है कि खेल वहां होना चाहिए जहां दिखाई पड़ रहा है। लेकिन तुम्हारा मन सारा खेल फैला रहा है। जिन्होंने मन को पूर्णतया शांत कर दिया है वे बड़े चकित हुए--मन के शांत होते ही सारा खेल खो जाता है! माया विलीन हो जाती है! लेकिन यह भ्रांति स्वाभाविक है, क्योंकि तुम्हारी नजरें आगे टिकी हैं, तुम कुछ का कुछ समझ रहे हो। गर्मियों की छुट्टियों में शहर से गांव लौटे नौजवान चंदूलाल की दोस्ती गांव की एक लड़की से हो गई। धीरे-धीरे संबंध आगे बढ़े, मेल-मुलाकातें बढ़ीं। एक दिन खेत में शाम के वक्त वे दोनों घूम रहे थे, पास ही में एक गाय और बछड़ा आपस में मुंह रगड़ रहे थे। चंदूलाल ने उनकी ओर इशारा करते हुए शरमा कर डरते-डरते अपनी प्रेमिका से कहा, बुरा न मानना, मेरा मन भी ऐसा ही करने का होता है।
प्रेमिका बोली, अरे इसमें बुरा मानने की क्या बात है! और इतना डर क्यों रहे हो? शौक से करो। आखिर यह गाय मेरे चाचाजी की ही तो है, इसमें शरमाने की बात ही क्या है?
चंदूलाल कुछ कह रहे हैं, चंदूलाल की प्रेयसी कुछ और समझ रही है। कुछ है, और कुछ समझा जा रहा है। बस यही माया है, यही भ्रांति है, यही हमारा भटकाव है।
रोवै माया खाय पछारा, तनिक न गाफिल पाऊं।
जब देखौं तब ज्ञान ध्यान में, कैसे मारि गिराऊं।।
और अगर तुम नाचने-गाने से न माने, तो माया रोएगी भी, छाती भी पीटेगी।
रोवै माया खाय पछारा...
पछड़-पछड़ जाएगी, गिर-गिर पड़ेगी। लेकिन पलटू कहते हैंः मुझे उलझाने का कोई उपाय नहीं है--न तेरा नाच, न तेरा गीत, न तेरा रोना, न तेरा पछाड़ खाकर गिर पड़ना। मैं जानता हूं कि सब मेरे मन का खेल है, इसलिए मैं गाफिल नहीं हूं। मैं होश से भरा हूं। मैं जागा हुआ हूं। तू कर अपने सारे खेल, तू दिखा अपने सारे खेल। मैं जानता हूं भलीभांति कि ये सब खेल मेरे ही निर्मित हैं। मैंने ही अतीत में ये बीज बोए थे जो आज फसल बन कर खड़े हो गए हैं।
सरकारी राशन की दुकान के सामने बहुत भीड़ लगी हुई थी और एक व्यक्ति, जो
कि बगल में एक बड़ा सा थैला दबाए हुए था, बार-बार भीड़ को चीर कर आगे निकल जाने की कोशिश कर रहा था। मगर भीड़ भी आखिर भीड़, कैसे कोई आगे निकल जाए! वह बार-बार धक्के मार-मार कर उस व्यक्ति को पीछे धकेल देती थी। जब तीन घंटे हो गए और वह व्यक्ति धक्के खा-खा कर परेशान हो गया, तो भीड़ को संबोधित करके बोला कि भाइयो एवं बहनो, यदि आप लोगों ने मुझे आगे नहीं जाने दिया तो मैं

तुम्हें कहे देता हूं कि दुकान आज फिर बंद ही रहेगी। क्योंकि दुकान खोलूंगा तो मैं ही न!
वह दुकान का मैनेजर है, उसके बिना दुकान नहीं खुल सकती।
माया की कुंजी तुम्हारे मन के पास है। तुम जरा मन को एक तरफ हटा कर रख दो, फिर लाख माया उपाय करे, दुकान नहीं खुल सकती। तुम्हारे भीतर माया की कुंजी है, यह हमारा सौभाग्य! कुंजी किसी और के पास होती तो शायद इस संसार में फिर मुक्त होने का कोई उपाय न था। फिर तो मुक्ति भी एक तरह की गुलामी होती; कोई दूसरा मुक्त करता तो हम मुक्त होते। लेकिन चूंकि कुंजी हमारे पास है, यह हमारा चुनाव है। हम चाहें तो गुलाम रहें और चाहें तो मालिक हो जाएं।
पलटू कहते हैंः हम तो मालिक हो गए हैं, इसलिए हम पर अब तेरा जोर न चलेगा।
जब देखौं तब ज्ञान ध्यान में...
मैं तो तुझे ज्ञान और ध्यान के जगत से देख रहा हूं। मैं तो अपने साक्षी-भाव में थिर हूं। और मेरे साक्षी-भाव में अगर कोई भी बात है तो बस एक ही है कि कैसे तुझे मार गिराऊं। सदा के लिए कैसे तुझे मार गिराऊं कि तेरा उठना ही संभव न रह जाए। इतना तो हो गया है कि मैं जाग गया हूं और तू मुझे धोखा नहीं दे पाती; लेकिन इतना अभी नहीं हुआ है, इतना नहीं जाग गया हूं कि तेरा आना ही बंद हो जाए। अधजगा हूं!
ऐसी थोड़ी-थोड़ी, जैसे सुबह कभी-कभी तुम्हारी अवस्था होती है--नींद भी नहीं, जागे भी नहीं, थोड़ा-थोड़ा जाग भी गए हैं। राह पर कोई गुजरता है तो आवाज भी सुनाई पड़ती है। बच्चे स्कूल जाने की तैयारी करते हैं तो आवाज सुनाई पड़ती है। पत्नी चौके में चाय बनाने लगी है तो केतली में होती आवाज सुनाई पड़ती है। चाय की गंध भी तुम्हारे नासापुटों तक आने लगी है। सुबह के सूरज की किरणें तुम्हारे चेहरे पर पड़ रही हैं, उनकी गर्मी भी मालूम हो रही है। लेकिन फिर तुम एक करवट लेकर सो गए हो। सोचते होः अभी और पांच-दस मिनट। सोए भी नहीं हो, जागे भी नहीं हो।
ध्यान की अवस्था का अर्थ होता हैः न तो सोए, न जागे। और समाधि का अर्थ होता हैः पूर्णतया जागे। समाधि ध्यान की ऐसी समग्रता है कि जिससे फिर नीचे नहीं गिरा जा सकता। लेकिन ध्यान से तो चूक होती है। ध्यान से तो बहुत बार तुम चूक जाओगे। स्मरण करते-करते भूल जाओगे।
मेरी बीबी मुझे आदमी नहीं, जानवर भी नहीं, बल्कि कीड़ा-मकोड़ा समझती है-- मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन मुझसे कह रहा था। वह अक्सर मुझे मक्खी, मच्छर, तिलचट्टा, भुनगा आदि भी कहती है। और कभी-कभी बहुत गुस्से में तो चींटा, जुआं, दीमक तक कह बैठती है। और आजकल इतना ही नहीं, वह मुझे पिस्सू तक कहने लगी है।
अरे बड़ी दुष्ट स्त्री है--मैंने उससे कहा--ऐसी बुरी स्थिति में आखिर तुम करते क्या हो?
मैं क्या करूंगा भला--नसरुद्दीन ने भयभीत स्वर में जवाब दिया--बस इतना
ही करता हूं कि डीड़ी.टी., फ्लिट वगैरह घर में नहीं रखता कि कहीं मुझ पर छिड़क कर प्राण ही न ले ले। और मलेरिया वाले जब छिड़काव के लिए आते हैं तो उन्हें बाहर से ही दस-पांच रुपये देकर भगा देता हूं।
अब अगर बीबी जनम भर से यही कह रही हो कि तुम तिलचट्टा हो, भुनगा हो, सुनते-सुनते भरोसा आ गया होगा। सम्मोहित हो गया होगा। किसी चीज की पुनरुक्ति बार-बार की जाए तो हमें उस पर भरोसा आने लगता है।
ऐसे ही तुम्हें माया पर भरोसा आया है। जन्मों-जन्मों की पुनरुक्ति है। अनंत काल से तुम्हारा मन यही बातें दोहराता रहा है--और धन, और पद, और प्रतिष्ठा, और यश! और-और की धुन लगा रखी है। चौबीस घंटे और-और के लिए तड़फ रहा है। तुम उसकी धुन सुनते-सुनते, सुनते-सुनते सम्मोहित हो गए हो। माया है सम्मोहन, एक तरह का भ्रम, जो निरंतर दोहराने से सत्य जैसा मालूम होने लगा है। अब पत्नी ही नहीं मानती कि नसरुद्दीन पिस्सू है, नसरुद्दीन भी मानने लगा है--और भयभीत है, और डरा हुआ है।
माया का यह जो तुम्हारा सम्मोहन है, संतों की सदा से एक ही चेष्टा रही--कैसे तुम्हें झकझोर दें! कैसे तुम्हें इतना हिला दें कि तुम्हारा यह

सुनिश्चित हो गया सम्मोहन टूट जाए! कैसे तुम्हें असम्मोहित कर दें! इसलिए निरंतर बुद्धपुरुष चिल्लाते रहे हैं। तुम सुनो कि न सुनो, पुकारते रहे हैं। तुम मानो कि न मानो, तुम उन्हें सूली चढ़ाओ कि तुम उन पर पत्थर फेंको, मगर वे हैं कि अपने धुन के मस्त, वे तुम्हें पुकारते ही चले जाते हैं। क्योंकि उन्हें दिखाई पड़ता है कि सिर्फ तुम्हारी मान्यता ने अड़चन डाल दी है।
एक बार मेरे पास एक आदमी को लाया गया। उसका मस्तिष्क कुछ विक्षिप्त जैसा हो गया था। उसे यह भ्रांति हो गई थी कि दो मक्खियां उसके भीतर घुस गई हैं, क्योंकि वह मुंह खोल कर सोता है और दो मक्खियां एकदम भीतर चली गईं, अब वे निकलती ही नहीं हैं। वे भीतर भनभन-भनभन- भनभन कर रही हैं। पेट में जाती हैं, कभी सिर में चली जाती हैं, कभी पैर में घुस जाती हैं। अब मक्खियों का क्या! डाक्टरों के पास ले जाया गया, बहुत चिकित्सा की गई। उसकी क्या चिकित्सा हो सकती है? कोई बीमारी हो तो चिकित्सा हो जाए! माया कोई बीमारी नहीं है कि उसकी चिकित्सा हो जाए। इसलिए माया की कोई औषधि नहीं है। परेशान हो गए घर के लोग। उसकी पत्नी उसे मेरे पास ले आई, कहा कि हम आपके सिवाय अब कहां जाएं? हम परेशान हो गए हैं। आप ही कुछ करो।
मैंने कहा कि यह मेरा धंधा ही है। तू ठीक जगह आ गई। इतने दिन तू भटकी क्यों? लोगों को मक्खियों से छुड़ाना, यही मेरा काम है।
उसने कहा, क्या और लोग भी इस तरह के हैं? मैं तो सोचती थी यह बीमारी मेरे पति को ही हुई है।
मैंने कहा, तू फिक्र छोड़। यह सभी पतियों को है। पत्नियों को भी है।
पहले इसकी छुड़ा दूंगा, फिर तेरी छुड़ा दूंगा।
लेकिन मुझे--उसने कहा--है ही नहीं।
मैंने कहा, तू समझी नहीं बात। अलग-अलग तरह की मक्खियां हैं। बीमारी बहुत ढंग से आती है यह।
उसने कहा, होगा। आप आध्यात्मिक बातें न करें, मेरे पति का किसी तरह ये
दो मक्खियों से छुटकारा दिलवा दें बस।
पति ने कहा कि बहुत मुश्किल है। कितना तो इलाज करवा चुके। कितनी दवा
पी चुका। दवा पी-पी कर परेशान हो गया। क्योंकि मैं दवा पीता हूं, दवा पेट में गई, मक्खियां सिर में चली जाती हैं। आखिर मक्खियों का दवा कैसे पीछा करे!
मैंने कहा कि तू घबड़ा मत। उसे मैंने कहा, तू लेट जा बिस्तर पर, आंख बंद
कर ले। ये मक्खियां हैं, मेरी समझ में आ रही हैं।
उसने कहा, आप पहले आदमी हैं। अब तक जितने डाक्टरों के पास गया, वे सब कहते हैं, यह सब मन का ख्याल है।
मैंने कहा, गधे हैं। अरे मक्खियां कहीं मन का ख्याल! और यह तो साफ दिखाई पड़ रही हैं कि तेरे भीतर घूम रही हैं!
उसने कहा, हाथ में हाथ दीजिए। आप पहले आदमी हैं जिस पर मुझे भरोसा आया। आप शायद कुछ कर पाएं। क्योंकि मुझे उन पर शक पहले ही हो जाता, जब वे कहते हैं कि ये मक्खियां हैं ही नहीं, ये क्या खाक मेरा इलाज करेंगे! जो बीमारी ही नहीं मान रहे, जो मुझ पर संदेह कर रहे हैं, जो मेरा प्राण लिए ले रही हैं मक्खियां--न सो सकता, न बैठ सकता, न काम कर सकता--क्योंकि भनभन-भनभन, उनका चक्कर जारी है। इधर मैं इतना परेशान हो रहा हूं और इन सज्जनों को सूझी हैं ज्ञान की बातें कि मक्खियां हैं ही नहीं, बस मन का ख्याल है। अरे मन का ख्याल, मैं क्या कोई पागल हूं!
पागल कभी नहीं मानते कि वे पागल हैं।
मैंने कहा, तुम और पागल! तुम बिल्कुल समझदार आदमी हो। तुम गिनती तक ठीक कर रहे हो। दो मक्खियां, बिल्कुल दो हैं। तुम लेट जाओ बिस्तर पर, आंख बंद कर लो।
उसकी आंख पर मैंने पट्टी बांध दी और मैंने कहा कि तुम विश्राम करो, मैं जरा मक्खियों को पकड़ने की कोशिश करता हूं। कभी मैंने उसका पैर दबाया, कभी उसका पेट दबाया। वह बड़ा प्रसन्न था कि एक आदमी तो मिला जो मानता है।
कभी उसके सिर पर हाथ रखा।
उसने कहा, हां, बिल्कुल यहीं हैं।

फिर मैं भागा घर में। मैंने फिक्र की कि किसी तरह दो मक्खियां पकड़ लूं। अब कभी मक्खियां पकड़ी नहीं थीं पहले, बामुश्किल... पड़ोसी के पास गया, पड़ोसी के घर में मिल गईं मक्खियां। और वे भी मिलीं ऐसे कि उनकी तेल की बोतल, खोपड़े के तेल की बोतल, वह कभी-कभी मैं देखता था धूप में रखी पिघलने के लिए सर्दी के दिनों में, उसमें मुझे मक्खियां दिखाई पड़ती थीं। तो मैंने उनसे कहा कि तुम्हारी बोतल आज काम आ जाएगी, वे दो मक्खियां उसमें से निकाल दो।
वे दो मक्खियां निकाल कर लाया, एक शीशी में बंद कीं। जंतर-मंतर जो भी करने थे वे किए। आखिर उस आदमी की आंख खोलीं। बोतल उसके हाथ में थमा दी। उसने कहा कि यह कोई बात हुई! ये रहीं मक्खियां! उसने कहा, बुलाओ मेरी पत्नी को! मूरख मेरा तीन साल से प्राण खाए जा रही है कि छोड़ो, ये मक्खियां हैं ही नहीं, तुम नाहक... ! अब ये मक्खियां कहां से आईं?
उसकी पत्नी को मैंने कहा कि अब तू मत कहना कुछ और, तू मान लेना कि हां, हमारी गलती थी। वह आदमी ठीक हो गया। वे मक्खियां गईं। वह भनभन गई। वह झंझट उसकी समाप्त हुई।
बहुत बार बुद्धपुरुषों को तुम्हारे लिए न मालूम कितने उपाय ईजाद करने पड़े हैं, क्योंकि तुम्हारी बीमारी मौलिक रूप से व्यर्थ है और झूठी है। इसलिए कोई उपाय वस्तुतः सत्य नहीं है। इसलिए सारे बुद्धों ने कहा हैः एक दिन उपाय भी छोड़ देना। क्योंकि उपाय सिर्फ तुम्हारी झूठी बीमारी को अलग करने के लिए है। जैसे एक कांटे से दूसरा कांटा निकाल लें, फिर दोनों को फेंक दें।
पलटू कहते हैंः रोवै माया खाय पछारा, तनिक न गाफिल पाऊं।
बस इतना ही ख्याल रखता हूं कि तनिक भी अपने को गाफिल न पाऊं, क्योंकि मैं गाफिल हुआ कि माया का कब्जा हुआ। मैं होश में रहूं तो माया का कब्जा नहीं होता।
जब देखौं तब ज्ञान ध्यान में, कैसे मारि गिराऊं।
बस एक ही सुरति बंधी है, एक ही टेक लगी है, कि कब ऐसा प्रज्वलित प्रकाश मेरे भीतर हो जाए जो कभी न बुझे! कब ऐसी ज्योति जल उठे ज्ञान की, ध्यान की, कि उसकी रोशनी में यह माया फिर निर्मित न हो सके। यह निर्मित अंधेरे में ही हो सकती है। और जब तक अंधेरा है तब तक तुम लाख बचो, बच नहीं पाओगे। चंदूलाल ने अदालत में अपनी पत्नी से तलाक लेने के लिए अर्जी दी थी। तलाक की अर्जी में उन्होंने शिकायत की थी कि उनकी पत्नी लगातार पिछले तीस वर्षों से कोई न कोई वस्तु, जैसे बेलन, गुलदान, थाली इत्यादि फेंक-फेंक कर मार रही है। मजिस्ट्रेट ने चंदूलाल से कहा, चंदूलाल, तुम्हारी शिकायत समझ में आती है, बिल्कुल ठीक है। पत्नियां इस तरह के कार्य करती हैं, यह ज्ञात है। मैं भी शादीशुदा हूं। लेकिन तुम्हारी पत्नी पिछले तीस वर्षों से बेलन, गुलदान और न जाने क्या-क्या फेंक-फेंक कर मारती रही और तलाक के लिए अर्जी तुम आज दे रहे हो!
चंदूलाल ने कहा, क्या करूं हुजूर, पहले तो जब यह बेलन इत्यादि फेंक कर मारती थी तो निशाना चूक जाता था, लेकिन कल से इसका निशाना बिल्कुल अचूक हो गया है। अब इसके साथ जीना बिल्कुल असंभव है, बिल्कुल मुश्किल है। और मैं जागा रहता हूं तब मारती है, तो सिर बचा लेता हूं, उचक कर जगह से हट जाता हूं। मगर मैं सोया रहता हूं तब भी मारती है। और निशाना इसका अचूक हो गया है। अब नहीं चल सकता यह संबंध।
नींद में तुम हो और किसी का निशाना अचूक हो, तब तो बचने का उपाय भी नहीं। ऐसी ही दशा है। माया से तलाक लो। माया से तलाक का नाम संन्यास है। और माया से तलाक का अर्थ क्या होता है? यह नहीं होता कि भाग खड़े हुए जंगल की तरफ। माया के तीर जंगल तक पहुंच जाएंगे, अगर तुम नींद में हो। माया का फैलाव बड़ा है। दूर-दूर तक उसके तीर पहुंच जाएंगे। इसलिए सवाल भागने का नहीं है, जागने का है। तुम जहां हो वहीं जाग जाओ, फिर माया का कोई तीर तुम तक नहीं पहुंच सकता। माया ही मर जाती है। इधर तुम जागे कि माया मरी। तुम जब तक सोए हो, माया जीवित है। तुम्हारी निद्रा ही माया है।
इसलिए बुद्ध ने कहा हैः मूर्च्छा माया है। संसार नहीं, मूर्च्छा।
महावीर ने कहा हैः निद्रा माया है। संसार नहीं, निद्रा।

रिद्धि-सिद्धि दोई कनक समानी, बिस्तु डिगन को भेजा।
और वे कहते हैंः जैसे-जैसे मेरा ध्यान सम्हल रहा है, वैसे-वैसे माया
नई अड़चनें खड़ी कर रही है, ऋद्धि-सिद्धियां भेज रही है। अब उसने और सूक्ष्म उपाय खोजने शुरू किए हैं। अब धन नहीं भेजती, क्योंकि धन की व्यर्थता मैंने देख ली। अब पद नहीं भेजती, पद की व्यर्थता मैंने देख ली। अब ऋद्धि- सिद्धियां आनी शुरू हो गई हैं। अब मेरे हाथ में चमत्कार की शक्ति आ रही है कि मिट्टी छुऊं तो सोना हो जाए, कि मुर्दे को छुऊं तो मुर्दा जग जाए।
पलटू कहते हैंः मैं भलीभांति पहचानता हूं, ये भी माया के अंतिम जाल हैं। और अगर मैं इनमें उलझ गया तो वापस पुनः गिर पडूंगा, ये सारी ऊंचाइयां खो जाएंगी। फिर वहीं के वहीं।
मन सब तरह के उपाय करता है अपने को बचाने के। ऋद्धि-सिद्धियां मन को बचाने के उपाय हैं। और बड़े सूक्ष्म उपाय हैं। और ऐसे प्रीतिकर और ऐसे मधुर और ऐसे स्वादिष्ट, कि छोड़ने का मन न हो। मन जहर भी देगा तुम्हें, तो शक्कर चढ़ा कर देता है, शक्कर में पाग कर देता है।
रिद्धि-सिद्धि दोई कनक समानी, बिस्तु डिगन को भेजा।
मुझे डिगाने को, मुझे हिलाने को, मेरे ध्यान को खंडित करने को, मेरी निश्चल हो गई झील में लहरें उठाने को अब ये ऋद्धियां-सिद्धियां आ रही हैं।
तीन लोक में अमल तुम्हारा, यह घर लगै न तेजा।
लेकिन ख्याल रखो, होगा तीन लोकों में तुम्हारा विस्तार, मगर इस घर में तुम्हारा तीर नहीं लगेगा। ऋद्धि-सिद्धि भी मुझे धोखा नहीं दे पाएंगी। इसलिए सच्चा साधु चमत्कार नहीं करता, सिर्फ झूठे साधु! सच्चा साधु चमत्कार नहीं कर सकता। क्योंकि चमत्कार करने का अर्थ ही यह हुआ कि गिर गया समाधि से, पहुंचते-पहुंचते चूक गया, शिखर छूने-छूने के करीब था कि फिर भटक गया। फिर ऋद्धि-सिद्धियों का अहंकार खड़ा हो जाएगा।
तीन लोक में अमल तुम्हारा, यह घर लगै न तेजा।
पलटू कहते हैंः लेकिन तू भी जान रख, इस घर में तेरा तेजा न चलेगा, तेरा तीर न चलेगा। इस घर में तेरी गति नहीं होगी। चलता होगा तीन लोक में तेरा अमल। तू जान, तेरे तीन लोक जानें।
तू क्या माया मोहिं नचावै...
बड़ा प्यारा वचन है। कहते हैंः क्या तू मुझे नचाएगी!
मैं हौं बड़ा नचनिया।
मैंने कई को नचाया है। मैं खुद नचाने का धंधा ही करता रहा हूं। मेरा काम ही यह है, मेरा व्यवसाय ही यह है। तू मुझे क्या नचाएगी?
इहवां बानिक लगै न तेरी...
यहां तेरा दांव चलने का नहीं है।
मैं हौं पलटू बनिया।
तू ख्याल रख! मैं पलटू बनिया हूं, मैंने बहुतों को नचाया है। मैं सब धोखेधड़ियां जानता हूं। ऐसी कौन धोखाधड़ी है जो मैंने नहीं की? ऐसी कौन सी जालसाजी है जो मैंने नहीं की? ऐसी कौन सी बेईमानी है जो मैंने नहीं की? मैं हौं पलटू बनिया।
मैंने यह सब व्यापार खूब कर लिया है, जन्मों-जन्मों से कर लिया है।
मैं कोई सीधा-सादा ब्राह्मण नहीं हूं कि पूजा-पाठ करके बैठा रहा हूं।
मैंने सब जुए खेल लिए हैं।
प्यारी बात कह रहे हैं, ठीक बात कह रहे हैं। मैंने सब धंधे, सब गोरखधंधे कर डाले हैं। तू मुझे नहीं नचा सकेगी।
इसलिए मैं भी तुमसे कहता हूंः जीवन से भागना मत, नहीं तो माया तुम्हें कहीं भी उलझा लेगी। तुम कच्चे रहोगे। तुम्हें माया के जालों का अनुभव ही न होगा। तुम संसार में जीओ ठीक से और माया के सारे खेल पहचान लो। संसार माया के खेल पहचान लेने के लिए परम अवसर है। भागो मत। तुम भी किसी दिन ऐसी समर्थ अवस्था में हो जाओ, यह मैं चाहता हूं, कि कह सको कि मैं हूं बड़ा नचनिया! मैंने बड़े-बड़ों को नचा दिया है, तू मुझे न नचा सकेगी।
इहवां बानिक लगै न तेरी, मैं हौं पलटू बनिया।
पाप कै मोटरी बाम्हन भाई, इन सब ही को बगदाई।

तूने सबको भटका दिया। बाम्हन भाई को भी भटका दिया। बिचारा भोला-भाला है, धोखाधड़ी कभी की नहीं। किताबों का कीड़ा है। रटता रहा ऋचाएं वेद की।
पाप कै मोटरी बाम्हन भाई, इन सब ही को बगदाई।
और तूने ब्राह्मण के सिर पर भी पाप की पोटरी रख दी। उस पर भी तेरी चाल
चल गई।
साइत सोधिकै गांव बेढ़ावै, खेत चढ़ाय के मूंड़ कटावै।
उस ब्राह्मण को, जो दूसरों के लिए मुहूर्त देखता है, जो गांव भर को रास्ता बताता है--उसको भी भरमा दिया!
रास वर्ग गन मूर को गाड़ि...
कुंडली मिला कर, जन्मकुंडली बना कर जो लोगों के नक्षत्रों का तालमेल बिठाता है...
घर कै बिटिया चौके रांड़ि।
उसकी खुद की बेटी घर में विधवा होकर बैठी है! और फिर भी लोग ऐसे मूढ़ हैं कि उससे जाकर अपनी जन्मकुंडली मिलवा रहे हैं।
और सभन को गरह बतावै, अपने गरह को नाहिं छुड़ावै।
दूसरों को बताता है कि तुम पर ग्रहों का चक्कर है और खुद ग्रहों के चक्कर में पड़ा है, उनसे छूट नहीं पाता। भोला-भाला है बेचारा। थोथा पांडित्य है उसके पास। उसको शायद तूने धोखा दे दिया हो। मगर...
इहवां बानिक लगै न तेरी, मैं हौं पलटू बनिया।
यहां तेरी चालबाजियां न चलेंगी। तू अगर सेर है तो मैं सवा सेर हूं। मैं तेरे हर धोखे को पहचान लूंगा, क्योंकि हर धोखा मैं कर गुजरा हूं। ऐसा कौन सा धोखा है जो मैंने नहीं किया! मैंने बहुतों की जेबें काटी हैं। तू आगे बढ़!
किसी शहर में दो देहाती सड़क के बीचों-बीच चल रहे थे। चौराहे पर खड़े हुए पुलिसमैन ने कहा, भाई साहब, किनारे से चलिए।
दोनों फुटपाथ पर आकर कहने लगे, अजीब आदमी है, खुद तो सड़क के बीचों-बीच खड़ा है और हमें फुटपाथ पर चलने को कह रहा है!
ऐसी ही अवस्था तुम्हारे ब्राह्मण की है। उसकी कौन सुने! कौन उसकी माने! लोग देखते तो हैं कि उसकी खुद की हालत खराब है, वह खुद ही तो भीख मांगता फिर रहा है। अपना जीवन तो सुधार नहीं पाया है, दूसरों को समझा रहा है। लेकिन पलटू जैसे लोग जब रूपांतरित होते हैं तो जरूर लोग उनकी बात सुनते हैं, क्योंकि जीवन में परिपक्व होकर आए हैं, अनुभव लेकर आए हैं। पंडित तो केवल औपचारिक बातें करता है। बातें ही बातें हैं, उन बातों में कुछ सार नहीं। बात में कुछ बात नहीं है। थोथी है। बिल्कुल औपचारिक है। क्रियाकांड है। और क्रियाकांड के कारण खुद भी मुसीबत में पड़ा है और दूसरों को भी मुसीबत में डालता है।
मुल्ला नसरुद्दीन के घर लखनऊ से मियां बदरुद्दीन मेहमान बन कर रुके। सुबह दोनों को एक साथ पाखाना जाने का हुआ। तहजीब के अनुसार नसरुद्दीन ने कहा, पहले आप!
बदरुद्दीन कैसे पीछे रहते। वे बोले, जी नहीं, पहले आप।
मुल्ला बोले, जी नहीं, पहले आप!
लेकिन बदरुद्दीन बोले, अजी नहीं मियां, पहले आप।
तो नसरुद्दीन ने बड़े इत्मीनान से कहा, मियां, हमारा तो यहीं हो गया।
अब आप ही जाइए।
औपचारिकताएं--पहले आप! पहले आप! किसी को प्रयोजन नहीं है, लेकिन चलती हुई बातें हैं, सदा से मानी जाती रही हैं, उस ढंग से ही चलना चाहिए।
पंडित के पास सिवाय औपचारिकता के और कुछ भी नहीं है। बोध नहीं है, अनुभव नहीं है, ध्यान नहीं है। और जहां ध्यान नहीं वहां ज्ञान कैसे होगा? ध्यान की ही सुगंध है ज्ञान। ध्यान का ही संगीत है ज्ञान। ध्यान की वीणा पर ही जो संगीत उठता है उसका नाम ज्ञान है।
शास्त्रों से नहीं मिलता ज्ञान। ज्ञान तो मिलता है स्वयं में प्रवेश से। कितना ही जान लो कुरान और बाइबिल और पुराण और वेद और उपनिषद--नहीं कुछ होगा। हां, अपने को जान लोगे तो फिर कुरान में भी बहुत कुछ पाओगे, क्योंकि वह भी किसी अपने को जाने हुए आदमी की वाणी है। फिर गीता में भी बहुत कुछ

पाओगे। मगर पहली अनुभूति तो अपने भीतर होनी चाहिए। पहली किरण तो अपने भीतर टूटनी चाहिए। तुम्हारे हाथ में दीया हो तो तुम्हें गीता में बहुत खजाने मिलेंगे। खजाने वहां हैं, लेकिन तुम्हारे हाथ में दीया न हो तो क्या तुम खाक वहां पाओगे! और तुम्हारे पास जौहरी की आंख न हो तो हीरे-जवाहरात मिल भी जाएं तो क्या करोगे? पहचान ही न सकोगे कि वे हीरे-जवाहरात हैं। और तुम अंधे अगर हो, तब तो फिर बहुत मुश्किल हो गई। और यही हालत हैः अंधे हो, जौहरी नहीं हो, हाथ में दीया भी नहीं है और खोज में लगे हो!
दर्शनशास्त्र की ऐसी व्याख्या की जाती है कि एक अंधा आदमी, अमावस की रात, एक ऐसे भवन में जहां दीया भी नहीं जल रहा है, एक काली बिल्ली को खोज रहा है जो कि वहां है ही नहीं! एक तो अंधा, फिर अमावस की रात, फिर एक दीया भी नहीं घर में, फिर काली बिल्ली--और वह भी वहां मौजूद नहीं है! वह भी मौजूद होती तो भी एक बात थी कि चलो खोजते-खोजते किसी तरह--अगर अंधा न खोज पाता तो कम से कम बिल्ली अंधे को खोज लेती--किसी तरह मिलन हो जाता। लेकिन वह बिल्ली भी वहां है नहीं।
दर्शनशास्त्र ऐसा ही है। सारा पांडित्य ऐसा है। थोथा! और उसके थोथे होने का कारण हैः गलत शुरुआत; दूसरे से शुरुआत--उधार। कृष्ण को मान लो, बुद्ध को मान लो, महावीर को मान लो--और उनको मानने में भूल ही जाओ कि तुम भी हो। जैन हो जाओ, ईसाई हो जाओ, मुसलमान हो जाओ--और यह भूल ही जाओ कि तुम आत्मा हो, न हिंदू, न मुसलमान, न ईसाई।
और सभन को गरह बतावै, अपने गरह को नाहिं छुड़ावै।
मुक्ति के हेतु इन्हें जग मानै, अपनी मुक्ति के मरम न जानै।
और लोग मुक्ति के लिए इन पंडित-पुरोहितों को मानते हैं और इनको खुद की मुक्ति का कुछ भी पता नहीं। मर्म ही पता नहीं। राज ही पता नहीं। ये खुद तुमसे भी ज्यादा बंधनों में पड़े हैं।
औरन को कहते कल्यान, दुख मा आपु रहै हैरान।
ब्राह्मण को नमस्कार करो तो वह कहता हैः कल्याण हो! और इनकी शक्ल तो देखो। जिसको इनकी शक्ल दिखाई पड़ जाए, कल्याण होता हो तो रुक जाए। ये कहते हैं--कल्याण हो!
मेरे गांव में मेरे एक शिक्षक थे। संस्कृत पढ़ाते थे। उनकी आदत थी, नमस्कार करो, वे कहेंः कल्याण हो! जब पहली दफा मैं उनकी कक्षा में भरती हुआ और मैंने पहली दफा उनको नमस्कार किया, उन्होंने कहा, कल्याण हो! मैंने उनसे कहा कि सुनिए, आपका हो गया? उन्होंने कहा, यह भी कोई पूछने की बात है! मैंने कहा, अगर आपका न हुआ हो तो मेरा कैसे करवाइएगा?
उन्होंने मुझे अलग से बुलाया और कहा कि इस तरह की बातें नहीं करते हैं सबके सामने। अरे, यह तो एक उपचार है।
तो मैंने कहा, फिर मैं नमस्कार करना आपको बंद कर दूंगा, क्योंकि मेरा नमस्कार उपचार नहीं है, हार्दिक है। तो कम से कम मुझसे तो झूठ न बोलो। जब तुम्हारा ही नहीं हुआ है तो मेरा तुम कैसे करोगे?
जब भी मैं उनसे नमस्कार करता, उनको बड़ी बेचैनी होती, क्योंकि वह उनकी आदत थी--कल्याण हो। वह उनकी बिल्कुल जड़ आदत थी, जैसे ग्रामोफोन रिकार्ड। तो जब मैं उनको नमस्कार करूं, वे एक क्षण को झिझक जाएं, क्योंकि अब क्या करें! क्योंकि वह जो "कल्याण हो" एकदम उनके मुंह में आए, और वे जानते थे कि उन्होंने कहा कल्याण हो कि मैं उनको पकडूंगा।
एक दिन मैंने एक छोटे से बच्चे को, जो स्कूल के ग्राउंड में खेल रहा था, उससे मैंने कहा कि तू मेरे पास खड़ा रह और ये पंडितजी आ रहे हैं, तू नमस्कार करना। वे पंडितजी आए। उस छोटे बच्चे ने, जैसा मैंने उससे कहा था, उनसे नमस्कार किया। उन्होंने तत्क्षण कहा, कल्याण हो!
मैंने कहा, ठहरिए। आप फिर कल्याण करने लगे!
उन्होंने मुझसे कहा, भाई, तुम क्या मेरा बोलना ही बंद कर दोगे? तुमसे
तो मैं डरने लगा हूं। तुम तो नमस्कार करते हो तो मुझे बड़ी झंझट होती है कि क्या करूं, क्या न करूं! अब दूसरों पर भी तुम रुकावट डालने लगे!
मैंने कहा, मेरी रुकावट की कुल कोशिश इतनी है कि मैं आपको याद दिलाऊं
कि कल्याण अभी आपका नहीं हुआ है। पहले अपना कल्याण कर लें। फिर बांटें, जरूर बांटें। कल्याण से ज्यादा बांटने योग्य और है भी क्या इस जगत में!

औरन को कहते कल्यान, दुख मा आपु रहै हैरान।
खुद हैरान हो रहे हैं दुख में, परेशान हो रहे हैं। खुद बिना अनुभव के हैं और दूसरों को अनुभव बांट रहे हैं!
मुल्ला नसरुद्दीन की पूरी मित्र-मंडली एक दिन सिनेमा देखने गई। बरसात के दिन थे, सभी लोग रेनकोट पहने टिकट के लिए लंबी लाइन में खड़े थे। ढब्बूजी ने पीछे पलट कर मुल्ला से कहा, नसरुद्दीन, बड़े जोरों से लघुशंका लगी है। क्या करूं समझ में नहीं आता! यदि लाइन छोड़ कर बाथरूम तक जाऊं तो फिर पीछे खड़ा होना पड़ेगा। ऐसी स्थिति में टिकट मिलना मुश्किल लगता है। और यदि न जाऊं तो डर है कि कहीं कपड़े ही खराब न हो जाएं। बड़ी विकट समस्या है। मेरी बात मानो--मुल्ला ने सलाह दी--सामने खड़े चंदूलाल के रेनकोट की पाकेट में जीवन-जल का त्याग कर दो।
ढब्बूजी ने मुस्कुरा कर कहा, और यदि उसे पता चल गया तो?
कुछ पता नहीं चलता--मुल्ला बोला--वैसे भी कितनी बारिश हो रही है!
अरे मजाक मत करो--मुल्ला से ढब्बूजी ने कहा--यदि इस चंदूलाल को पता चल गया तो बहुत झगड़ा-फसाद हो सकता है।
मुझ पर विश्वास रखो, पता नहीं चलेगा--नसरुद्दीन ने ढाढस बंधाया।
मगर मैं कैसे भरोसा करूं! जिंदगी भर के लिए दुश्मनी हो जाएगी। बड़ा डर लगता है मुझे ऐसा करने में।
अरे यार ढब्बूजी, तुम तो सचमुच एकदम ढब्बू हो! फिक्र मत करो, जैसा मैं कहता हूं वैसा करो। मैं यह तुमसे अपने अनुभव से कह रहा हूं--मुल्ला नसरुद्दीन ने रहस्य खोला--जब मैंने तुम्हारे रेनकोट की जेब में पेशाब की थी, तुम्हें पता चला? तो फिर तुम क्यों डरते हो?
थोड़ा अनुभव से हो तो बात में बल होता है। पंडितों की बात में बल नहीं होता, हो भी नहीं सकता, निर्बल होती है। उनको साक्षी खोजनी पड़ती है औरों में। ज्ञानी अपना साक्ष्य स्वयं है। अगर वह शास्त्रों का उल्लेख भी करता है तो शास्त्रों को साक्षी देता है, शास्त्रों की साक्षी नहीं लेता।
मैं अगर कभी गीता, कुरान या बाइबिल का उल्लेख करता हूं तो इसलिए नहीं
कि मेरी बात में उनकी बात से बल पड़ जाएगा। मेरी बात तो मेरा अनुभव है। कुरान, बाइबिल, गीता हुए हों या न हुए हों, सब जल जाएं और राख हो जाएं, तो भी मेरी बात में कोई फर्क नहीं पड़ेगा। मेरी बात का बल उतना ही रहेगा। अगर मैं उनका उल्लेख करता हूं तो उनकी साक्षी नहीं ले रहा हूं; उनको साक्षी दे रहा हूं। और पंडित जब उनकी बात करता है तो उनकी साक्षी ले रहा है; उसके पास अपना तो कुछ है नहीं। उससे अगर गीता छीन लो, वह एकदम निपट अज्ञानी हो जाएगा। गीता में उसके प्राण हैं। गीता मरोड़ दो, उसके प्राण मर जाएंगे। शास्त्रों में तुम्हारे प्राण नहीं होने चाहिए, नहीं तो तुम जीवन भर भटकोगे। अनुभव में तुम्हारे जीवन की जड़ों को फैलाओ।
दूध-पूत औरन को देते, आप जो घर-घर भिक्षा लेते।
खुद तो भीख मांगते फिरते हैं और दूसरों को आशीर्वाद देते हैं।
पलटूदास की बात को बूझै, अंधा होई तेहु को सूझै।
बड़ी अदभुत बात कही! यह तो सूत्र खूब सम्हाल कर रख लेना!
पलटूदास की बात को बूझै, अंधा होई तेहु को सूझै।
पलटूदास कहते हैंः ये जो तथाकथित आंख वाले लोग हैं, ये तो अंधे हैं।
इनकी आंखें बाहर की तरफ खुली हैं। मेरे हिसाब से ये सब अंधे हैं। मेरे हिसाब से तो वह आंख वाला है जो बाहर से आंख बंद कर लेता है, बाहर के प्रति जो अंधा हो जाता है, उसको भीतर दिखाई पड़ता है।
और ध्यान क्या है? बाहर के प्रति अंधा हो जाना! ताकि सारी जीवन-ऊर्जा, देखने की सारी शक्ति और क्षमता अंतर्मुखी हो जाए। ताकि जो प्रकाश वस्तुओं पर पड़ता था वह स्वयं पर पड़ने लगे। अपनी मशाल में अपने को देखने की क्षमता। अभी अपनी मशाल से तुमने दूसरों को देखा है, औरों को देखा है, सारा संसार छान डाला है। लेकिन दीया तले अंधेरा! दीये से तुम सब खोजते फिर रहे हो और खुद दीये के तले अंधेरा इकट्ठा होता चला गया है। अब यह ज्योति अंतर्मुखी होनी चाहिए।
संसार की दृष्टि में तो अंधे बन जाओ। आंख बंद करो, अंतर्यात्रा पर चलो। लोग पागल कहेंगे, दीवाना कहेंगे, परवाना कहेंगे, अंधा कहेंगे, सब कुछ

कहेंगे। फिक्र मत करना, क्योंकि वे थोड़े से ही लोग, जो इतनी हिम्मत करते हैं बाहर के प्रति अंधे हो जाने की, स्वयं को जान पाते हैं। और जिसने स्वयं को जान कर फिर आंख खोली, उसे यह सारा जगत स्वयं से ही भरा हुआ मालूम पड़ता है। तब कोयल की कूक में भी उसका अपना ही कंठ है। और फूल की सुगंध में अपनी सुगंध है। और पहाड़ों की ऊंचाइयों में अपनी ऊंचाई है। और सागरों की गहराई में अपनी गहराई है। तब सारा अस्तित्व उसे स्वयं का विस्तार मालूम होता हैः अहं ब्रह्मास्मि! अनलहक!
भलि मति हरल तुम्हार, पांडे बम्हना।
तुम्हारी मति बिल्कुल हर ली गई है। हे पांडे, हे ब्राह्मण!
सब जातिन में उत्तम तुमहीं, करतब करौ कसाई।
कहते तो फिरते हो कि सब जातियों में उत्तम हम हैं, लेकिन जो तुम करते
हो वह कसाई का कर्तव्य है। कसाई से भी बुरा है। क्योंकि कसाई तो पशुओं को काटता है, तुम लोगों को काट रहे हो। कसाई तो छोटी-मोटी हिंसा करता है, तुम इतनी बड़ी हिंसा कर रहे हो लोगों को धोखा देकर कि उनकी जन्मों-जन्मों की यात्रा बिगाड़ रहे हो।
भलि मति हरल तुम्हार...
कैसी तुम्हारी मति हर ली गई है? माया ने तुम्हें खूब भरमाया! हे पांडे बम्हना!
सब जातिन में उत्तम तुमहीं, करतब करौ कसाई।
जीव मारिकै काया पोखौ, तनिको दरद न आई।।
तुम्हें दर्द होता ही नहीं! तुम्हें पीड़ा होती ही नहीं! तुम धोखे पर धोखा दिए जाते हो। खुद धोखा खाते हो, औरों को धोखा दे रहे हो। खुद माया के चक्कर में हो, औरों को ब्रह्मज्ञान समझा रहे हो। यह तो जीव की हत्या है। यह तो लोगों की आत्माओं को नष्ट करना है।
रामनाम सुनि जूड़ी आवै, पूजौ दुर्गा चंडी।
और परमात्मा का सच्चा स्मरण तो तुम्हें कभी आता नहीं, अगर कोई दिलाना
भी चाहे तो बुखार चढ़ता है।
आखिर बुद्धों को देख कर सदा पंडितों को बुखार चढ़ आया है। फिर बुखार में वे अल्ल-बल्ल बकने लगते हैं। अभी दो शंकराचार्यों ने मेरे खिलाफ वक्तव्य देने शुरू किए। सन्निपात! बुखार चढ़ा! जूड़ी आ गई! अब मुझे कई पत्र आए कि मैं जवाब दूं।
अब बुखार चढ़े आदमी की बात का कोई जवाब दिया जाता है? सन्निपात में कोई कुछ कह रहा हो, उसको क्या कोई जवाब देते हैं?
रामनाम सुनि जूड़ी आवै...
और जब भी कोई तुम्हारे भीतर राम को जगाने की क्षमता रखने वाला आता है, तुम्हें एकदम बुखार चढ़ता है, तुम्हें एकदम घबड़ाहट शुरू होती है, क्योंकि तुम्हारा धंधा गया, तुम्हारा व्यवसाय गया, तुम्हारी लूट-खसोट बंद हुई। तुम्हारी प्रतिष्ठा, तुम्हारी पूजा मिट जाएगी। जब कोई ऐसा व्यक्ति मौजूद होता है जो लुटाने लगता है राम को, तब तुम घबड़ाते हो। तुम्हारे मंदिरों का क्या होगा? कौन तुम्हारे मंदिरों में आएगा और कौन तुम्हारी मस्जिदों में, कौन तुम्हारे गिरजों में, कौन तुम्हारे गुरुद्वारों में? तुम तो दुर्गा, चंडी इत्यादि की पूजा में लोगों को लगाए रखते हो। सब व्यर्थ की बकवास में लोगों को लगाए रखते हो। यज्ञ करो, वर्षा होगी। यज्ञ करो, ज्यादा वर्षा नहीं होगी। यज्ञ करो, बीमारी कट जाएगी।
पांच हजार साल से यज्ञ करवा रहे हो और इस देश में जितनी दुर्घटनाएं घटती हैं उतनी दुनिया में कहीं नहीं घटतीं। पांच हजार साल की यज्ञ-पूजा- पाठ का यह फल है, तो एक बात सिद्ध होती है कि परमात्मा तुम्हारे यज्ञों से बहुत नाराज है, बहुत परेशान है।
एक आदमी मरा। वह जिंदगी भर परमात्मा की प्रार्थना करता था--सुबह, शाम, दोपहर। और जब भी मौका मिले राम-राम राम-राम करता रहता। और एक माला हाथ में रखता था, जब अवसर नहीं होता तो माला ही फेरता रहता। उसका साझीदार भी था। वह कभी मंदिर भी नहीं गया, रामनाम भी नहीं लिया, माला उसने छुई नहीं। दोनों एक साथ कार में एक्सीडेंट हुआ और मरे। दोनों को, देवदूत आए और रामनाम करने

वाले को--रामनाम चदरिया ओढ़े हुए था, हाथ में माला लिए हुए था-- उसको नरक ले जाने लगे; और उसके साझीदार को स्वर्ग।
उसने कहा, ठहरो, कुछ भूल-चूक हो रही है। हम तो सुनते आए थे कि यहां सरकारी दफ्तरों में भूल होती है, वहां भी हो रही है। देखते नहीं रामनाम चदरिया और मेरे हाथ की माला और राम-राम जप रहा हूं! जिंदगी हो गई राम-राम जपते। और मुझे नरक! और इस दुष्ट को स्वर्ग--नास्तिक को! जो कभी गया नहीं मंदिर, नाम लिया नहीं।
देवदूतों ने कहा, गलती नहीं हुई है। फिर भी अगर तुम्हें शिकायत हो, हम तुम दोनों को परमात्मा के सामने मौजूद कर देते हैं, अपना निवेदन कर लो। उसने कहा, यह ठीक है, मुझे मौजूद किया जाए।
उसने परमात्मा के सामने कहा कि यह क्या हद बेईमानी, अन्याय! और हम तो सुनते आए थेः देर है, अंधेर नहीं है। मगर यहां अंधेर भी दिखाई पड़ रहा है। देर तो है ही, क्योंकि जिंदगी भर के बाद... रामनाम का कुछ फल मिलना चाहिए था... देर तो वैसे ही बहुत हो गई, अब अंधेर हो रहा है। इस नास्तिक को स्वर्ग और मुझ आस्तिक को नरक, इसके पीछे राज?
परमात्मा ने कहा कि तू मेरा सिर खा गया। जिंदगी भर न तू खुद सोया, न मुझे सोने दिया। क्योंकि तू राम-राम राम-राम करता रहे तो मैं सोऊं कैसे? जैसे कोई आदमी तुम्हारे पास ही बैठा हुआ तुम्हारा नाम जपता रहे तो नींद कैसे आए? स्वर्ग में तो तुझे मैं रहने ही नहीं दूंगा। और अगर तू ज्यादा जिद्द करेगा तो तू रह यहां, हम चले नरक! तेरे साथ रहने से तो नरक में रहना बेहतर। कम से कम सोने को तो मिलेगा! दिन भर की मेहनत के बाद रात को विश्राम तो कर लेंगे! कोई खोपड़ी में तो भनभनाता नहीं रहेगा कि राम-राम राम-राम। और यह रामनाम चदरिया देख कर ही मुझे... तेरे हाथ की यह माला... इन सबके कारण ही तुझे नरक भेज रहा हूं। मेरा-तेरा साथ नहीं हो सकता।
ऐसा ही लगता है कुछ। पांच हजार साल से यज्ञ-हवन चल रहे हैं, पूजा-पाठ
चल रहा है। जितनी बाढ़ यहां आती है, दुनिया के किसी देश में नहीं आती। जितना सूखा यहां पड़ता है, दुनिया के किसी देश में नहीं पड़ता। जितने बांध यहां टूटते, दुनिया के किसी देश में नहीं टूटते। जितनी रेलगाड़ियां यहां उलटती हैं, कहीं नहीं उलटती हैं। भगवान जैसे बहुत परेशान है।
रामनाम सुनि जूड़ी आवै, पूजौ दुर्गा चंडी।
पूजन तुम करते हो काल्पनिक देवताओं का। मनुष्य की ईजादें हैं ये सब।
लेकिन भीतर जो छिपा बैठा है साक्षी परमात्मा, उसकी कोई याद दिलाए कि बस तुम्हें घबड़ाहट शुरू होती है।
लंबा टीका कांध जनेऊ, बकुला जाति पखंडी।
तुम बगुले की जाति के हो, हे पांडे बम्हना!
लंबा टीका कांध जनेऊ, बकुला जाति पखंडी।
ऊपर से तुम बिल्कुल शुभ्र मालूम पड़ते हो, जैसे कि परमहंस हो, मगर हो तुम बगुले। एक टांग पर भी खड़े रहते हो, मगर नजर मछली पर लगी है। ऊपर से तो ऐसा लगता है बड़े रामनामी, लेकिन भीतर? भीतर कुछ भी नहीं है। राम से कुछ नाता नहीं है।
बकरी भेड़ा मछरी खायो, काहे गाय बराई।
पूछते हैं कि हमें आश्चर्य होता है कि तुम बकरी खा जाते, भेड़ खा जाते, मछली खा जाते। काहे गाय बराई! तुमने गाय कैसे छोड़ रखी है, यही आश्चर्य की बात है!
वह भी बहुत बाद में छोड़ी, पहले तो ब्राह्मण गाय भी खाते रहे हैं। गौमेध यज्ञ होते रहे हैं। वह भी बहुत बाद में छोड़ी। वह भी इसलिए छोड़ी कि गाय कृषि के लिए बहुत उपयोगी हो गई। लोगों ने छुड़वाई होगी तब छोड़ी।
यह जान कर तुम हैरान होओगे कि भारत में लोगों की आमतौर से धारणा है, और भारत के बाहर भी धारणा है, कि ब्राह्मण सब शाकाहारी हैं। यह बात झूठ है। होना चाहिए, मगर हैं नहीं। बंगाली ब्राह्मण मछली खाता है मजे से। और काश्मीरी ब्राह्मण तो सब कुछ खाता है। इसीलिए तो पंडित नेहरू मांसाहारी थे--काश्मीरी ब्राह्मण। काश्मीरी ब्राह्मण को कुछ अड़चन ही नहीं है। अगर भारत भर के ब्राह्मणों का हिसाब-किताब लगाया जाए तो तुम हैरान होओगे, उनको शाकाहारी नहीं कहा जा सकता।

बकरी भेड़ा मछरी खायो, काहे गाय बराई।
रुधिर मांस सब एकै पांडे, थू तोरी बम्हनाई।।
अब ऐसे लोगों से अगर ब्राह्मण नाराज न हों तो क्या करें! अगर शंकराचार्यों को जूड़ी न आ जाए तो क्या हो! थू तोरी बम्हनाई! वे कहते हैंः थूकते हैं तेरे ब्राह्मणत्व पर!
सब घट साहब एकै जानौ, यहिमां भल है तोरा।
अगर अपना भला चाहते हो तो अभी भी जागो। और--सब घट साहब एकै जानौ--सब घट में एक ही साहब विराजमान है, इसको पहचानो। शूद्र में भी वही है जो तुममें है। ब्राह्मण में ही नहीं है परमात्मा, हिंदू में ही नहीं है परमात्मा-- सबमें व्याप्त है। इस एक सर्वव्यापी को पहचानो।
सब घट साहब एकै जानौ, यहिमां भल है तोरा।
भगवतगीता बूझि विचारौ, पलटू करत निहोरा।।
पलटू कहता हैः फिर भगवदगीता को बूझना। फिर मैं निहोरा करूंगा तुम्हारा कि अब बूझो भगवदगीता, अब पढ़ो भगवदगीता, अब करो मनन। मगर पहले ध्यान। और एक को पहचान लो, फिर भगवदगीता को पहचान सकोगे। अभी तुम भगवदगीता रटते रहो, तोतों की तरह दोहराते रहो, किसी काम की नहीं है।
शास्त्रों से ज्ञान नहीं मिलता; लेकिन ज्ञान मिल जाए तो शास्त्रों में अदभुत संपदा भरी पड़ी है। बिना आत्मज्ञान के शास्त्रों से तुम जो अर्थ लेते हो, वह अर्थ नहीं, अनर्थ हो जाता है।
मुल्ला नसरुद्दीन ने देखा कि एक कार तेजी से लुढ़कती हुई नीचे की ओर चली आ रही है। नसरुद्दीन ने पूरी ताकत लगा कर उसे रोका। कुछ कदम वह कार के साथ घिसटता भी चला गया, लेकिन उसने हिम्मत न हारी। अंततः उसने कार रोक ही दी। कुछ ही देर में पीछे से एक आदमी प्रकट हुआ, उसके सिर से पसीना बह रहा था। वह बोला, कार किसने रोकी?
नसरुद्दीन ने गर्व से छाती फुला कर कहा, श्रीमान, मेरे सिवाय और कौन रोक सकता है! जब मैंने देखा कि कार लुढ़कती चली जा रही है तो मैंने पूरी शक्ति लगा कर आखिर उसे रोकने में सफलता पा ही ली।
वह व्यक्ति बोला, अरे उल्लू के पट्ठे! मैं इसे ढकेल कर नीचे ले जा रहा
था और तूने सब गुड़-गोबर कर दिया! तुझसे किसने कहा कि तू कार रोक?
मगर नसरुद्दीन ने तो दया-भाव से रोकी। उसने सोचा कि कार लुढ़कती चली जा रही है बिना ड्राइवर के, पता नहीं कहां गिरेगी, किसकी जान लेगी! लेकिन कार को कोई पीछे से धक्का देकर उतारता ला रहा है, इसकी फिक्र ही नहीं की। शास्त्र अगर तुम सामने से देखोगे तो शब्द ही पकड़ में आएंगे। जरा शास्त्रों के पीछे कौन छिपा है... । गीता के पीछे कृष्ण छिपे हैं; जब तक तुम्हें कृष्ण जैसी चेतना न मिल जाए तब तक गीता समझ में न आएगी। और बाइबिल के पीछे क्राइस्ट छिपे हैं। और धम्मपद के पीछे बुद्ध छिपे हैं। पीछे कौन छिपा है? वैसे ही तुम हो जाओ। तो पलटू कहते हैंः शास्त्र से हमारा विरोध नहीं है। विरोध अगर हमारा है तो तुम्हारे थोथे पांडित्य से है, जिसने चेतना को तो जगाया नहीं और शब्दों के संग्रह में लग गया। कितने ही शब्द इकट्ठे कर लो... ।
मगर इस देश की शब्दों में बड़ी आस्था है। सत्यों में नहीं, शब्दों में! महात्मा गांधी ने अछूत को हरिजन कह दिया--और समस्या हल हो गई! जैसे शब्द बदल देने से समस्या हल होती है! पहले अछूत जलाए जाते थे, अब हरिजन जलाए जा रहे हैं। जब अछूत को नहीं छोड़ा तो हरिजन को क्यों छोड़ेंगे?
ऐसे तो अछूत शब्द भी कुछ बुरा नहीं है। उसके भी अच्छे अर्थ किए जा सकते हैं। भगवान को हम कहते हैंः अदृश्य, अनिर्वचनीय, अवर्णनीय, अस्पर्श्य। उसको अछूत भी कह सकते हैं, जिसको छुआ न जा सके। अछूत के दो अर्थ हो सकते हैं--जो छूने योग्य नहीं; और यह भी हो सकता है--जो छुआ न जा सके। तो अछूत शब्द में कुछ बुराई नहीं थी। उसको हरिजन कर दिया, समझे कि बस समस्या हल हो गई।
हम तो समस्या हल करने में बड़े होशियार हैं! हमारी होशियारी का कोई हिसाब ही नहीं है!
अभी श्री मोरारजी देसाई ने सुझाव दिया है राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघ चालक को कि आप अगर हिंदू राष्ट्र की जगह भारतीय राष्ट्र कहना शुरू

कर दें तो फिर कोई अड़चन न रहे। और उन्होंने जल्दी से स्वीकार कर लिया, इसमें क्या अड़चन है? हिंदू राष्ट्र न कहेंगे, भारत राष्ट्र कहेंगे। बस समस्या हल हो गई! यानी यह इतना आसान इस देश को लगता है, जरा शब्द बदल दिए और भीतर वही आदमी बैठा है, वही सब कुछ खेल चलेगा। लेकिन हिंदू राष्ट्र की जगह भारत राष्ट्र कर दो, फिर कोई अड़चन नहीं है। और सचाई यह है कि भारत राष्ट्र और भी ज्यादा हिंदू शब्द है। हिंदू शब्द तो हिंदू है ही नहीं। हिंदू शब्द तो परदेसियों ने दिया। उसका हिंदुओं से कुछ लेना-देना नहीं है।
जब पहली दफा यूनानी भारत आए और उन्होंने सिंधु नदी पार की, तो यूनानी भाषा में स शब्द के लिए ह उच्चारण है, इसलिए उन्होंने सिंधु नदी को हिंदू नदी कहा। और उस नदी के पास जो लोग बसते थे उनको हिंदू माना।
जब पारसी, पर्शियन पहली दफा सिंधु के पास आए, तो उनकी भाषा में सिंधु
का उच्चारण इंदु हुआ। उससे इंडस नदी का नाम हो गया और भारत का नाम इंडिया हो गया।
वे सब सिंधु नदी से ही बने शब्द हैं और दूसरों ने बनाए हैं। हिंदुओं
का उनसे कुछ लेना-देना नहीं है। हिंदुओं का शब्द तो भारत ही है।
इसलिए अगर बालासाहब देवरस एकदम से राजी हो गए तो कुछ आश्चर्य नहीं।
वे तो खुश ही हुए होंगे कि यह तो और भी अच्छा हुआ। हिंदू शब्द से झंझट मिटी; यह हमारा है भी नहीं, म्लेच्छों ने दिया है। हमारा तो शब्द भारत ही है, तो हम भारत राष्ट्र कहेंगे। और मोरारजी देसाई समझे कि समस्या हल हो गई, और क्या समस्या है! समस्या बस शब्द बदल कर हल कर लेते हैं हम।
हिमालय के पास एक जंगली गाय होती है। उसने बड़ा उत्पात मचा रखा था नेहरू के जमाने में। उसकी संख्या बहुत बढ़ गई थी और वह खेतों में हमला करने लगी थी। और बड़ी जंगली गाय है, बड़ी शक्तिशाली गाय है। उसको मारना जरूरी हो गया कि शिकारियों को कहा जाए कि गोली मारो और जो जितना शिकार करेगा उसको ईनाम मिलेगा। लेकिन गाय शब्द जुड़ा हुआ है उसमें! तो पार्लियामेंट में झंझट उठी कि गाय को मारा नहीं जा सकता, नहीं तो हिंदू नाराज हो जाएंगे। जंगली गाय!
फिर किसी समझदार ने कहा कि जंगली गाय कहते ही क्यों हो उसको? जंगली घोड़ा! और बात हल हो गई। उसका नाम जंगली घोड़ा कर दिया गया और जंगली घोड़ा काटा गया और हिंदुओं ने कोई अड़चन न उठाई। जंगली घोड़े मार डाले गए। घोड़ों से किसको लेना-देना है! लेकिन जंगली गाय... ।
अब बड़े मजे की बात यह है कि नाम बदलने से कुछ फर्क नहीं पड़ता, मर रहा है वही प्राणी। उसको जंगली घोड़ा कहो कि जंगली गाय कहो, कुछ फर्क नहीं पड़ता। हिंदू को मारो तो परमात्मा मरता है, मुसलमान को मारो तो परमात्मा मरता है-- मरता वही एक है!
मगर हम शब्दों में बड़ा भरोसा करने लगे हैं। यह देश शब्दों का दीवाना देश है। और यह पंडितों का परिणाम है। पंडितों का छाती पर चढ़ा रहना सदियों तक, इसको शाब्दिक बना दिया है। शब्दों से मुक्त हो, तो फिर कहते हैं-- भगवतगीता बूझि विचारौ, पलटू करत निहोरा।
फिर तो मैं तुमसे हाथ जोड़ कर प्रार्थना करूंगा कि अब डुबकी मारो भगवदगीता में। और तब तुम बड़े हीरे ले आओगे। सागर में भी इतने हीरे नहीं हैं, इतने रत्न नहीं हैं, इतने मोती नहीं हैं--जितने भगवदगीता में हैं! मगर उसके लिए उपलब्ध हैं वे जिसने ध्यान में गोता लगाना सीख लिया है। ध्यान के अतिरिक्त कोई और मार्ग नहीं है।
आज इतना ही।

काहे होत अधीर
चौदहवां प्रवचन

अपना है क्या--लुटाओ

पहला प्रश्नः ओशो! संसार में संसार का न होकर रहना ही संन्यास है। मुझे यह असंभव सा क्यों लगता है?

प्रेम चैतन्य! यह असंभव सा जरूर लगता है, लेकिन असंभव नहीं है। असंभव
सा भी इसलिए लगता है कि साक्षी-भाव की जब तक अनुभूति न हो तब तक हम जो भी करते हैं, जहां भी होते हैं, उससे हमारा तादात्म्य हो जाता है। वही तादात्म्य हमारे ऊपर धूल सा जम जाता है। फिर दर्पण चेतना का, अस्तित्व को प्रतिफलित नहीं करता।
झेन कहावत है कि सारस, बगुले झील पर उड़ते हैं; न तो उनकी कोई आकांक्षा
है कि झील में उनका प्रतिबिंब बने, मगर प्रतिबिंब बनता है; न झील की कोई आकांक्षा है कि सारस और बगुलों का प्रतिबिंब बनाए, लेकिन प्रतिबिंब बनता है। सारस और बगुले उड़ जाते हैं, प्रतिबिंब खो जाता है।
ऐसी ही साक्षी की दशा हैः प्रतिबिंब बनते हैं और खो जाते हैं। साधारणतया हम प्रतिबिंबों को पकड़ लेते हैं। प्रतिबिंब जाने लगते हैं तो हम उनसे जकड़ते हैं, हम उन्हें मनाते हैं, समझाते हैं--रुक जाओ! ठहर जाओ! वे नहीं रुक सकते हैं, इसलिए पीड़ा होती है, दुख होता है। हम अतीत को नहीं छोड़ पाते, हम परिचित से मुक्त नहीं हो पाते, बस इतनी ही अड़चन है। और हम भविष्य की आकांक्षाएं आरोपित करते हैं, फिर वे पूरी हों, न हों। पूरी हों तो भी तृप्ति नहीं मिलती, क्योंकि आकांक्षाएं कोई कभी तृप्त होतीं ही नहीं; पूरी हो जाएं, फिर भी अतृप्ति बनी रहती है। आकांक्षा की दिशा ही गलत है। और अगर पूरी न हों तब तो स्वभावतः बहुत अतृप्ति होती है। जिनकी पूरी हो जाती हैं वे भी रोते पाए जाते हैं; जिनकी पूरी नहीं होतीं वे भी रोते पाए जाते हैं।
संसार का और क्या अर्थ है? संसार का अर्थ हैः अतीत धन भविष्य। जो नहीं
है उसकी तस्वीरें टांगे हुए हो, उसकी तस्वीरों की याददाश्त तुम्हें रुला रही है। और जो अभी हुआ नहीं है उसकी तृष्णा का जाल फैलाया हुआ है, सपने प्रक्षेपित किए हुए हैं। उनमें सौ सपनों में निन्यानबे तो कभी पूरे होंगे नहीं, इसलिए रुलाएंगे बहुत, कांटों की तरह चुभेंगे बहुत, बड़ी पीड़ा छोड़ जाएंगे। और जो एक पूरा होगा वह भी कभी पूरा नहीं होता, पूरा होकर भी पूरा नहीं होता। धन चाहो और धन मिल जाए तो हैरानी होती है कि धन तो मिल गया, लेकिन जिस आशा से धन चाहा था वह आशा तो पूरी नहीं हुई! सोचते थे धन मिलेगा तो तृप्ति हो जाएगी, संतोष मिलेगा। वह संतोष तो उतना ही दूर है जितना पहले था। और धन का बोझ और सिर पर चढ़ गया, धन की चिंता और धन का तनाव और धन का दायित्व और सिर पर आ गया, और जिस शांति का ख्याल था, जिस चैन का स्वप्न देखा था, उसकी तो कहीं पगध्वनि भी सुनाई नहीं पड़ती।
अतीत की तस्वीरें तुम्हें सता रही हैं, भविष्य की कल्पनाएं तुम्हें सता रही हैं। अतीत और भविष्य का जोड़ संसार है।
इस संसार से मुक्त होने का एक ही उपाय है। और वह है--वर्तमान के क्षण में जितनी समग्रता से जी सको जीओ। उसे ही मैं ध्यान कहता हूं, उसे ही संन्यास कहता हूं। वही समस्त बुद्धों की उपदेशनाओं का सार है। क्षण के आगे-पीछे न जाओ, क्षण काफी है। और जब क्षण बीत जाए तो रुकावट न डालो, बीत जाने दो, अलविदा दो--प्रसन्नता से, आनंद से! और जो नहीं आया है उसके हिसाब-किताब मत लगाते रहो; जब आएगा, जब सामने होगा, तब प्रतिफलित होगा तुम्हारे चेतना के दर्पण में। तब उसे जी लेना। जब तक नहीं आया है तब तक योजना न बांधो।
लेकिन लोग बहुत अजीब हैं!
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन ट्रेन में यात्रा कर रहा है। एक युवक सामने ही बैठा हुआ है। उस युवक ने पूछा, क्या महाशय बता सकेंगे, आपकी घड़ी में कितना बजा है?

मुल्ला नसरुद्दीन ने घड़ी तो नहीं देखी, युवक को नीचे से ऊपर तक देखा--
एक बार, दो बार, तीन बार। युवक तो घबड़ाया। उसने कहा कि मैं सिर्फ इतना पूछ रहा हूं कि आपकी घड़ी में कितना बजा है।
नसरुद्दीन ने कहा कि वही तो मैं देख रहा हूं कि जिस आदमी के पास घड़ी भी नहीं है, उसको समय बताना कि नहीं?
उस युवक ने कहा, आप भी हैरानी की बात करते हैं! घड़ी नहीं है इसीलिए तो पूछ रहा हूं। इसमें आपका क्या बिगड़ जाएगा?
नसरुद्दीन ने कहा कि भाई मेरे, तुम अभी जवान हो, मैं बूढ़ा। अभी तुम्हें अनुभव नहीं। अभी तुम पूछोगे कि कितना बजा है? मैं कहूंगा कि पांच बज गए। फिर बात आगे बढ़ेगी, कोई यहीं तो रुकने वाली नहीं। बीज पड़ गया, अब इसमें अंकुर निकलेंगे। तुम पूछोगे, कहां जा रहे हो? मैं कहूंगा, बंबई जा रहा हूं। तुम पूछोगे, बंबई में कहां रहते हो? ऐसे सिलसिला चलेगा, आखिर में यह होगा कि मैं तुमसे कहूंगा कि अब बंबई तुम भी आ रहे हो तो मेरे घर भोजन ले लेना। मेरी जवान लड़की है। तुम एक-दूसरे को देख कर जरूर बातचीत में लग जाओगे, फिल्म देखने जाना चाहोगे। और झंझटें शुरू होंगी। और आज नहीं कल तुम प्रस्ताव लेकर हाजिर हो जाओगे कि मुझे विवाह करना है आपकी लड़की से। और मैं तुम्हें साफ कहे देता हूं, अभी कहे देता हूं कि जिस आदमी के पास घड़ी भी नहीं है उसके साथ मैं अपनी लड़की का विवाह नहीं कर सकता।
हमें हंसी आती है। मगर ऐसा ही हमारा मन है। ऐसे ही तो तुम कितने जुगाड़ बिठाते रहते हो! देखोगे गौर से तो अपने मन पर भी हंसोगे। मन शेखचिल्ली है। वह दूर-दूर की सोचता है, होनी-अनहोनी न मालूम क्या-क्या सोचता है! तुम जरा लौट कर देखो, तुमने कितना जीवन भर में सोचा कि ऐसा हो, वैसा हो। क्या हुआ? कितना उसमें से हुआ? निन्यानबे प्रतिशत तो कभी हुआ नहीं। लेकिन उस निन्यानबे प्रतिशत के लिए तुमने कितना समय गंवाया! और जो एक प्रतिशत हुआ उससे क्या हुआ?
एक पागलखाने में एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन करने आया है। वह पूछता है सुपरिनटेंडेंट से कि यह जो पहला आदमी कठघरे में बंद है और छाती पीट रहा है और हाथ में एक तस्वीर लिए हुए है, उसे चूमता है और छाती से लगाता है--इसे क्या हो गया है?
उस सुपरिनटेंडेंट ने कहा, इसकी बड़ी दुख भरी कथा है। जिसकी यह तस्वीर लिए है, इस स्त्री को प्रेम करता था, विवाह करना चाहता था। लेकिन उस स्त्री ने इनकार कर दिया, तब से यह विक्षिप्त हो गया है। बस उसकी तस्वीर ही अब इसका एकमात्र सहारा है। चौबीस घंटे उसी की धुन लगी है। यह मजनू है--आधुनिक मजनू! लैला इसे मिली नहीं।
थोड़े आगे बढ़े, दूसरे कठघरे में एक आदमी अपने बाल खींच रहा था, सिर पीट रहा था, दीवाल में सिर मार रहा था। उस मनोवैज्ञानिक ने पूछा, इसे क्या हुआ? सुपरिनटेंडेंट ने कहा, आप न पूछते तो अच्छा था। इसने उस स्त्री से शादी की जिस स्त्री ने पहले आदमी को शादी करने से इनकार कर दिया था। जब से इसने शादी की तब से पागल हो गया है। उस स्त्री ने इसे पगला दिया है। वह स्त्री इसकी जान खाए जा रही है।
एक विवाहित नहीं हुआ, इसलिए रो रहा है, सिर पीट रहा है। एक विवाहित हो गया है, इसलिए रो रहा है और सिर पीट रहा है। और ऐसा सारे जगत में घट रहा है। तुम पा लोगे तो रोओगे। जिन्होंने पा लिया है उनसे पूछो। उनकी आंखों में आंसू हैं। तुम नहीं पाओगे तो रोओगे, क्योंकि प्राणों में एक पीड़ा रह जाएगी--कुछ भी न कर पाए!
संसार का अर्थ ये वृक्ष, ये चांद-तारे, यह आकाश, यह सूरज, ये नदी-पहाड़,
ये लोग, पशु-पक्षी, यह नहीं है। तुम्हारे तथाकथित महात्मा तुम्हें यही समझाते रहते हैं कि यह जो फैलाव है, यह संसार है। नहीं, यह फैलाव संसार नहीं है। तुम्हारे मन का जो फैलाव है--प्रपंच मन का--वह संसार है। उस संसार से मुक्त हुआ जा सकता है।
असंभव सा लगेगा शुरू में कि कैसे अपने अतीत से मुक्त हो जाओ! लेकिन अतीत है क्या सिवाय स्मृतियों के ढेर के? राख है, अंगार भी तो नहीं बची! राख से मुक्त होने में ऐसा क्या असंभव है? राख को ढोना मूढ़ता है। राख से मुक्त हो जाना सहज-सरल बात होनी चाहिए। जो बीता सो बीता, अब उसको पकड़ कर

कहां बैठे हो? तुम्हारे हाथ खाली हैं। हाथ खोलो और देखो, वह जा चुका है। अब तुम रोओ तो भी लौट नहीं सकता। अब तुम लाख परेशान होओ तो भी उसे वापस नहीं ला सकते।
समय लौटता ही नहीं, इसलिए पीछे लौट-लौट कर जो देखता है वह व्यर्थ ही कष्ट पा रहा है, वह अपने को ही अकारण सता रहा है। और कितना समय उसमें जा रहा है! कितना बहुमूल्य वर्तमान तुम नष्ट कर रहे हो अतीत की स्मृतियों में! जीवित को मुर्दे के चरणों में झुका रहे हो, जीवित को मुर्दे के आगे समर्पित कर रहे हो, जीवित को मुर्दे के सामने बलि दे रहे हो!
और या फिर भविष्य तुम्हें पकड़े हुए है कि कल ऐसा करूंगा।
कल तो आने दो! कल, पहली तो बात, कभी आता नहीं। कल कभी आते देखा है? जब आता है आज आता है। और आज को तुम खराब कर रहे हो उस कल के लिए जो कभी आएगा नहीं। और जब आज की तरह कल आएगा भी, तो तुम्हारी आदत मजबूत होती जा रही है रोज-रोज, आज को बरबाद करने की कल के लिए। यह आदत सघन होती जाएगी, यह यंत्रवत हो जाएगी। आज तुम कल के लिए सोचोगे। कल जब आएगा आज की तरह, तब तुम फिर कल के लिए सोचोगे। तुम कल भी यही कर रहे थे। जो बीत गया कल, तब तुम आज के लिए सोच रहे थे। लेकिन जीओगे कब? दो कलों के बीच उलझे तुम जीओगे कब?
ये दो कल ही चक्की के दो पाट हैं, जो तुम्हें पीस रहे हैं। इनके बाहर आ जाओ। ध्यान या साक्षी-भाव इनके बाहर आने की विधि है। ध्यान का केवल इतना ही अर्थ है, जो है उससे इंच भर यहां-वहां न जाऊंगा। मन भागेगा आदतों के अनुसार, वापस ले आऊंगा, फिर-फिर ले आऊंगा। ध्यान की जितनी विधियां हैं, अनंत विधियां हैं ध्यान की, लेकिन सब का मूल सार, सब का राज एक है--किस तरह चैतन्य को वर्तमान में ले आया जाए।
जैसे विपस्सना है--बुद्ध की परम विधि! जितने लोग विपस्सना से ज्ञान को उपलब्ध हुए हैं उतने लोग किसी और विधि से उपलब्ध नहीं हुए, क्योंकि बड़ी सुगम और सरल विधि है। मगर विधि क्या है? विधि सीधी-साफ हैः श्वास का बाहर आना, श्वास का भीतर जाना, इसे देखो। विपस्सना का अर्थ होता हैः देखो, अंतर्दृष्टि। बस देखते रहो साक्षी बने--यह श्वास भीतर गई, यह भीतर पहुंची, यह क्षण भर ठहरी, यह वापस चली, यह बाहर गई, यह बाहर निकल गई, यह क्षण भर बाहर रुकी रही, यह फिर भीतर आने लगी--बस यह जो श्वास का वर्तुलाकार परिभ्रमण चल रहा है, यह जो श्वास की माला चल रही है, इसको देखते रहो। कुछ मत करो।
क्या होगा इसका परिणाम? इसका परिणाम कि तुम वर्तमान में जीने की क्षमता को उपलब्ध हो जाओगे। श्वास वर्तमान है। बुद्ध यह नहीं कह रहे हैं, जो श्वास जा चुकी है उसके संबंध में सोचो; जो अभी आने वाली है उसके संबंध में सोचो। वे कह रहे हैं, जो अभी है, भीतर जा रही है उसके संबंध में, बाहर जा रही है उसके संबंध में। श्वास के साथ ही डोलते रहो।
मन भागेगा, मन हजार विचार उठाएगा। तुम चुपचाप उसे फिर वापस ले आना श्वास पर। श्वास तो एक बहाना है, निमित्त है, एक खूंटी है। यही सारी और विधियों का सार भी है।
सूफी इसे जिक्र कहते हैं, प्रभु-स्मरण। हर बार अपने मन को वापस लौटाओ प्रभु-स्मरण पर। कोई भी नाम चुन लिया, जैसे राम चुन लिया। मन यहां-वहां भागे, राम की खूंटी पर वापस ले आओ। पलटू इसी को सुरति कहते हैं। सारे संतों ने इसे सुरति कहा है। सुरति बुद्ध का ही वचन है, लेकिन बिगड़ते-बिगड़ते, लोकभाषा में आते-आते, घिसते-घिसते सुरति हो गया। बुद्ध ने तो कहा थाः स्मृति। स्मरणपूर्वक जीओ, होशपूर्वक जीओ। जो कर रहे हो उसकी स्मृति बनी रहे, उससे हटो मत। संत कहते हैं सुरति। सूफी कहते हैं जिक्र। कृष्णमूर्ति कहते हैं अवेयरनेस, जागृति। महावीर ने कहा है विवेक, बोध। ये अलग-अलग नाम हैं, मगर बात एक, सार एक, राज एक। अतीत और वर्तमान को जाने दो। वे हैं ही नहीं। तुम छायाओं को पकड़े बैठे हो। और छायाओं के कारण तुम माया में पड़े हो। छाया यानी माया। और दोनों छायाओं के बीच में सत्य मौजूद है, सत्य का द्वार खुला है। प्रभु-मंदिर का द्वार वर्तमान में खुला है। वर्तमान में जिस दिन आ जाओगे, आने की प्रक्रिया का नाम ध्यान; आ गए, ठहर गए, उस अवस्था का नाम संन्यास। फिर तुम संसार में ऐसे रह सकोगे जैसे जल में कमल।
आज, प्रेम चैतन्य, निश्चित ही असंभव सा लगता है। क्योंकि आज तो तुम्हें पता ही नहीं है कि वर्तमान होता भी है। उन दो ने, अतीत और भविष्य

ने तुम्हारी सारी चेतना को घेर लिया है। धीरे-धीरे वर्तमान के लिए तलाशो, खोजो। जो आज असंभव सा है, कल धीरे-धीरे संभव हो जाएगा, एक दिन संभव हो जाएगा।
हो तो आज ही सकता है संभव--अगर त्वरा हो, तीव्रता हो, समग्रता हो। आकांक्षा, अभीप्सा गहन हो तो हो तो सकता है अभी और यहीं। मुझे सुनते-सुनते हो जाए। बहुतों को हुआ है, हो रहा है। सिर्फ सुनते-सुनते धुन बंध जाती है, भूल जाते हो कौन हो तुम, भूल जाते हो कल क्या होना है। यही सत्संग का अर्थ है। किसी के साथ बैठ कर वर्तमान में हो जाना सत्संग है।
धीरे-धीरे तोड़ो जमीन, टूटेगी। जलधार को गिरते देखा है चट्टानों पर! चट्टानें बड़ी मजबूत मालूम पड़ती हैं। पहले सोचोगे तो लगेगा असंभव है कि जलधार कभी चट्टानों को तोड़ पाएगी। लेकिन रसरी आवत-जात है, सिल पर पड़त निशान। रस्सी आते-जाते, आते-जाते, आते-जाते कठोर चट्टान पर भी निशान छोड़ देती है। जलधार गिरते-गिरते गिरते-गिरते चट्टानों को तोड़ देती है, चट्टानों को रेत कर देती है। ऐसी ही प्रक्रिया है।
ध्यान कोमल प्रक्रिया है। जैसे कोई फूल! और तुम्हारे मन की आदतें जड़ चट्टानों की तरह हैं--बहुत वजनी, बहुत भारी, बहुत कठोर। पर घबड़ाओ मत, वे मृत हैं और तुम्हारा फूल जैसा ध्यान जीवंत है। और जीवंत में असली बल है, चाहे कितना ही कोमल क्यों न हो। जीवित फूल मुर्दा चट्टानों को तोड़ देगा। तुमने कभी देखा है, चट्टानों में से बीज फूट कर वृक्ष बन जाते हैं! चट्टान दरक जाती है। जीवित था बीज, चट्टान को तोड़ गया, वृक्ष फूट आया। चट्टानों से वृक्षों को निकलते देख कर तुम्हें हैरानी नहीं होती कभी? अदभुत शक्ति होगी जीवन की! छोटा सा बीज, कितनी ऊर्जा लिए था! न केवल खुद टूटा, न केवल अंकुरित हुआ, चट्टान को तोड़ गया है!
ऐसे ही आज जो बीज की तरह है ध्यान, कल वृक्ष बनेगा, उसमें फूल भी आएंगे
और फल भी आएंगे, महत सुगंध भी उठेगी। चिंता न लो। असंभव सा लगता है, लेकिन संभव होता है। ऐसा मैं अपने अनुभव से कहता हूं। मुझे भी असंभव सा लगता था, वर्षों असंभव सा ही लगता रहा। लेकिन मैं अधीर न हुआ। कहते पलटूः काहे होत अधीर! जितना असंभव सा लगा उतनी ही मैंने त्वरा से अपनी ऊर्जा लगा दी, उतनी ही मैंने चुनौती स्वीकार की। बस चुनौती को स्वीकार करने की बात है। फिर ध्यान एक अदभुत अभियान है। चांद-तारों पर पहुंचना आसान है; ध्यान या समाधि में पहुंचना निश्चित कठिन है। मगर चांद-तारों पर पहुंच कर भी क्या करोगे? आर्मस्ट्रांग जब पहली दफे चांद पर चला तो उसने क्या किया? सोच रहा था पृथ्वी की कि कब घर पहुंचें, पत्नी-बच्चों की, मित्रों की। सोच रहा होगा कि कौन सी फिल्म लगी है मेरे गांव की टाकीज में। सोच रहा होगा कि आज पत्नी ने क्या भोजन बनाया है। था चांद पर, मगर सोच क्या रहा होगा? सोच रहा होगा कि बस अब एकाध दिन की बात और है कि वापस लौटने की घड़ी आई जाती है, घर पहुंचूंगा।
चांद पर भी तुम तो तुम ही रहोगे। तुम कैसे बदल जाओगे! इसलिए चांद पर पहुंच कर भी कोई कहीं नहीं पहुंचता। लेकिन ध्यान में पहुंच कर जरूर तुम एक नये लोक में प्रवेश करते हो।

प्यार मेरे, भार मत बनो!

राह है यह, चाह रुकने की यहां वर्जित
कामना विश्राम की, गति-चरण में अर्पित
पथिक के उपहार ओ! पथ-हार मत बनो!
राह है यह, एक मन-बल ही यहां संबल
मत बटोरो स्वप्न रे! मत बिखेरो दृग्जल मुक्ति खोजी! मुक्ति का व्यापार मत बनो! राह है यह, यष्टि ही बस है तुम्हारी टेक ठोकरों पर मत लुटाओ व्यर्थ भावोद्रेक सार हो तो मोह का संसार मत बनो!
भार मत बनो!
प्यार मेरे, भार मत बनो!

इतना ही स्मरण रहे कि यह राह है, इस संसार में घर नहीं बनाना है। पलटू कहते हैं, यह सराय है। विश्राम कर लो, सुबह चल पड़ना है। तंबू तान लो, घर न बनाओ। राह है यह। इस पर घर नहीं बनाने हैं, यहां से गुजर जाना है। और धन्यभागी हैं वे जो ऐसे गुजर जाते हैं कि जैसे आए ही न हों।
इसलिए झेन फकीर कहते हैं कि बुद्ध का न कभी जन्म हुआ न मृत्यु।
बात तो ठीक नहीं लगती, इतिहास की तो नहीं है। बुद्ध तो ऐतिहासिक व्यक्ति हैं; एक दिन हुए, एक दिन मृत्यु भी हुई। सच पूछो तो भारतीय इतिहास बुद्ध के साथ ही शुरू होता है; उसके पहले के तो जितने पुरुष हैं, पुराण-पुरुष मालूम होते हैं--हुए भी हों, न भी हुए हों। कृष्ण का कुछ पक्का नहीं है, कोई प्रमाण नहीं है। राम हो सकता है सिर्फ रामायण के एक पात्र हों, जरूरी नहीं है कि हुए हों। धुंधली हैं सारी बातें, धूमिल है सारा अतीत। लेकिन बुद्ध के साथ पहली दफा चीजें स्पष्ट होनी शुरू होती हैं। बुद्ध के साथ पुराण-पुरुष और पुराण-पुरुषों का जगत विदा हो जाता है।
इसलिए झेन फकीरों का यह कहना कि बुद्ध न कभी पैदा हुए न मरे, थोड़ी अड़चन पैदा करता है। इतिहासज्ञ को तो बात जंचेगी नहीं, शास्त्रज्ञ को बात नहीं जंचेगी। लेकिन फकीर ठीक कहते हैं। फकीर जब भी कुछ कहते हैं ठीक ही कहते हैं। उनके कहने का अर्थ यह है कि बुद्ध इस तरह आए जैसे न आए हों और इस तरह गए जैसे कभी न आए हों और न कभी गए हों। उन पर रेखा भी न पड़ी। जैसे पानी पर कोई रेखा खींचे; रेखा खिंच भी नहीं पाती, मिट जाती है। जैसे दर्पण पर प्रतिबिंब बने; दर्पण का कुछ बिगड़ता नहीं, कोई निशान नहीं छूट जाते। जैसे पक्षी आकाश में उड़ें तो पदचिह्न नहीं बनते। ऐसे बुद्ध आए और गए। इसलिए बुद्ध का एक नाम है--तथागत, जिन्हें आने और जाने की कला आती है; जो हवा के झोंके की तरह आते हैं और हवा के झोंके की तरह चले जाते हैं।
कबीर ने कहा हैः ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया! वह जो चादर थी शरीर की, मन की, वह वैसी की वैसी रख दी, वह जरा भी मैली न हुई, जरा भी उस पर कालिख न लगी। खूब जतन से ओढ़ी रे चदरिया! जिसको कबीर जतन कहते हैं, वही साधना है। खूब जतन से ओढ़ी रे चदरिया, ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं! वैसी की वैसी लौटा दी जैसी परमात्मा ने दी थी--कि लो तुम्हारी चादर वापस, जरा भी जराजीर्ण न होने दी, दाग न लगने दिए।
कबीर भी जीए तो। और बुद्ध तो संसार छोड़ कर चले गए थे, कबीर तो संसार में ही जीए। पत्नी थी, बेटा था, बेटी थी। और जीवन में कभी भी उन्होंने भिक्षा नहीं मांगी। जुलाहे का काम जारी रखा। कपड़े बुनते रहे और बेचते रहे। भजन भी चला, कीर्तन भी चला, सत्संग भी चला; मगर कपड़ा बुनना भी चलता रहा, उसे कभी बंद नहीं किया। संसार में रहे, लेकिन संसार को अपने में न रखा।
राह है यह...
और कभी-कभी ठोकरें लगेंगी।
ठोकरों पर मत लुटाओ व्यर्थ भावोद्रेक
सार हो तो मोह का संसार मत बनो!
भार मत बनो!
प्यार मेरे, भार मत बनो!
बस इतना ध्यान रहे, तो एक दिन असंभव सा भी संभव हो जाएगा। और जब तुम्हें संभव होगा तभी समझ में आएगा। क्योंकि ये बातें कुछ ऐसी हैं कि कोई दूसरा कितना ही कहे, लाख कहे, भरोसा नहीं बैठता। तुम्हारा अनुभव जब तक न हो तब तक भरोसा नहीं बैठेगा। और बैठना भी नहीं चाहिए।
मुझ पर भरोसा मत कर लेना कि मैंने कहा तो बस हो गया। मेरे कहने से क्या होगा? मेरी मुक्ति तुम्हारी मुक्ति नहीं। मेरा निर्वाण तुम्हारा निर्वाण नहीं। मेरा बोध तुम्हारा बोध नहीं। स्वयं पाना होगा। और यह बात ऐसी है कि पा भी लो तो किसी को कही नहीं जा सकती। इस बात के लिए कोई भाषा नहीं है। भाषा अशक्त, भावों को व्यक्त न कर पाई
वाणी कायर, ओंठों पर आकर लौट गई
मैं चाह रहा हूं किंतु न कह पाता कुछ भी
यह अनुभव बिल्कुल नया, प्राण! यह पीर नई

चाहोगे तो भी कह न पाओगे।
यह अनुभव बिल्कुल नया, प्राण! यह पीर नई
सत्य की प्रतीति, उसका स्वाद इतना नया है कि जगत के कोई शब्द काम नहीं आते हैं। जिन्होंने जाना है उनसे सिर्फ इतना संबल मिलता है कि शायद जाना जा सकता है, मैं भी प्रयास करूं! अगर एक को संभव हुआ है तो शायद मुझे भी संभव हो जाए।
आखिर परमात्मा ने सभी को एक सा सामर्थ्य दिया है, एक सा आत्मबल दिया है, एक सी ऊर्जा दी है, एक सी संभावना के स्रोत दिए हैं। अगर बुद्ध को हुआ, महावीर को हुआ, क्राइस्ट को हुआ, मोहम्मद को हुआ--क्यों नहीं तुम्हें होगा? वे भी तुम्हारे ही जैसे हड्डी-मांस-मज्जा के बने हुए पुरुष थे; तुम्हारे ही जैसा चंचल, विक्षिप्त हो जाने वाला उनके पास भी मन था। तुम जैसा ही उन्हें भी संघर्ष करना पड़ा था स्वयं से। अपने अतीत से, अपने भविष्य से उन्हें भी लड़ना पड़ा था। बारह वर्ष महावीर ने संघर्ष किया, तब यह घड़ी आई थी। छह वर्ष बुद्ध जूझे, तब वह शुभ प्रभात हुई।
इन सारे ज्योति-पुरुषों से विश्वास मत लो, संबल लो। इन पर श्रद्धा मत
कर लो कि इनको हो गया तो बस हो गया, हमें क्या करना है? इनसे सिर्फ प्रेरणा लो यात्रा की। दूर का तारा है ध्यान, चलोगे तो एक दिन पहुंच जाओगे। आज असंभव सा है, तुम्हें संभव करके दिखाना है। यही निर्णय तो तुम्हारे संन्यास का आधार होना चाहिए, प्रेम चैतन्य! इसी संकल्प से बढ़ो, इसी समर्पण से! एक दिन जरूर प्रसाद बरसेगा।
इस जगत में कोई भी प्रयास व्यर्थ नहीं जाता है और परमात्मा की तरफ उठाया गया कोई कदम कभी व्यर्थ नहीं गया है।

दूसरा प्रश्नः ओशो! पूज्य दद्दाजी मुझे बचपन से ही अपना जान कर, उन्मुक्त स्नेह और प्रेरणा देते रहे हैं। ढेर सारी स्मृतियों के बीच उनका सबके प्रति अपनापन, बालवत प्रेम, सब कुछ लुटा देने की तत्परता और सारे वातावरण को आनंद से भर देने वाला रूप मेरे भीतर भरता गया, भरता गया। वे मुझसे रोज किसी न किसी बहाने कहते थेः अपना है क्या--लुटाओ! अपना है क्या-- लुटाओ!
उनके इस प्यारे वचन का आशय कृपा करके हमें कहें।

नरेंद्र! संन्यास का यही तो मौलिक अर्थ हैः अपना है क्या--लुटाओ! जिसने कुछ अपना माना उसने संसार बसाया। जिसने संसार बसाया उसने अपने लिए कारागृह बनाया, अपनी जंजीरें ढाल लीं। हमारी जंजीरें मेरे-तेरे से बनी हैं--यह मेरा, वह तेरा; यह मेरे की सीमा, वह तेरे की सीमा। हमारी सब सीमाएं कारागृह बन जाती हैं; हाथों में, पैरों में जंजीरें बन जाती हैं। और जितना ही हम मेरे में जकड़ते जाते हैं उतने ही कृपण होते जाते हैं, उतने ही कंजूस होते जाते हैं।
और परमात्मा किसी को उपलब्ध हो जाए, कृपण को उपलब्ध नहीं हो सकता।
क्यों कृपण को उपलब्ध नहीं हो सकता? क्योंकि परमात्मा को पाने की एक शर्त कृपण पूरी नहीं कर सकता और वह शर्त है प्रेम। कृपण प्रेम कर ही नहीं सकता, कंजूस के लिए प्रेम असंभव है। कृपण डरता है कि किसी से प्रेम किया तो फिर मेरे-तेरे का भाव छोड़ना पड़ता है। प्रेम का अर्थ और क्या है? मेरे-तेरे का भाव छोड़ना। किसी के साथ मेरे-तेरे का संबंध छोड़ देना। किसी के साथ सीमाएं मिला लेना, किसी के साथ एक हो जाना। किसी के साथ तल्लीनता और तन्मयता। किसी के साथ हार्दिक, आत्मिक संबंध। किसी के लिए प्राण तक दे देने की तत्परता।
और कृपण तो पैसा नहीं दे सकता, प्राण तो देना दूर। कृपण तो कुछ दे ही नहीं सकता। और जो दे नहीं सकता, वह प्रेम कैसे देगा! प्रेम तो सबसे बड़ी संपदा है। पैसा नहीं दे सकता, प्रेम कैसे देगा! और एक बड़ी अनूठी मनोवैज्ञानिक घटना घटती है, एक दुष्टचक्र पैदा होता हैः जो कृपण है, प्रेम नहीं दे सकता। और चूंकि प्रेम नहीं दे सकता इसलिए और कृपण होता जाता है। जो लोग धन के दीवाने होते हैं वे वे ही लोग हैं जिनके जीवन में प्रेम का अमृत नहीं बरसा। अगर उनके जीवन में प्रेम हो तो धन का पागलपन पैदा नहीं

हो। जिसके पास प्रेम है वह लुटाने का मजा जानता है, बांटने का मजा जानता है। उसकी खुशी ही बांटने में है। और जिसके पास प्रेम नहीं है उसकी एक ही खुशी है--इकट्ठा करना, जोड़ना। और जोड़-जोड़ कर मरोगे। जोड़-जोड़ कर करोगे क्या? सब यहीं पड़ा रह जाएगा। साथ न ले जा सकोगे। जिंदगी भर जोड़ने में बिताई और फिर खाली हाथ चिता पर चढ़ गए, तो तुम्हारी जिंदगी मूढ़ता रही, एक व्यर्थ का उपक्रम रहा, एक अर्थहीन चेष्टा रही! तुमने रेत से तेल निकालना चाहा।
जीसस का बहुत प्रसिद्ध वचन हैः जो बचाएगा, खो देगा; और जो खोने को राजी है, बचा लेता है।
ये परम गणित के सूत्र हैं। कल तुमसे मैंने परम गणित का एक सूत्र कहा
था कि अंश अपने अंशी के बराबर होता है। यह तर्कातीत है। ऐसे ही आज तुमसे परम गणित का दूसरा सूत्र कहता हूं। साधारण गणित में तो जो बचाता है वह बचा पाएगा। लेकिन इस परम गणित में जो बचाता है वह खो देता है और जो खोने को राजी है वह बचा लेता है।
तुमने प्रेम देकर देखा? चकित करने वाला एक अनुभव होगाः जितना तुम देते हो उतना ज्यादा तुम्हारे पास देने को होता है। ऐसे ही समझो जैसे किसी कुएं से हम पानी भरते हैं; जितना हम पानी भरते हैं, कुएं के झरने उसमें और नये पानी को लेते आते हैं। कोई कृपण अपने कुएं पर ताला डाल दे बंद करके--इस डर से कि कहीं वक्त-बेवक्त, सूखा पड़ जाए, वर्षा न हो, तो कम से कम मेरे कुएं का पानी तो मेरे कुएं के भीतर रहेगा, मेरे तो काम आएगा; ऐसे मुहल्ले-पड़ोस के लोगों को भरने दूं, सारा पानी लुट जाए, वक्त-बेवक्त खुद मुसीबत में पडूंगा--ताला डाल कर अपने कुएं में पानी को बचा ले, तो क्या परिणाम होगा? दो परिणाम होंगे। एक तो यह होगा कि उस कुएं का जल जीवंत नहीं रह जाएगा, मुर्दा हो जाएगा, जहरीला हो जाएगा, विषाक्त हो जाएगा, सड़ जाएगा। जहां बहाव नहीं होता, जहां प्रवाह नहीं होता, वहां सड़ांध पैदा होती है, वहां जहर निर्मित हो जाता है। जो बह कर अमृत था वह अवरुद्ध होकर जहर हो जाता है। अगर ठीक से समझो तो बहने में अमरत्व है और ठहर जाने में जहर है। बहने में महाजीवन है और ठहर जाने में मृत्यु है। और दूसरी घटना यह घटेगी, चूंकि पानी निकाला नहीं जाएगा, इसलिए झरने कुएं के काम में नहीं आएंगे, तो झरने धीरे-धीरे अवरुद्ध हो जाएंगे, मिट्टी की पर्तें जम जाएंगी, पत्थर बैठ जाएंगे। फिर अगर किसी दिन तुमने कुएं से पानी निकाला तो पानी पीने योग्य नहीं होगा, पहली बात; दूसरे, झरने अवरुद्ध हो गए हैं, वे नया पानी नहीं लाएंगे।
ऐसी ही स्थिति प्रेम की है। तुम एक कुआं हो। उलीचो! और तुम्हारे झरने हृदय के परमात्मा से जुड़े हैं। तुम अनंत-अनंत स्रोत से संयुक्त हो। डरो मत कि तुम बांटोगे तो चुक जाएगा। तुम जितना बांटोगे उतने ही नये-नये जलस्रोत खुलते जाएंगे। तुम चकित होओगे कि एक ऐसी संपदा भी है जो बांटने से बढ़ती है। उस संपदा का गणित अलग है।
वे ठीक कहते थेः अपना है क्या--लुटाओ! सब परमात्मा का है। वही देने वाला है, वही लेने वाला है। सब खेल उसका है। तुम्हारे भीतर भी वही देने वाला है और दूसरे के भीतर वही लेने वाला है।
मैं तुमसे बोल रहा हूं; वही बोलने वाला है। तुम सुन रहे हो; वही सुनने वाला है। जिस दिन यह समझ में आ जाता है कि बोलने वाला भी वही, सुनने वाला भी वही--उस दिन न कोई गुरु है, न कोई शिष्य; उस दिन वही बचा। उसने ही अपने को दो में बांट कर सारे खेल, सारी लीला का आयोजन किया है।
इस सूत्र को, नरेंद्र, तुम अपने जीवन में क्रांति की शुरुआत बना सकते हो। इसे याद रख सको अगर, तो तुम रोज-रोज धनी होते जाओगे। तुम रोज-रोज एक बड़े साम्राज्य के मालिक होते जाओगे। यह भी हो सकता है कि बाहर से देखने पर एक दिन तुम भिखमंगे हो जाओ, लेकिन भीतर तुम्हारे सम्राट होगा। और अगर तुम धन इकट्ठा, पद इकट्ठा, प्रेम इकट्ठा, सब इकट्ठा करने में लग गए तो यह हो सकता है कि ऊपर से एक दिन तुम सम्राट दिखाई पड़ो, लेकिन भीतर तुम दीन और दरिद्र, भिखमंगे। और परमात्मा तुम्हारे भीतर का आंकलन करता है। वह तुम्हारे खाते- बही नहीं देखेगा, वह तुम्हारी अंतरात्मा देखेगा। वहां वही लिखा जाता है जो तुम लुटाते हो, जो तुम बांट देते हो।

फिर बांटने का अर्थ यही नहीं है कि तुम वस्तुएं ही बांटो। जो तुम्हारे पास हो। अगर तुम गीत गा सकते हो तो गीत गाओ। अगर तुम नाच सकते हो तो नाचो। अगर तुम प्रेम दे सकते हो, प्रेम दो। अगर तुम ज्ञान दे सकते हो, ज्ञान दो; ध्यान दे सकते हो, ध्यान दो। तुम जो दे सकते हो, जो तुम्हारे पास है, तुम उसी को बांटने का माध्यम बन जाओ। और तुम रोज-रोज पाओगेः जो तुम बांट रहे हो वह बढ़ता जाता है, बढ़ता जाता है। कहां तुम बूंद थे, एक दिन पाओगे कि सागर हो गए!
और सब उसी का है, इस पर मालकियत करना, इस पर कहना कि मेरा है--अनुचित है। उपयोग कर लो, मगर मालिक मत बनो।
इस दुनिया में दो तरह के लोग हैंः एक भोगी, वे भी मालिक; और एक त्यागी,
वे भी मालिक। भोगी कहता है--मेरा है, छोडूंगा नहीं। त्यागी कहता है--मेरा है, मैं दान करता हूं। मगर दोनों मानते हैं कि मेरा है।
मेरा संन्यासी तीसरे तरह का आदमी है। वह कहता है--मेरा है ही नहीं, तो
न तो रोकने का सवाल है, न त्यागने का सवाल है, गुजर जाने की बात है। मेरा है ही नहीं, तो कैसे छोडूं! कैसे त्यागूं! और मेरा है ही नहीं, तो कैसे पकडूं! दोनों में अन्याय हो जाएगा।
जो कहता है कि मैंने त्याग दिया, वह उतनी ही भ्रांति में है जितनी भ्रांति में वह जो कहता है कि मैंने संग्रह कर लिया। संग्रह और परिग्रह एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों के पार जाना है। और पलटू कहते हैं बार-बारः दोनों के पार जाना है। संग्रह और परिग्रह, दोनों के पार जाना है। एक ऐसी स्थिति तुम्हारी चेतना की होनी चाहिए--न यह, न वह; नेति-नेति। फिर वह जो तुम्हें देता है, भोगो। और भोगने की सबसे बड़ी कला है बांटना।
इसलिए कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि तुम्हारे तथाकथित साधु-संत भी साधु- संत नहीं होते और कभी-कभी साधारणजनों में अपूर्व साधुता होती है।
मेरे एक प्रोफेसर थे। शराबी थे। सारे विश्वविद्यालय में उनकी निंदा थी। लेकिन मैंने उनमें साधु पाया। शराब वे कभी अकेले नहीं पीते थे। जब तक दस-पांच पियक्कड़ न हों तब तक वे नहीं पीते थे। अगर उनके पास इतनी सुविधा न हो कि दस-पांच को निमंत्रित कर सकें तो बिना पीए रह जाते थे। मैंने उनसे पूछा कि कभी-कभी आप बिना पीए रह जाते हैं, बात क्या है?
उन्होंने कहा कि बात यह है कि मेरे पास सुविधा अगर दस-पांच को पिलाने
की न हो, तो क्या अकेले पीना! पीने का मजा संग-साथ में है। जब दस-पांच मिल कर पीते हैं तो मजा है। जब दस-पांच को मैं पिलाता हूं तो मजा है।
और यह उनके पूरे जीवन का हिसाब था। यह शराब के संबंध में ही सच नहीं था, यह हर चीज के संबंध में सच था। जो भी उनके पास होता... उनका घर देख कर कभी-कभी हैरानी होती थी, उनका घर बिल्कुल खाली था। मैं कभी-कभी उनके घर ठहरा तो चकित होता था--घर बड़ा, लेकिन बिल्कुल खाली! क्योंकि चीजें बचें ही नहीं, वे किसी को भी दे दें। मगर उन जैसा धनी आदमी मैंने नहीं देखा। उनकी समृद्धि परम गणित वाली थी। और उनको साधु तो तुम नहीं कहोगे, क्योंकि शराब पीते थे। लेकिन मैं उनको साधु कहूंगा। जब मैं उनके घर ठहरता तो वे शराब न पीते। मैंने उनसे पूछा कि आप मेरे संकोच में न रुकें, आप पीएं, मजे से पीएं। मैं तो शराब नहीं पी सकता तो बैठ कर सोडा पी लूंगा, मगर आप पीएं, संग-साथ दे दूंगा।
उन्होंने कहा कि नहीं-नहीं, जब तक बांटूं न मैं, जब तक ढालूं न मैं, घर में मेहमान हो और उसको मैं पिला न सकूं, तो मैं भी नहीं पीऊंगा। यह पीना अमानवीय हो जाएगा--घर में मेहमान हो और मैं पीऊं।
मैंने उनसे कहा कि आपकी बात सुन कर मुझे ऐसा लगता है कि मुझे भी पी ही लेनी चाहिए। मगर पीछे मुझे झंझट होगी। मेरे शरीर को आदत नहीं है। मगर आपकी बात से मुझे ऐसा लगता है कि छोडूं फिक्र, पी ही लूं, आपको इतना कष्ट न दूं। नहीं, उन्होंने कहा कि मुझे कोई तकलीफ नहीं है न पीने में। कई बार ऐसे मौके आ जाते हैं, क्योंकि मेरे पैसे तो पंद्रह तारीख तक खतम हो जाते हैं। पंद्रह दिन तो पीछे फाके में जाते हैं।
कोई भी विद्यार्थी उनके पास पहुंच जाए कि फीस नहीं है, वे फौरन पैसे
दे देंगे, उन पर होने भर चाहिए। उधार लेकर भी अगर मिल सकें तो वे फीस चुका देंगे। किसी के पास किताबें नहीं हैं तो किताबें चुका देंगे, किसी के पास

कपड़े नहीं हैं तो कपड़े ला देंगे, कोई बीमार है तो उसकी फिक्र में लग जाएंगे।
उनकी पत्नी बहुत परेशान थी। उनकी पत्नी अंततः उन्हें छोड़ कर चली गई। उनकी पत्नी दिल्ली रहती थी, वे सागर रहते। मैंने उनसे पूछा कि पत्नी छोड़ कर चली गई, बात क्या है? आप जैसे आदमी को कोई छोड़ कर जा सके!
उन्होंने कहा, मेरी पत्नी की एक तकलीफ है जो सभी स्त्रियों की होती है--संग्रह। और मैं वह नहीं कर सकता। पड़ोस में एक आदमी बीमार था, उसके पास खाट नहीं थी, तो मैंने पत्नी की खाट दे दी, इससे वह बहुत नाराज हो गई। उसने कहा, अब कम से कम खाट तो बचने देते। मैंने उससे कहा, हम स्वस्थ हैं, हम नीचे सो सकते हैं। मगर यह आदमी बीमार है, इसको जरूरत है। वह उसी दिन चली गई। वह मायके चली गई है और उसने लिख दिया है कि अब मैं आऊंगी नहीं।
शराबी भला वे रहे हों, लेकिन मैं एक साधुता स्पष्ट देखता हूं। और मैं मानता हूं कि परमात्मा भी उनकी शराब का हिसाब नहीं रखेगा, उनकी साधुता का हिसाब रखेगा। परमात्मा नहीं हिसाब रखेगा कि कितनी बोतलें उन्होंने पीं, लेकिन जरूर हिसाब रखेगा कि कितना उन्होंने बांटा।
नरेंद्र, सूत्र सुंदर हैः अपना है क्या--लुटाओ!
अपना कुछ भी नहीं है, सभी उसका है। सबै भूमि गोपाल की! जीने की कला एक
ही हैः बांटना। फिर जो हो वही बांटो। और बांटने में कभी कंजूसी मत करना। और तुम नये-नये साम्राज्य को उपलब्ध होते जाओगे, नई-नई तुम्हारी मालकियत होगी, नया-नया वैभव तुम्हारा होगा। मगर हिम्मत लुटाने की चाहिए ही।

तीसरा प्रश्नः ओशो! आप अक्सर कहा करते हैं कि अस्तित्व को जो दोगे वही तुम पर वापस लौटेगा; प्रेम दोगे, प्रेम लौटेगा; घृणा दोगे, घृणा मिलेगी। यही नियम है।
ओशो, आप तो प्रेम की मूर्ति हैं, आप प्रेम ही हैं, प्रेम ही बांट रहे हैं; फिर भी आपको इतनी गालियां क्यों मिलती हैं? क्या उपरोक्त नियम सच नहीं है? ओशो, समझाइए!

योग कुसुम! प्रेम जब बहुत बढ़ जाता है तो लोग गालियां देते हैं। तुमने देखा न--आप से तुम, तुम से तू! जैसे-जैसे प्रेम बढ़ता है तो आप से तुम होता है, तुम से तू होता है। जैसे-जैसे मित्रता बढ़ती है लोगों में तो एक-दूसरे को गाली देने लगते हैं। मित्रों का लक्षण ही यह है। अगर मित्र भी एक-दूसरे से कहें--आइए, विराजिए, पधारिए! तो उसका मतलब यह है कि मित्रता नहीं है। मित्र मिलते हैं पहले, तो पहले तो एक-दूसरे की पीठ पर जोर से धपाड़ा देंगे। मुल्ला नसरुद्दीन ने एक दिन रास्ते पर एक आदमी को जोर से उसकी पीठ पर धपाड़ा दिया कि वह आदमी गिरते-गिरते बचा। और मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, बहुरुद्दीन, बहुत दिन बाद दिखाई पड़े!
उस आदमी ने कहा, क्षमा करिए, मैं बहुरुद्दीन नहीं हूं।
मुल्ला ने कहा, अबे तू मुझको धोखा देता है! और एक दूसरा धपाड़ा दिया कि
वह आदमी बिल्कुल ही जमीन पर पहुंच गया।
उस आदमी ने कहा, भाई साहब, मैं कह रहा हूं कि मैं बहुरुद्दीन नहीं हूं। मुल्ला ने कहा, हद हो गई! शक तो मुझे भी थोड़ा सा होता था। क्योंकि बहुरुद्दीन मोटा हुआ करता था, तुम बिल्कुल दुबले मालूम होते। वह ठिगना था, तुम लंबे मालूम होते। मगर जिंदगी में चीजें बदलती हैं। सो मैंने सोचा हो न हो, हो तो तुम बहुरुद्दीन।
अब तो उस आदमी को भी गुस्सा आया। उसने कहा कि हद हो गई, जब तुम्हें पता
चल रहा है कि तुम्हारा मित्र मोटा था, मैं मोटा नहीं हूं; तुम्हारा मित्र ठिगना था, मैं लंबा हूं; जब तुम्हें यह सब साफ समझ में आ रहा है, फिर भी धपाड़े मारते हो, शर्म नहीं आती!
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, तुम्हें बीच में बोलने की जरूरत क्या है? मैं बहुरुद्दीन को मार रहा हूं, तुमको तो मार भी नहीं रहा।
मित्र गालियों में बात करने लगते हैं। इसलिए कुसुम, कुछ चिंता लेने
की बात नहीं है। लोग गालियां देते होंगे, वह भी उनकी मित्रता की शुरुआत है। गाली देने का भी कष्ट करते हैं, यह क्या कुछ कम है! कौन किसके लिए क्या

करता है! मेहनत उठाते हैं, गाली देते हैं। और गाली कुछ ऐसे ही तो नहीं दी जाती। चिंता करते होंगे, क्रोध करते होंगे, बेचैन होते होंगे। गाली अचानक तो नहीं पैदा हो जाती, गाली के पीछे लंबा सिलसिला होता है। रात भर सोते नहीं होंगे, करवटें बदलते होंगे। मेरी छाया उनका पीछा कर रही होगी। मेरा नाम उन्हें बार-बार याद आता होगा। यह सब शुरू हुआ होगा। गाली तो सिर्फ लक्षण है इस बात का कि मुझसे नाता बन रहा है। आगे-आगे देखिए होता है क्या! इतना परेशान क्या होना?
फिर लोग हैं, जो उनकी समझ में आता है वही करेंगे न! जितनी उनकी समझ है उससे ज्यादा तो वे नहीं कर सकते।
जहां तक मेरा संबंध है, मैं जितना प्रेम दे रहा हूं उससे अनंत गुना पा रहा हूं। और जो प्रेम मुझ पर बरस रहा है, जो फूल मुझ पर बरस रहे हैं, उनमें अगर कभी एकाध कांटा भी आ जाता है तो उसकी शिकायत क्या! जब गुलाब बरसते हैं तो कभी-कभी एकाध कांटा भी आ जाता है। गुलाबों पर ध्यान रहे तो कांटा भी कांटा नहीं मालूम होता।
तुम्हें अखर जाती होंगी गालियां जो लोग मुझे देते हैं, क्योंकि तुम्हें फूल नहीं दिखाई पड़ते जो लोग मुझ पर फेंक रहे हैं। मुझे जितना प्रेम मिल रहा है, शायद इस पृथ्वी पर किसी और आदमी को नहीं मिल रहा होगा। आखिर तुम सबने अपना हृदय मेरे लिए लुटा रखा है! जब इतना प्रेम मिलेगा, जब इतने मित्र होंगे, इतने प्रेमी होंगे... एक लाख मेरे संन्यासी हैं, इतने मेरे प्रेमी हैं!
किसी ने आनंद तीर्थ से पूछा कि अगर ओशो कहें कि तुम आत्महत्या कर लो
तो करोगे? तो आनंद तीर्थ ने कहा, वह मेरा सौभाग्य होगा कि उन्होंने मुझे इस योग्य समझा। अगर वे कहेंगे तो तत्क्षण आत्महत्या कर लूंगा।
जिस व्यक्ति को इतना प्रेम मिल रहा हो कि उसके लिए आत्महत्या करने को कोई सौभाग्य से तैयार हो जाता हो, उसके लिए कुछ गालियां भी जरूरी हैं, नहीं तो भोजन बेस्वाद हो जाए। उसमें थोड़ा नमक चाहिए। एकदम शक्कर ही शक्कर डायबिटीज पैदा करती है। मीठा ही मीठा नहीं, कभी-कभी करेले की सब्जी भी अच्छी लगती है। सो कुछ करेले की सब्जियां भी भेजते हैं लोग। जहां तक मेरा संबंध है, मैं तो उससे भी आनंदित होता हूं। तुम भी उससे आनंदित होना शुरू होओ।
और इस जगत का एक नियम है कि यहां हर चीज संतुलित होती है। अगर इतने लोग मुझे प्रेम देंगे, इतने लोग मेरे मित्र होंगे, तो इतने ही लोग मेरे प्रति क्रोध से भी भरेंगे और इतने ही लोग मेरे प्रति शत्रुता से भी व्यवहार करेंगे। तो संतुलन हो पाएगा, नहीं तो संतुलन नहीं हो पाएगा।
यह जगत ऐसे है जैसे कोई रस्सी पर नट चलता है। तो वह अपने को हमेशा तौलता रहता है; जरा बायां झुका तो फिर दायां झुका, दायां तो फिर बायां। बाएं ज्यादा झुकने लगे, डर पैदा होता है कि गिर जाए, तो फिर दाएं झुक जाता है। जैसे रस्सी पर नट चलता है, ऐसा यह संसार है। यहां प्रत्येक चीज अपने को संतुलित करती रहती है।
अगर तुम चाहते हो तुम्हें कोई गाली न दे, तो एक ही उपाय है कि तुम किसी
का प्रेम स्वीकार मत करना। अगर तुम चाहते हो कोई तुम्हारा अनादर न करे, तो एक ही उपाय है कि तुम किसी का आदर मत लेना। अगर तुम चाहते हो कि कांटे तुम्हें न मिलें, तो तुम फूलों से प्रेम छोड़ देना। तो यह हो सकता है। लेकिन मुझे फूलों से प्रेम है। मैं फूल देता हूं, फूल बांटता हूं और जब फूल मेरे पास वापस लौटते हैं तो मैं अनुगृहीत होता हूं। तब स्वभावतः मैं कांटों को भी अंगीकार करता हूं। मुझे कुछ एतराज नहीं है।
मुझे अगर एतराज कभी हो तो इस बात का हो सकता है कि लोग अगर उपेक्षा कर रहे होते तो एतराज की बात थी। लोग उपेक्षा नहीं कर पा रहे हैं। ये अच्छे लक्षण हैं, शुभ लक्षण हैं। ऐसे ही सिलसिले शुरू होते हैं। पहले लोग गालियां देंगे। फिर खुद सोचेंगे कि जिसको हम गालियां दे रहे हैं, आखिर यह आदमी कहता क्या है? इतने लोग प्रेम भी इसे करते हैं। फिर पढ़ेंगे, फिर पूछेंगे, फिर समझेंगे। फिर एकाध दिन यहां खिंचे चले आएंगे। अगर गाली का नाता बन गया तो नाता तो बन ही गया। अब इस गाली के नाते को प्रेम में बदल

लेने की बात है। वह मैं कर लूंगा। वह मैं जानता हूं कि गालियों को कैसे फूलों में रूपांतरित किया जाए।
और लोगों को क्षमा करना होगा। लोग अपनी समझ से ही समझ सकते हैं। न्यायाधीश ने अभियुक्त से पूछा, डाक्टर ने तुम्हें मुफ्त दवाई दी, इस भलाई के बदले में तुम उसकी घड़ी चुरा कर ले गए। यह लज्जाजनक हरकत तुमने क्यों की? तुम्हें शर्म भी नहीं आती?
अभियुक्त ने उत्तर दिया, हुजूर, डाक्टर ने मुझे हर आधे घंटे के बाद दवाई पीने के लिए कहा था और मेरे पास घड़ी नहीं थी।
व्यक्तियों के अपने सोचने के ढंग हैं। और मैं जो कह रहा हूं वह उनको बेचैन करता है; उनकी परंपरा, उनकी रूढ़ियां, उनकी जड़ धारणाओं के विपरीत है। मुल्ला नसरुद्दीन एक बार डाक्टर के यहां पहुंचा। दाढ़ी बढ़ी हुई, चेहरे
पर बारह बजे हुए, बाल उलझे हुए, कपड़े भी मैले-कुचैले, बिल्कुल मजनू बना हुआ था। पहली नजर में तो डाक्टर ने उसे पहचाना ही नहीं कि यह मुल्ला नसरुद्दीन है। जब मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि अरे डाक्टर साहब, आप मुझे नहीं पहचाने? मैं नसरुद्दीन! आज से एक महीने पहले मुझे बुखार चढ़ गया था और मैं इलाज करवाने के लिए आपके पास आया था और आपने मुझे नहाने के लिए मना किया था। डाक्टर को याद आया तो वह बोला, अच्छा-अच्छा, कहो अब क्या बात है? नसरुद्दीन बोला, डाक्टर साहब, मैं यह पूछने आया हूं कि अब मैं नहा सकता हूं या नहीं?
एक महीने पहले नहाने के लिए मना किया था--बुखार चढ़ा था, इसलिए। तब से उन्होंने नहाना ही बंद कर दिया है।
मगर यह भी कोई बात नहीं, एक और कहानी है। एक बार एक बुढ़िया एक डाक्टर
के पास पहुंची और डाक्टर से बोली, डाक्टर साहब, क्या मैं अब सीढ़ियों के द्वारा चढ़-उतर सकती हूं?
एक महीने पहले ही डाक्टर ने उसके पैर का प्लास्टर छोड़ा था और उसे सीढ़ियां चढ़ने-उतरने के लिए मना किया था। डाक्टर ने बुढ़िया को अच्छी तरह चेक किया और बोला, जी हां, अब आप सीढ़ियां चढ़-उतर सकती हैं।
बुढ़िया ने चैन की सांस लेते हुए कहा, हे भगवान, शुक्र है तेरा! मैं तो पाइप के सहारे चढ़ कर अपने कमरे में जा-जा कर तंग आ गई थी। तुमने अच्छा कहा डाक्टर साहब कि मैं सीढ़ियां चढ़-उतर सकती हूं, वरना मैं तो पाइप के द्वारा चढ़ते-चढ़ते मर ही जाती।
लोग अपने ही ढंग से समझेंगे न! सीढ़ियां नहीं चढ़ना-उतरना, ठीक है। मगर चढ़ना-उतरना तो जारी ही रखेंगे, वे तो पाइप से चढ़ेंगे-उतरेंगे। इससे तो बेहतर होता कि सीढ़ियों से ही चढ़ती-उतरती।
मगर लोग अपने रास्ते निकाल लेंगे। लोग क्या करें, उनके पास सोचने की अपनी बंधी हुई प्रक्रियाएं हैं। मैं जो कह रहा हूं--नया है, नूतन है; और पुरातन भी है, सनातन भी है। सनातन है इस अर्थों में, क्योंकि बुद्धों ने सदा यही कहा है। और नूतन है इस अर्थों में, क्योंकि पंडित-पुरोहित सदा इसके विपरीत रहे हैं। और पंडित-पुरोहितों का प्रभाव है। गालियां कौन दे रहा है? पंडित-पुरोहित दे रहे हैं और दिलवा रहे हैं। फिर पंडित-पुरोहित चाहे धर्म के हों चाहे राजनीति के, इससे फर्क नहीं पड़ता। उनको मेरी बातों से बेचैनी शुरू हुई है, अड़चन शुरू हुई है। यह गैरिक तूफान फैलता जाता है, इससे घबड़ाहट पैदा हुई है, इससे उनको न मालूम कितनी चिंताएं सताने लगी हैं-- कि न मालूम मेरे इरादे क्या हैं! क्यों मैं इतने लोगों को संन्यास दे रहा हूं? ये संन्यासी फिर पीछे क्या करेंगे? उनके भीतर संदेह जग रहा है। वे संदेह में ही जीते हैं। उनके भीतर घबड़ाहट भी पैदा हो रही है कि कहीं उनका धंधा, उनका व्यवसाय छीन न लूं, तोड़ न दूं। कहीं उनके द्वार-दरवाजों पर लोग जाने बंद न हो जाएं।
निश्चित ही मेरा जो संन्यासी है वह फिर उनके द्वार-दरवाजों पर नहीं जाता। और जाता भी है तो नये ढंग से जाता है।
एक मित्र ने पूछा है। उनका नाम है भगवानदास भारती। मेरे संन्यासी हैं। पहले तेरापंथी जैन रहे होंगे। अब उन्होंने पूछा है कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। क्योंकि मुनियों के पास जाता हूं तो विवाद हो जाता है। इन्हीं मुनियों के पहले पास जाकर वे पैर छूते थे, सेवा करते थे।

अब यह मुनियों को बरदाश्त कैसे हो? क्योंकि उन्होंने अपने किसी मुनि को कह दिया कि क्या आप खाक मुनि हो, पहले मौन होना आना चाहिए! अब यह मुनि कैसे बरदाश्त करे? जिसकी तुम सेवा करते थे, जिसका पैर छूते थे जाकर, जिसको मानते थे कि पहुंचा हुआ है, उससे तुम जाकर कह रहे हो कि तुम क्या कोई खाक मुनि हो, पहले मौन तो सीखो! तो जरूर श्रावक से ऐसी बात सुन कर मुनि अगर नाराज हो तो आश्चर्य क्या है! होगा ही हैरान।
या तो मेरे संन्यासी जाते नहीं। जाएंगे तो अब नई दृष्टि, नया भाव-बोध उन्हें अड़चन में डालेगा। और मेरा संन्यासी जहां खड़ा हो जाएगा वहां वह अलग दिखाई पड़ेगा। वह मुनि को भी अखरता है, महात्मा को भी अखरता है। अगर मेरा संन्यासी कुछ न कहे तो वह महात्मा खुद ही उससे पूछता है कि तुम्हें क्या हो गया है? यह तुमने क्या किया? वह खुद अपनी झंझट अपने हाथ से बुलाता है। संन्यासियों का बढ़ता हुआ सैलाब, उनकी बढ़ती हुई बाढ़ हजार-हजार तरह की गालियां मेरे लिए लाएगी। तुम उनकी चिंता न लेना। वे गालियां मेरे पास आकर गालियां नहीं रह जातीं। जैसे कि तुम सरोवर में अगर अंगारे भी फेंको तो सरोवर में गिरते ही बुझ जाते हैं, अंगारे नहीं रह जाते। मेरी तरफ आने दो गालियों को जितनी आएं। जितनी ज्यादा आएं उतना अच्छा, क्योंकि उतना तहलका मचेगा, उतना तूफान उठेगा।
और मैं चाहता हूं कि इस देश में एक बड़ी भयंकर अराजकता उठे। क्योंकि उसी अराजकता में इस देश की सदियों की धूल झाड़ी जा सकती है, जड़ताएं तोड़ी जा सकती हैं। उसी अराजकता में इस देश का नया जन्म हो सकता है। उसी अराजकता से नया अनुशासन पैदा होगा। अनुशासन, जो चरित्र का नहीं होगा, चेतना का होगा। और लोगों को, जब वे गालियां दें तो सहारा दो। उनसे कहो कि दिल खोल कर गालियां दो, क्योंकि जिसको तुम गालियां दे रहे हो वह जानता है कीमिया गालियों को फूल में बदल लेने की। वे जैसा समझते हैं बेचारे वैसा करते हैं। उन पर नाराज मत होना, उनसे झगड़ा मत लेना, उनकी गालियों के उत्तर में तुम गालियां मत देने लग जाना।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी गुलजान अचानक ही सत्तर साल की कम उम्र में
चल बसी। मुल्ला नसरुद्दीन कुछ समय तो गुलजान के बगैर रहा, लेकिन फिर अकेले उससे न रहा गया। अंततः वह इस निदान के लिए डाक्टर के पास पहुंचा और डाक्टर को अपनी परेशानी बताई और बोला कि मैं बिना शादी किए नहीं रह सकता।
डाक्टर ने उसकी जांच-पड़ताल की और कहा, नसरुद्दीन, यह शादी जीवन के लिए घातक सिद्ध हो सकती है, फैसला तुम्हारे हाथ में है।
नसरुद्दीन बोला, डाक्टर साहब, कुछ भी हो जाए, शादी मैं करूंगा। फिर आप चिंता न करें, अगर मेरी नई पत्नी को कुछ हो गया तो उसकी छोटी बहन भी मौजूद है।
डाक्टर चौंका कि उसका तो अर्थ अनर्थ हो गया। उसने कहा था जीवन को कुछ
हो सकता है। वह कह रहा है मुल्ला नसरुद्दीन के जीवन को कुछ हो सकता है। मुल्ला नसरुद्दीन समझ रहा है कि लड़की के जीवन को कुछ हो जाएगा--तो कोई फिक्र नहीं, उसकी छोटी बहन मौजूद है। अब ऐसे आदमी से क्या बात करनी और आगे। तो डाक्टर ने एक नजर इस बूढ़े नसरुद्दीन की तरफ दया से डाली। पिचके हुए गाल, मुंह में एक दांत नहीं, शरीर की एक-एक हड्डी उभर कर बाहर निकली आ रही है, पेट और पीठ दोनों मिल कर एक हो गए हैं। डाक्टर को देख कर बड़ी दया आई। वह बोला, नसरुद्दीन, यदि ऐसी ही बात है कि तुम बिना पत्नी के नहीं रह सकते, तो जरूर शादी कर लो। मैं शादी करने से तुम्हें रोकूंगा नहीं। लेकिन मेरी एक सलाह है, यदि मानो तो अपने घर में एक जवान मेहमान भी रख लो। यदि पत्नी के साथ-साथ एक जवान मेहमान घर में रख लो तो तुम्हारे स्वास्थ्य के लिए ठीक रहेगा।
मुल्ला बोला, यह बात ठीक रही। आपने हमारी मानी, हम आपकी माने लेते हैं। चलो, पत्नी भी रख लेते हैं और एक मेहमान भी रख लेते हैं।
शादी के सात-आठ माह बाद डाक्टर को अचानक आकस्मिक रूप से बाजार में मुल्ला नसरुद्दीन जाता हुआ दिखाई दिया--चूड़ीदार पाजामा, खादी की अचकन, गांधी टोपी लगाए, कोई फिल्मी धुन गाता हुआ चला जा रहा था। डाक्टर ने उसे रोक कर हालचाल पूछे और पूछा, नसरुद्दीन, तुम्हारी पत्नी के क्या हालचाल हैं? आठ माह हो गए शादी हुए और आज मिल रहे हो! क्या हाल है पत्नी का?

मुल्ला बोला, पत्नी कुछ ही दिनों में मां बनने वाली है।
डाक्टर ने बधाई देते हुए पूछा कि जवान मेहमान का क्या हाल है?
नसरुद्दीन शर्माता हुआ बोला, जी, वह भी मां बनने वाली है।

चौथा प्रश्नः ओशो! मैं अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त एक साहित्यकार, विचारक, दार्शनिक, वैज्ञानिक और धर्माचार्य होकर भी मृत्यु को ही जी रहा हूं। मृत्यु से मुक्ति संभव है, तो मित्रता कर उससे एकाकार होने का उपाय क्या है?

रामनारायण सिंह चौहान! मृत्यु एक असत्य है--सबसे बड़ा असत्य। न कभी घटा, न कभी घटेगा। मनुष्य दो तत्वों का जोड़ है। एक तत्व तो है मरणधर्मा, जो मरा ही हुआ है। जो मरा ही हुआ है, उसकी तो मृत्यु कैसे होगी? और दूसरा तत्व है अमृत। जो अमृत है, उसकी तो मृत्यु कैसे होगी? फिर मृत्यु किसकी होती है? न शरीर मर सकता है, क्योंकि शरीर मरा ही हुआ है। न आत्मा मर सकती है, क्योंकि आत्मा अमृत है। फिर मरता कौन है?
कोई भी नहीं मरता; सिर्फ शरीर और आत्मा का संबंध छूट जाता है। और तुम संबंध को ही अगर जीवन समझते हो तो फिर संबंध छूटने को तुम मृत्यु समझ लेते हो। संबंध को जीवन समझने की भ्रांति से मृत्यु पैदा होती है। संबंध यानी तादात्म्य। तुमने अगर यह मान रखा है कि मैं शरीर हूं, तो फिर मृत्यु घटेगी। और तुम अगर जान लो कि मैं शरीर नहीं हूं, फिर कैसी मृत्यु! शरीर मरेगा, मरा ही हुआ था। और आत्मा मर नहीं सकती, आत्मा अमृत है।
काश तुम जीवन में ही इस तत्व को जान लो तो तुम मृत्यु में भी हंसते हुए, नाचते हुए, गीत गाते हुए प्रवेश करोगे, क्योंकि सिर्फ संबंध छूट रहा है।
रामनारायण सिंह चौहान अभंग नाम के मासिक पत्र के संपादक हैं। अभंग शब्द प्यारा है। शरीर और आत्मा अलग-अलग हैं, भिन्न-भिन्न हैं; अभिन्न नहीं हैं, अभंग नहीं हैं। और हम सोच लेते हैं कि अभंग हैं, अभिन्न हैं, अनन्य हैं--वहीं भ्रांति हो जाती है।
महाराष्ट्र में हुए संतों के पदों को अभंग कहा जाता है। वह इसीलिए, क्योंकि उन्होंने यह सत्य देख लिया--यह देह और आत्मा का एक होना झूठ है। जिस दिन यह देखा कि देह और आत्मा का एक होना झूठ है, उसी दिन उन्होंने यह जाना कि आत्मा और परमात्मा का एक होना सच है। मराठी संतों के पद अभंग कहे जाते हैं, क्योंकि उन्होंने आत्मा और परमात्मा का एक होना जान लिया, अभंग होना जान लिया। वे उसी अभंग-भाव से पैदा हुए हैं, उसी अखंड-भाव से पैदा हुए हैं। परमात्मा और आत्मा की एकता से ही उनका जन्म हुआ है, वही उनकी गंगोत्री है।
जब तक हम मानेंगे कि शरीर के साथ मैं एक हूं, तब तक अड़चन जारी रहेगी। फिर कुछ फर्क नहीं पड़ता, फिर चाहे कोई अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त साहित्यकार हो, विचारक हो, दार्शनिक हो, वैज्ञानिक हो, धर्माचार्य हो, कोई फर्क नहीं पड़ता। जब तक ध्यानी न हो तब तक कोई फर्क नहीं पड़ता। हां, ध्यानी अगर हो तो क्रांति घट जाती है। क्योंकि ध्यान का अर्थ ही है साक्षी में यह देख लेना कि मैं भिन्न हूं, मैं देह से अलग हूं; जिसे देख रहा हूं उससे द्रष्टा अलग है।
दृश्य और द्रष्टा का भेद जब बिल्कुल स्पष्ट झलक जाता है, उसी दिन मृत्यु मर गई; उस दिन के बाद फिर मृत्यु नहीं है। हालांकि बाहर के लोगों को दिखाई पड़ेगी मृत्यु। एक दिन तुम जब छोड़ोगे देह को, इस घर को जब तुम छोड़ोगे, तो लोग समझेंगे मर गए।
लेकिन यह ऐसा ही पागलपन है जैसे कोई आदमी घर बदले--तुम एक मकान को छोड़
कर दूसरे मकान में रहने चले जाओ--और पूरा मोहल्ला रोए कि बेचारा मर गया! लोग नहीं रोते, क्योंकि वे देख लेते हैं तुम्हें जाते हुए दूसरे मोहल्ले, दूसरे मकान में रहते हुए, इसलिए नहीं रोते। अगर तुम दिखाई न पड़ो कि कब निकल गए इस घर से और कब पहुंच गए दूसरे घर में और दूसरे घर में पहुंच कर पहचान में भी न आओ, तो लोग रोएं, बहुत रोएं।

एक देह से दूसरी देह में जाना सिर्फ घर का बदलना है, आवास का बदलना है। लेकिन चूंकि यात्रा अदृश्य की है, लोग नहीं देख पाते। लोग तो सिर्फ इतना ही देखते हैंः अभी तक यह आदमी बोलता था, चलता था, उठता था; अब न बोलता, न उठता, न चलता; मृत्यु हो गई। वह जो असली घटना घटी है वह तो उन्हें दिखाई ही नहीं पड़ रही। चर्म-च्रुओं से दिखाई पड़ने वाली वह बात भी नहीं है। वह तो उन्हीं को दिखाई पड़ सकती है जो ध्यान को उपलब्ध हुए हों, जिन्होंने अपने भीतर जान लिया हो कि मैं शरीर से भिन्न हूं, वे दूसरे के भीतर भी देख लेंगे कि मृत्यु घटती ही नहीं, कभी नहीं घटी। पंछी उड़ गया, पींजड़ा पड़ा रह गया है। अब पींजड़े को तुम जो चाहो सो करो--चाहे जलाओ, चाहे गड़ाओ। लेकिन बस पींजड़ा है, पंछी उड़ गया।
इसके पहले कि तुम उड़ो इस पींजड़े से, काश जान लो कि मैं पींजड़ा नहीं हूं, तो फिर दूसरे पींजड़े में प्रवेश करने की जरूरत न रह जाएगी! फिर तुम विलीन हो जाओगे अस्तित्व में, एक हो जाओगे। फिर न कोई जन्म होगा, न कोई मृत्यु होगी। फिर शाश्वत तुम्हारा जीवन होगा। फिर तुम सनातन नियम के साथ एक हो जाओगे। एस धम्मो सनंतनो! बुद्ध कहते हैं, ऐसा सनातन धर्म है।
इससे कुछ भेद नहीं पड़ता कि तुम प्रसिद्ध हो कि अप्रसिद्ध हो। क्या भेद पड़ेगा? कितने लोग तुम्हें जानते हैं, इससे कुछ अंतर नहीं पड़ता। करोड़ों लोग तुम्हें जानते हों तो भी क्या होगा? तुम अपने को जानते हो या नहीं, सवाल यह है। और मजा ऐसा है कि लोग ख्याति की आकांक्षा ही क्यों करते हैं? इसीलिए ताकि लोग उन्हें जान लें। खुद को तो वे जानते नहीं, खुद को पहचानते नहीं, आत्मा से कभी मिलन नहीं हुआ, अपनी तो मुलाकात ही नहीं है उनकी, स्वयं से तो उनका कोई सेतु नहीं बना। इसलिए खालीपन लगता है; जानना चाहते हैं--मैं कौन हूं?
मैं कौन हूं, इसे जानने के दो उपाय हैं--एक गलत, एक सही। गलत उपाय हैः दूसरों से पूछो कि मैं कौन हूं? दूसरे कैसे जानेंगे! ख्याति का क्या अर्थ है? दूसरों से पूछना कि मैं कौन हूं। वे कहेंगेः अरे आप! ख्यातिनाम साहित्यकार, विचारक, दार्शनिक, वैज्ञानिक, धर्माचार्य! आप भी कैसी बात कर रहे हैं! आपको कौन नहीं जानता! आपको दुनिया जानती है! अखबार में रोज तो आपकी खबर छपती है, अखबार में रोज तो आपकी फोटो छपती है। आप भी क्या मजाक कर रहे हैं कि पूछते हैं मैं कौन हूं!
और जब बहुत लोग कहने लगते हैं कि आप महान विचारक, महान दार्शनिक, महान धर्माचार्य, यह-वह, तो उनकी बातें सुन-सुन कर तुम्हें भी भरोसा आने लगता है। तुम भरोसा करना भी चाहते हो, क्योंकि वह खालीपन भरना है भीतर। इनकी बातें सुन-सुन कर तुम कहते होः ठीक है, ठीक ही कहते होंगे, जब इतने लोग कहते हैं तो कैसे गलत कहेंगे? और बार-बार सुन कर एक आत्म-सम्मोहन पैदा होता है। तुम अपने को मान लेते हो कि मैं यही हूं।
मेरे एक प्रोफेसर थे। उनसे मैंने एक दिन कहा कि हमारी सारी मान्यताएं आत्म-सम्मोहन हैं।
उन्होंने कहा, जैसे?
तो मैंने कहा कि कल। कल आपको उत्तर दूंगा।
वे अक्सर बीमार रहते थे। और चिकित्सक उनसे परेशान थे, क्योंकि बीमारी कुछ थी नहीं, मान्यता की बीमारियां थीं। उनकी धारणाएं थीं। उन धारणाओं के हिसाब से वे बीमार होते थे। बहुत लोग ऐसे ही बीमार होते हैं। उनकी एक पक्की धारणा होती है, बस वह धारणा उनको बीमार बनाए रखती है।
मैं सुबह ही उनके घर पहुंचा। मैंने उनकी पत्नी को कहा--वे अभी सोए ही हुए थे--मैंने उनसे कहा कि सुनो, थोड़ा मेरा साथ दो, मैं एक प्रयोग कर रहा हूं। जब तुम्हारे पति उठें तो तुम उनसे पूछना कि क्या रात तबीयत ठीक नहीं थी? बुखार रहा? क्योंकि चेहरा पीला-पीला मालूम पड़ता है।
पत्नी ने कहा, ठीक है। क्या प्रयोग कर रहे हो?
मैंने कहा, एक मनोविज्ञान का प्रयोग है। जरा सा साथ दोगी तो ठीक होगा। सांझ तक भर जरूरत है।
उन्होंने कहा, जरूर कह दूंगी, मेरा क्या बिगड़ता है कहने में!

उनके नौकर से मैंने कहा कि जब तू कमरा साफ करने जाए और मालिक को मिले
तो जरा एकदम चौंक कर देखना और कहना, क्या हुआ आपको? कुछ हाथ-पैर कंपते से लगते हैं! तबीयत खराब है क्या?
उनके बाहर ही बागवान मिल गया, उसको मैंने कहा कि देख, जब वे निकलें यूनिवर्सिटी जाने के लिए तो भूलना मत, ऐसे ही कह देना कि क्या मामला है, इतने पीले आप पड़ रहे हैं! मत जाइए, विश्राम करिए! तबीयत खराब मालूम होती है।
रास्ते में पोस्ट आफिस पड़ता था। पोस्ट मास्टर को भी मैं कह आया कि वे यहां से निकलते हैं रोज, जब वे निकलें तो तुम जरा ख्याल रखना। ऐसे ही बाहर खड़े हो जाना, नमस्कार करके कह देना कि बात क्या है? आप ऐसे चल रहे हैं जैसे कि गिर पड़ेंगे!
ऐसा मैं कई लोगों को समझा आया। और यूनिवर्सिटी में जहां वे बैठते थे, उनका जो चपरासी था बाहर, उससे मैंने कहा कि जब वे आएं तो तू एकदम उठ कर उनको पकड़ लेना कि आपको क्या हुआ? आप कैसे चल रहे हैं! पैर लड़खड़ा रहे हैं, चेहरा पीला पड़ रहा है, आंखें जर्द हुई जा रही हैं! क्या मामला है?
उसने कहा कि ऐसा करने में वे नाराज न होंगे?
मैंने कहा, मैं जिम्मा लेता हूं नाराजगी का। मैं एक प्रयोग कर रहा हूं, तू फिक्र मत कर। कुछ नाराज हों, कुछ भी हों, तू फिक्र ही मत करना, शाम को मैं सब हल कर लूंगा।
सुबह वे उठे। पत्नी ने कहा कि क्या हुआ, रात तबीयत ठीक नहीं रही? उन्होंने कहा, नहीं, तबीयत बिल्कुल ठीक है। मैं मस्त सोया, कोई गड़बड़ नहीं। तू ऐसी बात क्यों पूछती है?
नहीं, उसने कहा कि चेहरा आपका थोड़ा पीला सा लगता है और थके-मांदे लगते हो।
उन्होंने कहा कि तेरा भ्रम है। मैं बिल्कुल ठीक हूं।
मगर भीतर शक तो आ गया। और जब कमरे में बाथरूम से निकले और कमरा साफ करने वाले नौकर ने कहा, मालिक! आप कैसे चल रहे हैं? तबीयत खराब तो नहीं है? उन्होंने कहा, हां, कुछ थोड़ी रात नींद ठीक से नहीं आई।
पत्नी ने सुना तो पत्नी हैरान हुई, क्योंकि सुबह उससे वे इनकार कर चुके थे। मगर वह चुप रही, क्योंकि मैंने उससे कहा था कि शाम तक बिल्कुल चुप ही रहना।
बाहर निकले, बागवान ने कहा कि आप यूनिवर्सिटी जा रहे हैं? मत जाइए मालिक, आपकी हालत ठीक नहीं है!
उन्होंने कहा, है तो मेरी भी हिम्मत जाने की नहीं। लेकिन एक जरूरी काम है, जाना पड़ेगा। रात तबीयत ठीक नहीं रही, बुखार रहा।
पत्नी सुनी तो बहुत हैरान हुई। वह भी चकित हुई कि मैं भी क्या प्रयोग
कर रहा हूं! ये बीमार ही हुए जा रहे हैं।
और जब पोस्ट मास्टर ने बाहर टहलते हुए उनसे कहा कि आपकी हालत ऐसी लग रही है जैसे महीनों से बीमार रहे हों, चेहरा पीला पड़ गया है, हाथ-पैर कंप रहे हैं। और आप पैदल जा रहे हैं? अरे मुझसे कहते तो मैं गाड़ी लेकर आपको यूनिवर्सिटी छोड़ देता।
उन्होंने कहा कि सोचा तो मैंने भी था कि किसी की गाड़ी बुला लूं। फिर मैंने सोचा कि रात भर तबीयत ठीक नहीं रही, सुबह थोड़ा चलूंगा तो थोड़ा ठीक रहेगा। हालांकि तुम्हारी बात ठीक है, मैं हांफ रहा हूं और मेरी हालत खराब है। तुम मुझे गाड़ी से छोड़ ही दो।
तो पोस्ट मास्टर ने अपनी गाड़ी में उनको लाकर यूनिवर्सिटी छोड़ा। जैसे
ही वे उतरे, उनके चपरासी ने उन्हें पकड़ा कि मालिक, आप गिर जाओगे!
उन्होंने कहा, तू ठीक कहता है।
वे चपरासी का सहारा लेकर अपने कमरे में गए, वहां मैं मौजूद था। मैंने उनसे कहा, आपकी क्या हालत हो रही है!
उन्होंने कहा कि सुनो, जरूरी काम था इसलिए मुझे आना पड़ा। यह तुम निपटा लेना। वाइस चांसलर से इतनी-इतनी बातें कह देनी हैं, मेरी तरफ से कह देना और क्षमा मांग लेना कि मेरी हालत बहुत खराब है। और मुझे नहीं लगता कि मैं दो-

चार दिन बिस्तर से उठ सकूंगा। इतनी खराब तो मेरी हालत कभी हुई नहीं कि इतने लोगों ने, जिसने देखा उसने ही कहा!
मैंने उनको कहा, क्या मैं आपको घर तक छोड़ आऊं चल कर? क्योंकि... और डाक्टर की जरूरत हो तो मैं डाक्टर को बुला लूं।
उन्होंने कहा, डाक्टर को भी बुला लो और मुझे घर भी छोड़ आओ।
डाक्टर को भी ले आया मैं और उनको घर भी छोड़ा। डाक्टर ने देखा तो एक सौ
दो डिग्री बुखार! डाक्टर भी हैरान हुआ। उसको मालूम था कि यह सब मैं कह रहा हूं और ये... उसने भी कहा कि हद हो गई कि एक सौ दो डिग्री बुखार और पत्नी भी बड़ी चौंकी कि एक सौ दो डिग्री बुखार! और सुबह ही मुझसे कहा कि बिल्कुल ठीक थे! और वे तो बिस्तर से लग गए। और शाम को जब मैं डाक्टर को लेकर पहुंचा तो उनको एक सौ चार डिग्री बुखार था। मैंने उनको हिलाया और मैंने कहा, उठिए! और आपको अब मैं पूरी कहानी कहता हूं कि आपकी पत्नी ने सुबह आपसे ऐसा कहा था? उन्होंने कहा, हां, तुम्हें कैसे पता चला?
मैंने कहा, आप अपनी पत्नी से पूछो कि उसे कैसे पता चला! आपके नौकर ने ऐसा कहा था? आपने नौकर को ऐसा उत्तर दिया था? आपके माली ने ऐसा कहा था? पोस्ट मास्टर ने ऐसा कहा था? आपके चपरासी ने ऐसा कहा था? और आपने ये-ये उत्तर दिए थे। यह बुखार झूठा है, यह मनोकल्पित है।
मगर उन्होंने कहा कि मनोकल्पित कैसे हो सकता है? तुम कहते हो तो बात समझ में आती है, क्योंकि तुम पूरी कहानी कह रहे हो सुबह से शाम तक की। मगर डाक्टर ने भी देखा है और डाक्टर ने थर्मामीटर भी लगाया है।
मैंने कहा, अब डाक्टर को मैं कहता हूं कि फिर थर्मामीटर लगाए। बुखार उतर गया है। जैसे ही यह कहानी पूरी साफ हो गई, धारणा छिन्न-भिन्न हो गई, बुखार विदा हो गया।
उस दिन से उनके जीवन में एक क्रांति हो गई। वे जो निरंतर रोग ही रोग लगाए रखते थे, वे काफी मात्रा में कम हो गए। क्योंकि जब भी वे कहें, लोग हंसने लगें। जब भी वे कहें कि रात तबीयत ठीक नहीं रही, उनकी पत्नी कहे कि तुम रहने ही दो ये बातें! तुम यह अपने भीतर ही रखो बात। यह तुम किसी और को बताना! उनका नौकर भी न माने, उनका माली भी न माने। और यह खबर पूरी यूनिवर्सिटी में फैल गई कि इस तरह का हुआ और इनको एक सौ चार डिग्री बुखार चढ़ा। उनको असली में भी बुखार चढ़े तो उनकी पत्नी डाक्टर न बुलाए--कि तुम रहने ही दो। कोई प्रयोग कर रहा होगा। यह सब तुम्हारा ख्याल है। जब तुम्हें ख्याल से आ सका था तो ख्याल से ही उतारो।
और ख्याल से उनका बुखार उतरने लगा, उनका सर्दी-जुकाम कम होने लगा। जब
दो साल बाद मैंने विश्वविद्यालय छोड़ा तो मुझे विदाई में उन्होंने जो पार्टी दी थी उसमें उन्होंने यह कहा कि सबसे बड़ा धन्यवाद तो मैं इस बात का देता हूं कि मेरी कम से कम सत्तर प्रतिशत बीमारियां खतम हो गईं, क्योंकि मुझे खुद ही हंसी आने लगी कि जब मैं बातचीत मान कर और एक सौ चार डिग्री बुखार चढ़ा सकता हूं, तो कौन जाने कि क्या सच्चा है! क्या झूठा और क्या सच्चा, अब मुझे कुछ पक्का ही नहीं रहा!
लोगों से हम पूछते हैंः मैं कौन हूं? ऐसा साफ नहीं पूछते, नहीं तो लोग पागल समझेंगे। मगर बड़ी तरकीब से हम पूछते हैं, परोक्ष रूप से पूछते हैं। कोई कह दे कि आप बड़े सुंदर, कि आप बड़े बुद्धिमान, कि आप बड़े ज्ञानी, कि आप बड़े पुण्यात्मा, कि आप बड़े महात्मा। वह महात्मा भी तभी तक महात्मा है जब तक उसको महात्मा कहने वाले लोग हैं; वह भी एक सौ चार डिग्री बुखार है। इसलिए महात्मा डरता है--उसके शिष्य कहीं छिटक न जाएं। नहीं तो वह बुखार उतरने लगेगा, वह महात्मागिरी जाने लगेगी। अगर उसका शिष्य किसी और के पास चला जाता है तो आगबबूला हो जाता है। डरता है, घबड़ाता है।
भगवानदास भारती ने लिखा है कि मैं आचार्य तुलसी को मिलने गया, बस वे एकदम आपके संबंध में ऊलजलूल बातें कहने लगे।
कहेंगे ही। पहले तुम उनके भक्त थे, श्रावक थे। उनका एक ग्राहक खो गया।
और मेरे जैसे आदमियों की बड़ी झंझट है। झंझट यह है कि हमें किसी न किसी के ग्राहक लेने ही पड़ेंगे, क्योंकि लोग पहले ही से किसी न किसी दुकान के हिस्से हैं। तो मेरे जैसे लोग जब भी पैदा होंगे उनकी यह झंझट रहेगी। कोई मुसलमान है, कोई हिंदू है, कोई ईसाई है, कोई जैन है। कोई आस्तिक है, कोई

नास्तिक है, कोई कम्युनिस्ट है। मुझे तो किसी न किसी दुकान से ग्राहक खींचने ही पड़ेंगे।
वह जो नास्तिक है उसका भी धर्म है--नास्तिकता। कुछ नास्तिक मेरे पास आकर संन्यासी हो गए हैं तो उनका गिरोह नाराज है। कम्युनिस्ट पार्टी नाराज है मुझ पर, क्योंकि मैंने कुछ कम्युनिस्टों को संन्यासी बना दिया है। तो अब वे मार्क्स की फिक्र नहीं करते। अब वे मार्क्स को कोई आप्त-पुरुष नहीं मानते। अब दास कैपिटल उनकी बाइबिल न रही। हालांकि कम्युनिस्टों को तो खुश होना चाहिए, कितने लोगों को लाल रंग दिया! मगर वे भी नाराज हैं।
मुझे तो किसी न किसी का ग्राहक छीनना पड़ेगा, यह मजबूरी है। बुद्ध आए, उनको किसी न किसी का ग्राहक छीनना पड़ा। जीसस आए, उनको किसी न किसी का ग्राहक छीनना पड़ा। जिनके ग्राहक छिन जाएंगे वे तो तमतमाएंगे। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। क्योंकि ग्राहकों के आधार पर ही उनकी महात्मागिरी है, उनकी साधुता है। इसलिए जिसके पास जितनी बड़ी भीड़ है... ।
जैसे ईसाई कह सकते हैं... एरनाल्ड ने बहुत अदभुत किताब लिखी है बुद्ध परः लाइट ऑफ एशिया। किताब प्यारी है। बुद्ध पर लिखी गई श्रेष्ठतम पुस्तकों में एक है। लेकिन एरनाल्ड है ईसाई, इसलिए लाइट ऑफ दि वर्ल्ड नाम नहीं दे सका किताब को--लाइट ऑफ एशिया। लाइट ऑफ वर्ल्ड, दुनिया का प्रकाश, वह तो जीसस। एशिया का प्रकाश! फिर एरनाल्ड ने दूसरी किताब लिखी, क्योंकि ईसाई पीछे पड़ गए कि तुमने जब बुद्ध पर ऐसी किताब लिखी तो जीसस पर... । उसको उसने नाम दियाः लाइट ऑफ दि वर्ल्ड! विश्व का प्रकाश। हालांकि दूसरी किताब में जान नहीं है, पोच है, दम नहीं है। पहली किताब तो बहुत अदभुत है, क्योंकि दूसरी किताब तो लिखी है--लिखवाई गई है, चेष्टा है। पहली किताब सहज उतरी है। एरनाल्ड प्रेम में पड़ गया बुद्ध के। मगर फिर भी हिम्मत नहीं जुटा पाया कि कह सके उनको विश्व का प्रकाश।
एक जैन ने किताब लिखी बुद्ध और महावीर पर, तो लिखा--भगवान महावीर एवं महात्मा बुद्ध, किताब को नाम दिया। मैंने उनसे पूछा कि दोनों को भगवान लिख देते तो कुछ बिगड़ता था? या दोनों को महात्मा ही लिखते तो भी ठीक था। उन्होंने कहा, आप कहते तो ठीक हैं। मगर महावीर भगवान हैं; बुद्ध यद्यपि काफी पहुंचे हुए पुरुष हैं, मगर हैं महात्मा ही, अभी भगवान नहीं। पैदाइशी जैन संस्कार बुद्ध को कैसे भगवान... । दुकानें बंटी हुई हैं महात्माओं की भी! और उनका महात्मापन भी औरों की आंखों पर निर्भर है। इसलिए महात्मा तुमसे डरते हैं, तुम जैसा कहो वैसा करते हैं। तुम कहो पांच बजे उठिए, तो पांच बजे उठते हैं। तुम कहो तीन बजे उठिए, तो तीन बजे उठते हैं। तुम कहो शाम को नौ बजे सो जाइए, तो नौ बजे सो जाते हैं। तुम कहो एक दफा भोजन करिए, तो एक दफा भोजन करते हैं। तुम जैसा कहो। क्यों? क्योंकि तुम्हें राजी रखना पड़े, तो ही तुम उनको महात्मा बने रहने दोगे, नहीं तो उनका महात्मापन गया। जरा तुम्हारे नियम के विपरीत हो जाएं कि बात खतम हो गई। तुम्हें जरा पता चल जाए कि मुनि महाराज रात को पानी पी लिए, खात्मा हो गया। रात और मुनि पानी नहीं पी सकता। रात भर प्यासा रहे और पानी के संबंध में चिंतन करे, यह स्वीकार है। पानी ही पानी सोचे रात भर, सपनों में सरोवर के सरोवर पी जाए, यह स्वीकार है। मगर एक गिलास भर पानी नहीं पी सकता। चौबीस घंटे भूखा रहे और भोजन के संबंध में ही विचार करे, यह स्वीकार है, लेकिन दो बार भोजन नहीं कर सकता। और इसलिए एक बार में जैन मुनि इतना भोजन कर जाते हैं कि उनकी तोंदें निकल आती हैं।
अब यह बड़े चमत्कार की बात है! दिगंबर जैन मुनि की तोंद अगर है तो फिर
इस दुनिया में कोई तोंद से नहीं बच सकता। जो एक ही बार भोजन करता हो चौबीस घंटे में! और दिगंबर जैन मुनि को बैठ कर भी भोजन करने की आज्ञा नहीं है, खड़े होकर ही भोजन करना होता है। वह करपात्री होता है, उसे हाथ में ही लेकर भोजन करना होता है। क्योंकि बैठ कर आराम से भोजन करो तो ज्यादा कर जाओ, खड़े-खड़े थक ही जाओगे, कितना भोजन करोगे! खड़े-खड़े ज्यादा भोजन किया भी नहीं जा सकता। और फिर हाथ में लेकर भोजन करना है। मगर फिर भी तुम दिगंबर जैन मुनि की तोंद देखोगे। बड़ी हैरानी की बात है! ज्यादा खा जाता है।
तुमने मुक्तानंद के गुरु नित्यानंद की तस्वीर देखी? मैं नहीं समझता
कि किसी आदमी की दुनिया में इतनी बड़ी तोंद कभी रही हो। ऐतिहासिक तोंद है।

ऐसा कहना कि नित्यानंद की तोंद है, गलत; ज्यादा ठीक होगा कहना कि तोंद के नित्यानंद हैं। नहीं तस्वीर देखी हो तो देखने योग्य है, देखना, तोंद ही तोंद है! मात कर दिया मुक्तानंद के गुरु ने दुनिया के सब गुरुओं को। हैं अखंडानंद इत्यादि-इत्यादि, मगर क्या नित्यानंद के मुकाबले! पता नहीं क्यों, दुनिया में किताबें छपती हैं--विश्व रिकार्ड--उनमें क्यों नित्यानंद की तस्वीर अब तक नहीं छपी है, यह हैरानी की बात है। कोई सबसे तेज दौड़ता है, कोई सबसे ज्यादा तैरता है, कोई सबसे ज्यादा साइकिल चलाता है--ये छोटे-मोटे काम हैं। और इस बेचारे ने जिंदगी भर मेहनत करके ऐसी तोंद पैदा की है और इसका कहीं कोई उल्लेख नहीं! यह बात अनुचित है, अन्यायपूर्ण है। मैं इसका विरोध करता हूं।
जब से मैंने नित्यानंद की तोंद देखी है तब से मैं महात्माओं की जब भी तस्वीरें देखता हूं तो पहले यह देखता हूं कि तोंद है या नहीं। मगर नित्यानंद का कोई मुकाबला नहीं--बेजोड़!
यह कैसे होता होगा? और इन सबको कहा जाता है--अल्पाहारी, उपवासी, एकाहारी। व्रत रखते हैं। कुछ इसमें से दुग्धाहारी होते हैं, वे दूध ही दूध लेते हैं, और कुछ दूसरा नहीं। मगर इनके शरीर की हालत! तुम इनसे जो करवाते हो वह करते हैं।
बुद्धत्व का पहला लक्षण यह है कि श्रावक किसी बुद्ध को चला नहीं सकते। वह अपने ढंग से चलता है, अपने ढंग से जीता है। वह किसी का गुलाम नहीं है। उसे पता है कि वह कौन है, तुमसे पूछता नहीं है। इसलिए तुम पर निर्भर नहीं है। वह जानता है कि वह कौन है। तुम्हारे दर्पण में अपने चेहरे को उसे देखने की जरूरत नहीं है। उसने अपने मौलिक चेहरे को देख लिया है।
तुम ख्याति के लिए इतने दीवाने इसीलिए होते हो कि यही एक रास्ता है अपने को भरने का कि मैं कौन हूं, मैं कौन हूं। दुनिया कहती है कि मैं साहित्यकार हूं, कवि हूं, लेखक हूं, चित्रकार हूं, धर्माचार्य हूं, दार्शनिक हूं--जरूर होऊंगा। नोबल पुरस्कार मिल जाए तो भरोसा आ जाए कि बिल्कुल ठीक बात है कि मैं हूं कुछ। यह झूठा उपाय है स्वयं को जानने का। स्वयं को जानने का सच्चा उपाय तो ध्यान है। बाहर नहीं, दूसरे की आंख में नहीं देखना है; अपनी आंख बंद करनी है ताकि बाहर का सब दिखाई पड़ना बंद हो जाए। सुना कल पलटू को!
पलटू ने कहाः मेरी बात वह समझे जो आंख का अंधा हो। बड़ी अदभुत बात कही पलटू ने! किसी ने नहीं कही ऐसी बात। जीसस ने भी कही है यही बात, लेकिन और ढंग से कही है। जीसस ने कहा हैः जिसके पास आंखें हों वह मुझे देखे और जिसके पास कान हों वह मुझे सुने। मतलब तो उनका भी यही है। मगर वे भी पलटू के ढंग से नहीं कह सके। पलटू के कहने का ढंग निश्चित अनूठा है, सधुक्कड़ी है, जैसा साधु का होना चाहिए। जीसस ने थोड़ी सौम्यता बरती कि जिसके पास आंखें हों वह मुझे देखे। पलटू कहता हैः जो अंधा हो वह मुझे देख सकता है। जीसस का भी मतलब यही है कि बाहर देखने वाली आंखों से तुम मुझे न देख सकोगे, भीतर देखने वाली आंख चाहिए। मगर पलटू बहुत सीधा कह रहे हैं, सीधा-साफ, कि बाहर से तो अंधे हो जाओ, बाहर का कुछ मत देखो, तब तुम मुझे देख पाओगे। बाहर के लिए तो बहरे हो जाओ, तब तुम मुझे सुन पाओगे।
एक तो रास्ता है कि हम दूसरों से पूछते फिरें कि मैं कौन हूं?
वह झूठा और गलत रास्ता है। उस रास्ते पर मृत्यु आएगी, क्योंकि तुम जो अपनी प्रतिमा बनाओगे कि मैं कौन हूं, वह झूठी प्रतिमा होगी, मौत में वह प्रतिमा गिरेगी। जब संयोग टूटेगा शरीर और आत्मा का, वह प्रतिमा खंडित हो जाएगी। तब तुम्हारी विश्वख्याति तुम्हें बचा नहीं सकेगी। तुम्हारा यश, तुम्हारा गौरव, तुम्हारी नोबल प्राइज कुछ काम नहीं आएगी। तब सब कचरा हो जाएगा। लेकिन तब बहुत देर हो चुकी होगी। अब पछताए होत का जब चिड़िया चुग गई खेत!
एक दूसरा रास्ता हैः आंख बंद करो और भीतर उतरो। तलाश करो कि मैं कौन हूं? हूं--इतना तो तय है, पर कौन हूं? मैं कौन हूं, यह पूछते चलो। तुम्हारा ध्यान का यह मंत्र बन जाए कि मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? शब्द में पहले दोहराना, फिर धीरे-धीरे शब्द को छोड़ देना और सिर्फ भाव में यह गूंज रह जाए-- मैं कौन हूं? सिर्फ भाव बन जाए यह कि मैं कौन हूं? उतरते-उतरते सीढ़ियां

स्वयं की एक दिन यह प्रश्न खो जाएगा। तुम अपने आमने-सामने खड़े होओगे। तुम देख लोगे उसे जो तुम हो। उसी दिन शरीर और तुम अलग-अलग हो गए, असली मौत घट गई। इस मृत्यु को ही हम संबोधि कहते हैं, समाधि कहते हैं। फिर दूसरी मौत जब घटेगी घटेगी, उसका कुछ मूल्य नहीं है। दूसरी मृत्यु में भी तुम जानोगे--यह भी सिर्फ संयोग टूट रहा है। मैं रहूंगा, देह भी रहेगी। इसका जल जल में खो जाएगा, मिट्टी मिट्टी में खो जाएगी, पवन पवन में खो जाएगा। इसके पांच तत्व पांच तत्वों में लीन हो जाएंगे, कुछ नष्ट नहीं होगा। और मेरी आत्मा परमात्मा में लीन हो जाएगी, कुछ नष्ट नहीं होगा।
यहां न तो कुछ विनष्ट होता है जगत में, न कुछ निर्मित होता है। इस जगत में जितना है उतना ही है; नया कुछ बनता नहीं, पुराना कुछ नष्ट नहीं होता।
सिर्फ संयोग बनते और मिटते हैं।
मृत्यु, रामनारायण, सबसे बड़ा झूठ है। लेकिन ध्यानी को पता पड़ता है, गैर-ध्यानी को पता नहीं पड़ता। गैर-ध्यानी को तो बहुत बार मरना पड़ता है।
ध्यानी एक ही बार मरता है--ध्यान में। उसके बाद सब मृत्यु झूठ हो जाती है।

अंतिम प्रश्नः ओशो! मैं विवाह से इतना भय क्यों खाता हूं?

सुधाकर! और क्या करोगे? विवाह से भय ही खाया जा सकता है।
पत्नी की मृत्यु के दो वर्ष बाद ही चंदूलाल का भी देहावसान हुआ। चूंकि उन्होंने अपनी जिंदगी में न बड़े पाप किए थे न बड़े पुण्य, इसलिए उन्हें स्वर्ग-नरक में चुनाव की छूट मिली। परलोक कार्यालय के पूछताछ विभाग वाले क्लर्क से बाहर जाकर उन्होंने पूछा कि भाई, आज से दो साल पहले श्रीमती चंदूलाल की मृत्यु हुई थी, क्या आप कृपा कर बताएंगे कि वे स्वर्ग गईं या नरक?
क्लर्क ने खाते-बही पलट कर बतायाः श्रीमती चंदूलाल, हिसाब-किताब में कोई बड़े पाप-पुण्य न होने के कारण उन्हें भी कहीं भी जाने की स्वतंत्रता दी गई थी। और जैसा कि सभी चुनते हैं, उन्होंने स्वर्ग चुना। वे आजकल स्वर्ग में रह रही हैं।
ऐसी बात है--चंदूलाल ने हड़बड़ी में कहा--तो फिर मुझे जल्दी से नरक में भेज दीजिए।
ढब्बूजी एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन से पूछ रहे थे, अच्छा यह तो बताओ बड़े मियां कि जिस प्रकार हम अविवाहित और विवाहित स्त्री को बड़ी ही आसानी से पहचान लेते हैं--क्योंकि क्वांरी स्त्रियों की मांग में सिंदूर नहीं होता और विवाहित स्त्री की मांग में सिंदूर होता है--क्या इसी प्रकार से अविवाहित और विवाहित पुरुषों को भी अलग-अलग पहचाना जा सकता है?
मुल्ला नसरुद्दीन बोला, भाई ढब्बूजी, पहचान बड़ी ही सरल है। सुनो, क्वांरे पुरुष की कमीज पर बटन नहीं पाए जाते और जो विवाहित पुरुष होता है उसके शरीर पर बटन तो बटन, कमीज तक नहीं पाई जाती।
घबड़ाते हो, स्वाभाविक है। मगर घबड़ाने से कुछ भी नहीं होगा। गुजरना पड़ेगा। इस पीड़ा से गुजरना पड़ेगा। क्योंकि बिना पीड़ा के घबड़ाते भी रहोगे और रस भी बना रहेगा। रस ही न होता तो प्रश्न ही क्यों उठाते! घबड़ाहट अभी अनुभव की नहीं है। घबड़ाहट अभी स्वानुभव नहीं है। इसलिए प्रश्न उठ रहा है। मन में आकांक्षा है। गुजरो, नाहक समय न गंवाओ। जितने जल्दी गुजरे उतना अच्छा। क्योंकि जितने जल्दी गुजर जाओ उतने जल्दी बाहर आ जाओगे।
सुधाकर, विवाह भी एक पाठशाला है, जो तुम्हें एक बड़ा पाठ देती है कि दूसरे से तृप्ति नहीं हो सकती और दूसरे से आनंद नहीं मिल सकता। और यह एक बहुत बड़ा पाठ है, क्योंकि इसका दूसरा पहलू है कि आनंद स्वयं से ही मिल सकता है, स्वयं में ही मिल सकता है।
आज इतना ही।

काहे होत अधीर
पंद्रहवां प्रवचन

मूरख अबहूं चेत

संत संत सब बड़े हैं, पलटू कोउ न छोट।
आतम दरसी मिहीं है, और चाउर सब मोट।।
पलटू ऐना संत है, सब देखैं तेहि माहिं।
टेढ़ सोझ मुंह आपना, ऐना टेढ़ा नाहिं।।
पलटू यहि संसार में, कोऊ नाहीं हीत।
सोऊ बैरी होत है, जाकौ दीजै प्रीत।।
जो दिन गया सो जान दे, मूरख अबहूं चेत।
कहता पलटूदास है, करिले हरि से हेत।।
पलटू नर-तन जातु है, सुंदर सुभग सरीर।
सेवा कीजै साध की, भजि लीजै रघुवीर।।
पलटू ऐसी प्रीति करूं, ज्यों मजीठ को रंग।
टूक-टूक कपड़ा उड़ै, रंग न छोड़ै संग।।
आठ पहर जो छकि रहै, मस्त अपाने हाल।
पलटू उनसे सब डरैं, वो साहिब के लाल।।
पलटू सीताराम से, हम तो किए हैं प्रीति।
देखि-देखि सब जरत हैं, कौन जगत की रीति।।
पलटू बाजी लाइहौं, दोऊ बिधि से राम।
जो मैं हारौं राम को, जो जीतों तो राम।।
पलटू लिखा नसीब का, संत देत हैं फेर।
सांच नहीं दिल आपना, तासे लागै देर।।
लगा जिकर का बान है, फिकर भई छैकार।
पुरजे-पुरजे उड़ि गया, पलटू जीति हमार।।
बखतर पहने प्रेम का, घोड़ा है गुरुज्ञान।
पलटू सुरति कमान लै, जीति चले मैदान।।

लहरें, मन सागर की लहरें
गहरी तह से उछल-उछल कर ऊंचे महल डुबो दें आशाओं के महल-दुमहले ज्ञान-मान की चट्टानें बहता पानी मस्त चाल में क्या उनको पहचाने अपनी काया रूप बदल कर पिघल-पिघल कर रो दें लहरें, मन-सागर की लहरें
गहरी तह से उछल-उछल कर ऊंचे महल डुबो दें
जगत भया सब पानी-पानी धरती जल-थल सारी
एक ही बहते नशे की धारा, एक ही धुन मतवारी
बढ़ते-बढ़ते भूमंडल को अपने बीच समो दें
लहरें, मन-सागर की लहरें
गहरी तह से उछल-उछल कर ऊंचे महल डुबो दें
चैतन्य का एक सागर हो तुम! तुम्हारी चेतना की एक छोटी सी लहर इस सारे संसार को डुबा सकती है। ऊपर से देखो तो बूंद हो; भीतर से पहचानो तो सागर हो। ऊपर से देखो तो बहुत छोटे; भीतर से देखो तो तुम्हारा कोई न आदि है न अंत। ऊपर से देखो तो क्षणभंगुर; और भीतर से देखो तो सनातन, शाश्वत। ऊपर से देखो तो नाम है, धाम है, पता-ठिकाना है, विशेषण है, जाति है, धर्म है, देश है; भीतर से देखो तो अनिर्वचनीय हो तुम, ब्रह्म-स्वरूप हो तुम! तुम्हारे चैतन्य में उठी छोटी सी लहर सारे अस्तित्व को भिगो दे सकती है।
जिसने अपनी चेतना के इस सागर को पहचाना, वही संत है। जिसने सत्य को जाना, वही संत है। जाना ही नहीं, जो इस सत्य के साथ अपने को एकरूप पहचाना, वह संत है। जानने में तो थोड़ा भेद रह जाता है--जानने वाले का और जाना जाने वाले का; ज्ञान का और ज्ञेय का। लेकिन उतना भेद भी नहीं है सत्य में और संत में। सत्य में जो डूब गया है, सत्य में जिसने अपना अंत पा लिया है, या सत्य

में जिसने अपने को डुबा दिया है, और सत्य में जिसने अपना अंत कर दिया है-- वही संत है।
संत से कोई आचरण, चरित्र, नीति इत्यादि का लेना-देना नहीं है। ऐसा नहीं है कि संत के जीवन की कोई नीति नहीं होती। ऐसा नहीं कि उसके जीवन का कोई अनुशासन नहीं होता। उसके जीवन का एक अनुशासन है, लेकिन वह अनुशासन बाहर से आरोपित नहीं है, स्व-स्फूर्त है। उसके जीवन का भी एक तंत्र है, लेकिन तंत्र किसी और के द्वारा संचालित नहीं है, वह अपना मालिक है। उसकी मर्यादा है, लेकिन मर्यादा उसके बोध से निर्मित होती है, किन्हीं धारणाओं से नहीं।
संत वह है, जो मन से, तन से अपने को पृथक जानने में समर्थ हो गया है। ऐसे संत जब भी पृथ्वी पर हुए हैं, एक बाढ़ आई प्रकाश की उनके साथ; आनंद की बरखा आई उनके साथ; प्रेम के फूल खिले उनके साथ; पृथ्वी उनके साथ युवा हुई। उनकी मौजूदगी में पृथ्वी ने जाना कि वह भी दुल्हन है। जब कोई बुद्ध मौजूद नहीं होता, पृथ्वी विधवा होती है। जब कोई बुद्ध मौजूद होता है, पृथ्वी सधवा होती है। बुद्ध की मौजूदगी पृथ्वी की मांग भर देती है; उसके पैरों में घूंघर पहना देती है; उसके हाथों में चूड़ियों की खनकार आ जाती है।
बुद्ध की मौजूदगी में सृष्टि नाचती है--आनंद से, उत्सव से।
आज के सूत्र बड़े मीठे हैं।
संत संत सब बड़े हैं, पलटू कोउ न छोट।
ध्यान रखना, संत तो वही है जिसने अपने भीतर के सागर को पहचाना; जो बूंद
से मुक्त हुआ और सागर हुआ। संत तो विराट के साथ एक होकर ही संत हुआ है। और विराट कहीं छोटा हो सकता है? विराट तो असीम है, अनंत है! और जिसने भी विराट के साथ अपना तादात्म्य पहचान लिया है, वह तो बचा ही नहीं है।
जब तक तुम हो, तब तक छोटे रहोगे; तुम बड़े नहीं हो सकते। अहंकार लाख उपाय करे तो भी छोटा ही रहता है। अहंकार के केंद्र में ही हीनता है, हीनता की ग्रंथि है, मनोविज्ञान कहता है। हीनता की ग्रंथि के कारण ही हम अहंकार की यात्रा पर निकलते हैं; लगता है हमें कि हम छोटे हैं, सो बड़े होने की चेष्टा करते हैं। धन हो बहुत तो बड़े दिखाई पड़ेंगे। ज्ञान हो बहुत तो बड़े दिखाई पड़ेंगे। पद हो बड़ा तो बड़े दिखाई पड़ेंगे।
लेकिन राष्ट्रपति के पद पर बैठ कर जब तुम बड़े दिखाई पड़ते हो, तुम बड़े नहीं दिखाई पड़ रहे हो; वह राष्ट्रपति का पद है, उतरते ही तुम वही के वही हो जाओगे। धन के कारण अगर बड़े हो, कल दिवाला निकल जाए, सरकार बदल जाए, सिक्के बदल जाएं--गया तुम्हारा बड़प्पन! तुम्हारा बड़प्पन कागजी था। जरा सी वर्षा हो जाएगी और तुम्हारे रंग उड़ जाएंगे। उधार था तुम्हारा बड़प्पन। तुमने अहंकार के ऊपर आभूषण बांध लिए थे, सुंदर परिधान पहन रखे थे; मगर सब झूठे थे; दूसरों के हाथों में उनकी बागडोर थी।
अहंकार के कारण जो बड़ा है उसे दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। और वह
भी बड़प्पन क्या कोई बड़प्पन है जो दूसरों पर निर्भर रहता हो! सिर्फ संत ही बड़े हैं, क्योंकि उनका बड़प्पन किसी पर निर्भर नहीं--न धन पर, न पद पर, न प्रतिष्ठा पर, न लोगों पर। उनका बड़प्पन अपने भीतर की अनुभूति में है। उनका बड़प्पन अहंकार का आभूषण नहीं है, अहंकार का विसर्जन है।
संतों का बड़प्पन छीना नहीं जा सकता। उनकी गर्दन तुम काट सकते हो, मगर उनके बड़प्पन को न छू सकोगे। उनके बड़प्पन पर तुम जरा सा भी दाग नहीं फेंक सकते, जरा सा आघात नहीं कर सकते। उनका बड़प्पन तुम्हारे हाथों से बहुत पार है, बहुत दूर है। जैसे कोई आकाश पर थूके और थूक वापस अपने पर गिर जाए, ऐसे ही संतों पर थूकने वाले लोग अपने ही थूक में दब जाते हैं। आकाश तो अछूता का अछूता रह जाता है। आकाश तो निर्मल का निर्मल!
ठीक कहते हैं पलटूः संत संत सब बड़े हैं, पलटू कोउ न छोट।
और यह भी ख्याल रखना कि दो संतों में कोई एक बड़ा और दूसरा छोटा नहीं होता। और दो असंतों में भी कोई एक बड़ा और दूसरा छोटा नहीं होता। दो असंत दोनों छोटे होते हैं और दो संत दोनों ही बड़े होते हैं। सोए हुए आदमी, सब छोटे। जागे हुए आदमी, सब बड़े। और बड़प्पन में कोई मापदंड नहीं है कि बुद्ध बड़े, कि महावीर बड़े, कि कृष्ण बड़े, कि क्राइस्ट बड़े।

तथाकथित धार्मिक लोग बड़ी चिंता करते हैं--कौन बड़ा? उन्हें असली चिंता
यह नहीं है कि बुद्ध बड़े कि मोहम्मद बड़े। उन्हें असली चिंता यह है कि मैंने जिसे मान रखा है संत, वह बड़ा होना चाहिए। क्योंकि उसके बड़प्पन में मेरा बड़प्पन है। यह मुसलमान की चिंता है कि मोहम्मद बड़े हैं या बुद्ध। यह बौद्ध की चिंता है कि बुद्ध बड़े हैं या मोहम्मद।
बुद्ध और मोहम्मद, कोई तुलना नहीं की जा सकती--अतुलनीय हैं, अद्वितीय हैं। और दोनों उस सीमा के पार हो गए हैं जिसको हम अहंकार कहते हैं। दोनों ने अपना बूंद-भाव छोड़ दिया। दो बूंदें सागर में गिर जाएं, कौन सी बूंद अब बड़ी है? दोनों सागर हो गई हैं। दो व्यक्ति परमात्मा में लीन हो जाते हैं, कौन अब बड़ा है? दोनों परमात्मा हो गए। दोनों की उदघोषणा एक हैः अहं ब्रह्मास्मि! अनलहक!
परमात्मा तो दो नहीं है, एक ही है। हम अनेक हैं। और जब तक हम अनेक हैं, छोटे हैं। जिस दिन हम उस एक के साथ एक हो जाएंगे, उस दिन कैसे छोटे!
पलटू कहते हैंः तुलना ही मत करना संतों में; वे सब समान हैं। संत भर कोई हो, जाग्रत भर कोई हो, प्रबुद्ध भर कोई हो, फिर कोई छोटा नहीं होता। संत संत सब बड़े हैं, पलटू कोउ न छोट।
आतम दरसी मिहीं है, और चाउर सब मोट।।
जिन्होंने स्वयं को जान लिया, वे अति-सूक्ष्म में प्रवेश कर गए; और उनको छोड़ कर बाकी सब बहुत मोटे हैं, बहुत स्थूल हैं, बहुत पौदगलिक हैं; उनको नापा जा सकता है। अज्ञानी को नापा जा सकता है; ज्ञानी को नापने का कोई उपाय नहीं, कोई तराजू नहीं, कोई मापदंड नहीं।
आकाश को नापने भी चलोगे तो कैसे नापोगे? हमारे पास जो बड़े से बड़ा नाप है, वह है प्रकाश-वर्ष। आकाश उससे भी नहीं नपता। हमारे इंच, फीट, गज, हमारे फर्लांग, मील, कोस तो बहुत छोटे पड़ जाते हैं। प्रकाश-वर्ष से भी आकाश नहीं नपता। अब तक वैज्ञानिक नहीं नाप पाए कि आकाश कितने प्रकाश-वर्ष की लंबाई का है। और प्रकाश-वर्ष को तुम समझ लेना। प्रकाश-वर्ष बड़े से बड़ा मापदंड है। प्रकाश-वर्ष का अर्थ होता हैः एक सेकेंड में प्रकाश एक लाख छियासी हजार मील की गति करता है। सूरज से जब किरणें आती हैं तो प्रति सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील की गति से आती हैं। सूरज से हम तक किरणें पहुंचने में कोई साढ़े नौ मिनट लगते हैं--इस गति से चलने पर। प्रकाश-वर्ष का अर्थ होता हैः किरण एक लाख छियासी हजार प्रति सेकेंड की गति से एक वर्ष तक चले तो एक प्रकाश-वर्ष। यह बड़े से बड़ा मापदंड है। जो सबसे निकट का तारा है, वह हमसे चार प्रकाश-वर्ष दूर है। और जो सबसे दूर का तारा अभी तक पहचाना जा सका है, वह हमसे अरबों प्रकाश-वर्ष दूर है। आकाश कितना बड़ा है! उस तारे के आगे भी तारे हैं। और उन तारों के आगे भी तारे हैं। और आकाश का कोई अंत नहीं है। आकाश अनंत है।
इस आकाश को जिन्होंने चैतन्य-रूप में देखा है, उन्होंने परमात्मा को पहचाना है। इस विराट में जो एक हो गए, उनको कैसे नापोगे? कैसे तौलोगे? तुम्हारे शब्द छोटे, तुम्हारे तर्क छोटे, तुम्हारे हाथ छोटे। वे तुम्हारे सब हिसाब के बाहर हो गए। वे निर्गुण हो गए, निराकार हो गए।
उनकी निर्गुणता और उनकी निराकारता के कारण पलटू कहते हैंः आतम दरसी मिहीं है...
बहुत सूक्ष्म हो गए। अब कोई उपाय उन्हें मापने का नहीं है।
और चाउर सब मोट।
उनको छोड़ कर शेष सब नापे जा सकते हैं। कितना धन है, नापा जा सकता है।
और कितना बड़ा पद है, नापा जा सकता है। और कितनी प्रतिष्ठा है, नापी जा सकती है। सिर्फ एक तत्व है इस जगत में जो नहीं नापा जा सकता, वह है समाधि, वह है ध्यान की पराकाष्ठा।
और संत वही है जो समाधि को उपलब्ध हो गया है; जिसका सब समाधान हो गया, कोई समस्या न बची, कोई प्रश्न न बचा। चित्त ही न बचा तो कौन उठाए समस्याएं और कौन उठाए प्रश्न? पूछने वाला ही न बचा। जो मिट गया, जिसने अपने को डुबा दिया अस्तित्व में, जो एकाकार हो गया, उसे नापने की कोई व्यवस्था नहीं। इसलिए कभी भूल कर मत पूछनाः बुद्ध बड़े कि महावीर? महावीर बड़े कि मोहम्मद? मोहम्मद बड़े कि मूसा? पूछना ही मत। कृष्ण बड़े कि क्राइस्ट?

तुम्हारा यह पूछना ही अज्ञान का द्योतक है। वे सब मिट गए हैं एक में ही। वहीं से उपनिषद पैदा होता है--उसी शून्य से, जिस शून्य से कुरान का जन्म होता है। उसी शून्य से बाइबिल उपजती है, जिस शून्य से धम्मपद का आविर्भाव होता है। बुद्ध वहीं खड़े हैं जहां क्राइस्ट। जरथुस्त्र वहीं विराजमान हैं जहां लाओत्सु।
ये नाम भी हमारे काम के लिए हैं, अन्यथा लाओत्सु का अब क्या नाम! बुद्ध
की अब क्या पहचान! महावीर का अब क्या पता-ठिकाना! फूल से उड़ गई सुगंध आकाश में, अब कहां उसे खोजोगे? फूल तक तो पकड़ आ सकती है, क्योंकि फूल स्थूल है; लेकिन सुगंध पकड़ में नहीं आ सकती। और संत तो मात्र सुवास हैं।
पलटू ऐना संत है, सब देखैं तेहि माहिं।
टेढ़ सोझ मुंह आपना, ऐना टेढ़ा नाहिं।।
पलटू कहते हैंः संत तो दर्पण है, ऐना है, आईना है।
पलटू ऐना संत है, सब देखैं तेहि माहिं।
जिसकी मर्जी हो अपना चेहरा देख ले। संत का तो अपना कोई चेहरा बचा नहीं। संत तो केवल निर्विकार प्रतिफलन की क्षमता है; जिसकी मर्जी हो अपना चेहरा देख ले। गुरु का कोई चेहरा नहीं होता। गुरु में तुम जो देखते हो वह तुम्हारा ही चेहरा होता है। और जब तक तुम्हें गुरु के चेहरे में कुछ दिखाई पड़ता रहता है तब तक जानना कि तुम्हारा चेहरा अभी शेष है। एक ऐसी भी घड़ी आती है--आती है ऐसी शुभ घड़ी, ऐसा शुभ मुहूर्त--जब तुम्हें गुरु के दर्पण में कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। उसका अर्थ है कि तुम्हारा चेहरा भी खो गया। अब दो दर्पण आमने-सामने रखे हैं। जब दो दर्पण आमने-सामने होंगे तो क्या दिखाई पड़ेगा? दर्पण में दर्पण झलकेगा, कुछ दिखाई नहीं पड़ेगा।
सूफी फकीर बायजीद ने कहा हैः पहली दफा मैं काबा गया तो मुझे काबा का पत्थर दिखाई पड़ा। दूसरी दफा काबा गया तो काबा का पत्थर नहीं दिखाई पड़ा, काबा के पत्थर के पीछे छिपा हुआ परमात्मा, मालिक दिखाई पड़ा। और तीसरी बार जब मैं काबा गया तो न पत्थर दिखाई पड़ा, न मालिक दिखाई पड़ा; कोई भी दिखाई नहीं पड़ा--सन्नाटा ही सन्नाटा, शून्य ही शून्य! इसलिए फिर चौथी बार गया ही नहीं, क्योंकि अब जाने की जरूरत क्या थी! जाकर भी जाता कहां!
ये ही तीन सीढ़ियां शिष्य पार करता है। पहले तो पत्थर दिखाई पड़ता है, क्योंकि तुम पत्थर हो। फिर पत्थर के पीछे से मालिक झलकता हुआ दिखाई पड़ता है, क्योंकि तुम ध्यान में उतरे अब, हटे चित्त से, ध्यान में पहुंचे। और तीसरी बार जब तुम ध्यान से भी सरक कर समाधि में पहुंच जाते हो तो फिर मालिक भी नहीं दिखाई पड़ता। देखने वाला ही नहीं बचा तो अब दिखाई क्या पड़ेगा! अब दो दर्पण आमने-सामने रखे हैं। और अदभुत है वह घटना जब दो दर्पण आमने-सामने रखे होते हैं।
पलटू ऐना संत है, सब देखैं तेहि माहिं।
टेढ़ सोझ मुंह आपना, ऐना टेढ़ा नाहिं।।
और अगर कभी तुम्हें आईने में अपनी तिरछी जीवन-धारा, अपना ऐढ़ा-टेढ़ा मुंह दिखाई पड़े, तो यह मत सोचना कि आईना टेढ़ा है। अक्सर यही हो जाता है।
सोचना, पलटू कहते हैं, कि मेरा मुंह टेढ़ा है।
मैंने सुना है, एक अति कुरूप स्त्री थी। वह आईने में अपना चेहरा नहीं देखती थी। क्योंकि वह कहती थी, सब आईने गलत हैं, कोई आईना ठीक बना ही नहीं। और अगर कभी कोई उसे मजाक में आईना दिखा देता तो वह आईना फोड़ देती थी। क्योंकि वह कहती थी, ये आईने दुष्ट, इन आईनों के कारण मैं कुरूप हो जाती हूं!
इस स्त्री पर तुम्हें हंसी आ सकती है कि यह पागल है, मगर यह तुम सबकी प्रतिनिधि है। सदगुरुओं के पास जाकर भी तुम कुछ देख लेते हो; वह तुम्हारा ही चेहरा है। लेकिन तुम ऐसा नहीं समझते कि तुम अपना चेहरा देख रहे हो, तुम समझते हो तुम्हें आईने में कुछ खोट दिखाई पड़ गई। तुम्हारे चेहरे पर अगर कालिख का चिह्न है तो आईने में भी कालिख का चिह्न दिखाई पड़ता है। और तुम्हारा चेहरा तो तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता, आईना दिखाई पड़ता है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक रात खूब पीकर लौटा। रास्ते में गिरा-पड़ा, एक दूसरे शराबी से झगड़ा हो गया, तो उस शराबी ने उसका मुंह नोंच लिया। घर आया तो उसे मुंह में दर्द हो रहा था, खून भी बह रहा था। उसने सोचा कि सुबह पत्नी

देखेगी, झंझट खड़ी होगी कि तुमने फिर ज्यादा पी। पत्नी को पता चलने के पहले अपने घावों को छिपा लेना जरूरी है। तो गया स्नानगृह में, आईने के सामने खड़ा हुआ। मलहम निकाली, मलहम लगाई, आकर बिस्तर पर सो रहा।
सुबह पत्नी जब स्नानगृह में गई तो वह चिल्लाई। उसने कहा कि नसरुद्दीन, तो तुम फिर रात ज्यादा पीकर आए? यह किसने मेरे पूरे आईने पर मलहम लगाई है?
अब पीया हुआ आदमी, बेहोश आदमी; वह लगा तो अपने ही चेहरे पर रहा था, लेकिन दिखाई तो आईना पड़ रहा था, तो उसने आईने में जगह-जगह जहां-जहां दिखाई पड़ा कि चेहरा छिल गया है, वहां-वहां मलहम लगा दी, पूरा आईना मलहम से पोत दिया। लेकिन ऐसी हमारी दशा हैः अपना चेहरा दिखाई नहीं पड़ता। और जिसको अपना चेहरा दिखाई पड़ने लगे, वही सत्संग में प्रविष्ट हो सकता है।
एक प्रसिद्ध नेताजी पर अदालत में मुकदमा था कि वे एक व्यक्ति का छाता वापस नहीं लौटा रहे थे। अदालत में मजिस्ट्रेट ने नेताजी से कहा, नेताजी, आप इस गरीब आदमी का छाता वापस क्यों नहीं कर रहे हैं? आखिर बात क्या है? क्या आप अपनी सफाई में कुछ कहना चाहेंगे?
नेताजी बोले, परम आदरणीय! इस व्यक्ति को मैं अच्छी तरह जानता हूं। यह नंबर एक का कंजूस है। इससे तो मैं छाता मांगने का विचार भी नहीं कर सकता। और यदि मैंने कभी धोखे में या भूल में इससे मांगा भी हो तो यह इतना मक्कार है कि यह मुझे छाता कभी दे नहीं सकता। और यदि इसने अपना समझ कर मुझे छाता दे भी दिया हो तो मैंने इसका छाता कभी का वापस कर दिया होगा। और यदि महानुभाव, मैंने इसका छाता वापस न किया हो तो मैं अब इसका छाता वापस करूंगा भी नहीं, क्योंकि वर्षा फिर शुरू हो गई है और मुझे फिर छाते की जरूरत पड़ सकती है।
कोई अपनी भूल तो किसी भांति भी देखने को राजी नहीं है। दूसरे की तो हम हजार भूलें देख लेते हैं! तिल का ताड़ बना लेते हैं। और अपनी आंखों में अगर पर्वत भी पड़ा हो तो हमें ऐसा भी नहीं लगता कि कंकड़ी भी पड़ी है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक नौकरी के लिए इंटरव्यू देने गया था। इंटरव्यू लेने वाले अधिकारी ने उससे कहा कि नसरुद्दीन, बताओ तो जरा कि रेडियो का आविष्कार किसने किया था?
नसरुद्दीन ने बहुत सोचा, बहुत सोचा, बहुत सिर मारा और फिर कहा, पता नहीं महानुभाव।
अधिकारी ने कहा, अच्छा चलो यही बताओ कि पेनिसिलीन का आविष्कारक कौन है?
मुल्ला नसरुद्दीन सिर झुका कर खड़ा हो गया सो खड़ा ही रहा। मिनट पर मिनट बीतने लगे। आधा घंटा जब बीत गया तो उस अधिकारी ने कहा कि कुछ बोलोगे या नहीं? चलो छोड़ो इसे, मैं दूसरे प्रश्न पूछता हूं। उसने और दो-चार प्रश्न पूछे, लेकिन हर प्रश्न के उत्तर में या तो उसने कहा कि मुझे पता नहीं और या वह सिर झुका कर खड़ा हो जाए तो सिर ऊपर ही न उठाए। आखिर अधिकारी क्रोध में आ गया। उसने कहा, अरे नसरुद्दीन के बच्चे, मैं जब भी तुझसे कुछ पूछता हूं तो या तो तू कहता है कि मालूम नहीं या फिर चुपचाप खड़ा हो जाता है तो बोलता ही नहीं! तेरे दिमाग में बिल्कुल गोबर भरा है।
अब नसरुद्दीन बोला। बड़ी शांत, गंभीर, प्रभावशाली वाणी में उसने कहा, महानुभाव, यदि मेरे दिमाग में गोबर भरा है तो आप उसे चाट क्यों रहे हैं? मनुष्य की ऐसी वृत्ति है। सभी मनुष्यों की ऐसी वृत्ति है। हम तत्क्षण दूसरे पर टूट पड़ने को तैयार हैं। और यह वृत्ति हमारी इतनी प्राचीन है और इतनी गहरी बैठ गई है कि जब तुम संतों के पास आते हो तो भी इस वृत्ति को छोड़ नहीं पाते। उनमें भी तुम्हें कुछ भूल-चूक दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है। तुम्हें कांटों को गिनने की आदत हो गई है, गुलाब तुम्हें दिखाई ही नहीं पड़ते। तुम्हें रातें गिनने की आदत हो गई है, तुम्हें दिन दिखाई नहीं पड़ते। टेढ़ सोझ मुंह आपना, ऐना टेढ़ा नाहिं।
पलटू कहते हैंः ध्यान रखना, भूलना मत, नहीं तो संत मिलेंगे और तुम चूकते चले जाओगे। अपना मुंह टेढ़ा है, आईना टेढ़ा नहीं है। एक बार ऐसा निर्णायक रूप से तुम्हारे सामने स्पष्ट हो जाए, यह तुम्हारी भूमिका बन जाए, तो तुम्हारे जीवन में क्रांति बहुत दूर नहीं है।

रूखी, तपी, जलती हुई दोपहर के बाद
यह धूल भरी आंधी!
सब कुछ पर रेत जमी, मन तक ज्यों किसकिसा रहा है!

बेरंगे, गरम दिन--छटपटाती रातें
पूछता हूं रह-रह कर, किससे, क्या जानूंः
"ओ रे! बता मुझकोः
यह सब है किसलिए? क्या है इसका निदान?
कब होगा अंत इस जड़ता का, द्विधा का?
कब तक यों और तपूं--
कब तक?
कब आएगी वह वर्षा की एक बूंद, स्नेह की एक कनी अगली हरियाली की प्रतीक बनी?"

उत्तर में किंतु बस सिर पर यह आसमान--
मटमैला, रेतीला,
और यह दरवाजे फटफटाती आंधी!

रूखी, तपी, जलती हुई दोपहर के बाद
यह धूल भरी आंधी!
सब कुछ पर रेत जमी, मन तक ज्यों किसकिसा रहा है!

न तो आकाश मटमैला है, न आकाश रेतीला है। मटमैलापन है तो तुममें। और रेत भरी है तो तुममें। और जब तक तुम दोष दूसरों में देखते रहोगे तब तक कैसे अपने को रूपांतरित करोगे?
स्वयं में दोष देखना साधक का पहला लक्षण है। इसका यह अर्थ नहीं है कि दूसरों में दोष नहीं होते। होते होंगे। उनसे तुम्हें क्या प्रयोजन है? उनके दोषों के लिए तुम्हारा कोई दायित्व नहीं है। और यह दूसरों में दोष देखने की आदत का सबसे खतरनाक परिणाम है जो वह यह है कि किसी दिन अगर तुम्हें निर्दोष व्यक्ति भी मिल जाए तो तुम उसमें भी दोष देख लोगे। तुमने बुद्धों में दोष देख लिए! तुम्हारी दोष देखने की आदत इतनी सघन हो गई कि जहां नहीं हैं वहां भी तुम आविष्कृत कर लोगे। तुम और तो कुछ आविष्कार करते ही नहीं। तुम्हारी सारी सृजनात्मकता दोषों के निर्माण में बनती है और लगती है। औरों में दोष देखे तो चलेगा, लेकिन जब तुम संतों में दोष देखने लगते हो तब तुम अपने ही पैर पर कुल्हाड़ी मार रहे हो।
ठीक कहते हैं पलटूः
पलटू ऐना संत है, सब देखैं तेहि माहिं।
टेढ़ सोझ मुंह आपना, ऐना टेढ़ा नाहिं।।
पलटू यहि संसार में, कोऊ नाहीं हीत।
सोऊ बैरी होत है, जाकौ दीजै प्रीत।।
इस संसार में संतों के अतिरिक्त तुम्हारा कोई कल्याण नहीं कर सकता है। इस संसार में संतों के अतिरिक्त तुम्हारा कोई हितेच्छु नहीं है। तुम्हारा कोई सच्चा मित्र नहीं है। हो ही नहीं सकता। सोए हुए लोग क्या तुम्हें मैत्री देंगे? कैसे तुम्हारा मंगल करेंगे? नींद में खोए हुए लोग, मूर्च्छित--वासनाओं में, एषणाओं में--क्या तुम्हें सहारा देंगे? खुद अपने स्वार्थों से भरे हैं जो और अभी अपने स्वार्थों की दौड़ में लगे हैं, वे तुम्हारे किस काम आ सकते हैं? हां, वे तुम्हें आश्वासन देंगे कि हम काम आएंगे, क्योंकि इसी तरह तुम्हारा शोषण किया जा सकता है।
पलटू यहि संसार में, कोऊ नाहीं हीत।
यहां तुम्हारा हित करने वाला कोई भी नहीं है, तुम्हारा कल्याण चाहने वाला कोई भी नहीं है। सबको अपनी पड़ी है। और अगर कभी कोई तुम्हारे कल्याण की बात भी करता है तो सावधान रहना, वह तुम्हारा उपयोग करना चाहता होगा, तुम्हारा साधन की तरह उपयोग करना चाहता होगा।

जर्मनी के बड़े प्रसिद्ध विचारक इमैनुअल कांट ने नीति की आधारशिलाओं
पर जो चर्चाएं की हैं, उनमें सबसे महत्वपूर्ण बात उसने कही वह यह कि नीति का मूलभूत सिद्धांत हैः दूसरे का साधन की तरह उपयोग न करना।
मगर यहां तो हम सभी एक-दूसरे का साधन की तरह उपयोग कर रहे हैं। पत्नी पति का उपयोग कर रही है, पति पत्नी का उपयोग कर रहा है। मां-बाप बच्चों का उपयोग कर रहे हैं या उपयोग की आशा कर रहे हैं। बच्चे मां-बाप का उपयोग कर रहे हैं। और इसलिए कलह ही कलह है। हर आदमी का हाथ दूसरे की जेब में पड़ा है। हर आदमी एक-दूसरे की जेब काट रहा है।
बर्नार्ड शॉ से किसी ने एक बार पूछा... सुबह-सुबह थी, सर्द सुबह और बर्नार्ड शॉ बगीचे में घूमने गया है, दोनों हाथ अपने पैंट की जेबों में डाले हुए। किसी ने पूछा बर्नार्ड शॉ से कि क्या कोई आदमी जिंदगी पैंट के खीसों में हाथ डाले-डाले गुजार सकता है?
बर्नार्ड शॉ ने कहा, हां, गुजार सकता है; सिर्फ एक बात का ख्याल होना चाहिए--हाथ अपने और जेब दूसरे की। बस इतना ख्याल रहे, फिर कोई अड़चन नहीं है।
सबके हाथ दूसरों की जेब में हैं! यहां सब एक-दूसरे का शोषण कर रहे हैं। यहां प्रेम के नाम पर भी शोषण चल रहा है, तो और किसी चीज के नाम पर तो शोषण चलेगा ही।
सोऊ बैरी होत है, जाकौ दीजै प्रीत।
यहां ऐसी उलटी हालत है कि जिसको तुम प्रेम करोगे वही तुम्हारा शोषण करेगा।
मुल्ला नसरुद्दीन ने गांव के सबसे सीधे-सादे आदमी को लूट लिया। जो था उसके घर में सब ले गया। बहुत मित्रता जताई। एक दिन उसके घर मेहमान हुआ और रात सब बांध कर नदारद हो गया। बाद में पकड़ा गया। मजिस्ट्रेट ने कहा कि नसरुद्दीन, पूरा गांव जानता है कि यह आदमी साधु है। इतना सीधा-सादा आदमी! इसे धोखा देते तुम्हें शर्म नहीं आई?
नसरुद्दीन ने कहा, इसके अलावा और किसको धोखा दूं? और तो इस गांव में सब मुझसे बड़े बेईमान हैं। यही एक बेचारा है जिसको मैं धोखा दे सकता हूं, बाकी सब तो मुझे ही धोखा दे रहे हैं। आप कहते हैं इसको भी धोखा न दो। तो मैं किसको धोखा दूं? तो मैं खाली हाथ आया, खाली हाथ जाऊं?
जिससे तुम प्रीति करोगे, प्रीति का अर्थ होता हैः तुम उसके लिए अपने द्वार-दरवाजे खोल दोगे। प्रीति का अर्थ होता हैः तुम उसके लिए उपलब्ध हो जाओगे। प्रीति का अर्थ होता हैः तुम, उसकी मांग कोई होगी, तो पूरा करने को आनंद से तत्पर हो जाओगे। और बस शोषण शुरू हुआ। वही तुम्हारा दुश्मन हो गया। दुश्मन का अर्थ हैः उसने तुम्हारा साधन की तरह प्रयोग करना शुरू कर दिया।
सोऊ बैरी होत है, जाकौ दीजै प्रीत।
इस मूर्च्छित संसार में इससे अन्यथा की आशा भी नहीं हो सकती।
मुल्ला नसरुद्दीन, चंदूलाल और ढब्बूजी तीनों एक दिन जम कर पी गए। नशे में ढब्बूजी ने चंदूलाल से कहा, यार, आज तो इच्छा हो रही है कि ताजमहल ही खरीद डालूं।
चंदूलाल बोले, वाह भाई वाह! ऐसे कैसे खरीद लोगे? अरे जब मैं बेचूंगा तभी खरीदोगे न! फिलहाल उसे बेचने का मेरा कोई इरादा नहीं है।
तभी नसरुद्दीन बीच में ही उसकी बात काटते हुए बोला, अबे चंदूलाल के बच्चे, तेरा बेचने का इरादा भी होगा तो कैसे बेचेगा? अरे जब मैं खाली करूंगा तभी तो बेचेगा न! तू क्या सोचता है मैं उसे आसानी से खाली करने वाला हूं?
अगर लोगों का जीवन-व्यवहार देखो... किसी दिन जाग सकोगे और लोगों का जीवन-व्यवहार देखोगे तो बड़े चकित होओगेः लोग ऐसे ही मूर्च्छा में चल रहे हैं, ऐसे ही बेहोशी में चल रहे हैं; कुछ कह रहे हैं, कुछ कर रहे हैं। क्या कर रहे हैं, क्यों कर रहे हैं--साफ नहीं है। जो कहा है, वह किसलिए कहा है, स्पष्ट नहीं है। इसलिए क्षणभंगुर उनके वक्तव्य हैं। अभी कुछ कहते हैं, क्षण भर बाद कुछ और कहने लगते हैं। उनके वचनों का कोई भरोसा नहीं किया जा सकता है। उनके प्रेम का क्या भरोसा करोगे? उनके पास अभी आत्मा ही नहीं है,

सच पूछो तो। मन की बस तरंगें ही तरंगें हैं, ऊहापोह है। अभी कोई थिर आत्मा नहीं है, अभी कोई चेतना नहीं है।
चेतना तो केवल तभी उपलब्ध होती है जब तुम ध्यान से मन को शांत करते- करते उस घड़ी पर आ जाओ जहां निस्तरंग हो सको; फिर यही जीवन तुम्हें और ढंग का दिखाई पड़ेगा।
जो दिन गया सो जान दे, मूरख अबहूं चेत।
कहता पलटूदास है, करिले हरि से हेत।।
इस जगत में बहुत हेत बनाए तुमने, बहुत दोस्तियां बनाईं, बहुत मित्र बनाए, कौन काम आए? इस जगत के सब नाते-रिश्ते बस बातचीत के नाते-रिश्ते हैं, सब शब्दों के जाल हैं। यहां की प्रीति झूठी, यहां की मैत्री झूठी।
जो दिन गया सो जान दे...
लेकिन पलटू कहते हैंः अब पीछे दिनों के लिए रोते हुए मत बैठना--कि कितना गंवा दिया! कितनी जिंदगी बेकार चली गई!
जो दिन गया सो जान दे, मूरख अबहूं चेत।
अभी भी चेत जाओ। सुबह का भूला सांझ भी घर आ जाए तो भूला नहीं कहाता। और अभी सांझ नहीं आई है, अब भी चेत जाओ।
कहता पलटूदास है, करिले हरि से हेत।
और चेतने का एक ही अर्थ होता हैः सबसे दोस्ती करके देख ली, अब परमात्मा से दोस्ती करके देख लो। सबसे प्रीति लगाई और असफलता पाई। प्रेम में बड़ी आशाएं संजोईं और निराशाएं हाथ लगीं; चाही थी सफलता, असफलता मिली। अब एक प्रयोग और कर लो--प्रभु के प्रेम का प्रयोग और कर लो। क्योंकि जिन्होंने उस प्रयोग को किया है वे कभी नहीं हारे--हार कर भी नहीं हारे! हार कर भी जीते, जीत कर भी जीते! उस प्रेम में हार होती ही नहीं, क्योंकि उस प्रेम में हार भी जीत बन जाती है।
मुल्ला नसरुद्दीन का मित्र उससे कह रहा था, बाप रे बाप! तुम्हारी पत्नी जैसी झगड़ालू स्त्री के साथ रहने से तो पागलखाने में रहना अच्छा है। मुल्ला नसरुद्दीन बड़े दुखी स्वर में बोला, काश मेरे लिए यह संभव होता।
मित्र ने कहा, क्यों? दिक्कत क्या है?
नसरुद्दीन ने कहा, मेरी पहली दोनों पत्नियां पहले से वहां जो हैं।
इस जगत के तुम्हारे संबंध सब विक्षिप्तता में परिणत हो जाते हैं। अकेले भी नहीं रह सकते, क्योंकि अकेले रहने के लिए ध्यान चाहिए। और साथ भी नहीं रह सकते, क्योंकि साथ रहने के लिए भी ध्यान चाहिए। जो अपने ही साथ नहीं रह सकता वह दूसरे के साथ क्या खाक रह सकेगा! जो अपने अकेलेपन में आनंदित नहीं है, वह किसी के साथ रह कर कैसे आनंदित होगा? दो दुखी लोग साथ हो जाते हैं, दुख कई गुना हो जाता है। दो अंधेरे इकट्ठे हो जाएंगे तो अंधेरा और सघन हो जाता है। दो अमावसों के मिलने से पूर्णिमा नहीं होती। दो भूलों के मिलने से सत्य पैदा नहीं होता। तुम अकेले दुखी हो। जिससे तुमने मैत्री बनाई है, प्रीति बनाई है, वह अकेले में दुखी है। फिर तुम दोनों मिल गए, अब तुम अपने दुख एक-दूसरे पर फेंकने लगते हो; दुगना ही नहीं होता दुख, अनंत गुना हो जाता है, गुणनफल हो जाता है।
पलटू नर-तन जातु है, सुंदर सुभग सरीर।
सेवा कीजै साध की, भजि लीजै रघुवीर।।
और अगर परमात्मा से प्रेम करना हो तो कैसे करोगे? कहां परमात्मा को खोजोगे? कहीं दिखाई तो पड़ता नहीं। काबा खाली, कैलाश खाली, काशी खाली; मंदिर खाली, मस्जिद खाली, गिरजा-गुरुद्वारा खाली। कहां उसे खोजोगे? उसे तो किसी साधु में ही खोजा जा सकता है। किसी साधु में ही उसका प्रतिबिंब पकड़ा जा सकता है। क्योंकि साधु दर्पण है; उसमें तुम अपना चेहरा भी देख सकते हो और परमात्मा का चेहरा भी देख सकते हो। और यह प्यारा नर-तन, यह सुंदर देह, यह सुंदर जीवन यूं ही न चला जाए।
पलटू नर-तन जातु है...
यह जा रहा है। यह गया, यह गया। इसे जाने में देर न लगेगी। यह तो पानी की धार है, यह बहता जा रहा है। तुम किसी और भरोसे बैठे मत रहना। यह प्रतिपल क्षीण हो रहा है। जिस दिन से पैदा हुए हो उसी दिन से मर रहे हो।

पलटू नर-तन जातु है, सुंदर सुभग सरीर।
ऐसा प्यारा मंदिर पाकर, ऐसी प्यारी देह पाकर, तुम कंकड़-पत्थर ही बीनते रहोगे? फिर हीरे-जवाहरात कब खोजोगे? तुम ठीकरे ही इकट्ठे करते रहोगे? स्वयं को कब जानोगे? तुम संसार की दौड़ में ही लगे रहोगे? परमात्मा से पहचान नहीं करनी है?
सच्चे सदगुरुओं ने कभी शरीर की निंदा नहीं की है; नहीं कर सकते हैं वे। यह परमात्मा की बड़ी से बड़ी भेंट है तुम्हें। और यह देह--मनुष्य की देह--तो परम भेंट है! इस देह में सब कुछ है। इस देह में वे सारे द्वार हैं जिनसे तुम परमात्मा तक पहुंच जाओ। इस देह में वह ऊर्जा है जो तुम्हें पंख लगा दे, आकाश में उड़ा दे। इस देह में बड़े तिलिस्म छिपे हैं। इस देह का बड़ा जादू है। ऐसी देह किसी और पशु-पक्षी के पास नहीं है।
मनुष्य होकर और परमात्मा को न पाना ऐसा ही है, जैसा मैंने सुना है कि
एक बार एक हवाई जहाज को मजबूरी में घने जंगल में उतरना पड़ा, उसका पेट्रोल खतम हो गया था। हवाई जहाज का पायलट और उसके सहयोगी जंगल में खोजने निकले कि कोई रास्ता मिले, कहीं से पेट्रोल... ! कहां जंगल में पेट्रोल! बहुत खोजते-खोजते बामुश्किल उन्हें राह मिली शहर तक जाने की। वे शहर तो पहुंच गए, लेकिन लौट कर कभी उस हवाई जहाज को लेने आए नहीं। लाना ज्यादा झंझट का काम था। वह हवाई जहाज पड़ गया आदिवासियों के हाथ में। आदिवासी हवाई जहाज को क्या समझें! उन्होंने सब तरफ से जांच-पड़ताल की, उन्होंने कहा कि हो न हो, यह नये ढंग की बैलगाड़ी है। सो उसमें दो बैल जोड़ दिए और बैलगाड़ी की तरह हवाई जहाज को चला कर वे बड़े प्रसन्न थे। उनकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था। फिर किसी ने, जो शहर होकर आया था, उसने यह सब देखा। उसने हवाई जहाज तो नहीं देखा था, लेकिन उसने ट्रक और बस इत्यादि देखी थीं। उसने कहा कि अरे पागलो, यह बैलगाड़ी नहीं है, यह बस है। मैं जाऊंगा, शहर से पेट्रोल लाकर तुम्हें बताऊंगा कि यह बस है, इसमें बैल जोड़ने की जरूरत नहीं है। वह शहर गया, पेट्रोल लाया, बैल हटा दिए गए, हवाई जहाज का उपयोग एक बस की तरह होने लगा। और आदिवासी थे, उसमें ढोते भी क्या--कभी घास, कभी लकड़ी!
फिर कभी कोई यात्री शहर से जंगल में आया, कोई शिकारी, उसने यह देखा। उसने कहा, पागलो, यह क्या कर रहे हो! यह हवाई जहाज है। यह आकाश में उड़ सकता है। उसने उन्हें उसे आकाश में उड़ा कर दिखाया।
जैसी यह कहानी है, करीब-करीब ऐसी ही हमारी अवस्था है। जो देह परमात्मा
से मिलने का सेतु बन सकती है, उसे हम बैलगाड़ी की तरह उपयोग कर रहे हैं। कोई धन, कोई पद, कोई प्रतिष्ठा--कौड़ियां बटोरने में लगा रहे हैं। जिससे मालिकों का मालिक पाया जा सकता है, उससे हम गुलामों की सेवा कर रहे हैं। भिखारी बने हैं, जब कि सारा साम्राज्य हमारा हो सकता है।
पलटू नर-तन जातु है, सुंदर सुभग सरीर।
इतना प्यारा, इतना सुंदर, इतना सुभग, इतनी क्षमताओं वाला शरीर पाकर भी तुम ऐसे ही बीत जाओगे, व्यतीत हो जाओगे--खाली के खाली!
सेवा कीजै साध की, भजि लीजै रघुवीर।
पलटू कहते हैंः साधु की सेवा में लग जाओ। किसी सदगुरु को तलाश लो। क्योंकि परमात्मा को पाने का और कोई उपाय नहीं हो सकता। परमात्मा को भज भी सकोगे तुम तभी, जब साधु का रंग तुम पर चढ़ जाए।
सेवा कीजै साध की...
सेवा शब्द समझने जैसा है। इसके अर्थ आधुनिक जगत में बिल्कुल बदल गए हैं, इसलिए और भी समझने जैसा है। ईसाइयत ने सेवा का जो अर्थ लिया, उससे पूरब की परंपरा में सेवा का जो अर्थ था वह बिल्कुल विकृत हो गया।
ईसाइयत का सेवा से अर्थ हैः किसी कोढ़ी के पैर दबाओ, किसी बीमार को दवा पिलाओ। यह अर्थ बुरा नहीं है। किसी बीमार की सेवा करो, किसी दुखी, पीड़ित को सहायता पहुंचाओ। यह अर्थ सुंदर है। मगर यह पूर्वीय अर्थ नहीं है। पूर्वीय अर्थ तो बिल्कुल उलटा था। लंगड़े, लूले, अंधे, कोढ़ी की सेवा--ऐसा उसका अर्थ नहीं था। उसका अर्थ थाः जिसने परमात्मा को पा लिया हो उसकी सेवा करो। जिसको आंख मिल गई हो भीतर की, उसकी सेवा करो। जिसके पंख खुल गए हों भीतर के, उसकी सेवा करो। जिसके भीतर का दीया जल गया हो उसकी सेवा करो। क्योंकि सेवा में उसके साथ उठोगे, बैठोगे, उसके रस में डूबोगे। सेवा करते-करते उसके

दर्पण में तुम्हें अपना चेहरा दिखाई पड़ेगा। सेवा करते-करते किन्हीं घड़ियों में, किन्हीं मौन घड़ियों में उसके दर्पण में तुम्हें परमात्मा की परछाईं दिखाई पड़ेगी। सेवा करते-करते, शायद उसके पैर दाबते-दाबते एक दिन अचानक तुम्हें लगे कि तुम किसी मनुष्य के पैर नहीं दाब रहे, परमात्मा के पैर दाब रहे हो।
यह अभूतपूर्व घटना घटती रही है। सदगुरु की सेवा से बहुत लोगों ने पाया है। और ध्यान रखना, ईसाइयत के अर्थ को मैं गलत नहीं कहता; वह ठीक है, कामचलाऊ है, अच्छा है। सांसारिक है लेकिन वह अर्थ। पूर्वीय सेवा का अर्थ आध्यात्मिक है। पूर्वीय सेवा ध्यान का एक ढंग है; प्रार्थना, उपासना की एक प्रक्रिया है। सेवा तो बहाना है। गुरु को पैर दबवाने की जरूरत है, ऐसा नहीं; शिष्य को दबाने की जरूरत है, ऐसा। बीमार को तो जरूरत है कि उसके कोई पैर दबाए, वह बीमार की जरूरत है। गुरु के पैर दबाए जाएं, यह कोई जरूरत नहीं है उसकी। लेकिन यह शिष्य की जरूरत है कि उन परम-पावन चरणों का स्पर्श हो। तो हम गुरु के चरणों को चरण-कमल कहते रहे हैं। उन कमल जैसे चरणों का स्पर्श हो, उन चरणों की गंध समा जाए। गुरु को जरूरत नहीं है इस बात की, लेकिन शिष्य को जरूरत है। इस भेद को समझ लेना।
शिष्य सेवा कर रहा है--अपने आनंद, अपने ध्यान, अपने प्रेम के आविर्भाव
के लिए। गुरु तो उसके लिए मंदिर है। सेवा प्रार्थना है। और गुरु उसके लिए परमात्मा का प्रत्यक्ष रूप है, साकार रूप है--अवतरण है परमात्मा का। परमात्मा से सीधी पहचान मुश्किल, क्योंकि वह अदृश्य है। गुरु परमात्मा का दृश्य-रूप है। जैसे परमात्मा तुम्हारे जगत में, तुम समझ सको इस रूप में प्रकट हुआ है। गुरु तुम्हारी भाषा में परमात्मा का अनुवाद है, रूपांतरण है, भाषांतर है। और एक बार गुरु समझ में आ जाए तो परमात्मा को समझने में कठिनाई न रह जाएगी।
और गुरु के प्रवचन मात्र से तुम न समझ सकोगे। समर्पण चाहिए। गुरु बोले, तुम सुनो, इसका उपयोग है। मगर गुरु की सन्निधि में बैठो, इसका महत उपयोग है। शायद बोलना और सुनना भी उसकी सन्निधि में होने के लिए एक निमित्त-मात्र है। इस बहाने उसके पास बैठते हो। इस बहाने उसकी श्वास तुम्हारी श्वास में सम्मिलित होती है। इस बहाने उसकी गंध से तुम आंदोलित होते हो। इस बहाने उसकी वीणा के कुछ स्वर तुम्हारी हृदय-तंत्री को छेड़ते हैं। यह सिर्फ एक बहाना है।
सेवा कीजै साध की, भजि लीजै रघुवीर।
बड़ी अदभुत बात कही कि साधु की सेवा कर ली कि रघुवीर का भजन हो गया।
दोहराते रहो राम-राम, राम-राम, कुछ भी न होगा। जहां कहीं राम थोड़ा सा प्रकट हो रहा हो, जिसे तुम्हारी आंखें पहचान सकें और तुम्हारे कान समझ सकें और तुम्हारा हृदय जिसके स्पर्श से आंदोलित हो सके, बस वहां झुको।
सेवा कीजै साध की, भजि लीजै रघुवीर।
यही भजन है। सेवा भजन है। लेकिन लोगों ने भजन के सस्ते रास्ते निकाल लिए हैं। माला लेकर बैठ जाते हैं, घड़ी भर को माला फेर ली। जल्दी-जल्दी फेरते हैं, क्योंकि दुकान जाना है, दफ्तर जाना है। राम-राम जपते हैं, जल्दी-जल्दी जपते हैं। सोचते हैं इस तरह जल्दबाजी में राम-राम जप कर और माला फेर कर परमात्मा को धोखा दे लेंगे। लोग औरों को धोखा देते-देते इतने अभ्यस्त हो गए हैं कि परमात्मा तक को धोखा देने की सोचते हैं।
एक दिन जब रात मुल्ला नसरुद्दीन के मित्र चंदूलाल मुल्ला के घर पहुंचे तो उन्होंने देखा कि मच्छरदानी तो पलंग पर लगी है और मुल्ला अपने आराम से पलंग के नीचे जमीन पर लेटा हुआ है। वह तो अवाक रह गया। बोला, मुल्ला, यह क्या हो रहा है? तुम नीचे और मच्छरदानी ऊपर पलंग पर! आखिर माजरा क्या है?
मुल्ला नसरुद्दीन ने मुस्कुराते हुए जवाब दिया, चंदूलाल, शायद तुम नहीं समझे। देखो मैंने मच्छरों को धोखा देने का क्या जोरदार तरीका ढूंढा है! मच्छर मच्छरदानी देख कर समझ रहे हैं कि मैं ऊपर सो रहा हूं और मैं यहां मजे में नीचे लेटा हूं। कहो कैसी रही!
आदमियों को धोखा देते-देते तुम मच्छरों को धोखा देने लगोगे! परमात्मा
की तो क्या बिसात! तुम्हारे पूजा-पाठ, तुम्हारी उपासनाएं, सब धोखे हैं।

सच्ची पूजा तो शिष्य और गुरु के बीच घटती है। जिन्होंने भी कभी पाया है, शिष्य और गुरु के बीच वह अभूतपूर्व घटता है।
गुरु तो शून्य है, जब शिष्य भी शून्य हो जाता है, इन दो शून्यों के बीच पूर्ण का अनुभव होता है। गुरु तो शून्य होकर पूर्ण हुआ। गुरु के पास बैठ-बैठ कर तुम भी शून्य होने का पाठ सीख लोगे। सेवा शून्य होने का पाठ है। सेवा का अर्थ हैः झुकना होगा। सेवा का अर्थ हैः स्वेच्छा से दास बन जाना।
सेवा का अर्थ हैः स्वेच्छा से समर्पण कर देना। कह देना कि मैं नहीं हूं, तू ही है! और समग्र भाव से अगर कह पाओ तो उसी क्षण तुम इस लोक से दूसरे लोक में प्रवेश कर जाते हो। उसी क्षण तुम्हें परमात्मा का पहला प्रमाण मिलता है।
नहीं तर्क प्रमाण दे सकते हैं, मगर सेवा प्रमाण दे सकती है।
पलटू ऐसी प्रीति करूं, ज्यों मजीठ को रंग।
टूक-टूक कपड़ा उड़ै, रंग न छोड़ै संग।।
पलटू कहते हैंः गुरु मिल जाए, कोई बुद्धपुरुष मिल जाए, तो ऐसी प्रीति करना जैसे मजीठ का रंग होता है, कि जिस कपड़े को रंग दो, कपड़ा चाहे फट जाए मगर रंग नहीं छूटता।
पलटू ऐसी प्रीति करूं, ज्यों मजीठ को रंग।
टूक-टूक कपड़ा उड़ै, रंग न छोड़ै संग।।
चाहे शिष्य जीए चाहे मरे, चाहे खंड-खंड हो जाए, तो भी प्रीति नहीं छोड़ता। गुरु गर्दन काट दे, तो भी प्रीति नहीं छोड़ता। गुरु हजार परीक्षाएं ले, तो भी प्रीति नहीं छोड़ता। गुरु कठोरता से व्यवहार करे, तो भी प्रीति नहीं छोड़ता।
टूक-टूक कपड़ा उड़ै, रंग न छोड़ै संग।
और गुरु को बहुत बार चोट करनी पड़ती है। जैसे मूर्तिकार को छैनी-हथौड़ा लेकर अनगढ़ पत्थर पर चोट करनी पड़ती है, चिनगारियां छूटती हैं, पत्थर के खंड-खंड हो जाते हैं, लेकिन तभी उस पत्थर में कोई मूर्ति प्रकट होती है।
तुम अनगढ़ पत्थर हो। जब गुरु के चरणों में आते हो तो अनगढ़ पत्थर होते हो। गुरु अगर करुणावान है तो चोट करेगा। गुरु अगर गुरु है तो उठाएगा छैनी और हथौड़ा और तोड़ेगा तुम्हें बहुत जगह से। इतनी चोटें तुम तभी सह पाओगे जब तुम पलटू की बात समझ लो।
पलटू ऐसी प्रीति करूं, ज्यों मजीठ को रंग।
टूक-टूक कपड़ा उड़ै, रंग न छोड़ै संग।।
कुछ भी गुरु करे तो भी प्रीति न छूटे। तो जल्दी ही, शीघ्र ही क्रांति
घट जाती है। तुम उतनी ही देर लगवा दोगे, जितना तुम अपने को बचाओगे, उतनी ही देर लग जाएगी। देर तुम्हारे कारण होती है, देर गुरु के कारण नहीं होती। गुरु तो चाहता है अभी हो जाए, तत्क्षण। मगर तुम बचते फिरते हो, तुम अपने को बचाते फिरते हो, तुम अपने को छिपाते फिरते हो। तुम गुरु के सामने अपने को पूरी नग्नता में छोड़ते भी नहीं, खोलते भी नहीं। तुम अपनी बीमारियां अपने गुरु के सामने भी नहीं उघाड़ते, उससे भी बचा कर चलते हो। समस्या कुछ होती है, प्रश्न कुछ उठाते हो। उलझन कुछ होती है, बातें तत्वज्ञान की करते हो। वासना सताती है, प्रश्न ब्रह्मचर्य के संबंध में पूछते हो। काम पीड़ित करता है; राम है या नहीं, इसके प्रमाण मांगते हो। ऐसे देर हो जाती है, व्यर्थ देर हो जाती है।
आठ पहर जो छकि रहै, मस्त अपाने हाल।
पलटू उनसे सब डरैं, वो साहिब के लाल।।
जब सदगुरु के पास आओगे तो भय भी लगेगा। क्यों?
आठ पहर जो छकि रहै...
वह चौबीस घंटे मस्त है अपनी मस्ती में। उसने पी ली है कोई शराब, जिसका नशा उतरता ही नहीं। उसके पास आओगे तो डर भी लगेगा। उसके पास आना वैसा ही है जैसे परवाना आता है शमा के पास। घबड़ाहट तो लगेगी, क्योंकि परवाना अपनी मौत के पास आ रहा है। जैसे-जैसे शमा के करीब आएगा वैसे-वैसे खतरा है, जलेगा। मगर परवाने हैं कि आते चले जाते हैं।
और ऐसा मत समझना कि परवाना ही जलता है। परवाने को जलाने में शमा को भी
तो जलना ही पड़ता है। शमा जलती है तो ही तो परवाने को जला पाती है। शमा तो

परवाने से बहुत पहले से जलती है। जलती हुई शमा ही तो परवाने को निमंत्रण भेजती है। बुझी हुई शमा के पास कभी परवानों को आते देखा?
लेकिन आदमी बेईमान है, वह बुझी हुई शमाओं के पास जाता है। बुद्ध की मूर्ति बना ली, इसकी पूजा करता है। बुद्ध जिंदा हों, घबड़ाता है। क्योंकि जिंदा बुद्ध का अर्थ हैः तुम्हें मिटना होगा। तुम बच न सकोगे। यह बाढ़ ऐसी है, यह बुद्धत्व की बाढ़ ऐसी है कि बहा ले जाएगी, तुम्हारा कहीं पता भी नहीं चलेगा!
आठ पहर जो छकि रहै, मस्त अपाने हाल।
जो अपने हाल में मस्त है, जिसको सुध-बुध भी नहीं है संसार की, जिसको सिवाय परमात्मा के और कुछ दिखाई नहीं पड़ता, जो परमात्मा की सुराही से ढालता है और पीता चला जाता है!
पलटू उनसे सब डरैं, वो साहिब के लाल।
उनसे लोग डरते हैं। उनसे डरने के कारण उनकी निंदा करते हैं, आलोचना करते हैं, गालियां देते हैं। ये सच पूछो तो अपने को बचाने के उपाय हैं, सुरक्षा के उपाय हैं। गाली देकर, आलोचना करके, निंदा करके वे अपने को समझा रहे हैं कि वहां कुछ है ही नहीं; जाने योग्य कोई है ही नहीं बात; व्यर्थ क्यों परेशान होना! जाने का मन हुआ है, कहीं किसी मन की गहराई में आवाज सुनाई पड़ी है, पुकार आ गई है। पाती पहुंच गई है, लिफाफा नहीं खोलते हैं। डर लगता है, हस्ताक्षर पहचाने मालूम पड़ते हैं, कि कहीं खोली पाती और पढ़ी और फिर न रोक सके अपने को! तो ऊपर से ही समझा लेते हैं कि क्या रखा है इसमें, कुछ भी नहीं है! हजार तरह के तर्क, शास्त्रों के प्रमाण, परंपराओं की जड़ बातें बीच में खड़ी कर लेते हैं, ताकि सदगुरु दिखाई न पड़े।
बुद्ध जिंदा थे तो लोगों ने कितनी तरकीबें खड़ी कर ली थीं! जैन बुद्ध
के पास नहीं गए। क्यों? क्योंकि बुद्ध नग्न नहीं थे और जैन तीर्थंकर को नग्न होना चाहिए। जैन तीर्थंकर तो नग्न होता है और बुद्ध वस्त्र पहनते हैं, तो अभी तीर्थंकर की अवस्था नहीं है। इसलिए क्या जाना!
जैन शास्त्रों में लिखा है कि जिसको समाधि उपलब्ध हो गई, जो कैवल्य को उपलब्ध हो गया, वह त्रिकालज्ञ हो जाता है, वह तीनों काल की बातें जानता है। बुद्ध त्रिकालज्ञ हैं? तीनों काल की बातें जानते हैं? नहीं जानते, क्योंकि खबरें हैं कि बुद्ध ने किसी गांव के बाहर आकर लोगों से पूछा कि गांव का रास्ता कहां है। जो त्रिकालज्ञ हो, वह गांव का रास्ता पूछे? जिसको तीनों काल प्रत्यक्ष हों, उसको गांव का रास्ता न मिले खुद, पूछना पड़े? त्रिकालज्ञ नहीं हैं। क्या जाना! जिसको अभी तीनों कालों का ज्ञान नहीं है, वह अभी सदगुरु नहीं है।
हिंदू बुद्ध के पास नहीं गए, क्योंकि बुद्ध ने युवकों को संन्यास दे दिया। और शास्त्र कहते हैंः संन्यास अंतिम अवस्था है, चौथा आश्रम, पचहत्तर वर्ष के बाद। तो हमारे ज्ञानी क्या मूढ़ थे जिन्होंने यह लिखा? मूढ़ तो नहीं थे, होशियार रहे होंगे। क्योंकि पचहत्तर साल, पहले तो जिंदा ही रहना पचहत्तर साल मुश्किल है। और सारी वैज्ञानिक खोजों से पता चलता है कि जब मनु ने यह लिखा कि पचहत्तर साल के बाद आदमी को संन्यास लेना चाहिए, उन दिनों आदमी की ज्यादा से ज्यादा उम्र चालीस वर्ष थी। क्योंकि जितनी हड्डियां मिली हैं आज तक, जितने अस्थिपंजर मिले हैं आदमियों के, वे चालीस वर्ष से ऊपर उम्र वाले के नहीं मिले। यह तो चिकित्सा-शास्त्र का चमत्कार है कि लोग खूब जी रहे हैं।
लेकिन उन पुराने दिनों में, पांच हजार साल पहले, चालीस साल भी शायद सौ साल जैसे लगते रहे होंगे। क्योंकि समय तुलनात्मक है, सापेक्ष है। अगर तुम किसी गांव में जाकर रहो देहात में, जहां न सिनेमा है, न होटल है, न रेडियो, न टेलीविजन, कुछ भी नहीं--वहां चालीस साल ऐसा लगेगा जैसे कि चार सौ साल जिंदा रहे। समय काटे नहीं कटता। अभी वर्षा के दिन हैं, जरा किसी देहात में जाकर देखो, लोग क्या कर रहे हैं? आल्हा-ऊदल पढ़ रहे हैं, जिसमें पढ़ने योग्य कुछ भी नहीं! निपट गधा-पच्चीसी है। मगर आल्हा-ऊदल पढ़ रहे हैं। करें क्या? आल्हा-ऊदल बड़े लड़ैया, जिनसे हार गई तलवार! चौपड़ बिछा कर खेल रहे हैं दिन-रात, समय नहीं कटता।

और आज से पांच हजार साल पहले लोगों को न तो गिनती आती थी, न उम्र को गिनने का कोई हिसाब था। आज भी नहीं है। आज भी किसी दूर देहात में जाकर पूछो कि तुम्हारी उम्र कितनी? तो आदमी को पता नहीं। किसी आदिवासी से बस्तर में पूछो कि तुम्हारी उम्र कितनी? उसे उम्र का कोई बोध ही नहीं है। उसने कभी हिसाब ही नहीं रखा। उसको यह भी पता नहीं कि कब जन्म हुआ था। तो पांच हजार साल पहले न तो लोगों को जन्म का ठिकाना था, न उम्र का ठिकाना था। बड़ी से बड़ी गिनती अंगुलियों पर पूरी हो जाती थी--दस। दस यानी बस। फिर अगर ग्यारह से करना है तो फिर से गिनो। या लोग कंकड़ रख कर गिनती करते थे। गिनती नहीं थी। आज भी नहीं है दूर देहातों में। किसी को पता नहीं कि कौन कितनी उम्र का है। चालीस साल वैज्ञानिक खोज पाए हैं। मनु के समय में चालीस साल से ज्यादा लोग नहीं जीते थे। चालीस साल जब लोग जीते हों और पचहत्तर साल में संन्यास लेना हो, तो हो गया हल! संन्यास लेने के पहले ही मर जाएंगे। इसलिए जब तक जैनों और बौद्धों का आविर्भाव नहीं हुआ, संन्यासियों की कोई बड़ी जमात नहीं थी। और हिंदू जिनको ऋषि-मुनि कहते थे, वे सब गृहस्थ लोग थे। उनके बाल-बच्चे थे, पत्नी थी, घर-द्वार था, धन-संपत्ति थी। संन्यास का आविर्भाव ही जैनों और बौद्धों के साथ हुआ। और जैनों का संन्यास तो ऐसा था, इतना जीवन-विरोधी था कि बहुत कम लोग उसमें उत्सुक हुए। लेकिन बुद्ध ने संन्यास को बड़ी महिमा दी, बड़ी सहजता और स्वाभाविकता दी। इसलिए लाखों लोग सम्मिलित होने को आतुर हुए। हिंदुओं को बहुत चोट पहुंची। उनकी परंपरा के विपरीत है यह बात--युवक और संन्यासी हों! यह आदमी कैसा भगवान?
और मनु ने तो कहा है कि ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय, शूद्र, ये चार वर्ण हैं। और बुद्ध कहते हैंः ये कोई वर्ण नहीं हैं। बुद्ध तो कहते हैंः ब्रह्म को जो जान ले वह ब्राह्मण। यह कोई बात हुई! ब्रह्म को जानने से कोई ब्राह्मण! तब तो फिर शूद्र भी ब्राह्मण हो जाएगा। जन्म से ब्राह्मण होता है। और बुद्ध कहते हैंः जन्म से नहीं, अनुभव से। शास्त्रों के विपरीत बोल रहे हैं।
और बुद्ध कहते हैंः न उपनिषद से, न वेद से तुम्हें मिलेगा परमात्मा-- ध्यान से मिलेगा! अप्प दीपो भव! अपने दीये खुद बनो!
यह तो पंडित-पुरोहितों को बहुत अखरी बात। हर आदमी अपना दीया खुद बन जाएगा तो हमारी कौन पूछ रह जाएगी? हमारे पास कौन आएगा? हर आदमी अगर ध्यान में लग जाए और वेदों की जरूरत न रह जाए तो वेद के जानने वालों का क्या होगा? वेद-पाठियों का क्या होगा?
बुद्ध का भारी विरोध हुआ। और सबसे ज्यादा भयभीत थे ब्राह्मण, क्योंकि बुद्ध उनसे छीने ले रहे थे उनकी सारी व्यवसाय की व्यवस्था। लेकिन जो पहुंच गए, जो हिम्मतवर थे, वे रूपांतरित हुए। सारिपुत्र, मोग्गलान, मंजुश्री, ये सब ब्राह्मण थे। हिम्मत जिन्होंने जुटा ली, जो पहुंच गए इस दीये के पास परवाने की तरह, वे जल गए, उन्होंने अपने को समाप्त कर दिया। लेकिन अनेक थे जो गए ही नहीं। बुद्ध गांव में आते थे तो लोग वह गांव छोड़ कर दूसरे गांव चले जाते थे कि भूल-चूक से भी उनके शब्द कान में न पड़ जाएं। ब्राह्मण भागते थे।
क्षत्रिय भागते थे। क्योंकि क्षत्रियों को बड़ा खतरा पैदा हो गया था।
बुद्ध चूंकि स्वयं क्षत्रिय थे, राजपुत्र थे, इसलिए बहुत से क्षत्रिय संन्यासी हो गए। क्षत्रियों को तो बड़ी घबड़ाहट पैदा हो गई कि हमारा तो धंधा ही तलवार है और यह आदमी अहिंसा की बातें कर रहा है! यह कहता हैः वैर से वैर नहीं जीता जाता। वैर से और वैर पैदा होता है। प्रेम से जीता जाता है वैर। अगर प्रेम की जीत हो, तलवार का क्या होगा? हमारी तलवारें जंग खा जाएंगी। क्षत्रिय तो मारे जाएंगे।
ब्राह्मण विरोध में हैं, क्योंकि वेद पर संदेह उठा दिया बुद्ध ने। क्षत्रिय विरोध में हैं, क्योंकि तलवार व्यर्थ है, अमानवीय है। और वैश्य भी विरोध में थे, क्योंकि बुद्ध कहते हैंः धन, पद, प्रतिष्ठा की दौड़ नासमझी है, अज्ञान है। जो बहुत बड़ा वर्ग बुद्ध से प्रभावित हुआ, वह शूद्रों का था, क्योंकि उनका कोई न्यस्त स्वार्थ नहीं था। इसलिए डाक्टर अंबेदकर का ढाई हजार साल बाद यह प्रयास कि शूद्र फिर बौद्ध हो जाएं, सार्थक है, इसमें अर्थ है। बुद्ध से सर्वाधिक प्रभावित होने वाले शूद्र थे। उनको कुछ खोना नहीं

था--न वेद था उनको खोने को, न तलवार थी उनके पास, न धन था उनके पास। उनके पास तो कुछ भी नहीं था।
अक्सर ऐसा हुआ है कि बुद्धपुरुषों के पास वे लोग आ सके हैं जिनके पास खोने को कुछ भी नहीं है। जिनके पास खोने को कुछ भी है वे तो डरते हैं।
आठ पहर जो छकि रहै, मस्त अपाने हाल।
पलटू उनसे सब डरैं, वो साहिब के लाल।।
समझ लेना यह कसौटी कि जिनसे सब डरते हों, वे साहिब के लाल हैं, उनको परमात्मा मिला है।
पलटू सीताराम से, हम तो किए हैं प्रीति।
देखि-देखि सब जरत हैं, कौन जगत की रीति।।
पलटू कहते हैंः यह कैसा जगत है! कैसी इसकी रीति है! हम तो परमात्मा से प्रेम किए हैं और आनंदित हो रहे हैं, और लोग जल रहे हैं, लोग ईर्ष्या से भर रहे हैं। हमने किसी से कुछ छीना नहीं। हां, धन कोई इकट्ठा कर ले, ईर्ष्या पैदा हो, समझ में आता है। क्योंकि अगर एक आदमी धन इकट्ठा कर ले तो दूसरा नहीं कर सकेगा; धन की सीमा है। धन में प्रतिस्पर्धा होगी। लेकिन परमात्मा तो असीम है; कितने ही लोग उसे पा लें तो भी कुछ कम नहीं हो जाता। तुम्हें पाने के लिए शेष रहता है।
कैसी जग की यह रीति! पलटू कहते हैंः कैसे पागल लोग हैं इस दुनिया में! हमने तो परमात्मा से प्रेम किया है, तुम भी करो। कोई हमारा प्रेम तुम्हारे प्रेम में बाधा नहीं बनेगा। कुछ ऐसा नहीं कि हमने परमात्मा को पा लिया तो अब तुम कैसे पाओगे! सच तो यह है कि हमने पा लिया तो तुम भी पा सकते हो, यह सिद्ध होता है। हमने पा लिया तो सब पा सकते हैं, यह सिद्ध होता है।
पलटू सीताराम से, हम तो किए हैं प्रीति।
धन से नहीं, पद से नहीं--राम से प्रेम किया है। और अदभुत लोग हैं! देखि-देखि सब जरत हैं, कौन जगत की रीति।
बड़ी जलन पैदा होती है। इसमें भी जलन पैदा होती है। कारण है। कारण यह नहीं है कि परमात्मा को एक व्यक्ति ने पा लिया तो दूसरों को पाने को कम बचा। कारण यह है कि हमारे रहते और तुमने पा लिया! कि हमारे रहते और तुम परमात्म-ज्ञान को उपलब्ध हो गए! कि हमारे रहते और तुम ज्ञानी हो गए! यह बरदाश्त के बाहर है। हम स्वीकार नहीं कर सकते।
तुम्हारे अहंकार को चोट लगती है।
किसी ने परसों ही पूछा था कि भारत के बुद्धिवादी आपके विरोध में क्यों हैं?
पहली तो बात, भारत में बुद्धिवादी खोजना बहुत मुश्किल। बुद्धिजीवी हैं, बुद्धिवादी नहीं। बुद्धिजीवी और बुद्धिवादी में बड़ा फर्क है। बुद्धिजीवी तो वैसा ही जैसा श्रमजीवी। कोई अपना श्रम बेच कर जीता है, उसको श्रमजीवी कहते हैं। कोई अपनी बुद्धि बेच कर जीता है, उसको बुद्धिजीवी कहते हैं। बुद्धिवादी बुद्धि बेच कर नहीं जीता; अपनी बुद्धि को निखारता है, उज्ज्वल करता है, उस पर धार रखता है। बुद्धिवादी को तो आज नहीं कल ध्यानी होना ही पड़ेगा। अगर उसमें थोड़ी भी बुद्धि है तो वह ध्यानी होने से नहीं बच सकता। बुद्धि उसे ध्यान तक ले ही आएगी। निर्बुद्धि शायद न आ सके, बुद्धिमान को तो आना ही पड़ेगा। देर-अबेर उसे ध्यान के मंदिर के द्वार पर दस्तक देनी ही होगी।
भारत में बुद्धिवादी कहां हैं? बुद्धिजीवी हैं। और भारत में ही क्यों, सारी दुनिया में हालत यह है। बुद्धिवादी कहां हैं? बुद्धिवादी हों तो दुनिया में बुद्धों की कतार लग जाए। बुद्धिजीवी हैं, बुद्धि बेच कर जीते हैं। और जो अपनी बुद्धि बेच कर जी रहे हैं, उन बेचारों के पास बचती कहां बुद्धि! उसी को तो बेच कर जीते हैं। उनको मेरी बात समझ में नहीं आ सकती। और फिर बड़ी ईर्ष्या पैदा होती है।
मैं विश्वविद्यालय में था अध्यापक। सैकड़ों विश्वविद्यालय के अध्यापकों से मेरा संबंध था। सिर्फ उनमें से एक अध्यापक इन पांच वर्षों में मुझसे मिलने आया है। और उसने भी कहा कि मैं आता था तो सब मेरा विरोध कर रहे थे। मैं बामुश्किल आ पाया हूं।

मैंने कहा, तुम हिम्मतवर आदमी हो। क्योंकि प्रोफेसर्स, विश्वविद्यालय के अध्यापक समझते हैं कि उन्होंने तो जान लिया, जानने को और क्या है! और मैंने इस व्यक्ति को कहा कि तुमको तो मैं और हिम्मतवर कहता हूं। क्योंकि वे संस्कृत के प्रोफेसर हैं, वेद और उपनिषद के ज्ञाता हैं। तुम हिम्मत करके आ सके। तुम्हारे भीतर जरूर बड़ी हिम्मत है।
उन्होंने कहा कि आकर जो मैंने देखा है यहां, अब फिर आना चाहता हूं एक महीने के लिए। मुझे ध्यान में डुबाएं।
उनकी आंखों में आंसू थे। मगर ऐसे लोग तो खोजने कठिन हैं। अहंकार से भरे हुए लोग बहुत हैं, आंसुओं से भरे हुए लोग कहां हैं!
जलन पैदा होती होगी। पलटू तो सीधे-सादे बनिया थे। लोग कहते होंगेः यह पलटू, यह बनिया, और ज्ञानी हो गया! कभी सुना है कि बनिए और बुद्ध हो जाएं! और पलटू तो बार-बार खुद ही कहते हैं कि पलटू बनिया। पलटू उसको छिपाते नहीं हैं। पलटू तो शान से कहते हैं। पलटू ने तो कहा है कि पहले हम धंधा करते थे छोटा-मोटा, अब बड़ा धंधा करते हैं। पहले हम दुकान चलाते थे ठीकरों की, अब हमने परमात्मा की दुकान खोली। पहले भी हम तौल-तौल कर देते थे, अब बिन तौले दे रहे हैं। जलन पैदा होती है, ईर्ष्या पैदा होती है।
कल ही लंदन से छपने वाली एक पत्रिका ने मेरे संबंध में एक लेख लिखा है। जिसने भी लिखा हो, सोच-विचारशील संपादक मालूम होता है, क्योंकि पहली दफा किसी ने वैसी बात लिखी है। उसने लिखा है कि ऐसा मालूम होता है--सारी दुनिया में बढ़ते मेरे संन्यासियों की जमात--भारत के राजनेताओं को ईर्ष्या का कारण बन रही है। तो दिल्ली मुझसे नाराज है। इसलिए मेरे काम में सब तरह के अड़ंगे डाले जा रहे हैं।
आदमी सूझ-बूझ का मालूम पड़ता है, बात उसने जड़ की पकड़ ली। वही ईर्ष्या है, वही अड़चन है, वही कष्ट है। यहां राजनेता आ भी जाते हैं तो भी विशेष व्यवहार चाहते हैं।
चार दिन पहले मध्यप्रदेश के उप-मुख्यमंत्री पूना में थे। उनके सेक्रेटरी ने फोन किया कि मैं मध्यप्रदेश के उप-मुख्यमंत्री का सेक्रेटरी हूं; उनको अभी मिलने का समय चाहिए।
लक्ष्मी ने कहा कि अभी तो मिलना असंभव है, मिलना तो सात बजे ही हो सकता है।
उसने फिर दोहराया कि शायद आप समझी नहीं, मैं मध्यप्रदेश के उप-मुख्यमंत्री का सचिव हूं!
लक्ष्मी ने कहा, मेरी समझ में बिल्कुल आपकी बात आ गई। आप मजे से सचिव रहिए, हमें कोई एतराज नहीं है। मगर सात बजे के पहले मिलना नहीं हो सकता। तो फिर मंत्री महोदय खुद फोन पर आए। उन्होंने कहा कि मैं खुद मंत्री बोल रहा हूं, अभी मिलना है! और मैं बहुत महाराजों और बहुत मुनियों और महात्माओं को मिला हूं, जब चाहता हूं तब समय मुझे मिलता है!
लक्ष्मी ने कहा कि और जगह की बात और होगी। यहां तो जब हम समय देते हैं
तब मिलना हो सकता है।
चोट पहुंचती है। इसी वक्त समय चाहिए! विशेष व्यवहार चाहिए! मंत्रियों
की खबरें आती हैं कि हम आश्रम आना चाहते हैं, लेकिन हमें पहले आश्रम की तरफ से निमंत्रण मिलना चाहिए। वे खुद ही खबर कर रहे हैं कि हम आश्रम आना चाहते हैं, लेकिन पहले हमें आश्रम की तरफ से निमंत्रण मिलना चाहिए! फिर हम निमंत्रण स्वीकार करेंगे और आएंगे।
तुम्हें आना है, तुम आओ। सबका स्वागत है, तुम्हारा स्वागत है।
ईर्ष्या, अहंकार, मद, पद-मद बहुत बुरी तरह से पकड़े हुए हैं लोगों को।
उस कारण यह स्वीकार करना कि कोई ज्ञान को उपलब्ध हो गया है, अत्यधिक कठिन होता है।
पलटू बाजी लाइहौं, दोऊ बिधि से राम।
और पलटू कहते हैंः दुनिया जलती हो, जलती रहे! जलने वाले जला करें! मैं
तो दोनों विधियों से राम को जीत लिया हूं।
जो मैं हारौं राम को...

अगर मैं हारूं तो राम का हूं। मेरी हार मेरी हार नहीं। अगर राम से हारूं तो भी राम का हूं; राम जीते, यही तो मेरी जीत है। राम मुझ पर जीत जाएं, इससे बड़ा और सौभाग्य क्या!
जो मैं हारौं राम को, जो जीतों तो राम।
और अगर मेरी जीत हो जाए तब तो जीत है ही। अगर मेरी हार हो जाए तो भी मेरी जीत है, क्योंकि हर हालत में राम की जीत है। और मैं अलग नहीं हूं, मैं पृथक नहीं हूं।
पलटू लिखा नसीब का, संत देत हैं फेर।
यह वचन कीमती है। पलटू कहते हैं कि यह मैंने होते देखा है, अपने साथ होते देखा है। मेरे नसीब को बदल दिया! मेरे गुरु ने मेरे भाग्य की रेखाएं बदल दीं!
पलटू लिखा नसीब का, संत देत हैं फेर।
सांच नहीं दिल आपना, तासे लागै देर।।
अगर देर लगती है तो अपना दिल सच्चा नहीं है, इससे देर लग जाती है।
अन्यथा तुम्हारे भाग्य को भी बदला जा सकता है। भाग्य कुछ भी नहीं है।
भाग्य होता ही मूर्च्छित आदमी का है। जाग्रत आदमी का कोई भाग्य नहीं होता; वह भाग्य से मुक्त हो जाता है। और संत चूंकि जगा देते हैं, इसलिए भाग्य को बदल देते हैं।
लगा जिकर का बान है, फिकर भई छैकार।
पलटू कहते हैंः जब से गुरु ने जिक्र का बाण, परमात्मा की याददाश्त, स्मरण का बाण छेद दिया है...
लगा जिकर का बान है, फिकर भई छैकार।
तब से सब फिक्र-फांटा मिट गया, तब से सब चिंता मिट गई।
पुरजे-पुरजे उड़ि गया, पलटू जीति हमार।
और पलटू कहते हैंः बड़ी अदभुत घटना घटी! पलटू जिसको हम समझते थे, वह तो पुर्जे-पुर्जे उड़ गया; और फिर भी हम जीत गए। ऐसा चमत्कार हुआ कि कुछ न बचा पलटू का और पलटू जीत गया। सब मिट गया पलटू का और पलटू जीत गया। मिट कर जीता। सब खो गया और सब पा लिया।
जीसस ने कहा हैः धन्य हैं वे जो सब खोने में समर्थ हैं, क्योंकि सब पा लेने की उनकी पात्रता है।
बखतर पहने प्रेम का, घोड़ा है गुरुज्ञान।
और पलटू कहते हैंः अब बखतर पहने प्रेम का, अब तो प्रेम हमारी सुरक्षा है, प्रीति हमारी सुरक्षा है। घोड़ा है गुरुज्ञान! और गुरु ने जो ज्ञान दिया है, जो बोध दिया है, जो जागरण दिया है, जो झकझोर दिया है हमें और हमारी नींद तोड़ दी है--वही हमारा घोड़ा है।
पलटू सुरति कमान लै...
और परमात्मा की स्मृति, परमात्मा का स्मरण, जिक्र--वह हमारा कमान है,
वह हमारा धनुष है।
पलटू सुरति कमान लै, जीति चले मैदान।
और हम तो मैदान जीत चले। हम तो जीत गए। हम तो मिट कर जीत गए। हम तो हार
कर जीत गए। तुम भी कुछ ऐसा करो।
पलटू नर-तन जातु है, सुंदर सुभग सरीर।
सेवा कीजै साध की, भजि लीजै रघुवीर।।
जो दिन गया सो जान दे, मूरख अबहूं चेत।
कहता पलटूदास है, करिले हरि से हेत।।
पलटू कहते हैंः हम तो चले अब मैदान जीत कर, तुमसे कहे जाते हैं--जीत लो! समय बहुत गंवाया, अब और न गंवाओ। मूरख अबहूं चेत!
आज इतना ही।

काहे होत अधीर
सोलहवां प्रवचन

एस धम्मो सनंतनो

पहला प्रश्नः ओशो! मैं निपट अज्ञानी! जब भी आंख बंद की, महा-अंधकार ही दिखता है। क्या कभी प्रकाश की किरण भी पा सकूंगा? कृपया समझाएं।

हसिमत नवलानी! अंधे व्यक्ति को अंधकार भी दिखाई नहीं पड़ता--नहीं दिखाई पड़ सकता है। अंधकार को देखने के लिए भी आंख चाहिए। आंख तो चाहिए ही चाहिए, कुछ भी देखना हो, भले वह अंधकार ही क्यों न हो।
साधारणतः लोग सोचते हैं कि अंधा आदमी अंधकार में जीता होगा। उनकी धारणा मूलतः गलत है। अंधे आदमी को अंधकार का क्या पता! अंधकार का तुम्हें पता है, क्योंकि तुम्हारे पास आंख है। जब तुम आंख बंद करते हो तो अंधकार दिखाई पड़ता है। लेकिन अंधे को नहीं दिखाई पड़ता।
अंधकार दिखाई पड़ता हो तो एक बात सुनिश्चित हो गई कि तुम्हारे पास आंख है। और यह बड़ा सौभाग्य है! अंधेरा दिखाई पड़ रहा है तो प्रकाश भी दिखाई पड़ेगा, क्योंकि प्रकाश अंधकार का ही दूसरा पहलू है। जैसे जीवन मृत्यु का दूसरा पहलू है, ऐसे ही अंधकार और प्रकाश एक ही सिक्के से जुड़े हैं--इस तरफ अंधकार, उस तरफ प्रकाश। प्रकाश और अंधकार में कोई मौलिक भेद नहीं है; भेद है सापेक्ष। कम प्रकाश की अवस्था को हम अंधकार कहते हैं; कम अंधकार की अवस्था को हम प्रकाश कहते हैं। मात्रा का भेद है, गुण का भेद नहीं है। इसीलिए तो जिनकी आंखें तेज हैं... जैसे उल्लुओं को रात में भी दिखाई पड़ता है। उल्लू की आंख रात के अंधकार में भी प्रकाश ही पाती है। और आंखें कमजोर हों तो दिन की रोशनी में भी रोशनी कहां! तो दिन की रोशनी में भी अंधकार ही है।
सबसे पहला तथ्य समझ लेने जैसा है, वह यह है कि बजाय अंधकार की चिंता लेने के इस बात का सौभाग्य मानो कि तुम्हारे पास आंख है, कम से कम दिखाई तो पड़ता है!
लेकिन मनुष्य की यही बुनियादी भूल है--वह कांटे गिनता है, फूल नहीं।
वह सौभाग्य नहीं तौलता, दुर्भाग्यों का अंबार लगाता है। जीवन में इतना परमात्मा ने दिया है, उसकी हम कभी कोई गणना नहीं करते। अभाव हमें घेरे रहता है। हम अभाव को ही देखने के आदी हो गए हैं।
नवलानी, पहली तो बुनियादी भूल यह छोड़ो। पहले तो प्रसन्न होओ कि मुझे दिखाई पड़ता है, अंधकार ही सही; कम से कम मेरे पास आंख है; मैं अंधा नहीं हूं। और जैसे ही यह क्रांति तुम्हारे भीतर घटेगी--अंधकार से नजर आंख पर लौट आएगी--वैसे ही प्रकाश की शुरुआत हो जाती है। प्रकाश आरंभ हुआ, सूर्योदय हुआ। जैसे ही तुमने अपनी दृष्टि गलत से सही की तरफ मोड़ी, नकार से विधायक की तरफ आए, वैसे ही सुबह होने लगी, सुबह फिर दूर नहीं है। और यह भी स्मरण रखो कि जब रात्रि का अंधकार बहुत गहन होता तो सुबह बहुत करीब होती है। सुबह होने के पहले अंधेरा बहुत घना हो जाता है। जाने के पहले अंधेरा अपने को इकट्ठा करता है, तो घना हो जाता है। विदा होने के पहले अपना साज-सामान बांधता है, बोरिया-बिस्तर बांधता है, तो घना हो जाता है।
तो दूसरी बात तुमसे कहना चाहता हूंः सौभाग्यशाली हो कि घना अंधकार मालूम हो रहा है। घने अंधकार के गर्भ में ही सुबह छिपी है, भोर छिपा है। तुम कहते होः "मैं निपट अज्ञानी!"
अच्छा लक्षण है। पांडित्य खतरनाक लक्षण है। मैं जानता हूं, ऐसा जानना, इस जगत में सबसे बड़ी बाधा है परमात्मा को जानने में। मैं नहीं जानता हूं, यह तो द्वार है। जिसने जाना कि मैं अज्ञानी हूं, उसने ज्ञान की दिशा में पहला और सबसे महत्वपूर्ण कदम उठा लिया। यह एक कदम इतना महत्वपूर्ण है, जितनी कि फिर पूरी यात्रा भी महत्वपूर्ण नहीं। इस एक कदम में करीब-करीब यात्रा पूरी हो जाती है।

दो कदम ही हैं परमात्मा और तुम्हारे बीचः पहला कदम कि मैं अज्ञानी हूं और दूसरा कदम कि मैं हूं ही नहीं। बस ये दो ही कदम हैं, और मंदिर आ गया। तीसरा तो कोई कदम ही नहीं है।
फिर दोहरा दूंः पहला कदम कि मैं अज्ञानी हूं। इस बात की स्वीकृति में
ही अहंकार के प्राण तो निकलने लगे। क्योंकि अहंकार दावेदार है। अहंकार कहता हैः मैं और अज्ञानी? होगी सारी दुनिया अज्ञानी, मैं ज्ञानी हूं! मैं और निर्बल? मैं बलवान हूं। मैं ऐसा! मैं वैसा! मैं के आभूषण हम बढ़ाते चले जाते हैं--इतना धन, इतना पद, इतना त्याग, इतना ज्ञान--सब मेरा! जितना तुम मेरे को फैलाते हो उतना ही तुम्हारा मैं सघन हो जाता है। और जितना मैं सघन है उतनी ही परमात्मा से दूरी बढ़ जाती है। मैं की सघनता अर्थात परमात्मा से दूरी। मैं पिघलने लगे, मैं गलने लगे--परमात्मा के पास आने लगे। मैं विसर्जित होने लगा, और दूरी कम होने लगी। जिस क्षण मैं नहीं बचा, उस क्षण परमात्मा ही है, और कोई भी नहीं।
और दोनों साथ नहीं हो सकते। मैं और परमात्मा, दोनों का साथ-साथ कोई अस्तित्व संभव नहीं है। जब तक मैं है तब तक तुम लाख दोहराओ--राम, कृष्ण, अल्लाह--नहीं कुछ होगा। जब तक तुम हो तब तक राम की तुम्हारे भीतर आने की कोई संभावना नहीं है। तुम मैं से भरे हो, जगह कहां? अवकाश कहां? राम को समाने के लिए आकाश चाहिए, भीतर विराट शून्य चाहिए! तुम्हारे सिंहासन पर तो तुम स्वयं ही विराजमान हो। परमात्मा आए भी तो बिठाओगे कहां? आ भी जाएगा तो पहचानोगे कैसे? द्वार पर खड़ा हो जाएगा परमात्मा तो भी तुम्हारा अहंकार तुम्हें पहचानने न देगा।
तुम्हारा अहंकार तो तुम्हें वही दिखलाता है जिससे अहंकार बढ़े। परमात्मा को देखने से तो अहंकार मिट जाएगा। इसलिए परमात्मा को अहंकार देखने ही नहीं देता। अहंकार ने ही तो सारे तर्क खोजे हैं परमात्मा के विरोध में। अहंकार ने ही तो घोषणा की है कि परमात्मा नहीं है।
जैसे-जैसे आदमी का अहंकार बढ़ा है... और इस सदी में बहुत बढ़ गया है! और बढ़ने के कारण भी हैं--विज्ञान का विकास, नई-नई तकनीकों की खोज, आकाश में उड़ना, चांद पर पहुंच जाना, एवरेस्ट की चढ़ाई। और आदमी को लगने लगा--मैं सब कुछ हूं! मैं सब कुछ कर सकता हूं! किसी प्रार्थना की, किसी पूजा की, किसी अर्चना की मुझे जरूरत नहीं है। मेरी बुद्धि, मेरा बुद्धिबल, मेरा विज्ञान, मेरा उद्यम सब हल कर लेगा। जो कल अज्ञात था, आज ज्ञात है। जो आज अज्ञात है वह कल ज्ञात हो जाएगा। अहंकार ने इस सदी में खूब फैलाव किया है, खूब विस्तार किया है। और जितना अहंकार बड़ा हुआ उतना ही परमात्मा तिरोहित होता चला गया। फिर हम पूछते हैंः परमात्मा कहां है?
तुम्हारे कारण परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता और तुम्हीं पूछते हो कि परमात्मा कहां है! जैसे किसी ने आंख पर पट्टियां बांध रखी हों और पूछता हो कि सूरज कहां है? कान बंद कर रखे हों और पूछता हो कि स्वर-संगीत कहां है? हृदय को बिल्कुल मार डाला हो और पूछता हो--प्रेम क्या है? प्रार्थना क्या है? सारी संवेदनशीलता जड़ हो गई है। अहंकार तुम्हारी छाती पर पत्थर की तरह बैठ गया है। तुम अब अनुभव नहीं करते, केवल सोचते हो।
लोग प्रेम के संबंध में भी अब केवल सोचते हैं, विचारते हैं--प्रेम क्या है? यह भी एक विषय है सोचने-विचारने का, जीवंत अनुभव नहीं। तो परमात्मा तो बहुत दूर हो गया, बहुत-बहुत दूर हो गया। और तुम्हारे कारण! तुम जिम्मेवार हो।
नवलानी, यह शुभ कि तुम कहते होः "मैं निपट अज्ञानी!"
यह साधक का पहला लक्षण है। यह संन्यास की शुरुआत है। उतरने लगे गंगा में।
दूसरा कदम है कि मैं नहीं हूं। और मैं अज्ञानी हूं, तो दूसरा कदम उठाना आसान हो जाता है। अज्ञानी मिट भी जाए तो क्या खोया! मैं पंडित हूं, ज्ञानी हूं--तो फिर मिटोगे नहीं। कैसे मिटोगे? इतने पांडित्य को कैसे छोड़ दोगे? इतनी मुश्किल से अर्जित पांडित्य--वेद, उपनिषद, गीता, कुरान, बाइबिल, गुरुग्रंथ, धम्मपद--इतने श्रम से किए कंठस्थ, सारा जीवन उन पर न्योछावर किया, आज सब उसको छोड़ कैसे दोगे! और उस सब में ही तो तुम्हारी अकड़ है। लोग

तुम्हें नमस्कार करते हैं। लोग तुम्हारा चमत्कार मानते हैं। लोग तुम्हारी बुद्धि की धाक मानते हैं। तुम छोड़ कैसे दोगे?
ज्ञानी का दंभ हो तो अहंकार छूट नहीं सकता। इसलिए मैंने यह तो सुना है
कि कभी-कभी पापी परमात्मा तक पहुंच गए हैं; लेकिन पंडित कभी पहुंचे, ऐसा मैंने नहीं सुना। पंडित नहीं पहुंच सकते हैं। पापी तो झुकने को तैयार होता है। उसका पाप ही उससे कहता है कि किस बल से खड़ा होऊं! वह तो घुटनों के बल प्रार्थना करने को तत्पर होता है। उसकी आंखों से आंसू तो झरने को निरंतर तैयार होते हैं। उसकी आंखें तो कभी भी सावन-भादों बन सकती हैं। उसका हृदय तो रो ही रहा है।
पाप में कोई भी प्रसन्न नहीं होता, स्मरण रखना। बड़े से बड़ा पापी भी प्रसन्न नहीं होता। तुम बड़े से बड़े पापी से भी पापी कहो तो झगड़ने को राजी हो जाता है। वह भी नहीं मानता कि मैं पापी हूं। चोर भी नहीं मानता कि चोर हूं। हत्यारा नहीं मानता कि हत्यारा हूं। बेईमान नहीं मानता कि बेईमान हूं। बेईमान की भी कोशिश यही होती है कि सिद्ध करे कि ईमानदार है। झूठे की भी सारी ताकत इसमें लगती है कि मैं सत्य हूं।
तुम देखते हो सत्य का आकर्षण! तुम देखते हो ईमान का चुंबकीय प्रभाव! तुम देखते हो पुण्य की गरिमा! पापी भी, कम से कम, पुण्य को ओढ़ लेता है। अगर हृदय में नहीं है पुण्य, तो कम से कम ऊपर से ओढ़ लेता है। मगर इस ऊपर से ओढ़ने में भी वह पुण्य को नमस्कार कर रहा है। वह यह स्वीकार कर रहा है कि दर्द है मेरे भीतर, चाहता तो मैं भी था कि भीतर से भी पुण्य होता, फिर मजा और था-- भीतर भी पुण्य, बाहर भी पुण्य! नहीं है भीतर तो कम से कम बाहर तो राम-नाम की चदरिया ओढ़ लूं। दूसरों को जब पुण्यात्मा दिखाई पड़ता हूं तो अच्छा लगता है। लेकिन खुद को तो पापी ही दिखाई पड़ते रहोगे; इसलिए भीतर दंश रहेगा, छाती में जैसे कटार चुभी हो, घाव रहेगा, टीस उठती रहेगी। चाहोगे तो तुम भी यही कि भीतर भी पुण्य का यही आनंद हो, यही स्वर्ग हो, यही सुगंध हो।
पापी भी चाहता है कि पाप से कैसे छूट जाए! कब छूट जाए! लेकिन ज्ञानी नहीं चाहता कि ज्ञान से छूट जाए। इसलिए मैं कहता हूं कि पापी तो परमात्मा तक पहुंच सकता है, क्योंकि अपने मैं का उसके पास कोई भी बल क्या है! उसके मैं में सामर्थ्य क्या है! उसकी जंजीरें लोहे की हैं, वह तोड़ सकता है। लेकिन पंडित, त्यागी, व्रती, दानी, वह कैसे तोड़ दे अपनी जंजीरों को! उसकी जंजीरें लोहे की नहीं हैं, उसकी जंजीरें सोने की हैं। उसकी जंजीरों में हीरे-जवाहरात जड़े हैं। उसकी जंजीरें मोतियों से मढ़ी हैं। उसकी जंजीरें बड़ी बहुमूल्य हैं। उसे जंजीरें जंजीरें नहीं मालूम होतीं; उसे तो जंजीरें आभूषण मालूम होती हैं। और बड़े श्रम से उसने उन जंजीरों को कमाया है। तुम उनको जंजीर कहो, उसे कष्ट होता है। किसी त्यागी से कहो कि त्याग जंजीर है; झगड़ने को राजी हो जाएगा। किसी योगी को कहो कि योग जंजीर है; जिंदगी भर तुम्हें क्षमा नहीं करेगा। किसी दानी को कहो कि दान जंजीर है; बदला लेगा, प्रतिशोध लेगा; कहेगा कि तुमने गाली दी मुझे।
पंडित नहीं छोड़ पाता, त्यागी नहीं छोड़ पाता अहंकार को।
नवलानी, यह बोध कि मैं निपट अज्ञानी, बड़ी बात है। शुभ मुहूर्त है ऐसी प्रतीति। इस शुभ घड़ी में चिंता न लो। इससे परेशान न हो जाओ। इससे आनंदित होओ।
कहते होः "मैं निपट अज्ञानी! जब भी आंख बंद की, महा-अंधकार दिखा।" शुरू-शुरू में होगा। जैसे दोपहरी में, भरी दोपहरी में धूप से यात्रा करके तुम घर आते हो, तो अपने घर में एकदम अंधकार दिखाई पड़ता है। आंखें बाहर की रोशनी से, चकाचौंध से भरी हैं। एकदम रोशनी के बाद जब तुम अंधेरे में आओगे या कम रोशनी में आओगे, तो कुछ भी दिखाई नहीं पड़ेगा। तुम बैठ जाते हो, सुस्ता लेते हो आधी घड़ी, फिर सब दिखाई पड़ने लगता है। आखिर आंखों को थोड़ा अवसर भी तो देना चाहिए। तुम एकदम आओ भरी दोपहरी में यात्रा करके, घर में प्रवेश करो और अंधकार दिखाई पड़े, और तुम समझो कि मारे गए, लगता है मैं अंधा हो गया!
इतनी जल्दी निर्णय न लो।
आंख की पुतलियां जब रोशनी में होती हैं तो छोटी हो जाती हैं, क्योंकि उतनी ज्यादा रोशनी भीतर नहीं ले जाई जा सकती। स्वचालित आंखें हैं। आंखों

की पुतली छोटी हो जाती है। तुम धूप से आने के बाद आईने में जरा अपनी आंख देखना, तुम्हारी पुतली बहुत छोटी मालूम पड़ेगी। जैसे कैमरे का लेंस, जब तुम चित्र उतारते हो, अगर धूप में उतार रहे हो तो लेंस थोड़ी देर ही खुला रहना चाहिए, फिर जल्दी से बंद हो जाना चाहिए। ज्यादा रोशनी भीतर आ जाएगी, फिल्म खराब हो जाएगी। अगर अंधेरे में उतार रहे हो तो लेंस ज्यादा देर खुला रहना चाहिए, तभी तस्वीर उतर पाएगी। आंख धूप में होती है तो आंख का लेंस छोटा हो जाता है; उतनी धूप को भीतर ले जाने की कोई जरूरत नहीं है। और जब आंख अंधेरे में होती है तो फिर लेंस को बड़ा होना पड़ता है, आंख की पुतली बड़ी होती है। अब ज्यादा भीतर ले जाया जाए तो ही दिखाई पड़ सकेगा। इसलिए जब तुम धूप से एकदम आते हो कम धूप में तो आंख को थोड़ा समय देना पड़ता है; धीरे-धीरे आंख की पुतली, जो धूप की आदी थी, छोटी हो गई थी, फिर फैलती है, फिर बड़ी हो जाती है। फिर तुम्हें अंधेरे में भी दिखाई पड़ने लगता है।
और अब तक, आध्यात्मिक आंख का जहां तक संबंध है, तुम कभी भीतर आए नहीं हो, जन्मों-जन्मों से बाहर ही भटकते रहे हो--धूप-धाप बाहर की! तो तुम्हारी आंखें बिल्कुल जड़ हो गई हैं। वे भीतर कैसे देखें, इसकी कला भूल गई हैं। जैसे एक आदमी धूप में ही, धूप में ही, धूप में ही रहता हो, वर्षों तक धूप में रहे, फिर एक दिन अंधेरे में लाया जाए, तो उसे महा-अंधकार दिखाई पड़ेगा। शायद उसे काफी समय लगेगा जब उसकी आंखें पुनः अंधकार में भी देखने में समर्थ हो सकें। इसीलिए ध्यान की जरूरत है। रोज-रोज बैठते रहो, डूबते रहो। अंधकार दिखाई पड़ता है, अंधकार के साक्षी रहो। आंख बंद कर लो और अंधकार को देखो। देखते रहो अंधकार को, कुछ और करना नहीं है, सिर्फ देखते रहो। इतना ही स्मरण रखो कि मैं देखने वाला हूं, मैं अंधकार नहीं हूं। मैं अंधकार होता तो अंधकार को कैसे देखता! मैं अंधकार से भिन्न हूं, तभी तो देख पा रहा हूं। देखने वाला दृश्य तो नहीं। दृश्य तो द्रष्टा से भिन्न है। यह अंधकार चारों तरफ घिरा है, ठीक है, घिरा रहे, मैं तो अलग हूं, मैं देख रहा हूं। देखते रहो। धीरे-धीरे क्रमशः जन्मों-जन्मों की पुरानी आदत टूटेगी और तुम्हारी आत्मा की आंखें भीतर देखने में समर्थ हो जाएंगी। जिस दिन समर्थ हो जाएंगी उसी दिन धीरे-धीरे रोशनी आनी शुरू हो जाएगी। पहले भोर होगी-- सूरज नहीं निकला, रात जा चुकी, दिन भी नहीं आया, लेकिन प्रकाश हो गया। फिर धीरे-धीरे सुबह होगी, सूर्योदय होगा। और एक दिन तुम अपने भीतर की अंतरात्मा की दोपहरी जान सकोगे--सूर्य ही सूर्य!
कबीर तो कहते हैं कि जैसे हजारों सूर्य एक साथ ऊग आएं!
कबीर जैसे द्रष्टाओं के वचन तुम पढ़ोगे तो हैरानी होगी। शायद इसीलिए प्रश्न उठा कि मैं कैसा अभागा, मैं कैसा पापी, मैं कैसा अज्ञानी, कि मैं तो जब भी भीतर देखता हूं अंधकार दिखता है। और कबीर कहते हैंः हजार-हजार सूरज जैसे एक साथ ऊग आएं! कब यह होगा? यहां तो दीया भी नहीं जलता, हजार सूरज की तो बात दूर! एक दीया नहीं जलता, एक सूरज नहीं निकलता!
निकलेगा। थोड़ी प्रतीक्षा करनी होगी। प्रतीक्षा प्रार्थना की आधारभूमि है। काहे होत अधीर! पलटू कहते हैंः मत अधीर हो जाओ।

प्यासों के लिए
कुओं की कमी नहीं
और कुओं में पानी की।
फिर भी
न जाने क्यों
मनुष्य प्यासा खड़ा है।
शायद उसकी
डोर छोटी
और कठौता बड़ा है।

तृषा हो तो
ज्ञान के कुएं में
श्रद्धा की डोरी से
पात्रता के कठौते को बांध

उपार्जित कर लो अभिप्रेत,
डोरी ओछी न रही तो
तृप्ति अवश्यंभावी है।

उसे चाहे श्रद्धा कहो, चाहे प्रतीक्षा कहो, बात एक ही है। श्रद्धा की
भी गुणवत्ता यही है कि वह प्रतीक्षा करने में तुम्हें समर्थ बनाती है। जिसे श्रद्धा होती है वह प्रतीक्षा कर सकता है। जिसे श्रद्धा नहीं हो सकती, उसे लगता है समय व्यर्थ जा रहा है, यह मैं क्या कर रहा हूं! एक दिन बैठता है, क्षण भर आंख बंद करता है, भीतर अंधेरा पाता है, सोचता है--इतनी देर मैं दुकान पर बैठता, बाजार गया होता, कुछ कमाई हो जाती। यह बैठ कर मैं क्या कर रहा हूं आंख बंद किए? क्यों समय खराब कर रहा हूं? ऐसे कुछ होने वाला नहीं। दो-चार बार बैठ कर देखेगा, कहेगा कि ये सब संत और फकीर या तो कुछ और ही तरह के लोग रहे होंगे, हमारे जैसे आदमी नहीं। इसीलिए तो हम उनको अवतार कहते हैं। अवतार कहने का मतलब यह कि भइया, तुम और ही तरह के हो। तुम्हें हो गया होगा, हमें होने वाला नहीं। हम तो मनुष्य हैं। तुम भगवान के घर से सीधे आ रहे हो। तुम पर भगवान की कृपा है, हम पर नहीं। तुम्हारे भाग्य में ऐसा लिखा है, हमारे भाग्य में ऐसा नहीं।
ये तरकीबें हैं हमारी कि तुम तीर्थंकर, कि तुम बुद्ध, कि तुम यह, कि तुम वह, कि तुम पैगंबर, कि तुम परमात्मा के बेटे। हम तो साधारण मनुष्य हैं, यह हमसे होने वाला नहीं है। या तो तुम ऐसा कह देते हो। अगर भले आदमी हुए तो इस तरह अपने को समझा लेते हो। अगर इतने भले आदमी न हुए तो कहते होः पागल हैं ये सारे लोग, विक्षिप्त हैं। इनके मस्तिष्क खराब हैं। ऐसा हो ही नहीं सकता। जो मुझे नहीं होता वह इन्हें कैसे हो सकता है! या तो ये दूसरों को धोखा दे रहे हैं या खुद धोखा खा रहे हैं।
मगर दोनों बातें गलत हैं। सच बात यह है कि बुद्ध, महावीर, नानक, कबीर, कृष्ण, क्राइस्ट, मोहम्मद, मूसा तुम्हारे जैसे ही लोग हैं। बिल्कुल तुम्हारे जैसे लोग हैं। उतनी ही तुम्हारी संभावना है जितनी उनकी थी। उतने ही बीज तुम्हारे पास हैं जितने उनके पास थे। उतने ही फूल तुम्हारे भीतर खिल सकते हैं जितने उनके भीतर खिले। उतने ही सूरजों के तुम भी मालिक हो सकते हो जितने सूरजों के वे मालिक हो गए। वह परमात्मा तुम्हारे लिए भी उतना ही उपलब्ध है जितना उन्हें उपलब्ध था। सिर्फ तुम्हारी डोर छोटी पड़ रही है। कुआं भी है, जल भरा भी है, लेकिन तुम्हारी डोर श्रद्धा की, प्रतीक्षा की छोटी पड़ रही है। तुम प्रतीक्षा नहीं कर पाते।
इस सदी के मनुष्य ने कुछ चीजें गंवा दी हैं, उनमें एक प्रतीक्षा भी है। विनम्रता गंवा दी है, कारण मिल गया विज्ञान में। विज्ञान ने आदमी को अहंकार दे दिया कि मैं क्या नहीं कर सकता! सब कर लूंगा--तूफानों को जीत लूंगा, बादलों को जीत लूंगा, मरुस्थलों को बगीचे बनाऊंगा, आकाश में बस्तियां तैराऊंगा--क्या नहीं कर सकता हूं! विज्ञान ने मनुष्य को अहंकार दे दिया। और विज्ञान ने ही मनुष्य के हाथ से प्रतीक्षा भी छीन ली। क्योंकि विज्ञान ने कहाः जल्दी करो! जल्दी हो सकता है! जहां तुम तीन दिन में पहुंचते हो वहां हम तुम्हें तीन मिनट में पहुंचा सकते हैं। तो विज्ञान ने एक त्वरा सिखा दी, एक जल्दी सिखा दी। अब हर आदमी भागा जा रहा है। जो ट्रेन से सफर करता, वह हवाई जहाज से सफर कर रहा है। जो बैलगाड़ी से सफर करता, वह ट्रेन से सफर कर रहा है। तेजी है। लेकिन कोई पूछे कि समय बचा कर करोगे क्या? तो बड़ी हैरानी होती है। ट्रेन से न जाकर हवाई जहाज से गए, तीन दिन बच गए, अब क्या करना? अब ताश खेलो, शतरंज बिछाओ, सिनेमा देखो, रेडियो, टेलीविजन। या बैठ कर लोगों से बकवास करो। और कोई पूछे कि क्या कर रहे हो? तो तुम कहते हो, समय काट रहे हैं। पहले समय बचाते हो, फिर समय काटते हो, खूब बुद्धिमान हो!
पुरानी चीनी कथा है। एक बूढ़ा आदमी अपने जवान बेटे के साथ कुएं से पानी खींच रहा है। दोनों बैल की तरह जुते हैं और पानी खींच रहे हैं। शहर से आया हुआ एक आदमी, जो कनफ्यूशियस का शिष्य है, वह इन दोनों को इस भरी दोपहरी में, पसीने से लथपथ, और यह बूढ़ा होगा कोई सत्तर साल से भी ज्यादा उम्र का और

इसका जवान बेटा और ये दोनों बैलों की तरह जुते हैं। उसने बूढ़े से कहा कि लगता है तुम्हें पता नहीं कि अब पानी खींचने के नये आविष्कार हो गए हैं! बूढ़े ने कहा, चुप! बिल्कुल चुप! पहले मेरे बेटे को चले जाने दो। अभी यह
घर जाएगा रोटी लेने, फिर तुमसे बात करूंगा।
बेटा रोटी लेने गया, वह कनफ्यूशियस का अनुयायी बोला कि तुमने मुझे चुप क्यों किया?
उसने कहा, मेरे बेटे के कारण, क्योंकि वह सुन ले तो उसकी जिंदगी नष्ट
हो जाए। मुझे पता है कि पानी खींचने के नये यंत्र आविष्कृत हो गए हैं। अब हमें बैलों की तरह जुतने की जरूरत नहीं है।
तो उस कनफ्यूशियस के मानने वाले ने कहा कि फिर तुम कैसे पागल हो! फिर क्यों मेहनत कर रहे हो? कितना समय नहीं बच जाएगा!
उस बूढ़े ने कहा, वह तो मुझे भी मालूम है, समय बच जाएगा। लेकिन मैं यह पूछता हूं, फिर मैं उस समय का क्या करूंगा? लडूंगा, झगडूंगा, जुआ खेलूंगा, शराब पीऊंगा--फिर मैं उस समय का क्या करूंगा? पहले तुम इसका उत्तर लाओ कि समय बच जाएगा तो मैं उस समय का क्या करूंगा? अपने गुरु कनफ्यूशियस से पूछो कि समय का क्या करूंगा, फिर तुम आना।
जब वह व्यक्ति कनफ्यूशियस के पास पहुंचा तो कनफ्यूशियस ने कहा, तुम्हें उस बूढ़े को परेशान करने की जरूरत नहीं। वह बहुत बुद्धिमान है। उसने ठीक कहा। आदमी समय बचा लेगा तो फिर करेगा क्या? फिर उपद्रव करेगा। इसलिए तुम्हें गरीब आदमी भला मालूम होता है, क्योंकि उसके पास समय नहीं है उपद्रव करने को। गरीब आदमी में और कुछ खूबी नहीं है। गरीबी में जो अध्यात्म मालूम होता है वह गरीबी में नहीं है; उसका असली कारण केवल इतना है, उसके पास उपद्रव का समय नहीं है। रोटी-रोजी कमाए कि लड़े-झगड़े? बच्चे पाले कि जुआ खेले? किसी तरह छप्पर बचाए, कपड़े लाए कि शराब पीए? समय उसके पास है नहीं। उसके पास सपने तक देखने का समय नहीं है। रात जब सोता है तो घोड़े बेच कर सोता है। अमीर जब रात सोता है तो सो भी नहीं सकता। उसके पास इतना समय है कि वह दिन भर भी आराम करता रहा, अब रात नींद कैसे आए?
विज्ञान ने अहंकार दे दिया। ज्ञान सदा अहंकार देता है। और ज्ञान ने सुविधाएं दे दीं कि काम जल्दी से हो सकते हैं। मैं विज्ञान का विरोधी नहीं हूं, ख्याल रखना। और न ही मैं इस बात का विरोधी हूं कि मशीनें समाप्त कर दी जाएं। लेकिन अगर मनुष्य में समझ हो... अगर मैं उस बूढ़े आदमी से मिला होता तो उससे कहता कि जब समय बचे तो ध्यान करना। कोई शतरंज खेलने की मजबूरी थोड़े ही है। कोई जुआ खेलने की जबरदस्ती थोड़े ही है। समय बचे तो ध्यान करना। समय बचे तो प्रार्थना में डूबना। समय बचे तो नाचना--परमात्मा की कृतज्ञता और धन्यवाद में।
लेकिन कनफ्यूशियस की दृष्टि में परमात्मा और प्रार्थना का कोई स्थान नहीं था। इसलिए कनफ्यूशियस उस बूढ़े की बात का जवाब नहीं दे सका। मैं गरीबी के पक्ष में नहीं हूं, क्योंकि गरीबी के कारण जो आदमी में सरलता दिखाई पड़ती है वह थोथी है। मैं तो अमीरी का पक्षपाती हूं। मैं चाहता हूं अमीर हो जाओ जितने हो सकते हो। लेकिन अमीर होने से कोई मतलब यह नहीं है कि तुम्हें शराब ही पीनी पड़ेगी। अरे और भी शराबें हैं! परमात्मा की शराब है। समय होगा तो उसे पीना। समय तो होना चाहिए, लेकिन ठीक दिशा में नियोजित करने के लिए अगर समझ हो तो कोई हर्जा नहीं।
विज्ञान ने अहंकार दे दिया और विज्ञान ने तुमसे प्रतीक्षा छीन ली। तुम धैर्य रखना ही भूल गए। तुम्हें स्मरण ही नहीं रहा कि धैर्य का भी एक आनंद है, कि बैठे चुपचाप समय को गुजर जाने देने का भी एक मजा है।
नवलानी, आंख बंद करो, जितना समय मिले। अंधकार दिखाई पड़े, अंधकार सही, देखो। अंधकार भी परमात्मा का है। वह भी परमात्मा का एक रूप है। उसकी पीठ सही, मगर परमात्मा की पीठ भी आखिर है तो परमात्मा की पीठ। चलो पीठ की तरफ से ही नमस्कार करो! चलो पीठ की तरफ से ही बात कर लो! उसे सुनाई पड़ जाएगा। और इसीलिए तो हमने उसके तीन मुंह बनाए हैं, कि तुम कहीं से भी बोलो, उसे सुनाई पड़ जाए। तुम पीठ की तरफ से भी बोलो तो वह सामने है।
तीन मुंह विचारणीय है। क्योंकि विज्ञान कहता हैः अस्तित्व जो है, वह तीन आयामी है, थ्री-डायमेंशनल है। अस्तित्व के तीन आयाम हैं। इसलिए बात

बड़ी कीमती है कि परमात्मा के तीन मुख हैं। एक-एक आयाम में एक-एक मुख। तुम किसी भी आयाम से पुकारो, उस तक बात पहुंच जाएगी। अंधेरे को उसकी पीठ समझो, मगर उसकी ही पीठ है। छुरा मत भोंक देना! पूजा के फूल चढ़ाओ। पीठ की तरफ से भी चढ़ाए गए पूजा के फूल पहुंच जाएंगे। तुम घबड़ाओ मत। और अंधेरा है तो अंधेरे को देखते चलो, देखते चलो। देखते-देखते ही अंधेरा रोशनी बन जाएगा। देखते- देखते ही तुम्हारी आंख की ऐसी क्षमता, ऐसी प्रखरता हो जाएगी, ऐसी तीव्रता हो जाएगी, तुम्हारी आंख ऐसी रोशन हो जाएगी कि अंधेरे को भी रोशनी दे देगी। और कुछ तो दिखाई पड़ रहा है, इसलिए खुश होओ! नाचो!

मैं गाऊं तेरे गीत, मीत रंग रसिया।
उसके गीत गाओ! अंधेरे को भी उसके गीतों से भर दो! और काश तुम अंधेरे को
भी उसके गीतों से भर दो तो दीये जलने लगेंगे--घी के दीये।

मैं गाऊं तेरे गीत, मीत रंग रसिया।
छेडूं शड्ज स्नेह का साजन,
ऋषभ बने मेरा प्रिय भाजन,
बस स्वर ही हों आधार, मीत मन बसिया।
मैं गाऊं तेरे गीत, मीत रंग रसिया।
केश-राशि गांधार सुसज्जित,
मध्यम कर मध्यस्थ मिलन हित,
उड़ आऊं तेरे द्वार, मीत मन बसिया।
मैं गाऊं तेरे गीत, मीत रंग रसिया।
पंचम पिक-कूजन है मेरा,
धैवत धवल हास है तेरा,
सब सपने हों साकार, मीत मन बसिया।
मैं गाऊं तेरे गीत, मीत रंग रसिया।
छेडूं निषाद हर लूं विषाद,
कर संगम सरगम का निनाद,
है स्वर का यह संसार, मीत मन बसिया।
मैं गाऊं तेरे गीत, मीत रंग रसिया।
मन मृदंग की धिनगिन तिनगिन,
चौताले की किटतक गदगिन,
मैं दिन गिनगिन गई हार, मीत मन बसिया।
मैं गाऊं तेरे गीत, मीत रंग रसिया।
नादिर, नादिर, तोम दिर दिरदिर,
मन वीणा को आंदोलित कर,
मैं छेडूं तन के तार, मीत मन बसिया।
मैं गाऊं तेरे गीत, मीत रंग रसिया।
ताथेइ, ताथेइ, तत्-तत थेइ-थेइ,
नूपुर बांध नचूं नित नई-नई,
अब लोक-लाज दी डार, मीत मन बसिया।
मैं गाऊं तेरे गीत, मीत रंग रसिया।
नाचो, गाओ--अंधेरे में ही सही, महा-अंधकार में ही सही। और तुम्हारे गीत दीये बन जाएंगे! और तुम्हारे नृत्य रोशनी को निकट लाने लगेंगे! धैर्य रखो और धन्यवाद दो। धन्यवाद देने को ही मैं नाचना कह रहा हूं। और कैसे धन्यवाद दोगे? कोई शिष्टाचार थोड़े ही है--कि शुक्रिया, थैंक यू, धन्यवाद! कहने से नहीं होगा।
नादिर, नादिर, तोम दिर दिरदिर,
मन वीणा को आंदोलित कर,
मैं छेडूं तन के तार, मीत मन बसिया।
मैं गाऊं तेरे गीत, मीत रंग रसिया।
ताथेइ, ताथेइ, तत्-तत थेइ-थेइ,
नूपुर बांध नचूं नित नई-नई,
अब लोक-लाज दी डार, मीत मन बसिया।

मैं गाऊं तेरे गीत, मीत रंग रसिया।
गाओ! नाचो! गुनगुनाओ! आज अंधेरा है, कल यही अंधेरा रोशनी बनेगा। आज रात है, इसी रात से सुबह का जन्म होगा। बस एक बात महत्वपूर्ण है कि तुम्हें कुछ दिखाई पड़ रहा है, तुम द्रष्टा हो। और द्रष्टा जो है, उसे क्या कमी! उसे मालिक मिल ही गया। हालांकि पहचान नहीं हुई है अभी कि यही मालिक रहा, लेकिन मालिक का मिलना शुरू हो गया है।
और धैर्य रखना, श्रद्धा की डोर लंबाए चलना। आज न हो तो घबड़ा मत जाना।
कल न हो तो घबड़ा मत जाना। जन्मों-जन्मों में भी हो तो समझना कि जल्दी हुआ। ऐसे जन्म-जन्म लगते नहीं, हो तो अभी सकता है। तुम्हारा जितना गहन धैर्य होगा उतनी जल्दी हो जाता है।
उस महागणित का तीसरा नियम... मैंने दो नियम तुमसे कहे... उस महागणित का तीसरा नियम कि जो जल्दी करेगा उसे देर हो जाती है। और जो अनंत धैर्य रखता है, अनंत प्रतीक्षा करता है, उसे बड़े जल्दी मिल जाता है। उसके भी बड़े अनूठे रंग, अनूठे ढंग, अनूठी अदाएं हैं! जो कहता है कि अनंत काल में भी मिलोगे तो मैं प्रतीक्षा के लिए बैठा रहूंगा। तुम्हें जल्दी करने की कोई जरूरत नहीं है, मैं बैठा हूं, बैठा हूं, बैठा ही रहूंगा। तुम जब आओ आना। मैं झुका हूं, तुम मुझे झुका ही पाओगे। तुम अनंत काल में आना, मैंने जो दीया तुम्हारे लिए जलाया है वह तुम्हारे लिए जलता ही रहेगा। तुम आओ या न आओ, मेरा द्वार खुला है, खुला ही रहेगा। जो ऐसा कहने को राजी है, ऐसा जीने को राजी है, उसे इसी क्षण, अभी, यहीं क्रांति घट सकती है!

दूसरा प्रश्नः ओशो! आप कहते हैं कि कवि ऋषि के निकट है, लेकिन बड़ा आश्चर्य होता है कि इतने संवेदनशील हृदय वाले कवि-कलाकार भी, जो कि जीवन में सत्यम शिवम सुंदरम की तलाश में निकले हैं, वे भी यहां आने से कतराते हैं! आप कहते हैं कि ध्यान संवेदनशीलता को और गहरा करता है। फिर इन कवि- कलाकारों का भय क्या है? क्या ध्यान और सृजन साथ-साथ संभव नहीं हैं?

अरुण सत्यार्थी! कवि तो निश्चित ही ऋषि के निकट है। कवि का अर्थ है जिसे झलकें मिलने लगीं परमात्मा की। और ऋषि का अर्थ है जो उसके साथ एकाकार हो गया। कवि का अर्थ है जिसने दूर से देखा है हिमालय के धवल शिखरों को। और ऋषि का अर्थ है जो उन शिखरों पर ही निवास करने लगा है। कवि में और सत्य में थोड़ी सी दूरी है; ऋषि सत्य के साथ एकाकार है।
मगर कवि हुए बिना कोई ऋषि नहीं होता। यद्यपि सारे कवि ऋषि नहीं हो पाते, लेकिन सारे ऋषि कवि तो होंगे ही। कोई चाहे तो झलकों पर ही अटक जाए, कोई चाहे तो झलकों में ही रम जाए। कवि पर तो बूंदाबांदी होती है; मूसलाधार वर्षा तो ऋषि पर होती है। कवि तो ऐसा समझो कि ताल-तलैयों में जीता है; ऋषि सागर में लीन हो गया होता है, सागर ही हो जाता है।
लेकिन कोई कवि चाहे तो अपनी ताल-तलैया को ही सागर समझ ले, तो ऋषि होने
से वंचित रह जाएगा। तो बहुत से कवि अपनी ताल-तलैया को ही सागर समझ लिए हैं। इसलिए सोचते होंगे कि क्या जरूरत है कहीं जाने की! लगता है उन्होंने पा ही लिया। अभी सिर्फ सपना देखा है, अभी सत्य नहीं। सत्य की झलक पड़ी है, आभा पड़ी है, परछाईं पड़ी है सपने में, मगर सत्य नहीं।
झेन फकीर रिंझाई से एक कवि ने आकर कहा कि मैंने आपके द्वारा लिखी गई कविताएं देखी हैं।
झेन फकीर हाइकू लिखते हैं, छोटे-छोटे पद। बड़े अदभुत पद! दुनिया में उस तरह की कविता कहीं और होती नहीं। उसके लिए पहले झेन फकीर की वर्षों की साधना चाहिए। हाइकू छोटा सा होता है। ऊपर से उसमें शायद अर्थ दिखाई भी नहीं पड़ता। उसके अर्थ को खोलने के लिए भी ध्यान की जरूरत पड़ती है; ध्यान की कुंजी से ही अर्थ खुलता है।
उस कवि ने कहा कि आपके हाइकू मैंने पढ़े, इनसे बेहतर कविताएं तो मैं लिखता हूं। और आपको लोग बुद्ध कहते हैं, कि आप जागरूक, महा-प्रज्ञावान! और इनसे बेहतर कविताएं तो मैं लिखता हूं।
रिंझाई ने कहा, तुम बेहतर कविताएं लिखते होओगे, जरूर लिखते होओगे।
पूरे चांद की रात थी और दोनों रिंझाई की बगिया में बैठ कर बात कर रहे थे।

रिंझाई ने कहा, एक काम करो, मेरे साथ आओ। उसे उठा कर ले गया। बगिया में ही छोटी सी झील थी। झील में चांद झलक रहा था। झील में लहरें भी नहीं थीं। चांद बड़ा प्यारा लग रहा था। रिंझाई ने कहा, इस चांद को देखते हो?
उस कवि ने कहा, हां, देखता हूं। मगर इसमें मेरी बात का उत्तर कहां है? रिंझाई ने कहा, इसमें उत्तर है। तुम्हारी कविताएं ऐसी ही हैं जैसे झील का चांद। और रिंझाई ने एक कंकड़ झील में फेंका, लहरें उठीं, चांद टुकड़े- टुकड़े हो गया। उसकी चांदी फैल गई पूरी झील पर, मगर चांद न बचा। और रिंझाई ने कहा, अब जरा आकाश की तरफ देखो। मेरे वक्तव्य ऐसे हैं जैसे वह चांद। अब एक कंकड़ उस चांद की तरफ फेंको, तब तुम्हें भेद पता चल जाएगा। तुम्हारी कविताएं परछाईं हैं; मेरे वक्तव्य परछाईं नहीं। तुम्हारी कविताओं में तुम हो; मेरे वक्तव्यों में मैं नहीं हूं।
कवि अहंकार से भर सकता है, अक्सर भर जाता है। क्योंकि उसे लगता है--मैं कितना संवेदनशील! मैं कितना भावना-प्रवण! कैसे प्यारे मैंने गीत रचे हैं! लेकिन ऋषि अहंकार से नहीं भरता; अहंकार से खाली होता है तभी ऋषि हो पाता है।
रवींद्रनाथ में कुछ-कुछ ऋषि का रूप था। मरते समय रवींद्रनाथ ने कहा
कि यद्यपि मैंने छह हजार गीत लिखे हैं, शायद दुनिया में किसी ने छह हजार गीत नहीं लिखे, लेकिन फिर भी मैं पीड़ित विदा हो रहा हूं, क्योंकि जो मैं गाना चाहता था वह अभी तक नहीं गा सका। और हे परमात्मा, तू भी बेवक्त उठाए ले रहा है! अब मुझे लगता था कि मेरा साज बैठ गया है और गीत अब पैदा हुआ, अब पैदा हुआ। और तू मुझे उठाने लगा, तू मुझे दुनिया से हटाने लगा! जिंदगी भर में मैं मुश्किल से साज बिठा पाया हूं; सिर्फ साज बिठा पाया हूं, अभी गीत गाया नहीं; अभी सितार बजी नहीं, अभी सिर्फ तार कसे गए हैं; अभी सिर्फ तबला ठोंका-पीटा गया है, रास्ते पर लाया गया है--और तू मुझे विदा करने लगा!
जो लोग रवींद्रनाथ के गीत को पढ़ेंगे वे कहेंगेः यह कैसी बात! इतने प्यारे गीत! जिन पर नोबल पुरस्कार मिला, जिनका सारी दुनिया में सम्मान हुआ! खुद रवींद्रनाथ लेकिन प्रसन्न नहीं हैं। क्योंकि रवींद्रनाथ कहते हैं, मैं कुछ गाना चाहता था, जो अनगाया रह गया है। और गीतों में कुछ धुन आई, कुछ झलकी बात, लेकिन वह नहीं उतार पाया जो उतारना चाहता था।
रवींद्रनाथ में ऋषि की थोड़ी सी झलक है। झलक ही कहता हूं, रवींद्रनाथ अभी बुद्ध नहीं हैं। हो सकते थे; लेकिन उन्होंने भी सारी ऊर्जा गीतों में ही लगा दी, अंतर्यात्रा के लिए कुछ ऊर्जा बचाई नहीं। सुंदर गीत रचने में लगे रहे; लेकिन सौंदर्य का साक्षात्कार हो सके, इसकी तरफ कोई साधना नहीं की।
अरुण, तुम पूछते हो कि कवि ऋषि के निकट हैं...
निश्चित ही निकट हैं। अगर अहंकार कवि छोड़ दे तो ऋषि हो जाए। अगर मैं- भाव छोड़ दे तो ऋषि हो जाए। मगर कवि को मैं-भाव छोड़ना बहुत मुश्किल होता है। इस दुनिया में जिनके पास भी कोई गुण है, उन्हें अहं-भाव छोड़ना बहुत मुश्किल हो जाता है। क्योंकि गुण अकड़ देता है--मैं कवि हूं, तो मैं विशिष्ट हूं, तो मैं कुछ साधारणजन नहीं हूं! यह अकड़ बाधा बन जाती है।
और फिर दूसरी बात, तुम्हारे सौ कवियों में से निन्यानबे तो कवि भी नहीं होते, ऋषि होना तो बहुत दूर। निन्यानबे तो बस तुकबंद होते हैं। तुकबंदों को मैं नहीं कह रहा हूं कि वे ऋषियों के निकट हैं। तुकबंदी तो बड़ी आसान बात है। वह तो थोड़ी सी भाषा और व्याकरण और मात्रा और छंद का तुम्हें बोध हो तो तुम भी तुकबंदी कर ले सकते हो। सौ में से निन्यानबे कवि तो तुम्हारे तुकबंद होते हैं। और जनता तुकबंदी को समझ पाती है, कविता को समझ भी नहीं पाती। क्योंकि कविता में कुछ दुरूह होता है, कुछ रहस्यमय होता है। तुकबंदी साफ-सुथरी होती है। आम जनता जिसको कवि मानती है, वह अक्सर कवि नहीं होता, वह कवि से भी बहुत दूर है।
तुम कवि-सम्मेलनों में तो जाकर देखते होओगे, जिनके लिए ताली पिटती है, अगर तुम्हें काव्य का थोड़ा भी बोध है तो तुम बहुत हैरान होओगे कि यह ताली किनके लिए पिट रही है! और जिन्हें सम्मान मिलना चाहिए था, लोग उन्हें हूट करते हैं, क्योंकि उनकी समझ में नहीं आता। जनता के तल पर जो है वह समझ में आता है। स्वभावतः, जनता जिस तल पर है उस तल पर ही जो बोलता है वह समझ में

आता है। जो जरा ऊंचाइयां लेना शुरू करता है, जो जरा आकाश की तरफ उड़ता है, कि जनता नाराज होती है, कि फौरन पत्थर फेंके जाते हैं।
एक कवि एक बार जब घायल अवस्था में रात को देर से घर लौटे तो उनकी पत्नी
ने झल्ला कर कहा, हे भगवान, लगता है कि तुम आज फिर...
कवि ने बीच में ही टोक कर कहा, नहीं-नहीं, भगवान की कसम, आज मैंने बिल्कुल नहीं पी है।
पत्नी तैश में आकर बोली, पीने के लिए कौन कह रहा है! मैं तो कह रही थी
कि लगता है तुम आज फिर किसी कवि-सम्मेलन में गए थे।
एक महाकवि किसी कवि-सम्मेलन में आमंत्रित था। जब उसकी बारी आई और उसने कविता-पाठ शुरू किया तो जनता एकदम चिल्लाने लगी कि बंद करो! बंद करो! जनता मचाने लगी शोर, लोग जोर-जोर से तालियां पीटने लगे, पैर फर्श पर रगड़ने लगे कि वह किसी तरह तो चुप हो। मगर वह था कि अपनी कविता में लीन, परम शांति से, परिपूर्ण अप्रभावित, जैसे कुछ हो ही नहीं रहा है, अपनी कविता पढ़े जा रहा था। आंखों से उसके झर-झर आंसू बह रहे हैं। शब्दों में उसके बड़ी गहराई थी। मगर गहराई समझे कौन! अब तुम भैंस के सामने बीन बजाओ तो भैंस पड़ी पगुराए! और कर भी क्या सकती है!
फिर जब बात हद से ज्यादा हो गई तो एक काला भुजंग पहलवान सा व्यक्ति उठ
कर अपनी सीट पर से खड़ा हो गया और उसने जेब से एक चमचमाता हुआ लंबा सा छुरा निकाल लिया। उसकी आंखें अंगारों की तरह जल रही थीं। उसकी आंखों को देख कर महाकवि के तो प्राण-पखेरू उड़े-उड़े हो गए और उसने एकदम से अपना कविता-पाठ बंद कर दिया। उस पहलवान ने कहा, अरे मरियल चूहे, तू तो अपना कविता-पाठ जारी रख। तू मत घबड़ा। लेकिन पहले जरा उस उल्लू के पट्ठे का नाम बता, जिसने तुझे कविता-पाठ के लिए बुलवाया है!
आमजन क्या काव्य समझ सकेंगे! काव्य समझने के लिए भी एक संवेदनशीलता चाहिए। इसलिए तुम जिनको, अरुण, कवि मान लेते हो वे कवि तो हैं नहीं, ज्यादातर तो तुकबंद हैं। उन तुकबंदों को यहां आने से क्या सार! और जो कवि हैं उनमें एक अहमन्यता जगती है--कि हम तो पा ही लिए, इसलिए क्यों जाएं कहीं? क्या हमें जरूरत है जाने की? और कभी-कभी यहां आ भी जाते हैं तो मुझे सुनने नहीं आते, वे मुझसे आकर प्रार्थना करते हैं कि आप हमारी कुछ कविताएं सुनें। कि बड़ी दूर से आया हूं, आपको कुछ कविताएं सुनाने आया हूं।
जो चांद देख रहा हो वह झील में बने प्रतिबिंबों की क्या चिंता करे! मगर उनको तो लगता है कि उन्होंने झील में जो प्रतिबिंब देखा है वही चांद है। इसलिए भी अड़चन है।
और तुम पूछते हो कि आप कहते हैं कि ध्यान संवेदनशीलता को गहरा करता है। फिर इन कवि-कलाकारों को भय क्या है?
ध्यान जरूर संवेदनशीलता को गहरा करता है। तो वे जो निन्यानबे प्रतिशत तुकबंद हैं उनको भय है; अगर वे ध्यान करेंगे, तुकबंदी बंद हो जाएगी। क्योंकि ध्यान की गहराई उन्हें दिखला देगी कि वे अब तक जो करते रहे हैं वह कौवों की कांव-कांव है, कविता नहीं। और वे जो एक प्रतिशत कवि हैं उनको भी डर है, क्योंकि उनको दिखाई पड़ेगा कि अब तक जिस चांद की उन्होंने चर्चा की है वह झील में बना हुआ चांद है, आकाश का असली चांद नहीं। इसलिए वे भी ध्यान से डरते हैं। ध्यान से बहुत तरह के भय हैं।
और कवि कहते ही हैं, जैसा तुमने कहा, अरुण, कि बड़ा आश्चर्य होता है कि इतने संवेदनशील हृदय वाले कवि-कलाकार भी, जो कि जीवन में सत्यम शिवम सुंदरम की तलाश में निकले हैं, वे भी यहां आने से कतराते हैं!
न तो कोई सत्यम की खोज में निकला है, न कोई शिवम की, न कोई सुंदरम की।
ये सब बातें हैं। कविता लिखने से यह खोज नहीं होती। यह खोज तो लंबी अंतर्यात्रा है। यह तो अंतस के निखार से होती है। सत्य कहीं बाहर थोड़े ही है कि तुम खोज लोगे। सत्य भीतर है, तुम्हारे भीतर दबा पड़ा है। वहीं खोदना होगा। और सत्य ही सुंदर है। और सत्य ही शिवम है। ये अलग-अलग नाम हैं। यह त्रिमूर्ति--सत्यम शिवम सुंदरम्--एक ही परमात्मा के तीन चेहरे फिर। यह ब्रह्मा, विष्णु, महेश से भी ज्यादा सुंदर त्रिमूर्ति है--सत्यम शिवम सुंदरम्। मगर कवि इसकी बात करते हैं। बात एक बात है, खोज बड़ी और बात है।

एक आदमी विवाह करना चाहता था। तो वह ऐसी पत्नी से विवाह करना चाहता था
जो भोजन बनाने में कुशल हो, क्योंकि होटलों का भोजन खा-खा कर परेशान हो गया था। बड़ी उसने खोजबीन की, आखिर स्त्रियों के एक कालेज में एक प्रोफेसर महिला उसे जंची। उस महिला के पास पीएचड़ी. थी पाकशास्त्र में। उसने उससे विवाह कर लिया। बड़ा खुश था कि सौभाग्यशाली हूं। लेकिन पहले ही दिन जब भोजन बनाने की बात उठी तो उसकी पत्नी ने कहा कि भोजन तो हमें होटल में चल कर करना पड़ेगा। भोजन कैसे बनाना, इस संबंध में मैं जानती हूं, भोजन मैंने कभी बनाया नहीं। भोजन के संबंध में व्याख्यान दे सकती हूं, शास्त्र लिख सकती हूं। आखिर मैंने पीएचड़ी. लिखी, थीसिस लिखी, मुझे भोजन पकाने के लिए समय कहां मिला!
भोजन कैसे बनाना, इस संबंध में जानकारी एक बात है और भोजन बनाना बिल्कुल दूसरी बात है। यह भी हो सकता है कि भोजन बनाने वाले को कुछ भी पता न हो कि भोजन कैसे बनाना। उससे अगर तुम व्याख्यान देने को कहो तो शायद वह दे भी न सके। उससे अगर तुम लेख लिखने को कहो तो शायद वह लिख भी न सके। भोजन बनाना एक और बात है।
इसलिए इस भूल में मत पड़ जाना कि कवि चूंकि सत्यम शिवम सुंदरम की बातें करते हैं और कहते हैं कि हम सत्यम शिवम सुंदरम के खोजी हैं, इसलिए वे खोजी हैं। नहीं, वे सिर्फ बातें ही करते हैं। बातें ही बातें हैं। न उन्हें सत्य से कोई संबंध है, न सुंदरम से, न शिवम से। मैं बहुत कवियों को जानता हूं, बहुतों से मेरा निकट परिचय है। सत्य की वे कैसे खोज करेंगे बिना ध्यान के? ध्यान के अतिरिक्त तो कभी कोई सत्य की खोज कर ही नहीं सका है। और जिसने सत्य नहीं जाना वह सत्य के दूसरे दो पहलू शिवम और सुंदरम कैसे जानेगा?
यह तो ध्यान की ही आंख है जो भीतर सत्य को देखती है, बाहर जगत में फैले हुए सौंदर्य को देखती है। यह तो ध्यान की ही आंख है जो भीतर सत्य, बाहर सौंदर्य और व्यक्तियों के अंतर-संबंधों में शिवम को देख पाती है। सत्य है तुम्हारी अंतर-अनुभूति। सौंदर्य है सृष्टि में छिपे हुए परमात्मा की प्रतीति। और शिवम है मनुष्य मनुष्य, मनुष्य और पशु, मनुष्य और पौधे, मनुष्य और पत्थर, इनके बीच जो संबंध है, उसका प्रसाद, उसका प्रसादपूर्ण रूप।
नहीं, तुकबंदों को इससे क्या लेना-देना! हां, सौ में कोई एकाध कवि होता है, वह भी विचार करता रहता है। और विचार करते-करते यह भ्रांति पैदा हो जाती है कि हमने जान लिया। और लोग बैठ ही जाते हैं भरोसा करके कि जान लिया, अब कहां जाना है! अगर बुद्ध, महावीर और कृष्ण से भी उनका मिलना हो तो भी उनकी उत्सुकता यह नहीं होगी कि कुछ सीख लें। उन्होंने तो मान ही लिया कि जो पाना था वह पा लिया है। इस जगत में सबसे ज्यादा अभागा व्यक्ति वही है जो हो तो बीमार, लेकिन अपने को स्वस्थ मानता हो; जो हो तो अज्ञानी, लेकिन ज्ञानी मानता हो; हो तो भोगी, लेकिन त्यागी मानता हो; हो तो संसारी, लेकिन संन्यासी मानता हो। क्योंकि जिसने अपने को अपने से विपरीत मान लिया उसके रूपांतरण की संभावना ही समाप्त हो गई।
विवाह के पंद्रह वर्षों के बाद श्रीमती चंदूलाल ने एक सुंदर लड़की को जन्म दिया। सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए। और खुशी के इस अवसर पर चंदूलाल ने एक बड़ी पार्टी का आयोजन किया, जिसमें शहर के सभी गणमान्य लोगों को निमंत्रित किया गया। बड़ा धूम-धड़ाका हुआ। लोगों की प्रसन्नता का कोई अंत न था, क्योंकि विवाह के पंद्रह वर्ष बाद कन्या का जन्म हुआ था। इस महान खुशी के अवसर पर चंदूलाल के मित्र ढब्बूजी ने श्रीमती चंदूलाल से कहा, भाभीजी, काश लड़की की जगह लड़का पैदा होता तो बस मजा आ जाता! चार चांद लग जाते! जैसे सोने में सुगंध आ जाती!
श्रीमती चंदूलाल बोलीं, अरे शुक्र मनाओ भइया कि लड़की ही हो गई। यदि मैं तुम्हारे मित्र चंदूलाल के भरोसे ही बैठी रहती तो यह लड़की भी न होती। और तुम्हारे कवि बस अपनी कविता के भरोसे बैठे हैं--न सत्यम होने वाला है, न शिवम्, न सुंदरम्। उनकी जीवन-दिशा बौद्धिक है, हार्दिक नहीं है।
तुम कहते हो, कवि बड़े संवेदनशील होते हैं। ऐसा कहा जाता है; ऐसा माना
भी जाता है कि होना चाहिए कवि को संवेदनशील। मगर ये तो अपेक्षाएं हैं,

आदर्श हैं; ऐसा होता नहीं। हां, कभी-कभी क्षण होते हैं कवि के जीवन में जब वह संवेदनशील होता है। उन्हीं क्षणों में थोड़ी-बहुत शायद झलक उसको चांद की मिल जाती हो। मगर ये क्षण तो आए और गए। और जब ये क्षण चले जाते हैं तो कवि साधारण लोगों से भी ज्यादा कठोर हो जाता है।
यह जीवन के समझने जैसे सूत्रों में से एक है। जो कभी-कभी किन्हीं क्षणों में बहुत संवेदनशील हो जाता है, वह फिर संतुलन बनाने के लिए, जब वे क्षण चले जाते हैं, तो बहुत कठोर हो जाता है।
जीवन में हमेशा संतुलन होता है। इसलिए तुम अक्सर देखोगे, जो स्त्री तुम्हें बहुत प्रेम करती है वह कभी-कभी तुम्हें बहुत घृणा भी करेगी। जो तुम्हारी सदा सेवा करती है, कभी-कभी अति क्रुद्ध भी हो जाएगी। मनोवैज्ञानिक तो कहते हैं कि जब पति और पत्नी में झगड़ा बंद हो जाए तो समझ लेना संबंध समाप्त हो गया। उनमें झगड़ा चलता है, वह इस बात का सबूत है कि उनमें अभी प्रेम चलता है।
यह बात उलटी लगेगी, मगर यह सच है। झगड़ा इस बात का सबूत है कि किन्हीं- किन्हीं तरल क्षणों में वे एक-दूसरे के प्रति बहुत प्रेम से भर जाते हैं। और फिर जब उन्हें याद आती है कि अरे, हम क्या कर गुजरे! किसके प्रति प्रेम प्रकट कर दिया! तो फिर बदला। जब तक बदला न ले लें तब तक फिर चैन नहीं आती। फिर जब कठोर हो जाते हैं बदले में, तो फिर पछतावा होता है कि अरे, अपने ही पति के प्रति, अपनी पत्नी के प्रति ऐसा दुर्व्यवहार! फिर अति प्रेम पैदा होता है। और यह खेल जिंदगी भर जारी रहता है। यह झूला है जो पति-पत्नी झूलते रहते हैं। ऐसे कई झूले हैं जीवन में और तरह-तरह के लोग झूला झूल रहे हैं। नागार्जुन की एक कविता हैः झूला झूलें जवाहरलाल!
जवाहरलालजी संवेदनशील व्यक्ति थे, बहुत कवि हृदय थे। मगर उतने ही कठोर भी, उतने ही क्रोधी भी। उतने ही तरल। भाव आ जाए तो सब कुछ करने को तैयार और जरा सी बात में बिगड़ भी उठें तो सब होश-हवाश खो दें।
मगर यह जवाहरलाल का ही मामला नहीं है, सभी जवाहरलाल झूला झूल रहे हैं।
एक अति से दूसरी अति पर, लोग घड़ी के पैंडुलम की तरह हैं। तुम अपने भीतर इस पैंडुलम को घूमता देखो और धीरे-धीरे इसके कम से कम विस्तार को कम करो, इसकी चाप को कम करो। धीरे-धीरे-धीरे एक दिन जब तुम्हारा पैंडुलम बीच में थिर हो जाएगा--कि जवाहरलाल झूला झूलेंगे ही नहीं, कि झूला बिल्कुल ठहर जाएगा--उस ठहरी हुई चित्त की दशा में कवि ऋषि हो जाता है। उस चित्त की ठहरी हुई दशा में चित्त के पार हो जाता है, चित्त का अतिक्रमण हो जाता है।
और तुमने पूछा अरुण कि क्या ध्यान और सृजन साथ-साथ संभव नहीं हैं? साथ-साथ ही संभव हैं। साथ-साथ न हों तो संभव ही नहीं हैं। कोई ध्यानी
हो और उसके जीवन में सृजनात्मकता न हो, तो समझना उसका ध्यान थोथा और पाखंड।
लेकिन सृजनात्मकता के सीमित अर्थ मत लेना। क्योंकि बुद्ध ने न तो कोई कविता रची, न कोई मूर्ति बनाई, न कोई पेंटिंग। लेकिन बुद्ध ने जो भी किया वह सभी सृजनात्मक है। लोगों की आत्माएं रंग दीं! पत्थर जैसे लोगों में परमात्मा की मूर्ति को निखार कर प्रकट कर दिया! अनेक-अनेक लोगों में चेतना के दीये जला दिए! उठे तो सृजन, बैठे तो सृजन। जो छुआ, मिट्टी को छुआ तो सोना बना दिया! सृजनात्मकता के सीमित अर्थ नहीं हैं। बुद्धों का सृजन सूक्ष्म है। वे कोई छैनी-हथौड़ी लेकर पत्थर में मूर्ति खोदेंगे, ऐसा नहीं है। पर उनके हाथ में भी छैनी-हथौड़ी है--दिखाई नहीं पड़ने वाली। और वे भी मूर्ति निर्मित करते हैं--लेकिन चैतन्य की; चिन्मय; मृण्मय नहीं। वे भी उघाड़ते हैं परमात्मा को, परम सौंदर्य को, मगर देखने वाले ही देख सकते हैं। सबको नहीं दिखाई पड़ेगा। वे भी वीणा के तार छेड़ते हैं, मगर वह वीणा तुम्हारे हृदय की वीणा है। और जिनके तार छिड़ गए हैं वही जानते हैं। जिन्होंने पीया है, वही उस स्वाद को पहचानते हैं।
ध्यान है अगर सच्चा तो सृजन तो होगा ही होगा, क्योंकि ध्यान परमात्मा
से जोड़ेगा और परमात्मा स्रष्टा है। परमात्मा से जुड़ कर फिर बचता क्या है-- सिवाय इसके कि तुम भी स्रष्टा हो जाओ! और जो सच्चे सृजनात्मक लोग हैं, वे सच्चे हो ही नहीं सकते जब तक कि ध्यान न हो। तब तक उनकी सृजनात्मकता सृजनात्मकता नहीं है, बस जोड़-तोड़ है।

जिनको हम सृजनात्मक कहते हैं आमतौर से, वे करते क्या हैं? कुछ इधर का लिया, कुछ उधर का लिया। कहीं का ईंट, कहीं का रोड़ा, भानुमती ने कुनबा जोड़ा! बस वे इधर से कुछ, उधर से कुछ जोड़-जाड़ कर... मगर उसको कोई सृजन नहीं कहा जा सकता; उसमें कुछ नया नहीं है, कुछ नूतन नहीं है; जोड़-तोड़ है।
अगर ध्यान न हो तो तुम जो भी रचोगे वह जोड़-तोड़ होगा, रचना नहीं होगी।
और अगर सृजनात्मकता न हो तो तुम जिसको ध्यान कहते हो वह थोथा होगा, मिथ्या होगा। आंख बंद करके आसन मार कर बैठ जाते होओगे, मगर बस गोबर-गणेश! भीतर कुछ भी नहीं। भीतर चल रही है खोपड़ी में वही दुनिया, वही उपद्रव, वही आपाधापी, वही विचारों और वासनाओं का व्यवसाय और व्यापार।
अरुण, ध्यान और सृजनात्मकता दोनों एक ही सत्य की अनुभूतियां हैं, एक
ही सत्य की अभिव्यक्तियां हैं।

तीसरा प्रश्नः ओशो! मैं जब भी पूना आता था, पूज्य दद्दाजी का अनंत स्नेह मुझ पर बरसता था। वे चले गए। और ओशो, आप भी जब प्रवचन और दर्शन से उठ कर वापस जाते हैं तो हृदय में टीस सी उठती है कि कहीं अगर इस सदगुरु का साथ छूट गया तो फिर हमारा क्या होगा? ऐसे बुद्ध सदगुरु तो सदियों में मिलते हैं! ओशो, हम संन्यासियों पर फिर यह अमृत-वर्षा कौन करेगा? बताने की कृपा करें।

कृष्ण सत्यार्थी! कल की न सोचो, आज काफी है। आज पीओ! कल के सोच में आज न गंवाओ।
जीसस अपने शिष्यों के साथ एक रास्ते से गुजर रहे थे और उन्होंने शिष्यों से कहा, देखो, खेत में खिले हुए लिली के फूल देखते हो! इन लिली के फूलों के सौंदर्य को देखते हो! इनके सौंदर्य का राज जानते हो? देखते हो इनकी महिमा! सम्राट सोलोमन भी, अपने सुंदरतम वस्त्रों में सजा हुआ, इतना सुंदर न था। रहस्य क्या है इन लिली के फूलों का?
शिष्य तो चुप रहे। उन्हें तो पता भी नहीं था कि यह भी कोई आध्यात्मिक प्रश्न है। लिली के फूलों का रहस्य उन्होंने कभी सोचा भी न था। जीसस ने स्वयं ही उत्तर दिया कि इनका रहस्य है कि ये कल के संबंध में नहीं सोचते। ये अभी जीते हैं, यहीं जीते हैं। इसीलिए इतने परम सुंदर हैं।
छोटे-छोटे बच्चों में तुम जो सौंदर्य देखते हो वह क्यों है? वह लिली
के फूलों का सौंदर्य है। तुमने छोटे बच्चों में कभी कोई कुरूप बच्चा देखा? बड़ा मुश्किल है कुरूप बच्चा खोजना। सभी बच्चे प्यारे लगते हैं। और आदमी के ही बच्चे नहीं, कुत्ते, बिल्ली, किसी के भी बच्चे। कुत्तों के पिल्ले देखे? सभी अच्छे लगते हैं, सभी प्यारे लगते हैं, सभी में कुछ महिमा मालूम होती है। लेकिन जैसे ही बड़े होते हैं, भेद पड़ने शुरू होते हैं--फिर चाहे मनुष्य के बच्चे हों चाहे पशुओं के। बाद में तो बहुत थोड़े से लोग सुंदर रह जाते हैं। कभी-कभार किसी सुंदर व्यक्ति से मिलना होता है--सच में जो सुंदर हो। नाक-नक्श का ही सौंदर्य नहीं, आत्मा का सौंदर्य जिसमें झलकता हो-- मुश्किल से कभी ऐसे व्यक्ति का मिलना होता है। क्यों? ये सारे सुंदर बच्चे कहां खो जाते हैं? ये कल की चिंता में लग जाते हैं। और जहां चिंता आई वहां चिता दूर नहीं है, समझ लेना। चिंता चिता है।
एक पुरानी कहानी है पंचतंत्र में। एक गांव में एक युवक था। उसका कुल काम इतना था--डट कर दूध पीना, दंड-बैठक मारना और हनुमानजी के मंदिर में पड़े रहना। और गांव के लोग उसे प्रेम करते थे, क्योंकि उसके कारण गांव की दूर-दूर तक ख्याति थी। उस जैसा पहलवान नहीं था। और उसको कुछ काम ही नहीं था और, बस दूध पीना, दंड-बैठक मारना और हनुमानजी का सत्संग करना। लेकिन सम्राट उससे बहुत नाराज था। क्योंकि सम्राट जब भी अपने हाथी पर बैठ कर निकलता मंदिर के सामने से, वह युवक कभी-कभी बाहर आ जाता और हाथी की पूंछ पकड़ लेता, और सम्राट अटक जाता। हाथी न चल पाए। ऐसा उस युवक का बल था!
अब तुम सोच सकते हो कि सम्राट बैठा हाथी पर, महावत हाथी को मार रहा है, धक्के दे रहा है कि चल! और वह युवक पीछे पूंछ पकड़े खड़ा है और हाथी सरकता नहीं! तो भद्द हो जाती, भीड़ लग जाती। तुम सम्राट की हालत देखते हो कैसी

बुरी हो जाती होगी--कि मेरी भी क्या स्थिति है! हाथी सही अपने पास, मगर किस काम का है!
आखिर सम्राट ने एक फकीर से कहा कि कुछ रास्ता बनाना पड़ेगा। क्योंकि बाहर निकलने में मैं डरता हूं कि कहीं वह युवक न मिल जाए। वह मेरे हाथी की दुर्गति कर देता है, मेरी दुर्गति कर देता है। वह तमाशा बना देता है! और वह मंदिर बीच बाजार में है। और एक ही रास्ता है, वहां से गुजरे बिना बन भी नहीं सकता। कहीं भी जाओ तो वहीं से गुजरना पड़ता है। और उस युवक को कोई धंधा नहीं है। बस वह वहीं बैठा रहता है हनुमानजी के मंदिर में। मैं इतना डरने लगा हूं कि मैं पहले खबर करवा लेता हूं कि वह युवक मंदिर में है कि कहीं गया हुआ है? वह कहीं जाता भी नहीं। बस या तो दंड-बैठक मारता रहता है या दूध पीता रहता है। बस हनुमानजी और वह, सत्संग! क्या करूं?
उस फकीर ने कहा, फिक्र न करो। तुम एक काम करो, युवक को बुलवाओ।
युवक बुलाया गया। फकीर ने कहा कि देख, कब तक लोगों पर निर्भर रहेगा? किसी दिन अगर लोगों ने खिलाना-पिलाना बंद कर दिया, फिर तेरा क्या होगा? युवक ने यह कभी सोचा ही न था--कि फिर क्या होगा? "फिर" कभी सवाल ही नहीं उठा था। फुरसत कहां थी फिर-इत्यादि की! उसने कहा, यह मैंने कभी सोचा नहीं। तो उस फकीर ने कहा, सोच, नहीं तो बाद में मुश्किल में पड़ेगा। जवानी हमेशा थोड़े ही रहेगी। आज है, कल खतम हो जाएगी। आज लोग खिलाते-पिलाते हैं, क्योंकि गांव की प्रतिष्ठा है कि हमारे पास पहलवान है, जैसा पहलवान कहीं भी नहीं। मगर कल बूढ़ा हो जाएगा, फिर क्या होगा? सुन मेरी। सम्राट राजी है, तुझ पर बहुत प्रसन्न है। वह तुझे एक रुपया रोज देने को राजी है। उन दिनों एक रुपया चांदी का एक महीने के लिए काफी था। एक रुपया रोज देने को राजी है, मगर एक छोटा सा काम करना पड़ेगा।
उस युवक ने कहा, काम! काम तो मैं कुछ जानता नहीं। दंड-बैठक लगा सकता हूं, दूध पी सकता हूं और हनुमानजी का सत्संग कर सकता हूं। काम मैं कुछ और तो जानता नहीं। पढ़ा-लिखा भी ज्यादा नहीं, बस हनुमान-चालीसा। वह भी मुझे याद है, वह भी मैं पढ़ नहीं सकता। तो काम मैं क्या करूंगा?
फकीर ने कहा, काम ऐसा देंगे जो तू कर सकता है। बड़ा सरल काम है। रोज सुबह छह बजे मंदिर का दीया बुझा दिया कर और रोज शाम छह बजे जला दिया कर। इसका तुझे एक रुपया मिलेगा।
उसने कहा, यह काम सरल है। मैं मंदिर में पड़ा ही रहता हूं, सांझ जला दूंगा छह बजे, सुबह छह बजे बुझा दूंगा और एक रुपया मिलेगा रोज। युवक राजी हो गया।
सम्राट ने कहा, इससे क्या होगा? और आपने एक मुसीबत कर दी। वह और दूध पीएगा! और यह कोई काम है?
फकीर ने कहा, तुम थोड़ा रुको, जल्दी न करो। हमारे अपने रास्ते होते हैं। महीने भर बाद इसका उत्तर दूंगा। महीने भर तक तुम गांव में बाहर निकलना ही मत।
महीने भर बाद फकीर ने कहा कि अब तुम अपने हाथी पर बैठ कर जाओ।
सम्राट निकला अपने हाथी पर। महीने भर से युवक राह भी देख रहा था कि सम्राट निकला नहीं! उसको भी मजा आता था--हाथी की पूंछ पकड़ कर रोक देना। उस दिन उसने हाथी की पूंछ पकड़ कर रोका कि घिसट गया, बुरी तरह घिसट गया, बड़ी भद्द हो गई। महावत को हाथी को मारना भी नहीं पड़ा। हाथी ही घसीट दिया युवक को।
सम्राट ने फकीर से पूछा, तुमने क्या किया? मैं तो सोचता था उलटी हालत
हो जाएगी।
उसने कहा कि नहीं, इसको फिक्र में डाल दिया। अब इसको एक चिंता बनी रहती है कि छह बजे कि नहीं? यह बार-बार लोगों से पूछता है, भाई, कितने बजे? छह तो नहीं बज गए? रात भी चैन से सो नहीं पाता, दो-चार दफे उठ आता है कि छह तो नहीं बज गए, वह दीया बुझाना है। शाम छह बजे ठीक दीया जलाना है। इसकी पुरानी मस्ती चली गई। इसको मैंने चिंता दे दी। इसकी मस्ती चली गई, इसका बल चला गया।
कृष्ण सत्यार्थी, कल की क्या चिंता! मैं यहां हूं, अभी हूं। तुम यहां हो, अभी हो। पीओ अमृत! कल से ही तो तुम्हें मुक्त करना है। और तुम मेरे

बहाने भी कल की चिंता लोगे, तब तो यह बात उलटी हो गई। कल जो बीत गया, बीत गया। कल जो आया नहीं, नहीं आया। और कभी आएगा भी नहीं। जो आता है वह सदा आज है। बस आज में जीओ।
तुम कहते होः "पूज्य दद्दाजी का अनंत स्नेह मुझ पर बरसता था।"
वह हो गया बीता कल। भूलो अतीत को। अगर उनका प्रेम तुम पर बरसा, तो तुमने एक ही आनंद जाना--किसी का प्रेम पाने का। मगर तुम्हें दूसरे आनंद की पहचान नहीं कि वे कितने आनंदित थे प्रेम देने में! ऐसा ही अब तुम प्रेम दो। और मैं तुमसे कहता हूं--प्रेम पाने में कुछ भी नहीं है, प्रेम देने में अनंत आनंद है! प्रेम पाने में आखिर तुम भिखारी होते हो, प्रेम देने में तुम सम्राट होते हो।
तुम तो पूज्य दद्दाजी से थोड़े दिन से परिचित थे, मुझे तो उन्होंने जन्म दिया, तो जीवन भर से मैं उन्हें जानता था। उनका एक ही आनंद थाः बांटो! जो भी है, बांटो! उनकी जो तस्वीरें मुझे ख्याल हैं, वे बस सबका सार एक ही है कि बांटो, जो भी है। नहीं भी उनके पास कुछ होता तो भी बांटने की ही चेष्टा में वे संलग्न रहते थे। उन्हें बांट कर आनंद मिला। बांटते-बांटते उन्हें बुद्धत्व मिल गया! तुम कब तक लेते रहोगे? एक सीख पकड़ लो।
तुमने घटना का एक ही पहलू देखा कि वे तुम्हें प्रेम देते थे और तुम्हें अच्छा लगता था। मगर तुमने घटना का दूसरा और गहरा पहलू नहीं देखा कि उनको प्रेम देने में कितना अच्छा लगता था! और वही असली बात है। प्रेम दो, और तुम पाओगे कि तुम्हारा भी आनंद अनंतगुना हो गया।
दोनों हाथ उलीचिए, यही सज्जन को काम!
जैसे नाव में पानी भर जाता है तो आदमी दोनों हाथ उलीचता है, ऐसा जो भी तुम्हारे पास हो, दोनों हाथों से उलीचो, बांटो। और जितने ज्यादा लोगों को बांट सको उतना ही तुम्हारा आनंद फैलता जाएगा। प्रेम का जितना तुम्हारा विस्तार होगा उतनी ही तुम्हारे आनंद की गहराई होगी।
मगर कल में न अटको। कल में अटके तो आंसुओं में उलझ जाओगे। जो बीता सो बीता। जो गया सो गया। अब लौट-लौट कर पीछे मत देखो।
तुम न केवल पीछे देख रहे हो, तुम आगे भी देख रहे हो। और पीछे और आगे जुड़े हैं। अतीत और भविष्य संयुक्त हैं। जो पीछे देखता है वही आगे भी देखता है। इस दृष्टि से हमारी भाषा दुनिया की अदभुत भाषा है। हम बीते हुए दिन को भी कल कहते हैं और आने वाले दिन को भी कल कहते हैं, क्योंकि दोनों एक से हैं। दुनिया की किसी भाषा में दोनों का एक ही नाम नहीं है। इसलिए मुझे तो कई दफा मुश्किल हो जाती है, क्योंकि दुनिया में कोई और भाषा नहीं है जिसमें दोनों का नाम एक ही हो। तो कई दफा मुझे तय करना मुश्किल हो जाता है कि टुमारो का मतलब टुमारो कि यस्टरडे? यस्टरडे का मतलब यस्टरडे कि टुमारो?
हमारे पास शब्द है--कल, दोनों के लिए एक शब्द। और दोनों शब्द बने हैं काल से। काल यानी समय। और काल यानी मृत्यु भी! हमारी भाषा अनूठी है, उसमें ज्ञानियों की छाप है, उसमें बुद्धों के हस्ताक्षर हैं। उसमें कुछ धुन उनकी बजती रह गई है। ऐसी भी कोई भाषा नहीं है दुनिया में जिसमें मृत्यु और समय के लिए एक ही शब्द हो--काल। क्यों? क्योंकि समय ही मृत्यु है। जो समय में जीएगा वह मरेगा। जो समयातीत को जान लेगा, कालातीत को जान लेगा, उसकी फिर कोई मृत्यु नहीं है; वह अमृत है, वह शाश्वत है।
और काल से बने हैं कल। साधारणतः हम समझते हैं कि समय के तीन पहलू हैं-- कल, आज और आने वाला कल। नहीं, समय के केवल दो पहलू हैं--बीता कल और आने वाला कल। आज समय का हिस्सा नहीं है। अभी, यही क्षण, समय का हिस्सा नहीं है। बीता क्षण समय है। आने वाला क्षण समय है। समय अभाव का नाम है। जो है वह समय नहीं है। जो है वह तो परमात्मा है। जो है वह तो कालातीत है।
तो कृष्ण सत्यार्थी, तुम बीते कल में उलझे--कि दद्दाजी का प्रेम याद आता है। अब तुम जब भी यहां आओगे, उनकी कमी तुम्हें खलेगी। अतीत तुम पर बोझिल होता जाएगा। और अब उन्हें पाने का तो कोई उपाय नहीं। अब सिर्फ तुम परेशान हो सकते हो। और उसी परेशानी से अब एक नई परेशानी पैदा हो रही है।

तुम कहते हो कि जब आप प्रवचन से या दर्शन से उठ कर वापस जाते हैं, तो हृदय में टीस सी उठती है कि अगर इस सदगुरु का साथ छूट गया तो फिर हमारा क्या होगा?
भाई मेरे, तुम्हारा जो कुछ करना है अभी करो! होगा की बात ही मत लाओ। काल करै सो आज कर। कल पर मत छोड़ो। बहुरि करोगे कब! अगर कल पर छोड़ा तो कभी न कर सकोगे, क्योंकि कल कभी आता ही नहीं; जब भी आता है, आज। और आज में करने की तुम्हारी आदत नहीं; कल पर छोड़ते हो। तो छोड़ते ही चले जाओगे। जिसने कहा कल करेंगे, अच्छा होता वह कह देता कि नहीं करेंगे; उसमें कम से कम सचाई होती। कल करेंगे, इसमें झूठ है; इसमें अपने को छिपा लिया उसने; न करने की वृत्ति को दबा लिया; ओढ़ लिया ऊपर से पाखंड, मुखौटा चढ़ा लिया। दूसरों को धोखा होगा, वह तो ठीक है, खुद भी धोखा खा जाओगे।
पल में परलय होएगी, बहुरि करोगे कब।
पल में तो प्रलय हो सकती है। अभी हो, अभी नहीं हो जाओगे। दद्दाजी अभी थे, अभी नहीं--इसमें कुछ सीखो। साढ़े तीन बजे दोपहर मैं उनको देखने गया, बातचीत की, बैठे--और सांझ विदा हो गए!
पल में परलय होएगी, बहुरि करोगे कब।
कल पर मत टालो। आज भी बड़ा शब्द है, ज्यादा तो अच्छा हो--अब।
काल करै सो आज कर, आज करै सो अब।
पल में परलय होएगी, बहुरि करोगे कब।।
लेकिन लोग ऐसे मूढ़ हैं कि जीवन के श्रेष्ठतम सूत्रों से भी गलत अर्थ निकाल लेते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन ने एक मनोवैज्ञानिक से पूछा कि मैं क्या करूं? मेरे दफ्तर में लोग काम ही नहीं करते! जिससे कहो वही कहता हैः कल देखेंगे। कि कर लेंगे, क्या जल्दी पड़ी है! फाइलें इकट्ठी होती जाती हैं, कोई काम करता नहीं। महा अलाल इकट्ठे हो गए हैं। मैं क्या करूं?
मनोवैज्ञानिक ने कहा, यह सूत्र हरेक की टेबल पर टांग दो--
काल करै सो आज कर, आज करै सो अब।
पल में परलय होएगी, बहुरि करोगे कब।।
जंची बात नसरुद्दीन को, उसने कहा यह ठीक है। बनवा कर सुंदर तख्तियां हरेक कमरे में, हरेक कार्यकर्ता के सामने, हरेक कर्मचारी के सामने टांग दीं बड़े-बड़े अक्षरों में।
तीन दिन बाद मनोवैज्ञानिक ने फोन किया कि नसरुद्दीन, क्या हाल हैं? नसरुद्दीन ने कहा, अस्पताल में भरती हूं। आप आ जाएं। और देर न करें।
पल में परलय होएगी, बहुरि करोगे कब। आ ही जाएं शीघ्र, क्योंकि शरीर में फ्रैक्चर ही फ्रैक्चर हो गए हैं। क्या कमाल का सूत्र दिया आपने! मनोवैज्ञानिक तो बहुत हैरान हुआ। भागा, देखा तो पट्टियां ही पट्टियां बंधी हैं नसरुद्दीन पर! पलस्तर चढ़ा है--पैर पर, हाथ पर, खोपड़ी पर। पूछा, यह हुआ क्या? यह दुर्गति कैसे हुई?
उसने कहा, यह तुम्हारे सूत्र की कृपा है। अभी उठ नहीं सकता, नहीं तो वह मजा चखाता... । क्योंकि जैसे ही मैंने यह तख्ती टांगी, उपद्रव हो गया। वह जो खजांची था वह सारी तिजोरी लेकर नदारद हो गया। और एक चिट लिख कर छोड़ गया कि जिंदगी भर से सोच रहा था कि कब तिजोरी लेकर नदारद हो जाऊं, आपने क्या सूत्र टांगा कि मैंने सोचा बात तो बिल्कुल सच है--पल में परलय होएगी, बहुरि करोगे कब! सो मैं तो जाता हूं, जयरामजी की!
और वह जो मैनेजर था वह मेरी टाइपिस्ट को लेकर भाग गया। वह भी लिख कर नोट छोड़ गया कि नजर तो मेरी तुम्हारी टाइपिस्ट पर बहुत दिन से थी, मगर तुम्हारे डर से छिप-छिप कर छेड़ खानी करता था। मगर तुमने सूत्र क्या टंगवा दिया, मैंने भी सोचा बात तो सच है, जिंदगी यूं ही बीती जा रही है, ऐसे ही ख्वाब देखते-देखते। तो अब जा रहा हूं और तुम्हारी टाइपिस्ट को भी भगाए लिए जा रहा हूं। अब कहीं रहेंगे छिप कर और जीएंगे मौज से।
और मेरा जो दरबान है, वह एकदम भीतर घुसा और लगा मुझे पीटने। मैंने पूछा, भाई, तू यह क्या करता है? उसी ने ही ये मेरी हड्डी-पसली तोड़ दीं। उसने कहा कि चाहता तो कब से करना था यह कि तुम्हारी हड्डी-पसली तोड़ दूं। लेकिन यह सोच कर कि देखेंगे, फिर देखेंगे... बाल-बच्चों वाला आदमी हूं,

कोई झंझट हो, पुलिस हो, अदालत हो। मगर तुमने तख्ती क्या टांगी, मैंने कहा कि बात तो ठीक है।
मनोवैज्ञानिक ने कहा कि मैं बड़ा दुखी हूं। मुझे क्या पता था कि सूत्र
का ऐसा परिणाम होगा! अब यह सूत्र किसी को न दूंगा। मुझे क्षमा करो। बहुत दुख हो रहा होगा तुम्हें, जगह-जगह पीड़ा हो रही होगी।
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि जब हंसता हूं तभी दर्द होता है, वैसे नहीं होता।
मनोवैज्ञानिक ने कहा, हंसते किसलिए हो?
तो उसने कहा, हंसता इसलिए हूं कि क्या गजब दुनिया है! काहे के लिए सूत्र टांगा था और क्या हो गया! कैसे गजब के लोग हैं! इससे कभी-कभी हंसी आ जाती है भीतर ही भीतर तो दर्द होता है, हंसी में; नहीं तो वैसे तो सब शांत पड़ा हूं तो ठीक है।
कृष्ण सत्यार्थी, न तो बीते कल की सोचो, न आगे कल की सोचो। इस क्षण मैं हूं, इस क्षण तुम हो--इस मिलन को गहराओ। इस मिलन को पूर्ण बनाओ, इसे समग्र करो।
मन मृग बावरे
मृग-मरीचिका है जग,
अच्छा नहीं प्यारे
इससे लगाव रे!
प्यास बुझाने को
पोखर बहुत हैं यहां,
अच्छा नहीं प्यारे
सरवर का चाव रे!
प्राप्य की अवहेला
और वह भी अप्राप्यहित,
अच्छा नहीं प्यारे
जुए का दांव रे!
जो है उसे हम उसके लिए दांव पर लगाते रहते हैं जो नहीं है, या नहीं हो गया है। अच्छा नहीं दांव रे!
प्राप्य की अवहेला
और वह भी अप्राप्यहित,
अच्छा नहीं प्यारे
जुए का दांव रे!
मगर यहां सब यही कर रहे हैं। जागो! इससे बचो! और मत चिंता लो कि मेरा साथ छूट गया तो फिर क्या होगा! सारी शक्ति इसमें लगाओ कि साथ है तो कुछ हो। फिर क्या होगा, साथ छूट गया। जब साथ होकर कुछ न हुआ तो साथ छूट कर क्या हो जाएगा? जब साथ रह कर कुछ नहीं पाया तो साथ छूटने में भी क्या खो दोगे?
और अगर साथ रह कर कुछ पा लो तो साथ छूटेगा ही नहीं, इतना मेरी तरफ से आश्वासन है। अगर मेरी सुनो, अगर मेरे साथ जुड़ जाओ--और वह अभी हो सकता है, कल नहीं होगा--तो साथ नहीं छूटेगा।
दद्दाजी और तुम्हारा साथ छूट गया; मेरा और उनका साथ नहीं छूटा है। इसलिए मेरी आंखें गीली भी नहीं हुईं। साथ ही नहीं छूटा है तो आंखें गीली करने का प्रयोजन क्या है? मैं उन्हें खुशी से विदा दे दिया, क्योंकि विदा में वे कहीं जा ही नहीं रहे हैं। यहां कुछ मिटता नहीं है।
मगर हमारा साथ ही कहां है, इसलिए छूट जाता है। अब तुम चौंकोगे। मैं कहता हूंः साथ नहीं है, इसलिए छूट जाता है। साथ हो तो छूटता ही नहीं।
साथ बना लो। और इसे कल पर मत टालो। यह जुआ महंगा पड़ सकता है। साथ बन जाए जो क्रांति हो जाए।
बांध सकते हैं न मुझको
जड़ जगत के क्षुद्र बंधन।
रोक सकते हैं न मेरा
मार्ग झंझा या प्रभंजन।
मैं नहीं हिम, जो कि रवि के प्रखर कर से पिघल जाता।

मैं नहीं अलि, जो मुकुल पर मुग्ध हो पथ भूल जाता।
मैं नहीं शतदल, जिसे जब,
चाहता सविता खिलता।
मैं नहीं चातक, जिसे जब,
चाहता स्वाति पिलाता।
मैं न केकी-कोकिला, घन
घुमड़ कर जिनको मना लें।
या शलभ, जिनको कोई भी
दीप दीपित कर बुला लें।
मैं, न होकर भी नहीं हूं,
रिक्तता का अंश आली।
दासता की आज मैंने
शृंखलाएं तोड़ डालीं!
और दासता की दो हीशृंखलाएं हैंः दो कल--बीता कल, आने वाला कल। इनकी ही तुम्हारे ऊपर जंजीरें हैं। इन दो को तोड़ डालो। फिर तुम्हें कोई भी न रोक सकेगा--न तूफान, न आंधी; न झंझा, न प्रभंजन। फिर तुम परमात्मा में आरूढ़ हो गए। और परमात्मा में आरूढ़ हो जाओ तो ही सदगुरु के साथ का कुछ अर्थ हुआ, तो ही किसी बुद्ध के पास बैठने में सार्थकता है।
कृष्ण सत्यार्थी, छोड़ो कल, छोड़ो काल। डूबो दो क्षणों के बीच में जो है अंतराल, उसमें। वही द्वार है परमात्मा का, शाश्वत का, सनातन का। एस धम्मो सनंतनो!
आज इतना ही।

काहे होत अधीर
सत्रहवां प्रवचन

कारज धीरे होत है

सोई सिपाही मरद है, जग में पलटूदास।
मन मारै सिर गिरि पड़ै, तन की करै न आस।।
ना मैं किया न करि सकौं, साहिब करता मोर।
करत करावत आपु है, पलटू पलटू सोर।।
पलटू हरिजन मिलन को, चलि जइए इक धाप।
हरिजन आए घर महैं, तो आए हरि आप।।
वृच्छा बड़ परस्वारथी, फरैं और के काज।
भवसागर के तरन को, पलटू संत जहाज।।
पलटू तीरथ को चला, बीच मां मिलिगे संत।
एक मुक्ति के खोजते, मिलि गई मुक्ति अनंत।।
पलटू मन मूआ नहीं, चले जगत को त्याग।
ऊपर धोए क्या भया, भीतर रहिगा दाग।।
सीस नवावै संत को, सीस बखानौ सोय।
पलटू जो सिर न नवै, बेहतर कद्दू होय।।
सुनिलो पलटू भेद यह, हंसि बोले भगवान।
दुख के भीतर मुक्ति है, सुख में नरक निदान।।
बिन खोजे से न मिलै, लाख करै जो कोय।
पलटू दूध से दही भा, मथिबे से घिव होय।।
गारी आई एक से, पलटे भई अनेक।
जो पलटू पलटै नहीं, रहै एक की एक।।
जल पषान के पूजते, सरा न एकौ काम।
पलटू तन करु देहरा, मन करु सालिगराम।।
कारज धीरे होत है, काहे होत अधीर।
समय पाय तरुवर फरै, केतिक सींचो नीर।।

खंजर है कोई, तो तेगे-उरियां कोई
सरसर है कोई, तो बादे-तूफां कोई
इंसान कहां है? किस कुर्रे में गुम है? यां तो कोई हिंदू है, मुसलमां कोई
जिस वक्त झलकती है मनाजिर की जबीं रासिख होता है जाते-बारी का यकीं करता हूं जब इंसान की तबाही पे नजर दिल पूछने लगता है, खुदा है कि नहीं? जीना है तो जीने की मुहब्बत में मरो गारे-हस्ती को नेस्त हो-हो के भरो नौ-ए-इन्सां का दर्द अगर है दिल में
अपने से बुलंदतर की तखलीक करो
मखलूक की खिदमत से बहुत डरता है
अपने ही लिए आठ पहर मरता है
अफसोस तेरा इना-ए-जामिद ऐ शख्स
अपने से तजावुज ही नहीं करता है
मनुष्य को देखो, जैसा मनुष्य है, जैसा मनुष्य आज हो गया है, तो सच ही परमात्मा पर भरोसा नहीं आता कि परमात्मा भी हो सकता है।
वृक्षों को देख कर शायद आस जगे, पक्षियों को देख कर शायद तुम्हारे भी पंख फड़फड़ाएं, पशुओं की आंखों में झांक कर शायद परमात्मा की थोड़ी झांई पड़े। पर आदमी! आदमी इतने दूर निकल गया है, आदमी ने परमात्मा की तरफ पीठ कर ली है। खंजर है कोई, तो तेगे-उरियां कोई
सरसर है कोई, तो बादे-तूफां कोई
इंसान कहां है? किस कुर्रे में गुम है?

यां तो कोई हिंदू है, मुसलमां कोई
मुसलमान मिल जाएगा, हिंदू मिल जाएगा, ईसाई मिल जाएगा, जैन मिल जाएगा, बौद्ध मिल जाएगा; मगर आदमी! आदमी मिलना बहुत कठिन है। और जो आदमी है वह हिंदू नहीं हो सकता, मुसलमान नहीं हो सकता। आदमियत उतनी छोटी सीमाओं में बंध नहीं सकती। आकाश को कैसे बंद करोगे आंगनों में? सत्य को कैसे जंजीरें पहनाओगे शब्दों की? अनिर्वचनीय के कैसे शास्त्र निर्मित करोगे? हार्दिक को बुद्धि से कैसे समझोगे? कैसे समझाओगे?
सब शास्त्र ओछे पड़ जाते हैं। सब मंदिर-मस्जिद छोटे पड़ जाते हैं। परमात्मा इतना बड़ा है, उस बड़े परमात्मा को तो सिर्फ आकाश जैसा हृदय ही सम्हाल सकता है। और आकाश जैसे हृदय पैदा हो सकते हैं; संभावना हमारी है; बीज हममें है।
जिस वक्त झलकती है मनाजिर की जबींरासिख होता है जाते-बारी का यकींकरता हूं जब इंसान की तबाही पे नजरदिल पूछने लगता है, खुदा है कि नहीं?
आज अगर परमात्मा पर संदेह उठा है तो उसका कारण यह नहीं है कि परमात्मा नहीं है; उसका कारण यह है कि आदमी परमात्मा का कोई प्रमाण ही नहीं दे रहा है। आदमी को देख कर परमात्मा के अस्तित्व की आशा नहीं बंधती। आदमी को देख कर, कुछ आशा रही भी हो, तो बुझ जाती है; कोई दीया टिमटिमाता भी हो भीतर, तो समाप्त हो जाता है, अमावस की रात घिर जाती है।
जीना है तो जीने की मुहब्बत में मरो
आदमी होने की कला एक ही है और वह है प्रेम--जीवन से प्रेम--इतना कि मरना
भी पड़े उस प्रेम के लिए तो कोई हंसते हुए मर जाए, कोई गीत गाते हुए मर जाए, कोई नाचते हुए मर जाए!
जीना है तो जीने की मुहब्बत में मरो
और जीने की भी कला यही है। बड़ा उलटा लगेगाः जीने की कला है जीने की मुहब्बत में मरना। जो जीवन को जोर से पकड़ता है उसका जीवन नष्ट हो जाता है। जो जीवन को भी जीवन के लिए छोड़ने को तत्पर होता है उसके ऊपर विराट जीवन उतर आता है।
जीना है तो जीने की मुहब्बत में मरोगारे-हस्ती को नेस्त हो-हो के भरो
अभी तो तुम्हारी जिंदगी क्या है? गारे-हस्ती! एक गड्ढा है अस्तित्व का! एक खालीपन! एक सूनापन! एक रिक्तता! जहां न फूल खिलते हैं, न पक्षियों के गीत गूंजते हैं, न आकाश के तारे झलकते हैं। तुम्हारे भीतर अभी है क्या? सिर्फ एक उदासी है, एक ऊब है! किसी तरह जिंदगी को ढोए जाते हो, यह दूसरी बात है। सिर्फ श्वास लेते रहने का नाम जीना नहीं है। जब तक जीवन एक नृत्य न हो, एक रक्स न बने, एक उत्सव न हो, एक समारोह न हो; जब तक जीवन फूलों की एक माला न बन जाए; जब तक जीवन तारों की एक दीपावली न बन जाए--तब तक तुमने जीवन जाना ही नहीं जानना; समझ रखना कि जीवन समझा ही नहीं अभी; अभी जीवन में प्रवेश ही नहीं हुआ, जीवन के मंदिर के बाहर ही बाहर घूमते रहे हो।
जीना है तो जीने की मुहब्बत में मरोगारे-हस्ती को नेस्त हो-हो के भरो
और जीवन का यह जो गड्ढा तुम्हें अनुभव होता है--यह खालीपन, यह रिक्तता,
यह अर्थहीनता, यह शून्यता--इसे भरने का उपाय जानते हो? इसे भरने का उपाय बड़ा अनूठा है। इसलिए संतों की वाणी अटपटी है। अपने को मिटा-मिटा कर ही इसको भरा जा सकता है। और तुम अपने को बचा-बचा कर भरना चाहते हो।
बचाओगे तो खाली रह जाओगे--जीसस कहते हैं--और मिट सको तो आज ही भर जाओ। मिटने को मैंने संन्यास का नाम दिया है--मिटने की कला, मरने की कला। लेकिन मरने की कला केवल कदम है जीवन की कला की तरफ। मिटने की कला होने की कला का सूत्र है।
नौ-ए-इन्सां का दर्द अगर है दिल मेंअपने से बुलंदतर की तखलीक करो
और अगर सच में ही मनुष्य होना चाहते हो, मनुष्य को जन्म देना चाहते हो अपने भीतर, एक नये मनुष्य का आविर्भाव करना चाहते हो... क्योंकि पुराना तो सड़-गल गया। तुम्हें जो पाठ पढ़ाए गए थे सब व्यर्थ साबित हुए। तुम्हें जो सूत्र समझाए गए थे वे काम नहीं आए। जिन्हें तुम सेतु समझ कर चले थे वे ही तुम्हें डुबाने का कारण हो गए हैं। तुमने कागज की नावों पर सवारी की है। तुमने शब्दों और ज्ञान के जाल से ही जीवन को जीने की कोशिश की है। और इसलिए

जीवन तो तुम्हारे हाथ में नहीं है; जीवन के नाम पर एक धोखा है, एक आत्मवंचना है। अगर सच्चे जीवन को जीना हो, अगर अपने भीतर एक नये मनुष्य को जन्म देना हो तो एक काम करना पड़ेगा--
अपने से बुलंदतर की तखलीक करो
जो तुमसे विराट है उसका आविष्कार करो। और तुमसे विराट तुम्हें घेरे हुए है। उसी का नाम परमात्मा है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। परमात्मा उस विराट का नाम है जो तुम्हें घेरे हुए है; जो तुममें श्वास बन कर आता है; जो तुममें रक्त बन कर बहता है; जो तुम्हारे हृदय की धड़कन है; जो तुम्हारी आंखों की ज्योति है, चमक है; जो तुम्हारा प्रेम है, प्रार्थना है, तुम्हारा काव्य है, तुम्हारा संगीत है; जो तुम्हारा अस्तित्व है; जो तुम्हारे प्राणों का प्राण है; जिसने तुम्हें बाहर और भीतर सब तरफ से घेरा है--उस विराट का नाम ही परमात्मा है!
लेकिन आदमी अपने में बंद है। आदमी सोचता है मैं काफी। जिसने सोचा ऐसा
कि मैं काफी, उसने अपनी कब्र बना ली जीते जी। उसकी जिंदगी सिर्फ सड़ने की एक लंबी प्रक्रिया होगी। उसके जीवन से दुर्गंध उठेगी, सुगंध नहीं। वह बीज की तरह ही आया और बीज की तरह ही सड़ जाएगा। फूल नहीं खिलेंगे, सुवास नहीं मुक्त होगी। वह अंडे में ही मर जाएगा, अंडे के कभी बाहर न आ पाएगा--कि पंख फैलाता, खुले आकाश की स्वतंत्रता का आनंद लेता, कि चांद-तारों को छूने की अभीप्सा से भरता, कि बदलियों के पार उठता! उसके लिए कभी सूरज नहीं ऊगेगा। उसकी जिंदगी अमावस की रात ही रहेगी, जिसमें तारे भी नहीं; तारे तो दूर, एक टिमटिमाता दीया भी नहीं।
अपने से विराट का आविष्कार, अपने से बड़े की खोज...
लेकिन आदमी डरता क्यों है अपने से बड़े की खोज के लिए?
अपने से बड़े की खोज के लिए खुद को झुकना होता है। सिर झुकाने की कला, समर्पण की कला--तो ही अपने से विराट को पाया जा सकता है।
आज के पलटू के सूत्र उसी दिशा में बहुत अदभुत सूत्र हैं। खूब प्यार से सुनना! खूब प्रीति से अपने भीतर लेना!
सोई सिपाही मरद है, जग में पलटूदास।
मन मारै सिर गिरि पड़ै, तन की करै न आस।।
कह रहे हैंः वही सिपाही है मर्द--मन मारै सिर गिरि पड़ै! अपने मन को मिटा दे। अपने मैं को मिटा दे। अपने अहंकार को मिटा दे। ऐसा कि सिर गिर पड़े भूमि पर। बचे ही नहीं अस्मिता का कोई बोध। मैं हूं, यह भाव ही न रह जाए। और जहां मन मिटा वहां तन की आस मिट जाती है। मन ही तो तन की आस है। यह मन ही तो तुम्हें जन्मों-जन्मों में लाया है। यह मन ही तो तुम्हें चौरासी करोड़ योनियों में भटकाया है। यह मन ही तो तुम्हें कहां-कहां नहीं ले गया! इस मन ने तुम्हें जन्मों-जन्मों में कितनी यात्राएं करवाईं! और सब व्यर्थ! हाथ कुछ भी नहीं लगा। मुकाम आया नहीं, मंजिल आई नहीं। चलते रहे, चलते रहे, चलते रहे। थक गए हो, ऊब गए हो, मगर चले जाते हो, क्योंकि मन नई आशाएं बंधाए जाता है।
मन बड़ा कुशल है आशाएं बंधाने में। एक बार टूटती है आशा, जल्दी ही दूसरी जगा देता है। हजार बार टूटती हैं आशाएं, लेकिन मन नई-नई आशाओं का आविष्कार करता जाता है। वह कहता हैः रुको, थोड़ा और रुको; कल! आज जो नहीं हुआ, कल होगा। कभी जो नहीं हुआ वह भी हो सकता है। मन बड़ा राजनीतिज्ञ है; वह आश्वासन पर जीता है। और आश्चर्य तो यह है कि तुम धोखे पर धोखा खाए जाते हो! कब जागोगे? यह तन की आशा कब छूटेगी? और-और नई देहें लेने का भाव कब विदा होगा?
मन मारै सिर गिरि पड़ै, तन की करै न आस।
यह सिपाही की परिभाषा की है पलटूदास ने। यह तो संन्यासी की परिभाषा है। संन्यासी ही असली सिपाही है। संन्यासी ही मर्द है।
मुहब्बत को हम एक दरियाए-बेसाहिल समझते हैंकिनारा उसका गिरदाबे-बला में डूब कर जाना
प्रेम को हम एक ऐसा सागर समझते हैं जिसका कोई किनारा नहीं है। लेकिन उसका भी किनारा जाना जाता है, मगर केवल वे ही जान पाते हैं जो बीच भंवर में डूब जाते हैं; जो मझधार में डूब जाते हैं; जिन्हें डूबना आ गया; जिनकी

श्रद्धा इतनी प्रगाढ़ है कि जो जानते हैं मृत्यु के पार अमृत है; जो जानते हैं अगर मझधार में डूब गए तो किनारा मिल जाएगा--उस सागर का किनारा जिसका कोई किनारा नहीं है! उसका किनारा भी मझधार में डूबने वाले को मिल जाता है। कैसे मन मारें? क्या अर्थ है मन को मारने का? कहां है तलवार जिससे मन मारें?
ध्यान से मरता है मन। ध्यान है तलवार। ध्यान का अर्थ होता हैः विचार
के प्रति साक्षी-भाव। मैं विचार नहीं हूं, ऐसे बोध की प्रगाढ़ता। देखो विचार की धारा को। आते हैं विचार, जाते हैं विचार। जैसे दिन आता और रात आती; और वर्षा आती और गरमी आती; जैसे वसंत आता और पतझड़ आता; फूल खिलते और झरते--ऐसे ही विचार की सतत धारा है। तुम देखो। तुम सिर्फ द्रष्टा हो। तुम न कर्ता बनो न भोक्ता, बस--और तुम्हारे हाथ तलवार लग गई जो काट देगी मन को और गिरा देगी शीश को और मिटा देगी अहंकार को। मझधार में डूब जाओगे और पा लोगे किनारा।
मन मारै सिर गिरि पड़ै, तन की करै न आस।
ना मैं किया न करि सकौं, साहिब करता मोर।
करत करावत आपु है, पलटू पलटू सोर।।
कर्ता-भाव जाने दो। करने वाला तो मालिक है। तुम नाहक ही सोच रहे हो कि मैं करने वाला हूं। करने वाला कोई और है, जो छिपा है। जैसे कठपुतलियां नाच रही हों और परदे के पीछे कोई उनके धागों को हाथ में लेकर नचा रहा हो।
कठपुतलियों में भी अगर मन पैदा हो जाए तो वे भी सोचेंगी कि हम नाच रहे हैं। नाचती कठपुतली अहंकार से भर जाएगी। और जब लोग तालियां बजाएंगे तो कठपुतली की छाती फूल जाएगी। और उसे पता नहीं कि पीछे कोई धागे हाथ में लिए नचा रहा है, जो जब चाहेगा तब धागे खींच लेगा और नाच बंद हो जाएगा।
और तुम रोज देखते हो--आज किसी का नाच बंद हुआ, कल किसी का नाच बंद हुआ--
और फिर भी तुम यह भरोसा किए चले जाते हो कि हम कर्ता हैं! इस जगत में सबसे बड़ी भ्रांति है यह भाव कि मैं कर्ता हूं। और कर्ता का ही दूसरा पहलू भोक्ता है। कर्ता और भोक्ता एक सिक्के के दो पहलू हैं। और इन दोनों के पार एक साक्षी का भाव है--कि मैं केवल द्रष्टा हूं, मैं सिर्फ देख रहा हूं। पलटू ने प्यारा सूत्र कहाः ना मैं किया न करि सकौं...
मैंने कभी कुछ किया ही नहीं। और न करना मेरी सामर्थ्य है, न मैं कुछ कर सकता हूं।
ना मैं किया न करि सकौं, साहिब करता मोर।
वह साहिब, वह मालिक कर रहा है। मैंने देख लिए वे धागे, मैंने देख लिए
वे हाथ जो पीछे छिपे हैं परदे के।
जो द्रष्टा बनता है उसे दिखाई पड़ जाता है यह रहस्य। क्योंकि द्रष्टा बनते ही तुम मालिक हो जाते हो; तुम नहीं रहते, मालिक ही बचता है। द्रष्टा होते ही तुम परमात्मा के साथ लीन हो जाते हो। जब तक तुम कर्ता और भोक्ता हो, कठपुतली हो। जैसे ही द्रष्टा हुए, तुम कठपुतली नहीं हो। कठपुतली तो फिर देह है, मन है, और सब कुछ है; तुम हट गए पीछे; तुमने तो स्रष्टा के साथ अपना तादात्म्य पा लिया।
करत करावत आपु है, पलटू पलटू सोर।
खुद करता है और इस बेचारे पलटू का शोर मचता है। लोग कहते हैंः पलटू ने ऐसा किया, पलटू ने वैसा किया!
करत करावत आपु है, पलटू पलटू सोर।
और जिसने ऐसा जान लिया, उसके जीवन में साधना के बड़े नये अर्थ हो जाते हैं। फिर साधना भी कृत्य नहीं रह जाती, करने की बात नहीं रह जाती। फिर साधना भी वही कर रहा है, करा रहा है। फिर भजन और कीर्तन भी वही कर रहा है और करा रहा है।
रामकृष्ण को ऐसा होता था कि रास्ते चलते धुन बंध जाती थी। उनको कहीं
ले जाना मुश्किल होता था। क्योंकि चले जा रहे रास्ते पर और किसी ने कह दिया--जयरामजी! और बस काफी था उनके लिए। इतनी सी शराब, जयरामजी, बस एक घूंट--और वे वहीं बीच सड़क पर नाचने लगें! राम की जय हो तो बिना नाचे कैसे अंगीकार की जाए! तमाशा हो जाए। भीड़ लग जाए। ट्रैफिक रुक जाए। पुलिस का आदमी आकर लोगों को हटाने लगे। और जो भक्त उनके साथ गए होते थे उनको बड़ी

बेइज्जती मालूम पड़े कि वे भी रामकृष्ण के साथ तमाशा बन रहे हैं। बीच बाजार में भद्द होती। रामकृष्ण को बहुत समझाया भक्तों ने कि आप ऐसा न किया करें।
रामकृष्ण ने कहा, तुम समझते ही नहीं।
ना मैं किया न करि सकौं, साहिब करता मोर।
करत करावत आपु है, पलटू पलटू सोर।।
मैं कुछ करता हूं? रामकृष्ण कहते। तुम सोचते हो मैं भजन कर रहा था? तुम सोचते हो मैं नाच रहा था? वही नाचता है, अब मैं क्या करूं? परमात्मा को रोकूं? ऐसा जघन्य अपराध मुझसे नहीं हो सकता है। जो होगा सो होगा। जब होगा तब होगा। जैसा वह चाहेगा वैसा होगा। मैं बीच में नहीं आ सकता हूं। मैं हूं कौन? मेरी सामर्थ्य क्या? मेरा बल क्या? मैं तो केवल माध्यम हूं। एक बांसुरी हूं; जो गीत चाहे गाए! एक वाद्य हूं; जो राग चाहे छेड़े!
वो खुद अता करे तो जहन्नुम भी है बहिश्तमांगी हुई निजात मेरे काम की नहीं
इसलिए किसी सूफी ने ठीक कहा है कि वह खुद दे दे तो मैं नरक भी लेने को राजी हूं, उसका दिया हुआ नरक भी स्वर्ग है।
वो खुद अता करे तो जहन्नुम भी है बहिश्तमांगी हुई निजात मेरे काम की नहीं
मैं मांगूंगा भी नहीं, क्योंकि मांगने में भी कर्ता-भाव आ जाता है। और मांग कर अगर मुझे स्वर्ग भी मिलता हो तो किसी काम का नहीं, दो कौड़ी का है। मांगते ही वे हैं जिन्हें इस बात का पता नहीं कि वह तो स्वर्ग देने को प्रतिपल राजी है; तुम्हारी मांग के कारण स्वर्ग अटका हुआ है। क्योंकि तुम्हारी मांग के कारण तुम नहीं मिट पाते हो, मन नहीं मिट पाता है।
मन यानी मांग। मन यानी वासना। मन यानी आकांक्षा। यह मिले, वह मिले! और मिले, और मिले! इस सबके जोड़ का नाम मन है। फिर चाहे तुम बैकुंठ मांगो, चाहे मोक्ष मांगो, फर्क नहीं पड़ता। यह वही मन है जो धन मांगता था, पद मांगता था। मांग संसार है।
वो खुद अता करे तो जहन्नुम भी है बहिश्तमांगी हुई निजात मेरे काम की नहीं
पलटू हरिजन मिलन को, चलि जइए इक धाप।
हरिजन आए घर महैं, तो आए हरि आप।।
पलटू कहते हैंः खबर मिल जाए कहीं कि कोई हरिजन आया, कोई प्रभु का प्यारा आया, कोई प्रभु को जाना, कोई प्रभु को पहचाना हुआ आया, कोई प्रभु के रंग में रंगा हुआ आया, डूबा हुआ आया...
पलटू हरिजन मिलन को, चलि जइए इक धाप।
तो छलांग मार कर जाना, धीरे-धीरे मत जाना, देर मत करना। कहीं चूक न हो जाए।
पलटू हरिजन मिलन को, चलि जइए इक धाप।
एक ही छलांग में पहुंच जाना। ऐसा मत कहना कि कल मिल लेंगे, परसों मिल लेंगे, अभी क्या जल्दी पड़ी है!
ऐसे ही लोग हैं। मैं बंबई इतने वर्ष था, वहां मुझे नहीं मिले, यहां मिलने आते हैं। कहते हैं, जब आपने बंबई छोड़ा तब हमें याद आई। तुम देखते हो चैतन्य और चेतना को! बंबई में ही नहीं थे वे, जिस मकान में मैं था, वुडलैंड में, उसी मकान में रहते थे। लेकिन सोचा होगा--मिल लेंगे। अब यहीं तो हैं, रोज तो मौजूद हैं। कल मिल लेंगे, परसों मिल लेंगे। जब मैं बंबई छोड़ दिया तब उन्हें स्मरण आया। और फिर आए पूना सो बंबई नहीं गए। फिर रुके सो रुके रह गए। फिर मैं ही उनका घर, फिर मैं ही उनका सब कुछ हो गया। ऐसा समझो कि चेतना और चैतन्य के लिए मुझे बंबई छोड़ना पड़ा। पूना में भी बहुत होंगे कि जब तक मैं उनके लिए पूना न छोडूं तब तक उनसे मेरा मिलन न हो सकेगा। क्या जल्दी है, रोज इसी रास्ते से तो गुजरते हैं!
एक बार लंदन में एक बात का सर्वेक्षण किया गया कि लंदन में टावर है, जिसे देखने दूर-दूर से लोग आते हैं। लंदन का टावर लंदन की प्रसिद्ध देखी जाने वाली चीजों में एक है। सर्वेक्षण किया गया कि एक करोड़ आदमी लंदन में रहते हैं, इनमें से कितने लोगों ने लंदन का टावर देखा और कितने लोगों ने नहीं देखा? दस लाख आदमियों ने नहीं देखा! लंदन में रहते हैं। रोज बस से या

कार से या ट्रेन से टावर के पास से गुजरते हैं, मगर टावर पर चढ़ कर नहीं देखा। देख लेंगे, कभी भी देख लेंगे, जल्दी क्या है! और सारी दुनिया से लोग लंदन का टावर देखने आते हैं। हजारों मील का सफर करके लंदन का टावर देखने आते हैं। आदमी अजीब है!
एक बार तीन अमरीकी यात्री पोप से मिलने वैटिकन गए। पोप ने पूछा, कितनी देर रुकेंगे इटली में?
पहले यात्री ने कहा, तीन महीने रुकने का इरादा है।
पोप ने कहा, थोड़ा-बहुत देख लोगे।
सुन कर यात्री थोड़ा हैरान हुआ। तीन महीने कुछ कम समय होता है! और अमरीकी रफ्तार से देखने वाला आदमी तीन महीने में सारी दुनिया देख ले, चांद-तारे होकर आ जाए। अमरीकनों के बाबत कहा जाता है कि एक फ्रेंच एक अमरीकी से कह रहा था कि प्रेम सीखना हो तो फ्रांसीसियों से सीखो--कि वे पहले माथा चूमते, फिर आंखें चूमते, फिर ओंठ चूमते, फिर गर्दन चूमते। अमरीकी ने कहा, ठहरो-ठहरो, इतनी देर में तो अमरीकी सुहागरात मना कर वापस आ जाते हैं।
अमरीकी तो गति से जाता है। तीन महीने, इटली जैसा छोटा देश और थोड़ा- बहुत देख लूंगा! पोप होश में है? लेकिन अमरीकी शिष्टाचारवश कुछ बोला नहीं।
दूसरे से पूछा, तुम कितनी देर रुकोगे?
उसने कहा, मैं तो केवल एक महीने ही रुकने आया हूं।
पोप ने कहा, तुम काफी देख पाओगे।
अब तो बात और जरा उलझी हो गई। पहले से कहा, कुछ थोड़ा-बहुत देख लोगे, जो तीन महीने रुकेगा। और दूसरे से कहा, तुम काफी देख लोगे। इसके पहले कि वह कुछ कहता, उसने तीसरे से पूछा। तीसरे ने कहा कि मैं तो केवल एक सप्ताह के लिए आया हूं।
पोप ने कहा, तुम कुछ भी न छोड़ोगे, तुम पूरा इटली देख लोगे।
और बात महत्वपूर्ण है। जो सहज उपलब्ध होता है, हम सोचते हैं--कल, परसों, कभी भी देख लेंगे! जो सहज उपलब्ध नहीं होता, लगता है क्षण भी खोना उचित नहीं है। और हरिजन सहज उपलब्ध नहीं हैं।
महात्मा गांधी ने तो इस अदभुत शब्द को खराब कर दिया। यह शब्द पुराना है। इसका अर्थ होता थाः जिसने हरि को जान लिया। इसका वही अर्थ होता था जो बुद्धत्व का होता है--जो बुद्ध हो गया। उन्होंने इस प्यारे शब्द को खराब कर दिया। इसको जोड़ दिया शूद्रों से। इसकी महिमा खो गई। इस शब्द को आकाश से उतार कर धूल में डाल दिया।
ब्राह्मण भी हरिजन नहीं है, शूद्र तो क्या खाक हरिजन होगा! हरिजन कोई ऐसे होता है? सभी पैदाइश से शूद्र होते हैं। अगर मेरा गणित समझो तो सभी पैदाइश से शूद्र होते हैं। यहां दो ही वर्ण हैं दुनिया में--शूद्र और हरिजन। पैदाइश से सभी शूद्र होते हैं। लेकिन कुछ लोग अथक खोज से, आविष्कार से, अपने से बुलंदतर की तलाश से, विराट की तरफ आंखें उठाने से, मन को मारने से, सिर को चढ़ा देने से--हरिजन हो जाते हैं। हरिजन तो कोई कभी होता है--कोई बुद्ध, कोई कृष्ण, कोई महावीर, कोई कबीर, कोई नानक, कोई पलटू--कभी मुश्किल से कोई हरिजन होता है। महात्मा गांधी ने एक अदभुत शब्द को भ्रष्ट कर दिया, खराब कर दिया। शब्द की महिमा जाती रही। कहां शिखर था मंदिर का और कहां सड़क के किनारे पड़ा हुआ पत्थर हो गया!
पलटू ठीक कहते हैंः पलटू हरिजन मिलन को, चलि जइए इक धाप।
अगर पता चल जाए कि कहीं कोई हरि को उपलब्ध मौजूद है, तो फिर देर मत करना, इतनी भी देर मत करना। हजार काम छोड़ देना, अधूरे ही छोड़ देना। जो वाक्य बोल रहे हो, उसको भी आधे में छोड़ देना। उसका मतलब था--चलि जइए इक धाप! एक छलांग में निकल भागना। क्योंकि पता नहीं, हरिजन तो हवा की तरह आते हैं, हवा की तरह चले जाते हैं! कहीं ऐसा न हो कि हरिजन को बिना देखे जिंदगी बीत जाए।
क्यों हरिजन को देखने का इतना मूल्य है? क्योंकि काश तुम किसी व्यक्ति में खिले कमल को देख सको तो तुम्हें अपने भीतर के कमल की याद आ जाए!

लोग ताजमहल देखने आते हैं हजारों मील से, अजंता-एलोरा देखने आते हैं हजारों मील से। पश्चिम का बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक कार्ल गुस्ताव जुंग भारत आया तो अजंता गया, एलोरा गया, ताजमहल देखा, दिल्ली देखी, बंबई देखी, कलकत्ता देखा। जहां भी गया, जिनके पास भी गया, उन्होंने कहा कि एक काम जरूर करो, दक्षिण भारत में अरुणाचल पर महर्षि रमण हैं, उन्हें बिना देखे मत चले जाना। लेकिन वहां नहीं गया जुंग। अहंकारी था। वह सोचता था, मैं तो सब जानता ही हूं मन के संबंध में। रमण के पास जाने से क्या होगा? रमण मुझे और क्या बता देंगे? वह तो सोचता होगा कि मैं ही रमण को कई बातें बता सकता हूं जो उनको पता नहीं होंगी। मन के संबंध में मैं जितना जानता हूं, कौन जानता है!
और मन के संबंध में जरूर ही जुंग खूब जानता था, लेकिन एक बात नहीं जानता था कि मन को कैसे मारा जाए। और मन के संबंध में जानना एक बात है और मन को मारना और बात है। नहीं गया रमण को मिलने। और भारत कोई आए और किसी हरिजन को बिना खोजे चला जाए तो समझना कि भारत आया ही नहीं। क्योंकि भारत न अजंता है, न एलोरा है, न ताजमहल है, न दिल्ली, न बंबई, न कलकत्ता। भारत अगर कहीं जीता है तो किसी हरिजन के हृदय की धड़कन में जीता है। भारत भूगोल नहीं है, इतिहास नहीं है। भारत तो किसी हरिजन के हृदय की धड़कन है। भारत अध्यात्म है। भारत तो, मनुष्य से जो बुलंदतर है, उसकी खोज का एक प्रतीक है। भारत राजनीति नहीं है। लेकिन भारत के तथाकथित राजनीतिज्ञ घसीट-घसीट कर उसे राजनीति की कीचड़ में डाल रहे हैं।
और हरिजन को तुम्हें खोजना पड़ेगा। प्यासे को कुएं के पास आना पड़ता है। कुआं चाहे भी तो भी प्यासे के पास नहीं जा सकता। और अगर चला भी जाए तो भी प्यासा ऐसे कुएं से पानी नहीं पीएगा जो उसके पास आ गया हो। वह तो दुत्कार देगा। प्यासा तो जब खोजता है और लंबी यात्राएं करता है और अनेक-अनेक तरह के कष्ट सहता है यात्रा में--चढ़ाइयों पर, पहाड़ों पर, पर्वतों पर, जहां पहुंचना दुर्लभ है पहुंचता है--तब प्यास जगती है! ज्वलंत प्यास! और तब पानी के स्वाद का और पानी में छिपे जीवन का पता चलता है। तभी पीने का मजा है।
पलटू हरिजन मिलन को, चलि जइए इक धाप।
हरिजन आए घर महैं, तो आए हरि आप।।
और ख्याल रखना, अगर हरिजन के पैर तुम्हारे घर में पड़ जाएं, तुममें पड़ जाएं, तो स्वयं परमात्मा आ गया। क्योंकि हरिजन में और हरि में कोई भेद नहीं है। हरिजन में हरि से थोड़ा ज्यादा है। चौंकोगे तुम! हरि तो अप्रकट है। हरिजन अप्रकट भी है और प्रकट भी। हरिजन में हरि से थोड़ा ज्यादा है। हरि तो अदृश्य है। हरिजन अदृश्य भी और दृश्य भी। हरि तो बोलता नहीं, चुप है। हरिजन चुप भी है और बोलता भी। तो हरिजन में थोड़ा कुछ धन है; ऋण नहीं, थोड़ा धन।
और देर न करना, क्योंकि हरिजन जल्दी ही सरक जाएगा और हरि में विलीन हो जाएगा। कब यह बूंद कमल के पत्ते से सरक जाएगी और झील में खो जाएगी, नहीं कहा जा सकता। अब सरकी, अब सरकी। सरकी सरकी है। यह कभी भी हो सकता है। जरा सा हवा का झोंका आएगा और बूंद खो जाएगी। इसके पहले कि बूंद खो जाए झील में, देख लो उसके रूप को! भर लो उसके रूप से आंखें! देख लो उसके परम सौंदर्य को! उसके प्रसाद को पी लो जी भर कर! पलक-पांवड़े बिछा दो जब हरिजन का पता चले! बुला लाओ उसे, निमंत्रण दे दो! कोई भी कीमत चुकानी पड़े, चुका दो। लेकिन हरिजन के पैर के चिह्न तुम्हारे हृदय पर बन जाने दो।
हरिजन आए घर महैं, तो आए हरि आप।।
वृच्छा बड़ परस्वारथी, फरैं और के काज।
भवसागर के तरन को, पलटू संत जहाज।।
जैसे वृक्ष फलते हैं, लेकिन अपने लिए नहीं, सारे फल औरों के लिए--ऐसे
ही संत भी फलते हैं, अपने लिए नहीं, सारे फल औरों के लिए। अपना काम तो पूरा हो चुका है। सच पूछो तो परार्थ तभी हो सकता है जब स्वार्थ पूरा हो चुका हो।
जिसने स्वयं को जान लिया हो और स्वयं के अर्थ को जान लिया हो और स्वयं के अर्थ को सिद्ध कर लिया हो, उसमें से ही यह संभावना है कि अब ऐसे फल लगें जो दूसरों के हित लगें। जो आनंद को उपलब्ध हुआ है वह आनंद को बांट सकेगा।

जिसके भीतर की वीणा बज उठी है, अब ये स्वर जाएंगे दूर-दूर! दूर-दूर तक जाएंगे! और जहां भी कोई हृदय थोड़ा भी जीवंत होगा उसमें तरंगें उठाएंगे। इन फूलों की गंध अब यात्रा करेगी हवाओं पर चढ़ कर, हवाओं का अश्व बनाएगी और जाएगी उन नासापुटों तक जिन्हें गंध की थोड़ी भी सुधि है, थोड़ा भी बोध है। यह जो दीया संत के भीतर जला है, यह जो हरि का दीया जला है जिससे वह हरिजन हो गया है, इसकी रोशनी जरूर पहुंचेगी उन आंखों तक जो देखने में समर्थ हैं, जो भीतर की तरफ मुड़ी हैं, जो अंतर्मुखी हैं।
और जब किसी व्यक्ति में फल लगने लगते हैं औरों के लिए, तभी समझना आदमी होना सफल हुआ। सफल शब्द प्यारा है। सफल का अर्थ है जिसमें फल लगे। और फल तो सदा दूसरों के लिए लगते हैं। संत ही सफल है; शेष सब तो निष्फल; शेष सब तो बांझ हैं।
आदमी हैं शुमार से बाहरकहत है फिर भी आदमियत का
ऐसे तो भीड़ है आदमियों की और फिर भी आदमी की कमी है।
आदमी हैं शुमार से बाहरकहत है फिर भी आदमियत का
दुनिया भरी है, भीड़ ही भीड़ है, चार अरब आदमी हैं, भीड़ रोज बढ़ती जा रही है। मगर आदमी कहां! खोजते फिरो तो एक भी आदमी मुश्किल से मिलता है। मिल जाए तो समझना हरिजन मिला।
वृच्छा बड़ परस्वारथी...
वृक्ष हैं, वे तो बड़े परस्वार्थी हैं।
... फरैं और के काज।
भवसागर के तरन को, पलटू संत जहाज।।
इस भवसागर से अगर तरना हो तो सिवाय संतों के कोई और नाव नहीं बन सकता,
न कोई और माझी बन सकता है। जिन्होंने मझधार में डूब कर बे-किनारे वाले सागर का किनारा पा लिया है; जिन्होंने अपने में डूब कर, जिसे नहीं देखा जा सकता उसे देख लिया है--उनका ही सहारा मिल जाए। और उस सहारे के लिए कोई भी कीमत चुकानी पड़े तो कम है। जीवन भी देना पड़े तो कम है, क्योंकि जीवन तो वैसे ही चला जाएगा, वैसे ही जा रहा है।
पलटू तीरथ को चला, बीच मां मिलिगे संत।
एक मुक्ति के खोजते, मिलि गई मुक्ति अनंत।।
पलटू कहते हैंः मैं तो गया था तीर्थ की यात्रा को, मगर कृपा उसकी, अनुकंपा उसकी कि रास्ते में ही संत मिल गए, फिर तीरथ-वीरथ भूल गया। फिर तीरथ इत्यादि कौन पागल जाए! जीवित तीर्थ मिल गए!
पलटू तीरथ को चला, बीच मां मिलिगे संत।
एक मुक्ति के खोजते, मिलि गई मुक्ति अनंत।।
और पलटू ने कहाः हम तो सोचते थे एक मोक्ष मिलेगा, एक मुक्ति मिलेगी, तो धन्यभागी हो जाएंगे। लेकिन संतों को पाकर हमें अनंत मुक्ति मिल गई, अनंत मोक्ष मिल गए!
कुछ जज्बए-सादिक हो, कुछ इखलासो-इरादतइससे हमें क्या बहस, वो बुत है
कि खुदा है
असली बातों पर ध्यान दो!
कुछ जज्बए-सादिक हो...
कुछ सत्य की झलक हो। कुछ सत्य का प्रसाद हो, सौंदर्य हो। कुछ सत्य साकार हुआ हो।
कुछ जज्बए-सादिक हो...
निर्गुण सगुण बना हो, सत्य ने रूप धरा हो--उसी को हरिजन कहते हैं।
कुछ जज्बए-सादिक हो, कुछ इखलासो-इरादत
और कुछ प्रेम प्रकट हो रहा हो, ज्योतिर्मय हुआ हो। सत्य प्रकट हुआ हो
और प्रेम प्रकट हुआ हो, बस। वही प्रेम प्रकट कर सकते हैं जिनके भीतर सत्य का दीया जला हो, बाकी तो सब प्रेम झूठ। सब बातें हैं। प्रेम तो तभी सच्चा हो सकता है जब तुम्हारे भीतर सत्य का पदार्पण हुआ हो। जब तुमने अपने को जाना हो तभी तुम औरों को प्रेम दे सकोगे, अन्यथा नहीं। अन्यथा प्रेम के नाम पर सब शोषण है।
कुछ जज्बए-सादिक हो, कुछ इखलासो-इरादतइससे हमें क्या बहस, वो बुत है
कि खुदा है

फिर कोई फर्क नहीं पड़ता कि तुम मस्जिद गए कि मंदिर। फिर कोई फर्क नहीं पड़ता कि तुमने मूर्ति के सामने सिर झुकाया कि खुदा के सामने सिर झुकाया, कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम्हारे पास समझ साफ होनी चाहिए। जहां सत्य हो और जहां प्रेम हो, जहां प्रेम की तरंगें आंदोलित हो रही हों, जहां सत्य की किरणें जगमगा रही हों--वहां झुक जाना।
तेरे कूचे में रह कर मुझको मर मिटना गवारा हैमगर दैरो-हरम की खाक अब छानी नहीं जाती
और एक बार हरिजन मिल जाए तो एक ही भाव उठता है फिर--
तेरे कूचे में रह कर मुझको मर मिटना गवारा है
अब तो तेरी गली में पड़ा-पड़ा मर जाऊं तो भी आनंद है।
तेरे कूचे में रह कर मुझको मर मिटना गवारा हैमगर दैरो-हरम की खाक अब छानी नहीं जाती
अब कौन जाए मस्जिद और मंदिर, काबा और कैलाश, और काशी और गिरनार! कौन खाक को छानता फिरे! जिसे हरिजन मिल गया उसे तो परमात्मा का द्वार मिल गया।
अब सब तीर्थ फीके हैं और मुर्दा हैं। अब सब मंदिर खाली हैं, सब मस्जिदें सूनी हैं।
पलटू मन मूआ नहीं, चले जगत को त्याग।
ऊपर धोए क्या भया, भीतर रहिगा दाग।।
और पलटू कहते हैंः ध्यान रखना, जब तक मन न मर गया हो...
पलटू मन मूआ नहीं, चले जगत को त्याग।
तब तक जगत को त्याग कर भागने की कोशिश मत करना। जहां जाओगे वहीं जगत
बन जाएगा। क्योंकि तुम्हारा मन ही तो जगत का सूत्र है। इस मन को लेकर तुम हिमालय पर भी बैठोगे तो जगत ही बनेगा। इस मन से जगत ही बन सकता है। यह मन संसार का मूल आधार है। तुम जहां बैठोगे वहीं यह मन उपद्रव करेगा, वहीं यह मन अपने फैलाव शुरू कर देगा। यह हर कहीं अपनी दुकान लगा लेगा। यह मन तो बनिया है, पलटू ने कहा। इस वणिक से सावधान रहना।
एक व्यक्ति मरने के करीब था। उसने अपने शिष्य से कहा कि देख, बिल्ली
भर मत पालना। मरते वक्त! शिष्य ने पूछा, गुरुदेव, इस सूत्र का अर्थ भी समझा जाइए! किससे पूछूंगा? वेद के ज्ञाता हैं, उपनिषद के ज्ञाता हैं, गीता के ज्ञाता हैं। लेकिन यह, बिल्ली मत पालना, यह कौन सा अध्यात्म? लोग हंसेंगे अगर मैं किसी से पूछूंगा। इसका अर्थ बता जाइए जाने के पहले जल्दी से। गुरु ने कहा, अब तू पूछता है तो बताए देते हैं। मेरे गुरु जब मरे थे तो मुझे यही कह गए थे कि बिल्ली मत पालना। लेकिन मैंने उनसे अर्थ नहीं पूछा। तू ज्यादा होशियार है, तू अर्थ पूछ रहा है। और मैंने उनकी बात पर कुछ ध्यान नहीं दिया, मैंने समझा सठिया गए हैं। बूढ़े हो गए थे काफी। ब्रह्मज्ञान की चर्चा करते-करते, यह भी कोई बात है--बिल्ली मत पालना! लेकिन तूने पूछा तो ठीक किया, मैं तुझे अपनी कहानी कह दूं। गुरु तो कह गए थे कि बिल्ली मत पालना, मैंने कुछ ध्यान दिया नहीं, मैं तो हंसा। मैंने कहा, हो गए बिल्कुल... दिमाग से गए, काम से गए, इनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। यह कोई बात है! आई-गई हो गई। मैंने बात विस्मरण कर दी। फिर मैं जंगल में ध्यान करने लगा, तपश्चर्या करने लगा। लेकिन रोज मुझे गांव भिक्षा मांगने जाना पड़ता। और जब मैं गांव जाता तो चूहे मेरी लंगोटी कुतर जाते। जब तक मैं रहता तो लंगोटी पर नजर रखता, डंडा लिए बैठा रहता। लेकिन आखिर भीख मांगने मुझे जाना ही पड़ता गांव और चूहे कुतर जाते। या रात कभी मैं सोता तो चूहे कुतर जाते। मैंने गांव के लोगों से पूछा कि इन चूहों का क्या करें?
उन्होंने कहा, इसमें क्या है! एक बिल्ली पाल लो।
मैं अभागा कि मुझे तब भी याद न आई कि मेरा गुरु मुझसे कह गया है कि बिल्ली भर मत पालना। मैंने गांव वाले मूढ़ों की बात मान ली। गुरु को तो मैंने समझा सठिया गए हैं और गांव वालों को समझा कि समझदार हैं, सयाने हैं। बात तो सीधी है, एक बिल्ली पाल लो। बात खतम, बिल्ली चूहे खा जाएगी। न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। सो मैं एक बिल्ली पाल लिया।
बिल्ली चूहे तो खा गई, लेकिन एक झंझट, अब बिल्ली के लिए मुझे दूध मांगने जाना पड़ता। क्योंकि बिल्ली को कुछ खाने को तो चाहिए, नहीं तो बिल्ली मर जाए। बिल्ली मरे, चूहे फिर आ जाएं।

गांव के लोग भी थक गए। उन्होंने कहा कि महाराज, एक काम करो, हम आपको एक गाय ही भेंट दिए देते हैं। आप वहीं गाय रख लो, आप भी पीओ दूध, बिल्ली भी पीए दूध। यह रोज-रोज दूध मांगते फिरना और भिक्षा!
बात जंची, गाय पाल ली। मगर गाय के लिए घास लेने फिर गांव वालों के सामने... ।
गांव वालों ने कहा कि महाराज, आप पीछा ही नहीं छोड़ते। अब आप घास के लिए आने लगे! अरे इतनी जमीन पड़ी है जंगल में, हम साफ-सुथरी कर देते हैं। थोड़े में गेहूं बो दो, थोड़े में घास ऊगने दो। गाय के काम आ जाएगी घास, तुम्हारे काम आ जाएंगे गेहूं। आने की जरूरत न रहेगी।
बात जंची। फिर भी याद न आई कि बूढ़ा गुरु कह गया था कि बिल्ली मत पालना।
अब तो बात बिल्ली से बहुत आगे भी निकल चुकी थी। सो गांव वालों ने जमीन साफ कर दी, कुछ में घास उगवा दिया, कुछ में गेहूं डलवा दिए, कुछ में चावल, दालें। मगर यह फैलाव बड़ा हो गया, अकेले से सम्हले नहीं। पानी भी सींचना है, रखवाली भी करनी है, जानवरों से भी बचाना है। गांव वालों से कहा कि भइया, एक बहुत झंझट बढ़ा दी। अब तपश्चर्या, ध्यान इत्यादि का मौका ही नहीं मिलता। चौबीस घंटे ये खेत के पीछे लग जाते हैं।
गांव वालों ने कहा, ऐसा करो, एक विधवा है गांव में...
देखते हो बिल्ली कहां तक पहुंची! चीजें ऐसे चलती हैं, बिल्ली से विधवा
हो गई।
बड़ी साध्वी है, सच्चरित्र है। अकेली है, उसका कोई है भी नहीं। शरीर से
भी मजबूत है। आप विधवा को वहीं अपने आश्रम पर रख लो। वह खेती-बाड़ी भी जानती है, आप जानते भी नहीं खेती-बाड़ी, वह खेती-बाड़ी भी कर देगी, आपकी भी सेवा कर देगी, सुख-दुख में काम पड़ेगी, भोजन भी बना देगी, गाय की भी फिक्र कर लेगी। किसान की बेटी है। और आप अपनी तपश्चर्या इत्यादि जो करना है सो करना, वह सब सम्हाल लेगी।
यह बात जंची। और फिर जो होना था सो हुआ। फिर विधवा से धीरे-धीरे प्रेम
हो गया। विधवा पैर भी दबाए, रोटी भी खिलाए, स्नान भी करवाए। स्वभावतः, प्रेम हो गया। फिर बच्चे हुए। जो होना था सो हुआ! बिल्ली कहां तक पहुंची! फिर बच्चों के विवाह करने पड़े। बात बढ़ती ही गई, बढ़ती ही गई, बढ़ती ही गई। इस दुनिया में बात कोई रुकती ही नहीं, बढ़ती ही चली जाती है। फिर बात में से बात, बात में से बात।
तो उस मरते हुए गुरु ने कहा कि देख, तुझे मैं समझाए जाता हूं। यह मत समझना कि मैं सठिया गया हूं। बिल्ली भर मत पालना। यह भूल मैंने की, जिंदगी गई यह। अगली जिंदगी ख्याल रखूंगा कि बिल्ली नहीं पालनी।
मन साथ होगा तो बिल्ली नहीं पालोगे तो कुत्ता पालोगे। इससे क्या फर्क पड़ने वाला है कि क्या पालोगे? कुछ पालोगे। मन होगा, खेती न करोगे तो दुकान करोगे; फिर चाहे वह दुकान पूजा की ही क्यों न हो, यज्ञ-हवन की ही क्यों न हो। मन कुछ न कुछ करवाएगा। मन बिना कर्ता हुए नहीं रह सकता है। मन के प्राण ही उसके कर्ता होने में हैं।
इसलिए पलटू ठीक कहते हैंः
पलटू मन मूआ नहीं, चले जगत को त्याग।
ऊपर धोए क्या भया, भीतर रहिगा दाग।।
ऊपर-ऊपर धोते रहोगे, तुम्हारा त्याग सब ऊपर-ऊपर रहेगा और भीतर तो दाग बना ही हुआ है। दाग यानी मन। मन को धोना है। मन को ऐसा धोना है कि बह ही जाए।
लेकिन यह भूल हुई है। और अब भी जारी है। और लगता नहीं कि आगे भी रुकेगी। लोग मन से तो मुक्त होते नहीं और संसार से भाग खड़े होते हैं। भगवानदास भारती ने लिखा है कि मैं आचार्य तुलसी से मिला, तो जिसे भगवान बुद्ध ने विपस्सना कहा है और जिस प्रयोग को आप फिर से पुनरुज्जीवित कर रहे हैं, उसी को उन्होंने नया नाम दे दिया है--प्रेक्षा। और वही का वही ध्यान, सिर्फ नाम बदल दिया और वही का वही ध्यान लोगों को करवाते हैं। और वह भी ठीक से नहीं करवा पाते, क्योंकि खुद कभी किया हो तो ठीक से करवा पाएं।

भगवानदास ने देखा उसमें भी भूलें हो रही हैं, उसमें भी कुछ का कुछ समझा रहे हैं। तो पूछा कि महाराज, आपको ध्यान हुआ? आप ध्यान करके करवा रहे हैं?
तो उन्होंने कहा, पूरा चाहे न हुआ हो, कुछ न कुछ तो हुआ ही होगा!
उत्तर सुनते हो? पूरा चाहे न हुआ हो, कुछ न कुछ तो हुआ ही होगा। वह भी पक्का नहीं है! वह भी अनुमान है कि कुछ न कुछ तो हुआ ही होगा। ये कोई ज्ञानियों के वक्तव्य हैं? ये निर्बल नपुंसक वक्तव्य! ज्ञानी कहता है अपने अधिकार से कि ऐसा मैंने जाना है। मैं आया हूं होकर उस पार। तो बैठो मेरी नाव में!
अब ये कहते हैं, उस पार न पहुंचे होंगे तो कुछ न कुछ तो पहुंचे ही होंगे। पूरे न पहुंचे होंगे...
ध्यान भी कहीं पूरा और अधूरा होता है?
मैंने सुना है, दूसरे महायुद्ध में एक अंग्रेज सेनापति ने तोप से एक हवाई जहाज गिराया। और सब तो मर गए, लेकिन पायलट बच गया। वह भी जर्मन सेना का उतना ही बड़ा अधिकारी था जितने बड़े अधिकारी ने अंग्रेजी सेना के जहाज को गिराया था। उसे जिंदा देख कर अंग्रेज सेनापति ने उसे अस्पताल में भर्ती किया, उसकी बड़ी सेवा की। लेकिन चोटें बहुत लगी थीं उसे, उसका एक पैर काटना पड़ा। अंग्रेज सेनापति ने पूछा कि मैं कुछ सेवा कर सकता हूं?
तो उसने कहा, इतना भर करो, एक ही आकांक्षा है मेरी कि अपने देश की भूमि में ही दफनाया जाऊं। यह मेरा पैर तुम पार्सल से जर्मनी भेज दो मेरे घर। पैर भेज दिया गया। फिर उसका एक हाथ भी काटना पड़ा। फिर पूछा अंग्रेज सेनापति ने तो उसने कहा, यह हाथ मेरा पार्सल से घर भिजवा दो। हाथ भेज दिया गया। फिर दूसरा हाथ कटा, वह भी भेज दिया। फिर दूसरा पैर कटा, वह भी भेज दिया। जब यह चौथी बार पैर को भेजा जाने लगा तो अंग्रेज सेनापति ने उस जर्मन सेनापति से कहा, मित्र, एक बात बताओ। ऐसे धीरे-धीरे करके तुम भागने की कोशिश तो नहीं कर रहे हो? एक पैर भेज दिया, फिर एक हाथ भेज दिया, फिर एक पैर भेज दिया, अब चौथा भी भेजने लगे। कल कहोगे सिर भेज दो, परसों कहोगे अब धड़ भेज दो। तुम भागने की कोशिश तो नहीं कर रहे हो?
आचार्य तुलसी कहते हैं, पूरा न हुआ होगा, कुछ न कुछ तो हुआ होगा। एक हाथ को ध्यान हो गया, एक पैर को हो गया, फिर यह दूसरी टांग को हो गया, फिर एक कान को हो गया, फिर एक... इस तरह होते-होते पूरा हो जाएगा। जैसे ध्यान के भी कोई खंड होते हैं! ध्यान या तो होता है या नहीं होता। सौ डिग्री पानी गरम होता है तो तत्क्षण भाप हो जाता है। निन्यानबे डिग्री तक भाप नहीं होता, पानी ही है। गरम है, खूब गरम है, लेकिन भाप नहीं हुआ है। सौ डिग्री पर तत्क्षण भाप हो जाता है। फिर ऐसा नहीं कि फिर थोड़ा सा भाप हुआ और थोड़ा सा नहीं हुआ और फिर थोड़ा सा हुआ और थोड़ा सा नहीं हुआ। सौ डिग्री पर जैसे ही कोई बूंद पहुंचती है, तत्क्षण छलांग लग जाती है।
ध्यान की कोई क्रमिकता नहीं होती। हां, ध्यान के पहले तैयारी की क्रमिकता होती है--कि कोई पचास डिग्री गरम है, कोई साठ डिग्री गरम है, कोई सत्तर डिग्री गरम है। मगर ये सब गैर-ध्यान की अवस्थाएं हैं। निन्यानबे डिग्री जो गरम है वह भी अभी ध्यान में नहीं है; उतने ही गैर-ध्यान में है जितना शून्य डिग्री वाला। हां, ध्यान की छलांग के करीब ज्यादा है, मगर छलांग अभी नहीं हुई। छलांग या तो लगती है या नहीं लगती।
भगवानदास, अब मिलो आचार्य तुलसी को तो कहना, महाराज, कितना परसेंट हुआ, यह और बता दें। कुछ न कुछ? और वह भी नहीं कहते कि कुछ न कुछ हो ही गया है; वह भी कहते हैं कुछ न कुछ तो हुआ ही होगा, तभी तो समझाते हैं। उसका भी खुद भरोसा नहीं है!
और इस तरह के बेईमान--साधु हैं, संत हैं, मुनि हैं, महात्मा हैं! आचार्य तुलसी सात सौ साधुओं के गुरु हैं। इनको खुद ध्यान का पता नहीं है और सात सौ लोगों को ये नेतृत्व दे रहे हैं! अंधा अंधा ठेलिया, दोनों कूप पड़ंत। ये खुद तो गिरेंगे किसी कुएं में और यह सात सौ की कतार, यह भी इनके साथ कुएं में जाएगी। और अगर मैं सच कहता हूं तो खलती है बात, अखरती है बात।
भगवानदास को उन्होंने कहा कि तुम्हारे गुरु मुझे गालियां देते हैं।

गालियां नहीं दे रहा हूं। अब बेईमान को बेईमान कहने में कोई गाली है? क्या बेईमान को ईमानदार कहना पड़े? मैं तो जैसा है वैसा ही कह रहा हूं। अंधे को, चलो अच्छी भाषा में कहो सूरदासजी कहो, और क्या कहो! लेकिन जब तुम सूरदासजी कह रहे हो तब भी तुम कह तो यही रहे हो कि भइया, हो तो अंधे ही, मगर कोई झगड़ा-फसाद खड़ा न हो, इसलिए सूरदासजी कह रहे हैं। अंधे को क्या आंख वाला कहना पड़ेगा? मैं किसी शिष्टाचार में बंधा हुआ नहीं हूं। सत्याचार! शिष्टाचार नहीं। जैसा है वैसा ही कहूंगा। वैसा का वैसा। किसी को चोट लगे, लगे। अच्छा है चोट लग जाए तो। चोट लग जाए तो शायद थोड़ी जाग आए।
आचार्य तुलसी मुझे मिले थे तो मुझसे भी पूछ रहे थे कि ध्यान कैसे करूं? ध्यान इत्यादि कुछ कभी नहीं किया है। और मुझसे भी जो पूछ रहे थे तो उनके पूछने का ढंग जिज्ञासु का नहीं था। वही बेईमानी, वही दुकानदारी। क्योंकि जब मैं उन्हें समझा रहा था, तब उनकी समझने में उत्सुकता नहीं थी। उनके पास ही बैठे हुए मुनि नथमल, जिनको मैं मुनि थोथूमल कहता हूं--क्योंकि मैंने बहुत मुनि देखे, मगर इनसे थोथा मुनि नहीं देखा--वे मुनि थोथूमल को कहते जाते थेः नोट करो! नोट करो! मैं क्या कह रहा था, उस पर न ध्यान था, न उसे समझने की चेष्टा थी। फिक्र यह थी कि थोथूमल नोट कर लें। क्योंकि फिर थोथूमल ध्यान-शिविर लेने लगेंगे और लोगों को ध्यान समझाने लगेंगे। अब थोथूमल ध्यान-शिविर लेते हैं और लोगों को ध्यान समझाते हैं।
फिर मुझे आचार्य तुलसी ने कहा कि हमारे साधु-साध्वियों को आप ध्यान करवाएं।
मैंने कहा कि मैं चकित हूं, साधु हैं, साध्वियां हैं आपकी, आप हैं, बिना ध्यान के आप साधु-साध्वी हो कैसे गए? और आप तो साधु-साध्वियों के आचार्य हैं, उनके गुरु हैं! बिना ध्यान के यह बात ही अजीब है। यह तो ऐसा ही है कि न कभी दंड लगाए, न कभी बैठक लगाई और पहलवान हो गए! तो फिर हालत वही होगी कि एक पहलवान एक डाक्टर के पास गया और उसने कहा कि मैं पहलवान हूं। डाक्टर ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा और उसने कहा, पहलवान? तुम और पहलवान? एक मसल तो कहीं दिखाई पड़ती नहीं!
उसने कहा, इसीलिए तो आपके पास आया हूं कि मैं पहलवान हूं, अर्थात पहलवान होना चाहता हूं। कोई ऐसी दवा दो, कोई टानिक, कि मेरी भी मसलें उभर आएं।
डाक्टर ने टानिक दिया। तीन दिन बाद उस आदमी का फोन आया कि और तो सब ठीक है, मगर मैं उसका कार्क नहीं खोल पा रहा हूं। अब मसल ही नहीं है! जो टानिक आपने दिया, वह पता नहीं, तीन दिन हो गए कोशिश कर रहा हूं, कार्क नहीं खुलता। ऐसे ही तुम्हारे साधु-महात्मा हैं। कार्क खुलता नहीं, पहलवान होने का ख्याल है।
मुझसे कहा, मेरे साधु-साध्वियों को ध्यान करवाएं। मैंने कहा, मैं जरूर करवा दूंगा। लेकिन सारी चेष्टा एक ही थी कि किसी तरह ध्यान के संबंध में कुछ समझ में आ जाए--कैसे करवाया जाता है, कैसे किया जाता है। करना नहीं है, लेकिन कैसे करवाया जाए!
शुरू करवा दिया, नाम बदल लिया। मैंने विपस्सना समझाया था, उन्होंने उसका नाम प्रेक्षा कर लिया। यह केवल शाब्दिक अनुवाद है। विपस्सना का अर्थ होता हैः देखना। और प्रेक्षा का अर्थ भी होता हैः देखना। तो नाम बदल लिया। नाम बदलने से लोगों को ऐसा लगता है कि कोई नई चीज है, क्योंकि प्रेक्षा का कहीं कोई शास्त्रों में उल्लेख नहीं है। नया शब्द गढ़ लिया। शब्द गढ़ने में क्या लगता है! वही जो मैं उनसे कह आया था वे करवा रहे हैं।
और भगवानदास, तुमने जो गलतियां देखीं, अब तुमसे क्या छिपाना! तुम्हें बताए देता हूं। वे गलतियां भी मैं उनको बता आया था। वे उन्होंने नोट कर ली थीं। उसमें उनका कसूर नहीं है। वह मेरा मजाक था। वह मैं यह देख रहा था कि होता क्या है अब! वे गलतियां भी करवाएंगे, क्योंकि वे उनके नोट्स में हैं। और उन गलतियों से बचने का उनके पास कोई उपाय नहीं है। वे लाख उपाय करें तो भी पता नहीं लगा सकते कि कौन-कौन सी गलतियां मैंने उनको नोट करवाई हैं। जब तक वे ध्यान न करें, उनको गलतियों का पता नहीं चलेगा।
इसलिए मैं यहां बैठे-बैठे जान लूंगा, जिस दिन वे गलतियां छोड़ देंगे, उसका अर्थ होगा कि उन्हें ध्यान का अब स्वयं अनुभव होना शुरू हुआ। जरा सी

भूल पकड़ा दो, वह भूल ऐसी होती है जो कि परीक्षा बन जाती है। वह आदमी तभी तक पकड़े रहेगा जब तक उसको स्वानुभव न हो जाए। स्वानुभव होते से ही भूल छोड़ देगा।
पलटू मन मूआ नहीं, चले जगत को त्याग।
ऊपर धोए क्या भया, भीतर रहिगा दाग।
भीतर है असली दाग। मन जीवन को, सत्य को विकृत करता है। मन हर चीज को विकृत करता है। मन हर चीज को अपने रंग में, अपने ढंग में ढाल देता है। मन वही समझ सकता है जो समझ सकता है। तो मन अगर गीता पढ़े तो कृष्ण को नहीं समझता, अपने अर्थ निकालता है; कुरान पढ़े तो अपने अर्थ निकालता है।
चंदूलाल मुल्ला नसरुद्दीन से बोला, मुल्ला, मैं बहुत कम बोलने वाला आदमी हूं।
नसरुद्दीन ने कहा कि हां, वैसे तो शादी मेरी भी हो चुकी है।
तुम क्या अर्थ लोगे सुन कर, यह तुम पर निर्भर है।
शराबखाने में बैठे ढब्बूजी ने अपने जिगरी दोस्त चंदूलाल को बताया कि आजकल कम शराब पीने की मैंने नई तरकीब ईजाद की है। टेबल पर सामने ही घड़ी रख लेता हूं। घड़ी को देख कर ही शराब पीता हूं।
अरे, यह तो कुछ भी नहीं यार--चंदूलाल ने अपनी चांद पर हाथ फेर कर कहा-- अगर मेरा बस चले तो मैं घड़ी तो क्या घड़ा सामने रख कर पीऊं!
ढब्बूजी की पत्नी धन्नो मायके गई हुई थी। ढब्बूजी ने खाली समय व्यतीत करने के लिए संगीत सीखना शुरू कर दिया। एक सुबह वे संगीत का अभ्यास करने में तल्लीन थे, आलाप जारी था, अभी एक घंटा भी न हुआ होगा कि किसी ने दरवाजा पीटना शुरू कर दिया। सुरों की गहराई में डूबे हुए ढब्बूजी उठे, दरवाजा खोला, तो एक पुलिस इंस्पेक्टर पिस्तौल ताने गुर्राते हुए बोला, मुझसे न बच सकोगे। बड़े-बड़े सूरमा मेरे नाम से थर्राते हैं। भागने की कोशिश मत करना। जल्दी बताओ, लाश कहां है? किधर छुपाई है? यह सब इंस्पेक्टर एक सांस में कह गया।
हकबकाए से ढब्बूजी बामुश्किल बोले कि आखिर बात क्या है?
इंस्पेक्टर ने कहा, ज्यादा बनो मत। अभी-अभी तुम्हारे पड़ोसी ने सूचना
दी है कि तुमने राग बागेश्वरी की हत्या कर दी है।
अब पुलिस इंस्पेक्टर बेचारा... राग बागेश्वरी, और मुहल्ले वालों ने कहा, हत्या कर रहा है ढब्बू का बच्चा।
वही तो समझोगे न तुम जो समझ सकते हो! वही तो करोगे न तुम जो कर सकते हो! पहले इस समझने वाले और करने वाले मन को विदा कर दो। न कर्ता रह जाए तुम्हारे भीतर, न भोक्ता। तब तुम्हारे भीतर शुद्ध चैतन्य रह जाएगा--दर्पण की भांति निर्मल! उसमें वही झलकेगा जो है, वैसा का वैसा जैसा है। फिर तुम्हारे जीवन में एक नई क्रांति घटती है। सत्य जब तुममें झलकता है, बिना तुम्हारे मन के बीच में आए, तब तुम्हारे जीवन में अपने आप उस सत्य के अनुसार आचरण शुरू होता है। ध्यान पहले, फिर ज्ञान। ध्यान पहले, फिर साधुता। ध्यान पहले, फिर आचरण। ध्यान पहले, फिर मुनित्व।
सीस नवावै संत को, सीस बखानौ सोय।
पलटू जो सिर न नवै, बेहतर कद्दू होय।।
अब आचार्य तुलसी कहेंगे कि गाली दे रहे हैं पलटूदास। कह रहे हैं कि कद्दू है वह सिर जो संत के चरणों में न झुके। और मुझसे तुम पूछो तो मैं कहूंगा सड़ा कद्दू! क्योंकि कद्दू भी कुछ काम आ जाए।
सीस नवावै संत को, सीस बखानौ सोय।
पलटू कहते हैंः वही सिर सिर कहने के योग्य है। उसकी ही महिमा गाने योग्य है। उसकी स्तुति करने योग्य है। उस पर निछावर करो जो भी तुम कर सको। लेकिन वही शीश जो झुक जाए! बुद्धत्व को देख कर, किसी जले हुए दीये को देख कर, जो झुके तो फिर उठे नहीं।
चारागर, मस्त की दुनिया है जमाने से जुदाहोश में आ कि जहां हम हैं वहां होश नहीं
एक ऐसा भी होश है, जहां होश भी नहीं, जहां होश का भी कोई अहंकार नहीं निर्मित होता। मस्त की दुनिया है जमाने से जुदा! इन्हीं मस्तों को संत कहा

है। इन्हीं पियक्कड़ों को संत कहा है--जिन्होंने परमात्मा के घाट से ऐसा पीया, ऐसा पीया कि होश है, मगर होश का भी पता नहीं!
और जिन्होंने ऐसा नहीं किया उनकी जिंदगी... उनकी जिंदगी बस ऐसी है-- हिचकियों पे हो रहा है जिंदगी का राग खत्मझटके देकर तार तोड़े जा रहे हैं साज के
जिंदगी बस यूं ही, ढोते रहे एक लाश।
हिचकियों पे हो रहा है जिंदगी का राग खत्म
कुछ हाथ में उपलब्धि नहीं, भीतर सब कोरा-कोरा। हिचकियों पर जिंदगी खत्म हो रही है, बुद्धत्व पर नहीं।
हिचकियों पे हो रहा है जिंदगी का राग खत्मझटके देकर तार तोड़े जा रहे हैं साज के
जबरदस्ती मौत छीन कर ले जा रही है प्राणों को। तुम पकड़ रहे देह को, तुम पकड़ रहे मन को। और मौत है कि झटके देकर ले जा रही है। यमदूत खड़े हैं और लिए जा रहे हैं।
जिंदगी या तो, झटके देकर जैसे तार तोड़े जाएं, इस तरह नष्ट होती है; या जिंदगी, जैसे कि सुगंध आकाश में उठे, ऐसे विलीन होती है। मगर जो संतों के सामने झुक जाएगा... । संत तो सिर्फ बहाना हैं, निमित्त हैं, कि किसी तरह तुम्हारा सिर झुकने की कला सीख ले।
सीस नवावै संत को, सीस बखानौ सोय।
पलटू जो सिर न नवै, बेहतर कद्दू होय।।
और तुम्हारे शीश झुकाते ही एक क्रांति घटती है, तुम्हारे भीतर आसमान झांकने लगता है। तुम छोटे नहीं रह जाते, तुम विराट के साथ संयुक्त हो जाते हो। तुम छोटे हो तभी तक जब तक अकड़े हो; जब तक कहते हो मैं-मैं-मैं! जब तक यह मैं है तब तक तुम क्षुद्र हो। जिस दिन कह सकोगे मैं नहीं, उसी दिन विराट हो गए; सीमा गई, परिभाषा गई।
आज कोई सतरंगा बादर
नीले खालीपन पर उभरे।
खिड़की के सूनेपन में
सारा सूर्योदय यों शरमाए
जैसे अधर-धरी अनबोली
कोई कथा नयन पा जाए
धूप मुंडेरों से सहमी सी धीरे-धीरे जीना उतरे।
एक समूचा स्वर सपनों का
तन-मन पर ऐसे छा जाए
जनम-जनम अनखिली डाल को
ज्यों सारा मौसम दुलराए।
तट पर एक विहग अनमन सा
लहराई आतुरता कुतरे।
आज कोई सतरंगा बादर
नीले खालीपन पर उभरे।
जब तुम झुकते हो, तब तुम सिर्फ एक शून्य रह गए। इस शून्य में पूर्ण उतर सकता है। तुमने जगह खाली कर दी, तुमने सिंहासन छोड़ दिया। अब परमात्मा इस सिंहासन पर विराजमान हो सकता है।
सुनिलो पलटू भेद यह, हंसि बोले भगवान।
दुख के भीतर मुक्ति है, सुख में नरक निदान।।
पलटू कहते हैं कि जब मैं झुका, जब से झुका, तब से गुरु की वाणी गुरु की वाणी नहीं है; तब से गुरु से भगवान ही मुझसे बोलता है।
सुनिलो पलटू भेद यह...
और बड़े भेद खोलता है, भेदों पर भेद खोलता है!
... हंसि बोले भगवान।
दुख के भीतर मुक्ति है, सुख में नरक निदान।
यह बात महत्वपूर्ण है, जीवन के गहरे सूत्रों में से एक। दुख में क्यों मुक्ति है? क्योंकि दुख में दो खूबियां हैं। पहली तो खूबी यह कि तुम दुख

से छूटना चाहते हो। दूसरी खूबी यह कि तुम दुख के साथ तादात्म्य करना कठिन पाते हो; दुख का साक्षी होना आसान है। क्योंकि तुम उससे छूटना चाहते हो, उससे बंधना नहीं चाहते, इसलिए साक्षी होना आसान है। साक्षी छूटने का उपाय है। तादात्म्य नहीं कर सकते तुम दुख के साथ, क्योंकि तादात्म्य बंधने का उपाय है।
दुख के भीतर मुक्ति है...
इसलिए ठीक है यह सूत्र कि दुख के भीतर मुक्ति है, अगर तुम दुख का राज समझ लो। और
सुख में नरक निदान।
और सुख में नरक है। क्यों? क्योंकि सुख में तुम तादात्म्य कर लेते हो।
और सुख से तुम छूटना नहीं चाहते, बंधना चाहते हो।
दुख ऐसे है जैसे लोहे की जंजीर--भारी, कांटों वाली, कि चुभती है, घाव करती है, बोझिल है, ढोना मुश्किल है। घड़ी-घड़ी याद दिलाती है कि मैं कारागृह में हूं, कि मैं कैदी हूं; कि घड़ी-घड़ी अपमान अनुभव होता है। और सुख? सुख ऐसे है जैसे सोने की जंजीर, हीरे-जवाहरातों मढ़ी। लगता है जैसे मैं सम्राट हूं। बचाना चाहोगे तुम हीरे-जवाहरातों से जड़ी सोने की जंजीरों को। आभूषण कहोगे तुम उनको, जंजीर कहोगे ही नहीं। इसलिए सुख में आदमी परमात्मा को भूल जाता है, दुख में याद करता है। सुख में जरूरत ही क्या है!
एक बच्चे से स्कूल में पूछा गया कि तू परमात्मा को याद करता है?
उसने कहा, हां, रात रोज याद करता हूं। याद करते-करते ही सोता हूं।
उससे पूछा गया, सिर्फ रात में ही याद करता है, कभी दिन में?
उसने कहा, दिन में कभी याद नहीं करता।
पूछने वाले ने कहा कि ठीक से मुझे समझा, रात में ही क्यों याद करता है, दिन में क्यों नहीं?
उसने कहा, रात में मुझे डर लगता है और दिन में मुझे डर लगता ही नहीं। अंधेरी रात हो और डर लगता हो, तो तुम भी परमात्मा की याद करने लगते हो। अभी-अभी निरंजना जर्मनी से वापस लौटी। बंबई में चूंकि एयरपोर्ट जल गया था, इसलिए चार दिन उसे दक्षिण में कहीं पड़े रहना पड़ा। और जब हवाई जहाज मिला तो भयंकर तूफान, आंधी, बादल, बिजलियां, और उन्हीं में से हवाई जहाज का गुजरना! उसने तो सोचा कि खात्मा समझो, अब पहुंचना मुश्किल है। इस तरह की बिजलियां कड़क रही हैं हवाई जहाज के चारों तरफ, इस तरह बादल गरज रहे हैं और भयंकर धुआंधार वर्षा! और हवाई जहाज कभी नीचा, कभी ऊंचा, सैकड़ों फीट नीचे- ऊपर हो रहा है। मैंने उससे पूछा, तूने क्या किया फिर?
उसने कहा, और क्या करती! जल्दी से माला हाथ में ले ली, आपको खूब याद किया कि बस इस बार बचा लो, अब कभी जर्मनी न जाऊंगी!
दुख में याद आती है। शायद जर्मनी तीन सप्ताह रही, एक भी दिन माला न पकड़ी हो, जरूरत ही क्या है!
दो बच्चे बात कर रहे थे। एक बच्चे ने कहा कि हम जब भोजन के लिए बैठते हैं... तो ईसाइयों में पहले प्रार्थना की जाती है... तो हम प्रार्थना करते हैं, फिर भोजन करते हैं। तुम भी प्रार्थना करते हो?
उसने कहा कि नहीं, हमारी मां भोजन इतना अच्छा पकाती है कि कोई प्रार्थना करने की जरूरत नहीं। तुम्हारा मां का भोजन मैंने खाया है, बिना प्रार्थना किए कोई खा ही नहीं सकता। असल में, तुम्हारे पिताजी मरे क्यों? यह तुम्हारी माता जी का भोजन! तो कोई भी प्रार्थना करेगा, तुम्हारी माता जी का भोजन देखते ही प्रार्थना उठती है। मैं भी जब तुम्हारे घर भोजन करने आता हूं तो मैं भी प्रार्थना करता हूं कि हे प्रभु, आज बचा लो!
मुल्ला नसरुद्दीन कह रहा था चंदूलाल से, चंदूलाल, कुछ स्त्रियां ऐसे कपड़े पहनती हैं कि पुरुषों के प्राण निकलते हैं।
चंदूलाल ने कहा, हां, कुछ स्त्रियां भोजन भी ऐसा ही पकाती हैं।
दुख में याद; सुख में स्मरण भूल जाता है।
दुख के भीतर मुक्ति है, सुख में नरक निदान।।
बिन खोजे से न मिलै, लाख करै जो कोय।
पलटू दूध से दही भा, मथिबे से घिव होय।।

यहां एक महत्वपूर्ण सूत्र है जो विरोधाभासी लग सकता है और तुम्हें चिंता में डाल सकता है। संतों के बहुत से वक्तव्य विरोधाभासी होते हैं।
मजबूरी है। सत्य ही कुछ ऐसा है कि विरोधाभास के बिना उसे प्रकट नहीं किया जा सकता। अब इन दो सूत्रों को साथ-साथ लो।
ना मैं किया न करि सकौं, साहिब करता मोर।
करत करावत आपु है, पलटू पलटू सोर।।
न मैं कुछ करता हूं, न कुछ कर सकता हूं; जो कुछ करता है, मालिक करता है।
खुद करता-कराता है और पलटू-पलटू का शोर होता है।
अब इस दूसरे सूत्र को लो--
बिन खोजे से न मिलै, लाख करै जो कोय।
पलटू दूध से दही भा, मथिबे से घिव होय।
बिना खोजे नहीं मिलेगा, खोज करनी पड़ेगी। बिना खोजे तुम लाख आशा रखते रहो, बैठे रहो, नहीं मिलेगा। दूध से दही तो शायद अपने आप हो भी जाए; दूध रखा- रखा दही हो जाता है, फट जाए; मगर दही से घी अपने आप नहीं होता।
मथिबे से घिव होय।
और जब तक मथोगे नहीं, मंथन न करोगे, तब तक तुम्हारे भीतर भी आत्मा पैदा
न होगी, परमात्मा का अवतरण न होगा।
ये सूत्र उलटे दिखाई पड़ेंगे। बस दिखाई पड़ते हैं, उलटे हैं नहीं।
इन्हें समझ लो। पहली बातः जितना तुमसे बन सके, पूरा-पूरा करो। नहीं तो तुम्हारा न करना केवल आलस्य होगा, परमात्मा के प्रति समर्पण नहीं। और आलस्य समर्पण नहीं है। पहले सूत्र में खतरा है कि तुम आलसी हो जाओ।
ना मैं किया न करि सकौं, साहिब करता मोर।
करत करावत आपु है, पलटू पलटू सोर।।
तो तुम कहोगेः फिर क्या करना ध्यान? और क्या पूजा और क्या प्रार्थना
और क्या अर्चना? और क्या खोज? क्यों सिर मारें विपस्सना में? क्यों परेशान हों? फिर जब वही करने वाला है तो जब करेगा तब करेगा। जैसी उसकी मर्जी! यह आलस्य बन सकता है। इसी तरह मलूक का वचन आलसियों के लिए आधारभूत हो गया। मलूक ने कहा है--
अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका कह गए, सबके दाता राम।।
कि न तो अजगर नौकरी करता है, न पंछी काम करते हैं। और मलूकदास कह रहे हैं कि सबको देने वाला राम है।
मिल गया सूत्र आलसी के लिए! इस तरह के सूत्रों की हमने गलत व्याख्या
कर ली। उस गलत व्याख्या से बचाने के लिए दूसरी बात कह देनी जरूरी है।
मलूकदास ने तुम पर ज्यादा भरोसा किया, इसलिए दूसरी बात नहीं कही। सोचा कि तुम खुद ही समझ लोगे।
पंछी करै न काम।
नौकरी नहीं करते पंछी किसी दफ्तरों में और कारखानों में, यह सच है।
मगर सुबह से सांझ तक काम तो करते हैं। दाना चुगते हैं, घोंसला बनाते हैं, अंडे रखते हैं, बच्चों के लिए भोजन लाते हैं, बच्चों को भोजन चुगाते हैं। दिन भर काम चल रहा है, सुबह से सांझ तक काम चल रहा है। हालांकि कोई नौकरी नहीं है किसी दफ्तर में कि गए साढ़े दस बजे और दस्तखत किए, फिर घड़ी देखी साढ़े पांच बजे तक, फिर बीच में चाय के लिए और काफी के लिए गए और फिर गपशप की और अखबार पढ़ा, और किसी तरह समय गुजारा और घड़ी में पांच बजे--साढ़े पांच या जो भी दफ्तर से भागने का समय हो--और घर की तरफ भागे। ऐसा नहीं करते। न कोई नौकरी मिलती उनको। हर महीने पहली तारीख को उनको तनख्वाह नहीं मिलती, न हफ्ता मिलता। इस अर्थ में तो कोई काम नहीं करते।
लेकिन आलसी तुमने कोई पक्षी देखा? असंभव! इस मेरी बगिया में बहुत पक्षी हैं, एक भी आलसी नहीं है! मैं बैठा देखता रहता हूं कि एकाध दिन कोई आलसी पक्षी तो दिखाई पड़े। मलूकदास को दिखता है कोई पक्षी ने पढ़ा ही नहीं। मलूकदास की फिक्र ही नहीं की--पंछी करै न काम! और किए ही चले जा रहे हैं! मलूकदास का एक भी अनुयायी नहीं मालूम होता पक्षियों में।
अजगर नौकरी नहीं करता, यह सच है। लेकिन अपने शिकार की तरफ सरकता है।
अपने शिकार की तरफ अपनी श्वास को फेंकता है। और उसकी श्वास इतनी बलशाली है

कि अपने शिकार को अपनी श्वास से ही खींच लेता है। इतने जोर से श्वास भीतर लेता है कि पक्षी उसकी श्वास के साथ अजगर के पेट में चले जाते हैं। मगर यह भी श्रम है। ऐसे आंख बंद करके कंबल ओढ़ कर नहीं पड़ा रहता कि जब होगी उसकी मर्जी तो पक्षी खुद ही खोजता हुआ कंबल के भीतर आएगा और कहेगा, भइया, क्या सो रहे हो? उसकी मर्जी, उसने हमें भेजा, हम आ गए!
खतरा है कि कहीं तुम आलसी न हो जाओ। समर्पण और आलस्य एक ही बात नहीं हैं। समर्पण तो श्रम है, आलस्य नहीं। समर्पण तो साधना है, आलस्य नहीं। इसीलिए दूसरा सूत्र--
बिन खोजे से न मिलै, लाख करै जो कोय।
तुम लाख सोचो, विचारो, बैठे रहो कि बिना किए मिल जाएगा, जब मिलना है तब मिल जाएगा, भाग्य में लिखा होगा तो मिल जाएगा--नहीं मिलेगा। तुम्हें प्रयास तो पूरे करने पड़ेंगे। तभी मथोगे बहुत अपने को, तो तुम्हारे भीतर घी निर्मित होगा। घी आत्मा का प्रतीक है, क्योंकि उसके ऊपर फिर कुछ और निर्माण नहीं हो सकता। दूध से दही बन सकता है, दही से मक्खन बन सकता है, मक्खन से घी बन जाता है; फिर घी से कुछ नहीं बनता। आखिरी अवस्था आ गई। पशु से मनुष्य बन सकते हो, मनुष्य से साधु बन सकते हो, साधु से संत बन सकते हो; बस आखिरी घड़ी आ गई। संतत्व, जैसे तुम्हारी आत्मा का घी! अब इसके पार और कुछ भी नहीं।
तुम अपना पूरा श्रम करो और फिर भी पलटू कहते हैं--
ना मैं किया न करि सकौं, साहिब करता मोर।
यह आखिरी बात है। यह तो सब करने के बाद, सब चेष्टाओं के बाद, जब तुम्हें परमात्मा मिलेगा तब पता चलेगा कि अरे, यह मेरे किए से नहीं हुआ, यह उसकी कृपा से हुआ है! लेकिन तुम्हारे बिना किए उसकी कृपा भी नहीं हो सकती थी। तुम्हारे करने से परमात्मा नहीं मिलता, लेकिन तुम इस योग्य होते हो, इस पात्र होते हो कि उसकी कृपा तुम पर बरसती है। वह तो बरस रहा है, जब तुम पात्र नहीं हो तब भी बरस रहा है, लेकिन पात्र तुम्हारा उलटा रखा हुआ है। वर्षा हो रही है, पात्र उलटा रखा है, भरेगा नहीं। या पात्र सीधा भी रखा है, लेकिन पात्र में छेद ही छेद हैं, तो भी पात्र भरता हुआ मालूम पड़ेगा, लेकिन कभी भरेगा नहीं। इधर भरेगा, उधर खाली हो जाएगा।
तुम्हारा श्रम तुम्हारे पात्र के छिद्रों को बंद करेगा। तुम्हारा श्रम तुम्हारे पात्र को सीधा रखेगा। मिलना तो उसकी ही अनुकंपा से है। ये दोनों ही सूत्र सत्य हैं। दोनों सूत्र एक साथ सत्य हैं। तुम श्रम करोगे तो उसकी कृपा के पाने के अधिकारी हो जाओगे। लेकिन जब पाओगे तब तुम्हें समझ में आएगा कि जो हमने किया था और जो हमने पाया है, उसमें कार्य-कारण का संबंध नहीं है; जो हमने किया था वह तो ना-कुछ था और जो हमने पाया है वह सब कुछ है।
गारी आई एक से, पलटे भई अनेक।
जो पलटू पलटै नहीं, रहै एक की एक।।
साधना के जगत में चलोगे, बहुत गालियां मिलेंगी। फूलों की तो आशा ही मत करना, कांटे ही कांटे मिलेंगे। क्योंकि संसार नहीं चाहता कि संसार से कोई मुक्त हो। जो संसार से मुक्त होता है वह सांसारिक लोगों को कष्ट देता है, पीड़ा देता है। उन्हें जलन और ईर्ष्या पैदा होती है। वे बदला लेंगे। वे तुम्हें सब भांति सताएंगे। तो तुम एक ही बात ख्याल रखना--
गारी आई एक से, पलटे भई अनेक।
गाली आए तो लौटाना मत, पी जाना। जैसे मीरा को जहर भेजा और मीरा पी गई।
और पी गई तो अमृत हो गया। ऐसा चाहे ऐतिहासिक रूप से न हुआ हो, लेकिन बात तो महत्वपूर्ण है। अगर गाली आए और तुम पी जाओ, तो गाली नहीं रह जाती; जहर आए और तुम पी जाओ, तो जहर नहीं रह जाता। जहर आए और तुम पी जाओ, आनंदमग्न, तो अमृत हो ही गया। और गाली आए और तुम पी जाओ, आनंदमग्न, मस्ती में, तो गाली भी स्वागत हो गई, सत्कार हो गया, सन्मान हो गया। गाली भी गीत हो सकती है, अगर तुममें पीने की क्षमता है तो।
गारी आई एक...
अगर लौटाई तो झंझट हो जाएगी। क्योंकि फिर दूसरे लोग तो संत नहीं हैं; तुम एक लौटाओगे, वे दस गालियां लेकर आ जाएंगे।

जो पलटू पलटै नहीं, रहै एक की एक।
जल पषान के पूजते, सरा न एकौ काम।
बहुत पूजे तीर्थ, जल, नदियां, पहाड़, पर्वत, पत्थर।
जल पषान के पूजते, सरा न एकौ काम।
पलटू कहते हैंः लेकिन एक भी काम हल नहीं हुआ। कोई सफलता न मिली, कोई सुफलता न मिली, कोई धन्यता न मिली।
पलटू तन करु देहरा, मन करु सालिगराम।
तो पलटू कहते हैंः फिर एक ही उपाय पाया कि अपने तन को ही मंदिर बना लो
और अपने चैतन्य को ही परमात्मा मान लो। न जाओ किसी मंदिर, न किसी मस्जिद।
पलटू तन करु देहरा...
तन को मंदिर बना लो, तीर्थ बना लो।
मन करु सालिगराम।
और अगर मन को तुम मिटा दो तो वह जो मन के मिटने के बाद ऊर्जा मुक्त होती है मन की, मनन की, वही ऊर्जा सालिगराम! वही परमात्मा की प्रतिमा! कारज धीरे होत है, काहे होत अधीर।
और जल्दी मत करना। कुछ बातें जल्दी-जल्दी में नहीं होतीं; होती भी हों
तो नहीं होतीं। मौसमी फूल नहीं है परमात्मा। ये तो आकाश को छूने वाले गगनचुंबी वृक्ष हैं, ये धीरे-धीरे ऊगते हैं। समय लगता है और प्रतीक्षा करनी होती है।
कारज धीरे होत है, काहे होत अधीर।
इसलिए अधीर मत होना।
समय पाय तरुवर फरै, केतिक सींचो नीर।
समय आएगा, वसंत आएगा, वृक्ष में फल लगेंगे, फूल लगेंगे। तुम चाहे कितना ही पानी सींचो, समय के पहले वसंत नहीं आएगा। प्रतीक्षा करनी होगी।
ठीक घड़ी में सब घटता है। देर है, अंधेर नहीं है। और देर भी जरूरी है, क्योंकि उतनी देर में ही कुछ चीजें हैं जो पकती हैं; नहीं तो पक नहीं पाएंगी, कच्ची रह जाएंगी।
यह मुद्दत हस्ती की आखिर यूं भी तो गुजर ही जाएगीदो दिन के लिए मैं किससे कहूं आसान मेरी मुश्किल कर दे
यह तो गुजर जाएगा समय, प्रतीक्षा करो। परमात्मा से भी मत कहो कि मेरी मुश्किल आसान कर दे, कि जल्दी कर।
यह मुद्दत हस्ती की आखिर यूं भी तो गुजर ही जाएगीदो दिन के लिए मैं किससे कहूं आसान मेरी मुश्किल कर दे
समय लगता है। बीज अंकुरित होगा, पौधा बनेगा, कलियां बनेंगी, फिर फूल खिलेंगे।
लो हम बताएं गुंचा-ओ-गुल में है फर्क क्याइक बात है कही हुई, इक बे-कही हुई
कली में और फूल में फर्क क्या है?
लो हम बताएं गुंचा-ओ-गुल में है फर्क क्या
इक बात है कही हुई, इक बे-कही हुई
बहुत ज्यादा फर्क नहीं है--कली फूल बन जाए। तुम में और परमात्मा में
भी इतना ही फर्क है जितना कली और फूल में। कली बे-कही बात है, अभी बिना गाया गीत है; और फूल कही हुई बात है, अभिव्यक्त हो गया, अभिव्यंजित हो गया, गीत गाया गया। कली ऐसे है जैसे सितार छेड़ा न गया हो; और फूल ऐसे है जैसे सितार छेड़ दिया गया। मगर प्रतीक्षा और प्रार्थना, प्रेमपूर्ण प्रतीक्षा और प्रेमपूर्ण प्रार्थना अनिवार्य शर्तें हैं। इसलिए ध्यान रखनाः काहे होत अधीर!

देखिए किस-किस का बागे-आर्जू पामाल हो
अपनी जिद पर आज वह महशर-खिराम आ ही गया
मेरा शिकवा ही सही, मेरी मजम्मत ही सही
खुश हूं मैं कि उनकी जुबां पर मेरा नाम आ ही गया
अक्ल भी रखता था, आंखें भी, परे-परवाज भी
फिर यह क्या सूझी कि ताइर जेरे-दाम आ ही गया

जिस जगह आकर फरिश्ते भी फिघल जाते हैं "जोश"
लीजिए हजरत संभलिए वह मुकाम आ ही गया
वह मुकाम भी आ जाता है। आते-आते ही आता है। बात बनते-बनते ही बनती है। काहे होत अधीर!
आज इतना ही।

काहे होत अधीर
अठारहवां प्रवचन

कस्मै देवाय हविषा विधेम

पहला प्रश्नः ओशो! कविता को एक नई विधा, एक नया आयाम देने वाले श्री गिरजाकुमार माथुर, मेरे गांव अशोकनगर के निवासी हैं। इन दिनों भी वहीं रहते हैं। आप में उनकी रुचि है। कुछ किताबें भी पढ़ी हैं, टेप-प्रवचन में भी रुचि दिखाते हैं। कहते हैं--एक बार साक्षात्कार की उत्सुकता तो है, परंतु उनका व्यक्तित्व विवादास्पद होने के कारण घबड़ाता हूं।
उचित समझें तो कुछ कहने की कृपा करें।

प्रेम वेदांत! श्री गिरजाकुमार माथुर से ऐसी आशा न थी। इतनी लचर बात, इतनी थोथी बात, इतना विचारशील कवि कहेगा, ऐसा मैं सोच भी नहीं सकता था। विवादास्पद हूं, यही तो आने का कारण होना चाहिए। अगर विवादास्पद होने के कारण गिरजाकुमार माथुर आने से रुकते हैं, घबड़ाते हैं, तो सुकरात से भी नहीं मिल सकते थे, और जीसस से भी नहीं, और बुद्ध से भी नहीं, और लाओत्सु से भी नहीं। तब तो इतिहास में जो भी ज्योतिर्मय पुरुष हुए हैं, उनमें से किसी के भी पास गिरजाकुमार माथुर नहीं जा सकते थे। वे सभी विवादास्पद थे।
अगर विवादास्पद होने से डर लगता हो, तब तो जिसने भी सत्य जाना है उसके पास जाना न हो पाएगा। तब तो पंडित-पुरोहितों के पास ही जा सकते हो; वे विवादास्पद नहीं होते। उतना उनका बल भी नहीं होता। उतना उनका अनुभव भी नहीं होता। सत्य की उनकी अनुभूति नहीं होती है, इसलिए विवादास्पद नहीं होते। लीक पकड़ कर चलते हैं--भेड़चाल; परंपरा से बंधे हुए; इंच भर इधर-उधर नहीं होते रूढ़ि से। इसलिए विवाद पैदा नहीं होता। और जो भ.ेड की तरह जी रहा है, जो समाज की जड़ मान्यताओं, सड़ी-गली धारणाओं को चुपचाप स्वीकार किए बैठा है, ऐसे गुलाम को, ऐसे दास को सत्य का कोई अनुभव हो सकता है?
सत्य तो उन्हें अनुभव होता है जो विद्रोही हैं, जो मौलिक रूप से क्रांतिमय हैं। क्रांतिकारी ही नहीं--जो स्वयं क्रांति हैं।
गिरजाकुमार माथुर अगर मेरे विवादास्पद होने के कारण रुक रहे हैं तो बड़े गलत कारण से रुक रहे हैं। अगर कोई व्यक्ति विवादास्पद न हो तो जाने योग्य ही नहीं है। विवादास्पद नहीं है, इसका अर्थ ही यह है कि अतीत का गुलाम है। जो मुर्दा का पूजक है, मरे बीते पदचिह्नों पर चल रहा है, वही विवादास्पद नहीं होता। सत्य तो सदा विवादास्पद है--फिर सुकरात में प्रकट हो कि मंसूर में, कि कबीर में कि पलटू में।
सत्य क्यों विवादास्पद है, इसे समझना चाहिए।
भीड़ कभी सत्य के साथ नहीं हो सकती। क्योंकि सत्य के साथ होने के लिए व्यक्ति होना जरूरी है। और भीड़ व्यक्तित्व को नष्ट करती है। भीड़ व्यक्तियों की आत्मा छीन लेती है। भीड़ व्यक्तियों को पोंछ देती है, मिटा देती है; उन्हें केवल भीड़ का अंग बना लेती है। फिर कोई हिंदू है, फिर कोई मुसलमान है, फिर कोई ईसाई है, कोई जैन है, मगर व्यक्ति नहीं है। और जहां व्यक्ति नहीं है वहां मनुष्यता नहीं है। और जहां व्यक्ति नहीं है वहां परमात्मा का अवतरण कैसे होगा? तुम ही नहीं हो, परमात्मा आए भी तो किसमें आए? तुम तो केवल भीड़ के एक हिस्से हो, एक कल-पुर्जे।
व्यक्ति और कल-पुर्जे में फर्क है। कल-पुर्जे को बदला जा सकता है। एक पुर्जा खराब हो जाए किसी यंत्र का तो हम दूसरा पुर्जा उसकी जगह लगा देंगे, यंत्र फिर काम करने लगेगा। व्यक्ति बदले नहीं जा सकते। प्रत्येक व्यक्ति अनूठा है। उस जैसा कोई दूसरा व्यक्ति होता ही नहीं; न कभी हुआ है, न कभी होगा। उस अनूठेपन में ही व्यक्तित्व है। इसलिए किसी व्यक्ति की जगह किसी दूसरे को नहीं रखा जा सकता। छोटे से छोटे, अनजान से अनजान व्यक्ति के पास भी एक निजता होती है। उस निजता को भीड़ बरदाश्त नहीं करती, क्योंकि निजता में खतरा है। जिस व्यक्ति के पास निजता है वह अंधानुकरण नहीं करेगा। वह खुद सोचेगा, विचारेगा, अपने अंतःकरण की आवाज से चलेगा। फिर चाहे वह आवाज रूढ़ि के विपरीत जाती हो, समाज के विपरीत जाती हो, राज्य के विपरीत जाती हो।

वह सब दांव पर लगा देगा, लेकिन अपनी आवाज को धोखा नहीं देगा, अपनी आवाज के साथ दगा नहीं करेगा, गद्दारी नहीं करेगा। जीवन भी गंवा देगा, मगर अपने अंतःकरण को न बेचेगा।
व्यक्ति बाजारों में नहीं बिकते हैं। और जो बिक जाते हैं वे व्यक्ति नहीं हैं। और जो व्यक्ति नहीं है उसके पास कैसी आत्मा?
जार्ज गुरजिएफ कहता थाः सभी लोगों के पास आत्मा नहीं होती। और ठीक कहता था। आत्मा का जन्म तो उनमें होता है जो संघर्ष लेते हैं; जो जूझते हैं; जो जहां भी असत्य को देखते हैं उससे टक्कर लेते हैं। उसी टकराने में उनके भीतर का सत्य निखरता है। उसी टकराहट में उनकी तलवार पर धार आती है, उनकी प्रतिभा में ज्योति का जन्म होता है। जो चुपचाप लीक-लीक चलता है, कोल्हू के बैल की तरह चलता है, उसके पास जाकर करोगे भी क्या? उसके पास जाकर मिलेगा भी क्या? कोल्हू का बैल तुम्हें भी ज्यादा से ज्यादा कोल्हू का बैल बना सकता है।
मैंने सुना है, एक तर्कशास्त्री सुबह-सुबह एक तेली के घर तेल लेने गया था। तेली तेल तौलने लगा। उसी की पीठ के पीछे कोल्हू चल रहा है। कोल्हू का बैल कोल्हू को चला रहा है, तेल पेरा जा रहा है। हैरान हुआ तर्कशास्त्री। क्योंकि बैल को कोई चला नहीं रहा है, वह अपने से ही चल रहा है। पूछा उसने तेली को। एक जिज्ञासा मेरे मन में उठी है, कहा उसने, इतना धार्मिक बैल कहां पा गए कलियुग में? सतयुग की छोड़ो, ऐसे ही ऐसे बैल होते थे। लेकिन यह बैल कलियुग में कहां पा गए? अब तो मारो-पीटो तो भी बैल चलते नहीं हैं। हड़ताल कर दें, घिराव कर दें, सींग मारें, शोरगुल मचाएं, झंडा उठाएं, स्वतंत्रता की आवाज दें। यह बैल तुम्हें कहां मिल गया--ऐसा श्रद्धालु कि कोई चला भी नहीं रहा है और चल रहा है!
तेली हंसने लगा। उसने कहा, आपको राज पता नहीं है। बैल धार्मिक नहीं है, उसे चलाने के पीछे एक व्यवस्था है। देखते हैं, उसकी आंखों पर पट्टी बंधी है! उसे सिर्फ अपने सामने दिखाई पड़ता है; न इस तरफ देख सकता है, न उस तरफ; न बाएं, न दाएं। इसलिए वह यह सोचता है कि यात्रा कर रहा है, कहीं जा रहा है। उसे पता ही नहीं चलता कि गोल चक्कर खा रहा है; कहीं जा नहीं रहा है; कोई यात्रा नहीं हो रही है। उसे समझ में आ जाए कि गोल घूम रहा हूं, तो अभी रुक जाए। मगर वह सोच रहा है--कहीं पहुंच रहा हूं, कोई मंजिल, कोई मुकाम करीब आ रहा है।
तर्कशास्त्री भी तर्कशास्त्री था। उसने कहा, माना, देखा मैंने कि आंख
पर पट्टी बांधी है। लेकिन कभी रुक कर भी तो देख सकता है कि कोई हांकने वाला है या नहीं।
उसने कहा, तुमने मुझे नासमझ समझा है? बैल से ज्यादा नासमझ समझा है? मैंने उसके गले में घंटी बांध रखी है। चलता रहता है, घंटी बजती रहती है। और मैं जानता हूं कि बैल चल रहा है। जैसे ही रुकता है, घंटी बंद हो जाती है। मैं जल्दी से उचक कर उसे हांक देता हूं। उसे पता नहीं चल पाता कि पीछे हांकने वाला नहीं था। जैसे ही घंटी रुकी कि मैंने हांका, कि मैंने हांक दी। तो वह डरा रहता है कि कोई पीछे है, जरा रुका कि कोड़ा पड़ेगा। तर्कशास्त्री तो तर्कशास्त्री फिर भी। उसने कहा, एक प्रश्न, आखिरी प्रश्न, क्या बैल खड़े होकर अपना सिर हिला कर घंटी नहीं बजा सकता?
उस तेली ने कहा, महाशय, जरा धीरे बोलिए। अगर बैल सुन लेगा, मेरा सारा धंधा खराब हो जाएगा। और तेल आप आगे से कहीं और से खरीदना। ऐसे आदमियों का आना-जाना ठीक नहीं। मैं बाल-बच्चे वाला आदमी हूं। यह बैल बिगड़ जाए तो मेरा सारा व्यवसाय टूट जाएगा। और बैल ही नहीं, मेरे बच्चे सुन लें तुम्हारी बातें, तो वे भी बिगड़ जाएंगे।
इसलिए तो जीसस को सूली देनी पड़ी, सुकरात को जहर पिलाना पड़ा। ये वे लोग
थे जो तुम्हारी आंखों की पट्टियां उतारने की कोशिश कर रहे थे। ये वे लोग थे जो तुम्हारे गले में बंधी हुई घंटी से तुम्हें सचेत कर रहे थे। ये वे लोग थे जो कह रहे थे कि तुम गोल चक्करों में घूम रहे हो; तुम कहीं जा नहीं रहे हो; तुम व्यर्थ ही मेहनत कर रहे हो। रुको! सोचो पुनः! ये वे लोग थे जो तुम्हें समझा रहे थे कि आदमी बनो, कोल्हू के बैल नहीं।

स्वभावतः, जिनके हित तुम्हें कोल्हू के बैल बनाने में हैं वे सभी नाराज होंगे। मां-बाप चाहते हैं बच्चे आज्ञाकारी हों--बिना इसकी फिक्र किए कि उनकी आज्ञाएं मानने योग्य हैं या नहीं। शिक्षक चाहते हैं बच्चे आज्ञाकारी हों--बिना इसकी फिक्र किए कि उनकी आज्ञाएं मानने योग्य हैं या नहीं। राजनेता चाहते हैं कि जनता आज्ञाकारी हो। पंडित-पुरोहित चाहते हैं कि जनता आज्ञाकारी हो। हरेक चाहता है कि दूसरा आज्ञाकारी हो, क्योंकि आज्ञाकारी का शोषण किया जा सकता है। कोई नहीं चाहता कि दूसरा विचारशील हो।
विचारशील कभी मानेगा और कभी नहीं मानेगा। मानेगा तब जब उसके अंतःकरण
से मेल होगा; नहीं मानेगा, जब उसके अंतःकरण से मेल नहीं होगा। उसके पास अपना मापदंड है, अपनी कसौटी है। कसेगा। सोना होगा तो हां कहेगा और पीतल होगा तो फेंक देगा।
और सभी चमकने वाली चीजें सोना नहीं हैं। और सभी आज्ञाएं सत्य नहीं हैं; और सभी आज्ञाएं शिव नहीं हैं; और सभी आज्ञाएं सुंदर नहीं हैं।
सच तो यह है, आज्ञाकारिता ने मनुष्यता की जितनी हानि की है उतनी किसी
और बात ने नहीं की है। दुनिया में थोड़ी आज्ञाकारिता कम हो तो मनुष्य का सौभाग्य होगा। क्योंकि तब मुसलमान मौलवी की आज्ञा मान कर मुसलमान हिंदू मंदिर नहीं जलाएंगे। और हिंदू पंडित की आज्ञा मान कर हिंदू मुसलमानों की मस्जिद में आग नहीं लगाएंगे। सोचेंगे कि मंदिर उसका है, मस्जिद भी तो उसकी है। गिरजा उसका है, गुरुद्वारा भी तो उसका है। और जिसने हिंदू बनाए, उसी ने मुसलमान बनाए, उसी ने ईसाई बनाए, उसी ने सिक्ख बनाए। सबका मालिक एक है। अगर हम मुसलमान को मार रहे हैं तो हम उस मालिक की सृष्टि को नुकसान पहुंचा रहे हैं; हम अधार्मिक कृत्य कर रहे हैं।
नहीं लेकिन, हिंदू कहेंगे यह धर्मयुद्ध है; और मुसलमान कहेंगे जेहाद है; और ईसाई कहेंगे क्रूसेड है। जेहाद में जो मरेगा वह तत्क्षण बहिश्त जाता है। और धर्मयुद्ध में जो मरता है, स्वर्ग उसका है, सुनिश्चित उसका है। सब पाप उसके क्षमा कर दिए जाते हैं।
ये आज्ञाएं जमीन को नरक बना दी हैं। राजनेता आज्ञाएं देते हैं और चल पड़ते हैं लोग लड़ने--अकारण! वर्षों तक अमरीका वियतनाम पर बम गिराता रहा-- अकारण! और अमरीकी सैनिक आज्ञाएं मानते रहे। नहीं उन्होंने कहा कि यह क्या हो रहा है? हम आंख वाले हैं, हम भी सोच सकते हैं। अकारण एक गरीब देश पर बम गिराए जा रहे हैं। कोई संबंध नहीं अमरीका का। लेकिन तीस साल तक सतत लाखों लोग मार डाले गए--साधारण किसान, गरीब, बच्चे, स्त्रियां, बूढ़े।
जिस आदमी ने हिरोशिमा और नागासाकी पर एटम बम गिराया, उसने भी नहीं कहा
कि यह आज्ञा मैं नहीं मानूंगा। इससे तो बेहतर है तुम मुझे गोली मार दो। एक लाख आदमी मेरे बम गिराने से पांच मिनट के भीतर राख हो जाएंगे। एक लाख आदमियों को राख करने की बजाय... निहत्थे, जिनका कोई कसूर भी नहीं, जिन्होंने कोई अपराध नहीं किया, जो अपनी रक्षा भी नहीं कर सकते, जिनको कोई सूचना भी नहीं कि क्या होने वाला है। बच्चे स्कूल जाने की तैयारी कर रहे हैं, अपने बस्ते बांध रहे हैं। उनकी मांएं उनके लिए भोजन बना रही हैं। लोग दफ्तर जा रहे हैं। इन निर्दोष लोगों पर, एक लाख लोगों पर मैं बम गिराऊं! जिसने बम गिराया उसने भी इस बात का विचार नहीं किया। और जब उससे पूछा गया कि बम गिराने के बाद उस रात तुम सो सके? तो उसने कहा, मैं बहुत आनंद से सोया। क्योंकि आज्ञा पूरी की, कर्तव्य पूरा किया। फिर और सैनिक को क्या चाहिए?
उसे इसकी फिक्र ही नहीं कि एक लाख आदमी मारे, वह हिसाब में ही नहीं है। उसके हिसाब में एक बात है कि मैंने आज्ञा का पालन किया।
मैं तुम्हें आज्ञा का पालन नहीं सिखा सकता हूं। मैं तुम्हें बोध दे सकता हूं--ऐसी कसौटी, जिस पर कस कर तुम देख लो--क्या सोना है, क्या पीतल। सोना हो तो मानना और पीतल हो तो कभी मत मानना। और तुम्हें जो आज्ञाएं अब तक दी गई हैं उनमें निन्यानबे प्रतिशत पीतल है।
तो विवाद तो खड़ा हो जाएगा। मैं विवादास्पद तो हो ही जाऊंगा। क्योंकि मैं कुछ सिखा रहा हूं जिससे न्यस्त स्वार्थों को बाधा पड़ेगी। अगर तुम मेरी बात समझोगे तो राजनेता तुम्हें धोखा नहीं दे सकेंगे, जितनी आसानी से

वे तुम्हें धोखा दे रहे हैं। तुम उनके आश्वासनों में न आओगे। तुम उनकी जालसाजियां देख सकोगे। तुम उनकी बेईमानियां पहचान सकोगे। तुम देख सकोगे कि ये छिपे हुए चोर हैं। खादी के शुभ्र वस्त्र इन चोरों को छिपने के लिए खूब सुरक्षा का कारण बन गए हैं। ये बेईमान हैं। ये अपराधी हैं। मगर इनके अपराध सूक्ष्म हैं, तुम्हारी पकड़ में नहीं आते।
छोटे-मोटे चोर पकड़े जाते हैं; बड़े चोर प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति बन जाते हैं। छोटे-मोटे स्मगलर सजा काटते हैं; बड़े स्मगलर राजनेता हो जाते हैं। छोटे लुटेरे सूलियां चढ़ते हैं; बड़े लुटेरे-- चंगीजखां, तैमूरलंग, नादिरशाह, अकबर, औरंगजेब, सिकंदर, नेपोलियन--इन सबके नाम पर इतिहास में प्रशस्तियां लिखी जाती हैं। ये सब डाकू हैं।
जो ऐसा कहेगा वैसा व्यक्ति विवादास्पद तो हो ही जाएगा।
और मैं कहता हूं कि शास्त्रों में सत्य नहीं है। इसलिए हिंदू पंडित नाराज, मुसलमान मौलवी नाराज, ईसाई पादरी नाराज। शब्दों में कहीं सत्य हो सकता है? शब्द है--"अग्नि"। "अग्नि" में कहीं आग है? कागज पर "अग्नि" लिखोगे, इस पर चाय बना सकोगे? शब्द है--"पानी"। कागज पर लिख लोगे, या अगर वैज्ञानिक हुए तो लिखोगे एच टू ओ, इससे प्यास बुझा सकोगे? लेकिन लोग गीता पढ़ रहे हैं और सोच रहे हैं, कुरान पढ़ रहे हैं और सोच रहे हैं कि परमात्मा से मिलन हो जाएगा।
कागजों में परमात्मा से मिलन नहीं हो सकता। परमात्मा से मिलन करना हो
तो अपनी स्वयं की चेतना की सीढ़ियों में उतरना पड़ेगा; अपनी स्वयं की गहराइयों से गहराइयों में जाना पड़ेगा। परमात्मा तुम्हारे भीतर मौजूद है, लेकिन तुम्हारी आत्यंतिक गहराई को छूना पड़ेगा। नहीं शास्त्रों में, वरन स्वयं में। नहीं ज्ञान में, वरन ध्यान में। नहीं मिलेगा शब्द में, मिलेगा मौन में।
पर जो ऐसी बातें कहेगा वह विवादास्पद तो हो ही जाएगा।
प्रेम वेदांत, गिरजाकुमार माथुर को कहनाः अवसर न चूकें। रस जगा हो तो थोड़ी हिम्मत करें, थोड़ा साहस करें।
मैं विश्वविद्यालय में विद्यार्थी था। जो विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर थे, बड़े पंडित थे। बड़े चालबाज भी थे, नहीं तो वाइस चांसलर होना मुश्किल। वाइस चांसलर होने के लिए बड़ा राजनीतिज्ञ होना चाहिए, क्योंकि वे भी सब राजनीति के दांव-पेंच हैं। उस पद तक पहुंचने के लिए हजार तरह की तिकड़में बिठानी पड़ती हैं। बुद्ध-जयंती पर उन्होंने व्याख्यान दिया। बड़े भाव-विह्वल होकर उन्होंने कहा कि मेरे मन में एक भाव उठता है सदा कि काश, भगवान बुद्ध के समय में मैं मौजूद होता तो जरूर उनके चरणों में बैठता, सत्संग का लाभ लेता!
मैं उठ कर खड़ा हो गया। मैंने कहा, ये शब्द आप वापस ले लो। मैं सुनिश्चित रूप से कहता हूं कि अगर आप भगवान बुद्ध के समय में होते तो उनके पास भी नहीं गए होते, सत्संग और चरणों में बैठना तो दूर।
वे थोड़े हक्के-बक्के रह गए कि कोई विद्यार्थी इतनी हिम्मत करे! थोड़े
डर भी गए। कहा, क्यों? क्यों नहीं मैं उनके चरणों में बैठ सकता था?
मैंने उनसे कहा, रमण महर्षि जिंदा थे, आप उनके चरणों में गए?
कहा, नहीं, उनके चरणों में तो नहीं गया।
क्यों नहीं गए? कृष्णमूर्ति जिंदा हैं, आप उनके चरणों में गए?
कहा, नहीं गया।
क्यों नहीं गए? आप बुद्ध के चरणों में कैसे जाते? जो कठिनाइयां कृष्णमूर्ति के चरणों में जाने में हैं, वही कठिनाइयां बुद्ध के चरणों में जाने में होतीं। वही विवादास्पद व्यक्तित्व। कौन झंझट ले! लोगों को पता न चल जाए। नहीं तो लोग कहेंगे, अच्छा, तो तुम भी इस उपद्रव में सम्मिलित हुए!
मैंने उनसे कहा, आप सोच लें दो क्षण आंख बंद करके और शब्द वापस ले लें, क्योंकि मैं नहीं बैठूंगा। आपको मैं भलीभांति जानता हूं। और बेहतर है आप शब्द वापस ले लें, अन्यथा मुझे आपके संबंध में कुछ और बातें कहनी पड़ेंगी। तब वे घबड़ा गए। उन्होंने कहा कि मैं अपने शब्द वापस लेता हूं।

क्योंकि तब मैं उनके संबंध में बताने वाला था। क्योंकि यूनिवर्सिटी में उनसे ज्यादा शराब पीने वाला आदमी दूसरा नहीं, ये बुद्ध के चरणों में कैसे जाते? उनसे ज्यादा झूठ बोलने वाला आदमी दूसरा नहीं, ये बुद्ध के चरणों में कैसे जाते? राजनीतिज्ञों की खुशामद--दो कौड़ी के राजनीतिज्ञों की खुशामद! उनके पैर दाब-दाब कर तो वे वाइस चांसलर हुए। ये कैसे बुद्ध के चरणों में जाते? और इनको अकड़ है ब्राह्मण होने की, पंडित होने की, ज्ञानी होने की। ये बुद्ध के चरणों में कैसे जाते?
फिर उन्होंने मुझे बाद में अपने घर बुलाया। कहा, कल नाश्ते पर मेरे घर आओ। घर मुझसे कहा कि इस तरह बीच में नहीं खड़ा हुआ जाता। आखिर कुछ मेरा भी तो ख्याल करते!
मैंने कहा, मैं बुद्ध का ख्याल करूं कि आपका ख्याल करूं? मैंने बुद्ध
का ख्याल किया। और मैं आपको चेतावनी दिए देता हूं कि जब तक दो साल मैं इस विश्वविद्यालय में रहूंगा, आप सोच-समझ कर बोलें। अगर आपने कोई ऐसी बात कही जो मुझे लगी कि ठीक नहीं है, तो मुझे रोका नहीं जा सकता।
वे दो साल फिर बोले ही नहीं। फिर बुद्ध-जयंती आए और महावीर-जयंती आए
और कृष्णाष्टमी आए, दूसरे लोग बोलें, मगर वे बैठे रहें। वे सिर्फ सभापति का काम करें, बोलें नहीं। क्योंकि मैं बिल्कुल सामने बैठा रहूं। गिरजाकुमार माथुर को कहनाः विवादास्पद तो होगा ही कोई भी व्यक्ति, जो सत्य के अन्वेषण में लगा हो; जो सत्य के अनुभव को उपलब्ध हुआ हो। वह सत्य को देखे या तुम्हारी सुविधाओं को देखे? वह सत्य को देखे कि तुम्हारी सामाजिक परंपराओं, रूढ़ि-रिवाजों को देखे? वह तुम्हारी रस्मों को देखे कि सत्य को देखे?
और सत्य निरंतर ही रूढ़ि के विपरीत पड़ जाता है। क्योंकि रूढ़ि बनाते हैं वे लोग जिनके द्वारा तुम्हारा शोषण होता है। रूढ़ि बनाते हैं वे लोग जो तुम्हें जोतना चाहते हैं कोल्हुओं में। और सत्य देते हैं वे लोग जो तुम्हें स्वतंत्र करना चाहते हैं। संघर्ष अनिवार्य है। संघर्ष होगा ही। प्रेम वेदांत, तुम कहते हो उन्हें मुझमें रुचि है।
रुचि है, साहस नहीं है। और रुचि अकेली मुर्दा है अगर साहस न हो। उनकी कविताएं मैंने पढ़ी हैं। उनसे कहना कि उनकी कविताओं से मैंने ऐसी आशा नहीं की थी कि वे इतने कमजोर साबित होंगे। लेकिन कविताएं लिखना एक बात है, कविता जीना दूसरी बात है। यहां मैं कविता जी रहा हूं और लोगों को कविता जीना सिखा रहा हूं। यहां काव्य जीया जा रहा है। मेरा संन्यासी है क्या? एक काव्य है, एक संगीत है, एक उत्सव है! एक आनंदोल्लास है! वसंत है! मेरा संन्यासी कोई भगोड़ा नहीं है, पलायनवादी नहीं है। जीवन को उसकी समग्रता में जीने का संकल्प है।
परमात्मा को कहीं पहाड़ों पर नहीं खोजना है; यहां और अभी खोजना है-- लोगों में, पशुओं में, पक्षियों में, वृक्षों में, पत्थरों में। आंखें हों देखने को तो पत्थर-पत्थर में उसका गीत खुदा है और पत्ते-पत्ते पर उसके हस्ताक्षर हैं। कान हों सुनने को तो सन्नाटे में भी उसकी भगवदगीता ही गूंज रही है, उसका कुरान ही उठ रहा है।
मगर गिरजाकुमार माथुर अकेले नहीं हैं; ऐसे बहुत लोग हैं। मेरे पास बहुत पत्र आते हैं कि हम आना चाहते हैं, मगर... । और जहां मगर आया, जहां किंतु-परंतु आया, वहां सब बात मुर्दा हो जाती है। आना चाहते हैं, फिर किंतु के लिए जगह नहीं। लेकिन लोगों के लिए आना तभी सुगम मालूम पड़ता है जब सब अर्थों में उन्हें लाभ ही लाभ हो, कोई हानि न हो जाए। मुझ जैसे व्यक्ति से जुड़ने में प्रतिष्ठा की हानि हो सकती है।
यहां एक और कवि, तन्मय बुखारिया, कुछ दिन पहले आए। आए तो हिम्मत की बात थी। आए तो रस में डूबे। हैं भी अदभुत कवि! है उनकी कविता में एक तन्मयता। उनका नाम ही तन्मय नहीं है, उनके काव्य में है तन्मयता, है रस का सागर। तो बातें सुनी ही नहीं, संन्यास में छलांग लगाने का निर्णय ले लिया। संन्यास लेने को भी आ गए। और इसके पहले कि उनका नाम पुकारा जाता, भाग खड़े हुए। ठीक उनका नाम जब पुकारा गया, उसके एक-दो मिनट पहले कोई व्यक्ति उठ कर गया, वह मैंने देखा। लेकिन जब नाम पुकारा गया तो पता चला कि वे तन्मय बुखारिया थे, वे जा चुके। छलांग लगाते-लगाते चूक गए। भय पकड़ गया होगा। बैठ कर यहां सोचा

होगा। और लोग जब संन्यास ले रहे थे तब उन्हें थोड़ा सोच-विचार आया होगा कि घर जाऊंगा गैरिक वस्त्रों में, माला में, पत्नी क्या कहेगी, बच्चे क्या कहेंगे, परिवार, गांव!
फिर मेरे संन्यासी उनको मिले ललितपुर में, जहां वे रहते हैं। उनको पूछा। तो उन्होंने कहा कि फिर से जाऊंगा। जाऊंगा जरूर। एक दिन जाऊंगा। एक दिन जाना ही है।
लेकिन वह एक दिन कब आएगा? शायद कभी न आए। कल पर जिसने टाला उसने शायद सदा के लिए टाल दिया। और जो यहां आकर भाग गए, अब वे शायद यहां आने की भी हिम्मत न जुटा पाएं, क्योंकि वह सारा खतरा फिर उनके सामने खड़ा होगा। गिरजाकुमार माथुर को कहना कि डर क्या है? डर कहीं यह तो नहीं है कि वहां गए तो कहीं उस रंग में न रंग जाएं? अगर थोड़ा कोई भाव-प्रवण हो, और गिरजाकुमार भाव-प्रवण कवि हैं, डूब सकते हैं। वही डर है। विवादास्पद हूं, यह तो बहाना है। डर कह नहीं सकते असली अपना। उनसे कहना जाकरः पुनः सोचो! डर कहीं यह तो नहीं है कि वहां जाएं तो डूब ही न जाएं! रुचि पैदा हो रही है, रस आ रहा है, कहीं ऐसा न हो कि वहां छलांग लग जाए और फिर पीछे लौटना मुश्किल हो जाए!
लोग बड़ी होशियारी से कदम रखते हैं, फूंक-फूंक कर कदम रखते हैं। और जिन्होंने जिंदगी का अनुभव किया है वे तो बहुत डरने लगते हैं। क्योंकि उन्होंने जिंदगी में पायाः जब भी तुमने कुछ ऐसा किया जो समाज से भिन्न था, तो समाज ने तुम्हें अड़चनें दीं। समाज तुम्हें क्षमा नहीं करेगा।
समाज चाहता है तुम वैसे ही रहो जैसा समाज चाहे। कहे बाएं घूमो तो बाएं घूमो, कहे दाएं घूमो तो दाएं घूमो। समाज चाहता है तुमसे एक आज्ञाकारिता-- एक अनुबंध, एक समझौता--कि तुम हमारी मान कर चलोगे तो हम तुम्हें प्रतिष्ठा देंगे, इज्जत देंगे, सम्मान देंगे। और तुमने अगर हमारे विपरीत कोई कदम उठाया, हम से भिन्न अगर गए--विपरीत नहीं, सिर्फ भिन्न भी गए--तो फिर याद रखना, हमसे बुरा कोई नहीं!
मेरे संन्यासियों को ये सारी कठिनाइयां झेलनी पड़ रही हैं। पुराने ढंग
के संन्यासी तुम हो जाओ, कोई कठिनाई नहीं, क्योंकि वह स्वीकृत है। मेरा संन्यासी होना कठिन मामला है, क्योंकि वह स्वीकृत नहीं है। थोड़े से प्राणवान लोग ही साहस कर सकते हैं।
उनको याद दिलाना कि मरने के पहले मर जाना अच्छा नहीं। उनको याद दिलाना कि अभी जीवित हो! अभी जीवित की तरह व्यवहार करो! आओ, समझो! और मैं नहीं कहता कि मेरी मान कर डूब ही जाओ। समझो! और तुम्हारी समझ कहे, तुम्हारे भीतर एक पुकार उठे, एक आह्लाद उठे, कि डूबने की अभीप्सा जगे--तो फिर रुकना मत; फिर किसी चिंता को बाधा मत बनने देना।
इतना साहस न हो तो परमात्मा को नहीं खोजा जा सकता। सत्य की तलाश में साहस से बड़ा और कोई गुण नहीं है और साहस से बड़ी और कोई पात्रता नहीं है। यह भी हो सकता है, प्रसिद्ध कवि हैं, तो अहंकार बाधा डालता हो--कि मुझ जैसा प्रतिष्ठित कवि और किसी को सुनने जाए, किसी को समझने जाए, तो लोग क्या कहेंगे!
मेरे पास खबरें आती हैं कि हम आपसे निजी एकांत में मिलना चाहते हैं, सबके सामने नहीं। क्योंकि हमें कुछ प्रश्न पूछने हैं।
प्रश्न सबके सामने ही पूछने में क्या हर्ज है?
एक हर्ज है कि लोगों को पता चलेगा कि अरे, तो तुम भी अज्ञानी ही हो! तो तुम्हें भी अभी जीवन के प्रश्न हल नहीं हुए! तो एकांत चाहिए।
मैंने यह देखा कि अकेले में लोग कुछ और पूछते हैं, सबके सामने कुछ और पूछते हैं। पूछने में फर्क पड़ जाता है। जब मैं लोगों से अकेले मिलता था, तो अकेले में वे अपनी असली समस्याएं उठाते थे। और जब उन्हीं से लोगों के सामने मिलता, तो ब्रह्म, मोक्ष, कैवल्य, इस तरह की बातें करते थे। एकांत में मिलते, तो कामवासना से कैसे छुटकारा हो? क्रोध से कैसे छुटकारा हो? भोजन के पीछे मैं दीवाना हूं, इससे कैसे मुक्ति हो? इस तरह के सवाल। और सबके सामने मिलते, तो सृष्टि किसने बनाई? स्रष्टा है या नहीं? इस सारे जगत को चलाने वाला कौन है?

ये प्रश्न ही नहीं हैं उनके। मगर सबको दिखलाने के लिए कि हमारे प्रश्न आध्यात्मिक हैं! हम कोई साधारणजन नहीं हैं, आध्यात्मिक खोजी हैं! क्रोध, कामवासना इत्यादि तो हम कब की पीछे छोड़ चुके! धन, भोजन, इनकी लालसाएं हमें नहीं घेरतीं। हमारे भीतर तो परमात्मा की भक्ति जगी है, मोक्ष का स्वाद लेना है।
फना बगैर बका का मजा नहीं मिलता
खुदी मिटाओ न जब तक खुदा नहीं मिलता
चाहते हो परमात्मा मिले, तो एक चीज तो मिटानी ही पड़ेगी--खुद को मिटाना पड़ेगा।
खुदी मिटाओ न जब तक खुदा नहीं मिलता
फना बगैर बका का मजा नहीं मिलता
जब तक फना न हो जाओ, शून्य न हो जाओ, तब तक अस्तित्व का आनंद नहीं मिलता। ऐसा विरोधाभासी गणित है जीवन काः जो मिटने को तैयार है उसे जीवन मिलता है; और जो जीवन को पकड़ता है उसको सिवाय बार-बार मरने के और कुछ भी नहीं मिलता।
सत्य स्वयं ही विरोधाभासी है, इसलिए सत्य को जिन्होंने अनुभव किया है
वे विवादास्पद न हो जाएं तो और क्या हो? उनके वक्तव्य भी विरोधाभासी हो जाते हैं। सत्य को ही बोलना है तो विरोधाभास के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। और सत्य को बोलना है तो समझौते नहीं किए जा सकते। सत्य समझौता जानता ही नहीं। सत्य तो नग्न, निर्वस्त्र खड़ा होता है, जैसा है वैसा। फिर जो परिणाम हों। परिणामों की चिंता असत्य करता है, सत्य नहीं। समझौते असत्य करता है, सत्य नहीं। इसलिए असत्य की तो पूजा होती है भीड़ के द्वारा; सत्य के ऊपर पत्थर फेंके जाते हैं।
कहना उनसे--
है फर्ज तुझ पै फकत बंदा-ए-खुदा की तलाश
खुदा की फिक्र न कर, वो मिला, मिला न मिला
ईश्वर कहां है, उसकी तुम खोज भी क्या करोगे? तुम पर तो एक ही कर्तव्य
है कि जिन्होंने ईश्वर को जाना हो उनकी खोज कर लो।
है फर्ज तुझ पै फकत बंदा-ए-खुदा की तलाश
कोई बंदा मिल जाए खुदा का, कोई उसका प्रेमी मिल जाए, वे आंखें मिल जाएं जिन आंखों ने परमात्मा का अनुभव किया हो--उन आंखों को तुम खोज लो, इतना तुम्हारा कर्तव्य है। उन चरणों को खोज लो जो प्रभु के मंदिर में प्रविष्ट हुए हों। उन हाथों में तुम्हारा हाथ पड़ जाए जिन हाथों ने प्रभु का स्पर्श किया हो। बस इतना तुम्हारा कर्तव्य है।
खुदा की फिक्र न कर, वो मिला, मिला न मिला
उससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। कोई बुद्ध मिल जाए, कोई महावीर मिल जाए, कोई नानक मिल जाए, कोई मोहम्मद मिल जाए--बस काम हो गया। उसी दर्पण में तुम्हें परमात्मा की झलक दिखाई पड़ने लगेगी। उसी वीणा में तुम्हें उसके स्वर सुनाई पड़ने लगेंगे।
लेकिन लोग परमात्मा को तो खोजना चाहते हैं और जिन्होंने परमात्मा को
पा लिया है उनके पास आने से डरते हैं। राज सीधा-सादा हैः परमात्मा को खोजने में कुछ लगता नहीं। हल्दी लगे न फिटकरी, रंग चोखा हो जाए। न परमात्मा खोजने से मिलता है, न कुछ लगता है। लेकिन सदगुरु के पास आओगे तो गर्दन कटेगी। सदगुरु के पास आओगे तो प्राणों की आहुति देनी पड़ेगी। और सदगुरु तलाश करने से मिल सकता है। सदगुरु के बिना तो परमात्मा मिलता नहीं। इसलिए तुम लाख परमात्मा खोजते रहो, वह सिर्फ दिमागी कसरत, सिर्फ बौद्धिक व्यायाम। बिठाते रहो गणित, लगाते रहो अनुमान--है या नहीं? है तो कैसा है? उसका रूप क्या, रंग क्या? निर्गुण है कि सगुण? बैठे रहो, जमाते रहो शब्दों को। शब्दों की चौपड़ खेलते रहो, शतरंज बिछाते रहो। नहीं तुम्हें परमात्मा मिलेगा।
ठीक है यह बात कि तुम्हारा यह कर्तव्य भी नहीं कि तुम परमात्मा खोजो। तुम्हारा कर्तव्य तो एक ही है, फर्ज तो केवल एक ही है कि तुम उसे खोज लो जिसने परमात्मा को खोजा हो। जो उस पार हो आया हो वही तुम्हारा माझी बन सकता है।

सूरते-नक्शे-रहगुजर आजिजी इख्तियार कर
अर्श की रफअतों पै गर तुझको मुकाम चाहिए
मिटो। निरहंकारिता तुममें उतरे।
सूरते-नक्शे-रहगुजर आजिजी इख्तियार कर
एक ही चीज तुम्हें पात्र बनाएगी कि तुम्हारा अहंकार गले।
अर्श की रफअतों पै गर तुझको मुकाम चाहिए
अगर चाहते हो कि आकाश की ऊंचाइयां तुम्हें मिलें तो एक शर्त पूरी करो--अहंकार को जाने दो। और मैं जानता हूं अड़चन। जो लोग किसी तरह की ख्याति पा लेते हैं, उनको बड़ी मुश्किल हो जाती है। कोई कवि की तरह प्रसिद्ध है, कोई अभिनेता की तरह प्रसिद्ध है। कोई चित्रकार की तरह प्रसिद्ध है, कोई राजनेता की तरह प्रसिद्ध है। उसकी अड़चन यह हो जाती है कि उसका अहंकार काफी बलिष्ठ हो जाता है। उसके अहंकार परशृंगार हो गया। अब वह कैसे जाए? कैसे झुके? और कुछ मुकाम ऐसे हैं जहां झुके बिना जाना हो ही नहीं सकता; जहां झुको तो ही जा सकते हो; जहां जाने की शर्त ही झुकना है। नहीं तो आ भी जाओगे, चले भी जाओगे। आए भी नहीं, गए भी नहीं। आना भी व्यर्थ हुआ, जाना भी व्यर्थ हुआ।
तो डर लगता होगा, प्रसिद्धि रोकती होगी। उनसे कहनाः इस तरह की प्रसिद्धियों से कुछ न कभी मिला है, न मिल सकता है। ये सब धोखे हैं। और इन धोखों में हम जी लेते हैं। इन धोखों का नाम ही माया है। इन्हीं धोखों में पड़े रहते हैं और मर जाते हैं। और फिर-फिर यही धोखे खाते हैं।
इसलिए मैं समझता हूं, अड़चन तो होती है। जब लोग पदों पर होते हैं तो उन्हें आने में अड़चन होती है। जैसे ही पद से उतर जाते हैं, फिर आने में अड़चन नहीं होती। यहां बहुत से भूतपूर्व मंत्री आते हैं। भूतपूर्व! और तरह के भूत इस देश में होते हैं कि नहीं, उनका पता नहीं, मगर भूतपूर्व मंत्री इतने हैं, वे चले आते हैं। अब पद ही न रहा तो अब दिक्कत क्या है! जब पद पर होते हैं तब--तब बड़ी अड़चन होती है उन्हें आने में। आना भी चाहते हैं तो खबर भेजते हैं यहां कि हमें निमंत्रण भेजा जाए। आना है उनको, निमंत्रण मिले तो आएंगे।
आना है तुम्हें तो आओ, निमंत्रण की क्या आकांक्षा?
नहीं, झुकने से बचने का पहले ही उपाय शुरू हो गया। फिर आते हैं तो शर्तें हैं कि हम एकांत में मिलेंगे।
क्या डर है सभी के सामने मिलने में? क्या कठिनाई है? लेकिन नहीं उघाड़ सकते अपने हृदय को सबके सामने। और एकांत में मिलने में विशिष्टता है। इसलिए मैंने तो एकांत में मिलना बंद ही कर दिया, क्योंकि गलत तरह के लोग ही एकांत में मिलने की बात करते थे। इसलिए अड़चन पड़ गई है अब उनको। अब उनको आना मुश्किल हो गया है कि कैसे आएं।
उनको कहनाः छोड़ो ये सब बच्चों जैसी बातें! ये खिलौने छोड़ो!
मुल्ला नसरुद्दीन मनोवैज्ञानिक के पास गया था और कह रहा था कि कुछ करना पड़ेगा, मेरी पत्नी की हालत बिगड़ती जा रही है। वह दिन भर खिलौनों से ही खेलती रहती है!
मनोवैज्ञानिक ने कहा कि तुम सौभाग्यशाली हो नसरुद्दीन! पत्नी उलझी रहती है, तुम्हारी झंझट कटी। खेलने दो, किसी का कुछ बिगाड़ती तो नहीं। नसरुद्दीन ने कहा, बिगाड़ती क्यों नहीं, मुझे खेलने का वक्त ही नहीं मिलता! सारे खिलौनों पर कब्जा किए हुए है। तो मैं कब खेलूं?
यहां सब खिलौनों में उत्सुक हैं--अहंकार के, पद के, प्रतिष्ठा के, धन के, यश के। न मालूम कितने खिलौने हैं! और लोग खिलौनों में उलझे हैं। बच्चों से लेकर बूढ़ों तक खिलौनों में उलझे हैं। धन्यभागी है वह जो खिलौनों से मुक्त हो जाए, खिलौनों के जाल से छूट जाए। उसे ही मैं संन्यास कहता हूं। उसे ही मैं साधना कहता हूं। जिसे स्वाद लेना हो परमात्मा का उसे झुकना ही होगा।
कह देना उनसे कि आएं, स्वागत है। मगर अपनी प्रसिद्धि, अपना नाम, पता,
सब पीछे छोड़ कर आएं। चले आएं निपट मनुष्य की तरह, तो कुछ लाभ हो सकता है।

नहीं तो अभी कुछ दिन पहले एक कवि आए। महाकवि हैं। कई दिन से फोन किए जा रहे थे बंबई से कि आना चाहता हूं, समय दीजिए, समय दीजिए। आखिर मैंने कहा, ठीक है, उन्हें समय दो। आए तो मैंने पूछा कि कहिए, क्या कहना है?
उन्होंने कहा कि दो-चार कविताएं आपको सुनाने आया हूं।
न कुछ पूछना है, न कुछ जानना है; उलटे दो-चार कविताएं मुझे सुनाने आए हैं, ताकि मैं भी प्रशस्ति दूं, प्रशंसा दूं; ताकि मैं भी प्रमाण-पत्र दूं। मैंने उनसे कहा कि तब फिर आप कभी और आना। अब वे बार-बार फोन लगाए रखते हैं कि अब मैं कब आ जाऊं?
कुछ लोग इन्हीं खेलों में लगे रहते हैं। कभी तो अपने अहंकार की चदरिया उतार कर रखनी चाहिए। कभी तो अपने जीवन की सच्ची जिज्ञासा लेकर आना चाहिए। कहीं तो कोई स्थल खोजना चाहिए जहां उघड़ सको, जहां सारी समस्याओं को नग्न कर सको, ताकि कोई समाधान मिल सके।
मृत्यु के पहले जिसने समाधि को नहीं पाया वह व्यर्थ ही जीया; जीया ही नहीं; जीने का अवसर उसने ऐसे ही गंवा दिया है।

दूसरा प्रश्नः ओशो! जीवन इतना उलटा-उलटा क्यों मालूम होता है? सभी कुछ अस्तव्यस्त है। इसमें परमात्मा की क्या मर्जी है?

देवानंद! परमात्मा को क्यों फंसाते हो? जीवन उलटा-उलटा है, क्योंकि
हम सबकी मर्जी जीवन को उलटा-उलटा जीने की है। शीर्षासन तुम करो और कहो कि क्या मामला है, मैं उलटा क्यों खड़ा हूं? इसमें परमात्मा की क्या मर्जी है? परमात्मा की कोई मर्जी नहीं है। परमात्मा ने तुम्हें स्वतंत्रता दी
है कि चाहो तो पैर से खड़े होओ, चाहो तो सिर से खड़े होओ। परमात्मा ने तुम्हें स्वतंत्रता दी है, चाहे बाएं जाओ, चाहे दाएं जाओ; चाहे अच्छा करो, चाहे बुरा; चाहे नरक खोजो, चाहे स्वर्ग। परमात्मा ने स्वतंत्रता दी है--यह उसका महान दान, उसका प्रसाद, उसकी भेंट। और तुम उसका दुरुपयोग कर रहे हो। इसलिए जीवन उलटा-पुलटा है। इसलिए सब अस्तव्यस्त है

आज का मनुष्य, मनुष्य नहीं
लुच्चा है, लफंगा है,
ऊपर से सफेदपोश
अंदर से नंगा है।
तमस की तलैया में
कूद-कूद नहाता है,
छल और छंद के
छींटे उड़ाता है,
भीगते हैं भले-भले
किसी का न बस चले
रोके रुकता नहीं
पूरा हुड़दंगा है!

मगर यह आज का ही मनुष्य है, ऐसा नहीं। ऐसा ही मनुष्य रहा है। मनुष्य की खोपड़ी उलटी है।
मुल्ला नसरुद्दीन के संबंध में कहानी है कि जब वह बच्चा था तभी उसके मां-बाप, पड़ोसी परिचित हो गए कि वह उलटी खोपड़ी है। तो सब उसको उलटी खोपड़ी जानते थे। जैसे अगर दरवाजा खुला हो और तुम्हें दरवाजा बंद करवाना हो तो उसके मां-बाप समझ गए थे कि कभी भूल कर उससे मत कहना कि दरवाजा बंद करो, नहीं तो बंद दरवाजे को खोल देगा। उलटी खोपड़ी! खुला भी हो दरवाजा तो भी उससे कहो कि बेटा, जरा दरवाजा खोल दे। वह फौरन बंद कर देगा। तो वे उलटी आज्ञा देते थे उसको।
एक दिन नसरुद्दीन अपने बाप के साथ गधे पर रेत की बोरियां लाद कर आ रहा है। पीछे बाप है, आगे-आगे नसरुद्दीन है। एक बोरी बाएं तरफ ज्यादा झुकी जा रही है और ऐसा लग रहा है कि वह पानी में गिर जाएगी। दो बोरियां दोनों तरफ समतुल हों तो टिकी रह सकती हैं। बाईं बोरी झुकी जा रही है, खुद भी गिरेगी

और दाईं बोरी को भी गिरा लेगी। और रेत अगर गीली हो गई हो इतनी भारी हो जाएगी कि फिर गधा खींच नहीं सकेगा। तो बाप ने कहा, बेटा, जरा बोरी को बाईं तरफ झुका दे।
बाईं तरफ गिर रही है, मगर उलटी खोपड़ी है, तो उससे कहना पड़ा कि बेटा, जरा बोरी को बाईं तरफ झुका दे। और बाप तो हैरान हो गया, उसने बाईं तरफ झुका दिया। बोरियां गिर गईं पानी में। बाप ने कहा, नसरुद्दीन, तुझे क्या हुआ आज?
नसरुद्दीन ने कहा, आज मैं इक्कीस साल का हो गया, अब क्या समझते हैं आप!
अब मैं बालिग हो गया। अब मुझे धोखा न दे सकेंगे। अब मैं सिर्फ उलटी खोपड़ी ही नहीं हूं, बालिग भी हूं। मैं समझ गया आपका मतलब क्या था। आप सोचते थे मैं दाईं तरफ झुकाऊंगा। वे बचपन की बातें थीं। बचपन में आपने मुझे खूब धोखा दे लिया।
आदमी बालिग हो गया है आज का, बस इतना ही फर्क पड़ा है। पहले भी आदमी उलटी खोपड़ी था, आज बालिग और हो गया, और मुसीबत आ गई। प्रौढ़ हो गया है। इसमें ईश्वर का कोई हाथ नहीं है। मनुष्य अकेला प्राणी है, जिसे परमात्मा ने स्वतंत्रता दी है। कुत्ता कुत्ता है, बिल्ली बिल्ली है। बिल्ली बिल्ली ही पैदा होती है, बिल्ली ही मरती है। कुत्ता कुत्ता पैदा होता है, कुत्ता ही मरता है। तुम किसी कुत्ते से यह नहीं कह सकते कि तुम थोड़े कम कुत्ते हो। सब कुत्ते बराबर कुत्ते हैं। लेकिन आदमी से तुम कह सकते हो कि तुम थोड़े कम आदमी हो। क्यों? क्योंकि आदमी अकेला है जो स्वतंत्र है।
आदमी चाहे तो पशुओं से नीचे गिर जाए और चाहे तो देवताओं से ऊपर उठ जाए। लेकिन ऊपर उठने में चढ़ाई है और चढ़ाई श्रमपूर्ण है। नीचे उतरने में ढलान है, श्रम नहीं लगता। इसलिए आदमी नीचे की तरफ जाना आसान पाता है। जैसे कि कार अगर पहाड़ी से नीचे की तरफ आ रही हो तो कंजूस आदमी पेट्रोल बंद कर देते हैं। पेट्रोल की जरूरत ही नहीं है, कार अपने से ही चली आती है। ढलान है। लेकिन तुम पेट्रोल बंद करके पहाड़ी नहीं चढ़ सकते; ऊर्जा लगेगी, शक्ति लगेगी, श्रम लगेगा, साधना लगेगी। ऊंचाइयां मांगती हैं साधना। पुण्य मांगते हैं साधना। परमात्मा तक पहुंचना है तो जैसे कोई गौरीशंकर का पर्वत चढ़े। पसीना-पसीना हो जाओगे। खून पसीना बनेगा। कौन उतनी झंझट ले! और अगर कभी कोई झंझट लेने भी लगे तो बाकी नहीं लेने देते, बाकी उसकी टांग पकड़ कर नीचे खींच लेते हैं। वे कहते हैं, कहां जाते हो? पागल हो गए हो! क्योंकि बाकी को भी कष्ट होता है यह देख कर कि कोई ऊपर जाए, कोई हम से ऊपर जाए! तुमने कहानियां पढ़ी होंगी, पुराणों में कहानियां हैं, वे इसी की सबूत हैं। उन कहानियों में कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं है, लेकिन प्रतीकात्मक तथ्य तो है ही। सत्य है, तथ्य हो या न हो। पुराणों में कहानियां हैं कि जब भी कोई ऋषि-मुनि दुर्धर्ष तपश्चर्या में ऊपर उठता है, तो इंद्र का सिंहासन डोलने लगता है। अब इंद्र का सिंहासन क्यों डोलने लगता है? इंद्र को क्या पड़ी? घबड़ाहट पैदा होती है कि कहीं यह मेरा पद न ले ले! तो इसको गिराओ, इसको डिगाओ।
तो तुमसे कोई अगर थोड़े ऊपर है, वह धक्का मारेगा कि नीचे जाओ। और जो नीचे हैं, वे तुम्हारी टांग खींचेंगे कि कहां ऊपर जाते हो! भीड़ तुम्हें खींच लेगी अपने में वापस, कि तुम हमसे अपने को ऊंचा समझना चाहते हो? ऊंचे उठना चाहते हो? भीड़ तुम्हारे पंख काट देगी। भीड़ बरदाश्त नहीं करती। भीड़ कभी किसी महामानव को बरदाश्त नहीं करती। महामानव के लिए तो भीड़ गालियां ही देती है, अपमान ही करती है। यही महामानव का भाग्य है, नियति है; उसे गालियां झेलनी पड़ेंगी।
तुम पूछते होः "जीवन इतना उलटा-उलटा क्यों मालूम होता है?"
मालूम नहीं होता, हमने बना लिया है उलटा-उलटा। हमने सब उपाय करके उलटा-उलटा कर लिया है। आदमी है परमात्मा होने की क्षमता और हम परमात्मा नहीं हो रहे हैं। हम गिर रहे हैं पशुओं से नीचे। हम हो रहे हैं हैवान। परमात्मा होना तो दूर, हम आदमी भी नहीं हो पा रहे हैं। इससे सब उलटा हो गया है। हमारी प्रकृति, हमारा निसर्ग तो चाहता है कि उड़ें, पंख फैलाएं आकाश में! और हमारी व्यवस्था, हमारे स्वार्थ, हमारा समाज, हमारे चारों तरफ की भीड़ चाहती है कि हम नीचे रहें, कहीं ऊंचे न जाएं!

मेरी लड़की नाच सकती है, गा सकती है और सितार भी बजा सकती है। वह अभिनय करने में कुशल है और वह एक अच्छी तैराक भी है। उसे पिक्चर देखने और उपन्यास पढ़ने का बहुत शौक है। जूडो और कराटे का भी उसे अच्छा ज्ञान है। मेरी लाड़ली बिटिया बड़ी निडर और दुस्साहसी है। वह हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी, फ्रेंच और जापानी भाषाएं जानती है तथा जर्मन सीख रही है। पिछले साल वाद-विवाद और बैडमिंटन प्रतियोगिताओं में वह स्वर्ण-पदक जीत चुकी है। वह धाराप्रवाह बोल सकती है। सामाजिक कार्यों में उसका झुकाव है। और अगले लोकसभा चुनाव में वह सूरत क्षेत्र से इलेक्शन लड़ने की तैयारी कर रही है। आप में क्या खूबियां हैं? ढब्बूजी की होने वाली सास ने अपनी सुपुत्री के विषय में विस्तार से बताने के बाद ढब्बूजी से पूछा।
बेचारे ढब्बूजी शर्म से सिर झुका कर बोले, जी, मुझे तो सिर्फ खाना पकाना ही आता है और मुझे सर्वश्रेष्ठ भोजन पकाने के लिए कई बार पुरस्कार भी मिले हैं।
जिंदगी हम उलटी किए दे रहे हैं। हमने उलटी कर ली है जिंदगी। स्त्रियां पुरुष होने की कोशिश में लगी हैं और पुरुष स्त्रैण होने की कोशिश में लगे हैं। स्त्रियां दौड़ रही हैं तेजी से कि पुरुष से स्पर्धा करें। और पुरुष धीरे-धीरे बर्तन मल रहा है; भोजन बना रहा है; घर साफ कर रहा है। स्त्रियां सिगरेट पी रही हैं; घुड़सवारी कर रही हैं; जूडो-कराटे की शिक्षा ले रही हैं। स्त्रैणता नष्ट हो रही है। स्त्रैणता चाहती है एक कमनीयता। पुरुष का पुरुषत्व भी नष्ट हो रहा है। सब चीजें उलटी होती जा रही हैं। उलटा कोई परमात्मा नहीं कर रहा है, उलटा हम कर रहे हैं।
लड़की बहुत अमीर थी और मुल्ला नसरुद्दीन गरीब, पर ईमानदार। वह उसे पसंद करती थी, पर बस इतना ही, यह मुल्ला भी जानता था। एक रात मौका पाकर मुल्ला बोला, तुम बहुत अमीर हो?
हां--लड़की ने कहा--इस समय मैं एक करोड़ की आसामी हूं। इस समय एक करोड़ रुपया मेरे पास है।
मुझसे शादी करोगी? मुल्ला ने पूछा।
नहीं।
मुझे मालूम था कि तुम यही कहोगी--मुल्ला ठंडी सांस लेता हुआ बोला।
तो फिर तुमने पूछा ही क्यों? लड़की ने मुल्ला से पूछा।
यह देखने के लिए कि आदमी को कैसा लगता है एक करोड़ रुपया गंवा कर, मुल्ला बोला।
उसे भी शादी में उत्सुकता नहीं है। एक करा.ेड रुपया गंवा कर कैसा लगता
है आदमी को, यह जानने के लिए! वह जो ठंडी सांस ली थी, वह एक करोड़ रुपया गंवाया, उसके लिए ली थी।
लोग धन के लिए प्रेम करेंगे तो सब उलटा हो जाएगा। और लोग धन के लिए ही प्रेम कर रहे हैं। प्रेम के लिए भी पूछने जाते हैं ज्योतिषी से। प्रेम भी मां-बाप तय करते हैं। क्योंकि मां-बाप ज्यादा होशियार हैं। धन, पद, प्रतिष्ठा, सबका इंतजाम करेंगे। प्रेम का भी मौका मनुष्य को सीधा नहीं रह गया। वह भी दूसरे तय कर रहे हैं। और उनके निर्णय के आधार क्या हैं? लड़के के पास कितना धन है, कितनी शिक्षा है? लड़की के पास कितना दहेज है, कितनी शिक्षा है? लड़कियां कालेजों में पढ़ रही हैं केवल इसलिए कि उन्हें अच्छा वर मिल सके; पढ़ाई में किसी की उत्सुकता नहीं है।
मैं विश्वविद्यालय में शिक्षक था। मैंने एक लड़की नहीं देखी जिसको पढ़ाई में उत्सुकता हो। उनकी सारी उत्सुकता यह है कि किसी तरह अच्छी डिग्री मिल जाए, प्रथम श्रेणी मिल जाए। और स्वर्ण-पदक मिल जाए तब तो कहना ही क्या! मगर स्वर्ण-पदक, अच्छी डिग्री, पढ़ना-लिखना, इसमें कोई रस नहीं है।
रस इस बात में है कि तब वे अच्छा पति फांस सकेंगी। नौकरी उसकी अच्छी होगी। डिप्टी कलेक्टर, कलेक्टर, डाक्टर होगा, इंजीनियर होगा।
हम जिंदगी को उलटा किए दे रहे हैं। हमने जिंदगी उलटी कर ली है।
एक युवती ने प्रदर्शनी में एक नये ढंग का कंप्यूटर देखा। प्रदर्शनी
के संचालक ने बताया कि यह ऐसा यंत्र है जो इंसान जैसा मस्तिष्क रखता है और यह प्रत्येक प्रश्न का सही उत्तर देने की पूरी क्षमता भी रखता है।

युवती तो बहुत प्रभावित हुई। उसने एक कागज पर प्रश्न लिखाः मेरा बाप कहां है?
इस प्रश्न को मशीन में डाला गया और एक बटन दबाई गई। तुरंत मशीन में से
एक पुर्जा बाहर निकला, जिस पर लिखा थाः तुम्हारा बाप बंबई की एक शराब की दुकान में बैठा शराब पी रहा है।
एकदम गलत--युवती बोली--मेरे बाप को मरे तो बीस साल हो गए।
यह मशीन कभी कोई गलती नहीं करती--संचालक ने पूरे विश्वास से कहा--आप इसी प्रश्न को जरा दूसरे ढंग से पूछिए।
इस बार युवती ने अपने प्रश्न को इस प्रकार लिखाः मेरी मां का पति कहां है?
फिर से प्रश्न को मशीन में डाला गया और बटन दबाई गई। बटन के दबाते ही फटाक से एक पुर्जा बाहर आया जिस पर लिखा थाः तुम्हारी मां के पति को मरे बीस साल हो गए हैं, लेकिन तुम्हारा बाप बंबई की एक शराब की दुकान में बैठा शराब पी रहा है।
परमात्मा नहीं कर रहा है जिंदगी को उलटा। परमात्मा को बख्शो, उस पर कृपा करो। उसका तुम्हें कुछ पता भी नहीं है। हमने ही सब गड़बड़ कर लिया है। हमने ही गुड़-गोबर कर लिया है। हमारी जिम्मेवारी है। मनुष्य ने अपने हाथ से ही अपनी जिंदगी पर कालिख पोत ली है, अपने चेहरे पर नकाब लगा लिए हैं, मुखौटे पहन लिए हैं, पाखंडी हो गया है। कुछ कहता है, कुछ करता है। किसी बात का भरोसा नहीं है। उसे खुद अपनी बात का भरोसा नहीं है कि वह जो कह रहा है, उसमें कितनी सचाई है? दूसरों को तो छोड़ दो; तुम जब कुछ कहते हो, बिना सोचे- समझे कहे जा रहे हो। पीछे तुम पछताते हो कि यह मैं क्या कह गया! यह तो मैंने कहना चाहा नहीं था। यह तो मैंने सोचा भी नहीं था कि कहूंगा।
तुम्हें अपना भी पूरा पता नहीं है। तुम्हारे भीतर भी कितना अचेतन कूड़ा-कचरा भरा है, उसका तुम्हें होश नहीं है। वह कूड़ा-कचरा कब तुम्हारे बाहर आ जाता है, तुम्हें पता भी नहीं चलता। तुम क्यों क्रोधित हो गए? तुमने क्यों क्रोध में कुछ कह दिया, कुछ तोड़ दिया, कुछ फोड़ दिया? पीछे तुम खुद ही अपना सिर धुनते हो। तुम कहते होः मेरे बावजूद यह हो गया, मैं तो करना ही नहीं चाहता था।
मनुष्य अगर अपने को न जानता हो तो उलटा हो जाएगा। आत्मज्ञान ही मनुष्य को सीधा रख सकता है। आत्म-अज्ञान में सब उलटा हो जाने वाला है। और हम सब अज्ञानी हैं। मगर कोई मानने को राजी नहीं है कि वह अज्ञानी है। सबको भ्रम है ज्ञानी होने का। और जब अज्ञानी को ज्ञानी होने का भ्रम होता है तो अज्ञान सदा के लिए सुरक्षित हो गया। जब अज्ञानी को इस बात का बोध होता है कि मैं अज्ञानी हूं, तो उसने ज्ञान की तरफ पहला कदम उठाया। क्योंकि यह बहुत बड़ा ज्ञान है जान लेना कि मैं अज्ञानी हूं। यह बड़े से बड़ा जानना है। यहां चरित्रहीन अपने को चरित्रवान समझ रहे हैं, क्योंकि उन्होंने ऊपर
से एक ढोंग रच लिया है। यहां असाधु अपने को साधु समझ रहे हैं, क्योंकि उन्होंने ऊपर से एक व्यवस्था बांध रखी है। यहां सब उलटा हो गया है। इस उलटे को अगर सीधा करना हो--और करना जरूरी है, नहीं तो आदमी बचेगा नहीं--तो एक ही उपाय है कि मनुष्य को ध्यान की क्षमता दो, कि मनुष्य को ध्यान की शिक्षा दो, कि मनुष्य को ध्यान के द्वारा आत्म-साक्षात्कार के उपाय सिखाओ--कि वह स्वयं को पूरा-पूरा जान ले कि मैं क्या हूं, कौन हूं, कैसा हूं, क्या-क्या मेरे भीतर है, कितने कक्ष मेरे अंधकार में दबे पड़े हैं। जो व्यक्ति अपने को पूरी तरह पहचानता है उससे जीवन में फिर कुछ उलटा नहीं होता। और एक व्यक्ति सीधा हो जाए तो उसके आस-पास तरंगें पैदा होती हैं कि अनेक लोग सीधे होने लगते हैं।
मैं तुम्हें जो सिखा रहा हूं, सीधी-सादी बात है। मैं तुम्हें आचरण नहीं सिखा रहा। क्योंकि आचरण सिखाया गया सदियों तक, सिर्फ पाखंड पैदा हुआ, आचरण पैदा नहीं हुआ। मैं तुम्हें नीति नहीं सिखा रहा। क्योंकि नीति सिखा- सिखा कर मर गए लोग, न वे खुद नीतिवान हो सके, न दूसरों को नीतिवान कर सके। मैं तुम्हें एक नई ही बात कह रहा हूं। मैं तो कह रहा हूंः सब नीति, सब आचरण, सब बाह्य उपचार हैं। तुम चैतन्य को जगाओ। तुम चेतना बनो। तुम ज्यादा से ज्यादा चैतन्य हो जाओ। तुम्हारी चैतन्यता की क्षमता में ही तुम्हारे

जीवन की क्रांति छिपी है। तुम जितने होश से भर जाओगे उतना ही तुम्हारा जीवन सहज, सीधा, नैसर्गिक, सरल, सत्य और प्रामाणिक हो जाएगा।
परमात्मा की क्या मर्जी है, यह मत पूछो; तुम्हारी क्या मर्जी है, यह पूछो। तुम्हें जीवन को नैसर्गिक, सहज, सरल और सत्य ढंग से जीना है? इसकी फिक्र करो। तुम अपनी फिक्र करो। तुम औरों की फिक्र छोड़ो। क्योंकि तुम नहीं थे, और तो लोग थे ही; तुम कल नहीं हो जाओगे, और लोग जारी रहेंगे। यह दुनिया बड़ी है। इस सारी दुनिया को सीधा करने की चिंता में तुम मत लग जाना। क्योंकि उस तरह की चिंता भी सिर्फ, अपने उलटेपन को न देख पाऊं, इसका उपाय है। तुम अपनी फिक्र कर लो।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन गया एक दुकान पर लिपस्टिक खरीदने। दुकानदार बड़ा हैरान हुआ। बहुत लिपस्टिक खरीदने वाले उसने देखे थे, मगर ऐसा खरीददार नहीं देखा था। वह एक-एक लिपस्टिक को ले और चखे। दुकानदार ने कहा कि बड़े मियां, क्या कर रहे हो? यह कोई लिपस्टिक खरीदने का ढंग है? बहुत खरीददार देखे, जिंदगी मेरी हो गई लिपस्टिक बेचते, यही मेरा धंधा है, तुम पहली दफा आए हो। यह क्या कर रहे हो?
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि तुम अपने काम से काम रखो, मुझे मेरा काम करने दो। बीच में बाधा देने की तुम्हें जरूरत नहीं। लिपस्टिक मैं खरीद रहा हूं या तुम?
दुकानदार ने कहा, वह तो आप ही खरीद रहे हैं। मगर बेच रहा हूं मैं, तो कम
से कम मुझे इतना हक है पूछने का कि यह क्या ढंग है चुनने का?
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि यह निजी बात है। तुम नहीं मानते तो बताए देता हूं। लगाएगी तो मेरी पत्नी लिपस्टिक, लेकिन चखना तो मुझको ही पड़ेगा! सो पहले से ही मैं चख रहा हूं। मैं अपनी फिक्र कर रहा हूं।
और मैं भी तुमसे कहता हूंः तुम अपनी फिक्र कर लो। छोड़ो फिक्र दुनिया
की कि उलटी है कि सीधी। तुम इतनी फिक्र कर लो कि तुम तो कहीं सिर के बल नहीं खड़े हो! बस तुम अपने को सीधा करने में लग जाओ। और तुम सीधे हो जाओ तो तुम अचानक पाओगे कि तुम्हारे आस-पास की दुनिया भी सीधी होने लगी। हम जैसे होते हैं, हमारे लिए दुनिया वैसी ही हो जाती है। क्योंकि दुनिया हम पर वही लौटा कर बरसा देती है जो हम दुनिया को देते हैं। अगर तुम फूल फेंकोगे दुनिया पर, फूल लौट आएंगे--हजार गुना होकर लौट आएंगे! दुनिया एक प्रतिध्वनि है। और तुम अगर सीधे हो तो तुमसे जो भी आदमी संबंध बनाएगा, वह संबंध बना ही तब सकेगा जब सीधा होगा; उसे सीधा होना ही पड़ेगा, नहीं तो तुमसे संबंध नहीं बन सकेगा। धीरे-धीरे तुम पाओगे तुमसे वे ही लोग संबंध बनाते हैं जो सीधे हैं। पियक्कड़ों के पास पियक्कड़ इकट्ठे होते हैं। जुआरियों के पास जुआरी इकट्ठे हो जाते हैं। संतों के पास, जिनके संतत्व की संभावना है, वे ही लोग खिंचे चले आते हैं। सदगुरु के पास हर कोई नहीं आ जाता। बुद्धों के पास सिर्फ संभावित बुद्ध ही आते हैं।
तुम सीधे हो तो तुम अचानक पाओगे कि तुम्हारे संबंध उन लोगों से होने लगे जो सीधे हैं। कम से कम तुम्हारी छोटी सी दुनिया सीधी हो जाएगी, साफ-सुथरी हो जाएगी। तुम जटिलता छोड़ो। तुम कुटिलता छोड़ो। तुम इरछा-तिरछापन छोड़ो।
इतना तो हो सकता है। लेकिन तुम अगर दुनिया को सीधा करने में लग गए तो तुम खुद भी सीधे न हो पाओगे, तुम किसी को सीधा कर भी न पाओगे। तुम्हारा जीवन रेत से तेल निकालने में व्यतीत हो जाएगा, न कभी तेल निकलेगा, न कभी तुम्हें तृप्ति होगी, न कभी तुम अनुभव कर सकोगे कि मैं पा सका वह जो मैंने पाना चाहा था। छोड़ो दुनिया को, अपनी सुध लो!

तीसरा प्रश्नः ओशो! कोई दस हजार वर्ष पहले वेद के ऋषियों ने एक प्रश्न पूछा था--कस्मै देवाय हविषा विधेम? हम किस देव की स्तुति व उपासना करें? क्या यह प्रश्न आज भी प्रासंगिक नहीं है? क्या इस पर पुनः कुछ कहने की अनुकंपा करेंगे?

आनंद मैत्रेय! यह प्रश्न न तो उस दिन प्रासंगिक था, न आज प्रासंगिक है। हम किस देव की स्तुति व उपासना करें? यह मौलिक रूप से गलत प्रश्न है।

और जब गलत प्रश्न पूछा जाता है तो फिर गलत उत्तर पैदा होते हैं। तो कोई कहेगा कि गणेशजी की पूजा करो और कोई कहेगा कि शिवजी की पूजा करो और कोई कहेगा कि रामचंद्रजी की पूजा करो और कोई कहेगा कि कृष्णचंद्रजी की पूजा करो। फिर विवाद उठेगा, झगड़े खड़े होंगे।
यह प्रश्न ही गलत है--कस्मै देवाय हविषा विधेम? किस देवता को हम पूजें? इसमें जोर है देवता के चुनाव पर। इसलिए इसे मैं गलत प्रश्न कहता हूं। यह किसी साधारणजन ने पूछा होगा। वेद में इसका उल्लेख है, मगर वेद में सभी वचन ऋषियों के नहीं हैं--नहीं हो सकते हैं। क्योंकि वेद को मैंने देखा तो मैंने पाया कि अधिकतर बातें तो इतनी छोटी हैं, इतनी ओछी हैं कि वेद में होनी ही नहीं चाहिए थीं। लेकिन उनके होने का कारण है। वेद उस समय की एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका है। जो भी उस समय की जानकारी थी, सब वेद में डाल दी गई--अच्छी, बुरी; छोटे लोगों की, बड़े लोगों की; अज्ञानियों की, ज्ञानियों की। सब इकट्ठा कर दिया गया। उसमें तुम्हें छांटना होगा। महर्षियों के वचन तो बहुत थोड़े हैं। अधिकतर वचन तो अज्ञानियों के हैं। कोई प्रार्थना कर रहा है इंद्र से कि हे इंद्र, मेरे दुश्मन के खेत में वर्षा ही मत करना!
अब यह कोई महर्षि ऐसी प्रार्थना करेगा? एक तो महर्षि किसी को दुश्मन क्यों मानेगा? और चलो, मान भी लिया कि दुश्मन कोई है, तो ऐसी प्रार्थना करेगा कि उसके खेत में पानी कम बरसाना? और न केवल महर्षि इस तरह की प्रार्थना कर रहे हैं, इंद्र देवता इस तरह की प्रार्थनाएं मान भी रहे हैं। न तो महर्षि महर्षि मालूम होते हैं, न इंद्र देवता इंद्र देवता मालूम होते हैं। क्योंकि ऋषि कह रहा है कि नारियल चढ़ाऊंगा। वह रिश्वत दूंगा, कह रहा है, ठीक अर्थों में।
इसीलिए भारत से रिश्वत का मिटना बहुत मुश्किल है। यह बड़ी पुरानी परंपरा है। हम देवताओं को रिश्वत देते रहे, भगवान को रिश्वत देते रहे, राजाओं-महाराजाओं को रिश्वत देते रहे। रघुकुल रीत सदा चलि आई! यह तो चलता ही रहा। अब उसी तरह जो भी अब हैं--प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति, कि गवर्नर, कि कमिश्नर, कि कलेक्टर, कि डिप्टी कलेक्टर, कि इंस्पेक्टर, कि हवलदार, कि चपरासी--जो भी जहां जरूरत है, हमें एक बात पता है कि नारियल चढ़ाने से सब कुछ होता है। इस देश में रिश्वत तो धार्मिक कृत्य है। इसलिए इस देश से रिश्वत को मिटाना बहुत मुश्किल है।
दुनिया के किसी देश में इस तरह की रिश्वत नहीं चलती। चल ही नहीं सकती, क्योंकि लोगों को थोड़ा सम्मान है अपना। अगर तुम किसी आदमी को रिश्वत देने को कहोगे तो वह चांटा मार देगा तुम्हें, कि तुम उसका अपमान कर रहे हो। तुम कह रहे हो कि वह अपने कर्तव्य को बेच दे--दो पैसे में! तुम उससे उसकी आत्मा बेच देने का आग्रह कर रहे हो--दो पैसे में! पहले तो कोई देने की हिम्मत नहीं करेगा। और देने की किसी ने हिम्मत की तो उत्तर में बहुत कठिनाई में पड़ जाएगा। इस देश में लेकिन लेना-देना बिल्कुल प्रेम से चलता है। अड़चन ही नहीं है कोई। कोई सोचता ही नहीं कि रिश्वत लेने में कोई अपमान है। देने वाला भी नहीं सोचता कि वह अपमान कर रहा है। देने वाला सोचता है सम्मान कर रहा है। लेने वाला भी सोचता है सम्मानित हो रहा हूं। अगर न दो रिश्वत तो अपमान है। पुरानी आदतें हैं। परंपरागत है।
यह पूछना कि किस देवता की उपासना करें, यह प्रश्न ही गलत है। यह किसी ऋषि का नहीं हो सकता। ऋषि तो उपासना करता है, देवता का सवाल ही नहीं है। यह सारा अस्तित्व दिव्य है। इसमें कहां पूछना कि किसकी करें और किसकी न करें! यह पूछना कि मैं किस देवता के सामने झुकूं, गलत आदमी का सवाल है। सही आदमी पूछता हैः झुकने की कला क्या है?
मेरी बात को ठीक से समझ लेना। सही आदमी पूछता हैः झुकने की कला क्या है? वह यह सवाल ही नहीं कि किसके सामने झुकें। झुकने की कला! फिर जहां भी झुक जाओ वहीं परमात्मा है। गलत आदमी पूछता है कि परमात्मा हो तो मैं झुकूं। सही आदमी कहता है कि जहां मैं झुक गया वहीं मैंने परमात्मा पाया। झुकना पहले है, परमात्मा पीछे है। और गलत आदमी कहता हैः पक्का हो जाए कि ये ही सज्जन परमात्मा हैं! यही देवता काम पड़ेगा! कि यह है भी देवता कि नहीं!

इस प्रश्न में यही सारी बातें छिपी हैं। कस्मै देवाय हविषा विधेम? किसकी स्तुति करें? किसकी उपासना करें? असल में, जो अनुवाद किया है, आनंद मैत्रेय--हम किस देव की स्तुति व उपासना करें? वह अनुवाद भी थोड़ा सा भिन्न है मूल से। कस्मै देवाय हविषा विधेम? हविषा का अर्थ होता है--भेंट किसको चढ़ाएं? रिश्वत किसको दें? उसका ठीक-ठीक अर्थ होता हैः भेंट। डाली किसको भेजें? कौन काम पड़ेगा? लड़का बीमार है, पत्नी मिलती नहीं, नौकरी खो गई, दीवाला निकल गया। अब कौन है देवता जो दीवाले को दीवाली में बदल दे? उसकी हम भेंट करेंगे। उस पर हम उपासना करेंगे, प्रार्थना करेंगे, स्तुति करेंगे। उसके चरणों में सिर पटकेंगे। मगर पक्का हो जाए कि वह कर भी सकता है कि नहीं! उसकी सामर्थ्य में भी है यह बात या नहीं!
तो फिर दावेदार पैदा होते हैं, पंडित-पुरोहित पैदा होते हैं। वे कहते हैं कि यह है असली देवता। इस देवता का यह रहा मंत्र। इसी मंत्र से यह देवता सिद्ध होगा। और मंत्र की भी यह विशेष पद्धति है, इसमें इंच भर फर्क किया कि चूक हुई, कि फिर देवता से संबंध छूट जाएगा। और मैं ही कान फूंकूंगा तुम्हारे। और मैं ही तुम्हें विधि बताऊंगा। और तुम किसी को यह विधि बताना मत।
ये सब धंधे फैलाने के उपाय हैं।
नहीं, यह प्रश्न ऋषि का नहीं है। यह प्रश्न बहुत सामान्यजन का होगा। ऋषि तो पूछेगाः झुकने की कला क्या है? निरहंकार होने की कला क्या है? मैं कैसे मिट जाऊं?
शोरे-नाकूसे-बरहमन हो कि हो बांगे-हरम
छुपके हर आवाज में तुझको सदा देता हूं मैं
फिर चाहे मंदिर में शंख बजता हो कि चाहे मस्जिद में अजान, कुछ फर्क नहीं पड़ता।
शोरे-नाकूसे-बरहमन...
ब्राह्मण के शंख का नाद।
शोरे-नाकूसे-बरहमन हो कि हो बांगे-हरम
कि काबे में नमाज पढ़ी जा रही हो, कि काबे से अजान उठ रही हो, कुछ फर्क नहीं है।
छुपके हर आवाज में तुझको सदा देता हूं मैं
मैं ही हर आवाज से तुझे पुकार रहा हूं। मैं ही हूं ब्राह्मण के शंख की आवाज और मैं ही हूं सुबह-सुबह मस्जिद से उठती हुई अजान। सब आवाजें मेरी हैं और सब आवाजें तुझ एक की तरफ समर्पित हैं।
"किस देवता की स्तुति करें?"
क्या बहुत परमात्मा हैं दुनिया में? परमात्मा एक है। उस एक की ही स्तुति है। उस एक की ही उपासना है। और उपासना में उस एक को पहले नहीं जाना जा सकता--कि वह कौन है? उपासना करने के बाद ही उसका अनुभव हो सकता है।
परमात्मा को जान लेंगे, फिर प्रार्थना करेंगे, अगर तुमने ऐसा निर्णय लिया तो तुम न कभी परमात्मा को जानोगे, न कभी प्रार्थना करोगे।
तुमसे मैं कहता हूंः प्रार्थना करो, ताकि परमात्मा को जान सको। प्रार्थना पहले है, प्रेम पहले है। तुम प्रार्थना का मजा लेना शुरू करो।
तुम प्रार्थना में मस्त होओ। तुम प्रार्थना में उन्मत्त होओ। तुम प्रार्थना की शराब पीओ, परमात्मा खुद खिंचा चला आएगा। कच्चे धागे में बंधे चले आएंगे। वह जो मालिक है, तुम्हारा जरा कच्चा सा धागा भी प्रार्थना का हो तो पर्याप्त है।
जबीं काबे में रख दी या सरे-कूए-बुतां रख दी
गरज अब उठ नहीं सकती, जहां रख दी वहां रख दी
जरा तरकीब सीखो सिर रखने की, सिर टेकने की, झुकने की। और जहां सिर रख दो, फिर वहां से उठे न। फिर घबड़ाओ मत, परमात्मा तुम्हें खोजता आ जाएगा। इतना समर्पण हो और परमात्मा न मिले, ऐसा कभी हुआ है?
हजरते-जाहिद, तुम्हें जन्नत दिखा लाएंगे रिंद
फूल खिलने दीजिए, चश्मे उबलने दीजिए
जरा पियक्कड़ों का साथ करो! क्या पूछते होः कस्मै देवाय हविषा विधेम? किस देवता की मैं स्तुति करूं, किस देवता को भेंट चढ़ाऊं, किस देवता की

उपासना करूं? अरे रिंदों से दोस्ती करो! पियक्कड़ों से दोस्ती करो! जो पीए बैठे हैं, जो मदहोशी से भरे हैं, जो उसके ध्यान में लीन हैं, जो उसके प्रेम में डूबे हैं, जो उसकी प्रार्थना में नाच रहे हैं--उनसे दोस्ती करो, उनका सत्संग करो!
हजरते-जाहिद! तब हे ज्ञानी पंडित, हे विरागी पंडित।
हजरते-जाहिद, तुम्हें जन्नत दिखा लाएंगे रिंद
तब ये पीने वाले पियक्कड़ तुम्हें स्वर्ग दिखला लाएंगे।
फूल खिलने दीजिए, चश्मे उबलने दीजिए
होने दो आनंद! खिलने दो फूल! झरने टूटने दो--प्रेम के, प्रार्थना के!
मत पूछो किसकी प्रार्थना करें। यही पूछो, प्रार्थना क्या है? यही पूछो, प्रार्थना कैसे करें? मत पूछो किसका ध्यान करें। यही पूछो कि ध्यान क्या है? ध्यान कैसे करें?
मेरे पास भी लोग आकर पूछते हैं, वे पूछते हैंः ध्यान किसका करें?
गलत प्रश्न उन्होंने शुरू किया। किसका! बस वे पूछ रहे हैं कि गणेशजी
का कि हनुमानजी का? कि अब बैठ कर आंख बंद करके हनुमानजी को देखें? जरा सावधानी रखना, हनुमानजी को देखा, हनुमानजी ही हो जाओगे। गणेशजी को देखा, गणेशजी हो जाओगे। जिसको देखोगे वही हो जाओगे, क्योंकि उसी में रंग जाओगे, उसी में पग जाओगे। जरा सावधान रहना। ज्यादा गणेशजी को देखा, सूंड निकलेगी। ज्यादा हनुमानजी को देखा, पूंछ निकलेगी। किसका ध्यान! किसका सवाल ही नहीं है। ध्यान तो चित्त की निर्विषय अवस्था है; उसमें कोई विषय होता ही नहीं--न गणेशजी, न हनुमानजी।
बुद्ध ने कहा हैः अगर तुम्हारे मार्ग में कहीं मैं आ जाऊं तो तलवार उठा कर मेरी गर्दन काट देना।
किस मार्ग की बात कर रहे हैं बुद्ध? ध्यान के मार्ग की। वे कह रहे हैंः ध्यान में अगर मैं भी आ जाऊं तुम्हारे, तो तलवार से काट देना, हटा देना मुझे। क्योंकि ध्यान है शून्य, निर्विकार, निर्विचार चित्त की अवस्था। और तुम पूछ रहे हो, किसका करें? तुम पूछ रहे हो, ध्यान में किसको भरें? और ध्यान है खाली करना। बात ही गलत हो गई, शुरू से ही गलत हो गई।
मगर तुम्हें पंडित-पुरोहित यही समझाते रहे हैं कि इसका करो ध्यान, उसका करो ध्यान। सदियों-सदियों से गलत बातें कही गई हैं, तुम उनके आदी हो गए हो।
तू हुस्न की नजर को समझता है बेपनाह
अपनी निगाह को भी कभी आजमा के देख
परदे तमाम उठा के न मायूसे-जलवा हो
उठ और अपने दिल की चिलमन उठा के देख
सवाल यह नहीं है कि किसका ध्यान, जरा भीतर का परदा उठाना है।
तू हुस्न की नजर को समझता है बेपनाह
अपनी निगाह को भी कभी आजमा के देख
जरा अपनी दृष्टि को आजमाओ, अपने दर्शन की क्षमता को आजमाओ।
परदे तमाम उठा के न मायूसे-जलवा हो
उठा चुके बहुत परदे मंदिरों के, मस्जिदों के। मायूस न हो जाओ; उदास न
हो जाओ; हताश न हो जाओ।
उठ और अपने दिल की चिलमन उठा के देख
एक ही परदा उठाने जैसा है, वह अपने दिल पर पड़ा हुआ परदा है। किस बात से बुना गया है वह परदा? विचार से और वासना के ताने-बाने से बुना गया परदा है। विचार और वासना को हटा दो। एक क्षण को भी न विचार हो, न वासना हो--ध्यान अवतरित हो गया! और ध्यान में तुम जानोगे--सब कुछ परमात्मा है--तुम भी! कण-कण परमात्मा है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। परमात्मा समष्टि का नाम है। इश्क है सहल, मगर हम हैं वो दुश्वार-पसंद
कारे-आसां को भी दुश्वार बना लेते हैं
बड़ी सरल बात है प्रेम। प्रार्थना बड़ी सरल बात है।
इश्क है सहल, मगर हम हैं वो दुश्वार-पसंद
मगर हम कुछ ऐसे उलटे हैं कि हमें कठिनाई जंचती है। हम चीजों को उलझा लेते हैं और कठिन बना लेते हैं।

कारे-आसां को भी दुश्वार बना लेते हैं
जो बात सरलता से हो सकती थी, उसको भी खूब कठिन कर लेते हैं। क्यों? क्योंकि अहंकार को सरल बात करने में मजा नहीं आता। कठिन कोई बात हो तो करने में मजा आता है। जितनी कठिन हो उतना अहंकार को लगता है कि हां, करके दिखाऊंगा! बात सरल हो तो अहंकार कहता हैः यह तो कोई भी कर लेगा, इसमें क्या खूबी है? इसमें क्या अहंकार को भोजन मिलेगा? तो हमने प्रेम को, प्रार्थना को भी कठिन बना लिया है। अन्यथा बात बड़ी सरल है।

कछुए के अंगों की भांति
सब वृत्तियां
समेट लीं मैंने।
कमठचर्म सी
ओढ़ ली
ढाल ढिठाई की
बाहर से बंद हो
अंदर को खुल गया।

इंगला ने आसन दिया,
पिंगला ने जलपान,
सुषमना ने सेज बिछा
समादृत मुझे किया।
खुल गया
सूक्ष्म
दिव्य,
चेतना का लोक नया।

बस इतना सा राज है।
कछुए के अंगों की भांति
सब वृत्तियां
समेट लीं मैंने।
सीखो अपने को समेटना!
कमठचर्म सी
ओढ़ ली ढाल
ढिठाई की
बाहर से बंद हो
अंदर को खुल गया।
बाहर से आंख बंद करो, ताकि भीतर आंख खुल सके। पलटू ने कहा नः मेरी बात
वे ही समझेंगे जो अंधे हैं। अंधे! पहले तो बात चौंकाती है, मगर वे ठीक कह रहे हैं। वे कह रहे हैंः बाहर से जिन्होंने आंख बंद कर ली, वे बाहर के लिए अंधे ही हो गए। अब वे भीतर ही देखते हैं।
बाहर से बंद हो
अंदर को खुल गया।
इंगला ने आसन दिया,
पिंगला ने जलपान,
सुषमना ने सेज बिछा
समादृत मुझे किया।
खुल गया
सूक्ष्म
दिव्य,
चेतना का लोक नया।
नहीं, यह सवाल पूछने का नहीं है कि हम किसे स्तुति दें, किसकी उपासना करें, किस पर भेंट चढ़ाएं? कस्मै देवाय हविषा विधेम? नहीं-नहीं, यह सवाल महर्षि का नहीं है।

महर्षि तो यही पूछता है कि हम कैसे अपने को जान लें? स्वयं से परिचित
हो जाएं? क्योंकि जो स्वयं को जान लेता है, उसने सब जान लिया। और जो स्वयं को नहीं जानता, वह और कुछ भी जान ले, उसके जानने का कोई भी मूल्य नहीं है। धर्म है आत्म-साक्षात्कार। ये देवी-देवताओं की बातचीत ही बचकानी है।
और आत्म-साक्षात्कार ही परमात्म-साक्षात्कार है। तुम्हारे भीतर से
ही वह द्वार खुलता है जो परमात्मा का द्वार है
आज इतना ही।

काहे होत अधीर
उन्नीसवां प्रवचन

पलटू फूला फूल

वृच्छा फरैं न आपको, नदी न अंचवै नीर।
परस्वारथ के कारने, संतन धरै सरीर।।
बड़े बड़ाई में भुले, छोटे हैं सिरदार।
पलटू मीठो कूप-जल, समुंद पड़ा है खार।।
हिरदे में तो कुटिल है, बोलै वचन रसाल।
पलटू वह केहि काम का, ज्यों नारुन-फल लाल।।
सब तीरथ में खोजिया, गहरी बुड़की मार।
पलटू जल के बीच में, किन पाया करतार।।
पलटू जहवां दो अमल, रैयत होय उजाड़।
इक घर में दस देवता, क्योंकर बसै बजार।।
हिंदू पूजै देवखरा, मुसलमान महजीद।
पलटू पूजै बोलता, जो खाय दीद बरदीद।।
चारि बरन को मेटिकै, भक्ति चलाया मूल।
गुरु गोविंद के बाग में, पलटू फूला फूल।।
कमर बांधि खोजन चले, पलटू फिरै उदेस।
शट दरसन सब पचि मुए, कोउ न कहा संदेस।।
सिष्य सिष्य सब ही कहैं, सिष्य भया न कोय।
पलटू गुरु की वस्तु को, सीखै सिष तब होय।।
खोजत गठरी लाल की, नहीं गांठि में दाम।
लोकलाज तोड़ै नहीं, पलटू चाहै राम।।
मरने वाला मरि गया, रोवै जो मरि जाय।
समझावै सो भी मरै, पलटू को पछिताय।।

न जाने कौन है गुमराह, कौन आगाहे-मंजिल है
हजारों कारवां हैं जिंदगी की शाहराहों में
रहे-मंजिल में सब गुम हैं, मगर अफसोस तो यह है
अमीरे-कारवां भी है उन्हीं गुमकरदा राहों में
जीवन एक यात्रा है। यात्रा है--मृत्यु से अमृत की ओर; अंधकार से प्रकाश की ओर; व्यर्थ से सार्थक की ओर। एक शब्द मेंः पदार्थ से परमात्मा की ओर। इस यात्रा में वे सारे लोग जो बाहर तलाश रहे हैं, भटके हुए हैं। लाख तलाशें, कुछ पाएंगे नहीं--न काशी में, न काबा में; न कुरान में, न गीता में। यहां तो केवल वे ही पाने में समर्थ हो पाते हैं जो स्वयं के भीतर छिपे हुए सत्य को पहचानते हैं।
यह यात्रा अनूठी है। यह यात्रा कहीं जाने की नहीं, कहीं से लौट आने की है। जा तो हम बहुत दूर चुके हैं--अपने से दूर। वापस लौटना है अपने पर। जा तो हम बहुत दूर चुके हैं--अपने सपनों में, वासनाओं में, विचारों में। छोड़ देना है सारे स्वप्न, छोड़ देने हैं सारे विचार, सारी वासनाएं, ताकि अपने पर आना हो जाए। संसार नहीं छोड़ना है, स्वप्न छोड़ने हैं; क्योंकि स्वप्न ही संसार है।
तुमने बार-बार सुना होगा पंडितों को, पुरोहितों को कहते हुए, कि संसार स्वप्न है। मैं तुमसे कहना चाहता हूंः स्वप्न संसार है। तुम्हारे भीतर जो स्वप्नों का जाल है वही संसार है। उसे छोड़ देना है। ये बाहर बोलते हुए पक्षी तो फिर भी बोलेंगे--ऐसे ही बोलेंगे, और भी मधुरतर बोलेंगे। इनके कंठों में और भी संगीत आ जाएगा, क्योंकि तुम्हारे पास सुनने वाले कान होंगे। और जिसके पास सुनने वाले कान हैं उससे पत्थर भी बोलने लगते हैं। ये वृक्ष तो ऐसे ही हरे होंगे, और हरे हो जाएंगे। क्योंकि जिसके पास देखने वाली आंख है उसके लिए रंगों में रंग, गहराइयों में गहराइयां, रूप में अरूप दिखाई पड़ने लगता है। यह संसार जो तुम्हारे बाहर फैला हुआ है, यह तो और मधुर, और प्रीतिकर होकर प्रकट होगा। काश, तुम जाग जाओ! तुम सोए हो तो भी यह

मधुर है और प्रीतिकर है। तुम जाग जाओ तब तो अकूत खजाना है यह। साम्राज्य है परमात्मा का!
इस संसार को छोड़ने को मैं नहीं कहता हूं। लेकिन स्वप्न का संसार जरूर छोड़ना है। वे जो तुम्हारे भीतर स्वप्न चलते रहते हैं--यह पा लूं, वह पा लूं; यह हो जाऊं, वह हो जाऊं; ऐसा होता तो क्या होता, ऐसा होता तो क्या होता! वह जो अतीत तुम्हें जकड़े हुए है, भविष्य तुम्हें पकड़े हुए है; उन दोनों चक्की के पाटों से तुम बाहर आ जाओ। यही संन्यास है। स्वप्न का त्याग संन्यास है। जागरण संन्यास है। क्योंकि स्वप्न बिना जागे नहीं त्यागे जा सकते। संसार तो बिना जागे छोड़ा जा सकता है।
कोई पचास लाख भारत में साधु-संत हैं। इनमें से कितने बुद्धत्व को उपलब्ध हुए हैं? यह भीड़ है भिखारियों की, चालबाजों की, बेईमानों की, पाखंडियों की, धोखेबाजों की। यह भीड़ है, जो तुम्हें चूस रही है। इस भीड़ में किसके भीतर का दीया जला है? इस भीड़ में किसको परमात्मा के दर्शन हुए हैं? यह भीड़ उधार तोतों की तरह शास्त्रों को दोहराए चली जाती है।
लेकिन इन अंधों की बातें तुम्हें जंचती हैं, क्योंकि तुम भी अंधे हो।
ये अंधे तुम्हारी ही भाषा में बोलते हैं; इसलिए बातें जंचती हैं, समझ में आती हैं।
बुद्धों के वचन तुम्हारी पकड़ के बाहर हो जाते हैं, क्योंकि बुद्धों
के वचन समझने के पहले तुम्हें किसी क्रांति से गुजरना जरूरी है। बुद्धों के वचन समझने के पहले तुम्हारी प्रतिभा पर धार आनी चाहिए, तुम्हारे भीतर ध्यान का दीया जलना चाहिए। तुम्हारे भीतर भी कुछ बुद्धत्व की लहर उठे तो तुम्हारा बुद्धों से नाता बने। नहीं तो तुम बुद्धुओं के चक्कर में रहोगे। इन बुद्धुओं ने तुमसे कहा है--संसार छोड़ दो।
संसार छोड़ना बहुत आसान है। सच तो यह है कि जो भी संसार में जी रहा है
वह छोड़ना चाहता है। कौन नहीं ऊब गया है? कौन नहीं परेशान हो गया है पत्नियों से, पतियों से, बच्चों से, मां-बाप से? कौन परेशान नहीं है दुकान से, बाजार से, नौकरी से, धंधे से? ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जो नहीं ऊब गया है।
यह दूसरी बात है कि नहीं छोड़ता है। नहीं छोड़ने का कारणः जाए तो कहां जाए? छोड़ कर जाने को कोई जगह भी तो हो! रोटी-रोजी तो कहीं भी कमानी ही होगी। भूखे तो नहीं रहा जा सकता। अगर कमाएगा नहीं तो भीख मांगनी होगी। और उतना, भीख मांगने के तल तक गिरने के लिए बहुत कम लोग राजी हैं। या फिर साहस नहीं है। क्योंकि कितनी ही ऊब हो, कितनी ही परेशानी हो, संसार में सुविधाएं भी हैं। या फिर डरता है, लोक-लाज! क्या कहेंगे लोग--भाग गया, भगोड़ा था, नामर्द था, कायर था, युद्ध में पीठ दिखा दी! खुद की ही आंखों में गिर जाएंगे। या कि हिसाब-किताब बिठा रहे हैं--कि छोड़ तो हम दें, लेकिन मिलेगा क्या? हाथ का भी चला जाए और जो मिला नहीं है वह मिले भी नहीं, तो कहीं ऐसी झंझट में हम न पड़ जाएं। और फिर देखते हैं कि जिन्होंने छोड़ दिया उन्होंने क्या पा लिया है? जिन्होंने छोड़ दिया है वे उनकी भीख पर जी रहे हैं जिन्होंने नहीं छोड़ा है। लोग संसार छोड़ते नहीं, इसलिए नहीं कि संसार में बहुत उन्हें आनंद मिल रहा है, वरन सिर्फ इसलिए कि इस संसार के अतिरिक्त और कोई संसार है भी तो नहीं जहां छोड़ दें और चले जाएं। कोई विकल्प भी तो हो! नहीं है कोई विकल्प, तो जीते हैं, ढोते हैं बोझ। धीरे-धीरे समझौते कर लेते हैं। समझा लेते हैं अपने मन को, सांत्वना दे लेते हैं कि ऐसी ही है यह जिंदगी। और चार दिन की है, गुजर ही गई, गुजर ही जाएगी। कोई लंबी भी तो नहीं है।
मगर जो आदमी भी थोड़ा सोचता-विचारता है, उसके मन में ख्याल तो हजार बार आता है कि किस झंझट में पड़ा हूं, भाग जाऊं!
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी ने मायके से उसे पत्र लिखा कि अब और देर न करो। पंद्रह दिन में ही मैं सूख पर आधी हो गई हूं। तुम्हारे बिना नहीं जी सकती हूं। जल्दी चिट्ठी लिखो, कब आ रहे हो!
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि पंद्रह दिन बाद। आधी तो हो ही चुकी है, पंद्रह दिन में फैसला ही हो जाए।
लेकिन पत्नी चली आई, खुद ही चली आई। सो वह आशा भी मिटी। एक डाक्टर से सलाह ली उसने कि क्या करूं? कैसे छुटकारा हो? संसार छोड़ कर भागने की

हिम्मत भी नहीं है। और इस पत्नी से कैसे छुटकारा हो, कोई उपाय नहीं दिखता।
या तो मैं मरूं या यह मरे।
डाक्टर ने कहा, इतने परेशान न होओ। मैं तुम्हें ऐसी तरकीब बताता हूं, ऐसा मीठा जहर देता हूं कि काम भी हो जाए और कानों-कान खबर भी न पड़े। पत्नी को जितना प्रेम कर सकते हो करो, प्रेम कर-कर के मार डालो।
मुल्ला ने कहा, यह भी खूब रही! यह मुझे सूझा ही नहीं कि पत्नी को प्रेम कर-कर के मार डालो!
डाक्टर तो मजाक कर रहा था, लेकिन मुल्ला ने बात पकड़ ली। कोई तीस दिन बाद--ड़ाक्टर से उसने पूछा था कि कितने दिन लगेंगे? इकतीस दिन का महीना था, तो डाक्टर ने कहा कि एक महीना लगेगा।... तीस दिन बाद रास्ते पर डाक्टर गुजर रहा था। देखा मुल्ला बैठा है झूले पर अपने मकान के सामने, बिल्कुल सूख कर हड्डी-हड्डी हो गया है। एकदम पहचान में भी नहीं आता, अस्थिपंजर मात्र रह गया है। डाक्टर ने पूछा, यह तुम्हारी हालत कैसे हुई?
उसने कहा, घबड़ाओ मत। वह जो तुमने तरकीब बताई थी कि प्रेम कर-कर के मार डालो!
इतने में ही पत्नी किसी काम से बाहर आई और भीतर गई। पत्नी तो मस्त-तड़ंग हो गई है।
डाक्टर ने कहा कि तो अब कब तक यह चलेगा?
नसरुद्दीन ने कहा, अब ज्यादा देर नहीं है, इकतीस का महीना है, तीस दिन
तो हो ही गए, एक ही दिन की और बात है, एक दिन बाद छुटकारा हो जाएगा।
पत्नी तो नहीं मरेगी--नसरुद्दीन ने कहा--यह तो मुझे समझ में आ गया, मगर मैं मर जाऊंगा। चलो यही सही। दवा उस पर तो काम नहीं आई, लेकिन मुझ पर काम आ गई।
लोग मरने को भी राजी हैं! जीवन कुछ देता भी नहीं, छीनता मालूम होता है। इसलिए साधु-संतों की बात लोगों को जंची बहुत कि छोड़ दो संसार। उनके भीतर का तर्क भी उनसे यही कह रहा है। तालमेल हो गया। और न मालूम कितने लोगों ने संसार छोड़ा, और कुछ भी नहीं छोड़ा है। संसार वैसा का वैसा है, वे भी वैसे के वैसे हैं।
मैं तुमसे कहता हूंः स्वप्न छोड़ो।
स्वप्न छोड़ना कठिन है। स्वप्न छोड़ना मुश्किल है। स्वप्न छोड़ने का सूक्ष्म विज्ञान है। उस विज्ञान का नाम ही ध्यान है। साक्षी बनो। जैसे- जैसे तुम्हारे भीतर साक्षी सघन होगा, वैसे-वैसे स्वप्न क्षीण हो जाते हैं। जिस दिन साक्षी अपनी परिपूर्णता में विराजमान होता है, स्वप्न बचते ही नहीं। जैसे आकाश बिल्कुल बादलों से खाली हो जाए और सूरज अपनी पूरी जगमग में प्रकट हो, ऐसे जब तुम्हारे भीतर स्वप्न नहीं बचते तो तुम्हारे भीतर छिपा हुआ चैतन्य अपनी समग्रता में प्रकट होता है। वही परमात्म-मिलन है। इसे पाने कहीं और नहीं जाना है। इसे पाने अपने घर वापस आना है।
लेकिन यह दुनिया अजीब है! यहां तय करना बहुत मुश्किल है!
न जाने कौन है गुमराह, कौन आगाहे-मंजिल है
कौन यहां भटका हुआ है और किसको मंजिल का पता है, यह तय करना बहुत कठिन है।
हजारों कारवां हैं जिंदगी की शाहराहों में
एकाध कारवां नहीं, हजारों कारवां हैं--हिंदुओं का, मुसलमानों का, ईसाइयों का, जैनों का, बौद्धों का, सिक्खों का। कारवां ही कारवां हैं! यात्रीदल चल पड़े हैं। अपने-अपने झंडे। अपनी-अपनी किताब। अपना-अपना ईश्वर का अर्थ। अपनी-अपनी धारणाएं। अपने-अपने पक्षपात।
न जाने कौन है गुमराह, कौन आगाहे-मंजिल हैहजारों कारवां हैं जिंदगी
की शाहराहों मेंरहे-मंजिल में सब गुम हैं, मगर अफसोस तो यह हैअमीरे-कारवां भी है उन्हीं गुमकरदा राहों में
रहे-मंजिल में सब गुम हैं! और सब रास्तों में खो गए हैं। रास्ते इतने लंबे हो गए हैं, रास्ते इतने जटिल हो गए हैं कि मंजिल की तो बात ही भूल गई है। सभी रास्तों में खो गए हैं। मगर बड़े अफसोस की बात तो यह है कि लोग खो जाते तो खो जाते, जिनको तुम लोगों के नेता कहते हो, अमीरे-कारवां, जो उनके गुरु हैं, नेता हैं, जो उनके जीवन-मूल्य देने वाले हैं, जो उनके नीति-

निर्धारक हैं, जो उपदेशक हैं, वे भी उन्हीं रास्तों पर भटके हुए हैं। और रास्ते ऐसे गोल-गोल हैं कि बस लोग घूमते रहते हैं, घूमते रहते हैं, चक्कर काटते रहते हैं गोल-गोल रास्तों पर। न कहीं कोई पहुंचता हुआ मालूम होता है, न कहीं मंजिल की कोई झलक दिखाई पड़ती है। कब तक यह करते रहोगे?
उस परमात्मा को खोजने के लिए किसी अमीरे-कारवां की जरूरत नहीं है, किसी नेता की जरूरत नहीं है। उस परमात्मा को खोजने के लिए अपने ही भीतर डुबकी मारनी है, किससे पूछना है! पूछे कि भटके। खोजा कि भटके। खोजो मत, खो जाओ। ऐसे डूबो कि फिर निकलो ही नहीं। और इंच भर अपने से बाहर मत जाना। क्योंकि वह है तो तुम्हारे भीतर है। तुम मंदिर हो!
कहा पलटू नेः यह सुंदर देह मंदिर है। इसी मंदिर में वह विराजमान है। लेकिन तुमने झूठे मंदिर बना लिए हैं, मस्जिदें बना ली हैं, गुरुद्वारे बना लिए हैं। अपने ही बनाए हुए मकानों में, अपनी ही बनाई हुई प्रार्थनाओं से, अपने ही बनाए हुए देवताओं की तुम पूजा कर रहे हो। होश में हो कि पागल हो?
वृच्छा फरैं न आपको, नदी न अंचवै नीर।
वृक्ष अपने लिए नहीं फलते हैं और नदी अपनी ही प्यास बुझाने को नहीं बहती है।
परस्वारथ के कारने, संतन धरै सरीर।
संत तो वे हैं--जिनको तुमने मान लिया वे नहीं--संत तो वे हैं, जो केवल परमात्मा के लिए माध्यम बन गए हैं, उसकी बांसुरी बन गए हैं! अगर वे शरीर में भी हैं तो इसलिए कि प्रभु उनसे कुछ काम लेना चाहता है।
तुम्हारी संत की परिभाषा क्या होती है? क्या खाता, क्या पीता; कैसा उठता, कैसा बैठता; कितने कपड़े रखता, कहां ठहरता--ये तुम्हारे संत को बाहर से जांचने के उपाय हैं। और यह सारा अभ्यास कोई भी कर सकता है। यह अभ्यास कुछ कठिन नहीं है। दो बार न सही एक बार भोजन करो, कुछ दिन में अभ्यास हो जाता है। रात पानी न पीओ, भोजन न करो, कुछ दिन में अभ्यास हो जाता है। नौ बजे सो जाओ, तीन बजे रात उठ आओ, कुछ दिन में अभ्यास हो जाता है। शरीर बड़ा लोचपूर्ण है; उससे तुम किसी भी तरह का अभ्यास करा ले सकते हो। घंटों सिर के बल खड़े रहो, आसन करो, प्राणायाम करो--शरीर हर चीज के लिए झुक जाता है, राजी हो जाता है। शरीर तुम्हारा सेवक है और अदभुत यंत्र है! जड़ नहीं है, लोचपूर्ण है।
और तुम्हारे संतों को नापने के यही उपाय हैं, बस बाहर से ही तुम नापते हो। और बाहर से नापते हो इससे धोखा खा जाते हो।
संतों को नापने का बाहर से कोई उपाय नहीं है। संतों की तो एक ही परिभाषा है।
परस्वारथ के कारने, संतन धरै सरीर।
पलटू ठीक परिभाषा कह रहे हैं। वे यह कह रहे हैं कि संत अपने लिए नहीं जीता। अपना तो उसका काम पूरा हो चुका। जहां तक उसका संबंध है, उसके सपने तो मिट चुके, उसके विचार तो जा चुके। उसकी तो मन से मुक्ति हो गई। जहां तक उसका निजी संबंध है, उसने मंजिल पा ली। लेकिन जिसने मंजिल पा ली है, परमात्मा उससे कुछ काम लेना शुरू करता है। उससे पुकार देना शुरू करता है-- उनके लिए जो अभी रास्तों पर भटक रहे हैं, जो अभी अंधेरे में भटक रहे हैं। परमात्मा उस व्यक्ति से काम लेना शुरू करता है--उनके लिए, जिनकी आंखें अभी नहीं खुली हैं।
जैसे वृक्षों में फल लगते हैं--अपने लिए नहीं; दूसरों के लिए। और नदी खुद अपना जल नहीं पीती, औरों को पिलाती है।
संत की परिभाषा हैः जो लुटाए, जो परमात्मा को लुटाए! जो परमात्मा बांटे!
और तो बांटने योग्य सब कूड़ा-कचरा है। तुम अपना सारा धन बांट डालो तो
भी तुम संत नहीं हो सकते, क्योंकि धन कूड़ा-कचरा है। सम्हालो तो कूड़ा-कचरा है, बांटो तो कूड़ा-कचरा है। तुम अपना ज्ञान लोगों को बांटते फिरो, वह भी कूड़ा-कचरा है। तुमने उधार इकट्ठा कर लिया है, अब तुम बांट रहे हो। पहले तुम कचरे को अपने भीतर भर लेते हो, फिर वह बोझिल होने लगता है तो तुम दूसरों की झोलियों में डालने लगते हो।

बांटने योग्य बात तो एक ही है, लुटाने योग्य धन तो एक ही है--वह है परमात्मा। लेकिन उसका तुम्हें अनुभव हो, उस स्रोत से तुम जुड़ जाओ, उस गंगोत्री को तुम पा लो जहां से जीवन की गंगाएं निकलती हैं।
संत तो वह है, जिसके भीतर से परमात्मा बोलता है; जिसके भीतर से परमात्मा शब्द बनता है, रूप धरता है, साकार होता है। कभी ऐसा कोई व्यक्ति तुम्हें मिल जाए जिसके शब्दों में निःशब्द का संगीत हो; जिसके उठने-बैठने में बोध साकार होता हो; जिसकी आंखों में ऐसी झील जैसी शांति हो कि आकाश के सारे तारे प्रतिबिंबित हो उठें; जिसके मौन में तुम्हारे भीतर भी मौन की तरंगें डोल जाती हों; जिसके पास बैठ कर तुम भी अकारण किसी अपूर्व आनंद से आंदोलित हो उठते हो; जिसकी मौजूदगी प्रमाण बनती हो कि परमात्मा है; तर्क नहीं, विवाद नहीं, जिसकी मौजूदगी, जिसकी आंखों में आंखें डाल कर देख लेना, या जिसके हाथ में हाथ दे लेना, या जिसके पास भर बैठ जाना, जिसकी सुवास परमात्मा के होने का सबूत बनती हो--उसे जानना संत! तब तुम्हारी ओछी धारणाएं खतम हो जाएंगी। तब संत न हिंदू होता है, न मुसलमान, न ईसाई। ये तो अलग-अलग आचरणों के नाम हैं।
इसीलिए तो, यह बड़े मजे की बात है, जैन मुनि बौद्धों को नहीं लगता कि संत है। जैनों को बौद्ध फकीर नहीं लगता कि संत है। बौद्धों को सूफी फकीर नहीं लगता कि संत है। सूफियों को हिंदुओं के संन्यासी नहीं जंचते कि संत हैं। क्या कारण है?
आचरणों को हमने संत समझा हुआ है। और आचरण तो कितने हैं दुनिया में! हजारों तरह के हो सकते हैं। किसी ने तय कर लिया है कि मांसाहार करना संतत्व के विपरीत है। लेकिन जीसस तो मांसाहार करते थे। और जीसस को तो जाने दो, मोहम्मद को जाने दो--दूर के हैं। रामकृष्ण परमहंस तो बहुत करीब थे, वे भी मछलियां खाते थे! अब जिसने यह धारणा बना ली है कि मांसाहार तो संत कर ही नहीं सकता, वह रामकृष्ण के पास जाकर भी चूक जाएगा; वह यही देखता रहेगा कि अरे मछलियां, यह किस तरह का संत है! संत तो मधुर वचन बोलते हैं। संत तो प्यारी बातें कहते हैं। संतों के वचनों से तो फूल झरते हैं।
लेकिन शिरडी के साईं बाबा डंडा उठा कर मां-बहन की गाली भी देते थे, भक्तों के पीछे दौड़ पड़ते थे, पत्थर भी मारते थे। तो तुम कैसे तय करोगे कि ये संत हैं? देख कर ही तय हो जाएगा कि ये संत नहीं हैं। यह डंडा उठाना, पत्थर मारना, गाली बकना! रामकृष्ण परमहंस भी गालियां देते थे। तो बड़ी अड़चन हो जाएगी। तुम कैसे तय करोगे कौन संत है?
और जिसने शिरडी के साईं बाबा की गाली खाई है और पी ली है गाली और फिर
भी झुका रहा, जिसका सिर झुका सो झुका ही रहा--गाली दी, चाहे पत्थर मारे, चाहे डंडा मारा--वह जानता है, वही पहचानता है। लेकिन वह तुम्हें पागल मालूम पड़ेगा, उन्मत्त मालूम पड़ेगा। क्योंकि साईं बाबा के डंडे में उसने तो फूल ही झरते पाए। उन पत्थरों में अमृत बरसता हुआ पाया। वे गालियां तो उनके प्रेम का प्रतीक थीं। तुम ऐसे हो कि बिना गाली के तुम जागोगे ही नहीं। तो उतने तक के लिए वे राजी हैं कि गाली से जागोगे तो गाली दूंगा। तुम्हें गालियां ही शायद थोड़ी झकझोरें तो झकझोरें। नहीं तो तुम तो वैसे ही गहरी नींद में सो रहे हो। अच्छी-अच्छी बातें तो लोरियां बन जाती हैं। और लोरियां तो तुम सुनते रहे हो बहुत दिन से। लोरियां सुन रहे हो, अंगूठे चूस रहे हो, अपने-अपने झूले में पड़े झूला झूल रहे हो।
कैसे तय करोगे? जीसस तो शराब पीते थे। शराब पीते ही नहीं थे, उनके चमत्कारों में एक चमत्कार यह भी है कि जब वे समुद्र के पास आए, हजारों लोग उनके साथ आए थे, तो उन्होंने पूरे समुद्र को चमत्कार से शराब में बदल दिया। अब अगर भारत में होते तो पुलिस पकड़ ले जाती कि यह क्या कर रहे हो! सागर को और शराब बना दिया, कि अब पीएं पीने वाले जितना पीना हो! अब कभी पीने की कमी नहीं होगी।
तुम कैसे जीसस को मान सकोगे कि ये संत हैं? तुम्हें अड़चन होगी।
आचरण तो बहुत तरह के हैं। दुनिया में कोई तीन हजार धर्म हैं--छोटे- मोटे, सब मिला-जुला कर। इन तीन हजार धर्मों की अपनी-अपनी धारणाएं हैं। संत की परिभाषा कैसे करें? पलटू ठीक परिभाषा करते हैं। वे कहते हैंः मेरी तो एक परिभाषा है।

परस्वारथ के कारने, संतन धरै सरीर।
फिर वह क्या खाता, क्या पीता, कैसे उठता, कैसे बैठता--वह जाने। हमारी तरफ से तो जांचने की बात एक है, परखने की बात एक है, कि उसका जीवन परमात्मा को समर्पित है, उसकी वाणी परमात्मा को समर्पित है, वह समग्ररूपेण परमात्मा का हो गया है और अब परमात्मा को बांट रहा है। बांटने के ढंग अलग होंगे, रंग अलग होंगे, लेकिन बांटने की बात एक है। फिर जीसस हों कि महावीर कि बुद्ध कि कबीर कि नानक कि पलटू, कोई फर्क नहीं पड़ता। और जहां कोई परमात्मा को बांटता है वही परार्थ कर रहा है। और किसी चीज के बांटने से परार्थ नहीं होता। तुम धन बांट दो। धन से तुम्हारा ही क्या हल हुआ था? तुम दूसरों को बांट कर दे चले। यह तो ऐसे ही हुआ कि किसी बीमारी में तुम फंसे थे, तुम दूसरों को दे चले कि भइया, सम्हाल कर रखना, कि अब तुम सम्हालो, अब हम जाते हैं।
ऐसी उपनिषद में प्यारी कथा है। याज्ञवल्क्य छोड़ कर जा रहा है। जीवन
के अंतिम दिन आ गए हैं और अब वह चाहता है कि दूर खो जाए किन्हीं पर्वतों की गुफाओं में। उसकी दो पत्नियां थीं और बहुत धन था उसके पास। वह उस समय का प्रकांड पंडित था। उसका कोई मुकाबला नहीं था पंडितों में। तर्क में उसकी प्रतिष्ठा थी। ऐसी उसकी प्रतिष्ठा थी कि कहानी है कि जनक ने एक बार एक बहुत बड़ा सम्मेलन किया और एक हजार गौएं, उनके सींग सोने से मढ़वा कर और उनके ऊपर बहुमूल्य वस्त्र डाल कर महल के द्वार पर खड़ी कर दीं और कहाः जो पंडित विवाद जीतेगा, वह इन हजार गौओं को अपने साथ ले जाने का हकदार होगा। यह पुरस्कार है।
बड़े पंडित इकट्ठे हुए। दोपहर हो गई। बड़ा विवाद चला। कुछ तय भी नहीं हो
पा रहा था कि कौन जीता, कौन हारा। और तब दोपहर को याज्ञवल्क्य आया अपने शिष्यों के साथ। दरवाजे पर उसने देखा--गौएं खड़ी-खड़ी सुबह से थक गई हैं, धूप में उनका पसीना बह रहा है। उसने अपने शिष्यों को कहा, ऐसा करो, तुम गौओं को खदेड़ कर घर ले जाओ, मैं विवाद निपटा कर आता हूं।
जनक की भी हिम्मत नहीं पड़ी यह कहने की कि यह क्या हिसाब हुआ, पहले विवाद तो जीतो! किसी एकाध पंडित ने कहा कि यह तो नियम के विपरीत है-- पुरस्कार पहले ही!
लेकिन याज्ञवल्क्य ने कहा, मुझे भरोसा है। तुम फिक्र न करो। विवाद तो मैं जीत ही लूंगा, विवादों में क्या रखा है! लेकिन गौएं थक गई हैं, इन पर भी कुछ ध्यान करना जरूरी है।
शिष्यों से कहा, तुम फिक्र ही मत करो, बाकी मैं निपटा लूंगा।
शिष्य गौएं खदेड़ कर घर ले गए। याज्ञवल्क्य ने विवाद बाद में जीता। पुरस्कार पहले ले लिया। बड़ी प्रतिष्ठा का व्यक्ति था। बहुत धन उसके पास था। बड़े सम्राट उसके शिष्य थे। और जब वह जाने लगा, उसकी दो पत्नियां थीं, उसने उन दोनों पत्नियों को बुला कर कहा कि आधा-आधा धन तुम्हें बांट देता हूं। बहुत है, सात पीढ़ियों तक भी चुकेगा नहीं। इसलिए तुम निश्चिंत रहो, तुम्हें कोई अड़चन न आएगी। और मैं अब जंगल जा रहा हूं। अब मेरे अंतिम दिन आ गए। अब ये अंतिम दिन मैं परमात्मा के साथ समग्रता से लीन हो जाना चाहता हूं। अब मैं कोई और दूसरा प्रपंच नहीं चाहता। एक क्षण भी मैं किसी और बात में नहीं लगाना चाहता।
एक पत्नी तो बड़ी प्रसन्न हुई, क्योंकि इतना धन था याज्ञवल्क्य के पास, उसमें से आधा मुझे मिल रहा है, अब तो मजे ही मजे करूंगी। लेकिन दूसरी पत्नी ने कहा कि इसके पहले कि आप जाएं, एक प्रश्न का उत्तर दे दें। इस धन से आपको शांति मिली? इस धन से आपको आनंद मिला? इस धन से आपको परमात्मा मिला? अगर मिल गया तो फिर कहां जाते हो? और अगर नहीं मिला तो यह कचरा मुझे क्यों पकड़ाते हो? फिर मैं भी तुम्हारे साथ चलती हूं।
और याज्ञवल्क्य जीवन में पहली बार निरुत्तर खड़ा रहा। अब इस स्त्री को क्या कहे! कहे कि नहीं मिला, तो फिर बांटने की इतनी अकड़ क्या! बड़े गौरव से बांट रहा था कि देखो इतने हीरे-जवाहरात, इतना सोना, इतने रुपये, इतनी जमीन, इतना विस्तार! बड़े गौरव से बांट रहा था। उसमें थोड़ा अहंकार तो रहा ही होगा उस क्षण में कि देखो कितना दे जा रहा हूं! किस पति ने कभी अपनी पत्नियों को इतना दिया है! लेकिन दूसरी पत्नी ने उसके सारे अहंकार पर पानी फेर दिया।

उसने कहा, अगर तुम्हें इससे कुछ भी नहीं मिला तो यह कचरा हमें क्यों पकड़ाते हो? यह उलझन हमारे ऊपर क्यों डाले जाते हो? अगर तुम इससे परेशान होकर जंगल जा रहे हो तो आज नहीं कल हमें भी जाना पड़ेगा। तो कल क्यों, आज ही क्यों नहीं? मैं चलती हूं तुम्हारे साथ।
तो जो धन बांट रहा है वह क्या खाक बांट रहा है! उसके पास कुछ और मूल्यवान नहीं है। और जो ज्ञान बांट रहा है, पाठशालाएं खोल रहा है, धर्मशास्त्र समझा रहा है, अगर उसने स्वयं ध्यान और समाधि में डुबकी नहीं मारी है, तो कचरा बांट रहा है। उसका कोई मूल्य नहीं है। बांटने योग्य तो बात एक ही हैः परमात्मा। मगर उसे तुम तभी बांट सकते हो जब पाओ, जब जानो, जब जीओ।
और जिस दिन तुम उसे जानोगे, जीओगे, अनुभव करोगे, उस दिन चकित होओगेः तुमसे पहले बहुत लोग उसे जान चुके हैं! तुम नये नहीं हो। वह अनुभव नया नहीं है। इस अर्थ में नया है कि तुमने उसे पहली दफा जाना। इस अर्थ में तो प्राचीन है, सनातन है, क्योंकि बुद्ध सदा होते रहे, सदियों-सदियों में होते रहे।
कुछ मिटे से नक्शे-पा भी हैं जुनूं की राह मेंहमसे पहले कोई गुजरा है यहां होते हुए
जब तुम परमात्मा को जानोगे तब तुम पाओगे कि अरे यहां तो कुछ चरण-चिह्न बने हुए हैं! हमसे पहले भी लोग यहां गुजरे हैं! एस धम्मो सनंतनो! यह धर्म तो सनातन है! यह कुछ मेरा नहीं, तेरा नहीं, यह किसी का नहीं। इस घाट से कितने ही तरे हैं, कितने ही तरते रहेंगे। अनंत-अनंत लोग आए हैं और इस नाव से पार गए हैं, यह नाव किसी की भी नहीं है।
इसलिए धर्म न हिंदू का है, न मुसलमान का, न ईसाई का, न जैन का। धर्म तो उनका है जिनका ध्यान है। धर्म तो उन दावेदारों का है जिन्होंने अपने ऊपर मालकियत पा ली है।
बड़े बड़ाई में भुले, छोटे हैं सिरदार।
यह सूत्र अदभुत है। इस देश में तो पारखी खो गए हैं। हीरे तो हैं, मगर पारखी नहीं हैं। इससे बड़ी अड़चन हो गई है। यह सूत्र जीसस के एक वचन की याद दिलाता है, जिस वचन का इतना सम्मान किया गया है। मगर बेचारे पलटू के इस वचन को किसी ने फिक्र नहीं किया।
बड़े बड़ाई में भुले...
पलटू कहते हैंः बड़े तो अपने बड़प्पन में भूले हुए हैं, अपने अहंकार में डूबे हुए हैं।
छोटे हैं सिरदार।
और सच पूछो तो जिनको अपने बड़प्पन का कोई बोध ही नहीं है, जो अपने को ना- कुछ समझते हैं, जो इतने छोटे हैं, शून्यवत हैं--वे ही सिरदार हैं।
जीसस का वचन हैः मेरे प्रभु के राज्य में वे प्रथम होंगे जो यहां अंतिम हैं। इस वचन का सारी दुनिया में गुंजार हुआ है। यह वचन महत्वपूर्ण है। मगर पलटू के वचन का भी यही अर्थ है। जीसस का दूसरा वचन हैः धन्य हैं वे जो विनम्र हैं, क्योंकि स्वर्ग का राज्य उनका है।
बड़े बड़ाई में भुले, छोटे हैं सिरदार।
पलटू कहते हैंः मुझसे पूछो, आंख वालों से पूछो, तो बड़े तो अपने अहंकार में ही डूबे हुए हैं। वे तो अपने को फुलाए जा रहे हैं--धन से, पद से, ज्ञान से, त्याग से। लेकिन असली इस दुनिया में जो, जिनको कहना चाहिए सरदार, जो वस्तुतः प्रथम हैं, वे वे लोग हैं जो विनम्र हैं।
पलटू मीठो कूप-जल...
छोटा सा कुआं, उसका जल मीठा।
समुंद पड़ा है खार।
और इतना बड़ा समुद्र, मगर बिल्कुल खारा। बस देखने भर के काम का है।
प्यास लगे तो प्यास नहीं बुझा सकता।
अहंकारियों से किसी की प्यास नहीं बुझ सकती। अहंकार खारा है, बहुत खारा है। अगर समुद्र का जल पीओगे तो मरोगे, मृत्यु हो जाएगी, जीवन नहीं मिलेगा उससे। जीवन के लिए तो कोई छोटा सा कुआं खोजना पड़ता है, जिसमें मीठा जल हो। बड़े-बड़े लोग हुए--चंगीजखां, नादिरशाह, तैमूरलंग, सिकंदर, नेपोलियन,

हिटलर, स्टैलिन, माओत्से तुंग--बड़े-बड़े लोग! मगर बिल्कुल खारे! उनको पीया कि मरे! बचना उनसे! इतिहास उनकी यश-गाथाओं से भरा है। इतिहास की किताबों में बेचारे पलटू जैसे आदमी का नाम ही न पाओगे। पाद-टिप्पणी में भी नहीं, फुट-नोट में भी नहीं पाओगे। जब मैंने पहली दफे पलटू को चुना तो एक मित्र ने कहा कि आप भी कहां-कहां से खोज लेते हैं! यह तो नाम ही नहीं सुना। आप ईजाद तो नहीं कर लेते?
हीरे हैं इस देश में, बहुत हीरे हैं! पर पारखी... पारखी खो गए हैं। यही पलटू के सूत्र अगर दुनिया की दूसरी भाषाओं में अनुवादित हों, सम्मानित होंगे, लोग सिर-आंखों पर लेंगे।
रवींद्रनाथ ने गीतांजलि लिखी, इस देश में किसी ने फिक्र नहीं की। एक-
एक सूत्र प्यारा है; उपनिषदों की याद दिलाता है। लेकिन इस देश में किसी ने चिंता ही नहीं ली। जब नोबल प्राइज मिली--जब रवींद्रनाथ ने उसे अंग्रेजी में अनुवादित किया तब नोबल प्राइज मिली--नोबल प्राइज मिली तो सारे देश में स्वागत-समारंभ जगह-जगह। कलकत्ते में जहां रवींद्रनाथ रहते थे, जहां उनका कभी कोई स्वागत-समारंभ नहीं हुआ था--हां, गालियां पड़ी थीं, आलोचनाएं हुई थीं--वे ही आलोचक, वे ही गाली देने वाले स्वागत-समारंभ... ।
रवींद्रनाथ ने जाने से इनकार कर दिया। उन्होंने कहा कि यह स्वागत-समारंभ मैं स्वीकार नहीं करूंगा। यह मेरा स्वागत नहीं है, नोबल प्राइज का स्वागत है। तो यह नोबल प्राइज का जो सर्टिफिकेट है, ले जाओ, इसकी पूजा कर लेना। मैं नहीं आऊंगा। मैं तो यहां वर्षों से हूं और गीतांजलि लिखे मुझे बीस साल हो गए। बीस साल से बंगाली में गीतांजलि मौजूद है, लेकिन कोई देखने वाला नहीं, कोई पूछने वाला नहीं। आज बाहर परदेस में प्रतिष्ठा हुई है तो तुम्हारे मन में सम्मान उठा है! यह सम्मान नहीं है। रवींद्रनाथ ने कहा, लज्जा से मेरा मन झुकता है।
पलटू मीठो कूप-जल, समुंद पड़ा है खार।
बड़ा है समुद्र बहुत, मगर बिल्कुल खारा, जीवन के किसी काम का नहीं। छोटे से कुएं से भी प्यास बुझ जाती है। बड़े-बड़े ज्ञानी तुम्हारे काम नहीं आएंगे। बड़े-बड़े त्यागी तुम्हारे काम नहीं आएंगे। किसी ऐसे व्यक्ति को खोज लो, जो छोटा सा कुआं हो भला, अज्ञात नाम हो, न हो उसकी प्रसिद्धि कोई, लेकिन जिसमें मीठे जल के स्रोत हों, जिसमें मिठास हो।
परमात्मा के संदर्भ में एक ही मिठास होती है--जिसके पास बैठ कर तुम्हारे भीतर प्रेम उमगने लगे; जिसकी मौजूदगी में तुम्हारे भीतर कुछ कलियां चटकने लगें, फूल बनने लगें; जिसके पास बैठो तो लगे कि वसंत आया, मधुमास आया।
सालिके-राहे-खुदी इस भेद से वाकिफ नहींबेखुदी की राह में भी इक मुकामे-होश है
सालिके-राहे-खुदी, अहंकार के मार्ग का पथिक, इस भेद से वाकिफ नहीं, उसे
इस रहस्य का, इस राज का कुछ पता नहीं है।
बेखुदी की राह में भी इक मुकामे-होश है
एक ऐसा होश का मुकाम भी है जो उन्हीं को मिलता है जो बेखुद हो जाते हैं; जो अपनी खुदी खो देते हैं; जो अपना अहंकार खो देते हैं। निरहंकारिता के मार्ग पर एक ऐसा मुकाम भी आता है, जहां होश ही होश रह जाता है। जितनी खुदी है उतनी बेहोशी है। जितनी बेखुदी है उतना होश है।
हिरदे में तो कुटिल है, बोलै वचन रसाल।
पलटू वह केहि काम का, ज्यों नारुन-फल लाल।।
नारुन का फल होता है, देखने में तो सुंदर, सुर्ख, लाल। लेकिन बस देखने में ही सुंदर; खाने में तिक्त और कड़वा। दूर से देखो तो प्यारा; चखो तो जहर।
ऐसा ही अहंकार है। दूर से देखो--स्वर्णमंडित, हीरे-जवाहरातों से जड़ा, मोती की मालाओं सेशृंगारित; पास आओ--जहर है, शुद्ध जहर है।
हिरदे में तो कुटिल है, बोलै वचन रसाल।
और अहंकारी हमेशा हृदय में तो कुटिल होता है, जाली होता है, पाखंडी होता है और अगर मीठे वचन भी बोलता है तो वैसे ही बोलता है जैसे कि कोई मछली को पकड़ने के लिए कांटे में आटा लगाता है। कोई मछली को आटा खिलाने के लिए

नहीं; मछली को पकड़ने के लिए। दिल तो कांटे पर है; आटा तो सिर्फ कांटे को छुपाने के लिए है।
अहंकार भी बड़े मीठे वचन बोल सकता है। बोलना ही पड़ते हैं उसे, क्योंकि उसी मिठास में जहर छिपाया जा सकता है। एलोपैथी की दवाई देखते हो न! होती तो जहर है, कड़वी होती है, मगर ऊपर छोटी सी शक्कर की पर्त होती है। वह छोटी सी शक्कर की पर्त में तुम उसे गटक जाते हो, नहीं तो उसे भीतर ले जाना मुश्किल हो जाए। अहंकार भी मिठास की भाषा बोल सकता है। पंडित-पुरोहित भी बड़े मीठे वचन बोल सकते हैं। लेकिन भीतर सब कुटिलता है।
मुल्ला नसरुद्दीन को ढब्बूजी ने दावत पर आमंत्रित किया था। ढब्बूजी
का स्वास्थ्य उन दिनों खराब चल रहा था, इसलिए भोजन में अन्य व्यंजनों के साथ-साथ खिचड़ी भी थी। ढब्बूजी तो खिचड़ी खा रहे थे, परंतु मुल्ला खिचड़ी को छोड़ कर बाकी सारे मिष्ठान्न, फल-मेवे खा रहा था। यह देख कर आखिर ढब्बूजी से न रहा गया। गुस्से में बोले, क्यों मुल्ला, यह खिचड़ी क्या गधे खाएंगे? मुल्ला नसरुद्दीन ने धीरे से जवाब दिया, यार ढब्बू, खिचड़ी तो गधे खा
ही रहे हैं।
बातें मीठी चल रही हैं, मित्रता की चल रही हैं; नहीं तो निमंत्रण ही क्यों दिया जाए! मित्र हैं तो निमंत्रण दिया है। मगर नजर अटकी है कि यह नसरुद्दीन का बच्चा खिचड़ी नहीं खा रहा है। सम्हाला होगा बहुत, सम्हालते- सम्हालते भी बात निकल ही गई--क्या खिचड़ी गधे खाएंगे? नसरुद्दीन भी कुछ पीछे तो नहीं रह जाएगा। उसने कहा, खिचड़ी तो गधे खा ही रहे हैं।
अहंकार ऊपर-ऊपर से मीठी-मीठी बातें करता है, लेकिन जल्दी ही पर्तें उघड़ जाती हैं। ऊपर से प्रेम जताता है, भीतर घृणा होती है। ऊपर से मित्रता बनाता है, भीतर शत्रुता पलती है। दो अहंकारियों में मैत्री हो ही नहीं सकती, असंभव है। लाख मित्रता की वे बातें करें, मगर भीतर स्पर्धा होगी, प्रतियोगिता होगी--कौन बड़ा? यह संघर्ष जारी रहेगा।
इसलिए राजनीति में कोई दोस्त नहीं होता, क्योंकि वह अहंकार की दौड़ है। वहां कोई दोस्त नहीं है। वहां जो कल दुश्मन था, आज दोस्त हो जाता है; जो आज दोस्त था, कल दुश्मन हो जाता है। साधारणजन तो बहुत चौंकते हैं कि यह खेल किस तरह का है! कल जिसको गालियां दे रहे थे, एकदम उसका सम्मान शुरू हो जाता है।
चरणसिंह ने इंदिरा के ऊपर ऐसा मुकदमा चलाना चाहा था, जैसा मुकदमा दूसरे महायुद्ध के बाद हिटलर के सेनापतियों पर चला। उससे खतरनाक कोई मुकदमा नहीं था। न्यूरेमबर्ग में जो मुकदमा चला वह मनुष्य-जाति के इतिहास का सबसे खतरनाक मुकदमा था, क्योंकि मनुष्य-जाति के सबसे बड़े अपराधियों पर मुकदमा था। चरणसिंह चाहते थे कि इंदिरा पर और संजय पर न्यूरेमबर्ग के ढंग का मुकदमा चलना चाहिए। और वही चरणसिंह, जब मोरारजी को गिराने का समय आया, तो इंदिरा से कहा कि आप तो मेरी छोटी बहन हैं। और संजय! संजय तो मेरे बेटे जैसा है।
तो बेटे पर और बहन पर न्यूरेमबर्ग का मुकदमा चलाने वाले थे! बहुत मजे
का खेल है। वहां कोई अपना नहीं है। जिनको तुम अपना समझ रहे हो, वे भी अपने नहीं हैं; वे भी किस घड़ी दूसरे घोड़े पर सवार हो जाएंगे, कहना मुश्किल है। राजनीति में कोई मित्र नहीं होता।
मैक्यावेली ने राजनीति की गीता लिखी है। मैक्यावेली ने अपनी किताब प्रिंस में राजनीति के सारे मूल आधार, मूल सूत्र लिख दिए हैं। मैक्यावेली सोचता था कि मेरी इस किताब के छपने के बाद जरूर मुझे किसी बड़े साम्राज्य का वजीर होने का मौका मिलेगा। कौन सम्राट इतने बुद्धिमान आदमी को नहीं चाहेगा! लेकिन बड़ी नौकरी मिलना तो दूर, मैक्यावेली को किसी देश में टिकने नहीं दिया गया। क्योंकि लोगों ने देखाः जो इतना समझदार है, वह खतरनाक है। और उसने बातें तो लिखी हैं सारी जो नहीं लिखनी चाहिए, सब साफ-साफ लिख दीं। जैसे उसने लिखा कि राजनीति में न कोई मित्र होता है, न कोई शत्रु। इसलिए मित्र को भी ऐसी बात मत कहना जो तुम शत्रु से छिपाना चाहते हो, क्योंकि कल यह मित्र शत्रु हो सकता है। और शत्रु के खिलाफ ऐसे शब्द मत बोलना जो तुम मित्र के खिलाफ नहीं बोलना चाहोगे, क्योंकि कल यह शत्रु मित्र हो सकता है।

मैक्यावेली निश्चित ही राजनीति का सबसे कुशल पंडित था, वैसे ही जैसे भारत में कौटिल्य हुआ। अब कौटिल्य तो कुटिलता का अवतार समझो।
धन की दौड़ हो, पद की दौड़ हो, यश की दौड़ हो, जहां भी अहंकार है वहां यह दोहरा खेल चलेगा।
हिरदे में तो कुटिल है, बोलै वचन रसाल।
पलटू वह केहि काम का, ज्यों नारुन-फल लाल।।
सावधान रहना, मीठे-मीठे वचनों में मत आ जाना। अच्छी-अच्छी बातों में
मत उलझ जाना। बातें बहुत लच्छेदार हो सकती हैं, मगर तुम्हारे लिए फांसी का फंदा बन सकती हैं। बहुत सावधानी से फूंक-फूंक कर कदम रखना। इतने जल चुके हो तुम कि मैं तुमसे कहता हूंः छाछ भी फूंक-फूंक कर पीना। कहावत है नः दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंक कर पीता है! तुम इतने लूटे गए हो, इतने सताए गए हो, इतने परेशान किए गए हो, सदियों-सदियों में तुम्हारा इतनी तरह से शोषण किया गया है कि मैं तुमसे कहता हूंः छाछ भी फूंक-फूंक कर पीना। कुछ हर्जा नहीं है। थोड़ी देर लगेगी फूंकने में, और क्या होगा! मगर छाछ भी फूंक-फूंक कर पीना। नहीं तो फिर डर है कि फिर जलोगे।
सब तीरथ में खोजिया, गहरी बुड़की मार।
पलटू जल के बीच में, किन पाया करतार।।
पलटू कहते हैं कि मैं खूब जगह-जगह तीर्थों में गया, खूब डुबकी मारी, गहरी डुबकी मारी, कि शायद और गहराई में मिले परमात्मा, और गहराई में मिले परमात्मा।
सब तीरथ में खोजिया, गहरी बुड़की मार।
कोई कमी नहीं की बुड़की मारने में।
पलटू जल के बीच में, किन पाया करतार।
लेकिन न मुझे मिला, न किसी को कभी पहले मिला था, न किसी को कभी आगे मिलेगा।
जल में डुबकी लगाने से परमात्मा के मिलने का क्या संबंध है? अपने जीवन में डुबकी लगाओ! तुम हो प्रयागराज! तुम हो संगम!
संगम के प्रतीक को समझना। कहा जाता है, संगम पर तीन नदियां मिलती हैं-- गंगा, यमुना, सरस्वती। गंगा-यमुना तो दिखाई पड़ती हैं; मिल जाती हैं तो भी अलग-अलग दिखाई पड़ती हैं, उनके जल का रंग अलग-अलग है। सरस्वती दिखाई नहीं पड़ती; अदृश्य है। ऐसी ही मनुष्य की दशा है। असल में, यह मनुष्य की दशा का ही प्रतीक है। तुम्हारे भीतर शरीर और मन तो दिखाई पड़ते हैं; यद्यपि मिले-जुले हैं, फिर भी उनकी धारा अलग-अलग दिखाई पड़ती है, रंग अलग-अलग है। चेतना दिखाई नहीं पड़ती। चेतना ही सरस्वती है। सरस्वती देवी है ज्ञान की, चैतन्य की, ध्यान की। तुम्हारी चेतना नहीं दिखाई पड़ती, वह सरस्वती है।
तो मन, शरीर और आत्मा, इन तीन का मिलन तुम्हारे भीतर हो रहा है; यही है प्रयागराज, तीर्थों का तीर्थ! कहीं और जाने की जरूरत नहीं है। कुंभ मेलों में मत भटको! कुंभ मेला तुम्हारे भीतर रोज ही लगा हुआ है। तुम्हीं हो कुंभ! इसमें ही डुबकी मारो!
सब तीरथ में खोजिया, गहरी बुड़की मार।
पलटू जल के बीच में, किन पाया करतार।।
बहरे-हस्ती का अजल से हूं शनावर लेकिन
आज तक वाकिफे-राजे-तहे-दरिया न हुआ
तैराक हूं, पुराना तैराक हूं!
बहरे-हस्ती का अजल से हूं शनावर लेकिन
अस्तित्व की खोज में तैरने की कला सीख ली है, डुबकी मारने की कला सीख
ली है।
आज तक वाकिफे-राजे-तहे-दरिया न हुआ
यद्यपि खूब तैरा, खूब डुबकी मारी, लेकिन अब तक मुझे जीवन की सार-संपदा हाथ नहीं लगी।
आज तक वाकिफे-राजे-तहे-दरिया न हुआ
वह जो इस जीवन का अंतस्तल है, वह मेरे हाथ में नहीं आया है। सब तैरना व्यर्थ गया, सब डुबकी लगाना व्यर्थ गया।
जो डूबना हो तो काफी है एक आंसू भीतेरा कुसूर कि तू गर्के-आब हो न सका

एक आंसू भी काफी है, अगर प्रीति का हो, भक्ति का हो, श्रद्धा का हो, ध्यान का हो, समर्पण का हो--तो एक आंसू भी डुबा लेगा। और एक आंसू में ही करतार मिल जाएगा! और नहीं तो तुम जाओ तीर्थों में, डूबते रहो, व्यर्थ ही तुम्हारी यात्राएं होंगी।
तेरी नजरें दे रही हैं तुझको धोखा पै-ब-पै
है गुबारे-दश्त, दीवाने, यहां महमिल कहां
हर जर्रा दे रहा है "अलम" दावते-जमाल
लेकिन जहां में चश्मे-हकीकत-निगर कहां
कहां खोजते फिर रहे हो?
तेरी नजरें दे रही हैं तुझको धोखा पै-ब-पै
और तुम्हारी आंखें तुम्हें कितना धोखा दे रही हैं!
है गुबारे-दश्त, दीवाने, यहां महमिल कहां
कहां खोज रहे हो? ये तुम्हारी सारी भटकनें सिर्फ तुम्हें गुबार से भर देंगी, धूल-धवांस से भर देंगी। इन यात्राओं से तुम और गंदे होकर लौटोगे। तीर्थों से तुम और अपवित्र होकर लौटोगे, पवित्र होकर नहीं।
हर जर्रा दे रहा है "अलम" दावते-जमाल
लेकिन अगर आंख हो देखने वाली तो कण-कण परमात्मा का निमंत्रण दे रहा है, बुलावा दे रहा है।
हर जर्रा दे रहा है "अलम" दावते-जमाललेकिन जहां में चश्मे-हकीकत-निगर कहां
लेकिन मुश्किल यह है कि दुनिया में आंख वाले कहां हैं! आंख वाले यानी-- जिनको पलटू कहते हैं अंधे। क्योंकि तुम अगर आंख वाले हो तो आंख वालों को अंधा कहना ही पड़ेगा। या तो तुम अंधे हो तो फिर आंख वालों को आंख वाला कहा जा सकता है। बुद्ध अगर आंख वाले हैं तो तुम अंधे हो। और अगर बुद्ध को अंधा कहना हो तो फिर तुमको आंख वाला माना जा सकता है, फिर कोई अड़चन नहीं है। दो में से कुछ एक तय करना पड़ेगा।
पलटू कहते हैंः भइया, तुम्हीं आंख वाले सही। क्योंकि तुम्हें बाहर की
सब चीजें दिखाई पड़ रही हैं तो तुम आंख वाले हो। वे कहते हैंः मेरी बात वह समझेगा जो अंधा है। अंधा वह जिसने बाहर देखना बंद कर दिया और भीतर देखना शुरू किया।
लेकिन जहां में चश्मे-हकीकत-निगर कहां
सत्य को देखने वाली दृष्टि नहीं है, नहीं तो जर्रा-जर्रा, कण-कण परमात्मा का निमंत्रण दे रहा है। और तुम जा रहे हो तीर्थ? तीर्थ वहां है जहां तुम हो! जहां उठते हो वहीं काबा! जहां बैठते हो वहीं काशी! बैठने का सलीका आए, उठने का तरीका आए।
पलटू जहवां दो अमल, रैयत होय उजाड़।
इक घर में दस देवता, क्योंकर बसै बजार।।
पलटू कहते हैंः जहां दो राजा हों वहां जनता की मुसीबत हो जाती है-- किसका माने, किसका न माने! एक कुछ कहता है, दूसरा कुछ कहता है। और तुम्हारे भीतर दो राजा हैं। दो ही नहीं, सच पूछो तो बहुत राजा हैं; एक नहीं, अनेक। इक घर में दस देवता, क्योंकर बसै बजार।
तुम्हारी बस्ती बस नहीं पाती, उजड़-उजड़ जाती है। दस इंद्रियां हैं तुम्हारे भीतर और हर इंद्रिय तुम्हें अपनी तरफ खींच रही है। और तुम्हारा इंद्र सोया हुआ है। इंद्र आकाश में नहीं है, याद रखना। इंद्र तो तुम्हारे भीतर उस तत्व का नाम है जो तुम्हारी सारी इंद्रियों के ऊपर मालकियत कर सकता है। इंद्र वह जो इंद्रियों का मालिक है। इंद्र वह जिसके चारों तरफ इंद्रियां नाचें, जो सिंहासन पर विराजमान हो सके। इंद्र का अर्थ है स्वामित्व। और स्वामित्व किसका हो सकता है? सोए हुए का नहीं। सोया हुआ तो अनेक होगा; जागा हुआ एक हो सकता है। सोने में तो अनेक सपने होंगे; जागने में सब सपने खो जाएंगे, सिर्फ जागरण बचेगा।
पलटू जहवां दो अमल, रैयत होय उजाड़।
एक तुम्हारी आत्मा है, जो कहती है चलो परमात्मा की तरफ। और एक तुम्हारी देह है, जो कहती है चलो पदार्थ की तरफ। देह खिंचती है जमीन की तरफ और आत्मा खिंचती है आकाश की तरफ। और तुम उजड़े जा रहे हो।

तुम्हारा तनाव क्या है? मनुष्य के जीवन में इतनी चिंता क्या है? एक ही चिंता, एक ही तनाव--कि विपरीत की तरफ खिंचाव है। इसमें तय करना जरूरी है कि कौन मालिक है और कौन गुलाम है। अधिक लोगों ने तय कर रखा है शरीर मालिक है। आत्मा का तो पता ही नहीं है; इसलिए शरीर ही मालिक होना चाहिए।
शरीर में दस इंद्रियां हैं। फिर दसों इंद्रियां अपनी-अपनी तरफ खींचती हैं। आंख कहती है सौंदर्य की तरफ चलो। जबान कहती है कि भोजन की तरफ चलो। कान कहते हैं कि आज संगीत की महफिल जमी है, आज तो उपवास भी हो जाए तो कोई फिक्र नहीं, मगर आज संगीत की महफिल से नहीं उठ सकते। आंख कहती हैः कहां की संगीत की महफिल! आज सुंदर फिल्म लगी है। यहां चलो, वहां चलो! यह करो, वह करो! दस इंद्रियां हैं, दसों तरफ खींच रही हैं। पांच कामेंद्रियां हैं, पांच ज्ञानेंद्रियां हैं। सबका खिंचाव अलग-अलग चल रहा है।
तुम रोज तो पाते हो यह--क्या करें? रेडियो सुनें, अखबार पढ़ें, सिनेमा देख आएं, क्लबघर हो आएं, किसी मित्र से मिल आएं, बाल-बच्चों के पास बैठें, ताश फैलाएं कि शतरंज बिछा दें--क्या करें, क्या न करें? चौबीस घंटे छोटी- छोटी चीजों के संबंध में भी उलझन चल रही है। स्त्रियां घंटों लगा देती हैं, यही तय नहीं हो पाता कि कौन सी साड़ी पहनें।
मुल्ला नसरुद्दीन अपनी गाड़ी में बैठा हार्न पर हार्न बजा रहा था। देर हुई जा रही है, समय निकला जा रहा है, ट्रेन पकड़नी है--और पत्नी है कि उतर नहीं रही है ऊपर से! जब उसका हार्न पर हार्न बजना सुना तो उसकी पत्नी खिड़की से झांकी और कहा कि सुनो जी, एक घंटे से कह रही हूं कि एक मिनट में आती हूं! लेकिन बस लगे हो हार्न पर हार्न बजाने में।
एक घंटे से कह रही हूं कि एक मिनट में आती हूं! तय ही नहीं हो पाता। तय करना ही मुश्किल होता है, छोटी-छोटी चीजों में तय करना मुश्किल होता है। मेरे गांव में मेरे घर के सामने एक सुनार रहते हैं। वे जरा डांवाडोल चित्त के आदमी हैं। उनकी डांवाडोल हालत देख कर एक दिन मैंने उनसे रास्ते पर कहा... चले जा रहे थे... मैंने कहा, सोनीजी, कहां जा रहे हैं? कहा, बाजार जा रहा हूं। मैंने कहा, आपने ठीक से देख लिया कि ताला ठीक लगा है कि नहीं? उन्होंने कहा, मैं ताला लगा कर आया हूं।
मगर शक पैदा हो गया। इधर मैं आया, मैंने देखा पीछे-पीछे वे भी चले आ रहे हैं। मैंने कहा, सोनीजी, कहां वापस लौट आए जल्दी? उन्होंने कहा कि तुमने शक पैदा कर दिया। जाकर ताला हिला कर देखा और कहा कि बिल्कुल ठीक है। उस दिन से गांव में खबर हो गई। वे कहीं भी दिखाई पड़ जाएं, लोग कहें-- सोनीजी, ठीक से ताला लगा आए? और धीरे-धीरे उनको शक ऐसा बढ़ने लगा कि एक दिन मुझे रास्ते में पकड़ कर बोले कि तुम मेरी जान लेकर रहोगे! जो देखो वही मुझसे कहता हैः ताला ठीक से लगा आए? हालांकि मैं जानता हूं कि ठीक से लगा कर आया, लेकिन लौट कर मुझे जाना ही पड़ता है, देखना पड़ता है। और अब तो लोग मेरे पीछे जाते हैं देखने कि सोनीजी गए कि नहीं। अब तो मैं लगा कर भी चार-छह दफे हिला कर देख लेता हूं, पक्का भरोसा है कि कोई भी कहे, मानूंगा नहीं। मगर जब कोई कहता है तो फिर संदेह उठ आता है कि हो न हो, अरे क्या पता! यह भी क्या पक्का कि मैंने छह दफे हिला कर देखा है!
एक दिन मैंने उन्हें देखा कि वे तांगे में बैठे हुए स्टेशन की तरफ चले
जा रहे हैं। गांव से स्टेशन कोई दो मील दूर है। मैं घूम कर लौट रहा था। मैंने कहा, सोनीजी, कहां जा रहे हैं आप? पत्नी रो रही है आपकी।
उन्होंने कहा, क्यों रोएगी पत्नी, अभी तो मैं छोड़ कर आ रहा हूं!
मैंने कहा, वह रो रही है, वह समझ रही है कि आप भाग गए घर से। आप बिल्कुल छोड़ कर जा रहे हैं।
अरे, उन्होंने कहा कि नहीं, तीन दिन के लिए जा रहा हूं, लौट आऊंगा।
मैंने कहा कि आप पहले घर चल कर पत्नी को समझा दो। मर-मरा गई, आग-वाग लगा ली, कुछ से कुछ हो जाए!
उन्होंने कहा कि नहीं-नहीं।... मगर शक पैदा हो गया।... उन्होंने कहा,
यह एक झंझट खड़ी कर दी। इधर मेरी ट्रेन चूक जाएगी, अगर मैं लौट कर गया।
मैंने कहा, आपकी मर्जी।

थोड़ी दूर तो वे गए। गांव के तांगे हैं, वे चलते भी बड़े धीरे-धीरे हैं।
तब तक मैं उनके घर पहुंच गया, मैंने उनकी पत्नी को कहा कि सम्हल कर रहना, सोनीजी बहुत नाराज होकर गए हैं! और अगर लौट आए तो पिटाई करेंगे।
उनमें झगड़ा अक्सर होता है। वह तो यह सुन कर ही रोने लगी। तब तक सोनीजी
आ गए तांगे में बैठे हुए। पत्नी को रोते देखा, एकदम टूट पड़े--कि मूरख! अरे मैं कहीं भाग गया कि मर गया, तू क्यों रो रही है? आज की गाड़ी तो चुकवा दी तूने!
तुम अपने मन को देखना, कोई भी संदेह पैदा कर दे सकता है। कोई भी संदेह पैदा कर दे सकता है! कमोबेश फर्क हैं लोगों में, लेकिन तुम्हारे मन में संदेह पैदा करना बिल्कुल आसान है। मन संदेह से भरा ही है। और एक मन नहीं है तुम्हारे पास, अनेक मन हैं, एक भीड़ है। और इस भीड़ में तुम खिंचे हो, तने हो, परेशान हो रहे हो। इस परेशानी में तुम कभी भी जीवन की थिरता को उपलब्ध नहीं हो सकते। और जो थिर नहीं है, कैसे परिचित होगा स्वयं से?
थी न आजादे-फना किश्ती-ए-दिल, ऐ नाखुदामौजे-तूफां से बची तो नजरे- साहिल हो गईकोई एजाजे-सफर था या फरेबे-चश्मे-शौक
सामने आकर निहां आंखों से मंजिल हो गई
थी न आजादे-फना किश्ती-ए-दिल, ऐ नाखुदा
मौजे-तूफां से बची तो नजरे-साहिल हो गई
किसी तरह अगर तूफान से किश्ती को बचा कर आ भी गए, तो किनारे से टकरा जाती है।
कोई एजाजे-सफर था या फरेबे-चश्मे-शौक
सामने आकर निहां आंखों से मंजिल हो गई
कितनी ही बार मंजिल बिल्कुल करीब आ गई है--यह रही, यह रही--और फिर आंखों
से ओझल हो गई है। क्योंकि तुम मुड़ गए। क्योंकि तुमने मोड़ ले लिया। और मोड़ पर मोड़ हैं, हर कदम पर मोड़ हैं।
हिंदू पूजै देवखरा, मुसलमान महजीद।
पलटू पूजै बोलता, जो खाय दीद बरदीद।।
प्यारा सूत्र है! सम्हाल कर रखना।
हिंदू पूजै देवखरा...
हिंदू पूजता है मंदिर को, देवालय को। मुसलमान पूजता है मस्जिद को।
पलटू पूजै बोलता...
पलटू तो कहता हैः हम तो उस सदगुरु को पूजते हैं, जो बोलता है, उठता है, चलता है।
पलटू पूजै बोलता, जो खाय दीद बरदीद।
हम प्रसाद किसी पत्थर की मूर्ति को नहीं चढ़ाते। हम तो उसको प्रसाद चढ़ाते हैं, जो आंखों के सामने खाता है--खाय दीद बरदीद।
पलटू कह रहे हैंः सच्चा धार्मिक व्यक्ति वही है जो सदगुरु को खोज ले।
मंदिर-मस्जिद तो सब मजार हैं, कब्रें हैं। हां, कभी वहां रहे होंगे जीवित पुरुष। पर दीये कभी के बुझ गए! ज्योति कभी की उड़ गई! हंस तो जा चुके मानसरोवर, पिंजड़े पड़े रह गए। तुम पिंजड़ों को पूज रहे हो। और फिर पिंजड़े बड़े होते चले जाते हैं, सजते चले जाते हैं।
एक आदमी मरा। उसके बच्चे छोटे-छोटे थे जब वह मरा। जब बच्चे पिता के जाने के बाद सोचने बैठे कि अब हम क्या करें, पिताजी क्या-क्या करते थे, उनकी परंपरा को बचा कर रखना है। तो उन्होंने देखा कि एक बात पिताजी रोज करते थेः खाने के बाद चौके के बाहर ही एक आले में उन्होंने एक सींक रख छोड़ी थी, उससे दांत साफ करते थे। इसमें जरूर कोई रहस्य होगा। ऐसा हमने कभी नहीं देखा... । और कोई काम छोड़ दें वे, मगर इस सींक से दांत साफ जरूर करते थे। इस सींक में कुछ राज है।
अब बच्चे थे, उनको दांत साफ करने की जरूरत भी नहीं थी; बूढ़ा बाप था, उसके दांतों में संधें भी हो गई थीं, सींक की जरूरत भी पड़ती थी। बच्चे तो दांत क्या साफ करें, साफ ही थे, कुछ सींक की जरूरत न थी। उन्होंने दो फूल चढ़ाने शुरू कर दिए सींक पर। और क्या कर सकते हैं!

फिर बड़े हुए। तो उन्होंने कहा कि सींक रखे हुए हैं, यह भी क्या बात है, बाप की याद! तो उन्होंने चंदन की एक बड़ी लकड़ी तैयार करवा ली, खुदवा ली, सुंदर बनवा ली, रख दी।
फिर और बड़े हुए, फिर काफी कमाई की, फिर नया मकान बनाया। नया मकान बनाया
तो उन्होंने कहा, आला शोभा नहीं देता, एक छोटा मंदिर ही बना दो। एक छोटा उन्होंने संगमरमर का मंदिर बना दिया, उसमें बीच में एक सोने की, बड़ी लकड़ी की प्रतीक, लेकिन अब कान या दांत खुजाने की लकड़ी से इसका कोई संबंध न रहा, यह प्रतिमा हो गई, इस पर रोज फूल चढ़ाना! और उन्होंने कहा कि अब हम कब तक फूल चढ़ाते रहेंगे, हजार काम हैं, एक पुजारी रख दो। तो सौ रुपये महीने का एक पुजारी रख दिया, जो आरती उतारे और गायत्री पढ़े।
जब कोई फकीर उस घर में ठहरा तो उसने पूछा कि मैंने बहुत मंदिर देखे, ऐसा मंदिर नहीं देखा कि सोने का एक डंडा! यह तुमने कोई शंकरजी की पिंडी का नया आधुनिक ढंग निकाला है? यह तुमने क्या बनाया है? तो उसने खोजबीन की तो बात चली, पीछे गया, पूछा-ताछा, समझा; आखिर में बात यह निकली कि बाप एक सींक रखता था और उससे दांत साफ करता था।
तुम्हारे मंदिरों के पीछे इस तरह की कहानियां निकलेंगी।
मैंने सुना है, एक फकीर एक गांव में ठहरा। एक आदमी ने उसकी बड़ी सेवा की। जब फकीर जाने लगा तो अपना गधा उस आदमी को दे गया। उस पर बड़ा खुश था, उसकी सेवा पर खुश था। और फकीर के पास कुछ था भी नहीं।
फकीर तो चला गया, लेकिन फकीर का गधा था तो शिष्य उसकी पूजा करता। जिस
पर उसका गुरु बैठा हो, उस गधे की पूजा की ही जानी चाहिए। वह फूल चढ़ाता, चंदन लगाता। गधा क्या, बिल्कुल पंडित-पुजारी मालूम होता। माला पहनाता। और जब वह इतनी सेवा करता उसकी, तो गांव के लोगों ने भी देखा कि कुछ राज होना चाहिए। लोग भी मालाएं पहनाने लगे गधे को, चंदन के टीके लगा जाते, फूल चढ़ा जाते।
फिर कुछ और मनौती करने लगे। किन्हीं की मनौतियां भी पूरी हो गईं। किसी को बच्चा नहीं होता था, बच्चा हो गया। हालांकि गधे का इसमें कोई हाथ नहीं था। लेकिन लोग रुपया चढ़ाने लगे। फिर तो उस शिष्य ने देखा कि यह तो बड़ा धंधा अच्छा भी है! वह गधे को बांधे बैठा रहता। दिन में दस-पच्चीस रुपये भी आ जाते, चढ़ौतरी भी होती।
फिर वह गधा मर गया। शिष्य बड़ा दुखी हुआ। उसने उसकी सुंदर मजार बनवाई।
अब मजार पर चमत्कार होने लगे। पहले से भी ज्यादा! क्योंकि पहले तो गधा था तो लोगों को थोड़ा संकोच भी लगता था। अब तो मजार थी, अब तो गधे का कोई सवाल ही नहीं था। मजार किसकी, यह भी कोई नहीं पूछता था। अरे होगी किसी पहुंचे हुए फकीर की! होगी किसी वली की! धीरे-धीरे पैसा इतना इकट्ठा हुआ कि उसने एक बड़ा मंदिर बना दिया। खूब धन आया।
फिर वह फकीर गुजरा एक बार गांव से। उसने पूछताछ की कि मेरा एक शिष्य मैं छोड़ गया था, वह दिखाई नहीं पड़ता।
उन्होंने कहा, वह है। मगर अब आप उसको पहचान नहीं सकेंगे। यह मंदिर...
इस मंदिर का पुजारी वही है।
फकीर ने देखा तो वहां तो ठाठ ही कुछ और थे। शिष्य एकदम उठा, पैरों पर गिर पड़ा। शिष्य ने कहा कि मेरे मालिक, क्या भेंट दे गए थे आप भी! मैं तो पहले सोचा कि यह भी कोई भेंट है! मगर संतों के रहस्य संत ही जानें। दे तो गए थे गधा, लेकिन भाग्य खुल गए। क्या गधा था, पहुंचा हुआ गधा था। बड़ा सिद्ध था। लोगों की मनौतियां पूरी हुईं। शादी नहीं होती थीं, उनकी शादी हो गईं। बच्चे नहीं होते थे, उनके बच्चे हो गए। मुकदमे लोग जीत गए। क्या-क्या इस गधे ने चमत्कार न दिखाए! और मर कर भी दिखा रहा है! और मेरे तो भाग्य खुल गए। न काम, न धाम, मस्त पड़ा रहता हूं। दस-पच्चीस तो मेरे शिष्य हैं, सेवा करते रहते हैं।
वह फकीर हंसा। उसने कहा कि यह तू ठीक कहता है। यह गधा कोई साधारण गधा नहीं था। अरे मैं जिस मंदिर में रहता हूं, वह इसकी मां का मंदिर है! यह पुश्तैनी गधा था। इसकी मां भी बड़ी चमत्कारी थी! मेरे गुरु इसकी मां मुझे दे गए थे। यह पीढ़ी दर पीढ़ी से सिद्धों की परंपरा है। ये कोई साधारण गधे नहीं हैं।

मंदिर और मस्जिद, पूजा और पाठ ऐसे ही जाल हैं जो खड़े हो जाते हैं। और फिर एक के पीछे दूसरे लोग चलते रहते हैं। लोग बिल्कुल अंधे हैं, अनुकरण करते हैं।
हिंदू पूजै देवखरा, मुसलमान महजीद।
पलटू पूजै बोलता, जो खाय दीद बरदीद।।
पलटू कहते हैंः मैं तो सिर्फ उसको पूजता हूं जो जिंदा है। उसके चरणों में बैठता हूं जहां अभी परमात्मा प्रवाहित है। उसकी सुनता हूं जिससे परमात्मा बोल रहा है।
चारि बरन को मेटिकै, भक्ति चलाया मूल।
जो जाग्रत पुरुष हैं, उन्होंने सारे भेद मेट दिए हैं--चार वर्णों के, चार आश्रमों के, हिंदू मुसलमान ईसाई के। उन्होंने भेद मेट दिए, उन्होंने अभेद को चलाया। अभेद का सूत्र हैः भक्ति।
चारि बरन को मेटिकै, भक्ति चलाया मूल।
गुरु गोविंद के बाग में, पलटू फूला फूल।।
और पलटू कहते हैंः मेरे गुरु के बगीचे के कारण ही, मेरे गुरु के सत्संग के कारण ही, मेरे गुरु के आस-पास जो संघ निर्मित हुआ उसके कारण ही! गुरु गोविंद के बाग में, पलटू फूला फूल।
मैं कभी खिलता नहीं अपने आप। मैंने गुरु को खिले देखा तो मुझे भरोसा आया कि मैं भी खिल सकता हूं। मैंने गुरु के पास औरों को खिलते देखा तो मुझे भरोसा आया कि मैं भी खिल सकता हूं। गुरु के बगीचे में इतने फूल थे कि बिना खिले कोई बच नहीं सकता था।
और यही मैं अपने संन्यासियों से कहता हूं कि अगर टिके रहे, अगर याद रखी पलटू की, और समझाते रहे अपने को कि काहे होत अधीर, तो आज नहीं कल तुम्हारा फूल खिल जाएगा। आश्वासन है कि यहां बहुत फूल खिलने को हैं। तुम्हारी कलियां चटकेंगी, फूल बनेंगी।
नाखुदा डूब चुका, नाव है गर्के-तूफां
हाय किस वक्त मुझे यादे-खुदा आती है
वो समझते हैं गुलिस्तां में चटकती है कली
टूटने की जो किसी दिल की सदा आती है
तुम तो याद परमात्मा की करते हो केवल दुख में और मैं तुम्हें सिखा रहा हूं कि सुख में उसकी याद करो। दुख में याद करोगे, कुछ काम की नहीं होगी। नाखुदा डूब चुका, नाव है गर्के-तूफां
माझी डूब चुका, नाव डूबने के करीब है।
हाय किस वक्त मुझे यादे-खुदा आती है
पछताओगे बहुत, जब सब डूबने लगेगा। माझी गया, नाव जा रही है, तूफान ने घेर लिया, बचने का कोई उपाय नहीं--उस वक्त ईश्वर को याद करोगे, किसी काम नहीं आएगा। उत्सव में, आनंद में उसे स्मरण करो।
वो समझते हैं गुलिस्तां में चटकती है कलीटूटने की जो किसी दिल की सदा आती है
जब टूटने को हो जाओ, दिल टूटे, वह कोई चटकना नहीं है, वह कोई फूल का खिलना नहीं है। दिल टूटे तो भी आवाज आती है। साज टूटे तो भी आवाज आती है। लेकिन साज का टूटना कोई संगीत नहीं है।
सदगुरु के पास भी कली के चटकने की आवाज आती है, लेकिन वह चटकने की आवाज है, फूल बनने की आवाज है, साज पर संगीत उठने की आवाज है।
लेकिन लोग भटके हैं, मुर्दा धर्मों में। और लोग अपने को धोखा देने में बड़े कुशल हैं। धोखा देना सस्ता भी है, कीमत भी नहीं चुकानी पड़ती। मुर्दों को पूजना आसान भी है, क्योंकि मुर्दे तुम्हें बदल नहीं सकते। और तुम्हारे दिल में जो हो अपने संबंध में मान लेना, तुम मान सकते हो, क्योंकि मुर्दे तुम्हें रोक नहीं सकते। जो चाहो अर्थ करो शास्त्रों का, कौन तुम्हें अटका सकता है! शास्त्र नहीं कह सकते कि यह गलत है। सदगुरु मौजूद होगा तो एक तो तुम हिम्मत न कर सकोगे गलत अर्थ करने की। और हिम्मत भी की तो उसका डंडा तुम्हारे सिर पर होगा। उसकी तलवार सदा चोट करने को तत्पर होगी। वह हथौड़ी और छैनी लेकर बैठा है। वह तुम्हारे अनगढ़ पत्थर को काटेगा। वह तुम्हें

मूर्ति बनाएगा। लेकिन लोग सस्ता कुछ भी मान लें, मानने में ही लोग जीते हैं।
ट्रेन में तीन महिलाएं बैठी हुई थीं। आपस में गपशप चल रही थी। उनमें
से एक स्त्री, जो कि देखने-दिखाने में साठ साल से कम नहीं लगती थी, बड़े ही मोहक स्वर में बोली, अरे, मेरी उम्र कोई कह नहीं सकता कि मैं चालीस साल की हूं। अभी भी मेरा शरीर-विन्यास अच्छे-अच्छे युवकों को दिल थामने पर मजबूर कर देता है।
उसकी बात सुन कर दूसरी महिला, जो कि चालीस साल की रही होगी, आंखें मटकाती हुई बोली, अरे, यह तो कुछ भी नहीं। मैं खुद तीस साल की हूं, लेकिन लोग मुझे बाईस का समझते हैं। और मुझे देख कर युवक तो युवक किशोर तक दीवाने हो जाते हैं।
यह सब सुन कर तीसरी कैसे चुप रह सकती थी! वह बोली, अरे, यह सब तो कुछ भी नहीं। लोग तो मुझे अभी सोलह साल की ही समझते हैं, जब कि मेरी वास्तविक उम्र बीस साल है। और युवक और किशोरों की तो छोड़ो, छोटे-छोटे बच्चे भी मुझे देख अपना कलेजा थाम लेते हैं।
और उस युवती की उम्र रही होगी कोई तीस साल। मगर स्त्रियां तो स्त्रियां!
मुल्ला नसरुद्दीन ऊपर की बर्थ पर लेटा हुआ था। उनकी बातें सुन कर वह धड़ाम से नीचे आ गिरा। महिलाएं तो एकदम घबड़ा गईं। एकदम बोलीं, अरे आप कहां से आ टपके?
मुल्ला बोला, मैं सीधा परमात्मा के यहां से चला आ रहा हूं, अभी-अभी पैदा हुआ हूं।
जो मानना हो मानो, कोई रोकने वाला नहीं है। लोग ऐसे ही मान कर बैठे हैं। उनका धर्म भी उनकी मान्यता है, उनका ज्ञान भी उनकी मान्यता है। उनकी नीति, उनका आचरण भी बस मान्यता है। चाहिए कोई सदगुरु कि तुम्हें झकझोर दे, तुम्हारी सारी मान्यताएं ऐसे झड़ जाएं जैसे पतझड़ में पत्ते झड़ जाते हैं।
तब नये अंकुर होते हैं पैदा। तब नये पल्लव निकलते हैं।
कमर बांधि खोजन चले, पलटू फिरै उदेस।
शट दरसन सब पचि मुए, कोउ न कहा संदेस।।
पलटू कहते हैंः कमर बांध कर मैं खोजने निकला था। एक ही लक्ष्य था, एक विशेष लक्ष्य था, परमात्मा को पाना। सारे दर्शन, छहों दर्शन छान डाले, सब मुर्दा हैं, उनसे मुझे कोई संदेश न मिला।
शट दरसन सब पचि मुए, कोउ न कहा संदेस।
वहां लाशें पड़ी हैं सत्यों की, लेकिन सत्य तो वहां से कभी का उड़ चुका है।
कुछ अपनी करामात दिखा, ऐ साकीजो खोल दे आंख, वो पिला, ऐ साकीहुश्यार को दीवाना बनाया भी तो क्यादीवाने को हुश्यार बना, ऐ साकी
कोई साकी चाहिए! कोई सदगुरु चाहिए, जो पिला दे! दीवाने को होशियार बना दे, सोए को जगा दे!
सिष्य सिष्य सब ही कहैं, सिष्य भया न कोय।
पलटू गुरु की वस्तु को, सीखै सिष तब होय।।
सभी अपने को शिष्य कहते हैं। कोई हिंदू है, तो वह समझता है कि शिष्य है हिंदू शास्त्रों का। कोई जैन है, तो समझता है वह शिष्य है जैन शास्त्रों का। शास्त्रों से कोई शिष्यता नहीं होती। शिष्यता तो जीवंत गुरु के साथ ही होती है। हां, महावीर के पास जो थे वे शिष्य थे। मोहम्मद के पास जो थे वे शिष्य थे। मुसलमान शिष्य नहीं हैं, जैन शिष्य नहीं हैं।
शिष्य तुम हो कैसे सकते हो जब तक गुरु मौजूद न हो? गुरु की मौजूदगी हो
तो ही तुम्हारे भीतर शिष्यत्व की संभावना है। गुरु का खिला फूल देख कर ही तुम्हारे भीतर आश्वासन जगेगा, श्रद्धा जगेगी--मैं भी खिल सकता हूं! गुरु का खिला फूल देख कर तुम्हें पहचान आएगी कि मैं अभी कली हूं और फूल होने की मेरी पूरी-पूरी संभावना है।
पलटू गुरु की वस्तु को, सीखै सिष तब होय।

जब तुम गुरु के पास बैठ कर गुरु के होने का ढंग सीखोगे, गुरु जैसा जीना सीखोगे, तब शिष्य होओगे। शिष्य कोई पैदाइश से नहीं होता। शिष्यत्व की तलाश करनी होती है।
खोजत गठरी लाल की, नहीं गांठि में दाम।
लोकलाज तोड़ै नहीं, पलटू चाहै राम।।
कहते हैं पलटूः गठरी लाल की खोजने निकले हो, हीरे खरीदने हैं, और नहीं गांठि में दाम! पात्रता नहीं है। पात्रता जन्माओ। शिष्यत्व पैदा करो।
झुकने की कला सीखो। मिटने की कला सीखो। खाली हो जाओ। अपने द्वार-दरवाजे खोल दो। किसी एक को तो निमंत्रण करो अपने भीतर कि तुम्हारे अंतस्तल तक प्रवेश कर जाए। बाधा मत दो।
यही शिष्य की कला है कि गुरु जब तुममें प्रवेश करे तो तुम सब द्वार-दरवाजे खोल दो, सब परदे हटा दो। तुम अपनी समग्र नग्नता में उसे उपलब्ध हो जाओ, ताकि वह तुम्हारे अंतरतम को छू ले और बजा दे तुम्हारे हृदय की वीणा को।
खोजत गठरी लाल की, नहीं गांठि में दाम।
लोकलाज तोड़ै नहीं, पलटू चाहै राम।।
और तुम राम चाहने चलते हो और लोकलाज छोड़ी नहीं जाती! जो राम का दीवाना
है उसे लोकलाज छोड़नी ही पड़ेगी। उसे तो समाज से बहुत तरह के कष्ट मिलेंगे।
उसे तो परंपरा सताएगी। उसे तो सड़ी-गली धारणाओं वाले लोग हर तरह से हैरान करेंगे। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। यह कीमत है जो चुकानी पड़ती है। यही तो दाम है जो गांठ में होने चाहिए।
मरने वाला मरि गया, रोवै जो मरि जाय।
समझावै सो भी मरै, पलटू को पछिताय।।
और जल्दी करो!
मरने वाला मरि गया...
देखते हो कोई रोज मर रहा! जल्दी करो! वह भी कल पर टालता रहा, टालता रहा
और समाप्त हो गया। और वह शुभ घड़ी ही न आई जब शिष्यत्व को ग्रहण करता।
मरने वाला मरि गया, रोवै जो मरि जाय।
और अब तुम उसके पास बैठ कर रो रहे हो। वह तो मर गया, तुम भी रो-रो कर मरोगे। अरे, हंस-हंस कर मरने की कला सीखो! हंसते हुए मरो! मगर हंसते हुए वही मर सकता है जो हंसते हुए जीए। और हंसते हुए कौन जी सकता है? जिसका राम से थोड़ा नाता हो जाए। और राम से नाता किसका हो सकता है? उसका ही, जो किसी सदगुरु के माध्यम से राम के पास प्रेम की पातियां भेजने लगे। सदगुरु तो डाकिया है, समझो; तुम्हारा पत्र वहां पहुंचा देता है, वहां का पत्र तुम्हें पहुंचा देता है।
मरने वाला मरि गया, रोवै जो मरि जाय।
समझावै सो भी मरै...
और कुछ नासमझ समझा रहे हैं। कह रहे हैं--मत रोओ, ऐसा तो संसार में होता
ही है। यह तो संसार की गति है। कोई मर गया, गंवा गया जीवन। कोई रो रहा है, वह भी गंवा रहा है समय। और कोई समझा रहा है, वह भी गंवा रहा है समय।
पलटू को पछिताय।
पलटू कहते हैंः शायद ही कोई इनमें एकाध है जो पछताए। और जो पछताए वह पहुंच जाए।
एक पीले पत्ते को वृक्ष से गिरते देख कर लाओत्सु को संबोधि उपलब्ध हुई थी। पीले पत्ते को वृक्ष से गिरते देख कर लाओत्सु को समझ में आ गया-- यहां सब मिट जाएगा। मिटने वाली इस दुनिया में क्या बसाना! तो शाश्वत को खोजूं, सनातन को खोजूं।
बुद्ध को एक बीमार, एक बूढ़े, एक मुर्दा और एक संन्यासी को देख कर क्रांति घटित हो गई थी। जहां बीमारी है, जहां बुढ़ापा है, जहां मौत है--वहां क्या है श्रम करने जैसा? सब छिन जाएगा! और संन्यासी को देख कर बुद्ध को लगाः यहां कुछ लोग हैं, जो मृत्यु के पार खोज भी कर रहे हैं।
मुझसे लोग पूछते हैं कि आप कितने संन्यासी चाहते हैं? मैं कहता हूं कि
यह कोई गिनती का सवाल नहीं। मैं तो सारी पृथ्वी पर संन्यासी ही संन्यासी चाहता हूं कि ऐसा हो ही न सके कि गैरिक व्यक्ति दिखाई न पड़ें। उनका दिखाई

पड़ना भी तुम्हें याद दिलाएगा। बुद्ध पर उस अनजान संन्यासी की कितनी कृपा है, इसका तुमने हिसाब लगाया? उसका तो कुछ नाम भी पता नहीं कौन संन्यासी था! जिसको देख कर बुद्ध को यह याद आई कि यहां कुछ खोजने वाले भी हैं; खोने वाले ही नहीं हैं, गंवाने वाले ही नहीं है, कुछ कमाने वाले भी हैं। उस संन्यासी को देख कर ही तो बुद्ध संन्यस्त हुए।
मैं तो सारी पृथ्वी को गैरिक कर देना चाहता हूं। गली-कूचे, गली-कूचे, जहां से तुम गुजरो वहां संन्यासी दिख जाए। पता नहीं किस शुभ घड़ी, किस मुहूर्त में तुम्हें यह बोध आए कि ये लोग क्या कर रहे हैं? इनको क्या हो गया है? शायद किसी शुभ मुहूर्त में तुम्हारे भीतर भी चिंगारी पैदा हो जाए। और एक चिंगारी जंगल को जला देती है--बस एक चिंगारी काफी है। उस चिंगारी का पैदा करना ही शिष्यत्व है। और उस चिंगारी में जल कर भस्मीभूत हो जाना--और तुम गुरु हो गए!
शिष्य और गुरु में बहुत फासला नहीं है, बस चिंगारी और जंगल में लग गई
आग का, मात्रा का। शिष्य अगर सच्चा है तो शीघ्र ही गुरुता को उपलब्ध हो जाएगा।
लेकिन अगर तुम्हारा शिष्यत्व ही झूठा है तो तुम कभी गुरु न हो पाओगे। बहुत से बहुत पंडित, पुजारी--थोथे, तोतारटंत। मुर्दा बातें तुम दोहराते रहोगे। न उन्होंने तुम्हारे जीवन में कोई रोशनी दी, न किसी और के जीवन में उनसे कोई रोशनी हो सकती है।
खोजो गुरु, जीवित गुरु खोजो--पलटू कह रहे हैं।
नजर-नजर में तमाशे दिखा दिए ऐसे
मुझे भी एक तमाशा बना गया कोई
दिखा के शोखनिगाही का जलवए-बेताब
मेरी नजर को तड़पना सिखा गया कोई
नमूदे-हुस्न को खिल्वत में था करार कहां तअय्युनात की दुनिया में आ गया कोई दिया वो दर्द कि थी जिसमें एक लज्जते-खास सितम में शाने-करम भी दिखा गया कोई
यह मोजिजा है कि जिंदा हैं अब मेरे अरमां मरे हुओं को भी जीना सिखा गया कोई
नकाब रुख से उठा दी मगर कमाल यह है
मेरी नजर का भी पर्दा उठा गया कोई
आज इतना ही।